॥ णमोऽत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स ॥

सिरि-घासीलालमुणिविरइयं

# कप्पसुत्तं

। मङ्गलाचरणम् ।

तं मंगल माईए, मज्झे पज्जंतए य सत्थस्स ।
पढमं तहि निद्दिट्ठं, निव्विग्घं पारगमणाय ॥१॥
तस्सेव य थेज्जत्थं, मज्झिमयं अंतिमंपि तस्सेव ।
अव्वोच्छिन्ननिमित्तं, सिस्सपसिस्साइवंसस्स ॥२॥

शब्दार्थः—यद्यपि आगम स्वयं ही मङ्गलमय होते हैं फिर भी विघ्नों का नाश करने के लिए तथा शिष्यों के मन में मङ्गल बुद्धि उत्पन्न करने के लिए [तं मंगलमाईए मज्झे पज्जंतए य सत्थस्स] शास्त्र के आरंभ में मध्य में और अन्त में मङ्गलाचरण

करना शिष्ट परम्परा है। [पढमं तहि निद्दिट्ठं निव्विग्घं पारगमणाय] इन में जो प्रथम मङ्गलाचरण का निर्देश किया है वह प्रकृत शास्त्र के निर्विघ्न रूप से समाप्ति के लिए है॥१॥ [तस्सेव य थेज्जत्थं मज्झिमयं] और मध्य का मङ्गलाचरण प्रकृत शास्त्र की स्थिरता के लिए है तथा [अंतिमंपि तस्सेव अव्वोच्छिन्ननिमित्तं सिस्सपसिस्साइवंसस्स] अन्तिम मङ्गलाचरण शिष्य प्रशिष्य की परम्परा को चालू रखने के लिए तथा प्रकृत शास्त्र का विच्छेद न हो इसके लिए किया गया है॥२॥

नमिऊण महावीरं, गोयमाइं गणिं तहा।
जेणिं सरस्सइं सुद्धं, भव्वाणं हियहेयवे ॥३॥
संजयायारसंजुत्तं, सिरिवीरकहाजुयं।
घासिलालवई रम्मं, कप्पसुत्तं रएमि हं ॥४॥

शब्दार्थः—[महावीरं] श्री महावीर को [गोयमाइं गणिं तहा] गौतम आदि गणधरों

को और [जेणिं सरस्सइं सुद्धं नमिऊण] निर्दोष जिनवाणी को नमस्कार करके [संजयायारसंजुत्तं] मुनियों के आचार से युक्त तथा [सिरिवीरकहाजुयं] श्री महावीर प्रभु की कथा से युक्त [घासिलालवई] मैं घासिलाल मुनि [भव्वाणं हियहेयवे] भव्यों के हितार्थ [रम्मं कप्पसुत्तं रएमि हं] सुन्दर कल्पसूत्र की रचना करता हूँ ॥४॥

मूलम्—दुविहे कप्पे पण्णत्ते, तंजहा—जिणकप्पे य थेरकप्पे य। तत्थ जिणकप्पे संपइ विच्छिण्णे। थेरकप्पे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—ठिए चेव अठिए चेव। तत्थ ठियकप्पे पढमचरिमजिणाणं। अठियकप्पे सेसजिणाणं। अहुणा चरिमजिण–सासणंते कट्टु ठियकप्पे पवुच्चइ। ठियकप्पे दसविहे पण्णत्ते, तंजहा—आचेलक्कं१ उद्देसियं२ सिज्जायरपिंडे३ रायपिंडे४ किइकम्मे५ महव्वए६ पज्जायजेट्ठे७ पडिक्कमणे८ मासनिवासे९ पज्जोसवणा१० ॥१॥

शब्दार्थः–[कप्पे] कल्प [दुविहे] दो प्रकार का [पण्णत्ते] कहा गया है। [तंजहा] जैसे कि [जिणकप्पे] जिनकल्प [य] और [थेरकप्पे] स्थविरकल्प। [तत्थ] उनमें से [संपइ] इस समय [जिणकप्पे] जिनकल्प [विच्छिण्णे] विच्छिन्न है। [थेरकप्पे] स्थविरकल्प [दुविहे] दो प्रकार का [पण्णत्ते] कहा गया है। [तंजहा–] जैसे कि [ठिए] स्थितकल्प [चेव] और [अठिए चेव] अस्थितकल्प। [तत्थ] उनमें से [ठियकप्पे] स्थितकल्प [पढम] प्रथम [चरिम] अन्तिम [जिणाणं] तीर्थंकरों का है। तथा [अठियकप्पे] अस्थितकल्प [सेस] शेष बीच के [जिणाणं] तीर्थंकरों का है। [अहुणा] इस समय [चरिम] अन्तिम [जिणसा-सणं] तीर्थंकर का शासन है [तिकट्टु] अतः यहां [ठियकप्पे] स्थितकल्प ही [पवुच्चइ] कहा जाता है–[ठियकप्पे] स्थितकल्प [दसविहे] दस प्रकार का [पण्णत्ते] कहा गया है। [तंजहा] जैसे कि [१आचेलक्कं] अचेलकत्व [२उद्देसियं] औद्देशिक [३सिज्जायरपिंडे] शय्यातरपिण्ड [४रायपिंडे] राजपिण्ड [५किइकम्मे] कृतिकर्म [६महव्वए] महाव्रत

[७पज्जायजेट्ठे] पर्यायज्येष्ठ [८पडिक्कमणे] प्रतिक्रमण [९मासनिवासे] मासनिवास
[१० पज्जोसवणा] और पर्युषणा ॥१॥

शास्त्र में कहे हुए साधुओं के अनुष्ठानविशेष अथवा आचार को कल्प कहते हैं। इसके अचेलकल्प आदि
दस भेद हैं-ये प्रथम सूत्र में कह दिये गये हैं, उनमें-
पहला १-अचेलकल्प-वस्त्र न रखना या थोड़े अल्पमूल्य वाले तथा जीर्ण वस्त्र रखना अचेलकल्प कहलाता है। यह
दो प्रकार का होता है। वस्त्रों के अभाव में तथा वस्त्रों के रहते हुए, तीर्थंकर या जिनकल्पी साधुओं का वस्त्रों के
अभाव में अचेल कल्प होता है। यद्यपि दीक्षा के समय इन्द्र का दिया हुआ देवदूष्य भगवान के कन्धे पर रहता है,
किन्तु उसके गिर जाने पर वस्त्र का अभाव हो जाता है। स्थविरकल्पी साधुओं का कपड़े होते हुए भी अचेल कल्प
होता है क्योंकि वे जीर्ण थोड़े तथा कम मूल्यवाले वस्त्र पहनते हैं। इन में भी उनकी मूर्छा (ममत्व) नहीं होती है।

अचेलकल्प का अनुष्ठान प्रथम तथा अन्तिम तीर्थंकर के शासन में होता है, क्योंकि प्रथम तीर्थंकर के साधु
ऋजुजड तथा अन्तिम तीर्थंकर के वक्रजड होते हैं अर्थात् पहले तीर्थंकर के साधु सरल और भद्रिक होने से
दोषादोष का विचार नहीं कर सकते। अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्र होने से भगवान की आज्ञा में मार्ग निका-
लन की कोशिश करते रहते हैं इसलिए इन दोनों के लिए स्पष्ट रूप से अचेलकल्प का विधान किया जाता है।

बीच के अर्थात् द्वितीय से लेकर तेईसवें तीर्थंकरों के साधु ऋजुप्राज्ञ होते हैं। वे प्रज्ञ-अधिक समझदार भी

होते हैं और ऋजु–धर्म का पालन भी पूर्णरूप से करना चाहते हैं। वे दोष आदि का विचार स्वयं कर लेते हैं, इसलिए उनके लिए छूट है। वे अधिक मूल्यवाले तथा रंगीनवस्त्र भी ले सकते हैं। उनके लिए अचेलकल्प नहीं है ॥१॥

इसी अचेलकल्प को सूत्रकार स्पष्ट करते हैं–

मूलम्–कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा अप्पमुल्लं वत्थं धारित्तए वा परिहरित्तए वा। नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा बहुमुल्लं वत्थं धारित्तए वा परिहरित्तए वा। कप्पइ निग्गंथाणं तओ संघाडीओ धारित्तए वा परिहरित्तए वा। कप्पइ निग्गंथीणं चत्तारि संघाडीओ धारित्तए वा परिहरित्तए वा। कप्पइ निग्गंथाणं बावत्तरिहत्थपरिमियं वत्थं धारित्तए वा परिहरित्तए वा। कप्पइ निग्गंथीणं छण्णउइहत्थपरिमियं वत्थं धारित्तए वा परिहरित्तए वा। कप्पइ निग्गंथाणं तिन्नि पायाइं चउत्थं उंडगं धारित्तए। कप्पइ निग्गंथीणं चत्तारि पायाइं पंचमं उंडगं धारित्तए ॥२॥

शब्दार्थः—[निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों [वा] अथवा [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [अप्पमुल्लं] अल्पमूल्यवाला [वत्थं] वस्त्र [धारित्तए] ग्रहण करना—धारण करना [वा] ओर [परिहरित्तए] परिभोग करना [कप्पइ] कल्पता है। किन्तु [निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को [वा] अथवा [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [बहुमुल्लं] बहुमूल्य [वत्थं] वस्त्र [धारित्तए] ग्रहण करना [वा] अथवा [परिहरित्तए] परिभोग करना [नो] नहीं [कप्पइ] कल्पता।

[निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को [तओ] तीन [संघाडीओ] वस्त्र (चादर) [धारित्तए] ग्रहण करना [वा] अथवा [परिहरित्तए] परिभोग करना [कप्पइ] कल्पता है। ओर [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [चत्तारि] चार [संघाडीओ] वस्त्र (चादर) [धारित्तए] ग्रहण करना [परिहरित्तए] परिभोग करना [कप्पइ] कल्पता है।

[निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को [बावत्तरि] बहत्तर [हत्थपरिमियं] हाथपरिमाण [वत्थं] वस्त्र को [धारित्तए] ग्रहण करना [वा] अथवा [परिहरित्तए] परिभोग करना [कप्पइ] कल्पता है।

एवं [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [छण्णउइ] छानवें [हत्थपरिमियं] हाथ परिमाण [वत्थं] वस्त्र [धारित्तए] ग्रहण करना [वा] अथवा [परिहरित्तए] परिभोग करना [कप्पइ] कल्पता है।

[निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को [तिन्नि] तीन [पायाइं] पात्र और [चउत्थं] चौथा [उंडगं] उंदक [धारित्तए] ग्रहण करना [कप्पइ] कल्पता है। एवं [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [चत्तारि] चार [पायाइं] पात्र और [पंचमं] पांचवां [उंडगं] उंदक [धारित्तए] ग्रहण करना [कप्पइ] कल्पता है ॥२॥

दूसरा २—औद्देशिक कल्प—साधु, साध्वी याचक आदि को देने के लिए वनायागया आहार औद्देशिक कहलाता है। औद्देशिक आहार के विषय में वताए गए आचार को औद्देशिककल्प कहते हैं। औद्देशिक आहार के चार भेद हैं (१) साधु या साध्वी आदि किसी विशेष का निर्देश विना किए सामान्य रूप से संघ के लिए वनाया गया आहार, (२) श्रमण या श्रमणियों के लिए वनाया गया आहार, (३)उपाश्रय—अर्थात् अमुक उपाश्रय में रहनेवाले साधु तथा साध्वियों के लिए वनाया गया आहार (४) किसी व्यक्ति विशेष के लिए वनाया गया आहार।

यदि सामान्य रूप से संघ अथवा साधु साध्वियों को उद्दिष्ट कर आहार वनाया जाता है तो वह प्रथम मध्यम और अन्तिम किसी भी तीर्थंकर के साधु साध्वियों को नहीं कल्पता। इसी औद्देशिककल्प को सूत्रकार स्पष्ट करते हैं—

मूलम्—नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा उद्देसियं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा कंबलं वा पडिग्गहं वा रयोहरणं वा पायपुंछणं वा पीढ-फलगसिज्जासंथारगं वा ओसहभेसज्जं वा पडिगाहित्तए वा परिभुंजित्तए वा ॥३॥

शब्दार्थः—[निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को [वा] अथवा [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [उद्देसियं] औद्देशिक [असणं] अशन, [पाणं] पान [खाइमं] खाद्य [साइमं] स्वाद्य [वत्थं] वस्त्र [कंबलं] कम्बल [पडिग्गहं] पात्र [रयोहरणं] रजोहरण [पायपुंछनं] पादप्रौंछन—पग पूछने का वस्त्रविशेष या पूंजनी [पीढ] पीठ [फलग] फलक—पट्टा [सिज्जा] शय्या [संथारगं] संस्थारक [ओसह] औषध [भेसज्जं] भैषज्य [पडिगाहित्तए] ग्रहण करना [वा] अथवा [परिभुंजित्तए] उपभोग करना [नो कप्पइ] नहीं कल्पता ॥३॥

तीसरा ३—शय्यातरपिण्ड—साधु साध्वी जिसके मकान में उतरे उसे शय्यातर कहते हैं। शय्यातर से आहार आदि लेने के विषय में बताए गये आचार को शय्यातरपिंडकल्प कहते हैं। शय्यातर से आहार आदि न लेने

चाहिए। यह कल्प प्रथम मध्यम तथा अन्तिम सभी तीर्थंकरों के साधुओं के लिए है। शय्यातर का घर समीप होने से उसका आहारादि लेने में बहुत से दोषों की संभावना है। इसी शय्यातरपिण्डकल्प को सूत्रकार प्रकट करते हैं–

**मूलम्–नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा सिज्जायरपिंडं पडिगाहित्तए वा परिभुंजित्तए वा ॥४॥**

पदार्थ–[निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को [वा] अथवा [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [सिज्जायरपिंड] शय्यातरपिण्ड को [पडिगाहित्तए] ग्रहण करना [नो कप्पइ] नहीं कल्पता ॥४॥

चौथा ४–राजपिण्डकल्प–राजा या बड़े ठाकुर आदि का आहार राजपिण्ड है। राजपिण्ड लेने के विषय में बताए गये साधु के आचार को राजपिण्डकल्प कहते हैं। साधु को राजपिण्ड न लेना चाहिए। क्योंकि राजपिण्ड लेने में अनेक दोष लगने की संभावना होती है।

राजपिण्ड आठ प्रकार का होता है– १ अशन २ पान ३ खादिम ४ स्वादिम ५ वस्त्र ६ पात्र ७ कंबल और ८ रजोहरण। इसी राजपिण्डकल्प को सूत्रकार कहते हैं–

**मूलम्–नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा रायपिंडं पडिग्गाहित्तए वा**

परिभुंजित्तए वा ॥५॥

पदार्थ-[निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को [वा] अथवा [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [राय-पिंडं] राजपिण्ड को [पडिग्गाहित्तए] ग्रहण करना [वा] अथवा [परिभुंजित्तए] उपभोग करना [नो] नहीं [कप्पइ] कल्पता ॥५॥

पांचवाँ५-कृतिकर्मकल्प-शास्त्रोक्त विधि के अनुसार अपने से बड़े को वन्दना आदि करना कृतिकर्मकल्प है। इसके दो भेद हैं-बड़े के आने पर खड़े होना और आते हुए के सन्मुख जाना। साधुओं में छोटी दीक्षा पर्यायवाला लम्बी दीक्षा पर्यायवाले को वन्दना करता है, किन्तु साध्वी कितनी ही लम्बी दीक्षापर्यायवाली हो वह एक दिन के दीक्षित साधु को भी वन्दना करेगी। कृतिकर्म का पालन न करने से नीचे लिखे दोष होते हैं-अहंकार की वृद्धि होती है। अहंकार अर्थात् मान से नीच गोत्र का वन्ध होता है। देखने वाले कहने लगते हैं-इस प्रवचन में विनय नहीं है क्योंकि छोटा बड़े को वंदना नहीं करता। ये लोकाचार को नहीं जानते। इस प्रकार की निंदा होती है। विनय भक्ति न होने से सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता और संसार की वृद्धि होती है। यह कल्प भी सभी तीर्थंकरों के साधुओं के लिये है। इसी कृतिकर्मकल्प को सूत्रकार कहते हैं-

मूलम्-कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा अहाराइणियं किइकम्मं करि-

त्तए। नो कप्पइ निग्गंथाणं निग्गंथीणं किइकम्मं करित्तए। कप्पइ निग्गंथीणं निग्गंथाणं किइकम्मं करित्तए। कप्पइ आयरियउवज्झायाणं गणंसि अहाराइणियं किइकम्मं करित्तए वा कारावित्तए वा। कप्पइ बहूणं भिक्खूणं बहूणं गणावच्छेइयाणं बहूणं आयरियउवज्झायाणं एगओ विहरमाणाणं अहाराइणियाए किइकम्मं करित्तए। कप्पइ बहूणं भिक्खूणं एगओ विहरमाणाणं अहाराइणियाए किइकम्मं करित्तए। कप्पइ बहूणं गणावच्छेइयाणं एगयओ विहरमाणाणं अहाराइणियाए किइकम्मं करित्तए। कप्पइ बहूणं आयरियाणं एगयओ विहरमाणाणं अहाराइणियाएं किइकम्मं करित्तए। कप्पइ बहूणं उवज्झायाणं एगयओ विहरमाणाणं अहाराइणियाए किइकम्मं करित्तए। एवं थेराणं पवत्तगाणं गणीणं गणहराणंपि मुणेयव्वं ॥८॥

शब्दार्थ—१ [निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को [वा] अथवा [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [अहाराइणियं] यथारात्निक—दीक्षापर्याय की ज्येष्ठता के अनुसार [किइकम्मं] कृतिकर्म—वन्दन [करित्तए] करना [कप्पइ] कल्पता है। २ किन्तु [निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों का [किइकम्मं] कृतिकर्म—वंदन [करित्तए] करना [नो] नहीं [कप्पइ] कल्पता। ३ [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों का [किइकम्मं] कृतिकर्म [करित्तए] करना [कप्पइ] कल्पता है। ४ [आयरियउवज्झायाणं] आचार्यों और उपाध्यायों को [गणंसि] गण में [अहाराइणियं] दीक्षा पर्याय की ज्येष्ठता के अनुसार [किइकम्मं] कृतिकर्म [करित्तए] करना [वा] अथवा [कारावित्तए] कराना [कप्पइ] कल्पता है। ५ [बहूणं] बहुसंख्यक [भिक्खूणं] भिक्षुओं को [बहूणं] बहुसंख्यक [गणावच्छेइयाणं] गणावच्छेदकों को [बहूणं] बहुसंख्यक [आयरिय उवज्झायाणं] आचार्यों और उपाध्यायों को [एगओ] जो एक साथ [विहरमाणाणं] विचरते हों, उन्हें [अहाराइणियाए] दीक्षा पर्याय की ज्येष्ठता के

अनुसार [किइकम्मं] कृतिकर्म [करित्तए] करना [कप्पइ] कल्पता है। ६ [एगयओ] एक-साथ [विहरमाणाणं] विचरने वाले [बहूणं] अनेक [भिक्खूणं] साधुओं को [अहाराइणियाए] पर्यायज्येष्ठता के अनुसार [किइकम्मं] कृतिकर्म [करित्तए] करना [कप्पइ] कल्पता है। ७ [एगयओ विहरमाणाणं] एक साथ विचरनेवाले [बहूणं] अनेक [गणावच्छेइयाणं] गणावच्छेदकों को [अहाराइणियाए] पर्याय ज्येष्ठता के अनुसार [किइकम्मं] कृतिकर्म [करित्तए] करना [कप्पइ] कल्पता है। ८ [एगयओ] एक साथ [विहरमाणाणं] विचरने-वाले [बहूणं] अनेक [आयरियाणं] आचार्यों को [अहाराइणियाए] पर्यायज्येष्ठता के अनुसार [किइकम्मं] कृतिकर्म [करित्तए] करना [कप्पइ] कल्पता है। ९ [एगयओ] एक-साथ [विहरमाणाणं] विचरनेवाले [बहूणं] अनेक [उवज्झायाणं] उपाध्यायों को [अहाराइणियाए] पर्याय-ज्येष्ठता के अनुसार [किइकम्मं] कृतिकर्म [करित्तए] करना [कप्पइ] कल्पता है। १० [एवं] इसी प्रकार [थेराणं] स्थविरों के [पवत्तगाणं] प्रवर्तकों के [गणीणं]

गणियों के एवं [गणहराणंपि] गणधरों के विषय में भी [मुणेयव्वं] समझना चाहिये।॥६॥

६–महाव्रतकल्प–महाव्रतों का पालन करना महाव्रतकल्प है। प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के शासन में पाँच महाव्रत हैं। इसी को पंचयाम धर्म भी कहते हैं। बीच के तीर्थंकरों में चार ही महाव्रत होते हैं। इसको चतुर्याम धर्म कहा जाता है। मध्यम तीर्थंकरों के साधु ऋजुप्राज्ञ होने से चौथे व्रत को पांचवें में अंतर्भूत कर लेते हैं। क्योंकि अपरिगृहीत स्त्री का भोग नहीं किया जाता। इसलिए चौथा व्रत परिग्रह में ही आ जाता है। यह कल्प सभी तीर्थंकरों के लिए स्थित है अर्थात् हमेशा नियमित रूप से पालने योग्य है। इसी को सूत्रकार कहते हैं–

मूलम्–कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा पंच महव्वयाइं सभावणाइं सम्मं पालित्तए॥७॥

शब्दार्थ–[निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को [वा] अथवा [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [सभावणाइं] भावना सहित [पंच महव्वयाइं] पांच महाव्रतों का [सम्मं] सम्यक् रूप से [पालित्तए] पालन करना [कप्पइ] कल्पता है॥७॥

७–पर्यायज्येष्ठकल्प–ज्ञान दर्शन और चारित्र में बड़े को ज्येष्ठ कहते हैं। प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के शासन में उपस्थापना अर्थात् बड़ी दीक्षा में जो साधु बड़ा होता है वही ज्येष्ठ माना जाता है। मध्य के तीर्थंकरों के शासन में छेदोपस्थापनीय चारित्र अर्थात् बडी दीक्षा का व्यवहार ही नहीं होता है।

जिसने सामायिक आदि छह आवश्यकों का अभ्यास कर लिया है वह बडी दीक्षा का अधिकारी हो सकता है, उस को बडी दीक्षा सातवें दिन दे देनी चाहिये। यदि वह सात दिनों में सामायिकादि आवश्यकों का अभ्यास न कर सका हो तो बाद में अभ्यास कर लेने पर भी चार महीने के भीतर बडी दीक्षा नहीं दी जाती है फिर तो चौथे महीने में बडी दीक्षा देनी चाहिये, इसी प्रकार चार महीने में भी आवश्यक का अभ्यास नहीं कर सके तो छठे महीने में बडी दीक्षा देनी चाहिये। यह उपस्थापना का क्रम है।

यदि पिता, पुत्र, राजा और मंत्री आदि दो व्यक्ति एक साथ दीक्षा ले और एक साथ ही अध्ययनादि समाप्त कर लें तो लोक रूढि के अनुसार पहले पिता या राजा आदि को उपस्थापना दी जाती है। यदि पिता वगैरह में दो चार दिन का विलंब हो तो पुत्रादि को उपस्थापना देने में उतने दिन ठहर जाना चाहिए। यदि अधिक विलम्ब हो तो पिता से पूछकर पुत्र को उपस्थापना (बड़ी दीक्षा) दे देनी चाहिए। यदि पिता न माने तो कुछ दिन ठहर जाना ही उचित है।

जिसकी पहले उपस्थापना होगी वही ज्येष्ठ माना जायगा और वह बाद वालों का वंदनीय होगा। पिता को

पुत्र की वन्दना करने में क्षोभ या संकोच होने की संभावना है। यदि पिता पुत्र को ज्येष्ठ समझने में प्रसन्न हो तो पुत्र को पहले उपस्थापना दी जा सकती है। अब इसी पर्यायज्येष्ठ कल्प के विषय में सूत्र कहते हैं–

मूलम्–कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा पज्जायजेट्ठं वंदित्तए वा नमंसित्तए वा सक्कारित्तए वा सम्माणित्तए वा कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासित्तए वा ॥८॥

शब्दार्थ–[निग्गंथाणं] श्रमणों [वा] अथवा [निग्गंथीणं] श्रमणियों को [कल्लाणं] कल्याणकारी [मंगलं] मंगलकारी [देवयं] धर्मदेव और [चेइयं] ज्ञानवन्त [पज्जायजेट्ठं] पर्यायज्येष्ठ को [वंदित्तए] वंदन करना [नमंसित्तए] नमस्कार करना [सक्कारित्तए] सत्कार करना [सम्माणित्तए] सन्मान करना [वा] और उनकी [पज्जुवासित्तए] पर्युपासना करना [कप्पइ] कल्पता है॥८॥

८–प्रतिक्रमणकल्प–किए हुए पापों की आलोचना प्रतिक्रमण कहलाता है। प्रथम तथा अन्तिम तीर्थंकर के

साधु के लिए यह स्थित कल्प है अर्थात् उन्हें प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिए। मध्यम तीर्थंकरों के साधुओं के लिए कारण उपस्थित होने पर ही करने का विधान है। प्रतिदिन विना कारण के करने की आवश्यकता नहीं। प्रथम तथा अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं को प्रमादवश अनजानपणे में दोष लगने की संभावना है इसलिए उनके लिए प्रतिक्रमण आवश्यक है। मध्यम तीर्थंकरों के साधु अप्रमादी होते हैं, इसलिए उन्हें विना दोष लगे प्रतिक्रमण की आवश्यकता नहीं। अप्रमादी होने के कारण दोष लगाते ही उसकी उसी समय शुद्धि कर लेते हैं।

मूलम्–कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा उभओकालं आवस्सयं करित्तए॥९॥

शब्दार्थ–[निग्गंथाणं] श्रमणों को [वा] अथवा [निग्गंथीणं] श्रमणियों को [उभओकालं] उभयकाल–दोनों समय [आवस्सयं] आवश्यक–प्रतिक्रमण करना [कप्पइ] कल्पता है॥९॥

९–मासकल्प–चातुर्मास या किसी दूसरे कारण के विना एक मास से अधिक एक स्थान पर न ठहरना मास कल्प है। एक स्थान पर अधिक दिन ठहरने में नीचे लिखे दोष हैं–

एक स्थान में अधिक ठहरने से उस में आसक्ति हो जाती है। 'यह इस स्थान को छोडकर कहीं नहीं जाता' इस प्रकार लोग कहने लगते हैं, जिससे लघुता आती है। साधु के सब जगह विचरते रहने से सभी लोगों का उपकार होता है, सभी जगह धर्म का प्रचार होता है। एक जगह रहने से सब जगह धर्मप्रचार नहीं होता

है। साधु के एक जगह रहने से उसे व्यवहार का ज्ञान नहीं हो सकता, इत्यादि। नीचे लिखे कारणों से साधु एक स्थान पर एक मास से अधिक ठहर सकता है।

(क) कालदोष–दुर्भिक्ष आदि का पड जाना। जिससे दूसरी जगह जाने में आहार मिलना असंभव हो जाय।
(ख) क्षेत्रदोष–विहार करने पर ऐसे क्षेत्र में जाना पड़े जो संयम के लिए अनुकूल न हो।
(ग) द्रव्यदोष–दूसरे क्षेत्र के आहारादि शरीर के प्रतिकूल हों।
(घ) भावदोष–अशक्ति, अस्वास्थ्य, ज्ञानहानि आदि कारण उपस्थित होने पर।

मासकल्प प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं के लिए ही है। बीच वालों के लिए नहीं है।
अब इसी मासकल्प का सूत्रकार स्पष्टीकरण करते हैं–

मूलम्–कप्पइ निग्गंथाणं गामंसि वा नयरंसि वा खेडंसि वा कब्बडंसि वा मडंबंसि वा पट्टणंसि वा आगरंसि वा दोणमुहंसि वा निगमंसि वा रायहाणिंसि वा आसमंसि वा संनिवेसंसि वा संबाहंसि वा घोसंसि वा अंसियंसि वा पुडभेयणंसि वा सपरिक्खेवंसि अबाहिरियंसि हेमंतगिम्हासु एगं मासं वसित्तए कप्पइ निग्गंथाणं गामंसि वा जाव सपरिक्खेवंसि सबाहिरियंसि हेमंतगिम्हासु

दो मासं वसित्तए। कप्पइ तत्थ अंतो एगं मासं बाहिं एगं मासं वसित्तए। कप्पइ अंतो वसमाणाणं अंतो बाहिं वसमाणाणं बाहिं भिक्खायरियाए अडित्तए ॥१०॥

शब्दार्थ–[निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को [गामंसि] ग्राम में [वा] अथवा [नयरंसि] नगर में [खेडंसि] खेड (धूली के प्राकारवाले गांव) में [कब्बडंसि] कर्बट (थोडे मनुष्यों की वसतिवाले गांव) में [मडंबंसि] मडंब (जिसके चारों ओर एक योजन तक कोई गांव न हो ऐसे गांव) में [पट्टणंसि] पट्टण (जहां सब वस्तुएं मिलती हो ऐसे नगर) में [आगरंसि] आकर (खान) में [दोणमुहंसि] द्रोणमुख (जल और स्थल के मार्गवाला शहर) में [निगमंसि] निगम में व्यापार प्रधान शहर में [रायहाणिंसि] राजधानी में [आसमंसि] तापसों के आश्रम में [सन्निवेसंसि] सन्निवेश (नगर के बाहर का प्रदेश जहां आभीर वगैरह लोक रहते हो) में [संबाहंसि] संबाध (जहां ब्राह्मण आदि चारो वर्णों की प्रभूत

वस्ती हो वह शहर) में [घोसंसि] घोष (अहीरों की वसति) में [अंसियं] अंशिका (नगर का त्रिकादि भाग विशेष) में [पुडभेयणंसि] पुटभेदन (जहां ग्रामान्तर से आकर वणिक्-जन वस्तुओं का विक्रय करते हों ऐसे स्थान) में ये पूर्वोक्त ग्राम नगरादिक यदि [सपरिक्खेवंसि] सपरिक्षेप–कोटसहित [अबाहिरियंसि] कोट के बाहर–वस्ती से रहित हो तो इन स्थानों में (हेमंतगिम्हासु) हेमंत और ग्रीष्म ऋतु में [एगं मासं] एक मास [वसित्तए] रहना [कप्पइ] कल्पता है।

[निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को [गामंसि] ग्राम में [वा] अथवा [जाव] यावत् [सपरिक्खेवंसि] सपरिक्षेप–कोटसहित और [सबाहिरियंसि] बाहर वस्तीवाले पूर्वोक्त स्थानों में [हेमन्तगिम्हासु] हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में [दो मासे] दो मास तक [वसित्तए] रहना [कप्पइ] कल्पता है।

[तत्थ] इन स्थानों में [एगं मासं] एक मास [बाहिं] कोट के बाहर और [अंतो]

कोट के भीतर [एगं मासं] एक मास [वसित्तए] रहना [कप्पइ] कल्पता है।

[अंतो] कोट के भीतर [वसमाणाणं] रहनेवालों को भीतर और [बाहिं] बाहर [वसमाणाणं] रहनेवालों को [बाहिं] बाहर [भिक्खायरियाए] भिक्षाचर्या के लिए [अडित्तए] अटन करना [कप्पइ] कल्पता है ॥१०॥

मूलम्—कप्पइ निग्गंथीणं गामंसि वा जाव सपरिक्खेवंसि अबाहिरियंसि हेमंतगिम्हासु दो मासे वसित्तए। कप्पइ निग्गंथीणं गामंसि वा जाव सपरिक्खेवंसि सबाहिरियंसि हेमंतगिम्हासु चत्तारि मासे वसित्तए। कप्पइ तत्थ अंतो दो मासे बाहिं दो मासे वसित्तए। कप्पइ तत्थ अंतो वसमाणीणं अंतो, बाहिं वसमाणीणं बाहिं भिक्खायरियाए अडित्तए ॥११॥

शब्दार्थः—[निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [गामंसि] ग्राम में [जाव] यावत् पूर्वोक्त [सपरिक्खेवंसि] कोट सहित और [अबाहिरियंसि] कोट के बाहर—वस्तीशून्य ऐसे स्थानों

में [हेमंतगिम्हासु] हेमंत और ग्रीष्मऋतु में [दो मासे] दो मास तक [वसित्तए] रहना [कप्पइ] कल्पता है ।

[निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [गामंसि] ग्राम में [जाव] यावत् पूर्वोक्त [सपरिक्खेवंसि] कोट-सहित और [सबाहिरियंसि] कोटरहित बाहर वस्तीवाले स्थानों में [हेमंतगिम्हासु] हेमंत और ग्रीष्म ऋतु में [चत्तारि मासे] चार महिने [वसित्तए] रहना [कप्पइ] कल्पता है ।

[तत्थ] वहां उन स्थानों में [दो मासे] दो महिना [अंतो] भीतर और [दो मासे] दो महिना [बाहिं] बाहर [वसित्तए] रहना [कप्पइ] कल्पता है ।

[अंतो] भीतर [वसमाणीणं] रहनेवाली साध्वियों को [अंतो] भीतर और [बाहिं] बाहर [वसमाणीणं] रहनेवाली साध्वियों को [बाहिं] बाहर ही [भिक्खायरियाए] भिक्षा के लिए [अडित्तए] अटन करना [कप्पइ] कल्पता है ॥११॥

मूलम्—नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा गामंसि वा जाव राय-

हाणिंसि वा एगपागाराए एगदुवाराए एगनिक्खमणपवेसाए एगयओ वसित्तए ॥१२॥

शब्दार्थः–[निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को [वा] और [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [एग पागाराए] एक प्राकारवाले [एगदुवाराए] एक ही द्वारवाले [एगनिक्खमणपवेसाए वा] अथवा एक ही आने–जाने के मार्गवाले [गामंसि] ग्राम में [जाव] यावत् [रायहाणिंसि राजधानी में [एगयओ] एक ही समय दोनों को [वसित्तए] रहना [नो कप्पइ] नहीं कल्पता है ॥१२॥

मूलम्–नो कप्पइ निग्गंथीणं वा निग्गंथाणं वा राओ वा विओले वा अद्धाणगमणाए एत्तए ॥१३॥

शब्दार्थः–[निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को [वा] अथवा [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [राओ] रात्रि में [वा] अथवा [वियाले] विकाल–सूर्योदय के पूर्व या सूर्यास्त के पश्चात्

[अद्धाणगमणाए] विहार करना [नो] नहीं [कप्पइ] कल्पता है।

मूलम्-नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा राओ वा वियाले वा वत्थं वा पत्तं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा रयहरणं वा गोच्छगं वा पडिगाहित्तए। नन्नत्थ चोरचोरिएणं ॥१४॥

शब्दार्थ-[निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को [वा] अथवा [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [राओ] रात्री में [वा] अथवा [वियाले] विकाल में [वत्थं] वस्त्र [पत्तं] पात्र [कंबलं] कंबल [पायपुंछणं] पादप्रोंछन [रयहरणं] रजोहरण [वा] अथवा [गोच्छगं] पूंजनी [पडिगाहित्तए] ग्रहण करना [नो] नहीं [कप्पइ] कल्पता है [नन्नत्थ] सिवाय [चोरचोरिएण] चोर के चुराये हुए के। (चोर के चुराये जाने पर उपरोक्त वस्तु चातुर्मास के भीतर भी लेना कल्पता है) ॥१४॥

मूलम्-नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा असणं वा पाणं वा खाइमं

वा साइमं वा ओसहं वा भेसज्जं वा अन्नं वा तहप्पगारं आहरणिज्जं वा उवलेवणिज्जं वा रत्तिं पडिगाहित्तए ॥१५॥

शब्दार्थ—(निग्गंथाणं) निर्ग्रन्थों को [वा] अथवा [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [असणं] अशन [पाणं] पान [खाइमं] खाद्य [साइमं] स्वाद्य [ओसहं] औषध [वा] अथवा [भेसज्जं] भैषज [वा] अथवा [तहप्पगारं] इसी प्रकार के [अन्नं] अन्य [आहरणिज्जं] आहार के योग्य [वा] अथवा [उवलेवणिज्जं] लेपन करने योग्य पदार्थ को [रत्तिं] रात्री में [पडिगाहित्तए] ग्रहण करना [नो कप्पइ] नहीं कल्पता है। ॥१५॥

मूलम्—नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा संखडिवडियाए गमित्तए। नन्नत्थ विहारमग्गेणं ॥१६॥

शब्दार्थ—[निग्गंथाणं] साधुओं को [वा] अथवा [निग्गंथीणं] साध्वियों को [संखडिवडियाए] समूहभोज्य—जिमणवार में [गमित्तए] जाना [नो कप्पइ] नहीं कल्पता।

[नन्नत्थ] सिवाय [विहारमग्गेणं] विहारमार्ग के ॥१६॥

मूलम्—कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा एवंविहेणं विहारेणं विहरमाणाणं आसाढपुण्णिमाए वासावासं वसित्तए। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा एवंविहेणं विहारेणं विहरमाणाणं वासावासं वसित्तए ? जण्णं वासावासे एवंविहेणं विहारेणं विहरमाणाणं निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा बहूणं रुक्खाणं, गुम्माणं, गुच्छाणं लयाणं, वल्लीणं, तणाणं वलयाणं हरियाणं अंकुराणं ओसहीणं जलरुहाणं कुहणाणं सिणेहसुहुमाणं पुप्फसुहुमाणं पणगसुहुमाणं बीयसुहुमाणं हरियसुहुमाणं अन्नेसिंपि तहप्पगाराणं एगिंदियाणं विराहणा हवइ। एवं संखाणं संखणगाणं जलोयाणं णीलंगूणं गंडोलयाणं सिसुणागाणं अन्नेसिंपि तहप्पगाराणं बेइंदियाणं विराहणा हवइ। एवं

पाणसुहुमाणं कुंथूणं पिवीलियाणं कीडियाणं बहुप्पयाणं जलपुयराणं अंडसुहुमाणं उत्तिंगसुहुमाणं अन्नेसिंपि तहप्पगाराणं तेइंदियाणं विराहणा हवइ। एवं मक्खियाणं दंसमसगाणं सलभपयंगाणं भमराणं भिंगोलियाणं कसारियाणं विच्छियाणं अन्नेसिंपि तहप्पगाराणं चउरिंदियाणं विराहणा हवइ। एवं दद्दुरियाणं मूसियाणं मच्छाणं कच्छवाणं अन्नेसिंपि तहप्पगाराणं पंचिंदियाणं विराहणा हवइ। तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ-कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा एवंविहेणं विहारेणं विहरमाणाणं आसाढपुण्णिमाए वासावासं वसित्तए ॥१७॥

शब्दार्थ-(एवंविहेणं) इस प्रकार-मासकल्प के [विहारेणं] विहार से [विहरमाणाणं] विचरते हुए [निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को [वा] अथवा [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [आसाढपुण्णिमाए] आषाढ मास की पूर्णिमा को (वासावासं) वर्षावास-चातुर्मास के लिए

एकस्थल पर [वसित्तए] रहना [कप्पइ] कल्पता है।

[भंते] हे भगवन्! [से केणट्ठेणं] किस कारण से [एवं] ऐसा [वुच्चइ] कहा गया है कि [निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को [वा] और [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [एवंविहेणं] इस प्रकार के [विहारेणं] विहार से [विहरमाणाणं] विचरण करते हुए को [वासावासं] वर्षावास के लिए–चातुर्मास के लिए [वसित्तए] एक स्थान पर रहना [कप्पइ] कल्पता है? उत्तर में गुरु कहते हैं–हे शिष्य! [जन्नं] जिससे [वासावासे] वर्षाकाल में [एवंविहेणं] इस प्रकार के [विहारेणं] मासकल्प विहार से [विहरमाणाणं] विचरण करने वाले [निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को और [निग्गंथीणं] निर्ग्रन्थियों को [बहूणं] बहुत से [रुक्खाणं] वृक्षों [गुम्माणं] गुल्मों [गुच्छाणं] गुच्छों [लयाणं] लताओं [वल्लीणं] वल्लियों [तणाणं] तृणों [वलयाणं] वलयों (वलयाकार वेलाओं) [हरियाणं] हरितों [अंकुराणं] अंकुरों [ओसहीणं] औषधों [जलरुहाणं] जलरुहों (पानी में पैदा होनेवाली वनस्पति) [कुहणाणं] कुहणों

(वनस्पति विशेष) [सिणेहसुहुमाणं] स्नेहसूक्ष्मों [पुप्फसुहुमाणं] पुष्पसूक्ष्मों [पणगसुहुमाणं] पनक (शैवाल) सूक्ष्मों [बीयसुहुमाणं] बीजसूक्ष्मों [हरियसुहुमाणं] हरितसूक्ष्मों [अन्नेसिंपि तहप्पगाराणं] इस प्रकार के अन्य भी [एगिंदियाणं] एकेन्द्रिय जीवों की [विराहणा] विराधना [हवइ] होती है। [एवं] इसी प्रकार [संखाणं] शंख [संखणगाणं] शंखनख (छोटाशंख) [जलोयाणं] जलौक [णीलंगूणं] नीलंगू (कृमिविशेष) [गंडोलयाणं] गंडोलक [सिसुनागाणं] शिशुनाग (अलसिया) [तहप्पगाराणं अन्नेसिंपि] इस प्रकार के अन्य भी [बेइंदियाणं] द्वीन्द्रिय जीवों की [विराहणा] विराधना [हवइ] होती है। [एवं] इस प्रकार [पाणसुहुमाणं] प्राणसूक्ष्म [कुंथूणं] कुन्थु [पिवीलियाणं] पिपीलिका [कीडियाणं] कीटिका [बहुप्पयाणं] बहुपद [जलपुयराणं] जलपूतर (फुवारे) [अंडसुहुमाणं] अंडसूक्ष्म [उत्तिंगसुहुमाणं] उत्तिंगसूक्ष्म [तहप्पगाराणं] इस प्रकार के [अन्नेसिंपि] अन्य भी (तेइंदियाणं) त्रीन्द्रिय जीवों की [विराहणा] विराधना [भवइ] होती है। [एवं] इस प्रकार [मक्खियाणं] मक्षिका [दंस-

मसगाणं] दंशमशक डांस–मच्छर [सलभपयंगाणं] शलभ, पतंग [भमराणं] भ्रमर [भिंगोलियाणं] भृंगोलिका [कसारियाणं] कसारी [विच्छियाणं] वृश्चिक [तहप्पगाराणं] इस प्रकार के [अन्नेसिंपि] अन्य भी [चउरिंदियाणं] चतुरिन्द्रिय प्राणियों की [विराहणा] विराधना [भवइ] होती है। [एवं] इस प्रकार [दद्दुरियाणं] दर्दुरिक मेंढक [मूसियाणं] मूषिक [मच्छाणं] मत्स्य [कच्छवाणं] कच्छप तथा [तहप्पगाराणं] इस प्रकार के [अन्नेसिंपि] अन्य भी [पंचिंदियाणं] पंचेन्द्रिय जीवों की [विराहणा] विराधना [भवइ] होती है। [तेणट्ठेणं] इस कारण से [एवं वुच्चइ] ऐसा कहा गया है कि [एवंविहेणं] इस प्रकार के [विहारेणं] विहार से [विहरमाणाणं] विचरण करनेवाले [निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों को अथवा [निग्गंथीणं] साध्वियों को [आसाढपुण्णिमाए] आषाढमास की पूर्णिमा के दिन [वासावासं] वर्षावास करने के लिए एक स्थान पर [वसित्तए] रहना [कप्पइ] कल्पता है॥१७॥

मूलम्–नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा वासावासे विहरित्तए ॥१८॥

शब्दार्थ—[निग्गंथाणं] साधुओं को [वा] अथवा [निग्गंथीणं] साध्वियों को [वासावासे] वर्षाकाल में [विहरित्तए] विहार करना [नो] नहीं [कप्पइ] कल्पता है ॥१८॥

मूलम्—कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा वासावासं सवीसइराए मासे वीइक्कंते पज्जोसवित्तए। नो तेसिं कप्पइ तं रयणिं उवाइणित्तए ॥१९॥

शब्दार्थ—[निग्गंथाणं] साधुओं को [वा] अथवा [निग्गंथीणं] साध्वियों को [वासावासं] वर्षावास का [सवीसइराए मासे] एक मास और वीस दीन के [वीइक्कंते] व्यतीत होने पर [पज्जोसवित्तए] पर्युषण करना [कप्पइ] कल्पता है। [तेसिं] उन्हें [तं रयणिं] उस रात्रि का (भाद्रपद शुक्लपंचमी की रात्रि का) [उवाइणित्तए] उल्लंघन करना [नो कप्पइ] नहीं कल्पता ॥१९॥

मूलम्—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा वासावासाणं सवीसइराए मासे वीइक्कंते पज्जोसवणं पज्जोसवित्तए ? जओ णं

अईएहिं अणंतेहिं अरिहंतेहिं भगवंतेहिं तित्थयरेहिं वासावासाणं सवीसइराए मासे वीइक्कंते पज्जोसवणं पज्जोसवियं, एवं उसभाइ–महावीरपज्जवसाणेहिं तित्थयरेहिं वि वासावासाणं सवीसइराए मासे वीइक्कंते पज्जोसवियं। एवं सव्वेहिं आयरिएहिं सव्वेहिं उवज्झाएहिं सव्वेहिं थेरेहिं सव्वेहिं पवत्तएहिं सव्वेहिं गणीहिं सव्वेहिं गणहरेहिं सव्वेहिं गणावच्छेयएहिं, एवं अम्हाणं धम्मायरिएहिं, चउव्विहेहिं संघेहिं वि वासावासाणं सवीसइराए मासे वीइक्कंते पज्जोसवणं पज्जोसवियं। तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ–कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा सवीसइराए मासे वीइक्कंते पज्जोसवणं पज्जोसवित्तए॥२०॥

शब्दार्थ–[से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ] प्रश्न–हे भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि [निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] साधुओं और साध्वियों को [वासा-

वासाणं] वर्षावास के [सवीसइराए मासे विइक्कंते] बीस दिन और एक मास व्यतीत होने पर [कप्पइ पज्जोसवणं पज्जोसवित्तए] पर्युषण पर्व करना कल्पता है।

उत्तर–हे शिष्य! [जओ णं अईएहिं अणंतेहिं अरिहंतेहिं भगवंतेहिं तित्थयरेहिं] जिस प्रकार अतीतकाल के अनन्त अरिहंत भगवन्त तीर्थंकरोंने [वासावासाणं सवीसइ-राए मासे वीइक्कंते पज्जोसवणं पज्जोसवियं] वर्षावास के बीस दिन सहित एक मास व्यतीत होने पर पर्युषण किया था। [एवं उसभाइ–महावीरपज्जवसाणेहिं तित्थयरेहिं वि वासावासाणं सवीसइराए मासे वीइक्कंते पज्जोसवियं] उसी प्रकार वर्तमान चौवीसी में ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्यन्त के तीर्थंकरों ने भी बीस दिन सहित एक मास के व्यतीत होने पर पर्युषण किया था। [एवं सव्वेहिं आयरिएहिं] इसी प्रकार सभी आचार्योंने [सव्वेहिं उवज्झाएहिं] सभी उपाध्यायोंने [सव्वेहिं थेरेहिं] सभी स्थविरोंने [सव्वेहिं पवत्तएहिं] सभी प्रवर्तकोंने [सव्वेहिं गणीहिं] सभी गणि-

योंने [सव्वेहिं गणहरेहिं] सभी गणधरों—गणस्वामियोंने [सव्वेहिं गणावच्छेयएहिं] सभी गणावच्छेद्कोंने [एवं अम्हाणं धम्मायरिएहिं] इसी प्रकार हमारे धर्माचार्योंने तथा [चउव्विहेहिं संघेहिं वि] चतुर्विध संघने भी [वासावासाणं सवीसइराए मासे वीइक्कंते पज्जोसवणं पज्जोसवियं] वर्षावास के बीस दिन सहित एक मास व्यतीत होने पर पर्युषण किया था। [तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ] इसलिए ऐसा कहा गया है कि [कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा सवीसइराए मासे वीइक्कंते पज्जोसवणं पज्जोसवित्तए] निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को वर्षावास के बीस दिन सहित एक मास व्यतीत होने पर पर्युषण करना कल्पता है ॥२०॥

मूलम्—नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा अपज्जोसवणाए पज्जोसवित्तए ॥२१॥

शब्दार्थ—[निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] साधुओं और साध्वियों को [अपज्जो-

सवणाए पज्जोसवित्तए] अपयूर्षणाकाल में पर्युषण करना [नो कप्पइ] नहीं कल्पता ॥२१॥

मूलम्-नो कप्पइ निग्गथाणं वा निग्गंथीणं वा पज्जोसवणाए गोलोम-मायाइंपि वालाइं उवाइणावित्तए ॥२२॥

शब्दार्थ—[निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] साधुओं और साध्वियों को [पज्जोसवणाए] पर्युषणा में [गोलोममायाइंपि बालाइं उवाइणावित्तए] गाय के रोम जितने भी बालों को रखना [नो कप्पइ] नहीं कल्पता ॥२२॥

मूलम्-कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा जहन्नेणं दुमासियं तिमासियं वा उक्कोसेणं छम्मासियं वा लोयं करित्तए ॥२३॥

शब्दार्थ—[निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] साधुओं और साध्वियों को [जहन्नेणं दुमासियं तिमासियं वा] जघन्य से दो मास में, या तीन मास में तथा [उक्कोसेणं छम्मासियं वा लोयं करित्तए] उत्कृष्ट से छह मास में लोच करना [कप्पइ] कल्पता है ॥२३॥

मूलम्—कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा पज्जोसवणाए अट्ठारसभत्तं वा जाव चउत्थभत्ते वा करित्तए ॥२४॥

शब्दार्थ—[निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] साधुओं और साध्वियों को [पज्जोसवणाए] पर्युषणाकाल में [अट्ठारसभत्तं वा जाव चउत्थभत्तं वा करित्तए] अष्टादश भक्त (अठाई) यावत् चतुर्थ भक्त-(उपवास) का तप करना [कप्पइ] कल्पता है ॥२४॥

मूलम्—नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा पज्जोसवणाए इत्तरियंपि चउव्विहमाहारं वा ओसहं वा भेसज्जं वा विलेवणं वा पडिगाहित्तए ॥२५॥

शब्दार्थ—[निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को [पज्जोसवणाए] पर्युषणा के दिन—संवत्सरी के दिन [इत्तरियंपि] स्वल्पमात्र भी [चउव्विहमाहारं] चार प्रकार का आहार [ओसहं वा] औषध अथवा [भेसज्जं वा] भैषज्य अथवा [विलेवणं वा] विलेपन [पडिगाहित्तए] ग्रहण करना [नो कप्पइ] नहीं कल्पता ॥२५॥

मूलम्—कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा वासावासं वसियाणं गामंसि वा जाव संनिवेसंसि वा सव्वओ समंता अद्धजोयणं उग्गहं उग्गिण्हित्ता णं

वर्षावास में स्थित [निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] वा जाव सन्निवेसंसि वा] ग्राम से यावत् सन्निवेश [अद्धजोयणं] आधा योजन अर्थात् दो कोस की पइ] आज्ञा लेकर रहना कल्पता है ॥२६॥

निग्गंथीणं वा गामंसि वा जाव संनिवेसंसि वा ए भिक्खायरियाए गमित्तए वा पडिनिय-

शब्दार्थ-[निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] साधुओं और साध्वियों को [गामंसि वा जाव सन्निवेसंसि वा] ग्राम यावत् सन्निवेश मे [सव्वओ समंता अद्धजोयणमेराए] सब दिशाओं में आधा आधा योजन तक [भिक्खायरियाए गमित्तए वा पडिनियत्तए वा] भिक्षा के लिए गमनागमन करना [कप्पइ] कल्पता है ॥२७॥

मूलम्-नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा गामंसि वा जाव सन्निवेसंसि वा, जइ तत्थ नई निच्चोयगा निच्चसंदणा असेउगा, तत्थ सव्वओ समंता अद्धजोयणमेराए भिक्खायरियाए गमित्तए वा पडिनियत्तए वा ॥२८॥

शब्दार्थ-[निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] साधुओं और साध्वियों को [गामंसि वा जाव सन्निवेसंसि वा] ग्राम यावत् सन्निवेश में [जइ तत्थ नई निच्चोयगा] जिस नदी में सदा जलरहता है [निच्चसंदणा] जो सदा बहती रहती हो और [असेउगा] जिस पर पुल न हो [तत्थ सव्वओ समंता] तो वहां सब ओर [अद्धजोयणमेराए] अर्धा योजन

तक [भिक्खायरियाए] भिक्षा के लिये [गमित्तए वा पडिनियत्तए वा] आना और जाना [नो कप्पइ] नहीं कल्पता ॥२८॥

सूलम्-नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा वासे वासंते गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा ग मित्तए वा पविसित्तए वा ॥२९॥

शब्दार्थ—[निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] साधुओं और साध्वियों को [वासे वासंते] वर्षा बरस रही हो तब [गाहावइकुलं] गृहस्थ के घर [भत्ताए वा पाणाए वा] आहार अथवा पानी के लिए [गमित्तए वा पविसित्तए वा] जाना या प्रवेश करना [नो कप्पइ] नहीं कल्पता ॥२९॥

मूलम्—कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अनुप्पविट्ठाणं वासं वासंते वि वसइं पडिनियत्तए। नो कप्पइ तेसिं वेलं उवाइणावित्तए ॥३०॥

शब्दार्थ–[गाहावइ कुलं] गृहस्थ के घर में [पिंडवायपडियाए] आहार पानी के निमित्त [अनुपविट्ठाणं] प्रविष्ट हुए [निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] साधु और साध्वी को [वासा वासंते] वर्षा हो रही हो तो भी [वसइं पडिनियत्तए] उपाश्रय में वापस आना [कप्पइ] कल्पता है। किन्तु [तेसिं] उनके घर [वेलं उवाइणावित्तए] समय व्यतीत करना [नो कप्पइ] नहीं कल्पता ॥३०॥

जब तिविहार तपस्या करनी हो तो धोवण पाणी विना नहीं होती है सो कहते हैं–

मूलम्–कप्पइ निग्गंथस्स वा निग्गंथीए वा चउत्थभत्तियस्स तिण्णि पाणगाइं पडिगाहित्तए, तं जहा-उस्सेइमे संसेइमे चाउलधोवणे। कप्पइ निग्गंथस्स वा निग्गंथीए वा छट्ठभत्तियस्स तिण्णि पाणगाइं पडिगाहित्तए, तं जहा-तिलोदए तुसोदए जवोदए। कप्पइ निग्गंथस्स वा निग्गंथीए वा अट्ठमभत्तियस्स तिण्णि पाणगाइं पडिगाहित्तए, तं जहा-आयामए सोवीरए सुद्धवियडे ॥३१॥

शब्दार्थ–[चउत्थभत्तियस्स] उपवास में [निग्गंथस्स वा निग्गंथीए वा] साधु अथवा साध्वी को [तिण्णि पाणगाइं पडिगाहित्तए] तीन प्रकार का पानी ग्रहण करना [कप्पइ] कल्पता है। [तं जहा] वह इस प्रकार है–[उस्सेइमे] उत्स्वेदिम–रोटी बन जाने के बाद कठौती के धोने का जो जल होता है वह उत्स्वेदिम जल कहलाता है। [संसेइमे] संसेकिम–अरणिक आदि की भाजी उबालकर जिस शीतल जल से धोई जाती है वह संसेकिम कहलाता है। [चाउलधोवणे] तन्दुल धोवन–चावल धोया हुआ पानी। [छट्ठभत्तियस्स] षष्ठ भक्त [बेला] करनेवाले [निग्गंथस्स वा निग्गंथीए वा] साधु या साध्वी को [तिण्णि पाणगाइं पडिगाहित्तए] तीन प्रकार का पानी ग्रहण करना [कप्पइ] कल्पता है। [तं जहा] वह इस प्रकार–[तिलोदए] तिल का धोवन [तुसोदए] तुष–का धोवन [जवोदए] जौ का धोवन। [अट्ठमभत्तियस्स] अष्टम भक्त–तेला करने वाले [निग्गंथस्स वा निग्गंथीए] साधु–साध्वी को [तिण्णि पाणगाइं] तीन प्रकार का पानी [पडिगाहित्तए] ग्रहण करना [कप्पइ] कल्पता है। [तं जहा] वह इस प्रकार है–

[आयामए] आचामक-शाक आदि का ओसामण [सोवीरए] सौवीरक-कांजी का धोवन, [सुद्धवियडे] शुद्ध विकट-उष्ण जल। ॥३१॥

मूलम्-कप्पइ निग्गंथस्स वा निग्गंथीए वा दसमभत्तियस्स एगवीसं पाणगाइं अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं पाणगाइं पडिगाहित्तए, तं जहा-उस्सेइमं वा १, संसेइमं वा २, चाउलोदगं वा ३, तिलोदगं वा ४, तुसोदगं वा ५, जवोदगं वा ६, आयामं वा ७, सोवीरं वा ८, अंबपाणगं वा ९, अंबाडपाणगं वा १०, कविट्ठपाणगं वा ११, माउलुंगपाणगं वा १२, मुद्दियापाणगं वा १३, दाडिमपाणगं वा १४, खज्जूरपाणगं वा १५, णालिएरपाणगं वा १६, करीरपाणगं वा १७, कोलपाणगं वा १८, आमलगपाणगं वा १९, चिंचापाणगं वा २०, सुद्धवियडं वा २१, अण्णयरं वा तहप्पगारं पाणगजायं चिराधोयं

अंबिलं वुक्कंतं परिणयं विद्धत्थं फासुयं एसणिज्जं सिया ॥३२॥

शब्दार्थ--[दसमभत्तियस्स] दशम भक्त--चोला करनेवाले [निग्गंथस्स वा निग्गंथीए वा] साधु और साध्वी को [एकवीसं पाणगाइं] इक्कीस प्रकार के धोवन में से [अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं पाणगाइं पडिगाहित्तए कप्पइ] कोई भी धोवन ग्रहण करना कल्पता है। [तं जहा] वे इस प्रकार हैं--[उस्सेइमं वा] उत्स्वेदिम आटे का धोवन [संसेइमं] संसेकिम भाजी का धोवन [चाउलोदगं वा] चावल का धोवन [तिलोदगं वा] तिल का धोवन [तुसोदगं वा] तुष का धोवन [जवोदगं वा] जव का धोवन [आयामं वा] शाक आदि का धोवन [सोवीरं वा] कांजी का धोवन [अंबपाणगं वा] आम का धोवन, [अंबाडपानगं वा] आमडी का धोवन [कविट्ठपाणगं वा] कविठ का धोवन [माउलुंगपाणगं वा] बिजोरे का धोवन [मुद्दिया पाणगं वा] दाख का धोवन, [दाडिम पाणगं वा] अनार का धोवन [खज्जूरपाणगं वा] खजूर का धोवन [णालिएरपाणगं वा] नारियल का धोवन [करीरपाणगं वा] केर का धोवन [कोलपाणगं वा] बेर का

धोवन [आमलगपाणगं वा] आंवले का धोवण [चिंचा पाणगं वा] इमली का धोवन [सुद्धवियडं वा] उष्ण जल [अण्णयरं वा तहप्पगारं] इन पानकों के अतिरिक्त इसी प्रकार के अन्य भी कोई पानक हों [चिराधोयं] जो पर्याप्त समय पहले छाश आदि के भाजन धोने में प्रयुक्त किये गए हों [अंबिलं] अतएव अम्ल हो चुके हों [वुक्कंतं] जिनकी पर्याय बदल गयी हों [परिणयं] जो शस्त्रपरिणत हो चुके हों [विद्धत्थं] अचित्त हो गए हों इस कारण [फासुयं] प्रासुक एवं [एसणिज्जं सिया] एषणीय–आधाकर्मादि दोषों से रहित हों वे भी ग्रहण किये जा सकते है ॥३२॥

मूलम्–नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा पढमाए पोरिसीए पडिग्गहियं चउत्थीए पोरिसीए परिभुंजित्तए, तं जहा–असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओसहं वा भेसज्जं वा विलेवणं वा अन्नयरं वा तहप्पगारं भोयणजायं वा पाणगजायं वा ओसहजायं वा भेसज्जजायं वा विलेवणजायं वा ॥३३॥

शब्दार्थ--[निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] साधु और साध्वी को [पढमाए पोरिसीए] प्रथम प्रहर में [पडिग्गहियं] ग्रहण किये हुए का [चउत्थीए पोरिसीए] चौथे प्रहर में [परिभुंजित्तए] उपभोग करना [नो कप्पइ] नहीं कल्पता। [तं जहा] वे इस प्रकार हैं [असणं] अशन [पाणं वा] पान [खाइमं वा] खाद्य [साइमं वा] स्वाद्य [ओसहं वा] औषध [भेसज्जं वा] भैषज [विलेवणं वा] विलेपन [अन्नयरं वा तहप्पगारं] तथा अन्य कोई [भोयणजायं वा] भोजन [पाणगजायं वा] पान [ओसहजायं वा] औषध [भेसज्ज-जायं वा] भैषज्य [विलेवणजायं वा] अथवा विलेपन करने के पदार्थों का समूह ॥३३॥

मूलम्--नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा सचित्तं बिलं वा लोणं सचित्तं उब्भियं वा लोणं अण्णयरं वा तहप्पगारं सचित्तं वत्थुं पडिगाहित्तए वा परिभुंजित्तए वा। आहच्च जेण केणवि पगारेण सचित्तं वत्थुं पडिगाहियं हवेज्जा, तं परिठवेज्जा, णो भुंजिज्जा॥३४॥

शब्दार्थ—[निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] साधु और साध्वियों को [सचित्तं विलं वा लोणं] सचित्त काला नमक, [सचित्तं उब्भियं वा] सचित्त समुद्री नमक [अण्णयरं वा तहप्पगारं सचित्तं वत्थुं] उस प्रकार की अन्य कोई भी सचित्त वस्तु की [पडिगाहित्तए वा परिभुंजित्तए वा] ग्रहण करना अथवा परिभोग करना—सेवन करना [नो कप्पइ] नहीं कल्पता ॥३४॥

मूलम्—नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा गाहावइस्स, लाउपाएसु वा, मट्टियापाएसु वा, कट्ठपाएसु वा, अयपाएसु वा, तंबपाएसु वा, तउपाएसु वा, सीसगपाएसु वा, कंसपाएसु वा, रुप्पपाएसु वा, सुवण्णपाएसु वा, अन्नयरेसु वा, तहप्पगारेसु पाएसु असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, परिभुंजित्तए, वत्थाइयं वा पक्खालित्तए। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ? जेणं तहप्पगारेसु पाएसु असणाइयं परिभुंजेमाणो वत्थाइयं वा पक्खालेमाणो निग्गंथे

वा निग्गंथी वा आयारापरिभसइ ॥३५॥

शब्दार्थ–[निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] साधुओं और साध्वियों को [गाहावइस्स] गृहस्थ के [लाउपाएसु] तुंबे के पात्रों में [मट्टियापाएसु वा] मिट्टी के पात्रों में [कट्ठ-पाएसु वा] काष्ठ के पात्रों में [अयपाएसु वा] लोहे के पात्रों में [तंबपाएसु वा] तांबे के पात्रों में [तउपाएसु वा] रांगे के पात्रों में [सीसगपाएसु वा] शीशे के पात्रों में [कंसपाएसु वा] कांसे के पात्रों में [रुप्पपाएसु वा] चान्दी के पात्रों में [सुवण्णपाएसु वा] सुवर्ण के पात्रों में [अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु वा] तथा इसी प्रकार के अन्यान्य [पाएसु वा] पात्रों में [असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा] अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का [परिभुंजित्तए] परिभोग करना [वत्थाइयं वा पक्खालित्तए] तथा उनमें वस्त्र आदि का धोना भी [नो कप्पइ] नहीं कल्पता।

[से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ] हे भगवन् किस कारण से ऐसा कहा है ? [जेणं

तहप्पगारेसु पाएसु] गुरु उत्तर देते हुए कहते हैं–हे शिष्य ! कारण यह है कि इस प्रकार के पात्रों में [असणाइयं परिभुंजेमाणो] अशनादिक का परिभोग करते हुए तथा [वत्थाइयं वा पक्खालेमाणो] वस्त्रादि धोते हुए [निग्गंथे वा निग्गंथी वा आयारा परिभंसइ] श्रमण या श्रमणी आचार से परिभ्रष्ट–पतित हो जाते हैं ॥३५॥

मूलम्–कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा पीढं वा, फलगं वा, सिज्जं वा, संथारगं वा, वत्थं वा, पत्तं वा, कंबलं वा, सदंडगं, रयहरणं वा, चोलपट्टगं वा, सदोरगं मुहवत्थियं वा, पायपुंछणं वा, अन्नं वा तहप्पगारं उवगरणजायं वा, वसइं वा, उभओ कालं पडिलेहित्तए वा पमज्जित्तए वा ॥३६॥

शब्दार्थ–[निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को [पीढं वा] पीठ [फलगं वा] फलक–पाट [सिज्जं वा] शय्या [संथारगं वा] संस्तारक [वत्थं वा] वस्त्र [पत्तं वा] पात्र [कंबलं वा] कंबल [सदंडगं रयहरणं वा] रजोहरण और उसकी

दण्डी [चोलपट्टगं वा] चोलपट्ट [सदोरगं मुहवत्थियं] दोरा सहित मुखवस्त्रिका [पायपुंछणं वा] पादप्रोंछन [अन्नं वा तहप्पगारं उवगरणजायं] तथा इसी प्रकार के अन्य सब उपकरणों की [वसइं वा] उपाश्रय की [उभओ कालं पडिलेहित्तए वा पमज्जित्तए वा] दोनों काल प्रतिलेखना और प्रमार्जना करना [कप्पइ] कल्पता है। ॥३६॥

मूलम्—कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा अट्ठारसविहं उवस्सयं तहप्पगारं अण्णं वा उवस्सयं वसित्तए। तं जहा—१ देवकुलं २ सहं वा ३ पवं वा ४ आवसहं वा ५ रुक्खमूलं वा ६ आरामं वा ७ कंदरं वा ८ आगरं वा ९ गिरिगुहं वा १० कम्मघरं वा ११ उज्जाणं वा १२ जाणसालं वा १३ कुवियसालं वा १४ जन्नमण्डवं वा १५ सुन्नघरं वा १६ सुसाणं वा १७ लेणं वा १८ आवणं वा अण्णं वा तहप्पगारं दगमट्टियबीयहरियतसपाणअसंसत्तं अहा-

कडं फासुयं एसणिज्जं विवित्तं इत्थीपसुपंडगरहियं पसत्थं। जे णं अहाकम्म-बहुले आसिय–समज्जिओ–वलित्त–सोहिय–छायण-दूमण-लिंपण–अणुलिंपण-जलण-भंडचालणसमाउले सिया, जत्थ य अंतो बहिं च असंजमो वड्ढइ नो से कप्पइ वसित्तए॥३७॥

शब्दार्थ–[निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] साधु और साध्वियों को [अट्ठारसविहं उवस्सयं] अठारह प्रकार के उपाश्रयों में [तहप्पगारं अण्णं वा उवस्सयं वसित्तए] तथा इन्हीं जैसे अन्य उपाश्रयों में निवास करना [कप्पइ] कल्पता है। [तं जहा] वे इस प्रकार है [देवकुलं वा] देवकुल–देवगृह [सहं वा] सभा [पवं वा] प्रपा [आवसहं] आवसथ-घर [रुक्खमूलं वा] वृक्षमूल–वृक्ष के नीचे [आरामं वा] आराम [कंदरं वा] कंदरा–गुफा [आगरं वा] आकर–खान [गिरिगुहं वा] गिरिगुफा [कम्मघरं वा] कर्मगृह [उज्जाणं वा] उद्यान [जाणसालं] यानरथादि शाला [कुवियसालं] कुप्यशाला–गृहोपकरण-

शाला [जन्नमंडवं वा] यज्ञमण्डप [सुन्नघरं वा] शून्यघर [सुसाणं वा] स्मशान [लेणं वा] लयन–पर्वत में कोरा हुआ घर [आवणं वा] आपण-दुकान [अन्नं वा तहप्पगारं] इनसे अतिरिक्त इसी प्रकार के [दगमट्टियबीयहरियतसपाणअसंसत्तं] सचित्त जल, मृत्तिका, बीज, वनस्पति एवं त्रसजीवों के संसर्ग से रहित [अहाकडं फासुयं एसणिज्जं] गृहस्थों द्वारा अपने निमित्त बनाये हुए प्रासुक एषणीय [विवित्तं इत्थीपसुपंडगरहिय पसत्थं] एकान्त स्थान में तथा स्त्री पशु और नपुंसक से रहित और प्रशस्त निर्दोष उपाश्रय में रहना [कप्पइ] कल्पता है। [जेणं आहाकम्मबहुले] जो उपाश्रय आधाकर्म दोष से युक्त हो [आसिय–समज्जिओवलित्त–सोहिय–छायण–दूमण–लिंपण अणुलिंपण–जलण–भंडचालण–समाउले सिया] तथा जो सचित्त जल से सिंचा गया हो, झाड़ू आदि से कचरा या जाला आदि हटाया गया हो। गोबर आदिसे लीपा हुआ, रंग आदि से शोभित किया हुआ, आच्छादित–ढांका हुआ, सफेदा आदि से रंगा हुआ, लीपा

हुआ, या बार बार लिपा हुआ। सर्दी आदि दूर करने के लिए जिसमें आग सुलगाइ गइ हो ऐसा बर्तन–भांडे आदि का हेरफेर किया हो ऐसी अन्य सावद्य क्रिया से युक्त और [जत्थ य अंतो बहिं च असंजमो वड्ढइ] और जहां भीतर बाहर असंयम की वृद्धि होती हो [नो से कप्पइ वसित्तए] ऐसे उपाश्रय में रहना नहीं कल्पता ॥३७॥

मूलम्–कप्पइ निग्गंथस्स वा निग्गंथीए वा आयरियं वा, उवज्झायं वा, जाव गणावच्छेयगं वा, रयणाहियं वा, आपुच्छित्ता तेसिं उग्गहं च उग्गिण्हित्ता बारसविहेसु, तवोकम्मेसु णं अण्णयरं ओरालं कल्लाणं, सिवं, धण्णं, मंगल्लं, सस्सिरीगं, महानुभावं, कसायपंकपक्खालगं, कम्ममलविसोहगं, तवोकम्मं उव-संपज्जित्ताणं विहरित्तए, असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, पडिगा–हित्तए वा आहारित्तए वा, उच्चारं वा. पासवणं वा, परिट्ठावित्तए, सज्झायं

आचार्याद्याज्ञया-तपः आदि क्रिया करणम्

वा करित्तए, ठाणं वा ठावित्तए, धम्मजागरियं वा जागरित्तए, अन्नयरं वा तहप्पगारं किंचि वि कज्जजायं करित्तए ॥३८॥

शब्दार्थ–[निग्गंथस्स वा निग्गंथीए वा] साधु और साध्वी को [आयरियं] आचार्य [उवज्झायं वा] उपाध्याय [वा जाव गणावच्छेयगं वा] यावत् गणावच्छेदक, [रयणाहियं वा] अथवा रत्नाधिक–पर्यायजेष्ठ से [आपुच्छित्ता] पूछकर [तेसिं उग्गहं च उग्गिण्हित्ता] और उनकी आज्ञा प्राप्त कर के [बारसविहेसु तवोकम्मेसु] बारह प्रकार के तपों में से [अण्णयरं ओरालं कल्लाणं] किसी भी उदार, कल्याणमय [सिवं धण्णं मंगलं] शिवस्वरूप, धन्य, मांगलिक [सस्सिरीगं महानुभावं] सश्रीक महाप्रभावजनक, [कसाय पंकपक्खालगं] कषायरूपी कीचड को प्रक्षालन करनेवाले [कम्ममलविसोहगं] कर्म मल की विशुद्धि करनेवाले [तवोकम्मं] तप को [उवसंपज्जित्ताणं] ग्रहण करके [विहरित्तए कप्पइ] विचरण करना कल्पता है। तथा [असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा साइमं वा]

आचार्याद्याज्ञया तप आदि क्रियाकरणम्

अशन, पान, खाद्य एवं स्वाद्य को [पडिगाहित्तए वा आहारित्तए वा] ग्रहण करना या उपभोग करना कल्पता है। तथा [उच्चारं वा पासवणं वा] उच्चार–प्रस्रवण–मल-मूत्र का [परिठावित्तए वा] परित्याग करना [सज्झायं वा करित्तए] तथा स्वाध्याय करना [ठाणं वा ठावित्तए] कायोत्सर्ग करना [धम्मजागरियं वा जागरित्तए] अथवा धर्म–जागरण करना [अन्नयरं तहप्पगारं किंचि वि कज्जजायं करित्तए] अथवा उस प्रकार के अन्य ओर भी कोइ कार्य बडों की आज्ञा लेकर करना [कप्पइ] कल्पता है ॥३८॥

मूलम्–नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा सयं पत्तं लेहित्तए॥३९॥

शब्दार्थ–[निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] साधु और साध्वी को [सयं पत्तं लेहित्तए] स्वतः अपने हाथ से पत्रलेखन करना [नो कप्पइ] नहीं कल्पता ॥३९॥

मूलम्–नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा नवं अणुप्पण्णं अहिगरणं उप्पाइत्तए, पोराणं खामियं विउसमियं अहिकरणं पुणो उईरित्तए॥४०॥

शब्दार्थ—[निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] साधु और साध्वी को [नवं अणुप्पण्णं] नया अनुत्पन्न [अहिगरणं] कलह को [उप्पाइत्तए] उत्पन्न करना तथा [पोराणं खामियं] जिसके लिए क्षमापणा की जा चुकी हो [विउसमियं] और जो शांत हो चुका हो [अहिगरणं पुणो उईरित्तए] उसकी उदीरणा करना [नो कप्पइ] नहीं कल्पता ॥४०॥

मूलम्—कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा अहारायणियाए खमित्तए वा खमावित्तए वा ॥४१॥

शब्दार्थ—[निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] साधु और साध्वी को [अहारायणियाए] यथा रात्निक—अर्थात् बडे छोटे के क्रम से [खमित्तए वा खमावित्तए वा] खमत खामणा करना [कप्पइ] कल्पता है ॥४१॥

मूलम्—कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं उवसमसारं खु सामण्णंति कट्टु परोप्परं अहिगरणं उवसमित्तए वा उवसमावित्तए वा, खमित्तए वा खमावित्तए

अनुत्पन्नाधिकरणोत्पादन निषेधः यथारात्निक क्षमापनकल्पः

वा। जो उवसमइ सो आराहगो। जो णं नो उवसमइ सो नो आराहओ॥४२॥

शब्दार्थ—[निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] साधु और साध्वी को [उवसमसारं खु सामण्णंति कट्टु] उपशम-कषायों की मन्दता ही साधुत्व का सार है यह जानकर [परोप्परं अहिगरणं] परस्पर के कलह को [उवसमित्तए वा उवसमावित्तए वा] शांत करना अथवा शान्त कराना चाहिये। [खमित्तए वा खमावित्तए वा] क्षमा देना या क्षमा याचना करना [कप्पइ] कल्पता है। [जो उवसमइ सो आराहगो] जो उपशान्त करता है वह आराधक है। [जो णं नो उवसमइ सो नो आराहगो] जो उपशांत नहीं करता वह आराधक नहीं होता ॥४२॥

मूलम्-इच्चेइयं थेरकप्पं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं जहासम्मं काएण फासित्ता पालित्ता सोहित्ता तीरित्ता किट्टित्ता आराहित्ता आणाए अनुपालित्ता निग्गंथो वा निग्गंथी वा अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं, अत्थे-

गइए दुच्चे भवग्गहणेणं अत्थेगइए तच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ सत्तट्ठभवग्गहणाइं पुण नाइक्कमइ, सासओ सिद्धो हवइ ॥४३॥

शब्दार्थ—[इच्चेइयं] इस [थेरकप्पं] स्थविरकल्प को [अहासुत्तं] सूत्र के अनुसार [अहाकप्पं] कल्प के अनुसार [अहामग्गं] मार्ग के अनुसार [अहातच्चं] तत्त्व के अनुसार [जहासम्मं] समभाव पूर्वक [काएण फासित्ता] शरीर से स्पर्श करके [पालित्ता] पालन करके [सोहित्ता] शोधन करके [तीरित्ता] पार करके [किट्टित्ता] कीर्तन करके [आराहित्ता] आराधन करके [आणाए अनुपालित्ता] आज्ञा का पालन करके [निग्गंथो वा निग्गंथीओ वा] साधु और साध्वी [अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं] कितनेक उसी भव में [अत्थेगइए दुच्चेणं भवग्गहणेणं] कितनेक दूसरे भव में [अत्थेगइए तच्चेणं भवग्गहणेणं] कितनेक तीसरे भव में [सिज्झइ] सिद्ध होते हैं [बुज्झइ] बुद्ध होते हैं

[मुच्चइ] मुक्त होते हैं [परिनिव्वाइ] परिनिर्वाण को प्राप्त करते हैं [सव्वदुक्खाणमंतं-करेइ] और सब दुःखों का अंत करते हैं। [सत्तट्ठभवग्गहणाइं पुण नाइक्कमइ] सात-आठ भवों का उल्लंघन तो करते ही नहीं है और [सासओ सिद्धो हवइ] शाश्वत सिद्ध हो जाते हैं ॥४३॥

आयारो कप्पो समत्तो

नयसारादि २७ भव कथा

(मालिनीछंद)

मंगलाचरणम्

भवजलहिनिमज्जज्जीवरक्खेगदक्खं ।
वयणहिमकरंसुक्खित्तहिद्धंतकक्खं ॥
सुरमणुयमुणीहिं निच्चवंदिज्जमाणं ।

सयलगुणनिहाणं णोमिहं वद्धमाणं॥१॥

शब्दार्थ—[भवजलहि] संसार–समुद्र में [निमज्ज] डूबते हुए [ज्जीवरक्खेगदक्खं] जीवों की रक्षा करने में असाधारण रूप से समर्थ [वयणहिमकरंसुक्खित्तहिद्धंतकक्खं] अपने मुखरूपी चन्द्रमा से भव्य जीवों के हृदय में रहे हुए अन्धकार को नाश करने-वाले [सुरमणुयमुणीहिं] देव मानव और मुनियों द्वारा [निच्चवंदिज्जमाणं] नित्यवन्द-नीय [सयलगुणनिहाणं] सकल गुणों के निधान [णोमि हं वद्धमाणं] ऐसे श्री वर्द्धमान भगवान को मैं वन्दन करता हूँ ।

( वंशस्थ–वृत्तम् )

समत्थपावाडवियादवानलं ।
विसालमाणंदपलासिकंदलं
तहा समेसिं सुहसंपएधणं ।

समत्थकम्मिंधणचंडपावगं ॥२॥

शब्दार्थ—भगवत्–चरित्र का माहात्म्य [समत्थपावाडवियादवानलं] समस्त पाप रूपी अटवी के लिए दावानल के समान [विसालमाणंदपलासिकंदं] विशाल—अर्थात् उदात्त भावों से परिपूर्ण, आनन्दरूपी वृक्ष के मूल [तहा समेसिं सुहसंपएधणं] समस्त सुखसम्पत्ति की वृद्धि करने वाले (समत्थकम्मिंधणचंडपावगं] समस्त कर्म रूपी इन्धन के लिए अग्नि के समान ॥२॥

अभिट्ठचिंतामणिवप्पपूरगं ।
विमुत्तिमग्गेगमहासहायगं ॥
पगाढमिच्छत्तमहंधनासगं ।
तहा कसायाइमलावहारगं ॥३॥

शब्दार्थ—[अभिट्ठचिंतामणिवप्पपूरगं] चिन्तामणि रत्न की तरह सब मनोवांछित की पूर्ति करनेवाले [विमुत्तिमग्गेगमहासहायगं] विमुक्ति मार्ग के महान् सहायक [पगाढमिच्छत्तमहंधनासगं] प्रगाढ मिथ्यात्वरूपी महान् अन्धकार को नाश करनेवाले [तहा कसायाइमलावहारगं] तथा कषायरूपी मल को दूर करनेवाले ॥३॥

विवड्ढमाणं सुहझाणमंतरे ।
महापहुस्स त्तिसलासुयस्स ॥
महाडवीमज्झउ उत्थियं परं ।
वए चरित्तं णयसारजम्मजं ॥४॥

शब्दार्थ—[विवड्ढमाणं सुहझाणमंतरे] अंतःकरण में प्रशस्त ध्यान की वृद्धि करनेवाले [महापहुस्स त्तिसलासुयस्स] महाप्रभु त्रिशलानन्दन के [महाडवीमज्झउ उत्थियं परं] महा अटवी से प्रारंभ होनेवाले [चरित्तं नयसारजम्मजं] नयसार के भव से प्रारंभ

होनेवाले चरित्र का [वए] वर्णन करता हूं ॥४॥

((दोधकवृत्तम्)

नयसारभवे चरिमो य जिणो।
सुलभीअ जिणोइयतत्तमओ॥
णयसारभवा पभिइं पहियं।
चरियं रययामि तईयमहं ॥५॥

शब्दार्थ—[नयसारभवे चरिमो य जिणो] अन्तिम तीर्थंकर ने नयसार भव में [सुलभीअ जिणोइयतत्तमओ] जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित तत्त्व—सम्यक्त्व की प्राप्ति की थी। अतः [णयसारभवापभिइं पहियं] नयसार के भव से आरंभ करके ही प्रख्यात-प्रसिद्ध [चरियं रययामि तईयमहं] उनके चरित्र की मैं रचना करता हूं ॥५॥

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥
एसो पंचणमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ॥

शब्दार्थ—अरिहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो। और लोक में विद्यमान समस्त साधुओं को नमस्कार हो। [एसो पंचणमुक्कारो] यह पंच नमस्कार [सव्वपावप्पणासणो] समस्त पापों को नाश करनेवाला है। [मंगलाणं च सव्वेसिं] समस्त मंगलों में [पढमं हवइ मंगलं] यह प्रधान मंगल है।

मूलम्-दसासुयक्खंधस्स सत्तमज्झयणे भिक्खूणं दुवालसपडिमा वण्णिया। पडिमासमत्तणंतरं वरिसाकालो समाजाइ, तं जावइउं मुणीहिं निवासजोग्गं

खेत्तं अन्नेसणिज्जं, उचियं खेत्तं पाविय संपुण्णो चाउम्मासिओ वरिसाकालो मुणिजणेहिं तत्थेव जावणिज्जो।

शब्दार्थ—[दसासुयक्खंधस्स] दशाश्रुतस्कन्ध के [सत्तमज्झयणे] सातवें अध्ययन में [भिक्खूणं] भिक्षुओं को [दुवालसपडिमा] द्वादश प्रतिमाओं का [वण्णिया] वर्णन किया गया है। [पडिमासमत्तणंतरं] प्रतिमाओं की समाप्ति के बाद [वरिसाकालो] वर्षाकाल [समाजाइ] आ जाता है। [तं जावइउं] उसे व्यतीत करने के लिये [मुणीहिं] मुनियों को [निवासजोग्गं] निवास योग्य [खेत्तं] क्षेत्र का [अन्नेसणिज्जं] अन्वेषण करना (खोजना) चाहिए। [उचियं] उचित [खेत्तं] क्षेत्र को [पाविय] प्राप्त कर [संपुण्णो चाउम्मासिओ] सम्पूर्ण चातुर्मासिक [वरिसाकालो] वर्षाकाल [मुणिजणेहिं] मुनिजनों को [तत्थेव] वहीं पर [जावणिज्जो] व्यतीत करना चाहिये।

मूलम्—तत्थ वरिसाकाले चाउम्मासियादिवसाओ एगमासवीसइरत्ति-

समणंतरं सुक्कपंचमीए संवच्छरीपव्वो समाराहणिज्जो हवइ। जओ णं सत्तरिराइंदियसमणंतरं वासावासो समत्तिमेइ। तत्थ एगं संवच्छरिपव्वदिणं, तद्दिणाओ पुव्वअव्ववहियाणि सत्तदिणाणि य मिलिऊण अट्ठदिणाणिं, एसो पज्जुसणापव्वो पवुच्चइ।

शब्दार्थ—[तत्थ] वहां [वरिसाकाले] वर्षाकाल में [चाउम्मासियदिवसाओ] चातुर्मास के प्रारंभिक दिन से [एगमासवीसइरत्तिसमणंतरं] एक मास और वीस रात्रि के व्यतीत होने पर [सुक्कपंचमीए] शुक्ल पंचमी के दिन [संवच्छरीपव्वो] संवत्सरी पर्व की [समाराहणिज्जो हवइ] आराधना करनी चाहिये। [जओ णं] उसके बाद [सत्तरिराइंदियसमणंतरं] सत्तर (७०) रात्रि–दिवस के व्यतीत होने पर [वासावासो समत्तिमेइ] वर्षावास समाप्त हो जाता है। [तत्थ एगं संवच्छरीपव्वदिणं] एक दिन संवत्सरी पर्व का [तद्दिणाओ पुव्वअव्ववहियाणि] और उससे अव्यवहित पहले के, [सत्तदिणाणि य

मिलिऊण] सात दिन मिलाकर [अट्ठदिणाणि] आठ दिन होते हैं। [एसो पज्जुसणापव्वो पवुच्चइ] यही पर्युषणापर्व कहलाता ह।

मूलम्—एएसु अट्ठसु पज्जुसणापव्वदिणेसु मुणिणो अंतगडदसंगं वाययंति भगवओ सिरिवद्धमाणसामिस्स चरित्तं च सावयंति इच्चेवं पुव्वेण सत्तमज्झयणेण सह अस्स संबंधो ॥३॥

शब्दार्थ—[एएसु अट्ठसु पज्जुसणापव्वदिणेसु] इस पर्युषणा पर्व के आठ दिनों में [मुणिणो अंतगडदसंगं] मुनि अंतकृद्दशाङ्ग का [वाययंति] वाचन करते हैं और [भगवओ सिरिवद्धमाणसामिस्स] भगवान श्री वर्द्धमानस्वामी का [चरित्तं च सावयंति] चरित्र सुनाते ह। [इच्चेवं] इस प्रकार [पुव्वेण सत्तमज्झयणेण सह अस्स संबंधो] पूर्वोक्त सातवें अध्ययन के साथ इस आठवें अध्ययन का सम्बन्ध है।

मूलम्—इह पज्जुसणाभिहाणे अट्ठमे अज्झयणे समणस्स भगवओ महा-

वीरस्स हत्थुत्तराहिं संजायं चवणाइपंचगं आघवियं पण्णवियं परूवियं दंसियं निदंसियं उवदंसियं। तस्स इमं सुत्तं—

शब्दार्थ—[इह पज्जुसणाभिहाणे] इस पर्युषणा नामक [अट्ठमे अज्झयणे] आठवें अध्ययन में [समणस्स भगवओ महावीरस्स] श्रमण भगवान महावीर के [हत्थुत्तराहिं संजायं] हस्तोत्तरा (उत्तरफाल्गुनी) में हुए [चवणाइपंचगं] च्यवनादि पांचों कल्याण [आघवियं] कथित हैं, [पण्णवियं] प्रज्ञापित हैं [परूवियं] प्ररूपित हैं [दंसियं] दर्शित हैं [निदंसियं] निदर्शित हैं [उवदंसियं] उपदर्शित हैं [तस्स इमं सुत्तं] उसका यह सूत्र है—

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स पंच हत्थुत्तरा होत्था तं जहा—हत्थुत्तराहिं चुए, चइत्ता गब्भं वक्कंते। हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए। हत्थुत्तराहिं जाए। हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगा-

राओ अणगारियं पव्वइए। हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरे णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे। साइणा परिनिव्वुए भगवं जाव भुज्जो भुज्जो उवदंसेइ-त्तिबेमि ॥३॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं] उस काल [तेणं समएणं] उस समय में [समणस्स भगवओ महावीरस्स] श्रमण भगवान महावीर के [पंच हत्थुत्तरा होत्था] पांच कल्याण उत्तराफाल्गुनी में हुए। [तं जहा] वे इस प्रकार हैं-[हत्थुत्तराहिं चुए] हस्तोत्तरा में भगवान देवलोक से चवित हुए और [चइत्ता गब्भं वक्कंते] चवकर के गर्भ में प्रवेश किया। २ [हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए] उत्तराफाल्गुनी में एक गर्भ से दूसरे गर्भ में संहरण हुआ। ३ [हत्थुत्तराहिं जाए] उत्तराफाल्गुनी में जन्मे ४ [हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता] उत्तराफाल्गुनी में मुण्डित होकर [अगाराओ अणगारियं पव्वइए] गृहस्थ से अनगार बने। ५ [हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए] उत्तराफाल्गुनी में अणंत

अणुत्तर निर्व्याघात [निरावरणे] निरावरण–आवरणरहित [कसिणे] सम्पूर्ण [पडिपुण्णे] प्रतिपूर्ण [केवलवरणाणदंसणे] श्रेष्ठ केवलज्ञान और दर्शन [समुप्पण्णे] उत्पन्न हुआ। [साइणा] स्वाति नक्षत्र में [परिनिव्वुए भगवं] भगवान परिनिर्वाण को प्राप्त हुए [जाव भुज्जो भुज्जो उवदंसेइ] यावत् बार बार गौतमस्वामीने यह दिखलाया है। [त्तिबेमि] ऐसा मैं कहता हूँ।

मूलम्–एएणं सुत्तेण भगवओ सिरिवद्धमाणसामिस्स सव्वं णिरवसेसं कसिणं पडिपुण्णं चरित्तं विण्णेयं तं जहा–१ पढमाहिं हत्थुत्तराहिं देवलोगाओ गब्भावासागमणं गब्भपालणाइयं २ बीयाहिं हत्थुत्तराहिं इंदकारियगब्भसंहरणाइयं। ३ तइयाहिं हत्थुत्तराहिं इंदाइकयजम्ममहिमा बालकीलाइयं ४ चउत्थीहिं हत्थुत्तराहिं दिक्खापज्जंतो जीवणवित्तंतो। ५ पंचमाहिं हत्थुत्तराहिं

सव्वसामण्णावित्तिकेवलणाणुप्पत्ति–विहारचरियाइयं 'साइणा परिणिव्वुए' अणेण केवलणाणाणंतरं मोक्खगमणपज्जंतं सव्वं चरित्तं वण्णेयव्वं होइ ॥

शब्दार्थ—[एएणं सुत्तेणं] इस सूत्र से [भगवओ सिरिवद्धमाणसामिस्स] भगवान श्री वर्द्धमान स्वामी का [सव्वं णिरवसेसं कसिणं पडिपुण्णं] समस्त निरवशेष, कृत्स्न–परिपूर्ण [चरित्तं विण्णेयं] चरित्र जान लेना चाहिये। [तं जहा] वह इस प्रकार है– १ [पढमाहिं हत्थुत्तराहिं] प्रथम हस्तोत्तरा-उत्तराफाल्गुनी में [देवलोगाओ गब्भावासागमणं] देवलोक से गर्भावास में आगमन और [गब्भपालणाइयं] गर्भ का पालन पोषण आदि। २ [बीयाहिं हत्थुत्तराहिं] दूसरी हस्तोत्तरा में [इंदकारियगब्भसंहरणाइयं] इन्द्र द्वारा करवाया हुआ गर्भ संहरण आदि ३ [तइयाहिं हत्थुत्तराहिं] तीसरी हस्तोत्तरा में [इंदाइ-कयजम्ममहिमा बालकीलाइयं] इन्द्रकृत जन्ममहोत्सव तथा बालक्रीडा आदि ४ [चउत्थीहिं हत्थुत्तराहिं] चौथी हस्तोत्तरा में [दिक्खापज्जंतो जीवणवित्तंतो] दीक्षा पर्यन्त का

जीवनवृत्तान्त ५ [पंचमाहिं हत्थुत्तराहिं] पांचवीं हस्तोत्तरा में [सव्वसामण्णवित्ति] समस्त दीक्षा पर्याय का वर्णन तथा [केवलणाणुप्पत्ति] केवलज्ञान की उत्पत्ति [विहारचरियाइयं] और विहार चर्या आदि। [साइणा परिणिव्वुए] स्वाति नक्षत्र में मोक्ष में पधारे [अणेण केवलणाणाणंतरं] इससे केवलज्ञान के अनन्तर [मोक्खगमणपज्जंतं सव्वंचरित्तं] मोक्ष गमनतक का समस्त चरित्र [वण्णेयव्वं होइ] वर्णित हो जाता है।

मूलम्-एएण संखेवओ भगवओ सिरिवद्धमाणसामिस्स सव्वं जीवणचरियं वण्णियं, तत्थ भगवं वीरो तित्थयरो त्ति तस्स तित्थयर नाम गोत्तकम्मबंधणनिबंधण—चरित्तचित्तिय—भवभवंतरा—णेगविहकहाऽवि कम्मवेचित्तप्पदंसगत्ताए सद्धाधणाणं सद्धादीणं दुरंतसंसारकंतारंतरमुत्तितीमूणमवस्समंतोमलपक्खालणत्थं सवणगोयरयं उवणेयत्ति णिरवहि—करुणावरुणा—लयस्स

भगवओ संमत्तमुत्ति सोवाणाइ चरित्तावली वित्थरेण णिरूविज्जइ ॥३॥

शब्दार्थ—[एएण संखेवओ] इस पूर्वोक्त कथन से [भगवओ सिरिवद्धमाणसामिस्स] भगवान श्री वर्द्धमान स्वामी के [सव्वं जीवणचरियं वण्णियं] समस्त जीवनचरित्र का संक्षेप से वर्णन हो जाता है [तत्थ भगवं वीरो तित्थयरोत्ति] भगवान महावीर तीर्थंकर थे [तत्थ तित्थयरनामगोत्तकम्म]—भगवानने तीर्थंकर नाम गोत्र—कर्म का [वंधन निबंधनचरित्तचित्तिय] बन्ध किस कारण से किया और किस प्रकार [भवभवंतराणेगविहकहाऽवि] भव भवान्तर में भ्रमण किया इस वृत्तांत से सम्बंधित [कम्मवेचित्तप्पदंसगत्ताए] अनेक प्रकार की कथाएँ कर्म की विचित्रता को प्रदर्शित करनेवाली है। अतः [दुरंतसंसारकंतारंतरमुत्तितीसूण] कठिनाई से पार पाने योग्य संसार रूपी कान्तार-अटवी से पार पाने की इच्छा रखनेवाले [सद्धाधणाणं सद्धादीणं] श्रद्धा ही धन है ऐसे श्रावक आदि को [अवस्सं अंतोमलपक्खालणट्ठं] अवश्य ही आन्तरिक मल के

प्रक्षालन के लिए [सवणगोयरयं] उन कथाओं का श्रवण [उवणेयत्ति] करना चाहिये। इसी कारण से [णिरवहि–करुणावरुणालयस्स] असीम करुणा के सागर [भगवओ संमत्त-मुत्तिसोवाणाइ] भगवान के सम्यक्त्व प्राप्ति का तथा मुक्ति के सोपान पर आरूढ होने का [चरित्तावली वित्थरेण निरूविज्जइ] वृत्तान्त–चरित्र विस्तार से निरूपण किया जाता है ॥३॥

मूलम्–अत्थि णं मज्झजंबूदीवे दीवे नररयणगेहपच्छिममहाविदेहदिप्पम्मि महावप्पम्मि नामं विजए भूविजयवेजयंती जयंतीनामं नयरी, तत्थ णं पबलभुयबलखवियविपक्खकक्खो जोहणदक्खो णियवीरियरक्खो णमियदेवो सिरिवासुदेवोव्व महाविहवो अन्नत्थभिहाणो सत्तुमद्दणो भूधणो भुवं सासइ। तप्परिपालिज्जमाणे पुहवीपइट्ठाभिहाणे पट्टणे सामिसेवासारो णयसारो णामं कोट्टवालो णिवसइ। सो य परावगारपरदोसाओ विसाओ विव परम्मुहो, दप्पणोव्व परगुण-

गहणुम्मुहो विवेगिजणवडिंसो, हंसो नीरेहिंतो खीरमिव विविच्चिय दोसेहिंतो गुणं चिणीअ। सो य एगया कयाइ वणावणविहीए नरनाहनिदेसमक्केसं सिरंसि धारेमाणो सावहाणो पहियवलं संबलं गहिय लसंतसहेज्जुक्करिसेहिं कइवएहिं पुरिसेहिं बलियबलिवद्दजोडियरहमारुहिय गहणवणमोगाहीअ ॥४॥

शब्दार्थ–[अत्थि णं मज्झजंबुदीवे दीवे] मध्य जम्बूद्वीप नामक द्वीप में [नररयण-गेह] नररत्नों के घर समान [पच्छिममहाविदेहदिप्पम्मि] पश्चिम महाविदेह क्षेत्र को प्रकाशित करनेवाले [महावप्पम्मि नामं विजए] महावप्रनामक विजय में [भूविजयवेज-यंती] इस पृथ्वी की विजय वैजयन्ती–जयपताका के समान [जयंती नामं णयरी] जयन्ती नामक नगरी है। [तत्थ णं] उस नगरी में [पबलभुयबलखवियविपक्खकक्खो] प्रबल बाहुबल से शत्रुओं के समूह को नष्ट करनेवाला [जोहणदक्खो] शूरों में श्रेष्ठ [णियवीरियरक्खो] अपने ही पराक्रम से रक्षित, [णमियदेवो] विरोधी राजाओं को नम्र

बनानेवाला [सिरिवासुदेवोव्व] श्री वासुदेव के समान [महाविहवो] महान वैभववाला [अन्नत्थभिहाणो] यथार्थ नामवाला [सत्तुमद्दणो भूधणो भुवं सासेइ] शत्रुमर्दन नामका राजा पृथ्वी पर शासन करता था। [तप्परिपालिज्जमाणे] उस राजा द्वारा शासित [पुहवीपइट्ठाभिहाणे पट्टणे] पृथ्वीप्रतिष्ठित नामक नगर में [सामिसेवासारो] स्वामी की सेवा में तत्पर [णयसारो णामं कोट्टवालो] नयसार नामका कोटवाल [णिवसइ] रहता था। [सो य] वह [परावगारपरदोसाओ विसाओ विव परम्मुहो] विष की तरह दूसरे के अपकार और दोष दर्शन से विमुख रहता था। [दप्पणोव्व परगुणगहणुम्मुहो] दर्पण जिस प्रकार प्रतिबिम्ब को ग्रहण करता है उसी तरह दूसरे के गुणों को ग्रहण करने में उन्मुख था। [विवेगिजणवडिंसो] विवेकी जनों में उत्तम [हंसो नीरेहिंतो खीरमिव विविच्चिय दोसेहिंतो गुणं चिणीअ] जैसे हंस नीर से क्षीर को पृथक् करलेता है उसी प्रकार वह भी दोषों में से भी गुण ग्रहण करता था।

[सो य एगया कयाइ] वह नयसार एक बार किसी समय [वणावणविहीए नरनाह निद्देसमक्केसं] राजा के आदेशको बिना किसी क्लेश के [सिरंसि धारेमाणे] शिरोधार्य करके [सावहाणो] वनभूमि की रक्षा करने के लिये सावधान हो [पहियबलं संबलं गहिय] पथिकों का सहायक पाथेय [भाता] लेकर [लसंतसहेज्जुक्करिसेहिं कइवएहिं पुरिसेहिं] तथा सहायता करनेवाले कुछ पुरुषों को साथ लेकर [बलियबलिवद्दजोडियरहमारुहिय] बलवान् बैल जिस में जुते हुए थे ऐसे रथ पर सवार हो कर [गहणवणमोगाहीअ] गहन वन में जा पहुँचा ॥४॥

मूलम्–तए णं सघणं वणं निरिक्खमाणस्स बुभुक्खमाणस्स तस्स मज्झण्हो आसी तया पचंडमत्तंडो पज्जलियानलोव्व महया तेएण तवइ, तंसि समयंसि सो वणगहणभूयले इओ–तओ परिभमंतो भग्गवसाओ तवं तवंतं, तवपहाहिं अनलं व जलंतं, जलहिमिव गंभीरं, पुक्खरपलासमिव निल्लेवं, सोममिव

सोम्मलेस्सं सव्वंसहमिव सव्वसहं, भक्खरमिव तवतेयसा भासमाणं, झाणानलेणं कम्मिंधणं दहमाणं, कच्छवमिव गुत्तिंदियं, फलिहरयणमिव विसुद्धं, णिरासवं, निम्मलं मंडवायारसुसीयलतरुतले विरायमाणं, सुहज्झाणमग्गं, मुणिजणग्गं, जिणवरधम्मसोवत्थियं सदोरगमुहवत्थियं चंदो चंदियमिव मुहे धरंतं, कम्मचयं रित्तं करंतं, सारदिंदुपसन्नवयणधवलवसणं णाणविहाणं, अकिंचणं कंचण मुणिं दंसीअ ॥५॥

शब्दार्थ—[तए णं] उसके बाद [सघणं वणं] सघन वन का [निरिक्खमाणस्स] निरीक्षण करते हुए [बुभुक्खमाणस्स तस्स मज्झण्हो आसी] दो पहर हो गया। नयसार को भूख लग रही थी। [तया पचंडमत्तंडो पज्जलियानलोव्व महया तेएणं तवइ] प्रज्वलित आग की तरह प्रचण्ड सूर्य तेज से तप रहा था। [तंसि समयंसि] ऐसे समय

में [सो वणगहणभूयले इओ-तओ परिभमंतो] वनभूमि में इधर उधर परिभ्रमण करते हुए [भग्गवसाओ] भाग्यवशात् नयसार को एक मुनि दिखाइ दिये, वे मुनि कैसे थे वह बताते हैं-[तवं तवंतं] वे तप तप रहे थे [तवपहाहि अनलं व जलंतं] तपस्या की दीप्ति से अग्नि के समान देदीप्यमान थे। [जलहिमिव गंभीरं] समुद्र की तरह गम्भीर थे। [पुक्खरपलासमिव निल्लेवं] पुष्कर पलाश की तरह निर्लेप थे [सोममिव सोम्मलेसं] चन्द्रमा की तरह सौम्यकांतिवाले थे। [सव्वंसहमिव सव्वसहं] पृथ्वी की तरह सहनशील थे। [भक्खरमिव तवतेयसा भासमाणं] सूर्य के समान तप के तेज से भासमान थे। [झाणानलेण कम्मिधणं दहमाणं] ध्यानरूपी अग्नि से कर्म-इंधन को जला रहे थे। [कच्छवमिव गुत्तिंदियं] कछुवे की तरह इन्द्रियों का गोपन करनेवाले थे। [फलिहरयणमिव विसुद्धं] स्फटिक रत्न के समान विशुद्ध थे। [निरासवं] आश्रवरहित थे। [निम्मलं] मलरहित थे। [मंडवायारसुसीयलतरुतले विरायमाणं] मण्डप के आकार

के शीतल वृक्ष के नीचे विराजमान थे। [सुहज्झाणमग्गं] शुभ ध्यान में मग्न थे। [मुणिजणग्गं] मुनिजनों में उत्तम थे। [जिणवरधम्मसोवत्थियं] जिनधर्म को सूचित करनेवाली [सदोरगमुहवत्थियं] डोरासहितमुखवस्त्रिका को [चंदो चंदियमिव मुहे धरंतं] मुख पर इस प्रकार धारण किये हुए थे जैसे चन्द्रमा चान्दनी को धारण करता है। [कम्मचयं रित्तं करंतं] आत्मा से कर्मसंचय को दूर करने में तत्पर [सारदिंदुपसन्नवयणं] एवं शरद् चन्द्रमा के समान प्रसन्नमुख थे [धवलवसनं] शुभ्रवस्त्रधारी [णाणनिहाणं] ज्ञान से निधान होते हुए भी [अकिंचणं कंचण मुणिं दंसीअ] अपरिग्रही थे ॥५॥

मूलम्—तए णं सो उदारो नयसारो भूनत्थमत्थयाइपंचंगो णायवंदणाविहि-पसंगो गुणगणधरं तं मुणिवरं उदारभावेण वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तद्दंसणाणंदतुंदिलो आगमेसिभद्दंकुरकंदिलो सयं जम्मजीवियं सहलं मण्णमाणो परमभत्तिभावुल्लसियमणसा तं पज्जुवासमाणो तत्थ अदूरसामंते समुवविट्ठो॥६॥

शब्दार्थ—[तए णं] उस प्रकार के मुनिराज को देखने के बाद [उदारो णायवंदनविहिपसंगो] उदार वन्दना की विधि को जाननेवाले [भूनत्थमत्थयाइपंचंगो] तथा जिसने अपने पांचों अंगों को पृथ्वी पर टिका दिया है ऐसे [नयसारो] नयसारने [गुणगणधरं] गुणसमूह को धारण करनेवाले [तं मुणिवरं] उस मुनिवर को [उदारभावेणं] उदार भाव से [वंदइ] वन्दना की [नमंसइ] नमस्कार किया [वंदित्ता नमंसित्ता] वन्दना नमस्कार करके [आगमेसिभद्दंकुरकंदिलो] भावी भव में होनेवाले परमकल्याण के अंकुर के कन्दवाला वह [तद्दंसणाणंदतुंदिलो] उनके दर्शन के आनन्द से पुष्ट हो गया [सयं जम्मजीवियं सहलं मण्णमाणो] अपने जन्म और जीवन को सफल मानता हुआ [परमभत्तिभावुल्लसियमणसा] परमभक्ति भाव के कारण उल्लासयुक्त चित्तवाला [तं पज्जुवासमाणो] वह उनकी—मुनिराज की पर्युपासना करता हुआ [तत्थ अदूरसामंते समुवविट्ठो] वहां न बहुत दूर न बहुत पास—उचित स्थान पर बैठ गया ॥६॥

मूलम्—तए णं तं छज्जीवनिकायनाहो तवसंजमसनाहो मुणिणाहो अपुव्ववच्छल्लेणं महुमज्जियमुद्दियामाहुरिमहरंतीए वाणीए पुग्गलपरियट्टं दसोयाहरणाइयं च दरिसंतो नरजम्मस्स दुल्लहत्तं देवगुरुधम्मसरूवं च विविहप्पयारेण उवएसीअ। साहुणो पगईए चेव परुद्धारपरायणा हवंति, तप्पभावेण तस्स हिययम्मि चिरकालट्ठियप्पयारो मिच्छत्तगाढंधयारो मूरोदयाओ लोयंधयारो विव सत्तरं पणट्ठो। तए णं उदारतरभावधारो सो नयसारो महव्वयसणाहं तं मुणिणाहं विविहवक्कवइगरेण थुणिय सट्ठाणं गओ। तओ सो नयसारो भोयणवेलाए गोयरियट्ठं विणिग्गयं तं मुणिवरं विण्णवेइ—भो परोवयारधुरंधरा मुणिवरा! मम वयणं ओहारिय सयचरणकमलरयपायाओ ममंगणं पवित्तं करेह॥७॥

शब्दार्थ—[तए णं] उसके बाद [छज्जीवनिकायनाहो] षड्जीवनिकायों के नाथ

[तवसंजमसनाहो] तप और संयम से सहित [मुणिणाहो] मुनिनाथ ने [अपुव्ववच्छल्लेणं] अपूर्व वात्सल्य भाव से [महुमज्जियमुद्दियामाहुरिमहरंतीए वाणीए] मधुमार्जित–शहद-मिश्रित द्राक्षा कीमधुरता से भी अधिक मधुरवाणी से [पुग्गलपरियट्टं] पुद्‌गलपरावर्तन के स्वरूप को [दसोयाहरणाइयं च] और मानव जन्म की दुर्लभता को बतानेवाले दस दृष्टान्तों से [दरिसंतो नरजम्मस्स दुल्लहत्तं] नरजन्म की दुर्लभता को दिखाते हुए [देवगुरुधम्मसरूवं च] देव गुरु और धर्म के स्वरूप का [विविहप्पयारेण उवएसीअ] विविध प्रकार से उपदेश किया। [साहुणो पगईए चेव परुद्धारपरायणा हवंति] साधुजन स्वभाव से ही पर के उद्धार में तत्पर होते हैं [तप्पभावेण तस्स हिययम्मि चिरकालट्ठियप्पयारो] अतएव उनके उपदेश के प्रभाव से नयसार के हृदय में चिरकाल से रहा हुआ [मिच्छत्तगाढंधयारो] मिथ्यात्वरूपी सघन अंधकार [सूरोदयाओ लोयंधयारो त्रिव सत्तरं पणट्ठो] शीघ्र नष्ट हो गया, जैसे सूर्य के उदय से लोक का अंधकार नष्ट हो जाता है [तए णं

उयारतरभावधारो सो नयसारो] तदनंतर उदारतर परिणामों को धारण करनेवाला वह नयसार [महव्वयसनाहं तं मुणिणाहं] महाव्रतों से सहित उन मुनिराज की [विविहवक्कवइगरेण] विविध प्रकार की वाक्यावली से [थुणिय] स्तुति करके [सट्ठाणं गओ] अपने स्थान पर चला गया [तओ सो नयसारो भोयणवेलाए] उसके बाद उस नयसारने भोजन के समय [गोयरियट्ठं विनिग्गयं] गोचरी के लिए निकले हुए [तं मुणिवरं विन्नवेइ] उन मुनिराज से प्रार्थना की कि [भो परोवयारधुरंधरा मुणिवरा] हे परोपकार की धुरा को धारण करनेवाले मुनिवर! [मम वयणं ओहारिय] मेरे वचन पर ध्यान देकर [सयचरणकमलरयपायाओ] अपने चरण कमलों की धूल से [ममंगणं पवित्तं करेह] मेरे अंगन को पवित्र कीजिये॥७॥

मूलम्–तए णं भत्तिभावसमाकिट्ठो मुनिवरिट्ठो उक्किट्ठभावसारस्स नयसारस्स आवासमणुपविट्ठो। तए णं पसन्नहिययो सविनयो नयसारो एवं वयासी–

भदंत ! जहा सुतरू पुप्फं विणेव फलिज्जा, मरुम्मि अणब्भा जलवुट्ठी दीणसयणे सुवण्णवुट्ठी भवेज्जा, तहा अज्ज मज्झंगणे भगवओ चरणकमलरयपाओ जाओ। भगवओ दंसणेण अहं पीऊसपाणेण विव पीणिओऽम्हि। एवं वियत्तभत्तिधारो नयसारो मुनिवरं थुइय फासुएसणिज्जेहिं विउलेहिं असणपाणखाइमसाइमेहिं चउव्विहेहिं आहारेहिं पडिलाभेइ। तए णं सो नयसारो वणाओ नयरं गंतुमणं तं मुणिमणुगमिय मग्गं दंसिय वंदीअ। तए णं सो मुणिदंसणामियपिवासो पत्तसम्मत्तसारो नयसारो एवं वयासी—हे मुणिणाहा!

गंतव्वं जइ णाम निच्छयमहो! गंतासि केयं तरा,
दुत्ताणेव पयाणि चिट्ठउ भवं पासामि जावं मुहं।
संसारे घडियापणालविगलव्वारोवमे जीविए,

को जाणाइ पुणो तए सह ममं होज्जा न वा संगमो ॥१॥

तओ जाव मुणिवरो लोयणपहपहिओ आसी ताव नयसारो अणिमेसदिट्ठीए तं विलोगमाणो तत्थेव ठिओ। मुणिणाहे दिट्ठिपहाईए तओ नियट्टिय नयसारो विण्णायसंसारासारो धणजोव्वणजीवणाणि अंजलिजलाणि विव अत्थिराणि चंचलाणि पडिक्खणं खीयमाणाणि ओहारिय, सयलसुहनिहाणं सम्मत्तप्पहाणं मुणिनाहवयणसंदिट्ठं विसिट्ठं जिणोवइट्ठं धम्मं हिययम्मि धारेमाणो सहयरे अवि पडिबोहिय सयं ठाणं पडिगमीअ ॥८॥

शब्दार्थ—[तए णं] तब [भत्तिभावसमाकिट्ठो] भक्तिभाव से खिंचे हुए [मुणिवरिट्ठो] वह मुनिश्रेष्ठ [उक्किट्ठभावसारस्स] उत्कृष्ट भाववाले [नयसारस्स] नयसार के [आवासमणुपविट्ठो] निवासस्थान में प्रविष्ट हुए [तए णं] तब [पसन्नहियया] प्रसन्नचित्त [सवि-

णयो नयसारो] और विनयी नयसारने [एवं वयासी] ऐसा कहा [भदंत !] भगवन् ! [जहा सुतरू] जैसे कल्पवृक्ष [पुप्फविणेव फलिज्जा] फूल आये विना अकस्मात् फल हो जाय [मरुम्मि] मरुभूमि में [अनब्भा जलवुट्ठी] मेघों के बिना ही जलवृष्टि हो जाय [दीणसयणे] और गरीब के घरमें [सुवण्णवुट्ठी य भवेज्जा] सोना बरस पडे [तहा] उसी प्रकार [अज्ज] आज [मज्झंगणे] मेरे आंगन में [भगवओ] आपके [चरणकमल-रयपाओ जाओ] चरण कमलों की रज गिरी है। [भगवओ] आपके [दंसणेण अहं] दर्शन से मैं [पीऊसपाणेण विव] अमृतपान की तरह [पीणिओऽम्हि] प्रसन्न हूँ।

[एवं] इस प्रकार [वियत्तभत्तिधारो] प्रकट भक्ति को धारण करनेवाले [नयसारो] नयसारने [मुणिवर] मुनिवर की [थुइय] स्तुति करके [फासुएसणिज्जेहिं] उन्हें प्रासुक एवं एषणीय [विउलेहिं] विपुल [असणपाणखाइमसाइमेहिं] अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य रूप [चउव्विहेहिं आहारेहिं] चार प्रकार के आहार से [पडिलाभेइ] प्रतिलाभित किया

[तए णं] तदनंतर [सो नयसारो] वह नयसार [वणाओ] वन से [नयरं गंतुमणं] नगर की ओर जाने की इच्छा से [तं मुणिमणुगमिय] आगे चलनेवाले मुनि के पीछे पीछे [मग्गं दंसिय] चलते हुए वह मुनि को रास्ता बताकर [वंदीअ] वन्दना की। [तए णं] उसके बाद [सो मुणिदंसणामियपिवासो] वह मुनिदर्शनरूप अमृत का पिपासु [पत्त-समत्तसारो] एवं सम्यक्त्व का सार प्राप्त करनेवाले [नयसारो एवं वयासी] नयसारने ऐसा कहा–हे मुनिनाथ !

[गंतव्वं जइ नाम निच्छियमहो] यदि जाना निश्चित ही कर लिया है तो [गंतासि] जायेंगे ही [केयंतरा] पर जल्दी क्या है ? [दुत्ताणेव पयाणि चिट्ठउ भवं] दो तीन कदम–अर्थात् थोडी देर आप खडे रहिये ताकि [पासामि जाव मुहं] मैं आपका मुख देखूँ [संसारे घडियापणालविगलव्वारोवमे जीविए] संसार में जीवन अरहट से बहनेवाले पानी के समान चंचल है अतः [को जाणइ ?] कौन जाने ? [पुणो तए सह ममं संगमो

होज्जा न वा] आपका पुनः समागम होगा या नहीं।

[तओ जाव मुणिवरो लोयणपहपहिओ आसी] जब तक विहार करते हुए मुनिराज आंखों से दिखाइ देते रहें [ताव नयसारो] तब तक नयसार उन्हें [अणिमेसदिट्ठीए तं विलोयमाणो] अनिमेष दृष्टि से देखता हुआ [तत्थेव ठिओ] वहीं खडा रहा। [मुणिणाहे दिट्ठिपहाईए] मुनिनाथ के दृष्टि से अदृष्ट होने पर वह [तओ नियट्टिअ] पीछे लौटा। [नयसारो विण्णायसंसारासारो] नयसारने संसार के असारस्वरूप को समझ लिया था। [धनजोव्वणजीवणाणि] तथा धन यौवन तथा जीवन को [अंजलिजलाणि विव अत्थिराणि] अंजलि में लिये जल के समान अस्थिर तथा [चंचलाणि पडिक्खणं खीयमाणानि ओहारिय] चंचल तथा प्रतिक्षण क्षीयमान जानकर [सयलसुहनिहाणं समत्तप्पहाणं] सकल सुखों के निधान प्रधान सम्यक्त्व को [मुणिणाहवयणसंदिट्ठं विसिट्ठं] तथा मुनिराजद्वारा उपदिष्ट, विशिष्ट [जिणोवइट्ठं धम्मं हिययम्मि धारेमाणो] जिनोपदिष्ट धर्म को हृदय में

धारण करता हुआ [सहयरे अवि पडिबोहिय सयं ठाणं पडिगमीअ] अपने साथियों को भी प्रतिबोध देता हुआ अपने स्थान की ओर चला गया ॥८॥

मूलम्--तए णं सो नयसारो गएसु कइपएसु वरिसेसु विसुद्धज्झाणजल-विसोहियदुब्भावमलो सब्भावभावियप्पो मुणिकप्पो कालमासे कालं किच्चा उक्किट्ठभावभरियचेयसा मुणिणाहविसुद्धाहारपाणप्पदाणप्पभावेण बीए भवे सोहम्मे कप्पे पलिओवमट्ठिइयदेवत्ताए उववन्नो ॥९॥

शब्दार्थ—[तए णं] उसके बाद [सो नयसारो] वह नयसार [कइपएसु वरिसेसु गएसु] कतिपय वर्षों के बीत जाने पर [विसुद्धज्झाणजलविसोहियदुब्भावमलो] विशुद्ध ध्यान रूपी जल से दुर्भावरूपी मल को धो डालनेवाला [सब्भावभावियप्पो] सद्भावनाओं से भावित आत्मावाला [मुणिकप्पो] तथा साधु की तरह जीवन बितानेवाला [सो नयसारो] वह नयसार [कालमासे कालं किच्चा] कालके अवसर में काल करके [उक्कि-

नयसारस्य मरणानन्तरं सौधर्मकल्पे देवत्वेनोत्पत्तिः

ट्ठभावभरियचेयसा] उत्कृष्ट भावना से परिपूर्ण चित्त से [मुणिणाहविसुद्धाहारपाणप्प-दाणप्पभावेण] मुनिराज को विशुद्ध आहारपानी के दान के प्रभाव से [बीए भवे] द्वितीय भव में [सोहम्मे कप्पे] सौधर्म कल्प में [पलिओवमट्ठिइय] पल्योपम की स्थिति-वाले [देवत्ताए उववन्नो] देव के रूप में उत्पन्न हुआ ॥९॥

मूलम्—तए णं सो नयसारजीवो सोहम्माओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं चयं चइत्ता तइए भवे विणीयाए णयरीए आइतित्थ-यरस्स उसभदेवपहुस्स नत्तुओ भरहचक्कवट्टिस्स पुत्तो जाओ। अम्मापिऊहिं तस्स मरीइत्ति नामं कयं। सो य उम्मुक्कबालभावो जोव्वणगमणुप्पत्तो उसभ-पहुस्स मोहसंदोहमयप्पमायमज्जुम्मायुम्मूलणवयणामयरसं सवणपुडेहिं आवि-ऊण संजायसंवेगनिव्वेओ विवेगालोगालोगियमोक्खपहो असारसंसारपरिब्भ-मणानिवट्टणाइ दक्खं दिक्खं गहिअ संजममग्गे विहरइ ॥१०॥

तृतीयभवे नयसार-जीवस्य विनीता-नगर्यां मरीचित्वेन उत्पत्तिः

शब्दार्थ—[तए णं] उसके बाद [नयसारजीवो] नयसार का जीव [सोहम्माओ देवलोगाओ] सौधर्म देवलोक से [आउक्खएणं] आयु का क्षय करके, [भवक्खएणं] भव का क्षय करके, [ठिइक्खएणं] स्थिति का क्षय करके [चयं चइत्ता] देवशरीर को त्याग करके [तइए भवे] तीसरे भव में [विणीयाए नयरीए] विनीता नामक नगरी में [आइतित्थयरस्स उसभदेवपहुस्स] प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव प्रभुका [नत्तुओ] पौत्र [भरहचक्कवट्टिस्स पुत्तो जाओ] और भरतचक्रवर्ती का पुत्र हुआ [अम्मापिऊहिं तस्स मरीइत्ति नामं कयं] मातापिताने उसका नाम मरिची रक्खा [सो य उम्मुक्कबाल-भावो] वह बाल्यावस्था का अतिक्रमण करके [जोव्वणगमणुप्पत्तो] युवावस्था को प्राप्त हुआ [उसभपहुस्स मोहसंदोहमयप्पमायमज्जुम्मायुम्मूलणवयणामयरसं] भगवान ऋषभदेव के वचनामृतरूपरस का जो मोह समूह, मद एवं प्रमादरूपी मदिरा के प्रभाव को नष्ट करनेवाला है। [सवणपुडेहिं आविऊण] अपने श्रोत्रपुटो—कानों से पान करके

तृतीयभवे नयसार-जीवस्य विनीता-नगर्यां मरीचित्वेन उत्पत्तिः

[संजायसंवेगनिव्वेओ] संवेग और निर्वेद से युक्त हो गया। [विवेगालोगालोगिय-मोक्खपहो] उसने अपने विवेकरूपी आलोक (प्रकाश) से मोक्ष मार्ग को देख लिया [असारसंसारपरिब्भमणनिवट्टणाइद्क्खं] अतएव वह असार संसार में परिभ्रमण का निरोध करने में समर्थ ऐसी [दिक्खं गहिय संजममग्गे विहरइ] दीक्षा को ग्रहण करके संयममार्ग में विचरने लगा ॥१०॥

मूलम्—एगया संजममग्गे विहरमाणो सो असुहकम्मोदएण सीउण्हाइ-परीसहेहि पराजिओ संजमे सीयमाणो संजमं चइऊण तिदंडी तावसो जाओ। इमो य पाणितलगयं चिंतामणिरयणं परिच्चज्ज कायं गहीअ, मुत्ताहारमव-हाय गुंजाहारं धरीअ, सुरतरुमवहाय करीरं सेवीअ, हत्थिं विक्कियगद्दभं किणीअ, णंदणवणमवहेलिय एरंडवणमासाईअ। किं बहुणा? इमो भवब्भमणोवायं अन्नेसीअ। सच्चं, अण्णायवत्थुमाहप्पो जणो करयलगयमुत्तमं वत्थुं तणं विव

तिरक्करेइ एवं सो चारित्तरयणमवहाय तिदंडित्तं गहीअ। तहवि सो हिययट्ठिय-जिणोवइट्ठधम्मसंकारो चारित्तपासायखंतिमुत्तिप्पभिइसोवाणाओ खलिओवि उसभदेवगुणग्गामगाणरस्सिमवलंबमाणो नो सव्वहा मिच्छत्तभूयलपएसे पडिओ। जओ उच्छलंतदयामयधारो सो भवियजणे जिणोवइट्ठं चरित्तधम्मं मुहंमुहं, उवएसिय पहुसमीवे पव्वज्जट्ठं पेसेइ। सच्चं जणाणं हिययओ पुव्व-संकारो किमियरागोव्व पाएण न नियट्टइ॥११॥

शब्दार्थ—[एगया] किसी समय [संजममग्गे विहरमाणो] संयम मार्ग में विचरता हुआ [सो असुहकम्मोदएण] वह मरीचि अशुभ कर्मोदय से [सीउण्हाइपरीसहेहिं] शीत-उष्ण आदि परीषहों से [पराजिओ] पराजित हो कर [संजमे सीयमाणो] संयम से घब-राकर [संजमं चइऊण] संयम का त्याग करके [तिदण्डी तावसो जाओ] त्रिदण्डी

तापस हो गया। [इमो य पाणितलगयं] उसने हथेली में आये [चिंतामणिरयणं परिच्चज्ज] चिन्तामणिरत्न को त्याग कर [कायं गहीअ] काच ग्रहण किया। [मुक्ताहारमवहाय] मुक्ताहार को छोडकर [गुंजाहारं धरीअ] गुंजा—चिरमियों के हार को अंगीकार किया [सुरतरुमवहायकरीरं सेवीअ] कल्पवृक्ष को छोडकर करीर का सेवन किया। [हत्थिं विक्किय गद्दभं किणीय] हाथी को बेचकर गदहा खरीदा [नंदणवणमवहेलिय एरंडवणमासाईअ] और नन्दनवन की अवहेलना करके एरण्डवन को प्राप्त किया। [किं बहुणा?] अधिक क्या कहा जाय, [इमो भवब्भमणोवायं अन्नेसीअ] उसने भवभ्रमण का उपाय खोज-निकाला [सच्चं] सच है, [अण्णायवत्थुमाहप्पो जणो करयलगयमुत्तमं वत्थुं] जो जिस वस्तु की महत्ता को नहीं जानता, वह हथेली में आई हुई उस उत्तम वस्तु को भी [तणं विव तिरक्करेइ] तृण की तरह त्याग देता है। [एवं सो चारित्तरयणमवहाय] इस प्रकार उसने चारित्ररत्न को त्याग करके [तिदंडित्तं गहीअ] त्रिदण्डीपनको स्वीकार किया।

[तहवि] तथापि [सो] वह [हिययट्ठियजिणोवइट्ठधम्मसंकारो] उसके हृदय में तीर्थंकर द्वारा उपदिष्ट धर्म के संस्कार थे [चारित्तपासायखंतिमुत्तिप्पभिइसोवाणाओ खलिओवि] वह चारित्ररूपी महल की क्षमा, मुक्ति (निर्लोभता) आदि सोपानों से स्खलित हो चुका था [उसभदेवगुणग्गामगाणरस्सिमवलंबमाणो] फिर भी ऋषभदेव के गुणगण के गान की रस्सी का सहारा ले रहा था। क्योंकि वह [नो सव्वहा मिच्छत्त भूयलपएसे पडिओ] सर्वथा मिथ्यात्व के धरातल पर नहीं पहुँचा था। [जओ उच्छलंत-दयामयधारो] उसके हृदय से अनुकम्पारूपी अमृत की धारा उछल रही थी। [सो भवियजणे] वह भव्यजनों को [जिणोवइट्ठं चरित्तधम्मं] जिनप्ररूपित चारित्र धर्म का [मुहुंमुहुं उवएसिय] बार बार उपदेश देकर [पहुसमीवे पव्वजाट्ठं पेसेइ] प्रव्रज्या के लिए भगवान के पास भेजता था। [सच्चं] सच है, [जणाणं हिययओ पुव्वसंकारो] प्रायः मनुष्यों के हृदय से पूर्व का संस्कार [किमियरागोव्व पाएण न नियट्टइ] कृमिका राग की तरह दूर नहीं होता ॥११॥

मूलम्-तए णं एगया कयाइं जगसंतावकलावनिकंदणो नाहिणंदनो पहू विणीयाए नयरीए समोसरिओ। तत्थ समोसरणे विरायमाणो उसभजिणो देवा-सुरतिरियमणुयपरिसाए सयसयभासापरिणामिणीए गिराए धम्मं कहेइ। धम्म-देसणासमणंतरं भगवं पज्जुवासमाणो भरहचक्कवट्टी तं पुच्छइ-भदंत! वट्टइ कोवि देवाणुप्पियाणं समोसरणे एयारिसो जीवो जो अणागयकाले बलदेवो वासुदेवो चक्कवट्टी तित्थयरो वा भविस्सइत्ति।

तओ भयवं एवं वयासी-भरहा! नत्थि एत्थ समोसरणे एयारिसो कोवि जीवो। समोसरणाओ बहिं तुज्झ पुत्तो तिदंडिवेसधारी मरीई चिट्ठइ। इमो कालक्कमेण एत्थ भरहे पोयणपुरे तिविट्ठू नामं पढमो वासुदेवो, अवरविदेहे मूयाए नयरीए पियमित्तनामे चक्कवट्टी, एत्थ भरहखित्ते महावीरनामो चरिमो

तित्थयरो य भविस्सइ। एवं सोच्चा भरहचक्कवट्टी बहिट्ठियं मरीइमुवागमिय एव वयासी–भो तिदंडीमरीई! तुज्झ एरिसं वेसं वंदिउं मे न कप्पइ। तुवं पुण अणागयकाले इमाए ओसप्पिणीए एयस्सिं भरहे वासे पोयणपुरे तिविट्ठू नाम पढमो वासुदेवो, अवरविदेहे मूयाए नयरीए पियमित्तनामे चक्कवट्टी, एत्थ भरहे महावीरनामे अंतिमतित्थयरो य भविस्ससि। अओ तित्थयरत्तणेण भाविणं तुमं वंदामि। नियपिडणो भरहचक्किस्स एवं वयणसवणेणं मरीइं पावभारो कारो कुलमओ आविसीय। कुलाइकडो मओ समयमासाइय सज्जो विहङ्गमो नीड-मिव जणमाविसइत्ति मरीइ तक्खणे अवारसंसारकंतारपरिब्भमणकारगं सयल-सुहतरुमूलुम्मूलगं माणहालाहलं पिबीअ। तए णं सो हरिसवसविसप्पमाणहि-यओ नच्चंतो एवं वयासी–अहो! केरिसं मज्झ उत्तमं कुलं, जंसि महिड्ढिएहिं

महज्जुइएहिं महप्पभावेहिं महब्बलेहिं महाजसेहिं चउसट्ठिइंदेहिं अन्नेहिवि देवेहिं य देवीहिं य वंदिओ तेलुक्कनाहो धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी उसभजिणो मम पितामहो अत्थि १। चक्करयणप्पहाणो एगछत्तं ससागरं वसुहं सासमाणो नवनिहिसमिद्धकोसो कयसयलजणतोसो छक्खंडाहिवई नरसीहो भरहो चक्कवट्टी मम पिया अत्थि। २ अहं पुण सत्तुमद्दणो सीहगज्जणो अइबलो महाबलो पियदंसणा विमलकुलसम्भूओ अजिओ रायउलतिलओ सिरिवच्छलंछणो तिखण्डाहिवई पुरिसुत्तमो पुरीससीहो पोयणपुरे तिविट्ठु णामं पढमो वासुदेवो भविस्सामि ३। अवरविदेहे मूयाए नयरीए तेयसा पचंडमत्तंडपयावो पुव्वकडतवप्पभावो निविट्ठसंचियसुहो नरवसहो विउलविस्सुयजसो सारयण हत्थणियमहुरगम्भीरणिद्धघोसो सम्पत्तसयलजणमणतोसो पिउसरीसो पियमित्तो णामं

चक्कवट्टी भविस्सामि ४। किं बहुणा इमाए चेव ओसप्पिणीए पुरससीहो पुरिसवरपुण्डरीओ विमलकुलसंभवो महासत्तो सायरवरगम्भीरो चंदाओवि निम्मलयरो सुज्जाओवि अहियपयासयरो नामेण महावीरो चरिमो तित्थयरो भविस्सामि ५। मम पियामहो तित्थयरेसु पढमो, मम ताओ चक्कवट्टीसु पढमो जाओ, अहं पुण वासुदेवेसु पढमो भविस्सामि। इमाए चेव ओसप्पिणीए पुणो अवरविदेहे मूयाए नयरीए छक्खंडाहिवई जगप्पिओ पियमित्तो नामं चक्कवट्टी भविस्सामि। इमाए चउवीसीए पुणो चउवीससंखापूरगो चरिमो तित्थयरो भविस्सामित्ति। भुयाप्फालणपुव्वं उच्चणायं कुणमाणो पुणो पुणो णच्चंतो सो मरीई नीयं गोयं उवज्जिणेइ। हेओवाएयविवेगविगलो जणो तत्तं न निच्चिणेइ, अभिमाणविसमविसजालकवलियम्मि मणतरुम्मि णाणपल्लवो णो

परोहेइ। जीवाणं मणगगणंगणे मणागंपि माणमेहे समुग्गए समाणे हियय-भूमीए तण्हा विसलया सज्जो परोहेइ। सा हिमराई राइवराइमिव नाणाइ गुण-सेणिं पणिहंति। मइरेव दुच्चज्जमोहसंदोहजणणी दुप्पारसंसारवित्थारिणी य हवइ। एवमभिमाणमस्सिओ मरीई विस्सरीयविवेगो वागुरिओ जाले विहंगममिव दुक्खभवे सयमप्पाणं पाडीय। इच्चेव मणत्थणिहाणं विसालकुलजम्मणमयं आसयंतो सो मरीई तया नीयगोयं बंधीय॥१२॥

शब्दार्थ—[तए णं एगया] एक बार किसी समय [जगसंतावकलावनिकंदणो] संसार के संतापसमूह को नष्ट करनेवाले [नाभिदंसणो पहू] नाभिनन्दन (ऋषभदेव) प्रभु [विणीयाए नयरीए समोसरीओ] विनीतानगरी में पधारे। [तत्थ समोसरणे] वहां समवसरण में [विरायमाणो उसभजिणो] विराजमान ऋषभजिनने, [देवासुरतिरियमणुय-

परिसाए] देवों, असुरों, मनुष्यों, और तिर्यंचों की परिषद् में [सयसयभासापरिणामिणीए] श्रोताओं की अपनी-अपनी भाषा में परिणत होनेवाली [गिराए धम्मं कहेह] वाणी में धर्मदेशना दी। [धम्मदेसणासमणंतरं] धर्मदेशना के पश्चात् [भगवं पज्जुवासमाणो] भगवान् की सेवा करते हुए [भरहचक्कवट्टी तं पुच्छेइ] भरतचक्रवर्तीने भगवान् से प्रश्न किया-[भदंत! वट्टइ कोवि देवाणुप्पियाणं समोसरणे] हे भगवन्! देवानुप्रिय के-आपके-समवसरण में [एयारिसो जीवो जो अणागयकाले] ऐसा कोई जीव है जो भविष्य काल में [बलदेवो, वासुदेवो चक्कवट्टी तित्थयरो वा भविस्सइत्ति] बलदेव, वासुदेव चक्रवर्ती या तीर्थंकर होगा? [तओ भयवं एवं वयासी] तब भगवान् इस प्रकार बोले-[भरहा! नत्थि एत्थ समोसरणे एयारिसो कोवि जीवो] भरत! इस समवसरण में ऐसा कोई जीव नहीं है। [समोसरणाओ बहिं तुज्झ पुत्तो] हां, समवसरण से बाहर तुम्हारा पुत्र [तिदंडी वेसधारी मरीई चिट्ठइ] त्रिदण्डधारी मरीचि है। [इमो कालक्कमेण]

वह कालक्रम से [एत्थ भरहे] इस भारतवर्ष में [पोयणपुरे तिविट्ठु नामं पढमो वासुदेवो] पोतनपुर नगर में त्रिपृष्ठ नामक प्रथम वासुदेव होगा [अवरविदेहे मूयाए नयरीए] पश्चिम महाविदेह की मूकानगरी में [पियमित्त नामे चक्कवट्टी] प्रियमित्र नामका चक्रवर्ती होगा। [एत्थ भरहखित्ते महावीर नामो चरिमो तित्थयरो य भविस्सइ] और फिर इस भरतक्षेत्र में महावीरनामक अन्तिम तीर्थंकर होगा।

[एवं सोच्चा] इस प्रकार सुनकर [भरहचक्कवट्टी] भरत चक्रवर्ती [बहिट्ठियं मरीइमुवागमिय एवं वयासी] बाहरस्थित मरीचि के समीप जाकर इस प्रकार कहने लगे--[भो तिदंडी मरीई!] हे त्रिदण्डधारी मरीचि! [तुज्झ एरिसं वेसं वंदिउं मे न कप्पइ] तेरे इस वेश को वन्दन करना मुझे नहीं कल्पता [तुवं पुण अणागयकाले] तुम आगामीकाल में [इमाए ओसप्पिणीए] इसी अवसर्पिणी में, [एयस्सिं भरहे वासे] इसी भारतवर्ष में [पोयणपुरे] पोतनपुर में [तिविट्ठू नाम पढमो वासुदेवो] त्रिपृष्ठ नामक प्रथम

वासुदेव होओगे, [अवरविदेहे मूयाए नयरीए] अपरविदेह में मूका नामक नगरी म [पियमित्तनामे चक्कवट्टी] प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती होओगे, [एत्थ भरहे महावीरनामे] इसी भरतक्षेत्र में महावीर नामक [अंतिमतित्थयरो य भविस्ससि] अन्तिम तीर्थंकर भी होओगे। [अओ तित्थयरत्तणेण भाविणं तुमं वंदामि] इसलिये भावी तीथकर के रूप में मैं तुम्हें वन्दना करता हूं। [नियपिउणो भरहचक्किस्स] अपने पिता भरतचक्रवर्ती के [एवं वयणसवणेणं] इस प्रकार के वचन सुनने से [मरीइं पावभारो फारो] मरीचि के अन्तःकरण में पापों का समूहरूप अतिशय [कुलमओ आविसीय] कुलमद प्रवेश कर गया, [कुलाइकडो मओ] कुल आदि मद [समयमासाइय सज्जो] अवसर पाकर मनुष्य में उसी प्रकार प्रवेश कर लेता है। [विहङ्गमो नीडमिव जणमाविसइत्ति] जैसे पक्षी घोसले में प्रवेश कर लेता है। इसी कारण [मरीई तक्खणे] मरीची ने उसी समय [अपार-संसारकंतारपरिब्भमणकारगं] अपार संसाररूपी कांतार में परिभ्रमण करानेवाले [सय-

लसुहतरुमूलुम्मूलगं] और समस्त सुखरूप वृक्ष के मूल को उखाडने वाले [मानहलाहलं पिबीअ] मानरूपी हलाहल विष का पान किया [तए णं सो हरिसवस] उसका हृदय हर्ष के वश होकर [विसप्पमाणहियओ] विकसित हो गया। [नच्चंतो एवं वयासी] वह नाचता हुआ इस प्रकार कहने लगा [अहो! केरिसं मज्झ उत्तमं कुलं] अहो! मेरा कुल कैसा उत्तम है, [जंसि महिड्ढिएहिं] जिसमें महती ऋद्धिवाले [महज्जुइएहिं] महतीद्युतिवाले [महप्पभावेहिं] महान् प्रभाववाले [महब्बलेहिं] महान् बलवाले [महाजसेहिं] और महानयशवाले [चउसट्ठिइंदेहिं] चौसठ इन्द्रों के द्वारा [अन्नेहि वि देवेहिं य देवीहिं य] तथा अन्यदेवों और देवियों द्वारा [वंदिओ] वन्दित [तेलुक्कनाहो धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी] तीनलोक के नाथ धर्मरूपी श्रेष्ठ चातुरन्तचक्र के प्रवर्तक [उसभजिणो मम पियामहो अत्थि] ऋषभजिन मेरे पितामह [दादा] है! [चक्करयणप्पहाणो] और जिस कुल में प्रधान चक्ररत्नवाले [एगछत्तं ससागरं वसुहं सासमाणो] समुद्रसहित पृथिवी

पर एकछत्र शासन करनेवाले, [नवनिहिसमिद्धकोसो] नौ निधियों से समृद्धकोषवाले [कयसयलजणतासो] सबको सन्तोष देनेवाले [छक्खंडाहिवई] षट्खंड के अधिपति [नरसीहो] नरों में सिंह के समान [भरहो चक्कवट्टी मम पिया अत्थि] भरतचक्रवर्त्ती मेरे पिता हैं ! [अहं पुण] और मैं [सत्तुमद्दणो] शत्रुओं का मर्दन करनेवाला [सीहगज्जणो] सिंह के समान गर्जना करनेवाला [अइबलो] अतिबलवान् [महाबलो] महाबलवान् [पियदंसणो] प्रियदर्शन [विमलकुलसम्भूओ] विमलकुल में उत्पन्न [अजियो] अजेय [रायउलतिलओ] राजकुल में श्रेष्ठ [सिरिवच्छलंछणो] श्रीवत्स के चिह्नवाले [तिखंडाहिवई] तीन खंड के स्वामी [पुरिसुत्तमो] पुरुषों में उत्तम [पुरिससीहो] पुरुषों में सिंह [पोयणपुरे] पोतनपुर में [तिविट्ठू नामं पढमो वासुदेवो भविस्सामि] त्रिपृष्ठ नामक प्रथम वासुदेव होऊँगा। [अवरविदेहे] और फिर मैं पश्चिम महाविदेह में [मूयाए नयरीए] मूका नामक नगरी में [तेयसा पचंडमत्तंडपयावो] प्रखर सूर्य के

समान प्रतापवाला [पुव्वकडतवप्पभावो] पूर्वकृत तप के प्रभाव से सम्पन्न [निविट्ठसंचियसुहो] पूर्वसंचित सुखों को प्राप्त करनेवाला [नरवसहो] नरों में वृषभ के समान [विउलविस्सुयजसो] विपुल और विख्यात कीर्तिवाला [सारयण हत्थणियमहुरगम्भीरणिद्धघोसो] शरदृऋतु के मेघों के समान मधुर गंभीर और स्निग्ध घोष [गर्जना] वाला, [संपत्तसयलजणमणतोसो] सब जनों को सन्तोष देनेवाला [पिउसरिसो पियमित्तो णामं चक्कवट्टी भविस्सामि] अपने पिता के समान प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती होऊँगा ! [किं बहुणा] अधिक क्या कहूं, [इमाए चेव ओसप्पिणीए] इसी अवसर्पिणीकाल में [पुरिससीहो] पुरुषसिंह [पुरिसवरपुंडरीओ] पुरुषवरपुण्डरीक [विमलकुलसंभवो] निर्मलकुल में उत्पन्न [महासत्तो] महासत्वशाली [सायरवरगंभीरो] समुद्र के समान गम्भीर [चंदाओवि निम्मलयरो] चन्द्रमा से भी अधिक निर्मल [सुज्जाओविअहियपयासयरो] सूर्य से भी अधिक प्रकाश करनेवाले [नामेण महावीरो चरिमो तित्थयरो भविस्सामि] महा-

वीर नामक अन्तिम तीर्थंकर होऊँगा।

[मम पियामहो तित्थयरेसु पढमो] मेरे पितामह [दादा] तीर्थंकरों में प्रथम तीर्थंकर हैं। [मम ताओ चक्कवट्टीसुं पढमो जाओ] मेरे पिता चक्रवर्तियों में प्रथम चक्रवर्ती हैं। [अहं पुण वासुदेवेसु पढमो भविस्सामि] और मैं भी वासुदेवों में प्रथमवासुदेव होऊँगा। [इमाए चेव ओसप्पिणीए पुणो] मैं भरतक्षेत्र की अपेक्षा से इसी अवसर्पिणी में [अवरविदेहे मूयाए नयरीए] पश्चिम महाविदेह की मूका नगरी में [छखंडाहिवई] छखंड के स्वामी [जगप्पिओ पियमित्तो] जगत्प्रिय प्रियमित्र नामक [नामं चक्कवट्टी भविस्सामि] चक्रवर्ती होऊँगा। [इमाए चउवीसाए पुणो] मैं इसी चौवीसी में चउवीस संखा पूरगो] चौवीस की संख्या को पूरा करनेवाला [चरिमो तित्थयरो भविस्सामित्ति] अन्तिम तीर्थंकर होऊँगा। [भुयाप्फालणपुव्वं] इस प्रकार भुजाओं को फटकार–फटकार कर [उच्चाणायं कुणमाणो] जोर जोर से सिंहनाद करते हुए [पुणो पुणो

णच्चंतो] बार-बार नाचते हुए [सो मरीई नीयं गोयं उवनिज्जेइ] मरीचि ने नीच गोत्र का उपार्जन किया।

[हेओवाएय विवेगविगलो जणो] हेय और उपादेय के विवेक से हीन जन [तत्तं न निच्चिणेइ] तत्त्व का निश्चय नहीं कर सकता [अभिमाणविसमविसजालकवलियम्मि] अभिमानरूपी विषमविषरूपी ज्वालाओं से ग्रस्त [मणतरुम्मि णाणपल्लओ] मनरूपी वृक्ष में ज्ञान का पल्लव [णो परोहेइ] नहीं उगता। [जीवाणं मणगगणंगणे] जीवों के मनोगगनरूप आंगन में [मणागम्मि माणमेहे समुग्गए] तनिक से भी मान-मेघ का उदय [समाणे हिययभूमीए तण्हा] होता है तो हृदयभूमि में तृष्णा [विसलया सज्जो परोहेइ] की विषलता तत्काल उग आती है। [सा हिमराई राईवराइमिव णाणाइगुणसेणिं पणिहंति] वह तृष्णा, ज्ञान आदि गुणों के समूह को उसी प्रकार नष्ट कर देती जैसे तुषार (हिम) का समूह कमलों के समूह को नष्ट कर देता है।

[मइरेव] मदिरा के समान [दुच्चज्जमोहसंदोहजणणी] दुस्त्यज मोह के समूह को उत्पन्न करती है [दुप्पारसंसारवित्थारिणी य हवइ] और अपारसंसार को बढाने वाली होती है।

[एवमभिमाणमस्सिओ] इस प्रकार अहंकार के वशीभूत और [विस्सरीयविवेगो मरीई] विवेक को भूलादेनेवाले मरीचिने [वागुरिओ जाले विहंगममिव दुक्खसवे भवे सय अप्पाणं पाडीअ] अपनी आत्मा को उसी प्रकार दुःखजनक संसार में फंसा लिया जैसे व्याध जाल में पक्षी को फसा लेता है। [इच्चेवमणत्थणिहाणं] इस प्रकार अनर्थों के भण्डार, [विसालकुलजम्मणमयं] विशाल कुल में जन्म लेने के मद का [आसयंतो] आश्रय लेकर [सो मरीई तया नीयगोयं बंधीय] उस मरीचिने नीचगोत्र का बन्ध कर लिया ॥१२॥

मूलम्—तए णं से मरीई उसभसामिम्मि मोक्खं गए समाणे भवियजणे पुणो पुणो पडिबोहिय पव्वज्जट्ठं मुणिसमीवे पेसेइ। तए णं एगया तस्स मरी-

इस्स सरीरे काससासाइया सोलस रोगायंका पाउब्भवित्था तेण गिलाणिमावण्णो सो मणम्मि चिंतेइ–जइ अहं वाहिमुत्तो भविस्सामि, तया कंपि एगं सिस्सं करिस्सामि जो मं परिचरिस्सइ ॥१३॥

शब्दार्थ—[तए णं से मरीई] उसके बाद वह मरीचि [उसभसामिम्मि मोक्खं गए समाणे] भगवान ऋषभस्वामी के मोक्ष जाने पर [भवियजणे पुणो पुणो पडिबोहिय] भव्यजनों को बार बार प्रतिबोध देकर [पव्वज्जट्ठं मुणिसमीवे पेसेइ] दीक्षा के लिए उन मुनियों के समीप भेजता रहा। [तए णं एगया] उसके बाद किसी समय [तस्स मरीइस्स सरीरे] उस मरीचि के शरीर में [काससासाइया] कास–(खांसी) श्वास आदि [सोलस रोगायंका पाउब्भवित्था] सोलह रोग रूप आतंग उत्पन्न हुए [तेण गिलाणिमावण्णो] इस कारण से ग्लानि को प्राप्त [सो मणम्मि चिंतेइ] मरीचिने मनमें विचार किया [जइ अहं वाहिमुत्तो भविस्सामि] अगर मैं व्याधिमुक्त हो जाउँगा [तया कंपि

एगं सिस्सं करिस्सामि] तो किसी भी एक को अपना शिष्य बना लूंगा [जो मं परि-चरिस्सइ] जो मेरी शुश्रूषा करेगा ॥१३॥

मूलम्–एवं विचिंतमाणस्स तस्स अंतिए एगो धम्मकामी कविलनामो कुलपुत्तो समागओ। तं मरीई जिणधम्मं वण्णिय उवदेसीय। तं सोच्चा कविलो पुच्छिय–जइ जिणधम्मो सव्वुत्तमो, ताहे तं तुमं कम्हा नो समायरसि? तए णं मरीई एवं वयासी–कविला! आरहयं धम्मं पालिउं न सक्केमि कढिणो सो धम्मो ण तं मारिसा कायरा परिपालिउं सक्कंति। तए णं कविलो कहीय-किं तव मग्गे धम्मो नत्थि, जं तुमं मं जिणधम्मं उवदिससि? एएण पण्हेण मरीई कविलं जिणधम्मकामुयं मुणिय सिस्सलालसाए एवं वयासी–कविला! जहा जिणमग्गे धम्मो अत्थि, एवं मम मग्गेवि धम्मो अत्थि। एवं सोच्चा सो

मरीइस्स सिस्सो संजाओ। तए णं जिणमग्गेवि धम्मो अत्थि मम मग्गेवि धम्मो अत्थित्ति उस्सुत्तपरूवणस्स मिच्छाधम्मोवएसस्स य अणालोइओ अप्पडिक्कंतो य सो मरीई बहुलं संसारं उवज्जिणिय चउरासीसयसहस्सपुव्वाउयं परिपालिय अणसणेण कालमासे कालं किच्चा चउत्थे भवे पंचमदेवलोए दससागरोवमट्ठिइयदेवत्ताए उववन्नो॥१४॥

शब्दार्थ—[एवं विचिंतमाणस्स] इस प्रकार विचार करते हुए [तस्स अंतिए एगो] उस मरीचि के समीप [धम्मकामी कविलनामो कुलपुत्तो समागओ] धर्म की अभिलाषा करनेवाला कपिल नामक एक कुलपुत्र आगया। [तं मरीई जिणधम्मं वण्णिय उवदेसीय] उस कपिल को मरीचि ने जिन प्ररूपित धर्म का वर्णन करके उपदेश दिया [तं सोच्चा कविलो पुच्छीय] मरीचि द्वारा उपदिष्ट जिनधर्म को सुनकर कपिल ने मरीचि से

पूछा-[जइ जिणधम्मो सव्वुत्तमो] यदि जिन धर्म सर्वोत्तम है [ताहे तं तुमं कम्हा नो समायरसि] तो तुम उस धर्म का आचरण क्यों नहीं करते ?

[तए णं मरीई एवं वयासी] मरीचि ने कपिल को उत्तर दिया [कविला ! आरहयं धम्मं पालिउं न सक्केमि] मैं अर्हत् धर्म का पालन नहीं कर सकता, [कढिणो सो धम्मो] क्योंकि उस धर्म का पालन करना कठिन है। [न तं मारिसा कायरा परिपालिउं सक्कंति] अतएव मेरे जैसे कायर जन उस धर्म का पालन करने के लिए समर्थ नहीं हैं। [तए णं कविलो कहीय] तब कपिल बोला-[किं तव मग्गे धम्मो नत्थि] क्या तुम्हारे मार्ग में धर्म नहीं है, [जं तुमं मं जिणधम्मं उवदिससि ?] जो तुम मुझे जिन धम का उपदेश देते हो ? [एएण पण्हेण मरीई कविलं जिणधम्मकामुयं मुणिय] कपिल के इस प्रश्न से मरीचि ने समझ लिया कि कपिल जिनधर्म का अभिलाषी है [सिस्सलालसाए एवं वयासी-अतएव वह शिष्य की लालसा से बोला-[कविला ! जहा जिणमग्गे

धम्मो अत्थि] हे कपिल ! जैसे जिनमार्ग में धर्म है [एवं मम मग्गेवि धम्मो अत्थि] वैसे मेरे मार्ग में भी धर्म है। [एवं सोच्चा सो मरीइस्स सिस्सो संजाओ] यह सुनकर कपिल मरीचि का शिष्य हो गया। [तए णं जिणमग्गेवि धम्मो अत्थि] मरीचि ने जिन मार्ग में भी धर्म है [मम मग्गेवि धम्मो अत्थि] और मेरे मार्ग में भी धर्म है, [त्ति उस्सुत्तपरूवणस्स] इस प्रकार उत्सूत्र प्ररूपणा करने से [मिच्छाधम्मोवएसस्स य] तथा धर्म के मिथ्या उपदेश की [अणालोइओ अप्पडिक्कंतो य सो] आलोचना प्रतिक्रमण न करने से [मरीई बहुलं संसारं उवज्जिणिय] उस मरीचि ने दीर्घ संसार उपार्जन किया। [चउरासीसयसहस्सपुव्वाउयं] वह चौराशी लाख पूर्व की आयु [परिपालिय] भोगकर [अणसणेण कालमासे कालं किच्चा] अनशनपूर्वक मृत्यु के अवसर पर काल करके [चउत्थे भवे पंचमदेवलोए] नयसार के भव से चौथे भव में पांचवें ब्रह्मलोक नामक स्वर्ग में [दससागरोवमट्ठिइयदेवत्ताए उववन्नो] दससागरोपम की स्थितिवाला देव हुआ ॥१४॥

मूलम्—तए णं सो देवो आउभवट्ठिइक्खएणं चयं चइत्ता पंचमे भवे धरणिमणिभूसणायमाणे कोल्लागसंनिवेसे कस्सइ बंभणस्स असीइलक्खपुव्वाउओ पुत्तो जाओ। तस्स य अम्मापिऊहिं कोसिउत्ति नामं कयं। सो य उम्मुक्कबालभावो जोव्वणगमणुप्पत्तो अईवबुद्धिमंतो परमचउरो बुद्धिबलेणं धुत्तविज्जाए बहुयं धणं समुवज्जीय। तए णं धुत्तविज्जाए अणालोइओ अप्पडिक्कंतो य सो कालमासे कालं किच्चा अणेगासु पसुपक्खिकीडपयंगाइजोणीसु भमं भमं अच्चंतदुक्खभायणं भवीअ। एए अणेगे भवा खुड्डुगत्तणेण भगवओ सत्तवीसइभवेसु ण गणिया। एवमग्गे वि ॥१५॥

शब्दार्थ—[तए णं सो देवो] तदनन्तर वह देव [आउभवट्ठिइक्खएणं] आयु, भव, और स्थिति का क्षय होने से [चयं चइत्ता पंचमे भवे] देव शरीर का त्याग करके पांचवें

भव में [धरणिमणिभूसणायमाणे] पृथ्वी के रत्नमय आभूषण के समान [कोल्लागसंनिवेसे] कोल्लाग नामक सन्निवेश में [कस्सइ बंभणस्स] किसी ब्राह्मण का [असीइलक्खपुव्वाउओ] अस्सीलाख पूर्व की आयुवाला [पुत्तो जाओ] पुत्र हुआ। [तस्स य अम्मापिऊहिं] माता पिता ने उसका [कोसिउत्ति नामं कयं] कौशिक, इस प्रकार नाम रक्खा। [सो य उम्मुक्कबालभावो] उसकी बाल्यावस्था समाप्त हुइ। [जोव्वणगमणुप्पत्तो] युवा होने पर [अईव बुद्धिमंतो] वह अत्यन्त बुद्धिमान [परमचउरो] और बडा चतुर हो गया [बुद्धिबलेणं धुत्तविज्जाए] उसने अपने बुद्धिबल से तथा धूर्तविद्या से [बहुयं धणं समुवज्जीय] बहुत धन उपार्जन किया। [तए णं धुत्तविज्जाए] उसके बाद धूर्तविद्या की [अणालोइओ अप्पडिक्कंतो य] आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही [सो कालमासे कालं किच्चा] कालमास म काल करके [अणेगासु पसुपक्खिकीडपयंगाइजोणीसु] अनेक कीट पतंग आदि की योनियों में [भमं भमं] बार बार भ्रमण करके [अच्चंतदुक्खभायणं

भवीअ] अत्यन्त दुःख का भागी बना [एए अणेगे भवा]ये अनेक भव [खुड्डगत्तणेण] छोटे छोटे होने से [भगवओ सत्तावीसइभवेसु न गणिया] भगवान के सत्तावीस भवों में नहीं गिने गये हैं। [एवमग्गे वि] इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिये ॥१५॥

मूलम्—एवं अणेगजोणीसु भममाणो सो नयसारजीवो कस्सवि सुहकम्मस्स बलेणं पुणो छट्ठे भवे थाणाउरनयरे बंभणकुलम्मि दुसत्तइलक्खपुव्वाउओ पुप्फमित्तसम्मनामओ बंभणो जाओ। तत्थ णं जमनियमसंपन्नोजिणधम्मं अणुमोयमाणो मरिय सत्तमे भवे सोहम्मदेवलोए मज्झिमट्ठिइओ देवो जाओ ॥१६॥

शब्दार्थ—[एवं] इस प्रकार [अणेगजोणीसु] अनेक योनियों में [भममाणो] परिभ्रमण करता हुआ [सो नयसारजीवो] वह नयसार का जीव [कस्सवि सुहकम्मस्स बलेणं] किसी शुभ कर्म के बल से [पुणो छट्ठे भवे] पुनः छठे भव में [थाणाउरनयरे] स्थानपुर नगर में [बंभणकुलम्मि] ब्राह्मणकुल में [दुसत्तइलक्खपुव्वाउओ] बहत्तरलाख

की पूर्व आयुवाला [पुप्फमित्तसम्मनामओ] पुष्पमित्र शर्मा नामक [बंभणो जाओ] ब्राह्मण हुआ। [तत्थ णं जमनियमसंपन्नो] उस भव में यमनियमों से युक्त वह [जिणधम्मं अणुमोयमाणो] जिन धर्म की अनुमोदना करता हुआ [मरिय] मरकर [सत्तमे भवे] सातवें भवमें [सोहम्मदेवलोए] सौधर्म देवलोक में [मज्झिमट्ठिइओ] मध्यम स्थितिवाला [देवो जाओ] देव हुआ ॥१६॥

मूलम्—तए णं सो देवलोयाओ चुओ अट्ठमे भवे विचित्तसंनिवेसे चउसट्ठिलक्खपुव्वाउओ अग्गिजोइणामो माहणो जाओ। तत्थ णं सो तिदंडी परिव्वायगो होऊण अंते कालधम्मं पत्तो ॥१७॥

शब्दार्थ—[तए णं सो] इसके बाद वह [देवलोयाओ चुओ] नयसार का जीव देवलोक से च्युत होकर [अट्ठमे भवे] आठवें भव में [विचित्तसंनिवेसे] विचित्र नामक सन्निवेश में [चउसट्ठिलक्खपुव्वाउओ] चौसठ लाख पूर्व की आयुवाला [अग्गिजोइ-

णामो] अग्निज्योति नामक [माहणो जाओ] ब्राह्मण हुआ [तत्थ णं] उस भवमें [सो तिदंडी परिव्वायगो होऊण] वह त्रिदण्डी परिव्राजक होकर [अंते कालधम्मं पत्तो] अन्त में काल धर्म को प्राप्त हुआ ॥१७॥

मूलम्-नवमे भवे सो ईसाणलोगम्मि मज्झिमाउओ देवो जाओ ॥१८॥

शब्दार्थ—[नवमे भवे सो] नौवे भव में वह [ईसाणदेवलोगम्मि] नयसार का जीव ईशान देवलोक में [मज्झिमाउओ देवो जाओ] मध्यम आयुवाला देव हुआ ॥१८॥

मूलम्-तए णं सो दसमे भवे सुंदरे संनिवेसे अग्गिभूइ णामे माहणो छप्पन्नं पुव्वसयसहस्ससव्वाउओ तत्थ वि परिव्वायगो जाओ ॥१९॥

शब्दार्थ—[तए णं सो] ईशान देवलोक से चवकर वह [दसमे भवे] दशवें भव में [सुंदरे संनिवेसे] नयसार का जीव सुंदर सन्निवेश में [अग्गिभूइ णामे माहणो] अग्निभूति नामक ब्राह्मण हुआ [छप्पन्नं पुव्वसयसहस्ससव्वाउओ] वहां उसने छप्पन लाख पूर्व

की सर्वायु प्राप्त कर [तत्थ वि परिव्वायगो जाओ] वहां पर भी वह परिव्राजक बना ॥१९॥

मूलम्--तओ चुओ सो एगारसमे भवे सेयंबियाए नयरीए भरद्दाज--नामओ विप्पो जाओ। तत्थ वि तिदंडी होऊण चोयालीसलक्खपुव्वाउयं पालिय कालगओ समाणो बारसमे भवे महिंदाभिहे चउत्थे कप्पे मज्झिमट्ठिइओ देवो जाओ॥२०॥

शब्दार्थ--[तओ चुओ सो] सनत्कुमार देवलोक से च्यव कर नयसार का जीव [एगारसमे भवे] ग्यारहवें भव में [सेयंविआए नयरीए] श्वेताम्बिका नगरी में [भरद्दाज--नामओ विप्पो जाओ] भारद्वाज--नामक ब्राह्मण हुआ। [तत्थ वि तिदंडी होऊण] उस जन्म में भी त्रिदण्डी होकर [चोयालीसलक्खपुव्वाउयं पालिअ] चवालीसलाख पूर्व की आयु को भोगकर [कालगओ समाणो] मृत्यु को प्राप्त होकर [बारसमे भवे] बारहवें भव में [महिंदाभिहे चउत्थे कप्पे] माहेन्द्रनामक चौथे कल्प में [मज्झिमट्ठिइओ देवो जाओ] मध्यम स्थितिवाला देव हुआ ॥२०॥

मूलम्—तओ चुओ अणेगासु जोणीसु भमं भमं तेरसमे भवे रायगिहे-नयरे थावरो णामं विप्पो जाओ। तत्थ वि तिदंडी होऊण चउव्वीसइलक्खपुव्वाउयं पालइत्ता कालगओ चउद्दसमे भवे बंभलोए कप्पे मज्झिमट्ठिइओ देवो जाओ ॥२१॥

शब्दार्थ—[तओ चुओ] वहां से च्यवकर [अणेगासु जोणीसु भमं भमं] अनेक योनियों में बार बार भ्रमण करता हुआ [तेरसमे भवे] तेरहवें भव में [रायगिहे नयरे] राजगृह नगर में [थावरो नामं विप्पो जाओ] स्थावर—नामक विप्र हुआ। [तत्थ वि तिदंडी होऊण] वहां पर भी त्रिदण्डी होकर [चउव्वीसइलक्खपुव्वाउयं पालइत्ता] चौवीस लाख पूर्व की आयु को भोगकर [कालगओ] कालधर्म को प्राप्त हुआ [चउद्दसमे भवे] चौदहवें भव में [बंभलोए कप्पे] ब्रह्मलोक कल्प में [मज्झिमट्ठिइओ देवो जाओ] मध्यम स्थितिवाला देव हुआ॥२१॥

मूलम्—तओ चइत्ता बहुसु भवेसु भामं भामं पण्णरसमे भवे रायगिहे नयरे विस्सनंदिस्स रन्नो लहुभाउयस्स विसाहभूइजुवरायस्स धारिणीए देवीए कुच्छिंसि पुत्तत्ताए उववण्णो। माउपिऊहिं तस्स विस्सभूइत्ति नामं कयं। सो य माउपिऊणं आणंदवड्ढगो आसी। तए णं सो उम्मुक्कबालभावो जोव्वणगमणुपत्तो एगया अंतेउरवरगओ पुप्फकरंडए उज्जाणे सच्छंदं कीडइ। विस्सनंदिस्स रण्णो विसाहनंदी नामं पुत्तो आसी। जो य विसाहभूइस्स जुवरायपयप्पदाणाणंतरं समुप्पण्णो। तस्स माया तं विस्सभूइं जुवरायपुत्तं पुप्फकरंडएउज्जाणे सच्छंदं कीडमाणं पासिअ ईसाविद्धहियया कोवघरं पविट्ठा। राया तं पासाएइ, न सा पसन्ना हवइ, कहेइ य किं अम्हं रज्जेण वा? बलेण वा? जइ विसाहनंदी एवंविहे भोए न भुंजइ, जइ भवंते जीवमाणे वि अम्हाणं एरिसा

दसा। ताहे भवंतरस्स अणुवट्टिईए का अम्हाणं दसा भविस्सइ? अम्हं नाममेत्तेण रज्जं, अहिगारो पुण जुवरण्णो तप्पुत्तस्स य। एवं सोच्चा राया अमच्चं आहविय एवं वयासी—अम्हाणं वंसे अण्णेण अभिगयं उज्जाणं णो अण्णो अच्चेइ। तं कहं जुवरायपुत्तं तओ अभिनिक्खामेमित्ति। अमच्चो भणइ—अत्थि उवाओ। तस्स कूडलेहो पेसिज्जउ जं अमुगो पच्चंतराया उक्किट्ठो, तस्स निग्गहट्ठुं महाराजा गच्छइ। रण्णा एवं कयं। तं सोऊण विस्सभूइ कहीअमए जीवमाणे महाराया किमट्ठं निग्गच्छइ-त्ति कट्टु सो जुद्धत्थं गओ॥२२॥

शब्दार्थ—[तओ चइत्ता] वहां से च्यवकर [बहुसु भवेसु भामं भामं] अनेक भवों में भ्रमण करता हुआ [पण्णरसमे भवे] पन्द्रहवें भवमें [रायगिहे नयरे] राजगृह नगर में [विस्सनंदिस्स रन्नो] विश्वनंदी राजा के [लहुभाउयस्स विसाहभूइ जुवरायस्स]

लघुभ्राता विशाखभूति युवराज की [धारिणीए देवीए कुच्छिसि पुत्तत्ताए उववण्णो] धारिणी देवी की कूख में पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ। [माउपिऊहिं तस्स विस्सभूइत्ति नामं कयं] मातापिता ने उसका नाम विश्वभूति रक्खा। [सो य माउपिऊणं आणंदवड्ढगो आसी] वह मातापिता के आनन्द का वर्द्धक था। [तए णं सो उम्मुक्कबालभावो] वह बाल्यावस्था को पार करके [जोव्वणगमणुपत्तो] यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ [एगया अंतेउरवरगओ] एक बार श्रेष्ठ अंतःपुर के साथ [पुप्फकरंडए उज्जाणे] वह पुष्पकरंडक उद्यान में [सच्छंदं कीडइ] स्वच्छंद क्रीडा कर रहा था।

[विस्सनंदिस्स रण्णो] राजा विश्वनन्दी का [विसाहनंदी नामं पुत्तो आसी] विशाखनन्दी—नामक पुत्र था। [जो य विसाहभूइस्स जुवरायपयप्पदाणाणंतरं समुप्पण्णो] जो विशाखभूति को युवराजपद प्रदान करने के पश्चात् जन्मा था। [तं विस्सभइं जुवरायपुत्तं] उस विश्वभूति युवराजपुत्र को [पुप्फकरंडए उज्जाणे सच्छंदं कीडमाणं पासिय]

पुष्पकरंडक उद्यान में स्वच्छंद क्रीडा करते देखकर [तस्स माया] विशाखनन्दी की माता का हृदय [ईसाविद्धहियया कोवघरं पविट्ठा] ईर्ष्या से विंध गया। वह कोप गृह में चली गइ। [राया तं पासाएइ] राजा ने उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न किया [न सा पसन्ना हवइ] पर वह प्रसन्न नहीं हुइ। [कहेइय--किं अम्हं रज्जेण वा? बलेण वा?] वह कहने लगी--राज्य से और बल से हमें क्या लाभ हुआ [जइ विसाहनंदी एवंविहे भोए न भुंजइ] यदि विशाखनन्दी इस प्रकार के भोग नहीं भोगता [जइ भवंते जीवमाणे वि अम्हाणं एरिसा दसा] यदि आपके जीतेजी हमारी ऐसी दशा है [ताहे भवंतस्स अणुवट्टिइए का अम्हाणं दसा भविस्सइ?] तो आपकी अनुपस्थिति में हमारी क्या दशा होगी? [अम्हं नाममेत्तेण रज्जं] हमारा तो नाम मात्र का राज्य है, [अहिगारो पुण जुवरण्णो तप्पुत्तस्स य] अधिकार तो युवराज और उसके पुत्र का है।

[एवं सोच्चा] यह सुनकर [राया अमच्चं आहविय एवं वयासी] राजा ने अमात्य

को बुलाकर कहा [अम्हाणं वंसे अण्णेण] हमारे वंश में दूसरे के द्वारा [अभिगयं उज्जाणं णो अण्णो अच्चेइ] अभिगत उद्यान में दूसरा अभिगमन नहीं करता [तं कहं जुवरायपुत्तं] तो युवराजपुत्र को [तओ अभिनिक्खामेमित्ति] उद्यान से किस प्रकार निकालू ? [अमच्चो भणइ—अत्थि उवाओ] अमात्य ने कहा—उपाय है । [तस्स कूडलेहो पेसिज्जउ] उसे झूठा पत्र भेज दीजिए [जं अमुगो पच्चंतराया उक्किट्ठो] कि अमुक सीमावर्ती राजा प्रबल हो गया है । [तस्स निग्गहट्ठं महाराजा गच्छइ] महाराज उसका निग्रह करने के लिए जा रहे हैं। [रण्णा एवं कयं] राजा ने ऐसा किया [तं सोऊण विस्सभूई कहीअ] उसे सुनकर विश्वभूति ने कहा—[मए जीवमाणे] मेरे जीवित रहते [महाराया किमट्ठं निग्गच्छइ] महाराज क्यों जाते हैं? [त्ति कट्टु] ऐसा कहकर [सो जुद्धत्थं गओ] वह युद्ध के लिए चला गया ॥२२॥

मूलम्—तए णं विसाहनंदी रायकुमारो तमुज्जाणं रित्तं मुणिय तत्थ कीडइ।

जुद्धट्ठं गओ विस्सभूई न तत्थ कंचि पच्चंतरायं पेच्छइ ताहे पुप्फकरंडगं उज्जाणं पच्चागओ दंडगहियग्गहत्थेहिं दारवालेहिं ओरुद्धो—मा एहि सामी! एत्थ विसाहनंदी रायकुमारो कीडइ। एवं सोऊण विस्सभूइणा णायं छम्मेण अहं निग्गमिओ कुविएण तेण तत्थ ठिया अणेगफलभरसमोणया कविट्ठलया मुट्ठिप्पहारेण आहया, फला तुडिया। तेहिं कविट्ठफलेहिं उज्जाणभूमी अत्थरिया। सो भणइ—एवं तुम्हाणं सीसाणि पाडेउं सक्केमि, जेट्ठतायस्स गारवमास्सिओ नो एवं करेमि। अहं मे छम्मेण बहिं नीणिओ। सयणा अवि नियसत्थपरायणा होउं एवं समायरंति धी! धी! कामभोगे—

सल्लं कामा विसं कामा कामा आसीविसोवमा।
कामे पत्थयमाणा य, अकामा जंति दुग्गइं ॥१॥

तम्हा अलाहि कामभोगेहिं। कामभोगा दुग्गइमूलंति कट्टु तओ निग्गओ संजायसंवेगो सुद्धभावणो अज्जसंभूयाणं थेराणं अंतिए पव्वइओ। तए णं से विस्सभूई अणगारे ईरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी बहूहिं छट्ठट्ठमाइएहिं तिव्वेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥२३॥

शब्दार्थ—[तए णं विसाहनंदी] तब विशाखनंदी [रायकुमारो] राजकुमार [तमुज्जाणं रित्तं] उस उद्यान को खाली [मुणिय] जानकर [तत्थ कीडइ] उसमें क्रीडा करने लगा [जुद्धट्ठं गओ विस्सभूई] युद्ध के लिए गया हुआ विश्वभूति [न तत्थ कंचि] वहां किसी भी [पच्चंतरायं पेच्छइ] विरोधी राजा को न देखकर [ताहे पुप्फकरंडगं उज्जाणं पच्चागओ] पुष्पकरंडक उद्यान में वापिस आया तो [दंडगहियग्गहत्थेहिं दारवालेहिं ओरुद्धो] उसे दण्डधारी द्वारपालोंने रोक दिया [मा एहि सामी !] और कहा—स्वामिन्!

यहां मत आइए [एत्थ विसाहनंदी रायकुमारो कीडइ] यहां राजकुमार विशाखनन्दी क्रीडा कर रहे हैं।

[एवं सोऊण विस्सभूइणा णायं छम्मेण अहं निग्गमिओ] यह सुनकर विश्वभूति समझ गया कि धोखे से मुझे निकाला गया है [कुविएण तेण तत्थ ठिया अणेगफल भरसमोणया] उसने कुपित होकर वहां की अनेक फलों के भारसे नमी हुइ [कविट्ठलया मुट्ठिप्पहारेण आहया] कपित्थ लताएँ मुट्ठियों का प्रहार करके तोड डालीं [फला तुडिया] और फल भी तोड डाले [तेहिं कविट्ठफलेहिं उज्जाणभूमी अत्थरिया] कपित्थ के फलों से उद्यानभूमि भर गई। [सो भणइ] उसने कहा—[एवं तुम्हाणं सीसाणि पाडेउं सक्केमि] इसी प्रकार मैं तुम्हारे सिर भी गिरा सकता हूँ [जेट्ठतायस्स गारवमस्सिओ नो एवं करेमि] परन्तु बडे पिताजी के बडप्पनका विचार करके ऐसा नहीं कर रहा हूं [अहं मे छम्मेण बहिं नीणिओ] मुझे तुम लोगों ने कपट से बाहर निकाला है [सयणा अवि

नियसत्थपरायणा होउं एवं समायरंति] स्वजन भी स्वार्थ के वशीभूत होकर ऐसा व्यवहार करते हैं। [धी! धी! कामभोगे] इन कामभोगों को धिक्कार है। कहा भी है—

[सल्लं कामा] काम भोग कांटे के समान है [विसं कामा] कामभोग विष के समान है [कामा आसीविसोवमा] कामभोग आशीविष के समान है [कामे पत्थयमाणाय] कामभोगों को प्राप्त करनेवाले किन्तु उनकी कामना करनेवाले भी [अकामा जंति दुग्गइं] दुर्गति को प्राप्त करते हैं।

[तम्हा अलाहि कामभोगेहिं] अतएव कामभोग वृथा है [कामभोगा दुग्गइमूलंति कट्टु] कामभोग दुर्गति के मूल हैं इस प्रकार कहकर [तओ निग्गओ] वह निकल गया [संजाय संवेगो] उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया [सुद्धभावणो] वह शुद्धभाव से [अज्ज संभूयाणं थेराणं अंतिए पव्वइओ] आर्यसम्भूत नामक स्थविर के पास दीक्षित हो गया [तए णं से विस्सभई अणगारे] इसके बाद वह विश्वभूति अनगार [ईरियासमिए जाव

गुत्तबंभयारी] ईर्यासमिति से सम्पन्न होकर यावत् गुप्त ब्रह्मचारी होकर [बहूहिं छट्ठट्ठमाइएहिं तिव्वेहिं तवोकम्मेहिं] अनेक छट्ठ अट्ठम् आदि की तीव्र तपश्चर्या से [अप्पाणं भावेमाणे विहरइ] आत्मा को भावित करते विचरने लगे ॥२३॥

मूलम्-तओ तवप्पभावलद्धाणेगविहलद्धिसंपण्णो सो विस्सभूई अणगारो एगया आयरियं आपुच्छिय एगल्लविहारेण विहरमाणो महुरं नयरिं गओ। तया तत्थ रायकण्णापाणिग्गहट्ठं विसाहनंदी रायकुमारो वि आगओ। तस्स रायमग्गे आवासो आसी। सो य विस्सभूई अणगारो मासक्खमणपारणगे तत्थ भिक्खट्ठं अडमाणे तेण मग्गेण गच्छइ तं गच्छमाणं दट्ठूण विसाहनंदीपुरिसा नियसामिं परिचाइंसु-सामी! एसो विस्सभूई अणगारोत्ति। तए णं विसाहणंदी तं सत्तुमिव विलोएइ। एत्थंतरे तत्थेव सो अणगारो मूइयाए एगाए गावीए

पेल्लिओ भूयले पडिओ। ताहे तेहिं उक्किट्ठकलकलो कओ। पच्चुत्थिय गच्छंतो सो विसाहनंदिणा भणिओ—रे भिक्खू! कविट्ठपाडणं तं बलं तुज्झ कहिं गयं? ताहे तेण पलोइयं दिट्ठो य सो विसाहनंदी, तए णं सो अणगारो अमरिसेण हत्थेहिं तं गाविं अग्गसिंगेहिं गहाय उड्ढं वहइ। दुब्बलस्स वि सीहस्स बलं किं सिगालेहिं लंघिज्जइ? अंधयारो किं पगासं अइक्कमइ? खज्जोओ किं चंदमसा सह फद्धइ? तं दट्ठुं सो विसाहनंदी लज्जिओ जाओ। तए णं से विस्सभूई अणगारे 'इमो दुरप्पा मइ अज्जवि वेरं वहइ' त्ति कट्टु तत्थ नियाणं करेइ—जइ इमस्स मम तव नियम-बंभचेरवासस्स कोवि फलवित्तिविसेसो हवइ तोऽहं आगमेस्साए अस्स वहाए होमि' त्ति। तए णं सो अणालोइय अप्पडिक्कंतो सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता

कालमासे कालं किच्चा सोलसमे भवे महासुक्के उक्किट्ठट्ठिइओ देवो जाओ ॥२४॥

शब्दार्थ—[तओ] उसके बाद [तवप्पभावलद्धाणेगविहलद्धिसंपण्णो] तप के प्रभाव से प्राप्त होनेवाली अनेक प्रकार की लब्धियों से संपन्न [सो विस्सभूई अणगारो] वह विश्वभूति अनगार [एगया आयरियं आपुच्छिय] एकबार आचार्य की आज्ञा लेकर [एगल्लविहारेण विहरमाणो] एकाकी विहार से विचरते हुए [महुरं नयरिं गओ] मथुरा नगरी में पहुँचे। [तया तत्थ रायकन्ना] संयोगवश उसी समय राजकन्या का [पाणिग्गहणट्ठं] पाणिग्रहण करने के लिए [विसाहनंदी रायकुमारोत्ति आगओ] विशाखनंदी राजकुमार भी वहां आया हुआ था। [तस्स रायमग्गे आवासो आसी] राजमार्ग पर उसका निवास था। [सो य विस्सभूई अणगारो] विश्वभूति अनगार [मासक्खमणपारणगे तत्थ भिक्खट्ठं] मासखमण के पारणे के दिन भिक्षा के लिए [अडमाणे] भ्रमण करते हुए [तेण मग्गेण गच्छइ] उसी मार्ग से निकले। [तं गच्छमाणं दट्ठूण विसाहनंदीपुरिसा] उन्हें जाते

देखकर विशाखनंदी के आदमियोंने [नियसामिं परिचाइंसु] अपने स्वामी को परिचय कराया—[सामी! एसो विस्सभूई अणगारोत्ति] स्वामिन्! यह विश्वभूति अनगार है। [तए णं विसाहणंदी तं सत्तुमिव विलोएइ] तब विशाखनंदी उन्हें इस प्रकार देखने लगा जैसे शत्रु को देखता हो। [एत्थंतरे तत्थेव सो अणगारो] इसी बीच विश्वभूति अनगार [सूइयाए एगाए गावीए पेल्लिओ भूयले पडिओ] एक नवप्रसूता गाय के धक्के से जमीन पर गिरपडे [ताहे तेहिं उक्किट्ठकलकलो कओ] यह देख विशाखनन्दी आदि ने कह कहा लगाया—अर्थात् जोरों से हँसने लगे [पच्चुत्थिय गच्छंतो सो विसाहनंदीणा भणिओ] वह उठकर जा रहे थे कि विशाखनन्दी ने कहा—[रे भिक्खू! कविट्ठपाडणं तं बलं तुज्झ कहिं गयं?] अरे भिक्षुक कपित्थफलों को गिरानेवाला तुम्हारा वह बल कहा चला गया?' [ताहे तेण पलोइयं] तब मुनि ने देखा [दिट्ठो य सो विसाहनंदी]—यह विशाखनंदी है! [तए णं सो अणगारो अमरिसेण] उसके बाद मुनिने क्रुद्ध होकर [हत्थेहिं तं गाविं

अग्गसिंगेहिं गहाय उड्ढं वहइ] उस गाय को सीगों के अग्रभाग से पकडकर ऊपर उठा लिया। [दुब्बलस्स वि सीहस्स बलं] सिंह कितना ही दुर्बल हो जाय, उसके बल को [किं सिगालेहिं लंघिज्जइ ?] क्या शृगाल उल्लंघन कर सकता है ? [अंधयारो किं पगासं अइक्कमइ ?] अंधकार क्या प्रकाश का अतिक्रमण कर सकता है ? [खज्जोओ किं चंद-मसा सह फद्धइ] जुगनू क्या चन्द्रमा के साथ स्पर्द्धा कर सकता है ? [तं दट्ठुं सो विसाहनंदी लज्जिओ जाओ] यह देखकर विशाखनंदी लज्जित हो गया। [तए णं से विस्सभूइ अणगारे] तदनन्तर विश्वभूति अणगार मनमें विचार करने लगे—[इमो दुरप्पा मइ अज्जवि वेरं वहइ] यह दुरात्मा अब भी मुझ से वैर रखता है [त्ति कट्टु तत्थ नियाणं करेइ] यह सोचकर उन्होंने निदान किया [जइ इमस्स मम तवनियमबंभचेरवासस्स को-वि फलवित्तिविसेसो हवइ] मेरे तप नियम और ब्रह्मचर्य का अगर कुछ फल हो तो [तोऽहं आगमेस्साए अस्स वहाए होमि' त्ति] आगामी जन्म में मैं इसका

वध करनेवाला होऊँ!' [तए णं सो अणालोइय अप्पडिक्कंतो] इसके बाद आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना [सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता] अनशन से साठ भक्त का छेदन करके [कालमासे कालं किच्चा] कालमास में काल करके [सोलसमे भवे महासुक्के] सोलहवें भवमें महाशुक्रनामक देवलोक में [उक्किट्ठट्ठिइओ देवो जाओ] सत्रह सागरोपम की उत्कृष्ट स्थितिवाला देव हुआ ॥२४॥

मूलम्—तए णं से आउभवट्ठिइक्खएणं महासुक्काओ चइत्ता सत्तरसमे भवे भरयखित्ते पोयणपुरनयरे पयावइनामस्स रन्नो मियावई देवीए कुच्छिंसि सत्तसुमिणसूइओ वासुदेवो पुत्तत्ताए उववन्नो। तस्स जेट्ठभाया अयलाभिहो बलदेवो आसी। जायमायस्स इमस्स वासुदेवस्स तिण्णि पिट्ठकरंडगाणि भविसुंत्ति तस्स अम्मापिउहिं तिविट्ठुत्ति नामं कयं। सो य अम्मापिऊणं अइसयवल्लहो

आसी। कमेण सो तिविट्ठू उम्मुक्कबालभावो जोव्वणगमणुप्पत्तो। तए णं अस्स पुव्वभववेरिओ विसाहनंदी जीवो अणेगेसु भवेसु भमं भमं संखपुरसमीवट्टिय तुंगगिरिम्मि संखपुरोवद्दवकारगो सीहो जाओ। एगया तिविट्ठुणा स सीहो बाहुजुद्धेण मारिओ। तयणंतरं च णं तस्स तिविट्ठुस्स पडिवासुदेवेण संखपुराधीसरेण अस्सग्गीवेण सह जुद्धं संजायं। तत्थ तेण अस्सग्गीवस्स सीसं तिण्णि क्खित्तेणेव चक्केण छेइयं। देवेहिं च घुट्ठं—एसो तिविट्ठू पढमो वासुदेवो समुप्पण्णोत्ति। तओ सव्वे रायाणो नमिया। उदइयं अड्ढभरहं कोडिया सिला बाहाहिं धारिया ॥२५॥

शब्दार्थ—[तए णं से] उसके बाद [आयुभवट्ठिइक्खएणं] आयु, भव और स्थिति का क्षय होने से [महासुक्काओ चइत्ता] वह नयसार का जीव महाशुक्र देवलोक से चव-

कर [सत्तरसमे भवे] सत्तरहवें भव में [भरयखित्ते पोयणपुरनयरे] भरतक्षेत्र के पोतनपुर नगर में [पयावइनामस्स रन्नो] प्रजापति नामक राजा की [मियावई देवीए] मृगावती देवी के [कुच्छिंसि] कुंख में [सत्तसुमिणसूइओ] सात स्वप्नों को सूचित कर [वासुदेवो पुत्तत्ताए उववन्नो] वासुदेव के रूप में पुत्रपन से उत्पन्न हुआ [तस्स जेट्ठभाया अयलाभिहो] उसका बडा भाई अचलनामक [बलदेवो आसी] बलदेव था [जायमायस्स इमस्स] उत्पन्न होते ही उस बालक के [तिण्णि पिट्ठकरंडगाणि] तीन पीठ की पसलियां [भविंसुत्ति] होने से [तस्स अम्मा पिउहिं] उसके मातापिताने [तिविट्ठुत्ति नामं कयं] त्रिपृष्ठ ऐसा नाम रक्खा।

[सो य अम्मापिऊणं]वह माता पिता के लिये [अइसयवल्लहो आसी] अत्यन्त प्रिय था। [कमेण सो तिविट्ठू] क्रम से वह त्रिपृष्ठ [उम्मुक्कबालभावो] बालवय को पार करके [जोव्वणगमणुप्पत्तो] यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ।

[तए णं अस्स] उधर इसका [पुव्वभववेरिओ] पूर्वभव का वैरी [विसाहनंदी जीवो] विशाखनंदी का जीव [अणेगेसु भवेसु भमं भमं] अनेक योनियों में भ्रमण करके [संखपुरसमीवट्टिय] शंखपुर के समीपवर्ती [तुंगगिरिम्मि] तुंगगिरि—तुंग नामक पर्वत में [संखपुरोवद्दवकारगो सीहो जाओ] शंखपुर में उपद्रव करनेवाला सिंहपने से उत्पन्न हुआ।

[एगया तिव्विट्ठुणा] एक समय त्रिपृष्ठने [स सीहो बाहुजुद्धेण मारिओ] उस सिंह को बाहु युद्ध से मार डाला [तयाणंतरं च णं] उसके बाद [तस्स तिविट्ठुस्स] उस त्रिपृष्ठ को [पडिवासुदेवेण संखपुराधीसरेण अस्सग्गीवेण] शंखपुर के राजा अश्वग्रीव नामके प्रतिवासुदेव के [सह युद्धं संजायं] साथ युद्ध हुआ। [तत्थ तेण] उस युद्ध में इसने [अस्सग्गीवस्स सीए] अश्वग्रीव का मस्तक [तण्णिक्खित्तेणेव चक्केण छेइयं] उसीके द्वारा फेंके गये हुए चक्र से काट दिया। [देवेहिं च घुट्ठं] उस समय देवों ने घोषणा की—[एसो तिविट्ठू पढमो वासुदेवो] ये त्रिपृष्ठ प्रथम वासुदेव के रूप में [समुप्पण्णोत्ति]

उत्पन्न हुए हैं। [तओ सव्वे रायाणो] तब सब राजाओं ने [नमिया] वासुदेव को प्रणाम किया [उदइयं अड्ढभरहं] त्रिपृष्ठ ने अर्द्धभरत का राज्य प्राप्त किया [कोडिया सीला बाहाहिं धारिया] एक करोड मन की शिला हाथों से उठा ली ॥२५॥

मूलम्—तए णं से एगया सयणसमयम्मि पवट्टमाणे नाडए सिज्जावालगं एवमाणावीअ जाहेऽहं निद्दिओ होमि ताहे तुवं नट्टगमंडलं निवारेज्जा इय आणावियं तिविट्ठू वासुदेवो नाडगं पेक्खमाणो निद्दावसगओ। निद्दिए वि तम्मि सोइंदियसुहवसंगओ सिज्जापालओ संगीयरसमुच्छिओ णो तं निवारेइ, पच्चुयं कहेइ कुव्वउ नाडगं निस्संकं तेण नाडयं पुव्वमिय पवट्टं आसी।

एवं सिज्जावालगे नाडगरसमुच्छिए समाणे तन्निनाएण तिविट्ठु वासुदेवस्स निद्दा भग्गा। भग्गनिद्दो सो नट्टगनायगं पुच्छीअ—तुवं अहुणावि जं

नाडगं करेसि तं कस्स आणाए? तए णं सो कहीअ सामी! सिज्जावालगस्स आणाए। एवं तस्स वयणं सोच्चा सो तिविट्ठू आसुरुत्तो मिसिमिसेमाणो कोहेण धमधमेंतो उक्कालिज्जमाणं सीसगदवं तस्स सिज्जावालगस्स कण्णेसु पक्खिववावीअ। तए णं सो तिंविट्ठू अणेगाइं जुद्धाइं करिय बहुइं पावकम्माइं समज्जिणिय चुलसीइवाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा अट्ठारसमे भवे सत्तमाए पुढवीए अप्पइट्ठाणे नयरे तेत्तीससागरोवमट्ठिइओ नेरइओ उववन्नो ॥२६॥

शब्दार्थ—[तए णं से एगया] उसके बाद एक बार [सयणसमयम्मि] सोने के समय [पवट्टमाणे नाडए] जब नाटक चल रहा था उस समय [सिज्जावालगं एवमाणावीअ] त्रिपृष्ठ वासुदेव ने शय्यापालक को इस प्रकार आदेश दिया–[जाहेऽहं निद्दिओ होमि]

जब मैं निद्राधीन होजाऊं [ताहे तुवं नट्टगमण्डलं निवारेज्जा] तब तुम नटों को रोक देना [इयआणावियतिविट्ठू वासुदेवो] इस प्रकार की आज्ञा देकर त्रिपृष्ठ वासुदेव [नाडगं पेक्खमाणो निद्दावसगओ] नाटक देखतादेखता सो गया। [निद्दिए वि तम्मि सोइंदियसुहवत्तं] वासुदेव के सो जाने पर भी श्रोत्रेन्द्रिय के सुख के वशीभूत [संगीयरसमुच्छिओ गओ सिज्जापालओ] और संगीत के रस में आसक्त हुए शय्यापालक ने [णो तं निवारेइ] नटों को नहीं रोका [पच्चुय कहेइ ] यही नहीं वरन् उनसे कह दिया कि [कुव्वउ नाडगं निस्संकं] तुम निशंक होकर नाटक किये जाओ [तेण नाडयं पुव्वमिय पवट्टं आसी] इस कारण नाटक पहले की भांति ही चालू रहा।

[एवं सिज्जावालगे] इस प्रकार शय्यापालक के [नाडगरसमुच्छिए समाणे] नाटक रस में मूर्च्छित होजाने पर [तन्निनाएण] नाटक की आवाज से [तिविट्ठूवासुदेवस्स] त्रिपृष्ठ वासुदेव की [निद्दा भग्गा] निद्रा भंग हो गई [भग्गनिद्दो] निद्रा भंग होने पर [सो नट्टगना-

यगं] त्रिपृष्ठवासुदेव ने नटों के नायक को [पुच्छीअ] पूछा [तुमं अहुणा वि] तुम इस समय भी [जं नाडगं करेसि] जो नाटक कर रहे हो [तं कस्स आणाए ?] सो किसकी आज्ञा से ? [तए णं सो कहीअ] तब नटनायकने कहा–[सामी! सिज्जवालगस्स] स्वामिन्! शय्यापालक की [आणाए?] आज्ञा से। [एवं तस्स वयणं सोच्चा] उनके ये वचन सुनकर [सो तिविट्ठू आसुरुत्तो] त्रिपृष्ठ वासुदेव रुष्ट हुआ [मिसिमिसेमाणो कोहेण धमधमेंतो] क्रोध की आग से जल उठा क्रोध से धमधमायमान हो गया। [उक्कालिज्जमाणं] उसने उबलते हुए [सीसगदवं तस्स सिज्जावालगस्स] शीशे को शय्यापालक के [कण्णेसु पक्खिवावीअ] दोनों कानों में डलवा दिया।

[तए णं सो तिविट्ठू] उसके बाद भी त्रिपृष्ट [अणेगाइं जुद्धाइं करीअ] अनेक युद्ध करके [बहुइं पावकम्माइं समज्जिणिय] और बहुत पापकर्मों का उपार्जन करके [चुलसीइवाससयसहस्साइं] चौरासी लाख वर्ष की आयु [सव्वाउयं पालइत्ता] सम्पूर्ण

आयु को भोगकरके [कालमासे कालं किच्चा] कालमास में काल करके [अट्ठारसमे भवे] अठारहवे भव में [सत्तमाए पुढवीए अप्पइट्ठाणे नयरे] सातवीं पृथ्वी अप्रतिष्ठान नामक नरक में [तेत्तीससागरोवमट्ठिइओ नेरइओ उववन्ना] तेत्तीस सागरोपम की स्थितिवाला नारक हुआ ॥२६॥

मूलम्—तए णं से ताओ नरयाओ उव्वट्टिय एगूणवीसइमे भवे एगम्मि महावणे सीहत्तेण उववण्णो ॥२७॥

शब्दार्थ—[तए णं से] उसके बाद वह [ताओ नरयाओ उव्वट्टिय] उस नरक से निकल कर नयसार का जीव [एगूणवीसइमे भवे] उन्नीसवें भव में [एगम्मि महावणे] एक बडे वनमें [सीहत्तेण उववन्नो] सिंह के रूप में उत्पन्न हुआ ॥२७॥

मूलम्—तए णं सो सीहो मरिऊण वीसइमे भवे चउत्थे नरए नेरइयत्ताए उववन्नो ॥२८॥

शब्दार्थ—[तए णं सो सीहो मरिऊण] उसके बाद वह सिंह मरकर [वीसइमे भवे] वीसवें भव में [चउत्थे नरए] चौथी नरक में [नेरइयत्ताए उववन्नो] नारकी रूप से उत्पन्न हुआ ॥२८॥

मूलम्—तए णं से चउत्थनरयाओ उव्वट्टिय अणेगासु तिरियमणुयाइ-गईसु भमंतो नरए उववन्नो। तओ उव्वट्टिय सो नयसारजीवो एगवीसइमे भवे अवरविदेहे मूयाए रायहाणीए धणंजयस्स रण्णो धम्मधारिणीए धारिणीए देवीए कुच्छिंसि चउद्दससुमिणसूइओ विलक्खणो विलक्खणपभावजुत्तो पुत्त-त्तेण उववन्नो। नाणाविहमहोच्छवेहिं निव्वत्ते सूइजायकम्मकरणे संपत्ते बार-साहदिवसे अम्मापिऊहिं तस्स पियमित्तेति नामं कयं। सो य बालो पंचधाईहिं परिवालिज्जमाणो सुक्कदलबितिया चंदोविव कमेण वुड्ढिं गओ। उम्मुक्कबालभावो

जोव्वणगमणुप्पत्तो छक्खंडाहिवई चक्कवट्टी राया जाओ ॥२९॥

शब्दार्थ—[तए णं सो चउत्थनरयाओ उव्वट्टिय] उसके बाद चौथे नरक से निकलकर [अणेगासु तिरियमणुयाइगईसु] अनेक तिर्यंच और मनुष्य आदि की योनियों में [भमंतो नरए उववन्नो] भ्रमण करता हुआ वह फिर नरक में उत्पन्न हुआ। [तओ उव्वट्टिय] नरक से निकलकर [सो नयसारजीवो एगवीसइभवे] वह नयसार का जीव इक्कीसवें भवमें [अवरविदेहे] पश्चिम विदेह की [मूयाए रायहाणीए] मूका नामक राजधानी में [धणंजयस्स रण्णो] धनंजय राजा की [धम्मधारिणीए धारिणीए देवीए] धर्मधारिणी धारिणी देवी के [कुच्छिंसि] उदर में [चउद्दससुमिणसूइओ] चौदह स्वप्नों से सूचित [विलक्खणो] विशिष्ट लक्षणों से युक्त [विलक्खणपभावजुत्तो] विलक्षण प्रभाव से युक्त [पुत्तत्तेण उववन्नो] पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ [नाणाविहमहोच्छवेहिं निव्वत्ते] तब नाना प्रकार के महोत्सवों के साथ उसका [सूइजायकम्मकरणे संपत्ते] सूतिकर्म तथा जातकर्म

नामक संस्कार किया गया। इनके सम्पन्न होने पर [बारसाहदिवसे] बारहवां दिन आने पर [अम्मापिऊहिं तस्स पियमित्तेत्ति नामं कयं] माता–पिता ने उसका नाम प्रियमित्र रक्खा। [सो य बालो पंचधाईहिं परिवालिज्जमाणो] वह बालक पांच धायों द्वारा पालन किया जाता हुआ [सुक्कदलबितिया चंदोविव कमेण वुड्ढिं गओ] शुक्लपक्ष की द्वितीया के चंद्रमा के समान क्रम से बढता हुआ। [उम्मुक्कबालभावो] बालवय को उल्लंघन करके [जोव्वणगमणुप्पत्तो] युवावस्था को प्राप्त हुआ। [छक्खंडाहिवइ] आगे चलकर वह छहों खण्डों का अधिपति [चक्कवट्टी राया जाओ] चक्रवर्ती राजा हुआ ॥२९॥

मूलम्——तए णं से पयं परिवालेमाणे चक्कवट्टिसिरिमणुभवमाणे एगया मूयाए नयरीए उज्जाणे समागयस्स पोट्टिलायरियस्स धम्मदेसणं सोच्चा संजाय-संवेगो पुत्तं रज्जे ठवेत्ता तयंतिए पव्वइओ। तए णं से पियमित्तमुणिकोडि-वासाइं उक्किट्ठं तवं तवित्ता चउरासीइलक्खपुव्वाउयं परिपालिय कालमासे

कालं किच्चा सत्तमे महासुक्कदेवलोके देवत्तेणं उववन्ने। तओ आउभवट्ठिइक्खएणं चुओ सो अणेगभवं किच्चा बावीसमे भवे वच्छदेसे कोसंबीणयरीए पोट्टाभिहस्स रण्णो पउमावईए देवीए कुच्छिंसि पुत्तत्ताए उववण्णो। गब्भगयंसि तंसि सुभिक्खाइणा सयलजणाणं पोट्टं भरियं। तेण अम्मापिऊहिं तस्स पोट्टलत्ति नामं कयं। सो य उम्मुक्कबालभावो जोव्वणगमणुप्पत्तो बावत्तरिकलाकुसलो जाओ। एगया कयाइं पासायगवक्खे उवविट्ठो सो नयरसोहं पासंतो रायपहे गच्छमाणं मुहोवरि सदोरयमुहवत्थियं धारेमाणे णाणनिहाणं तवकिरियखाणिं मुणिं दट्ठूण संजायसंवेगो विगयाविसयवेगी उज्जाणम्मि समवसरियसुदंसणायरियसमीवे धम्मं सोच्चा पव्वइओ ॥३०॥

शब्दार्थ—[तए णं से] उसके बाद राजा होकर [पयं परिवालेमाणे] प्रजा का परि-

पालन करता हुआ और [चक्कवट्टिसिरिमणुभवमाणे] चक्रवर्ती की लक्ष्मी का उपभोग करता हुआ [एगया] एक समय [मूयाए नयरिए उज्जाणे] मूकानगरी के उद्यान में [समागयस्स पोट्टिलायरियस्स] पधारे हुए पोट्टिलनामके आचार्य का [धम्मदेसणं सोच्चा] धर्मोपदेश श्रवणकर [संजायसंवेगो] वैराग्ययुक्त होकर [पुत्तं रज्जे ठवित्ता] तथा अपने पुत्र को राज्य पर स्थापित करके [तयंतीए पव्वइओ] उनके समीप प्रव्रजित हो गया। [तए णं से पियमित्तमुणी] उसके बाद प्रियमित्र मुनि [कोडिवासाइं] करोड वर्ष तक [उक्किट्ठं तवं तवित्ता] उत्कृष्ट तपस्या करके [चउरासीइ लक्खपुव्वाउयं] चौरासी लाख पूर्व की आयु [परिपालिय] भोगकर [कालमासे कालं किच्चा] काल के समय काल करके [सत्तमे महासुक्कदेवलोए] सातवें महाशुक्रदेवलोक में [देवत्तेण उववन्नो] देवरूप से उत्पन्न हुआ।

[तओ आउभवट्ठिइक्खएणं] उसके बाद देवलोक से आयु भव और स्थिति के

क्षय होने पर [चुओ] चवकर [सो अनेगभवं किच्चा] उसने अनेक भव किये फिर गिनने योग्य [बाइसमे भवे वच्छदेसे कोसंबी नयरीए] बाइसवें भव में वत्स नामक देश में कोशाम्बी नगरी में [पोट्टाभिहस्स रण्णो] पोट्टनामक राजा की [पउमावईए देवीए] पद्मावती नामक देवी के [कुच्छिंसि] उदर में [पुत्तत्ताए उववण्णो] पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ।

[गब्भगयंसि तंसि] जब वह गर्भ में था तब [सुभिक्खाइणा] सुभिक्षा आदि द्वारा उसने [सयलजणाणं पोट्टं भरियं] समस्त जनता का पेट भरा [तेण अम्मापिऊहिं तस्स पोट्टिलत्ति नामं कयं] इस कारण माता पिता ने उसका नाम पोट्टिल रक्खा। [सो य उम्मुक्कबालभावो] बालवय को पूर्ण करके [जोव्वणगमणुप्पत्तो] जब यौवनवय को प्राप्त हुआ तो [बावत्तरिकलाकुसलो जाओ] वह बहत्तर कलाओं में कुशल हो गया।

[एगया कयाइ] एक बार कभी [पासायगवक्खे] प्रासाद के गवाक्ष में [उवविट्ठो] बैठा हुआ [सो नयरसोहं पासंतो] वह नगर की शोभा देख रहा था। [रायपहे गच्छ-

माणं] उस समय उसने राजमार्ग में जाते हुए [मुहोवरिसदोरयमुहवत्थिधारेमाणं] मुख पर डोरा सहित मुखवस्त्रिका धारण किये हुए [नाणणिहाणं] ज्ञान के निधान [तवकिरियखाणिं मुणिं] और तपश्चर्या तथा क्रिया की खान मुनि को [दट्ठूण] देख-कर [संजायसंवेगो] उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया और [विगयविसयवेगो] विषयों का वेग नष्ट हो गया [उज्जाणम्मि समवसरिय] वह उद्यान में जाकर, [सुदंसणायरिय समीवे धम्मं सोच्चा पव्वइओ] सुदर्शन नामक आचार्य से धर्म श्रवण कर उनके पास प्रव्रजित हो गया॥३०॥

मूलम्—तए णं सो पोट्टिलो मुणी तिव्वतवसंजमाराहणओ मुहं मुहुं वीसइ ठाणसमाराहणेणं ठाणगवासित्तं समाराहित्ता अणवरयं मासभत्तेणं कोडि-वारसाइं उग्गं तवं तवित्ता चउरासीइलक्खपुव्वाइं सव्वाउयं पालइत्ता सुहेण झाणेण पसत्थेणं अज्झवसाणेण कालमासे कालं किच्चा तेवीसइमे भवे सह-

स्सारे कप्पे सव्वट्ठविमाणे एगूणवीससागरोवमट्ठिइय देवत्तेण उववन्नो ॥३१॥

शब्दार्थ—[तए णं सो पोट्टिलो मुणी] उसके बाद पोट्टिलमुनि ने [तिव्वतवसंजमाराहणओ] तीव्र तप और संयम की आराधना से तथा [मुहुं मुहुं वीसइठाणसमाराहणेणं] बार-बार वीस स्थानों का सेवन करके [ठाणगवासित्तं समाराहित्ता] तथा स्थानकवासिपने की आराधना करके [अणवरयं मासभत्तेणं] निरन्तर मासखमण की तपस्या करके [कोडिवरिसाइं उग्गं तवं तवित्ता] एक करोड वर्ष तक उग्रतप करके [चउरासीइलक्खपुव्वाइं] चौरासी लाख पूर्व की [सव्वाउयं पालइत्ता] समग्र आयु भोगकर [सुहेण झाणेण] शुभध्यान और [पसत्थेणं अज्झवसाणेण] प्रशस्त अध्यवसाय के साथ [कालमासे कालं किच्चा] काल के समय काल करके [तेवीसइमे भवे] तेवीसवें भव में [सहस्सारे कप्पे] सहस्रारनामक कल्प के [सव्वट्ठविमाणे] सर्वार्थनामक विमान में [एगूणवीससागोवमट्ठिइय]

मूलम्—तए णं से देवे आउभवट्ठिइक्खएणं ताओ देवलोगाओ चविय चोवीसइमे भवे अस्सिं चेव भरयक्खित्ते सालदेसे रहपुरनयरे पियमित्तस्स रण्णो विमलाए देवीए कुच्छिंसि पुत्तत्ताए उववण्णो। तस्स अम्मापिऊहिं विमलेत्ति नामं कयं। कमेण उम्मुक्कबालभावो जोव्वणगमणुप्पत्तो सो पिऊणा रज्जे अभिसित्तो पुढवीं सासीअ। एगया सो विमलो राया कीडिउं वणं पत्तो। तत्थ एगं मिगं पासबद्धं मियमाणे पासिय तं पासाओ विमोइयं निब्भयं करीअ।

तए णं से सव्वत्थे रज्जे अमारी घोसणं घोसीअ। तेण सो विमलो राया महइमहालयं विमलं सुकयं आवज्जीअ। भावेइ य दया चेव सयलाणं सुकडाणं कम्माणं मूलंति सव्वसत्थेसु पडिवाइयं नो एत्थ कस्सवि विरोहो। अवि य दया परमं रयणं, दया धम्मसरिसो अण्णो उत्तमो धम्मो न होइ। दया चिंता-

मणी विव चिंतियं फलं देइ, कप्पलएव वंछियट्ठं पयच्छइ, कामधेणूविव कामं पपूरेइ, किं बहुणा? इमं धम्मसिरोमणिं दयं पालेमाणो सुहियओ जीवपाहिओ चाउरंतसंसारकंतारे चउरासीइलक्खजीवजोणिदुप्पहं वीइक्कमि य सयलपाणिपीहणिज्जं मणुस्सभवसुट्ठाणं पावेइ। तत्थ मुत्तिमहिला दयागुणसमलंकियं तं जीवं आकरिसेइ। तेण स सासयसुहभागी हवइ॥३२॥

शब्दार्थ–[तए णं से देवे] उसके बाद वह देव [आउभवट्ठिइक्खएणं] आयु भव और स्थिति का क्षय होने से [ताओ देवलोगाओ चविय] उस देवलोग से चवकर [चोवीसइमे भवे] चौवीसवें भव में [अस्सिं चेव भरयक्खित्ते] इसी भरतक्षेत्र के [सालदेसे रहपुरनयरे] शाल्वदेश में, रथपुर नामक नगर में [पियमित्तस्स रण्णो] प्रियमित्र राजा की [विमलाए देवीए] विमला नामक देवी के [कुच्छिंसि पुत्तत्ताए उववन्नो] उदर

से पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। [तस्स अम्मापिऊहिं विमलेत्ति नामं कयं] माता पिता ने उसका नाम विमल रक्खा [कमेण उम्मुक्कबालभावो] क्रमशः बालत्व को पार करके [जोव्वणगमनुप्पत्तो] वह युवा हुआ। [सो पिऊणा रज्जे अभिसित्तो] तब वह पिता के द्वारा राज्याभिषिक्त किया गया [पुढवी सासीअ] वह पृथ्वी का शासन करने लगा। [एगया सो विमलो राया] एक समय वह विमल राजा [कीडिउं वणं पत्तो] क्रीडा करने के लिए वनमें गया। [तत्थ एगं मिगं पासबद्धं मियमाणं] वहा एक मृग को जाल में फंसा और मरणासन्न [पासिय] देखकर [तं पासाओ विमोइय निब्भयं करीअ] उसे जाल से छुडाया और निर्भय किया।

[तए णं से सव्वत्थरज्जे] उसके बाद उसने समस्त राज्य में [अमारी घोसणं घोसीअ] अमारी की घोषणा करवाई। [तेण सो विमलो राया महइमहालयं] इससे विमल राजा को अत्यंत महान् [विमलं सुकयं आवज्जीअ] पुण्य की प्राप्ति हुई। [भावेइ य

दया चेव सयलाणं] वह इस प्रकार की भावना किया करता था कि दया ही सकल पुण्यकर्मों का [मूलंति] मूल है। [सव्वसत्थेसु पडिवाइयं] ऐसा सर्व शास्त्रों में प्रतिपादित है [नो एत्थ कस्सवि विरोहो] दया के विषय में किसी का विरोध नहीं हैं। [अवि य दया परमं रयणं] इतना ही नहीं दया परम रत्न है [दया धम्मसरिसो] दया धर्म के समान [अण्णो उत्तमो धम्मो न होइ] अन्य कोई उत्तम धर्म नहीं हैं [दया चिंतामणी विव] दया चिन्तामणि के समान [चिंतियं फलं देइ] चिन्तित फल देती है [कप्पलएव्व वंछियटुं] कल्पलता के समान सब कामनाओं को [पयच्छइ] पूर्ण करती है [कामधेणू विव कामं पपूरेइ] कामधेनू के समान सब कुछ देती है [किं बहुणा?] अधिक क्या कहें, [इमं धम्मसिरोमणिं दयं] धर्मों में शिरोमणि इस दया को [पालेमाणो] पालता हुआ [सुहियओ] शुद्ध अन्तःकरणवाला [जीवपहिओ] जीवरूपी पथिक [चाउरंतसंसारकंतारे] चारगतिरूप संसारकान्तार में [चउरासीइलक्खजीवजोणि] चौरासीलाख जीव योनिरूप

[दुप्पहं वीइक्कमिय] दुर्गम मार्ग को लांघकर [सयलपाणिपीहणिज्जं] समस्त प्राणियों द्वारा इच्छा करने योग्य [मणुस्सभवसुट्ठाणं] मनुष्यभवरूपी सुन्दर स्थान को [पावेइ] प्राप्त करता है। [तत्थ मुत्तिमहिला दया गुणसमलंकियं तं जीवं आकरिसेइ] मनुष्य भव में दयागुण से विभूषित उस जीव को मुक्तिरूपी महिला अपनी ओर आकर्षित करती है। [तेण स सासयसुहभागी हवइ] इस कारण वह शाश्वत सुख का भागी हो जाता है।

कल्लाणकोडी कारणी, दुहगइ दुहनिट्ठवणी,
संसारजलतारणी, एगंत होइ जीवदया ॥१॥
एवं खु नाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचणं।
अहिंसासमयं चेव, एयावंतं वियाणिया ॥२॥

मूलम्—एवं दयाभावेण भावियप्पा सो कालमासे कालं किच्चा पंच-
वीसइमे भवे छत्ताए णयरीए जियसत्तुस्स रण्णो भद्दाए देवीए कुच्छिंसि पुत्त-

त्ताए उववन्नो। सुहे दिने माऊपिऊहिं तस्स णंदेति नामं कयं। कमेण उम्मुक्कबालभावो जोव्वणगमणुप्पत्तो सो नंदकुमारो पिउणा रज्जे अभिसित्तो राया जाओ। सो य णायणीईए पयं व पयं पालेमाणो चउवीसइलक्खवरिसाइं रज्जसुहं परिभोगियं जायसंवेगो पोट्टिलायरियसमीवे पव्वज्जं पडिवज्जिय अणगारो जाओ ॥२३॥

शब्दार्थ—[एवं दयाभावेण] इस प्रकार दया भाव से [भावियप्पा] भावित आत्मा-वाला [सो] नयसार का वह जीव [कालमासे कालं किच्चा] कालमास में काल करके [पंचवीसइमे भवे] पच्चीसवें भव में [छत्ताए नयरीए] छत्रा नाम की नगरी में [जियसत्तुस्स रण्णो] जितशत्रु राजा की [भद्दाए देवीए कुच्छिंसि] भद्रा नामकी रानी के उदर में [पुत्तत्ताए उववन्नो] पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ। [सुहे दिने] शुभ दिन में [माऊ-

पिऊहिं तस्स नंदेति नामं कयं] माता-पिता ने उसका नाम नंद रक्खा। [कमेण उम्मुक्क-बालभावो] नंदकुमार धीरे धीरे बाल्यकाल पूर्ण करके [जोव्वणगमणुप्पत्तो] युवावस्था को प्राप्त हुआ [सो णंदकुमारो पिऊणा रज्जे अभिसित्तो राया जाओ] पिताने उसका राज्याभिषेक किया। वह राजा हो गया [सो य णायणीईए] वह राजा न्याय--नीति के साथ [पयं व पयं पालेमाणो] सन्तान की तरह प्रजा का पालन करता हुआ [चउवीसइलक्खवरिसाइं] चोवीसलाख वर्षों तक [रज्जसुहं परिभोगिय] राज्य का सुख भोगकर [जाय संवेगो] वह संवेगवान हुआ [पोट्टिलायरियसमीवे पव्वज्जं पडिवज्जिय] पोट्टिलाचार्य के पास दीक्षा अंगिकार करके [अणगारो जाओ] मुनि हो गया ॥३३॥

मूलम्--तए णं से अणगारे पंचसमिइसमिओ तिगुत्तिगुत्तो गुत्तो गुत्तिंदिओ गुत्तबंभयारी जिइंदिओ जिय कोहमाणमायलोहो चत्तमाया नियाणमिच्छादंसणसल्लो जियरागदोसो चत्तावज्झाणो सण्णा चउक्करहिओ विगहावज्जिओ

मणवयकायदंडमुक्को धम्मपरायणो उवसग्गचउक्के समुवट्ठिए वि अक्खलियसंजमुज्जमो महव्वयजुत्तो पंचविहसंज्झायसत्तो छज्जीवणिगायरक्खणदक्खो सत्तभयट्ठाणमुक्को अट्ठमयट्ठाणवियलो नवविहबंभचेरगुत्तिगुत्तो दसविह समणधम्मधरो एगारसंगविऊ बारसविह तवजुत्तो सत्तरसविह संजमसंपन्नो बावीसविह दुस्सहपरीसहसहणधीरो निरीहो बहुविहतवं तवीअ। एवं इमो महातवस्सी मुणिवरो अरिहंतभत्तिप्पभिइवीसइठाणेसु पत्तेयं ठाणं पुणो पुणो समाराहिय दुल्लहं तित्थयरनामगोत्तकम्मं समुवज्जीअ ॥३४॥

शब्दार्थ—[तए णं से अणगारे] तदनंतर वह अणगार [पंचसमिइसमिओ] पांच समितियों से समित [तिगुत्तिगुत्तो गुत्तो] तीन गुप्तियों से गुप्त, [गुत्तिंदिओ] गुप्तइन्द्रियों का गोपन करनेवाले [गुत्तबंभयारी] गुप्तब्रह्मचारी [जिइंदिओ] जितेन्द्रिय [जियकोहमाण-

मायलोहो] क्रोध, मान, माया और लोभ को जीतनेवाले [चत्तमायानिदानमिच्छादंसणसल्लो] माया मिथ्यात्व और निदानशल्य का त्याग करनेवाले [जियरागदोसो चत्तावज्झाणो] रागद्वेष को जीतनेवाले अप्रशस्त ध्यान के त्यागी [सण्णा चउक्करहिओ] आहार आदि चार संज्ञाओं से रहित [विगहावज्जिओ] चार विकथाओं से वर्जित [मणवयकायदंडमुक्को] मन, वचन और काया के दण्ड से विमुक्त [धम्मपरायणो] धर्मपरायण [उवसग्गचउक्के] चार प्रकार के उपसर्ग के [समुवट्ठिए वि] उपस्थित होने पर भी [अक्खलिय संजमुज्जमो] संयम में अस्खलित रूप से उद्यम करनेवाले [महव्वयजुत्तो] महाव्रतों से युक्त [पंचविह सज्झायसत्तो] पांच प्रकार के स्वाध्याय में लीन [छज्जीवणिगायरक्खणदक्खो] षड्जीवनिकाय के रक्षण में दक्ष [सत्तभयट्ठाणमुक्को] सात प्रकार के भय के स्थानों से मुक्त [अट्ठमयट्ठाणवियलो] आठ मदस्थानों से रहित [नवविहबंभचेरगुत्तिगुत्तो] ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों से गुप्त [दसविहसमणधम्मधरो] दस प्रकार के श्रमण धर्म

को धारण करनेवाले [एगारसंगविउ] ग्यारह अंगों के ज्ञाता [बारसविहतवजुत्तो] बारह प्रकार के तप से युक्त [सत्तरसविहसंजमसंपन्नो] सत्रह प्रकार के संयम से संपन्न [बावीसविहदुस्सहपरिसहसहणधीरो] बाइस प्रकार के दुस्सह परिषह को सहन करने में धीर [निरीहो बहुविह तवं तवीअ] निष्काम होकर अनेक प्रकार के तप तपने लगे [एवं इमो महातवस्सी] इस प्रकार इन महातपस्वी मुनिवरने [अरिहंतभत्तिप्पभिइवीसइट्ठाणेसु] अर्हद् भक्ति आदि वीस स्थानों में से [पत्तेयं ठाणं पुणो पुणो] प्रत्येक स्थान का पुनः पुनः [समाराहिय] आराधन करके [दुल्लहं तित्थयरनामगोत्तं कम्मं समुवज्जीअ] दुर्लभ तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन किया ॥३४॥

मूलम्—अह य अंते दंतिंदिओ नितंतसंतसंतो नंदमुणी एवंविहं आराहणं आराहेइ ॥३५॥

शब्दार्थ—[अह य अंते दंतिंदिओ] उसके वाद इन्द्रियों का दमन करनेवाले

[नितंतसंतसंतो] और क्षान्ति आदि गुणों के सेवन से [नंदमुणी एवंविहं आराहणं आराहेइ] अत्यन्त शान्तचित्तवाले नन्दमुनिने अंत समय में इस प्रकार की आराधना की॥३५॥

मूलम्—1 कालविणयाइ—अट्ठप्पगारे नाणायारे जे अइयारा जाया, ते मणवयकाएहिं अहं निंदामि। २ निस्संकियाइं—अट्ठप्पगारे दंसणायारे जे केइ अइयारा जाता ते सयले मणवयकाएहिं वोसिरामि। ३ समिइगुत्तिरूवे अट्ठप्पगारे चरित्तायारे जे केइ अइयारा जाया ते सव्वे मणवयकाएहिं निंदामि। ४ बज्झब्भंतरभेयभिन्नं दुवालसविहं तवं चरमाणस्स मज्झ जाणमाणस्स वा अजाणमाणस्स वा जो कोइ अइयारो जाओ तं मणवयकाएहिं निंदामि। ५ धम्मायरणे केण वि पयारेण जं किंचि संतंपि वीरियं तं वीरियायाराइयारं मणवयकाएहिं निंदामि। ६ लोहाओ वा मोहाओ वा सुहुमाणं वा बायराणं वा

पाणीणं मए जा विराहणा कया, तं मणवयकाएहिं वोसिरामि। ७ हासभयकोहलोहाईसु जइ मुसाभासणं कडं तं सव्वं मणसा वयसा कायसा निंदामि। ८ रागाओ वा दोसाओ वा अप्पं वा बहुयं वा सचित्तं वा अचित्तं वा एगओ वा परिसागओ वा जं किं च अदत्तं मए गहियं तं सव्वं वोसिरामि। ९ पुव्वं दिव्वमाणुसतेरिच्छं मेहुणं जइ मए मणसा वाएणं काएणं करणकारणाणुमोयणेणं सेवियं तं सव्वं मणवयकाएहिं तिविहं तिविहेणं वोसिरामि। १० लोहदोसाओ धणधन्नहिरण्णवत्थुदुपयचउप्पयपभिईणं अचित्ताणं वा सचित्ताणं वा जेसिं केसिं वत्थूणं अप्पो वा बहुओ वा पुव्वं परिग्गहिओ तं सव्वं तिविहं तिविहेणं मणवयकायजोगेणं वोसिरामि। ११ पुव्वं इत्थीपसुदासदासीधणधन्नहिरण्ण सुवण्णभवणवसणाईसु ममत्तं कयं तं सव्वं वोसिरामि। १२ जिब्भिंदिय-

वसंगएणं मए जइ रत्तीए चउव्विहाणं असणपाणखाइमसाइमाणं आहारो आहरिओ तं मणवयकाएहिं निंदामि। १३ कोहमाणमायालोहरागदोसकलहअब्भक्खाणपेसुन्नं परपरिवायाइयं जं किंचि मए आयरियं तं सव्वं मणवयकाएहिं वोसिरामि। १४ जइ मए कसायकलुसियत्तेण एगिंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया हणिया परिताविया उवद्दविया ठाणाओ ठाणं संकामिया फरुसवयणेहिं उद्धंसिया, देवा वा मणुस्सा वा तिरिक्खा वा विराहिया ते सव्वे जीवे खामेमि, खमंतु मं ते सव्वे जीवा, नो अज्जप्पभिइं एवं करिस्सामि त्ति अकरणयाए पच्चक्खामि। १५ अज्जप्पभिइं च णं अहं सयलं छज्जीवनिकायं समाणं पासेमि। सव्वे जीवा समदंसिस्स मज्झ भायरा एवं संति। १६ रूवजोव्वणधणकणगपियजणसमागमणाइं पवणखुद्धसिंधुतरंगा इव

चंचलाणि विज्जुकचवलाणि कुसग्गट्ठिय ओसबिन्दू विव अथिराणि य संति तत्थ को अणुरंजइ। १७ जम्मजरामरणणाणाविहाहिवाहिघत्थाणं पाणीणं तावकलावगिरि भेयणकुलिसं अरिहंतभासियं धम्मं विणा अस्सिं अवारे असारे संसारे अन्नं किंपि नालं ताणाए वा सरणाए वा हवइ १८ निमित्तमासाइय सयणा परयणा हवंति परयणा य सयणा हवंति न एत्थ जीवस्स कोवि सयणो वा परयणो वा, जइ एवं ताहे को विवेगी तत्थ मणायंपि मणं संजाएज्जा। १९ जीवा एगल्लो एवं कम्मसहयरो जायइ मरइ य, नो तेण सह कोइ आगच्छइ, गच्छइ य, नियकम्मोवणीयं चेव सुहं वा दुहं वा अणुहवइ, न अन्नो कोइ तं सुहयइ दुहयइ वा। २० जहत्थविवेगओ उ सरीरप्पाणं परोप्परं गिहगिहीणं विव अच्चंत भेओ विज्जइ, एवं धणधन्नपरियणाइपयत्थाणं

अप्पस्स य भिसं भेओ, तहवि मोहमुच्छिया मूढा जणा मुहेव अणत्तभूएसु सरीराईसु मुज्झंति, नो पुण जाणंति सरीरे अन्नं अप्पा अन्नोत्ति अत्थिमेयमंससोणियसणाउमुत्तपुरिसपुण्णे नवद्दारस्सवंतमले अमुइ आगारे अस्सिं सरीरे मइमं मणुस्सो कहं मुज्झिज्जा? अहो! मोहविजंभियं, जेणाक्कंतो जणो णो विजाणाइ, जं ओहिए पुण्णाए भाडगभवणमिव पियंतरंपि इमं सरीरं अवस्समेव चयणिज्जं हवइ, जयणसएण लालियं पालियंपि इमं सरीरं विणस्सरमेव अत्थि। देवाणं पलिओवमसागरोवमट्ठिइयं सरीरं होइ तंपि एगदिवसे चयणिज्जमेव हवइ, ताहे अम्हारिसाणं सरीरस्स का गणणा? एयारिसे खणियट्ठिइए सरीरे को मइमं मुज्झिज्जा? अओ धीरपुरिसेणं सरीरे एवं चयणिज्जं जेण पुणो सरीरं नो भवेज्जा, एवं मरियव्वं जेण पुणो मरणं न भवेज्जा ॥३६॥

शब्दार्थ—[कालविणयाइ] काल विनय आदि [अट्ठप्पगारे णाणायारे] आठ प्रकार के ज्ञानाचार में [जे अइयारा जाया] जो अतिचार लगे हों [ते मणवयकाएहिं अहं निंदामि] मैं मन, वचन काय से उनकी निंदा करता हूँ।

२ [निस्संकियाइ] निःशंकित आदि [अट्ठप्पगारे दंसणायारे] आठ प्रकार के दर्शन के अतिचारों में [जे केइ अइयारा जाता] जो कोई भी अतिचार हुए हों [ते सयले मणवयकाएहिं] तो उन सबका मन वचन और काया से [वोसिरामि] त्याग करता हूं।

३ [समिइगुत्तिरूवे] पांच समिति तीन गुप्तिरूप [अट्ठप्पगारे चारित्तायारे] आठ प्रकार के चारित्राचार में [जे केइ अइयारा जाया] जो कोई अतिचार लगे हों [ते सव्वे मणवयकायेहिं] उन सब की मन वचन और काया से [निंदामि] निन्दा करता हूँ।

४ [बज्झब्भंतरभेयभिन्नं] बाह्य और आभ्यंतर भेदवाले [दुवालसविहं तवं चरमाणस्स] बारह प्रकार के तप का आचरण करते हुए [मज्झ जाणमाणस्स वा अजाण-

माणस्स वा] जान में या अजान में [जो कोई अईयारो जाओ] जो कोई अतिचार हुआ हो, [तं मणवयकाएहिं निंदामि] मन वचन काया से उसकी निंदा करता हूँ।

५ [धम्मायरणे केण वि पयारेण] धर्म के आचरण में किसी भी प्रकार से [जं किंचि संतंपि वीरियं] किसी भी वीर्य का गोपन किया हो तो [तं वीरियायाराइयारं] उस वीर्याचार के अतिचारों की [मणवयकाएहिं निंदामि] मन वचन काया से निंदा करता हूँ।

६ [लोहाओ वा मोहाओ वा] लोभ से या मोह से [सुहुमाणं वा बायराणं वा] सूक्ष्म अथवा बादर [पाणिणं मए जा विराहणा कया] प्राणियों की मैंने जो विराधना की हो तो [तं मणवयकाएहिं वोसिरामि] उसका मन वचन काया से त्याग करता हूँ।

७ [हासभयकोहलोहाईसु] हास, भय, क्रोध, या लोभ आदि किसी भी कारण से [जइ मुसाभासणं कडं] यदि मृषावाद का सेवन किया हो [तं सव्वं मणसा वयसा कायसा निंदामि] तो मन वचन काया से उन सबकी निंदा करता हूँ।

८ [रागाओ वा दोसाओ वा] राग से अथवा द्वेष से [अप्पं वा बहुयं वा] अल्प या बहुत [सचित्तं वा अचित्तं वा] सचित्त अथवा अचित्त [एगओ वा परिसागओ वा] अकेले में या जनसमूह में [जं किंच अदत्तं मए गहियं तं सव्वं वोसिरामि] रहकर जो भी अदत्त ग्रहण किया हो उस सबका परित्याग करता हूँ।

९ [पुव्वं दिव्वमाणुसतेरिच्छं मेहुणं] पहले देव मनुष्य या तिर्यंच सम्बन्धी मैथुन का [जइ मए मनसा वाएण काएणं] मन वचन काया से [करणकारणाणुमोयणेणं सेवियं] कृत कारित या अनुमोदना से यदि सेवन किया हो [तं सव्वं मणवयकायजोगेहिं] उन सब का मन वचन और काय योग से [तिविहं तिविहेणं वोसिरामि] तथा तीन करण तीन योग से उसका त्याग करता हूँ।

१० [लोहदोसाओ] लोभदोष से प्रेरित होकर [धणधन्नहिरण्णसुवण्णवत्थुदुपयचउपयपभिईणं] धन, धान्य, हिरण्य, सुवर्ण, वस्तु, द्विपद, चतुष्पद आदि [अचित्ताणं वा

सचित्ताणं वा] अचित्त अथवा सचित्त [जेसिं केसिं वत्थूणं] जिन किन्हीं वस्तुओं का [अप्पो वा वहुओ वा] अल्प या बहुत [पुव्वं परिग्गहो परिग्गहियं तं सव्वं] जो पूर्व काल में परिगृहित किया हो उन सब का [तिविहं तिविहेणं मणवयकायजोगेणं वोसिरामि] मन वचन कायरूप तीन करण तीन योग से परित्याग करता हूँ।

११ [पुव्वं इत्थीपसुदासदासीधणधन्नहिरण्णसुवण्णभवणवसणाईसु] स्त्री, पशु, दास, दासी, धन धान्य, हिरण्य, सुवर्ण, भवन वस्त्र आदि में [ममत्तं कयं तं सव्वं वोसिरामि] जो ममत्व किया हो तो उन सब का त्याग करता हूँ।

१२ [जिब्भिंदियवसंगएण] जिह्वा इन्द्रिय के वशीभूत होकर [मए जइ रत्तीए] यदि मैंने रात्रि में [चउव्विहाणं असणपाणखाइमसाइमाणं] अशनपान–खाद्य–स्वाद्य-रूप चार प्रकार का [आहारो आहरिओ तं मणवयकाएहिं निंदामि] आहार किया हो तो मन वचन काया से उसकी निंदा करता हूँ।

१३ [कोहमाणमायालोहरागदोसकलहअब्भक्खाणे पेसुन्नपरपरिवायाइयं] क्रोध, मान, माया लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान पैशुन्य, परपरिवाद आदि किसी भी प्रकार का [जं किंचि मए आयरियं] जो कोई पाप का आचरण मैंने किया हो तो [तं सव्वं मणवयकायेहिं वोसिरामि] उन सब का मन, वचन, काया से त्याग करता हूँ।

१४ [जइ मए कसायकलुसियत्तेण] यदि मैंने कषाय से कलुषित होकर [एगिंदिया बेइंदिया] एकेन्द्रि द्विन्द्रीय [तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया] त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय [हणिया पारितावियां] इन जीवों का घात किया (विराधना की) हो उन्हे परिताप पहुंचाया हो [उवद्दविया] किसी प्रकार का उपसर्ग किया हो [ठाणाओ ठाणं संकामिया] उन्हें एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर डाल दिया हो [फरुसवयणेहिं उद्धंसिया] कठोर वचन से उनकी भर्त्सना की हो [देवा वा मणुस्सा वा तिरिक्खा वा विराहिया] देवों, मनुष्यों और तिर्यंचों की विराधना की हो तो [ते सव्वजीवे खामेमि] उन सबसे क्षमा याचना करता हूँ।

[खमंतु मं ते सव्वे जीवा] वे सब जीव मुझे क्षमा प्रदान करे [नो अज्जप्पभिइं एवं करिस्सामि] अब से इस प्रकार का व्यवहार नहीं करूँगा। [त्ति अकरणयाए पच्चक्खामित्ति] इस प्रकार अकरण रूप से उसका प्रत्याख्यान करता हूँ।

१५ [अज्जप्पभिइं च णं अहं] आज से मैं [सयलं छज्जीवनिकायं समाणं पासेमि] छषट्जीवनिकाय के सब जीवों को समभाव से देखता हूँ। [सव्वे जीवा समदंसिस्स मज्झ भायरा एव संति] मुझ समदर्शी के लिये सभी जीव बन्धु के समान है।

१६ [रूव जोव्वणधणकणगपियजणसमागमणाइ] रूप, यौवन, धन, सुवर्ण, और प्रियजनों के समागम [पवणखुद्धसिंधुतरंगा इव चंचलाणि] वायु से क्षुब्ध समुद्र की लहरों की तरह चंचल है। [विज्जुव्व चललाणि] बिजली की चमक के समान चपल है। [कुसग्गट्ठिय ओसबिन्दू विव अथिराणि य संति] और कुश की नोक पर स्थित ओस

होगा ? अर्थात् कोई नहीं ।

१७ [जम्मजरामरणणाणाविहाहिवाहिघत्थाणं] जन्म, जरा, मरण तथा नाना प्रकार की आधि–व्याधियों से ग्रस्त [पाणीणं] प्राणियों के [ताव कलावगिरिभेयणकुलिसं] ताप समूह रूप पर्वत को भेदने के लिये वज्र के समान [अरिहंतभासियं धम्मं विणा] अर्हत् भाषित धर्म के अतिरिक्त [अस्सिं अवारे असारे अन्नं] इस अपार व असार संसार में अन्य [किंपि नालं ताणाए वा सरणाए वा हवइ] और कोइ त्राण करनेवाला या शरण देनेवाला नहीं है।

१८ [निमित्तमासाइय सयणा परयणा हवंति] निमित्त मिलने पर स्वजन परजन बन जाते हैं । [परयणा य सयणा हवंति] और परजन भी स्वजन बन जाते हैं [न एत्थ जीवस्स कोवि सयणो वा परयणो वा;] इस संसार में न कोई अपना है, न पराया है [जइ एवं ताहे को विवेगी] और जब यह स्थिति है तो कौन विवेकी [तत्थ मणायंपि मणं संजोएज्जा] उनमें थोडा भी मन लगाएगा ?

१९ [जीवो एगल्लो एव कम्मसहयरो जायइ मरइ य] जीव अकेला ही अपने कृत कर्मों के साथ जन्मता और मरता है [नो तेण सह कोइ अगच्छइ गच्छइ य,] उसके साथ न कोई आता हैं न जाता है। [नियकम्मोवणीयं चेव सुहं वा दुहं वा अणुहवइ] अपने कर्मों से उदय में आये सुख या दुःख का अनुभव करता है। [न अन्नो कोइ तं सुहयइ दुहयइ वा] दूसरा कोई भी सुख या दुःख नहीं पहुँचा सकता।

२० [जहत्थ विवेगओ ३] वास्तविक विवेक दृष्टि से देखा जाय तो [सरीरप्पाणं परोप्परं गिहगिहीणं विव अच्चंत भेओ विज्जइ] शरीर और आत्मा में गृह और स्वामी के समान अत्यन्त भिन्नता है [एवं धणधन्नपरियणाइ पयत्थाणं अप्पस्स य भिसं भेओ] इसी प्रकार धन, धान्य, परिवार आदि भी आत्मा से अत्यन्त भिन्न है [तहवि मोहमुच्छिया मूढा जणा मुहेव अणत्तभूएसु सरीराईसु मुज्झंति] फिर भी मोह से मूर्छित हुए मूढ प्राणी वृथा ही शरीर आदि में आसक्त होते हैं। [नो पुण जानंति सरीरं अन्नं

अप्पा अन्नोत्ति] वे नहीं जानते हैं कि शरीर भिन्न है और आत्मा भिन्न है। [अत्थिमेयमंससोणियसणाउमुत्तपुरीसपुण्णे] यह शरीर अस्थि, मेद, मांस, रुधिर, स्नायु. मूत्र और मल से परिपूर्ण है [नवद्दारस्सवंतमलो] इसमें से नौ द्वारों से अशुचि पदार्थ झरते हैं [असुइ आगारे अस्सिं सरीरे] अशुचि के अगार सम इस शरीर पर [मइमं मणुस्सो कहं मुज्झिज्जा ?] कौन मतिमान् मोहित होगा ? [अहो ! मोहविजंभियं] किन्तु मोह के वशीभूत होकर [जेणाक्कंतो जणो णो विजाणइ] मनुष्य यह नहीं जान पाता कि [जं ओहिए पुण्णाए] अवधि के पूरी होने पर [भाडगभवनमिव] भाडे के मकान के समान [पियतरं पि इमं सरीरं अवस्समेव चयणिज्जं हवइ] अतिशय प्रिय इस शरीर को अवश्य ही त्याग करना पडता है! [जयणसयेण लालियं पालियं पि] इस शरीर का लालनपालन करने के लिये सैकडों यत्न किये जाए [इमं सरीरं विनस्सरमेव अत्थि] फिर भी यह शरीर तो विनाशशील ही है! [देवाणं पलिओवमसागरोपमट्ठिइयं सरीरं होइ] देवों के शरीर पल्योपम और

सागरोपम तक रहनेवाला होता है [तंपि एगदिवसे चयणिज्जमेव हवइ] किन्तु एक न एक दिन उसे भी छोडना ही पडता है। [ताहे अम्हरिसाणं सरिरस्स का गणणा ?] तो फिर हमारे शरीर की क्या गिनती है। [एयारिसे खणियट्ठिइए] ऐसे क्षणस्थायी [सरीरे को मइमं मुज्झिज्जा ?] शरीर पर कौन बुद्धिमान् मोह धारण करेगा [अओ धीरपुरिसेण सरीरं] अतएव-धीर पुरुषों को शरीर का [चयणिज्जं जेण पुणो सरीरं नो भवेज्जा] इस प्रकार त्याग करना चाहिये जिससे पुनः शरीर की उत्पत्ति ही न हो। [एवं मरियव्वं] इस प्रकार मरना चाहिये कि [जेण पुणो मरणं न भवेज्जा] जिससे फिर कभी मरना ही न पडे ॥३६॥

मूलम्–१ दयासायरा विस्सभायरा भगवंतो अरिहंतो मे सरणमत्थु। २ असरीरा जीवघणा सिद्धा भगवंतो मे सरणमत्थु। ३ निक्कारणं जगजीव-जोणी जायरक्खणकज्जसाहवो साहवो मे सरणमत्थु। ४ मुक्करागदोसो केवलि-पन्नत्तो धम्मो मे सरणमत्थु।

एयाणि चत्तारि सरणाणि दुक्खहरणाणि मोक्खकारणाणि मज्झ होंतु। अज्जप्पभिइं मम माया जिनवाणी, पिया निग्गंथो गुरु, देवो जिनदेवो, धम्मो अरिहंतभासिओ, सोयरिया साहुणो, बंधवा साहम्मिया संति, ते विना अण्णे सव्वे वि अस्सिं जगम्मि जालतुल्ला। इमाए चउवीसाए ओइण्णे उसभाई तित्थयरे जिणे य अहं वंदामि नमंसामि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि। जणसंकप्पकप्पतरू तित्थयरनमुक्कारो सयलसत्थसारो संसारीणं पाणीणं बोहिलाहट्ठं संसारच्छेयणट्ठं च हवइ १ झाणानलदड्ढभवपरंपरा संजायकम्मिघणे भगवंते सिद्धे नमंसामि २ भव भयच्छेयणसययतप्परत्तेण धरियपवयणे पंचविहाय पालणसमत्थे आयरिए नमंसामि। ३ समस्सियसमत्थसुए सुयज्झावए उवज्झाए नमंसामि। ४ सवइ-

नासियभवलक्खे सत्तावीससाहूगुणविसारए अट्ठारससहस्ससीलंगरहधारए साहू नमंसामि। ५ एसो पंचणमुक्कारो जगजीवजीवणसारो सव्वपावविणासणगारो सव्वमंगलागारो अत्थि। अज्जप्पभिइं अहं सव्वं सावज्जजोगं जाव जीवं मणोवाक्काएहिं वोसिरामि। जावज्जीवं चउव्विहाहारं वोसिरामि। अंतिमुच्छा-ससमए सरीरं पि वोसिरामि ॥३७॥

शब्दार्थ--[दयासायरा] दया के सागर [विस्सभायरा] विश्व के भ्राता [भगवंतो अरिहंता मे सरणमत्थु] अरिहंत भगवंत मेरे लिए शरण हो।

२ [असरीरा जीवघणा सिद्धा भगवंतो मे सरणमत्थु] शरीररहित जीवघण—जीव प्रदेशमय सिद्ध भगवान मेरे लिए शरण हों।

३ [निक्कारणं जगजीवजोणी जायरक्खणकज्जसाहवो मे सरणमत्थु] निष्कारण

भाव से जगत के जीवों की रक्षा करनेवाले साधुजन मेरे लिए शरण हों।

४ [मुक्करागदोसो केवलिपण्णत्तो धम्मो मे सरणमत्थु] रागद्वेष से मुक्त केवलि प्ररूपित धर्म मेरे लिए शरण हो।

[एयाणि चत्तारि सरणाणि दुक्खहरणाणि मोक्खकारणाणि मज्झ होंतु] ये दुःख का हरण करनेवाले और मोक्ष के कारण चार शरण मेरे लिए हो।

[अज्जप्पभिइं मम माया जिणवाणी] आज से जिनवाणी मेरी माता है। [पिया निग्गंथो गुरु] निर्ग्रन्थ गुरु मेरे पिता हैं [देवो जिनदेवो] जिनदेव मेरे देव हैं, [धम्मो अरिहंतभासिओ] अरिहंत भाषित धर्म मेरा धर्म है [सोयरिया साहुणो] साधु मेरे सहोदर है [बंधवा साहम्मिया संति] साधर्मी मेरे बान्धव है। [ते विणा अन्ने सव्वे वि] इनके विना अन्य सभी [असिंस जगम्मि जालतुल्ला] इस जगत में बन्धन के समान है।

[इमाए चउवीसीए ओइण्णे] इस चोवीसी में अवतीर्ण हुए [उसभाई तित्थयरे]

ऋषभ आदि तीर्थंकरों को

[जिणे य अहं वंदामि नमंसामि] जिनेश्वर देवों को वंदन करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। [पज्जुवासामि] उनकी उपासना करता हूँ [कल्लाणं, मंगलं] क्योंकि वे कल्याण मंगलमय [देवयं चेइयं] देव और ज्ञानमय हैं [जनसंकप्पकप्पतरू] मनुष्यों के संकल्प की पूर्ति करने के लिए कल्पवृक्ष के समान [तित्थयरनमुक्कारो] तीर्थंकरों को किया हुवा नमस्कार [सयलसत्थसारो] सब शास्त्र का सार है। [संसारीणं पाणीणं] वह संसार के प्राणियों को [बोहिलाहट्ठं संसारच्छेयणट्ठं च हवइ] बोधिलाभ के लिये और संसार का अंत करने के लिए होता है। [झाणानलदड्ढभवपरंपरासंजायकम्मिंधणे] जिन्होंने भवपरम्परा में उपार्जित कर्मरूपी इन्धन को शुक्लध्यानरूपी अग्नि से भस्म कर डाला है [भगवंते सिद्धे नमंसामि] ऐसे जो सिद्ध भगवन्त है उनको नमस्कार हो।

[भवभयच्छेयणसययतप्परत्तेण] जीवों के संसारजनित भय के उन्मूलन करने में

सर्वदा तत्पर रहने के कारण जिन्होंने [धरियपवयणे] प्रवचन—जिनवाणी को धारण किया है। [पंचविहायारपालणसमत्थे] जो ज्ञानाचार दर्शनाचार आदि पांच आचार के पालन करने में समर्थ हैं। [आयरिए नमंसामि] ऐसे आचार्यों को नमस्कार हो। [समस्सिय समत्थसुए] समस्तश्रुतों—आगमों को जिन्होंने यथावत् ग्रहण करलिया है अर्थात् सकल आगमों के ज्ञाता [सुयज्झावए उवज्झाए नमंसामि] तथा जो आगमों को पढानेवाले है ऐसे उपाध्याय को वन्दन करता हूँ।

[सवइनासियभवलक्खे] शीघ्र ही लाखों भवों का अन्त करनेवाले [सत्तावीससाहुगुणविसारए] सत्तावीस साधु के गुणों में विशारद [अट्ठारससहस्ससीलंगरहधारए [अठारहहजार शीलांगरथ को धारण करनेवाले [साहू नमंसामि] साधू को नमस्कार करता हूँ।

[एसो पंच नमुक्कारो] यह पंच नमस्कार [जगजीवजीवणसारो] जगत के समस्त जीवों के लिए जीवन का सार है [सव्वपावविणासणगारो] समस्त पापों को नष्ट करनेवाला है

[सव्वमंगलागारो अत्थि] और सकल मंगलों का घर है।

[अज्जप्पभिइं अहं सव्वं सावज्जं जोगं] आज से मैं सब प्रकार के सावद्ययोग को, [जाव जीवं मणोवाकायेहिं वोसिरामि] जीवन पर्यन्त मन, वचन व काय से त्याग करता हू। [जावज्जीवं चउव्विहाहारं वोसिरामि] साथ ही यावज्जीवन के लिए चार प्रकार के आहार का त्याग करता हूँ। [अंतिमुच्छाससमए सरीरंपि वोसिरामि] और अन्तिमश्वासोच्छ्वास के समय शरीर का भी त्याग करता हूँ॥३७॥

मूलम्–एवं से नंदमुणी दुक्कम्मनिंदणा पाणिखमावणा–भावणा–चउस्सरण-पंचनमुक्काराणसण–भेयाओ छव्विहं आराहणं आराहिय कमेण सयधम्मायरियं साहू साहुणी य खमावेइ। एवं वरिससयसहस्साइं अणवरयमासक्खमणेणं निरइयारं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसित्ता

सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता आलोइयपडिक्कंते पणवीससयसहस्साइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता कालमासे कालं करीअ ॥३८॥

शब्दार्थ—[एवं से नंदमुणी] इस प्रकार उस नन्दमुनिने [दुक्कम्मनिंदणा] दुष्कर्मों की निंदा [पाणिक्खमावणा–भावणा] प्राणी से खमत खामना, भावना [चउस्सरण] चार शरण ग्रहण करना [पंचणमुक्कारा] पंच नमस्कार [अणसण] अनशन [भेयाओ छव्विहं आराहणं आराहिय] इन भेद युक्त छ प्रकार की आराधना करके [कमेण सयधम्मायरियं साहू साहुणी य खमावेइ] क्रम से अपने धर्माचार्य को, साधु और साध्वियों को खमाया [एवं वरिससयसहस्साइं] इस प्रकार एक लाख वर्ष तक [अणवरयमासक्खमणेणं] निरंतर मास मास खमण की तपश्चर्या के साथ [निरइयारं सामण्णपरियागं] अतिचाररहित साधु पर्याय का [पाउणित्ता] पालन करके [मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसित्ता] एक मास की संलेखणा से अपनी आत्मा को भावित करके [सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता]

अनशन से साठ भक्त का छेद करके [आलोइयपडिक्कंते] आलोचना—प्रतिक्रमण करके [पणवीससयसहस्साइं] पच्चीसलाख वर्ष की [सव्वाउयं पालइत्ता कालमासे कालं करीअ] समग्र आयु पूर्ण करके नन्दनमुनि काल धर्म को प्राप्त हुए ॥३८॥

मूलम्—तए णं नंदमुणी छव्वीसइमे भवे पाणए कप्पे पुप्फुत्तरवडिंसए विमाणे मउडमंडियमउली कुंडलालंकियकण्णो पलंबहारविराइयवच्छत्थलो मुत्तामालाकरंबियकंठदेसो परिहियदिव्ववत्थो सियमेहे विज्जूविव विज्जोयमाणो निच्चलमच्छजुयलमिव लोयणजुयलं धरमाणो वीसइ सागरोवमट्ठिइय महिड्ढियदेवत्ताए उववण्णो। तउप्पत्तिसमए कप्परुक्खाहिंतो पुप्फाणि वरिसीअ। दुंदुहीओ आहयाओ। लहु जलबिंदू पक्खिवमाणो नंदणवणजाणं पसूणाणं परागमाक्खिवमाणो सीयलमंदसुगंधिपवणो वहीअ। तत्थ णं सो जया

सओवरिट्ठियं देवदूसमवणीय उवविसइ, ताहे सो अकम्हा उवणीयं विमाणं सोहमाणं देवगणं च पासइ। एवं महासमिद्धिं निरिक्खिय विम्हिओ वितक्कजाले पडिओ चिंतेइ—इमं सव्वं मए केण तवसंजमाइ धम्मेण लद्धपत्तं अभिसमण्णागयं—त्ति। तओ ओहिं पउंजइ। ओहिं पउंजमाणो सयपुव्ववुत्तंतं सरइ। तेण सो मणंसि चिंतेइ—अहो! अरिहंतधम्मस्स केरिसो पहावो अत्थि, जं तेण पहावेण एरिसा उराला दिव्वा देवरिद्धि लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया, मम सेवगीभूया सव्वे देवा संमिलिय एत्थ आगया। एत्थंतरे ते देवा बद्धंजलिया एवमवाइंसु—हे सामी! हे जगानंदा! हे जगमंगलकरा! तुवं जएहिं विजएहिं, सुहेण चिरं चिट्ठेहि तुवं अम्हाणं सामी जसंसी रक्खगो य आसि। इमा सव्वा दिव्वा देविड्ढी तुम्हाणं चेव। तओ सो देवो सोहमाणे तस्सि

सयविमाणे नानाविहाइं दिव्वाइं देवभोगाइं भुंजइ। एवं सो तत्थ वीसइसागरोवमट्ठिइयपरमाउयं जाव भावितित्थयरत्तेण निम्मोहो होऊण सुरलोगोचियसुहमणुभवंतो चिट्ठीअ ॥३९॥

शब्दार्थ—[तए णं से नंदमुणी] उसके बाद नन्दमुनि काल करके [छव्वीसइमे भवे पाणए कप्पे] छव्वीसवें भव में प्राणत कल्प में [पुप्फुत्तरवडिंसए विमाणे] पुष्पोत्तरावतंसक नामक विमान में [मउडमंडियसउली] मुकुट से मंडित शिरवाला [कुंडलालंकियकण्णो] कुंडलो से अलंकृत कानवाला [पलंबहारविराइयवच्छत्थलो] लंबे लटकते हुए हार से सुशोभित वक्षःस्थलवाला [मुत्तामाला करंबियकंठदेसा] मोतियों की माला से युक्त कण्ठवाला [परिहियदिव्ववत्थो] दिव्य वस्त्र को धारण किये हुए [सियमेहे विज्जूविव विज्जोयमाणो] श्वेतमेघो में विद्युत् के जैसे प्रकाशमान [निच्चलमच्छजुयलमिव लोयणजुयलं धर-

माणो] निश्चल मत्स्ययुगल के जैसे नयनयुगल को धारण करनेवाला [वीसइसागरोवमट्ठिइयमहिड्ढियदेवत्ताए उववण्णो] ऐसा बीस सागरोपम की स्थितिवाला महर्द्धिक देवरूप से उत्पन्न हुआ।

[तउप्पत्तिसमये] उसकी उत्पत्ति के समय [कप्परुक्खाहिंतो पुप्फाणि वरिसीअ] कल्पवृक्षो से फूलों की वर्षा हुइ [दुंदुहीओ आहयाओ] दुंदुभियों का घोष हुआ। [लहूझलबिंदूपक्खिवमाणो] बारीक बारीक जलबिन्दुओं की वर्षा करता हुआ। [नंदणवणजाणं पसूणाणं] तथा नन्दनवन के फूलों के [परागमाक्खिवमाणो] पराग को उडाता हुआ [सीयलमंदसुगंधिपवणो वहीअ] शीतल मंदमंद पवन बहने लगा।

[तत्थ णं सो जया] वह देव जब जब [सओवरिट्ठियं देवदूसमवणीय उवविसइ] अपने उपर के देवदूष्य (वस्त्र) को हटाकर बैठा तो [ताहे सो अकम्हा उवणीयं विमाणं सोहमाणं देवगणं च पासइ] अकस्मात् अपने समीप स्थित विमानों और देव समूह को

देखकर [विम्हिओ वितक्कजाले पडिओ चिंतेइ] विस्मित हो गया और अपने विषय में तर्क वितर्क करता हुआ सोचने लगा–[इमं सव्वं] यह सब [मए केण तवसंजमाइ-धम्मेण] मुझे किस तप–संयम आदि रूप धर्म के प्रभाव से [लद्धा, पत्ता, अभिसमण्णागयं] लब्ध हुआ है, प्राप्त हुआ है और मेरे उपभोगयोग्य हुआ है। [तओ ओहिं पउंजइ] तब उसने अवधिज्ञान का उपयोग लगाया [ओहिं पउंजमाणो सयपुव्ववुत्तंतं सरइ] अवधिज्ञान का उपयोग लगाते हुए उन्हें अपना पूर्वकालीन वृत्तान्त स्मरण हो आया। [तेण सो मणंसि चिंतेइ] तब वह मनमें सोचने लगा [अहो! अरिहंतधम्मस्स केरिसो पहावो अत्थि] अहो! अरिहंत धर्म का कैसा प्रभाव है? [जं तेण पभावेण एरिसा उराला] उसी धर्म के प्रभाव से मुझे ऐसी विशाल [दिव्वा देवरिद्धि लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया] दिव्य देवरिद्धि लब्ध हुई है, प्राप्त हुइ है, ये मेरे उपभोग के योग्य हुइ है। [मम सेवगीभूया सव्वे देवा संमिलिय एत्थ आगया] ये सब देव सम्मिलित होकर मेरे

सेवक बन कर यहां आये हैं। [एत्थंतरे ते देवा] इतने में वे देव [बद्धंजलिया एवमवाइंसु] हाथ जोडकर इस प्रकार कहने लगे [हे सामी! जगानंदा! हे जगमंगलकरा!] हे स्वामिन्! हे जगत् को आनन्द देनेवाले हे जगत का मंगल करनेवाले! [तुवं जएहि, विजएहि,] आप की जय हो, आपकी विजय हो [सुहेण चिरं चिट्ठेहि] आप सुखपूर्वक चिरकाल तक यहां रहें [तुवं अम्हाणं सामी जसंसी रक्खगो य आसि] आप हमारे स्वामी हैं यशस्वी और रक्षक हैं। [इमा सव्वा दिव्वा देविड्ढी तुम्हाणं चेव] यह सभी देव सम्पत्ति आपकी ही है।

[तओ सो देवो] उसके बाद वह देव [सोहमाणे तस्सि सयविमाणे] अपने सुशोभित देवविमान में [णाणाविहाइं दिव्वाइं] नाना प्रकार के दिव्य [देवभोगाइं भुंजइ] देवों के भोगों को भोगने लगा। [एवं सो तत्थ वीसइसागरोवमट्ठिइयपरमाउयं] इस प्रकार वह देव यहां वीस सागरोपम की आयु तक [जाव भावितित्थयरत्तेण निम्मोहो

होऊण] भावी तीर्थंकर होने से निर्मोह–अनासक्त होकर [सुरलोगोचिय सुहमणुभवंतो चिट्ठिअ] देवलोक के योग्य सुखों का अनुभव करते हुए रहने लगे ॥३९॥

॥ इति नयसारादि षड्विंशति भव कथा ॥

अथ सप्तविंशतितम–महावीरभवकथा

मूलम्–अस्सिं चेव सयलंतरीवदीवे मज्झजंबुद्दीवे दीवे भरहहेमवयखित्त-सीमाकारगस्स भूनिमग्गपंचवीसइजोयणस्स जोयणसयोच्छियस्स एगूणवीसइभागविभत्तेगजोयणदुवालसभागाहियबावण्णजोयणुत्तरेगसहस्सजोयणविक्खंभ – स्स, पुरत्थिम–पच्चत्थिमेणं एगूणवीसइभागविभत्तेगजोयणसद्धपंचदसभागा-हियपण्णाससहियतिसयजोयणुत्तरपंचसहस्सायामबाहस्स सव्वत्थ तुल्लवित्था-रस्स गगणमंडलुल्लिहियरयणमयएगारसकूडोवसोहियस्स तवणिज्जमयतलवि-

विहमणिकणगमंडियतडदसजोयणोगाढपुव्वपच्छिमजोयणसहस्सायामदक्खिणोत्तरपंचसयजोयणवित्थरियपउमदहोवसोहियसिरमज्झभागस्स हेममयस्स चीणपट्टवण्णस्स कप्पपायवसेणिरमणिज्जपुव्वावरपज्जंतेहिं लवणजलहिजलसंफासवओ चुल्लहिमवओ दक्खिणाए दिसाए निसि निसागरोव्व भरहमज्झमज्झासीणो पुण्णाभिहाणो धरणिमणिमण्डलायमाणो विविहणयणईमालालंकियवेसो देसो अत्थि तत्थ गोट्ठालद्धगामप्पइट्ठा, अभिरामा गामा य पईयमाणणगरविब्भमा, णगराणि य खेयरणगरसोयराणि जत्थ किसीवलेहिं सइं वावियाइं अलुत्ताइं धन्नाइं लूणाइंपि दुव्वाव पुणो पुणो परोहंति । जणा य सुसमाकालजाया इव णिरामया णिक्केसभया चिराउसो संतोसजुसो सभावधम्मपुसो परि-

वसंति। उव्वी य गुव्वी सव्वत्थ उव्वरा चेव। जलदो य समए चेव जलदत्तं सच्चावेइ ॥१॥

शब्दार्थ--[अस्सिं चेव सयलंतरीवदीवे मज्झजंबुदीवे दीवे भरहहेमवयखित्तसीमाकारगस्स भूनिमग्गपंचवीसइ जोयणस्स] समस्त द्वीपों में दीप के समान इसी जंबुद्वीप-नामक द्वीप में, भरत और हैमवत क्षेत्र की सीमा करनेवाला चुल्लहिमवंत नाम का पर्वत है। यह पर्वत पृथ्वी में पच्चीस योजन गहरा है [जोयणसयोच्छियस्स] सौ योजन उँचा है [एगूणवीसइभागविभत्तेगजोयणदुवालसभागाहियबावण्णजोयणुत्तरेग सहस्स-जोयणविक्खंभस्स] १०५२$\frac{१२}{१९}$ एक हजार बावन योजन और एक योजन के उन्नीसिया बारह भाग प्रमाण चौडा है। [पुरत्थिम—पच्चत्थिमेणं एगूणवीसइभागविभत्तेगजोयण-सड्ढपंचदसभागाहियपण्णाससहियतिसयजोयणुत्तरपंचसहस्सायामबाहस्स] और पूर्व-पश्चिम से पांच हजार तीनसौ पचास योजन और एक योजन के उन्नीसिया साढे पन्द्रह

भाग प्रमाण ५३५०$\frac{१५}{१९}$ लम्बी बाहुवाला है। [सव्वत्थ तुल्लवित्थारस्स गगनमंडलुल्लिहियरयणमयएगारसकूडोवसोहियस्स] सब जगह समान विस्तारवाला है, आकाशमण्डल को स्पर्श करनेवाले ग्यारह रत्नमय कूटों से सुशोभित है। [तवणिज्जमयतलविविहमणिकणगसंडियतडदसजोयणोगाढपुव्वपच्छिमजोयणसहस्सायामदक्खिणोत्तरपंचसयजोयणवित्थरियपउमद्होवसोहियसिरमज्झभागस्स] ऊपर मध्यभाग में सुवर्णमय तलवाले, नानामणि और सुवर्ण से शोभायमान तटवाले, दस योजन गहरे पूर्व–पश्चिम में एक-हजार योजन लम्बे और दक्षिण–उत्तर में पांचसौ योजन विस्तृत पद्मनामक ह्रद से शोभित है [हेममयस्स चीणपट्टवण्णस्स] चाइनासिल्क के समान किंचित् पीतवर्ण सुवर्णमय है। [कप्पपायवसेणिरमणिज्जपुव्वावरपज्जंतेहिं] और उसके कल्पवृक्षों की कतारों से रमणीय पूर्वी तथा पश्चिमी छोर [लवणजलहिजलसंफासओ] लवणसमुद्र का स्पर्श करते हैं। [चुल्लहिमवओ दक्खिणाए दिसाए निसि निसागरोव्व भरहमज्झमज्झा-

सीणो] इस चुल्लहिमवंत पर्वत से दक्षिण दिशा में रात्रि में चन्द्रमा के समान भरत क्षेत्र के मध्य में स्थित [पुव्वाभिहाणो धरणिमणिमंडलायमाणो विविहणयनई-मालालंकियवेसो देसो अत्थि] पृथ्वी के मणिमय आभूषण के समान, अनेक नदों एवं नदियों से सुशोभित पूर्व नामक देश है। [तत्थ गोट्ठालद्धगामप्पइट्ठा] उस देश के गोष्ठ-(गायों के बाडे) ग्रामों की प्रतिष्ठा को प्राप्त किये हुए थे। अर्थात् वे ग्राम के समान जान पडते थे। [अभिरामा गामा य पईयमाण णगरविब्भमा] वहां के ग्रामों में नगर की सी शोभा प्रतीत होती थी [णगराणि य खेयरणगरसोयराणि] और नगर विद्याधरों के नगर के समान थे। [जत्थ किसीवलेहिं सइं वावियाइं अलुत्ताइं धन्नाइं] वहां के किसान एक बार धान्य बो देते थे तो वह प्रायः नष्ट नहीं होते थे और [लूणाइंपि] उपर से काट लेने पर भी [दुव्वाव] दूब के जैसे [पुणो पुणो परोहंति] पुनः पुनः बढते थे। [जणा य सुसमाकालजाया इव गिरामया] वहां के निवासी सुषमा काल में

उत्पन्न होनेवालों के समान रोगरहित [निक्केसभया] क्लेश एवं भय से रहित [चिराउसो संतोसजुसो] दीर्घजीवी संतोष का सेवन करनेवाले [सभावधम्मपुसो] और स्वभाव से ही धर्म का पोषण करनेवाले [परिवसंति] वहां निवास करते थे। [उव्वी य गुव्वी सव्वत्थ उव्वरा चेव] वहां की उत्तम भूमि सब प्रकार के धान्य को उत्पन्न करनेवाली–उपजाऊ थी [जलदो य समए चेव जलदत्तं सच्चावेइ] मेघ उचित समय पर ही अपनी जल देने की सच्चाई प्रमाणित करते थे। अर्थात् समय पर मेघ बरसते थे ॥१॥

मूलम्–तत्थ णगरीगरीयसी लच्छीलीलालयायमाणा खत्तियकुंडग्गामाभिहाणा सयलसिप्पकलाभासुरेहिं सुरेहिं सयचाउरीचुंचुत्तं पज्जवसाएउं कप्पिया इव पडिभासइ। तत्थ निकेयणेसु कंचनकेउकुंभकिरणा पावरिसेण्णकायंबिणी सोयामणीविब्भमं कलयंति। तमस्सिणीए तरलतरतरुणकिरणो रोहिणीरमणो

चंदकंतमणिगणसयलकप्पियवासपासायसंकंतो कत्थूरीपूरपूरियणिरावरणाराय-
यभायणविब्भमं भयइ। कंचणखंडरइओ सुंदरागारो पागारो सगीयाणप्पसिप्प-
कलाकोसलादिदंसइसाए देवसिप्पिकप्पिओव भाइ। उभयवो पडिबिम्बिय-
रयणसोवाणसऊहेहिं तडागाइं सलीलं निबद्ध सेउव्व आभाइ, णिसि दिवा य
पागारो रययकंचणेहिं कविसीसगेहिं ससिभाणुभासुरपडिबिंबेहिं सुमेरू विव
रायइ। वाससयणे अनलनिहिय धूमगंधाहिं वासिओ पवणो खेयरंगणंगसंगओ
खेयरीणवि मणो अमंदमानंदयइ। एगायपत्तायमाण—आरहयधम्मे तत्थ नगरे
हम्मेठिया बालिया कीलासुगसिसुणोऽवि महामहिमासिरिमंतअरिहंतथुइं
सिक्खावेंति। मज्झण्हे अंबरमणी अंबरंगणे तन्नगरसुसमां दिदिक्खू विव
विसम्मइ। अवणिभुओ भवणोवरियणज्झओ अमरावइं तिरक्करेइ विव।

महुमज्जियमाहीगमहुरस्सरेहिं गायंतीओ णगरसीमंतिणीओ किंनरी अवि अहरी कुव्वंति ॥२॥

शब्दार्थ--[तत्थ णगरीगरीयसी] उस पूर्व नामक देश में नगरीयों में श्रेष्ठ [लच्छीलीलालयायमाणा] तथा लक्ष्मी के क्रीडागृह के समान [खत्तियकुंडग्गामाभिहाणा] क्षत्रिय-कुण्डग्राम नामकी नगरी थी। [सयलसिप्पकलाभासुरेहिं सुरेहिं] वह ऐसी प्रतीत होती थी कि जैसे सकल शिल्पकला से सम्पन्न देवोंने [सय चाउरीचुंचुत्तं] अपनी चतुराई बतलाने के लिए ही [पज्जवसाएउं] उस नगरी का [कप्पियाइव] निर्माण किया हो ऐसा [पडिभासइ] प्रतीत होता था। [तत्थ निकेयणेसु] वहां के मकानों पर [कंचणकेउकुंभकिरणा] स्वर्ण की बनी हुई ध्वजाओं की और सुवर्णमय कुंभ कलशों की किरणें ऐसी चमकती थी, मानो [पावरिसेण्णकायंबिणीसोयामणी विब्भमं कलयंति] वर्षाकाल के मेघों में विजली चमक रही हो। [तमस्सिणीए तरलतरतरुणकिरणो] रात्रि में अत्यन्त फैलने-

वाली प्रौढ किरणों से युक्त [रोहिणीरमणो] चन्द्रमा [चंदकंतमणिगणसयलकप्पिय वासपासायसंकंतो] जब चन्द्रकांतमणियों के समूह के खण्डों से बने हुए प्रासादों पर प्रतिबिम्बित होता था तो ऐसा जान पडता था कि मानो [कत्थूरी पूरपूरियणिरावरण-राययभायणविब्भमं भयइ] कस्तूरी से भरा और खुला रक्खा चान्दी का पात्र हो।

अब उस नगरी के कोट आदि का वर्णन कहते हैं–

[कंचणखंडरइओ] सोने की इंटों का बना हुआ [सुंदरागारो] सुन्दर आकारवाला [पागारो] उस नगरी का कोट [सगीयाणप्पसिप्पकलाकोसलादिदंसइसाए देवसिप्पि-कप्पिओव भाइ] ऐसा प्रतीत होता था जैसे अपनी शिल्पकला की अत्यन्त निपुणता को प्रदर्शित करने की इच्छा से किसी देवशिल्पीने बनाया हो ? [उभयओ पडिबिम्बि-यरयणसोवाणमऊहेहिं तडागाइं सलिलं निबद्धसेउव्व आभाइ] सरोवर आदि के दोनों किनारों पर प्रतिबिम्बित होनेवाली रत्नों की सीढियों की किरणों से सरोवर आदि का

जल ऐसा शोभित होता था जैसे जल पर पुल बना हो! [णिसि दिवा य पागारो रायकंचणेहिं] कोट पर चांदी–सोने के एक ही कतार में [कविसीसगेहिं] जो कंगूरे बने हुए थे उन पर रात्रि में [ससिभाणुभासुरपडिबिम्बेहिं सुमेरू विव रायइ] चन्द्रमा का और दिन में सूर्य का चमकदार प्रतिबिम्ब पडता था इस कारण वह कोट सुमेरू सरीखा दिखाई देता था! [वाससयणे अनलनिहिय धूमगंधाहिवासिओ] निवासगृहों को सुगन्धित करने के लिये वहां अग्नि में डाले हुए धूप की गन्ध से सुवासित [पवणो] पवन [खेयरंगणंगसंगओ खेयरीणवि मणो अमंदमाणंदयइ] जब विद्याधरियों के अंग को छूता था तो उनके चित्त को अत्यन्त आल्हाद पहुंचता था, [एगायपत्ताय माण आरहयधम्मे तत्थणगरे] साधारण गृहस्थ की तो बात ही क्या है! एकच्छत्र के समान पालन किये जानेवाले जैनधर्म से युक्त उस क्षत्रिय कुण्डग्राम नाम की नगरी में [हम्मेठिया बालिया] धनवानों के घरों की बालिकाएँ [कीलासुगसिसुणोऽवि] क्रीडा

के लिये पाले हुए तोतों के बच्चों को भी [महामहिमसिरिमंतअरिहंतथुइं सिक्खावेंति] महाप्रभावशाली श्री जिनेन्द्रदेव की स्तुतियां सिखाया करती थीं। तो मनुष्य बच्चों का तो कहना ही क्या! [मज्झण्हे अंबरमणी अंबरंगणे तन्नगरसुसमां] मध्याह्न के समय सूर्य उस क्षत्रियकुण्डग्राम नगरी की शोभा को [दिदिक्खूविव विसम्मइ] देखने का इच्छुक होकर मानो ठहरा हो ऐसा प्रतीत होता था। [अवणिभूओ भवणोवरियणज्झओ] राजा के महल पर फहराती हुइ ध्वजा [अमरावइं तिरक्करेइ विव] अमरावती नामक देवनगरी को भी तिरस्कृत करती हुइ प्रतीत होती थी। [महुमज्जियमाहीगमहुरस्सरेहिं गायंतीओ] मधु से संचित द्राक्षा के समान मधुर स्वरों से गाती हुइ [नगरसीमंतिणीओ किन्नरी अवि अहरी कुव्वंति] नागरीक महिलाए किन्नरियों को भी लज्जित करती थीं क्योंकि उनका गान किन्नरीयों से भी विशिष्ट था ॥२॥

मूलम्—तत्थ दाणे धणेसो, सोरिए वासुदेवो पयापोसी सदारतोसी सुणीइ-

जोसी माणधणिओ कारुणिओ सीलभूसणो निरत्थदूसणो महंत सेवासमत्थो सिद्धत्थो णाम राया रज्जं काहीअ। तम्मि भुवं सासमाणे राजहंसो एव सरोगो। चंदो एव दोसायरो, भिंगो एव महुपो, सप्पो एव बिजिब्भो, पदीवो एव णिस्सिणेहो, सत्तुहिययवणमेव भयट्ठाणं, गिद्धो एव मंसासणो ॥३॥

शब्दार्थ–[तत्थ] उस क्षत्रियकुण्डग्राम नाम की नगरी में [सिद्धत्थो णाम राया रज्जं काहीअ] सिद्धार्थ नामका राजा राज्य करता था वह [दाणे धनेसो] दान देने में कुबेर और [सोरीए वासुदेवो] शूरता में वासुदेव के समान था। [पयापोसी] प्रजा का पोषण करनेवाले, [सदारतोसी] स्वदार संतोषी [सुणीइ जोसी] नीति का पालन करनेवाले [माणधणिओ] मान के धनी [कारुणिओ] कारुणिक [सीलभूसणो] शील से विभूषित [निरत्थदूसणो] दोषो से वर्जित तथा [महंतसेवा समत्थो] उत्तम पुरुषों की सेवा में समर्थ थे।

[तम्मि भुवं सासमाणे] राजा सिद्धार्थ के शासन में [राजहंसो एव सरोगो] केवल

राजहंस ही सरोग थे, अर्थात्–सर–तालाब में, ग-गमन करनेवाले थे, [चंदो एव दोसायरो] चन्द्रमा ही दोषाकर था। अर्थात् दोषा रात्रि को करनेवाला था। [भिंगो एव महुपो] भौरे ही मधुप थे, अर्थात् पुष्पों का मधुरस पीनेवाले थे। [सप्पो एव बिजिब्भो] सर्प ही द्वीजिह्व थे, अर्थात् दो जीभवाले थे। [पदीवो एव णिस्सिणेहो] दीपक ही निःस्नेह थे। अर्थात् स्नेह–तेल से वर्जित थे। [सत्तुहिययवणमेव भयट्ठाणं] शत्रुओं के हृदयरूपी वन ही भयस्थान थे। [गिद्धो एव मंसासणो] गीध ही मांस भक्षक थे। इनके अतिरिक्त कोई सरोग [रोगी], दोषाकर (दोषों की खान) मधुप (मद्यपान करनेवाला) द्वीजिह्व (चुगली खानेवाला) स्नेह (प्रेम) से वर्जित, भयस्थान और मांस भक्षक नहीं था ॥३॥

मूलम्–तस्स रण्णो इंदाणीविव गुणखाणी तिसलाभिहाणा माहिसी आसी। तीए णयणसुसमां समिक्खिऊण लज्जिअं कमलं जलम्मि निमज्जीअ विव, वयणं विलोइय विहू अंबरमवलंबीअ विव, वाणीमहुरीमाए लज्जिओ कोइलो

काणं अस्सीअ विव ।

सा य सदोरगमुहवत्तियं मुहे बंधिऊण तिकालं सामाइयं करेमाणी आसी, उभओ कालम्मि आवस्सयं य। दीणहीणजणोवगारिणी पाइवच्चधारिणी धम्मविचलियजणमणम्मि धम्मसंचारिणी सुयगुरुवक्कसद्धाधारिणी पियधम्मा दढ-धम्मा कारुण्णवम्मसंरक्खियहिययमम्मो णवतत्तपंचवीसइकिरियाविउसी सा वयधम्मसुवेजुसी धम्मधारिणी धम्मसुमिणदंसिणी धम्माराहणसयकायव्वमाणिणी उभयकुलोज्जलकारिणी विगहावहारिणी सुकहाणुरागिणी लद्धट्ठा पुच्छियट्ठा गहियट्ठा विणिच्छियट्ठा अहिगयट्ठा य तिसला आसी ॥४॥

शब्दार्थ—[तस्स रण्णो] उन राजा सिद्धार्थ की [इंदाणीविव गुणखाणी] इन्द्राणी के समान गुणों की खाण [तिसलाभिहाणा महीसी आसी] त्रिशला नामकी महारानी

थी। [तीए णयणसुसमां] उनके नेत्र के सौंदर्य को [समिक्खिऊण] देखकर मानो [लज्जिअं कमलं जलम्मि निमज्जिअ विव] लज्जित हुआ कमल जल में डूब गया। [वयणं विलोइय विहू अंबरमवलंबीअ विव] मुख को देखकर चन्द्रमाने मानो आकाश का अवलम्बन किया [वाणी महुरीमाए लज्जिओ कोइलो काणणं अस्सीअ विव] और वाणी की मधुरिमा से मानो लज्जित होकर कोयलने वन का आसरा लिया।

[सा य सदोरगमुहवत्तियं] महारानी त्रिशला डोरासहित मुखवस्त्रिका [मुहे बंधिऊण] मुख पर बान्धकर [तिकालं सामाइयं करेमाणी आसी] त्रिकाल सामायिक और [उभओ कालम्मि आवस्सयं य] उभयकाल आवश्यक क्रिया करती थी। [दीणहीणजणोवगारिणी] वह दीन हीन जनों की उपकारिणी, [पाइवच्चधारिणी] पातिव्रत धर्म की धारिणी [धम्मविचलियजणमणम्मि] धर्म के विचलित होनेवाले जनों के मन में [धम्मसंचारिणी] धर्म का संचार करनेवाली, [सुयगुरुवक्कसद्धाधारिणी] श्रुत, गुरु वाक्य

पर श्रद्धा रखनेवाली [पियधम्मा] प्रियधर्मा तथा [दढधम्मा] दृढधर्मा थी। [कारुण्णवम्मसरक्खियहियममम्मा] करुणा के कवच से अन्तःकरण के मर्म की रक्षा करनेवाली [णवतत्तपंचवीसइकिरिया विउसी] नौ तत्त्व और पच्चीस क्रियाओं के विषय में कुशल [सावयधम्ममुवेजुसी] श्रावक धर्म को धारण करनेवाली [धम्मधारिणी] धर्मधारिणी [धम्मसुमिणदंसिणी] धर्म का ही स्वप्न देखनेवाली [धम्माराहणसयकायव्वमाणिणी] धर्म की आराधना को ही अपना कर्तव्य माननेवाली [उभयकुलुज्जलकारिणी] दोनों कुलों कों उज्ज्वल करनेवाली [विगहावहारिणी] विकथाओं का त्याग करनेवाली [सुकहाणुरागिणी] सुकथाओं में अनुराग रखनेवाली [लद्धट्ठा] श्रुत के अर्थ को स्वयं समझनेवाली] [पुच्छियट्ठा] श्रुत के अर्थ को स्वयं पूछनेवाली [गहियट्ठा] अतएव विशेषरूप से अर्थ का निश्चय करनेवाली [विनिच्छियट्ठा अहियगयट्ठा य तिसला आसी] और इस प्रकार पूर्ण रीति से अर्थ को समझनेवाली थी ॥४॥

मूलम्–तस्सिं रायम्मि उरोभवा पयाइव पया पालयंतम्मि सुहं सुहेण दिणाणि अइवाहंयतम्मि जणेणं आणंदयंतो आसिणमासो आगमीय। किसीवला बहला सस्ससंपत्ती दंसं दंसं पहरिसीअ। वावारजीविणो य सम्मं वावारपवित्तीए आनंदसिंधूच्छलंततरलतरतरंगसु निमज्जीअ। सिद्धत्थ रायावि पयासत्थं कयत्थं विलोइय चंदं जलनिही विव मोदीअ ॥५॥

शब्दार्थ—[तस्सिं रायम्मि] राजा सिद्धार्थ [उरोभवा पयाइव पया] उदर जात सन्तान की तरह प्रजा का [पालयंतम्मि] पालन कर रहे थे और [सुहं सुहेण दिणाणि] सुखपूर्वक दिन [अइवाहयंतम्मि] व्यतीत कर रहे थे कि [जणे आनंदयंतो] लोगों को आनन्दित करनेवाला [आसिणमासो आगमिय] आश्विनमास आगया। [किसीवला बहला सस्ससंपत्ती] किसान बहुतसी सस्य सम्पत्ति को [दंसं दंसं पहरिसीअ] देख देख-कर प्रसन्न हुए। [वावारजीविणो य] व्यापार जीवी [सम्मं वावारपवित्तीए] सम्यक्

प्रकार से-नीतिपूर्वक व्यापार चलने के कारण [आणंदसिंधूच्छलंततरलतरतरंगेसु निमज्जीअ] आनन्दरूपी समुद्र की उछलती हुइ अत्यन्त चपल लहरों में निमग्न थे। अर्थात् सुखी थे। [सिद्धत्थराया वि] राजा सिद्धार्थ भी [पयासत्थं कयत्थं विलोइय] प्रजाजन को कृतार्थ-प्रसन्न देखकर [चंदं जलनिही विव मोदीअ] उसी प्रकार आनन्द को प्राप्त होते थे जिस प्रकार चन्द्रमा को देखकर समुद्र प्रमोद को प्राप्त होता है ॥५॥

मूलम्-तस्सेव खत्तियकुंडग्गामस्स णयरस्स दाहिणे पासे माहणकुंडपुर-संनिवेसो अत्थि। तत्थ य चउव्वेयविऊ चउद्दसविज्जाकुसलो कोडालसगोत्तो उसभदत्तो नाम माहणो आसी। तस्स भज्जा अइसयलज्जा जालंधरायण-सगोत्ता सीलपवित्ता देवाणंदा नाम माहणी ॥६॥

शब्दार्थ—[तस्सेव खयत्ति य कुंडग्गामस्स णयरस्स] उसी क्षत्रियकुण्डग्राम नाम के नगर के [दाहिणे पासे] दक्षिण पार्श्व में [माहणकुंडपुरसंनिवेसो अत्थि] ब्राह्मणकुण्डपुर

नामक एक बस्ती थी। [तत्थ य] उसमें [चउव्वेयविऊ] चारों वेदों का ज्ञाता और [चउद्दसविज्जाकुसलो] चौदह विद्याओं में कुशल, [कोडालसगोत्तो] कोडाल गोत्रीय [उसभदत्तो नाम] ऋषभदत्त नामका [माहणो आसी] ब्राह्मण रहता था। और [अइ-सयलज्जा] अतिशय लज्जाशील [जालंधरायणसगोत्ता] जालंधरायणस गोत्रवाली और [सीलपवित्ता] शील से पवित्र [देवाणंदामाहणी] देवानन्दा–ब्राह्मणी उसकी [भज्जा] पत्नी थी ॥६॥

मूलम्–तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे इमाए ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए वीइक्कंताए सुसमाए समाए वीइक्कंताए सुसमदुसमाए समाए वीइक्कंताए दुसमसुसमाए समाए बहुवीइक्कंताए पण्णत्तरीए वासेहिं मासेहि य अद्धनवएहिं सेसेहिं, जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढ सुद्धे, तस्स णं आसाढसुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं हत्थुत्तराहिं णक्खत्तेणं जोगोवगएणं

महाविजय-सिद्धत्थ-पुप्फुत्तरपवरपुंडरीय दिसासोवत्थिय-वद्धमाणाओ महा-विमाणाओ वीसं सागरोवमाइं देवाउयं पालयित्ता आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइ-क्खएणं चुए, चइत्ता तीसं देवाणंदाए कुच्छिंसि सीहब्भगभूएणं तिणाणोवगएणं अप्पाणेणं गब्भं वक्कंते। से णं समणे भगवं महावीरे 'चइस्सामि' त्ति जाणइ, 'चुएमि' त्ति जाणइ चयमाणे' ण जाणइ, सुहुमे णं से काले पण्णत्ते ॥७॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं तेणं समएणं] उस काल और उस समय में [समणे भगवं महावीरे] श्रमण भगवान् महावीर [इमाए ओसप्पिणीए] इस अवसर्पिणी काल में [सुसमसुसमाए समाए] सुषमसुषमा नामक आरक [वीइक्कंताए] के बीत जाने पर [सुसमाए समाए वीइक्कंताए] सुषमा आरक के बीत जाने पर [सुसमदुसमाए समाए वीइक्कंताए] सुषमदुषम आरक के बीत जाने पर [दुसमसुसमाए समाए बहु-

वीइक्कंताए] दुषमसुषम नामक आरक का बहुत भाग बीत जाने पर [पण्णत्तरिए वासेहिं मासेहिं य] और पचहत्तर वर्ष तथा [अद्धनवएहिं सेसेहिं] साढे आठ मास शेष रहने पर [जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे] ग्रीष्म ऋतु का चौथा मास [अट्ठमे पक्खे] आठवां पक्ष [आसाढसुद्धे] जो आषाढ शुक्ल है [तस्स णं आसाढसुद्धस्स] उस आषाढ शुक्ल की [छट्ठी पक्खेणं] षष्ठी तिथि में [हत्थुत्तराहिं णक्खत्तेहिं जोगोवगएणं] हस्तोत्तरा नक्षत्र का योग आजाने पर [महाविजय] महाविजय [सिद्धत्थ] सिद्धार्थ [पुप्फुत्तर] पुष्पोत्तर [पवरपुंडरीअ] प्रवरपुण्डरीक [दिसासोवत्थिय] दिशास्वस्तिक [वद्धमाणाओ] और वर्द्धमान [महाविमाणाओ] इन छह नामवाले महाविमान से [वीसं सागरोवमाइं] वीस सागरोपम की [देवाउयं पालयित्ता] देवआयु पूर्ण करके [आउक्खएणं] आयु के क्षय के कारण [भवक्खएणं] भव के क्षय के कारण [ठिइक्खएणं] और स्थिति के क्षय के कारण [चुए] चवे [चइत्ता तीसे देवाणंदाए] चवकर उस देवनन्दा ब्राह्मणी की

[कुच्छिसि] कुक्षि में [सीहब्भगभूएणं] सिंह के शिशु के समान [तिणाणोवगएणं] और तीन ज्ञानों से युक्त [अप्पाणेणं गब्भं वक्कंते] आत्मा से गर्भ में आये [से णं समणे भगवं महावीरे] वे श्रमण भगवान् महावीर ['चइस्सामि' त्ति जाणइ] चवूँगा यह जानते थे, [चुएमि त्ति जाणइ] चवा यह भी जानते थे, [चयमाणे ण जाणइ] किन्तु 'चव रहा हूँ' यह नहीं जानते थे [सुहुमेणं से काले पण्णत्ते] क्योंकि चवण का वह काल सूक्ष्म कहा गया है ॥७॥

'इति द्वितीया वाचना'

मूलम्–जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कंते, तं रयणिं च णं सा देवाणंदा माहणी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहिरमाणी२ १-गय २-वसह ३-सीह ४-लच्छी-५दाम ६ससि ७ दिनयर८ झय ९ कुंभ १० पउमसर ११ सागर १२ विमाण-भवण १३ रयणु-

च्चय १४ सिहिं च। इमे एयारूवे चउद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा॥८॥

शब्दार्थ—[जं रयणिं च णं] जिस रात्रि में [समणे भगवं महावीरे] श्रमण भगवान् महावीर [देवाणंदाए माहणीए] देवानन्दा ब्राह्मणी की [कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते] कूख में गर्भ पने से आये [तं रयणिं च णं] उस रात्रि में [सा देवाणंदा माहणी] वह देवानन्दा ब्राह्मणी, [सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहिरमाणी२] शय्या पर कुछ कुछ सोते और कुछ कुछ जागते—हल्की नींद लेते समय [गय] गज [वसह] वृषभ [सीह] सिंह [लच्छी] लक्ष्मी [दाम] माला [ससी] चन्द्र [दिनयर] सूर्य [झय] ध्वजा [कुंभ] कुम्भ [पउमसर] पद्मसरोवर [सागर] समुद्र [विमाण] विमान [रयणुच्चय] रत्नराशि [सिहिं] निर्धूम अग्निशिखा [इमे एयारूवे] इस प्रकार से ये [चउद्दस] चौदह [महासुमिणे] महास्वप्नों को [पासित्ता] देखकर [पडिबुद्धा] जाग्रत हो गई॥८॥

मूलम्-तए णं सा देवाणंदा माहणी ते सुमिणे तप्फलजाणणट्ठं उसभदत्तस्स माहणस्स कहेइ। से य ते सुमिणे सोच्चा निसम्म सुमिणत्थुग्गहं करेइ तओ पच्छा तं देवाणंदं माहणिं एवं वयासी-उराला कल्लाणा सिवा धन्ना मंगल्ला सस्सिरिया हियकरा सुहकरा पीइकरा तुमे देवाणुप्पिए! चउदस महासुमिणा दिट्ठा। तेणं अम्हाणं अत्थलाभो भविस्सइ, भोगलाभो भविस्सइ, पुत्तलाभो भविस्सइ, सुहलाभो भविस्सइ, तुवं खलु देवाणुप्पिये! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं वइक्कंताणं सुकुमालपाणिपायं अहीण-पडिपुण्ण पंचिंदिय-सरीरं लक्खण-वंजण-गुणोववेयं माणुम्माण पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय सव्वंग-सुंदरगं ससिसोमागारं कंतं पियदंसणं सुरूवं दारगं पयाहिसि॥९॥

शब्दार्थ—[तए णं सा देवाणंदा माहणी] उस के बाद वह देवानंदा ब्राह्मणीने [ते सुमिणे तप्फलजाणणट्ठं] उन स्वप्नों का फल जानने के लिये [उसभदत्तस्स माह-

णस्स कहेइ] ऋषभदत्त ब्राह्मण को कहा [से य ते सुमिणे सोच्चा] ऋषभदत्त ब्राह्मणने उन स्वप्नों को सुनकर [निसम्म] तथा समझ कर [सुमिणत्थुग्गहं करेइ] स्वप्नों के अर्थ को अवग्रहण किया। [तओ पच्छा तं देवाणंदं माहणिं एवं वयासी] तदनन्तर उस देवानन्दा ब्राह्मणी से इस प्रकार बोला—[देवाणुप्पिये] हे देवानुप्रिये! [उराला] तुमने उदार [कल्लाणा] कल्याण [सिवा] शिव [धन्ना] धन्य [मंगल्ला] मांगलिक [सस्सिरीया] सश्रीक [हियकरा] हितकर [सुहकरा] सुखकर [पीइकरा] और प्रीतिकर [तुमे देवाणुप्पिए! चउद्दसमहासुमिणा दिट्ठा] हे देवानुप्रिये! तुमने चौदह महास्वप्न देखे हैं। [तेणं अम्हाणं] उससे हमें [अत्थलाभो भविस्सइ] अर्थ का लाभ होगा [भोगलाभो भविस्सइ] भोग का लाभ होगा [पुत्तलाभो भविस्सइ] पुत्र का लाभ होगा। [सुहलाभो भविस्सइ] सुख का लाभ होगा। [तुवं खलु देवाणुप्पिये!] हे देवानुप्रिये! तुम [नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं] नौ महिने पूरे [अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं] और साढे

सात रात्रि [वइक्कंताणं] व्यतीत होजाने पर [सुकुमालपाणिपायं] सुकुमार हाथ पैरवाले, [अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरं] हीनता-रहित प्रतिपूर्ण पांच इन्द्रियों से युक्त शरीरवाले [लक्खण-वंजण-गुणोववेयं माणु-म्माण] लक्षणों, व्यंजनों और गुणों से युक्त मान, उम्मान [पमाणपडिपुण्णसुजाय-सव्वंग-सुंदरंगं] और प्रमाण से परिपूर्ण अच्छी आकृति से युक्त एवं सर्वांग सुन्दर अंगवाले [ससिसोमागारं] चन्द्रमा के समान सौम्य आकृतिवाले [कंतं] कान्तिमय [पियदंसणं] प्रियदर्शन [सुरूवं] सुन्दर रूप से सम्पन्न [दारगं पयाहिसि] पुत्र को जन्म देगी ॥९॥

मूलम्-तए णं सा देवाणंदा माहणी महासुमिणाणं फलं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ चित्तमाणंदिया तं गब्भं सुहं सुहेणं परिवहइ ।

अह य इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं ओहिणा आभोएमाणे आभो-

एमाणे सक्किंदे देविंदे देवराया समणं भगवं महावीरं माहणकुंडग्गामे नयरे कोडालसगोत्तस्स उसभदत्तस्स माहणस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कंतं पासइ पासित्ता सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी–

णमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं आइगराणं तित्थयराणं सयं संबुद्धाणं पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरियाणं पुरिसवरगन्धहत्थीणं लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपज्जोयगराणं अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मणायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं दीवो ताणं

सरणं गई पइट्ठा अप्पडिहय-वर-नाणदंसण-धराणं वियट्टछउमाणं जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोयगाणं सव्वन्नूणं सव्व-दरिसीणं सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्ति सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं। णमो जिणाणं जियभयाणं। णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स पुव्वत्तित्थयरनिद्दिट्ठस्स जाव संपाविउकामस्स वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मं भगवं तत्थगए इहगयं-तिकट्टु समणं भगवं महा-वीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सन्निसण्णे।१०।

शब्दार्थ—[तए णं सा देवाणंदा माहणी] तब वह देवानंदा ब्राह्मणी [महासु-मिणाणं फलं सोच्चा] महास्वप्नों का फल सुनकर [निसम्म] और समझकर [हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया] हर्षित तथा संतुष्ट हुई [तं गब्भं सुहं-सुहेणं परिवहइ] वह सुखपूर्वक

उस गर्भ को वहन करने लगी।

[अह य इमं च णं] इधर [केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं ओहिणा] संपूर्ण जम्बूद्वीप को अवधिज्ञान से [आभोएमाणे आभोएमाणे] अवलोकन करते हुए [सक्किंदे देवराया समणं भगवं महावीरं] शक्रेन्द्र देवराजने श्रमण भगवान महावीर को [माहणकुंडग्गामे नयरे] ब्राह्मणकुंडग्राम नामक नगर में [कोडालसगोत्तस्स उसभदत्तस्स माहणस्स] कोडालसगोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की [भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए] पत्नी जालंधर गोत्रवाली देवानंदा ब्राह्मणी की [कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कंतं पासइ] कूँख म गर्भरूप से आये देखा [पासित्ता सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ], देखकर वह सिंहासन से उठ खडे हुए, [अब्भुट्ठित्ता करयलपरिग्गहियं] ऊठकर दोनों हाथ जोडकर [दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी] दसों नख जिसमें मिल गये हैं इस प्रकार दोनों हाथों से आवर्त्त-प्रदक्षिण करके मस्तक पर अंजलि धारण करके इस

प्रकार कहने लगे—

[णमोत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं] नमस्कार हो अरिहन्त भगवंतों को [आइगराणं] धर्म की आदि करनेवाले [तित्थयराणं] तीर्थ की स्थापना करनेवाले [सयं संबुद्धाणं] स्वयं ही बोध को पानेवाले [पुरिसुत्तमाणं] पुरुषों में श्रेष्ठ [पुरीससीहाणं] पुरुषों में सिंह [पुरिसवरगंधहत्थीणं] पुरुषों में श्रेष्ठ गंध हस्ती [लोगुत्तमाणं] लोक में उत्तम [लोगनाहाणं] लोक में नाथ [लोगहियाणं] लोक के हितकारी [लोगपईवाणं] लोक में दीपक [लोगपज्जोयगराणं] लोक में उद्योत करनेवाले [अभयद्याणं] अभय देनेवाले [चक्खुद्याणं] ज्ञानरूपी नेत्र देनेवाले [मग्गद्याणं] धर्ममार्ग के दाता [सरणद्याणं] शरण के दाता [जीवद्याणं] सञ्जमरूपी जीवन के दाता [बोहिद्याणं] बोधि=सम्यक्त्व के दाता [धम्मद्याणं] धर्म के दाता [धम्मदेसयाणं] धर्म के उपदेशक [धम्मनायगाणं] धर्म के नायक [धम्मसारहीणं] धर्म के सारथि [धम्मवर] धर्म के श्रेष्ठ [चाउरंत] चार-

गति का अंत करनेवाले [चक्कवट्टीणं] चक्रवर्ती [अप्पडिहय] अप्रतिहत तथा [वरणाण-दंसणधराणं] श्रेष्ठ ज्ञानदर्शन के धारक [विअट्टछउमाणं] छद्म से रहित [जिणाणं] रागद्वेष के विजेता [जावयाणं] औरों को जितानेवाले [तिन्नाणं] स्वयं तरे हुए [तारयाणं] दूसरों को तारनेवाले [बुद्धाणं] स्वयं बोध को प्राप्त, तथा [बोहयाणं] दूसरों को बोध देनेवाले [मुत्ताणं] स्वयं मुक्त [मोयगाणं] दूसरों को मुक्त करानेवाले [सव्वन्नूणं] सर्वज्ञ [सव्वदरिसीणं] सर्वदर्शी तथा [सिवं] उपद्रव रहित [अयलं] अचल=स्थिर [अरुयं] रोगरहित [अणंतं] अंतरहित [अक्खयं] अक्षय [अव्वाबाहं] बाधारहित [अपुणरावित्ति] पुनरागमन से रहित ऐसे—[सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं] सिद्धि गति नामक स्थान को प्राप्त किये [नमो जिणाणं जिय भयाणं] भयों को जीत लेनेवाले जिन भगवन्तों को नमस्कार हो।

[णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स] नमस्कार हो श्रमण भगवान महा-

वीर को [पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठस्स] जिनका पूर्ववर्ती तीर्थंकरोंने निर्देश किया है। [जाव संपाविउकामस्स] और जो मुक्ति को प्राप्त करने के इच्छुक हैं। [वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए] उस स्थान पर रहे हुए भगवान को यहीं से मैं वंदना करता हूँ। [पासउ मं भगवं तत्थगए इहगयं] वहां स्थित भगवान् यहां स्थित मुझको देखते हैं [तिकट्टु] इस प्रकार कहकर [समणं भगवं महावीरं] श्रमण भगवान महावीर को शक्रेन्द्रने [वंदइ नमंसइ] वंदना की नमस्कार किया [वंदित्ता नमंसित्ता] वंदना नमस्कार करके [सीहासणवरंसि] श्रेष्ठ सिंहासन पर [पुरत्थाभिमुहे संनिसण्णे] पूर्व दिशा की तरफ मुह करके बैठ गये ॥१०॥

मूलम्–तए णं से सक्के देविंदे देवराया समणस्स भगवओ महावीरस्स अच्छेरयभूयं माहणकुलगब्भत्ताए वुक्कमं जाणित्ता चिंतेइ–नो खलु अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा अंतकुलेसु वा पंतकुलेसु वा तुच्छ-

कुलेसु वा हीणकुलेसु वा दीणकुलेसु वा रुग्गकुलेसु वा भुग्गकुलेसु वा दरिद्दकुलेसु वा किवणकुलेसु भिक्खागकुलेसु वा माहणकुलेसु वा आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइस्संति वा। अत्थि पुण एसेवि भावे अच्छेरयभूए। एस पुण अणंताहिं उस्सिप्पिणीहिं ओसप्पिणीहिं विइक्कंताहिं समुप्पज्जइ ॥

नामगुत्तस्स वा कम्मस्स अक्खीणस्स अवेइयस्स अणिज्जिन्नस उदयेणं जण्णं अरहंता वा जाव वासुदेवा वा अंतकुलेसु वा जाव माहणकुलेसु वा आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइस्संति वा, कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कमिंसु वा वक्कमंति वा वक्कमिस्संति वा नो चेव णं जोणी जम्मणनिक्खमणेणं निक्खमिंसु वा निक्खमिस्संति वा। अयं च समणे भगवं महावीरे माहणकुंडग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते। तं

जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवरायाणं जं णं अरिहंता भगवंतो तहप्पगारेहिंतो अंतकुलेहिंतो जाव माहणकुलेहिंतो तहप्पगारेसु उग्गकुलेसु वा भोगकुलेसु वा राइण्णकुलेसु वा इक्खागकुलेसु वा हरिवंसकुलेसु वा नायकुलेसु वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु वा विसुद्धजाइकुलवंसेसु साहरणिज्जा। तं सेयं खलु ममावि समणं भगवं महावीरं चरमतित्थयरं पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठं माहणकुंडग्गामाओ णयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए कुच्छीओ खत्तियकुण्डग्गामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगुत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगुत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरावित्तए। जे वि य णं से तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरावित्तएत्ति

कट्टु हरिणेगमेसिं पायत्ताणीयाहिवइं देवं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया! नो खलु अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा अंतकुलेसु वा जाव जे वि य णं से तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराविंत्तए। तं गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं माहणकुण्डग्गामे णयरे उसभदत्तस्स माहणस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए कुच्छीओ खत्तियकुण्डग्गामे णयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगुत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगुत्ताए कुच्छिंसि अव्वाबाहं अकिलामं अगिलाणं अमिलाणं जयणाए जयमाणे गब्भत्ताए साहराहि, साहरित्ता ममेयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि ॥११॥

शब्दार्थ—[तए णं से सक्के देविंदे देवराया] इसके बाद वह शक्र देवेन्द्र देवराज [समणस्स भगवओ महावीरस्स] श्रमण भगवान महावीर का [अच्छेरयभूयं] आश्चर्य-कारक [माहणकुलगब्भत्ताए] ब्राह्मणकुल में [वुक्कमं जाणित्ता चिंतेइ] गर्भरूप से उत्पन्न हुआ जानकर विचार करते हैं–[नो खलु अरहंता वा चक्कवट्टी वा] निश्चय ही अर्हन्त चक्रवर्ती [बलदेवा वा वासुदेवा वा] बलदेव या वासुदेव [अंतकुलेसु वा] अन्तकुलों (शूद्रकुलों)में [पंतकुलेसु] प्रांत [अधर्माचारियों के कुलों] में [तुच्छकुलेसु वा] तुच्छ अर्थात् अल्प परिवारवाले कुलों में [हीणकुलेसु वा] हीन अर्थात् जाति एवं धन आदि से अपूर्ण कुलों में [दीणकुलेसु वा] दीन कुलों में [रुग्गकुलेसु वा] रुग्ण कुलों में [भुग्गकुलेसु] भुग्न–कुटिल या वंचक कुलों में [दरिद्दकुलेसु वा] दरिद्र कुलों में [किवणकुलेसु वा] कृपण कुलों में [भिक्खागकुलेसु वा] भिक्षुक कुलों में [माहणकुलेसु वा] अथवा ब्राह्मण कुलों में [आयाइंसु वा] अतीत काल में उत्पन्न नहीं हुए [आयाइंति वा] वर्तमान में नहीं

उत्पन्न होते [आयाइस्संति वा] और भविष्य में भी नहीं उत्पन्न होंगे। [अत्थिपुण एसे वि भावे अच्छेरयभूए] अर्हन्तों आदि का अन्तकुल आदि में आना भी आश्चर्य है। [एस पुण अणंताहिं उस्सप्पिणीहिं] यह आश्चर्यरूप भाव अनंत उत्सर्पिणी और [ओस-प्पिणीहिं] अवसर्पिणी काल [विइक्कंताहिं समुप्पज्जइ] बीतने पर उत्पन्न होता है।

[नामगुत्तस्स वा कम्मस्स] नामगोत्र--नीचगोत्र का क्षय न हुआ हो [अवेइयस्स] वेदा न गया हो [अणिज्जिन्नस्स] निर्जरा नहीं हुइ हो [उदयेणं] और इस कारण उसके उदय से [जण्णं अरहंता वा जाव वासुदेवा वा] अर्हंत यावत् वासुदेव [अंतकुलेसु वा जाव माहणकुलेसु वा] अन्तकुलों में यावत् ब्राह्मणकुलों में [आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइस्संति वा] आये, आते हैं या आएँगे [कुच्छिसि गब्भत्ताए] कुक्षि म गर्भरूप से [वक्कमिंसु वा वक्कमंति वा वक्कमिस्सिंति वा] उत्पन्न हुए, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे [नो चेव णं जोणीजम्मणनिक्खमणेणं] तो भी योनिजन्म निष्क्रमण (योनि द्वारा

जन्म के रूप में निकलना) से न जन्मे हैं [निक्खमिंसु वा] न जन्मते हैं और [निक्खमिस्संति वा] न जन्मेंगे। अर्थात् प्रथम तो अर्हन्त चक्रवर्ती आदि अन्त–प्रान्त यावत् ब्राह्मण कुलों में गर्भ के रूप में प्रवेश ही नहीं करते, कदाचित् पूर्वबद्ध नीचगोत्र कर्म के उदय से गर्भ में प्रवेश करे भी तो उन कुलों में जन्म नहीं लेते। [अयं च णं] परन्तु यह [समणे भगवं महावीरे] श्रमण भगवान महावीर [माहणकुंडग्गामे नयरे] ब्राह्मणकुण्डग्राम नामक नगर में [उसभदत्तस्स माहणस्स] ऋषभदत्त ब्राह्मण की [भारियाए देवाणंदाए माहणीए] पत्नी देवानंदा ब्राह्मणी की [कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते] कुक्षि में गर्भरूप से उत्पन्न हुए है। [तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं] तो भूतकालीन, वर्तमानकालीन तथा भविष्यत्कालीन [सक्काणं देविंदाणं देवरायाणं] शक्र देवेन्द्रों देवराजों का यह परम्परागत आचार हैं कि [जं णं अरिहंता भगवंतो] वे अरिहंत भगवन्तों को [तहप्पगारेहिंतो अंतकुलेहिंतो] पूर्वोक्त अन्तकुलों से [जाव

माहणकुलेहिंतो] ब्राह्मणकुलों से [तहप्पगारेसु] उस प्रकार के [उग्गकुलेसु वा] उग्र कुलों में [भोगकुलेसु वा] भोगकुलों में [राइण्णकुलेसु वा] राजन्यकुलों में [इक्खागकुलेसु वा] इक्ष्वाकु कुलों में [हरिवंसकुलेसु वा] हरिवंशकुलों में [नायकुलेसु वा] ज्ञातकुलों में [अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु] अथवा इसी प्रकार के [विसुद्ध जाइकुलवंसेसु] विशुद्ध जाति (मातृपक्ष) और विशुद्ध कुल (पितृपक्ष) वाले किन्हीं कुलों में [साहरणिज्जा] उनका संहरण कर देना चाहिये। [तं सेयं खलु ममा वि] तो मेरे लिये उचित है कि [समणं भगवं महावीरं] श्रमण भगवान् महावीर को [चरमतित्थयरं] जो चरम तीर्थंकर हैं [पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठं] और पूर्ववर्ती तीर्थंकरो द्वारा निर्दिष्ट है उन्हें [माहणकुंडग्गामाओ णयराओ] ब्राह्मणकुण्ड ग्राम नामक नगर में [उसभदत्तस्स माहणस्स] ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या [देवाणंदाए माहणीए] देवानन्दा ब्राह्मणी की [कुच्छिओ] कुक्षि से [खत्तियकुंडग्गामे नयरे] क्षत्रियकुंडग्राम नामक नगर

में [नायाणं खत्तियाणं] ज्ञात क्षत्रियों के [सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगुत्तस्स] काश्यप-गोत्रीय सिद्धार्थ क्षत्रिय की [भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगुत्ताए] भार्या वासिष्ठगोत्रवाली त्रिशला क्षत्रियाणी की [कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराविත्तए] कुक्षि में गर्भरूप से संहरण करूँ [जे वि य णं से तिसलाए खत्तियाणीए] और त्रिशला क्षत्रियाणी का जो [गब्भे] गर्भ है [तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए कुच्छिंसि] उसे देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में [गब्भत्ताए साहराविත्तएत्ति कट्टु] संहरण कर दूँ। इस प्रकार विचार करके [हरिणेगमेसिं पायत्ताणीयाहिवइं] शक्रेन्द्र ने अनीकाधिपति हरिणैगमेषी [देवं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–] देव को बुलवाया और बुलवा कर इस प्रकार कहा–

[एवं खलु देवाणुप्पिया!] हे देवानुप्रिय [नो खलु अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा] अर्हन्त, चक्रवर्त्ती, बलदेव अथवा वासुदेव [अंतकुलेसु वा जाव जे वि य णं से] अन्तकुल में उत्पन्न नहीं होते हैं यावत् [तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे]

त्रिशला रानी के गर्भ को [तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरावित्तए] देवानन्दा की कुक्षि में और देवानन्दा के गर्भ को त्रिशला की कुक्षि में संहरण करना उचित है। [तं गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया !] अतः हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ, [समणं भगवं महावीरं] श्रमण भगवान महावीर को [माहणकुंडग्गामे णयरे] ब्राह्मणकुंडग्राम नगर में [उसभदत्तस्य माहणस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए] ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी देवानंदा ब्राह्मणी की [कुच्छिओ खत्तियकुंडग्गामनयरे] कुक्षिसे क्षत्रियकुण्डग्राम नगर में [नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स] ज्ञात क्षत्रियों के वंश में उत्पन्न [खत्तियस्स कासव गुत्तस्स] काश्यपगोत्रीय सिद्धार्थ क्षत्रिय को [भारियाए तिसलाए] भार्या त्रिशला [खत्तियाणीए वासिट्ठसगुत्ताए] वासिष्ठ गोत्रीया क्षत्रियाणी की [कुच्छिंसि अव्वबाहं] कुक्षि में किसी प्रकार की पीडा न हो [अकिलामं] परिश्रम न हो [अगिलाणं] खेद न हो [अमिलाणं] म्लानता न हो [जयणाए जयमाणे] यतना से कार्य करते हुए [गब्भत्ताए

साहराहि] बदल दो। [जे वि य णं से तिसलाए खत्तियाणीए] और त्रिशला क्षत्रियाणी का [गब्भं तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए कुच्छिंसि] जो गर्भ है, उसगर्भ को देवाणंदा ब्राह्मणी की कुक्षि में [गब्भत्ताए साहराहि] गर्भरूप से बदल दो [साहरित्ता] संहरण करके—अदल बदल करके [ममेयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि] मेरी इस आज्ञा को शीघ्र ही पालन करके वापिस आकर कहो ॥१२॥

मूलम्—तए णं से हरिणेगमेसी देवे तस्साणत्तियं विणएणं पडिसुणेइ पडिसुणित्ता दिव्वाए देवगईए उत्तरपुरत्थिमं दिसिभागं ओक्कमइ, ओक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वित्ता दिव्वाए देवगईए वीइ-वयमाणे २ तिरियमसंखिज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं जेणेव मज्झजंबु-दीवे दीवे भारहेवासे, जेणेव माहणकुंडग्गामणयरे जेणेव उसभदत्तस्स माहण-

स्स गिहे, जेणेव देवाणंदा माहणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स आलोए पणामं करेइ, करित्ता देवाणंदाए माहणीए ओसोवणिं निद्दं दलेइ, दलित्ता असुभे पोग्गले अवहरइ, अवहरित्ता सुभे पोग्गले पक्खिवइ, पक्खिवित्ता 'अणुजाणउ मे भगवं' त्ति कट्टु समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं अकिलामं—अगिलामं अमिलाणं सक्किंदस्साणाणुसारं अव्वाबाहेणं दिव्वेणं पहावेणं कोमलकरयलसंपुडेणं गिण्हइ॥१३॥

शब्दार्थ—[तए णं से हरिणेगमेसी देवे] तदनन्तर हरिणैगमेषीदेव [तस्साणत्तियं विणएणं पडिसुणेइ] शक्रेन्द्र की आज्ञा का विनयपूर्वकस्वीकार करता है [पडिसुणित्ता] स्वीकार करके [दिव्वाए देवगईए उत्तरपुरत्थिमं दिसिभागं ओवक्कमइ] दिव्य देवगति से उत्तर पूर्वदिशा में ईशानकोण में जाता है। [ओवक्कमित्ता] वहां जाकर [वेउव्विय-

समुग्घाएणं] वैक्रिय समुद्घातकरके [उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वित्ता] उत्तरवैक्रिय रूप की विकुर्वणा करके [दिव्वाए देवगईए वीइवयमाणे] दिव्यदेवगति से जाता हुआ [तिरियमसंखिज्जाणं दीवसमुद्दाणं] तिर्छे असंख्यात द्वीप--समुद्रों के [मज्झं मज्झेणं जेणेव] बीचों बीच होकर जहां [मज्झजंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे] मध्यजम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र है [जेणेव माहणकुंडग्गामणयरे] जहां ब्राह्मणकुण्डग्रामनगर है [जेणेव उसभदत्तस्स माहणस्स गिहे,] जहां ऋषभदत्त ब्राह्मण का घर है [जेणेव देवाणंदा माहणी तेणेव उवागच्छइ] जहां देवानंदा ब्राह्मणी है, वहीं आता है। [उवागच्छित्ता] आकरके [समणस्स भगवओ महावीरस्स] श्रमण भगवान महावीर को [आलोए पणामं करेइ] देखते ही प्रणाम करता है [करित्ता देवाणंदाए माहणीए ओसोवणिं निद्दं दलेइ] प्रणाम करके देवानंदा ब्राह्मणी को गहरी निद्रा में सुलादेता है। [दलित्ता] और सुलाकर [असुभे पोग्गले अवहरइ] अशुभपुद्गलों का अपहरण करता है [अवहरित्ता] अपहरण

करके [सुभे पोग्गले पक्खिवइ] शुभ पुद्गलों का प्रक्षेप करता है [पक्खिवित्ता] प्रक्षेप करके ['अणुजाणउ मे भगवं त्ति' कट्टु] 'भगवान मुझे आज्ञा दें' इसप्रकार कह कर [समणं भगवं महावीरं] श्रमण भगवान महावीर को [अव्वाबाहं] बिनाकिसी पीडा के [अकिलामं] बिना परिश्रम के [अगिलामं] बिना खेद के [अमिलामं] बिना म्लानता, के—बिना तेजोवध के [सक्किदस्साणाणुसारं] शकेन्द्र की आज्ञानुसार [अव्वाबाहेण] अप्रतिहत [दिव्वेणं पहावेणं] दिव्यप्रभाव से [कोमलकरयलसंपुडेणं गिण्हइ] अपने कोमल करसम्पुट में ले लेता है ॥१३॥

मूलम्—तए णं सक्कवयणसंदिट्ठे हियाणुकंपए सासणहिए से हरिणेगमेसी देवे सिद्धत्थस्स रण्णो इंदावासायमाणे रायभवणे सोभग्गसुहपेसलाए तिसलाए सुहं सुहेणं सयमाणाए अंतिए आगच्छइ, आगच्छित्ता तिसलाए खत्तियाणीए सपरियणाए ओसोवणिं निद्दं दलेइ, दलित्ता असुभे पोग्गले साहरइ, सुभे पोग्गले पक्खिवइ. पक्खिवित्ता समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं

अकिलामं अगिलामं अमिलाणं सक्किंदस्साणाणुसारं अव्वाबाहेणं दिव्वेणं पहावेणं आसोयबहुलस्स तेरसीपक्खेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं चंदेणं जोगमुवगएणं तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरइ। जे वि य णं से तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तं पि य णं देवानंदाए माहणीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तिण्णाणोवगए यावि होत्था। साहरिज्जिस्सामित्ति जाणइ, साहरिए–मिति जाणइ, साहरिज्जमाणे वि जाणइ, असंखेज्जसमइए णं से काले पण्णत्ते। तए णं से हरिणेगमेसी देवे तं समणं भगवं महावीरं तज्जणणिं च तिसलं देविं वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो तमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणइ ॥१४॥

शब्दार्थ—[तए णं सक्कवयणसंदिट्ठे] उसके बाद शक्रेन्द्र द्वारा आज्ञा प्राप्त [हियाणुकंपए] हित की अनुकम्पा करनेवाला [सासणहिए] शासन का हित चाहनेवाला [से हरिणेगमेसी देवे] वह हरिणैगमेषी देव [सिद्धत्थस्स रण्णो] सिद्धार्थ राजा के [इंदावासायमाणे रायभवणे] इन्द्र भवन के समान राजभवन में [सोभग्गसुहपेसलाए] सौभाग्यसुख से सुन्दर [तिसलाए सुहं सुहेणं सयमाणाए अंतिए आगच्छइ] और सुखपूर्वक सोती हुइ त्रिशला के समीप आया, [आगच्छित्ता] आकर [तिसलाए खत्तियाणीए] त्रिशला क्षत्रियाणी को परिजनों सहित [ओसोवणिं निद्दं दलेइ] अवस्वापिनी निद्रा में सुला दिया [दलित्ता असुभे पोग्गले साहरइ] सुलाकर अशुभ पुद्गलों का संहरण किया [सुभे पोग्गले पक्खिवइ पक्खिवित्ता] और शुभ पुद्गलों का प्रक्षेप किया। प्रक्षेप करके [समणं भगवं महावीरं] श्रमण भगवान महावीर को [अव्वाबाहं] बाधारहित [अकिलामं] श्रमरहित [अगिलाणं] ग्लानिरहित [अमिलाणं] खेद-म्लानता

रहित [सक्किंदस्साणाणुसारं] शक्रेन्द्र की आज्ञा के अनुसार [अव्वाबाहेणं] अप्रतिहत [दिव्वेणं पहावेणं] दिव्य प्रभाव से [आसोयबहुलस्स तेरसीपक्खेणं] आश्विन–मास के कृष्ण पक्ष की तेरस के दिन [हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं चंदेण जोगमुवगएणं] चन्द्रमा के साथ हस्तोत्तरा–उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का योग होने पर [तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिंसि] त्रिशला क्षत्रियाणि के उदर में [गब्भत्ताए साहरइ] गर्भरूप से संहरण कर देता है [जे वि य णं से तिसलाए खत्तियाणीए] और त्रिशला क्षत्रियाणी का [गब्भं तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए] जो गर्भ था उसका देवानंदा ब्राह्मणी की [कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरइ] कुक्षी में गर्भरूप से संहरण कर देता है।

[तेणं कालेणं तेणं समएणं] उस काल और उस समय में [समणे भगवं महावीरे] श्रमण भगवान महावीर [तिण्णाणोवगए यावि होत्था] तीन ज्ञानों से युक्त थे [साहरिज्जिस्सामित्ति जाणइ] 'संहरण होगा' १ यह जानते थे। [साहरिए–मित्ति जाणइ]

'संहरण हो गया'३ यह जानते थे। [साहरिज्जमाणेवि जाणइ] 'संहरण हो रहा है'२ यह भी जानते थे [असंखेज्जसमएणं से काले पण्णत्ते] क्योंकि संहरण का काल असंख्यात समय का कहा गया है।

[तए णं से हरिणेगमेसी देवे] उसके बाद वह हरिणैगमेषी देव [तं समणं भगवं महावीरं] उन श्रमण भगवान महावीर को [तज्जणणिं च तिसलं देविं वंदित्ता नमंसित्ता] और उनकी माता त्रिशला देवी को वंदना नमस्कार करके [जामेव दिसिं पाउब्भूए] जिस दिशा से आया था [तामेव दिसिं पडिगए] उसी दिशा में उसी ओर लौट गया [सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो] और शक्र देवेन्द्र देवराज की [तमाणत्तियं] उस आज्ञा को [खिप्पामेव पच्चप्पिणइ] शीघ्र ही वापस लौटा दिया ॥१४॥

मूलम्—तए णं सा तिसला खत्तियाणी तंसि तारिसगंसि चारु छद्दारुय-वेरुलियाइ विविहमाणिक्क चित्तिय मसिण मणोहरा रंभ-खंभो-वंतकंत साल-

भंजिया मंजुमणिकंचणरयणबंधुरसिखरनिस्संकविडंकविसालविविहमणिजाल विद्लचंदपगासंतबहुरूवं करयणरइयसोवाणपरंपरानिज्जूहसमूहसुंदरंतरकणग-किंकिणीकासिकणगालिया चंदसालिया विविहविभत्तिकलिए रयणखइय-मासिणहेमकुड्डे हंसगब्भरयणविरइयविउलदारे गोमेज्जगमणिरइयइंदकीले चारु लोहियक्खवउज्जोइयचोकट्ठे मरगयवज्जग्गललियकवाडे पंचवण्णरयणविणि-म्मियतोरणविचित्ते दित्तजोइरयणविरइयचंदए चित्ताचित्तियफलिहरयणहंसमा-लिया तिरिक्कयगगणतलुड्डुंतसच्चहंसे मंदाणिलपेलियजंबूणयमयपत्तलसुत्तप्पोयु-ज्जलमणिमोत्तियझल्लरीनिस्सरंतछत्तीसरायराइणीगुंजिए सरसनिरुवमधाऊ-वलरागरंजिए, बाहिरओ अइधवलियघट्ठमट्ठे, अब्भिंतरओ चित्तियविचित्तपवित्त-चित्ते पवंचियपंचवण्णमणिरयणकुट्टिमतले कमललया कुसुमवल्ली ललिय पुप्फ-

जाइचित्तालंकियउल्लोयचंचिओवरितले कुसलललामकणगकलससुरइयपडिपुं-
जियसरससारससोहंतदारभागे लंबंतसुवण्णप्पहाणमणिमुत्ताललामदामविरइय-
हारसुसमे सुगंधबंधुरकुसुममउलपम्हल सुकप्पतप्पसोहिए हिययमणरंजए कप्पूर-
लविंगमलययचंदणकालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवडज्झंतउब्भूयसुरहिमघमघंतगं-
धबंधुरे सुगंधोद्धुरगंधिए गंधवट्टिभूए मणिगणाकिरणदूरीकयंधयारे पंचवण्ण-
रयणोवसोहिए, डज्झंतधूवधूमपडलंबुयकंते चित्तरत्तमणिरोईसुविज्जुब्भाइए
मिउमयंगणिणाए मेहजालब्भमनच्चिअमोरे चंतकंतमणिणिज्झरनीरे सिप्पकला-
कमणिज्जे अइरमणिज्जसग्गसोहाविडंबियसुरवरविमाणे सव्वोउयसुहभवणे
अचिंतरिद्धिसंपण्णे वरभवणे तंसि तारिसगंसि उभओ लोहियक्खमयबिब्बोयणे
तवणिज्जमयगंडोवहाणकलिए सालिंगणवट्टिए दुहओ उण्णए मज्झेणं गम्भीरे

गंगापुलिणवालुयाउद्दालसालिसए उयचिय खोमदुगूलपट्टपडिच्छन्ने अत्थ(य-मलगनवयकुसत्तलिंबसीहकेसरच्छाइए सुविरइयरयत्ताणे रत्तंसुयसंवुडे सुरम्मे-आईणगरूयबूरणवणीयतूलफासमउए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे सयणिज्जे तंसि तारिसगंसि सुहं सयाणा पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि सुत्त-जागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमे एयारूवे उराले कल्लाणे सिवे धन्ने मंगल्ले सस्सिरीए हियकरे सुहकरे पीइकरे चउद्दसमहासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा। ते णं महासुमिणा इमे–गयो १ वसहो २ सीहो ३ लच्छी ४ दामं ५ ससी ६ दिणयरो ७ झओ ८ कुम्भो ९ पउमसरं १० सागरो ११ विमाण १२ रयणुच्चओ १३ सिही १४ य ॥१५॥

शब्दार्थ—[तए णं सा तिसला खत्तियाणी] इसके बाद वह त्रिशला क्षत्रियाणी

[तंसि तारिसगंसि] जिस प्रकार के सुन्दर भवन में शयन कर रही थी उस राजभवन का वर्णन करते हैं--[चारु छद्दारुय] उस राजभवन के किवाडों में छह सुन्दर काष्ठ लगे हुए थे। [वेरुलियाइ] वैडूर्य आदि [विविहमाणिक्क] अनेक प्रकार की मणियों से [चित्तिय] चित्रित [मसिण] चिकने तथा [मणोहरा रंभखंभो] मनोहर बनावटवाले स्तंभों के [वंत कंत सालभंजिया] अन्तिम भाग के समीप सुन्दरपुतलियों से [मंजु मणि-कंचणरयणबंधुरसिखर] मनोहर मणियों, स्वर्ण एवं रत्नों से सुहावने शिखरों [निस्संक विडंग] घातक प्राणियों की शंका से रहित कपोत पालिका (महल आदि के अग्रभाग पर काठ आदि के बने हुए पक्षियों के निवासस्थान से) [विसालविविहमणिजाल विदल-चंदपगासंत बहुरूवं करयणरइयसोवाण] विशाल और विविध प्रकार की वज्र आदि मणियों के समूह तथा अर्द्धचन्द्र के समान चमकनेवाले, नाना प्रकार के चिह्नों से युक्त रत्नद्वारा रचित सीढियों की [परंपरा] परम्परा से [निज्जूहसमूहसुंदरंतरं] निर्यूहों–

दरवाजे के आजू बाजू दीवार से बाहर निकले हुए अश्व आदि की आकृति के काष्ठों से सुशोभित भीतरी भाग से, [कणग किंकिणी] सोने की घुघुरुओं से [कासि] शोभायमान [कणयालिया चंदसालिया] कनकालिका–भवन के एक भाग से, तथा चन्द्रशाला-भवन के शिरोगृह से, [विविहविभत्तिकलिए] वह भवन सुन्दर प्रतीत होता था [रयणखइयमसिणहेमकुड्डे] उस भवन की सुवर्ण की दीवारे थी वह चिकनी और उसमें रत्न जडे हुए थे। [हंसगब्भरयणविरइयविउलदारे] हंसगर्भ नामक रत्नों के बने हुए विशाल द्वार थे [गोमेज्जग मणिरइयइंदकीले] गोमेद मणियों द्वारा रचित इन्द्र कील–द्वार का अवयव विशेष था [चारुलोहियक्खउज्जोइयचोकट्ठे] मनोहर लोहिताक्ष मणियों से उसकी चौकठ बनी थी, [मरगयवज्जग्गलललियकवाडे] मरकत एवं वज्रमणियों से बनी आगल से किवाड मनोहर जान पडते थे [पंचवण्णरयणविणिम्मियतोरणविचित्ते] वह पांच रंग के रत्नों से बने तोरणों से शोभायमान

था [दित्तजोइरयणविरइयचंदए] वहां देदिप्यमान आभावाले रत्नों के चन्दोवे बने थे [चित्तचित्तियफलिहरयणहंसमालिया] अद्भुत रूप से चित्रित की गई स्फटिक मणियों की हंसमालाए [तिरक्कय गगणतलुड्डंत सच्चहंसे] गगनतलमें उडनेवाले सच्चे-सजीव हंसों को भी तुच्छ बनाती थी [मंदाणिलपेलियजंबूणयमय] मंद मंद पवन से हिलनेवाली सुवर्णमय [पत्तल सुत्तप्पोयुज्जलमणिमोत्तिय] पतले सूत में पिरोइ गई मणि–मोतियों की [झल्लरी निस्सरंतछत्तीसराय–राइणी] झालर से निकलनेवाली छत्तीस राग–रागिनियों से [गुंजिए] गूंजता रहता था। [सरसणिरुवमधाऊवलराग-रंजिए] वह शोभनीय तथा अनुपम सोने की दीवारों की शोभा बढानेवाली सोनागेरू आदि के रंगों से रंगा था। [बाहिरओ अइधवलियघट्ठमट्ठे] भवन का बाह्य भाग एकदम श्वेत घिसा हुआ और साफ किया हुआ था और [अब्भिंतरओ चित्तिय विचित्त-पवित्तचित्ते] भीतरी भाग में अनोखे अनोखे स्वच्छ चित्र बने हुए थे। [पवंचिय पंच-

वण्ण मणिरयणकुट्टिमतले] उसका भूमितल—स्पर्श श्वेत आदि पांच वर्णों के मणि-रत्नों द्वारा रचित था। और [कमललयाकुसुमवल्ली ललियपुप्फजाइ] कमलों, बिना फूल की वेलों पद्मनाग अशोक आदि फूलवाली लताओं तथा सुन्दर सुन्दर पुष्पों की [चित्ता-लंकिय उल्लोयचंचिओवरितले] चित्रों से सुशोभित उसका उपरि भाग छत था। [कुसल ललामकणगकलस सुरइय] मंगल सूचक सुन्दर स्वर्णमय कलशों से सजाए हुए, [पडिपुंजियसरससारससोहंतदारभागे] पुंजी कृतबहुत से एकत्र किये हुए तथा पराग युक्त कमलों से उस भवन का द्वारभाग शोभायमान हो रहा था [लंबंत सुवण्ण प्पहाणमणिमुत्ताललाम] लटकती हुई, सोने के सूत में गूंथी हुई तथा मणियों एवं मोतियों से मनको हरनेवाली [दामविरइयद्दारसुसमे] मालाएँ द्वार की शोभा बढा रही थी। [सुगंधबंधुरकुसुममउलपम्हलसुकप्पतप्पसोहिए] वह भवन सुगन्ध से सुन्दर, सुमन के समान कोमल खूब चिकनी और सुन्दर रचनावाली शय्या से शोभित

थी, [हियय मणारंजए] वह राजभवन चित्त और मन दोनों में चमत्कार उत्पन्न करने-वाला था, [कप्पूरलविंगमलययचंदणकालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूव] कपूर और लौंग मलयचंदन कृष्णागुरु [काला अगर] कुन्दुरुक्क तुरुष्क आदि धूप [डज्झंत उब्भूय-सुरहि मघमघंतगंधबंन्धुरे] इन सब सुगन्धि द्रव्यों से उत्पन्न हुए सौरभ से मघमघाते हुए गन्ध से वह भवन मनोज्ञ मालूम होता था [सुगंधोद्धुरगंधिए गंधवट्टिभूए] सब सुगन्धि में श्रेष्ठ सुगंध वहां महक रही थी वह सुगन्ध–द्रव्यों की गुटिका सा अर्थात् अत्यन्त सुगन्धयुक्त था, [मणिगणकिरणदूरिकयंधकारे] वैडूर्य आदि मणियों के समूह की किरणों ने वहां के अंधकार को दूर कर दिया था। [पंचवण्णरयणोवसोहिए] वह श्वेत आदि पांच रंगों के रत्नों से सुशोभित था। [डज्झंत–धूवधूमपडलंबुयकंते] जलाई हुइ धूप से उठनेवाले धूम पडल के कारण वह मेघ के समान मनोहर प्रतीत होता था [चित्तरत्तमणिरोईसुविज्जुब्भाइए] विचित्र लाल मणियों की किरणों का

समूहरूपी सुन्दर विद्युत् से शोभायमान था। [मिउमयंगणिणाए] उसमें मृदंग की मृदुल ध्वनि होती थी [मेहजालब्भमनच्चियमोरे] मृदंग की ध्वनि सुनकर मयूरों को मेघों का भ्रम हो जाता था और वे नाचने लगते थे। [चंदकंतमणिणिज्झरनीरे] वह चन्द्रकिरणों का संयोग होने पर चन्द्रकान्तमणियों से झरनेवाले जल से युक्त था [सिप्पकलाकमणिज्जे] शिल्पकला से कमनीय था, अतएव अत्यन्त ही रमणीय था। [अइरमणिज्जसगसोहाविडंबियसुरवरविमाणे] अपनी अनुपम शोभा से देवविमान को भी मात करता था [सव्वोउयसुहभवणे] सभी ऋतुओं में सुख जनक था [अचिंत रिद्धि संपण्णे वरभवणे] अचिन्त्य ऋद्धि वैभव से सम्पन्न श्रेष्ठ भवन में [तंसि तारिसगंसि] पूर्वोपार्जित पुण्य के धारक पुरुषों के निवास के योग्य था इस प्रकार के उत्तम भवन में एक शय्या थी [उभओ लोहियक्खमयबिब्बोयणे] उस पर दोनों ओर सिर और पैर की तरफ लोहिताक्ष रत्नों के उपधान (तकिये) लगे हुए थे [तवणिज्जमय

गंडोवहाणकलिए] कनपटी रखने के लिये सोने के बने उपधान (तकिया) से युक्त थी [सालिंगणवट्टिए] उसपर शरीर प्रमाण उपधान बिछा था। [दुहओ उण्णए मज्झेणं गंभीरे] वह दोनों तरफ ऊँची ओर मध्य में झुकी हुई थी—गम्भीर थी [गंगापुलिण-वालुयाउद्दालसालिसए] जैसे गंगा के किनारे की बालू में पांव रखने से पांव घस जाता है, उसी प्रकार उस में घस जाता था। [उयचियखोमदुगुल्लपट्टपडिच्छिन्ने] कसीदा काढे हुए क्षौमदुकूल का चद्दर बिछा हुआ था। [अच्छरयमलयनवयकुसत्तलिंबसीहकेसरच्छा-इए] वह आस्तरक, मलक, नवत कुशक्त, लिम्ब और सिंह केशर नामक आस्तरणों से आच्छादित थी [सुविरइयरयत्ताणे] धूल से बचाने के लिए उस पर सुन्दर बना हुआ रजस्त्राण पडा रहता था [रत्तंसुयसंवुडे] उस पर मसहरी लगी हुइ थी। [सुरम्मे] वह अतिशय रमणीय थी। [आइणग रूय—बूरणवणीयतुल्लपासमउए] उसका स्पर्श आजिनक (चर्म का वस्त्र) रूई बूर नामक वनस्पति और मक्खन के समान नरम था। [पासाईए]

दर्शकों के मन में आनन्द उत्पन्न करती थी [दरिसणिज्जे] दर्शनीय [अभिरूवे] अभिरूप [पडिरूवे] प्रतिरूप थी-असाधारण सुन्दर थी [सयणिज्जे तंसि तारिसगंसि सुहं सयाणा] अपूर्व पुण्यशाली जीवों के शयन करने योग्य ऐसी शय्या पर सुखपूर्वक सोती हुई त्रिशला देवीने [पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि] मध्य रात्रि के समय [सुत्तजागरा ओहिरमाणी ओहिरमाणी] त्रिशलारानीने जब नगहरी नींद में थी और न जाग रही थी, बल्कि बार बार हल्की-सी नींद ले रही थी उंघ रही थी तब उसने [इमे एयारूवे उराले कल्लाणे] आगे बताये जानेवाले उदार कल्याणकारी [सिवे धन्ने मंगल्ले] शिव-उपद्रव का नाश करनेवाले, धन्य-धन प्राप्ति करानेवाले मांगलिक पाप विनाशक [सस्सिरिए] सश्रीक [हियकरे] हितकर [सुहकरे] सुखकर [पीइकरे] प्रीतिकारक [चउद्दसमहासुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा] ऐसे चौदह महास्वप्नों को देखकर त्रिशलारानी जाग उठीं [तेणं महासुमिणे इमे] वे महास्वप्न ये हैं-[गय] गज [वसहो] वृषभ [सीहो]

सिंह [लच्छी] लक्ष्मी [दामं] माला [ससी] चन्द्रमा [दिनयरो] सूर्य [झओ] ध्वजा [कुंभो] कुंभ [पउमसर] पद्मसरोवर [सागरो] समुद्र [विमान] विमान [रयणुच्चओ] रत्नराशि [सिही य] धूमरहित अग्नि।

गयसुमिणे

मूलम्—तत्थ खलु तिसला खत्तियाणी तप्पढमयाए चउद्दंतं समुत्तुंगं निज्जलविसालजलहरघणसारहारतुसारनीरखीरसायरनिसायरकररययगिरिवरपं-डुरसरीरं भमंतमंजुगुंजंतमिलिंदविंदालंकियसुगंधबंधुरदाणधाराकलियकवोल-जुयलमूलरुइरं पुरंदरकुंजरवरसहोयरं ललामलीलायरं जलसंवलियाडंबरकरं-वियविउलजलहरगज्जियगंभीरमंजुणिणयं नयणसुहयं गयवरसयललक्खण-लक्खियं वरोरुं मंगलं करिवरं पासइ ॥१६॥

शब्दार्थ—[तत्थ खलु तिसला खत्तियाणी तप्पढमाए] उनमें से त्रिशला क्षत्रियाणी सब से पहले श्रेष्ठ हाथी को देखती है। [चउदंत] वह हाथी चार दांतोंवाला था [समुत्तुंगंग] उसका शरीर खूब उंचा था [निज्जलविसालजलहर] जलरहित महामेघ [घणसारहारतुसारनीर] कपूर, मोतियों के हार तुषार (बर्फ) जल [खीरसायरनिसायरकर] क्षीरसागर चन्द्रमा की किरण [रययगिरिवरपंडुरसरीर] एवं रजतपर्वत के समान शुभ्र शरीरवाला था [भमंतमंजुगुंजंतमिलिंदविंदा] इधरउधर डोलते हुए तथा मधुर गुंजार करते हुए भ्रमरों के समूह से [लंकियसुगन्धबंधुरदाणधाराकलिय] सुशोभित और सुगन्ध युक्त मदधारा से युक्त [कवोलजुयलमूलरुइरं] उसके दोनों कपोल अत्यन्त सुहावने जान पडते थे। [पुरंदरकुंजरवरसहोदरं] वह हाथी इन्द्र के ऐरावत हाथी के जैसा लगता था [ललामलिलायरं] सुन्दर लीला करनेवाला था [जलसंवालियाडंबरकरंविय विउलजलहरगज्जियगंभीरमंजुणिणयं] जल से परिपूर्ण और आडम्बरयुक्त

विशाल मेघों की गर्जना के समान गंभीर और मनोहर ध्वनि करनेवाला था। [नयणसुहयं] आखों को आनन्द देनेवाला था [गयवरसयललक्खणलक्खियं] श्रेष्ठ हाथी के समान समस्त लक्षणों से युक्त था [वरोरुं मंगलं करिवरं पासइ] उत्तम जांघोवाला तथा मंगलरूप था ॥१६॥

उसभ सुमिणे २

मूलम्—तओ पुण सा धवलकमलदलकयंबगातिगदेहकंतिं रोईचओवहारेहिं सव्वओ समंता वियासयंतं पुप्फरंतकंतिमंसलविसालककुयं, तणुतमविसदसुकुमाललोममसिणज्जुइ, निच्चलसुबद्धमंसलपिच्छलसुविभत्तमंजुलंगं, घणावत्तणिद्धमणहरनिसियविसालसिंगं, संतं दंतं समाणसोहमाणविमलदंतंसयलगुणसमन्नियं हिमसेलसन्निहं वसहं पासइ ॥१७॥

शब्दार्थ—[तओ पुण सा] इसके बाद उसने (त्रिशला क्षत्रियाणीने) [धवलकमलदलकयंबगातिग] शुभ्र वर्ण के कमलपत्रों के समूह से भी बढकर [देहकंतिं] शरीर की कान्तिवाले [रोईचओवहारेहिं सव्वओ समंता वियासयंतं] वह अपने शरीर से उत्पन्न होनेवाले प्रकाश के समूह को सब ओर फैला रहा था और उससे सभी दिशाएँ प्रकाशित हो रही थीं। [पुष्फरंतकंतिमंसलविसालककुयं] अपनी दीप्ति को प्रकाशित करता हुआ पुष्ट और विशाल ककुद से युक्त था। [तणुतमविसदसुकुमाललोममसिणज्जुइ] अत्यन्त बारीक निर्मल और सुकुमार रोमों से कोमलकान्तिवाले [निच्चललबद्धमंसल–पिच्छलसुविभत्तमंजुलंगं] एवं निश्चल सटे हुए पुष्ट चिकने भलीभांति विभागों से युक्त तथा मनोहर अंगोवाले [घणावत्तणिद्धमणहरनिसियविसालसिंगं] सघन गोल चिकने सुन्दर तीखे और विशाल सीगोंवाले, [संतं दंतं समाणसोहमाणविमलदंतं] शान्त, दांत एक सरीखे शोभायमान निर्मल दांतों से युक्त [सयलगुणसम-

न्नियं] समस्तगुणों से संपन्न तथा [हिमसेलसन्निहं वसहं पासइ] हिमालय पर्वत जैसे वृषभ को देखा ॥१७॥

## सीहसुमिणे ३

मूलम्—तओ पुण सा सलिलबिंदुकुंदेंदुतुसारगोखीरहारदगरयपंडुरतरं रमणिज्जपेच्छणिज्जथिरमसिणतरकरतलं परिपुट्ठसुसिलिट्ठविसिट्ठकुडिलतिक्खदाढाविडंबियमुहं विमलकमलकोमल–ललियलोहियदसणवसणं जवाकुसुमपलासालत्तगरत्तकमलदलमिदुलललंतलंबलालियलोलरसणं धगधगिति जलंताणलांतरालमूसालसंत आवत्तायंतामलकणगसगलवत्तुलविमलचवलाविडंबिनयणं किसकडितडं विसालथूलसुंदरोरुं मंसलविसालबंधुरखंधं, मिउलतमसुलक्खणमासिणजडिलकेसरनिगरकरंबियगीवं, । कुंडलिओदंचिअ अकिंचिअप्फालियाविलोललंगू-

लमंडलं खरयरनहरसिहरं, सोम्मं सोम्मागारं लीलाल्लामप्फालं अंबरतलाओ उच्छलंतं नियमुहकुहरमभिपडंतं सीहं पासइ ॥१८॥

शब्दार्थ—[तओ पुण सा] इसके बाद त्रिशलादेवीने तीसरे स्वप्न में सिंह को देखा वह सिंह [सलिलबिंदुकुंदेंदुतुसारगोखीरहारदगरयपंडुरतरं] जल की बूंद, कुन्द के फूल, चन्द्रमा, हिम, गाय के दूध, हार और पानी के छोटे बिन्दु से भी अधिक सफेद था [रमणिज्जपेच्छणिज्जथिरमसिणतरकरतलं] उसकी हथेलियां (पंजे) सुन्दर दर्शनीय, स्थिर और खूब चीकनी थी। [परिपुट्ठसुसिलिट्ठविसिट्ठकुडिलतिक्खदाढा-विडंबियमुहं] उसका मुख बडी–बडी आपस में मिली हुई, उत्तम, टेढी और तीखी दाढों से युक्त था [विमलकमलकोमलललियलोहियदसणवसणं] उसके होठ विमल कमल के समान कोमल कमनीय एवं लाल रंग के थे। [जवाकुसुमपलासालत्तगरत्त-कमलदलमिदुललंत] जपाकुसुम के समान, पलाश के पुष्प के समान तथा महावर

[अलता] के समान लाल, कमल के पत्र के समान कोमल लपलपाती [लंब लालियलोलरसणां] लम्बी लारदार और चंचल उसकी जीभ थी [धगधगिति जलंताणलांतरालमूसालसंतआवत्तायंता] उसकी आंखे धकधकती हुइ आग में रखे हुए मूषा [सोने को गलाने का मिट्टी का पात्र) में सुशोभित होनेवाले गोलाकार [मलकणगसगलवत्तुलविमलचवलाविडंबिनयणां] घूमनेवाले निर्मल स्वर्णखण्ड के समान गोल और चमकती हुइ बिजली को भी तिरस्कृत करनेवाली थी। [किसकडितडंविसालथूलसुंदरोरुं] उसकी कमर पतली थी और जंघाए विशाल स्थूल और सुन्दर थी [मंसलविसालबंधुरखंधं] उसका कंधा मांसल, विशाल और सुन्दर था [मिउलतमसुलक्खणमसिणजडिलकेसरनिगरकरंबियगीवं] उसकी गर्दन अत्यन्त नरम, सुहावने चिकने और लम्बे केसरों से युक्त थी। [कुंडलिओदंचिअअकिंचि अप्फालियविलोललंगूलमंडलं] उसकी पूछ गोलाकार उंची चढाई हुई, लम्बी और चपल थी [खरयरनहरसिहरं]

नाखूनों की नोंक खूब तीक्ष्ण थी [सोम्मं सोम्मागारं] वह सौम्य तथा सौम्य आकार-वाला था [लीलाल्लामप्फालं] उसकी उछाल में कलामय लालित्य था [अंबरतलाओ उच्छलंतं] आकाशतल से उछलते हुए और [नियमुहकुहरमभिपडंतं सीहं पासइ] अपने मुखरूपी गुफा में प्रवेश करते हुए ऐसे सिंह को देखा ॥१८॥

लच्छीसुमिणे ४.

मूलम्—तओ पुण सा उच्चविराइयट्ठाणकयासणं दिव्वनव्वभव्वाणणं करचरणसंठियसोत्थियसंखंकुसचक्काइसुहरेहं सुकुमालकरसाहालेहं जच्चंजणभमरजलहरणिगररिट्ठगगवलगुलियकज्जलरोइसमसंहियतणुयरमिउलमंजुलरोमा - वलिं फीय णवणीयचिक्कणपाणिरुहावलिं, कणगकच्छवपिट्ठमट्ठविसिट्ठचरणजुगलं कुंडलपरिमंडियललियकवोलमंडलं फारहाररायमाण सव्वोउयसुगंधिकुसुमललाम-

दामपरिणद्धवच्छत्थलं उन्नयमंसलमिउलतणुलयं मंजुलमणिगणकणखइयकंचण-कंचीचंचियकडितडं चंदद्धसमनिलाडं नाणामाणिकणगरयणविमलमहातवणिज्ज-रइयभूसणहारद्धहारपाउत्तरयणकुंडलवामुत्तकहेमजालमणिजालकणगजालसुत्त-गतिलगफुल्लगसिद्धत्थियकण्णवालियससिसूरउसभवक्कयतलभंगयतुडियहत्थमा-लयहरिसकेऊरवलयपालंब अंगुलिज्जगवलक्खदीनारमालियापयरगपरिहेरगपाय-जालघंटियखिंखिणिरयणोरुजालछड्डियवरनेउरचलणमालिया कणगनिगलजालग-मगरमुहविरायमाणनेउरपचलियसद्दालरइराभरणं, लोहियकमलदलकोमलकर-चरणं, विमलकमलदलविसाललोयणपाणिपल्लव गाहिय भमरनिगरविडंबिलंबमाण-सोहंतकयनियं, सुंदरवयणकरचरणनयणलावण्णरूवजोव्वणकलियं, पडि-पुण्णसव्वंगोवंगललियं, करचरणोत्तमंगपमुहं गोवंगसंगयमणिगणकंचणरयण-

रइयाभरणकिरणनासियंधतमसं विगयमरिसं विमलकंतिसमुज्जोइयदसदिसं कमलागरकमलनिवासिणिं सयलजणमणहिययपल्हाइणिं भगवइं विगसिय कमलदलच्छि लच्छि पासइ ॥१९॥

शब्दार्थ—[तओ पुण सा] इसके बाद त्रिशला देवीने चौथे स्वप्न में लक्ष्मी को देखा। उसका वर्णन इस प्रकार है। [उच्चविराइयट्ठाणकयासणं] वह लक्ष्मी उच्च तथा सुशोभित स्थानपर विराजमान थी [दिव्वनव्वभव्वाणणं] उसका मुख दिव्य नव्य और भव्य था [करचरणसंठिय] उसके हाथों पैरों में [सोत्थिसंखंकुसचक्काइसुहरेहं] स्वस्तिक शंख अंकुश तथा चक्र आदि की शुभरेखाएँ अंकित थीं [सुकुमालकरसाहालेहं] वह सुकुमार उंगलियोंवाली थी [जच्चंजणभमरजलहरनिगररिट्ठगगवलगुलियकज्जल-रोइसमसंहियतणुयरभिउलमंजुलरोमावलिं] उसकी रोमावली उत्तम आंजन भ्रमर मेघपटल, अरिष्टकालारत्नविशेष भैंस के सींग, नील और कज्जल के समान आभा-

वाली एक सरीखी, आपस में मिली हुइ बहुत बारीक, मृदुल और मनोहर थी [फीयणवणीयचिक्कणपाणिरुहावलिं] स्वच्छमक्खन के समान चिकनी नरम थी। [कणगकच्छवपिट्ठमट्ठविसिट्ठचरणजुगलं] उसके दोनों चरण स्वर्णमय कछुवे की पीठ के समान पुष्ट और विशिष्ट थे [कुंडलपरिमंडियललियकवोलमंडलं] सुन्दर कपोलों पर कुंडल सुशोभित हो रहे थे [फारहाररायमाणसव्वोउयसुगंधिकुसुमललामदामपरिणद्धवच्छत्थलं] वक्षस्थल पर विशाल मुक्ताहार तथा शोभायमाण सर्वऋतुसंबन्धी कुसुमों की मनोहर माला विराजमान थी। [उन्नयमंसलमिउलतणुलयं] उसकी शरीरलता उन्नत मांसल और मृदुल थी [मंजुलमणिगणकणखइयकंचणकंचीचंचियकडितडं] कटिभाग मनोज्ञमणियों के कणों से जटित सुवर्ण की करधनी से युक्त था [चंदद्धसमनिलाडं] ललाट अर्द्धचन्द्र के समान था [नाणामणिकणगरयणविमलमहातवणिज्जरइयभूसणहारद्धहारपाउत्तरयगकुंडल] एवं जो नाना प्रकार के मणियों के सुवर्णों एवं रत्नों के बने हुए

आभरण तथा हार अर्द्धहार रत्नजटित कुंडल धारण की हुइ [वामुत्तगहेमजालमणिजालकणगजालसुत्तगतिलग] हेममाला, मणिमाला कनकमाला कटिसूत्र तिलक [फुल्लगसिद्धत्थियकण्णवालियससिसूरउसभवक्कयतलभंगय] फुल्लक सिद्धार्थिका, कर्णवालिका, चन्द्र [चांदला] सूर्य [सूर्य के आकार का आभूषण] वृषभवक्त्रक तलभंग [तुडियहत्थमालयहरिसकेऊरवलयपालंब] त्रुटित, हस्तमालक, हर्ष, केयूर, वलय, प्रालंब [अंगुलिज्जगवलक्खदीणारमालिया] अंगुलीयकवलाक्ष दीनारमालिका [पयरगपरिहेरगपायजालघंटियखिंखिणि] प्रतरक परिहार्यक पादजाल घूंघरू किंकिणी [रयणोरुजालछड्डियवरनेउर] रत्नों के विशाल समूह से जटित श्रेष्ठ नूपुर [चलणमालिया कणगनिगलजालगमगरमुहविरायमाणनेउर] चरणमालिका कनक निगड जालक मकर के मुख की आकृति से शोभायमान नूपुर [पचलियसद्दालरुइराभरणं] सुन्दर इन समस्त आभूषणों से सुशोभित थी। [लोहिय कमलदलकोमलकरचरणं] उसके हाथ

और पैर (के तलिये) लाल कमल के समान कोमल थे [विमलकमलदलविसाललोयण] नेत्र निर्मल कमल के समान विशाल थे। [पाणिपल्लवगहियभमरनिगरविडंविलंबमाणसोहंतकयनियंयं] हाथों में गृहीत भ्रमरगण को भी तिरस्कृत करनेवाले लम्बे और सुन्दर केश थे [सुंदरवयणकरचरणनयणलावण्णरूवजोव्वणकलियं] वह सुन्दर मुख हाथ पैर और नेत्रवाली थी तथा लावण्य रूप और यौवन से सम्पन्न थी [पडिपुण्ण सव्वंगोवंगललियं] प्रतिपूर्ण समस्त अंगोंपाङ्ग से सुन्दर थी। [करचरणोत्तमंगपसुहंगोवंगसंगयमणिगणकंचणरयणरइयाभरणकिरणनासियंधतमसं] हाथों पैरों और सिर आदि पर धारण किये हुए मणिगण, सुवर्ण एवं रत्नों के आभूषणों की किरणों से अंधकार को नाश कर रही थी [विगयमरिसं विमलकंतिसमुज्जोइयदसदिसं] वह क्रोध रहित थी एवं अपनी निर्मल कांति से दशोंदिशाओं को देदीप्यमान कर रही थी। [कमलागरकमलनिवासिणिं] कमलाकर–सरोवर के कमल की निवासिनी थी [सयल-

जणमणहिययपल्हाइणिं] सब जनों के हृदय में तीव्र आल्हाद उत्पन्न करनेवाली [भगवइं विगसियकमलदलच्छिं लच्छिं पासइ] ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न तथा खिले हुए कमलपत्तों के समान नेत्रवाली थी ऐसी लक्ष्मी को देखा ॥१९॥

पुष्फमालाजुयलसुमिणे ५

मूलम्—तओ पुण सा सरसणागपुण्णागपियंगुपाडलमंडिलमल्लिया णवमल्लिया जूहियावासंतिया कण्णिया कुडजकोरंटगकुंदकोज्जकुरवककमल-बउलबंधूगचंपगाऽसोगमंदारतिलयकयणारसहयारमंजरी जाई मालई अमंद-सुगंधबंधुरं मघमघायमाणगंधुद्धुरं सरसरमणिज्जाणुवमकिण्हणीलपीयरत्तसुक्कि-ल्लपंचवण्णसव्वोउयसुरभिकुसुमविलसंतकंतभत्तिचित्तं देवकुसुमनिम्मियपवित्तं महुलुद्धखुद्दानिलीणगुंजंतालिपुंजगुंजियप्पएसं गंधद्धाणिजणयं सयलजणमण–

हरणधुरंधरेण सुरहिगंधेणं दसदिसाओ आमोदयंतं अंबरंगणतलाओ ओयरंतं विसालं पुप्फमालाजुयलं पासइ ॥२०॥

शब्दार्थ—[तओ पुण सा] इसके बाद त्रिशलारानी ने पुष्पमालाओं का एक स्वप्न देखा। वह माला युगल [सरस णागपुण्णाग] सरस नाग, पुन्नाग [पियंगु] प्रियंगु [पाडल] पाटल [मंडिल] मंडिल [मल्लिया] मल्लिका [णवमल्लिया] नवमल्लिका [जुहिया वासंतिया] यूथिका, वासंतिका [कण्णिया] कर्णिका [कुडज] कुटज [कोरंटग] कोरण्ट [कुंद] कुंद [कोज्ज] कुब्जक [कुरबग] कुरबक [कमल] कमल [बउल] बकुल [बंधूग] बन्धूक [चंपग] चम्पा [असोग] अशोक [मंदार] मंदार [तिलय] तिलक [कयणार] कचनार [सहयारमंजरी] आम्रमंजरी [जाई] जाई [मालई] मालती [अमंदसुगंधबंधुरं] इन सब प्रकार के फूलों के प्रचुर एवं प्रशस्त गन्ध से वह शोभित था [मघमघायमाणगंधुद्धुरं] वह सब तरफ फैलती हुई सुगंध से सुगन्धित था [सरसरमणिज्जा-

णुवमकिण्हनीलपीयरत्तसुकिल्लपंचवण्ण] सरस विकसित रमणीय और सर्वोत्कृष्ट काले नीले पीले लाल और सफेद इन पांचों रंगों के [सव्वोउयसुरभिकुसुमविलसंत-कंतभत्तिचित्तं] तथा सभी ऋतुओं के सुगन्धित फूलों की शोभायमान सुन्दर या मनो-वांछित रचनाओं से अद्भुत था। [देवकुसुमनिम्मियपवित्तं] वह देवलोक के फूलों से बना था अतएव पवित्र था [महुलुद्धखुद्धनिलीण गुंजंतालिपुंजगुंजियप्पएसं] उसके आस-पास मधु अर्थात् पराग के लोभी, क्षोभ को प्राप्त अंदर स्थित तथा मधुर एवं अस्फुट शब्द करते हुए भौरों का समूह गूंज रहा था [गंधद्धणिजणयं] वह गन्ध से तृप्ति करनेवाला था [सयलजणमणहरणधुरंधरेण] सब लोगों के मनको हरण करने में धुरन्धर--श्रेष्ठ [सुरहिगंधेण दसदिसाओ आमोदयंतं] सुगन्ध से दसों दिशाओं को आनंदित करता हुआ [अंबरंगणतलाओ ओयरंतं विसालं पुप्फमालाजुयलं पासइ] तथा आकाशतल से नीचे उतरता हुआ विशाल पुष्पमालायुगल देखा ॥२०॥

चंदसुमिणे ६

मूलम्—तओ पुण सा गोक्खीरणीरफेणरययकुंभकुंदावदायं चगोरमणसुहयं सकलजणणयणपल्हायणकरं दिसाकंतामुगुरं धवलकमलदलोवचाइकलं कुमुयकुलविगाससीलं निसासुसमाकुसलं विमलुज्जलरययगिरिसिहरविमलं कलधोयनिम्मलं विगयमलं सुक्किण्णपक्खदुगमज्झगपुण्णमासीविरायमाणपुण्णकलं दिसामंडलप्फारंधयारपरिपाणजातोदरललियसामलकलंकं सायरतरलतरतरंगोच्छालगं वरिसमासाइपमाणविहायगं जोइसचक्कणायगं अमयनिस्संदं निंत्तंदं पुण्णचंदं पासइ ॥२१॥

शब्दार्थ—[तओ पुण सा] इसके बाद महारानी त्रिशलादेवीने चन्द्र का स्वप्न देखा [गोक्खीर] वह पूर्ण चन्द्र गाय के दूध [णीरफेण] पानी के फेन [रययकुंभ] चांदी

के घट [कुंदावदायं] तथा कुंद के फूल के समान सफेद रंग का था [चगोरमणसुहयं] एव चकोर के मन को प्रसन्न करनेवाला था [सयलजणनयणपल्हायणकरं] सभी लोगों के नेत्रों को आनन्द देनेवाला था [दिसाकंतामुगुरं] दिशारूपी स्त्री के दर्पण के समान था [धवलकमलदलोवचाइकलं] सफेद कमलों–अर्थात् कुमुद पुष्पों के पत्तों को प्रफुल्लित करनेवाली कला से युक्त था [कुमुयकुलावगाससीलं] इस कारण कुमुदों के कुल समूह का विकास करनेवाला था [निसासुसमाकुसलं] रात्रि की सुषमा सौंदर्य म वृद्धि करनेवाला था [विमलुज्जलरययगिरिसिहरविमलं] विमल और उज्ज्वल चान्दी के पर्वत के समान वह निर्मल था [कलधोयनिम्मलं] चांदी के समान स्वच्छ था [विगयमलं] मलरहित था [सुक्कविण्णपक्खदुगमज्झगपुण्णमासीविरायमाणपुण्णकलं] शुक्ल पक्ष और कृष्णपक्ष दोनों के बीच में स्थित पूर्णिमा के दिन प्रकाशित होनेवाली पूर्णकलाओं से युक्त था [दिसामंडलप्फारंधयारपरियाणजातोदरललियसामलकलंकं] दिशाओं के समूह में

व्याप्त गहरे अन्धकार को पूर्ण रूप से पी जाने के कारण उदर में उत्पन्न हुए सुन्दर एवं श्यामवर्ण के चिह्न से युक्त था [सायरतरलतरतरंगोच्छालगं] समुद्र की अत्यन्त तरल तरंगों को उछालनेवाला था। [वरिसमासाइपमाणविहायगं] वर्ष मास आदि का प्रमाण करनेवाला था–अर्थात् उनका विभाग करनेवाला था [जोइसचक्कणायगं] ज्योतिषचक्र अर्थात् नक्षत्रों का नायक था [अमयनिस्संदं निस्संदं पुण्णचंदं पासइ] अमृत बरसाने वाला था इस प्रकार के विकसितपूर्ण चन्द्रमा को देखा ॥२१॥

सूरसुमिणे ७

मूलम्–तओ पुण सा घणंधयारवारसमवहारधुरीणं, पवरपखरकिरणं दस-सयकिरणप्फुरणपगासियदिसामंडलं सुगतुंडामंदपरिणयबिंबगुंजाफलतलप्पफु-ल्लजवाकुसुमकुसुंभपलाससंकासमंडलं जोइराखंडलं, कमलवणविलासहास-

पेसलं सीय पडलविदलणकुसलं जोइससत्थलक्खणलक्खगं अंबरमंडलअ-तेलपूरधूमवज्जियललियप्पईवगं निखिलभुवणनयणं पवट्टियजोइअयणं हिम-पडलगलणकलणकुसलं मेरुगिरिसययपरिवट्टगविसालमंडलं गहगणनायगं वासर-विहायगं नियकिरणसहस्समंदीकयचंदिराइसगलग्गहमहसमूहं परमतेयवूहं कयतिमिरपूरचूरं रुइरं सूरं पासइ ॥२२॥

शब्दार्थ–[तओ पुण सा] उसके बाद उसने सूर्य का स्वप्न देखा। वह सूर्य [घणं-धयारवारसमवहारधुरीणं] सघनअंधकार के समूह को दूर करने में अग्रणी था [पवरपखरकिरणं] उसकी किरणें अत्यन्त श्रेष्ठ और प्रखर थी [दससयकिरणप्फुरणपगासियदिसामंडलं] हजार किरणों के प्रसार से दिशा समूह को उसने प्रकाशित कर दिया था। [सुगतुंडामंदपरिणयबिंबगुंजाफलतलप्पफुल्लजवाकुसुमकुसुंभपलाससंकासमंडलं] वह तोते

की चोंच के समान भलीभांति पके हुए बिम्बफल के समान तथा गुंजाफल के तल के समान लाल था और उसका मण्डल खिले हुए जपाकुसुम के समान तथा कुसुंभ के फूलपत्तों के समान लाल था [जोइराखंडलं] वह ज्योतिषी देवों का स्वामी था [कमलवणविलासहासपेसलं] कमलवन की शोभा बढाने में एवं विकास करने में कुशल था [सीयपडलविद्लणकुसलं] शीत के समूह को नाश करने में चतुर था [जोइससत्थ-लक्खणलक्खगं] ज्योतिष शास्त्र के लक्षणों को प्रदर्शित करनेवाला था [अंबरमंडल अतेलपूरधूमवज्जियललियप्पईवगं] आकाशमंडल का ऐसा अनूठा दीपक था जिसमें तेल भरने की आवश्यक्ता नहीं होती और जिसमें धुआं भी नहीं निकलता था [निखिल-भुवणनयणं] वह सारी दुनिया का नयन था [पवड्ढियजोइअयणं] तारक आदि ज्योति-षियों के मार्ग को प्रवर्तित करनेवाला था [हिमपडलगलणकलणकुसलं] हिम को गलाने में कुशल था [मेरुगिरिसययपरिवट्टगविसालमंडलं] सुमेरु पर्वत की निरंतर प्रदक्षिणा करने-

वाले विशाल मण्डल से युक्त था। [गहगणणायगं] मंगल आदि ग्रहों का नायक था। [वासरविहायगं] दिन करनेवाला था [नियकिरणसहस्समंदीकयचंदिराइसगलग्गहमह-समूहं] अपनी हजार किरणों से चन्द्रमा आदि समस्त ग्रहों की प्रभा को मंद कर देनेवाला था। [परमतेयवूहं] अन्य समस्त तेजस्वी ग्रहों की अपेक्षा अधिक तेजस्वी था [कयतिमिरपूरचूरं] सब दिशाओं में व्याप्त अंधकार के समूह को नष्ट करनेवाले [रुइरं-सूरं पासइ] ऐसे सुन्दर सूर्य को देखा ॥२२॥

झयसुमिणे ८

मूलम्—तओ पुण सा जच्चकंचणलट्ठिपइट्ठियं परमसोहाकलियं अमिलियासियकमलुज्जलरययगिरिसिहरससिकिरणकलधोयनिम्मलेण मत्थयत्थेण पसत्थेण गगणतलमंडलं भित्तुं विव ववसिएण सीहेण सोहमाणं, सीयलमंदसुगंधिमारुयमिउ-

फासकम्पमाणं गगणतलचुंबिणं णयणाणंदकंदलरूवं अमंदाणंदसरूवं पुंजीकय-नीललोहियपीयसियमिउलोल्लसंतमोरपिच्छविलसियमुद्धयं परिलंबियनाणाविह-कुसुमस्सयं झयं पासइ ॥२३॥

शब्दार्थ—[तओ पुण सा] इसके बाद त्रिशलादेवी ध्वज का स्वप्न देखती है वह ध्वज कैसा था उसका वर्णन करते हैं–[जच्चकंचणलट्ठिपइट्ठियं] वह ध्वज उत्तम स्वर्ण के डंडे पर स्थित [परमसोहाकलियं] उत्तम शोभा से युक्त [अभिलियसियकमलुज्जल-रययगिरिसिहरससिकिरणकलधोयनिम्मलेण] खिले हुए श्वेतकमल, चान्दी के पर्वत के चमकते हुए शिखर चन्द्रमा के किरण और श्वेतस्वर्ण के समान शुभ्र [मत्थयत्थेण पसत्थेण गगणतलमंडलं भित्तुं विव ववसिएण सीहेण सोहमाणं] उपरि भाग में स्थित प्रशस्त और मानो आकाश तल को भेदने के लिए उद्यत हुए सिंह के चिह्न से सुशोभित [सीयलमंदसुगंधिमारुयमिउफासकंपमाणं] शीतल मन्द सुगन्धित वायु के कोमल स्पर्श

से लहराती हुइ [गगणतलचुंबिणं] आकाशतल को स्पर्श करनेवाली, [णयणाणंद कंदल-रूवं] आंखो को आनन्द देनेवाली [अमंदाणंदसरूवं] अतिशय आनन्दरूप [पुंजीकय-नीललोहियपीयसिय] पुंजीकृत नील, लाल पीत श्वेत एवं [मिउलोल्लसंतमोरपिच्छ-विलसियमुद्धयं] कोमल मयूर पांखों से सुशोभित अग्रभागवाला [परिलंबियनानाविह कुसुमस्सयं झयं पासइ] तथा जिसके चारों ओर नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्पों की मालाएँ लटक रही थीं ऐसी ध्वजा को आठवें स्वप्न में देखा ॥२३॥

पुण्णरययकलससुमिणे ९

मूलम्—तओ पुण सा जच्चकंचणचंचमाणरूवं सकलमंगलसरूवं अमल-कमलकुलमंडियं असपत्तरययमंजुलकमलारोविंयवरकमलपइट्ठाणं सुरभिवर-वारिपडिपुण्णं चंदणकयचच्चियं आविद्धकंठेगुणं अणुवमसुसमं तयहिट्ठियदेव-

सेवियं कमलपुष्फपिहाणपिहियं, सोम्मकमलानिलयं नयणामियंजणायमाणं सव्वओ समंता पभासमाणं अइसयसोहमाणं सयलउउअणूणसुरहिप्पसूण-चारुगंथियअतुल्लमल्ललालियगलतलाभरणं पावकलावविगलं हारद्धहारपरिमं-डियगलं मंगलं सयप्पहापणासियतमसं रयणजडियकलसं पासइ ॥२४॥

शब्दार्थ—[तओ पुण सा] तदनंतर त्रिशलादेवीने [जच्चकंचणचंचमाणरूवं] उत्तम वर्ण के सुवर्ण के समान शोभायमान [सकलमंगलसरूवं] समस्त मंगलस्वरूप [अमल-कमलकुलमंडियं] निर्मल कमलों के समूह से शोभित [असपत्तरयणमंजुलकमलारोविय-वरकमलपइट्ठाणं] अनुपम रत्नों द्वारा निर्मित सुन्दर कमल के उपर रखे हुए श्रेष्ठ कमलों पर प्रतिष्ठित [सुरभिवरवारिपडिपुण्णं] सुगन्धित और निर्मल जल से भरे हुए [चंदणकयचच्चियं] चंदन के लेप से युक्त [आविद्धकंठेगुणं] कंठ देश में बन्धे हुए लाल

सूतवाले [अणुवमसुसमं] अनुपम शोभावाले [तयहिट्ठियदेवसेवियं] उसी कलश के अधिष्ठाता देव से सेवित [कमलपुप्फपिहाणपिहियं] कमल पुष्पों के ढक्कन से ढंके हुए [सोम्मकमलानिलयं] सौम्य शोभा के घरस्वरूप [नयणाभियंजणायमाणं] अमृतमय अंजन के समान नेत्रों के आनंददाता [सव्वओ समंता पभासमाणं] चारों ओर अपनी दीप्ति फैलानेवाले [अइसयसोहमाणं] अतिशय शोभायमान [सयलउउअणूणसुरहिप्पसूणचारुगंथियअतुल्लमल्ललियगलतलाभरणं] सब ऋतुओं के प्रचुर सुगन्धित पुष्पों से सुन्दरता के साथ गूंथी हुइ सुन्दर मालाओं के कंठाभरण से युक्त [पुण्णं] पवित्र [पावकलावविगलं] अतएव पाप समूह से रहित--सब प्रकार के कुलक्षणों से वर्जित था [हारद्धहारपरिमंडियगलं] हार और अर्द्धहार से मण्डितगर्दनवाले [मंगलसयप्पहापणासियतमसं] मंगलमय और अपनी आभा से अंधकार का अंत करनेवाले [रयणजडियकलसं पासइ] रत्नजटितरजतकलश को देखा ॥२४॥

पउमसरोवरसुमिणे १०

मूलम्—तओ पुण सा हीणपीणपाढीणमग्गुरसालसगुलराजीवरोहियाइ मीणमगरगाहसुसुमारकमढपभिइ जलयरनियरपरिपीयमाणपाणीयं तरलतरंग-तरतरंगियं कल्हारहल्लगकुवलयइंदीवरकेरवपुंडरीयकोगणयपरमसुसमासुसमियं, अरुणारुणकिरणप्फुरणउन्निद्दकमलकिंजक्कनिस्संदमाणसुरहितमपरागरागसंजाय-ईसीपीयरत्ततोयं परागपरिपाणमत्तमुइयमंजुगुंजंतअंतोभमंतमिलिंदबिंदपिहीय-माणनलिणं विहरतविविहसउणिगणं कमलिणीदलविलसंतअंबुबिंदुकयंबगजणि-यमोतियतारयाविब्भमं रयणायरसमं सरोयपुंजाहिरामं सयलसोहासुहसमन्नियं कलहंसराजहंसबालहंसचक्कवागचक्कसरससारसाखव्वगव्वाहिट्ठियविहंगमजुयल-संसेवियजलल्लोलं अणेगविहदेवदेवीजुयलकीडणउच्छलंतकल्लोलं पेच्छयजण-

हियमणनयणाणंदकरं सयप्पहापराभूयसगलसरोवरं वरं पउमसरोवरं पासइ।२५।

शब्दार्थ—[तओ पुण सा] इसके बाद त्रिशलादेवीने पद्मसरोवर देखा वह पद्म-सरोवर कैसा था? वह कहते हैं–[हीण] दुबले [पीण] पुष्ट [पाढीन] पाठीन–मत्स्य-विशेष [मग्गुर] मद्गुर–जलकाक [साल] शाल [सगुल] शकुल [राजीव] राजीव [रोहियाइ] रोहित आदि [मीण] मत्स्य [मगर] मगर [गाह] ग्राह [सुसुमार] सुसुमार [कमढ] कूर्म [पभिइ] प्रभृति [जलयरनियरपरिपीयमाणपाणीयं] जलचर जीवों का समूह उसका पानी पी रहा था [तरलतरतरंगतरंगियं] अतिशय चंचल लहरें उसमें लहरा रही थी [कल्हारहल्लगकुवलयइंदीवरकेरवपुंडरीयकोगणयपरमसुसमा सुसमियं] कल्हार–एक प्रकार का श्वेत सुगन्धित पुष्प विशेष–हल्लक–(लाल रंग का पुष्प विशेष) कुवलय, इन्दीवर कैरव पुण्डरीक कोकनद, इन सब कमलों की सुन्दरता से सुशोभित था [अरुणारुण-किरणप्फुरणउन्निद्दकमलकिंजक्कनिस्संदमाणसुरहितमपरागरागसंजायईसीपीयरत्ततोयं] सूर्य

की लाल लाल किरणों के फैलाव से खिले हुए कमलों के केसर से झरनेवाले अतिशय सुगन्धमय पराग की लालिमा से उसका जल हल्का–पीला और लाल हो रहा था [परागपरिपाणमत्तमुइयमंजुगुंजंत अंतोभमंतमिलिंदविंदपिहीयमाणनलिणं] पुष्पों के पराग का पान करके उन्मत्त मुदित एवं मधु गुंजार करते हुए, मध्य में घूमते हुए भ्रमरों के समूह ने कमलों को अच्छादित कर दिया था। [विहरतविविहसउणिगणं] वहां विविध प्रकार के पक्षी विहार कर रहे थे। [कमलिणीदलविलसंत अंबुबिंदुकयंबगजणियमोतियतारयाविब्भमं] उस सरोवर की कमलिनियों के पत्रों पर सुशोभित होनेवाली पानी की बून्दों का समूह मोतियों एवं तारों का भ्रम उत्पन्न करता था [रयणायरसमं] वह समुद्र के समान था [सरोयपुंजाहिरामं] कमलों के समूह से शोभायमान था [सयलसोहासुहसमन्नियं] सम्पूर्ण शोभा और सुख से युक्त था [कलहंस] कलहंसों [राजहंस] राजहंसों, [बालहंस] बालहंसों, [चक्कवाग] चक्रवाकों के [चक्क] समूह [सरस

सारसा] तथा सुन्दर सारस आदि [खव्वगव्वाहिट्ठियविहंगमजुयलसंसेवियजललोलं] अत्यधिक गर्विले पक्षियों के युगलों से सेवित जल से चंचल था [अणेगावहदेवदेवी जुयलकीडणउच्छलंतकल्लोलं] अनेक देव देवियों के युगल जो क्रीडा करते थे उसके कारण उसमें लहरे उछल रही थी [पेच्छयजणहिययमणनयणाणंदकरं] देखनेवालों के हृदय, मन और नेत्रों को आनन्द उत्पन्न करनेवाला था [सयप्पहापराभूयसगलसरोवरं] उसने अपनी प्रभा से अन्य समस्त सरोवरों को तिरस्कृत कर दिया था [वरं पउमसरोवरं पासइ] ऐसा उत्तम पद्मसरोवर को देखा ॥२५॥

खीरसायरसुमिणे ११

मूलम्—तओ पुण सा सीयकिरण किरणगणविभासिविमलजलसंचयं, महामगरणिगरसिसुमारवारातिमितिमिंगिलतिमिंगिलगिलचवलोच्छलणचोखुब्भमाणरायमाणअसमाणकल्लोलपोप्पूयमाणजादसमुदयं संमिलंतनाणाणईजलोल्लसंत

समुदयं सव्वओ समंता समुच्छलंततरलतरोत्तुंगतरंगानुतरंगं रंगत्तरंगभंगं पडुपवणाहइसमुच्छलंतजलतरंगपरंपरासंघट्टियतडपरावत्तलोललहरीलसियफेनिलप - ओलल्लियअंतरालं विगयजंबालं महाधुणियउद्धुरतरतरसंगममहागत्तावत्तमिलियउच्छलियपराविचत्तधावंतउल्लसियपयसं साउजलसरसं सुंदरं खीरसायरं पासइ।२६।

शब्दार्थ—[तओ पुण सा] तदनंतर उसने [सीयकिरणकिरणगणविभासिविमलजलसंचयं] चन्द्रमा की किरणों के समूह से उज्ज्वल निर्मल जल समूह से युक्त [महामगरणिगरसिसुमार] बडे बडे मगरों सिसुमारों के समूह के [वारतिमितिमिंगिलतिमिंगिलगिल] तथा तिमि, तिमिंगिल, तिमिंगिलगिल नामक मच्छों के [चवलोच्छलण चोखुब्भमाण] तेजी के साथ उछलने से क्षुब्भ होने के कारण [रायमाणअसमाणकल्लोलपोप्पूयमाणजादसमुदयं] उठनेवाली असाधारण तरंगों में तैरनेवाले जल जन्तुओं से युक्त [संमिलंतनाणाणईजलोल्लसंतसमुदयं] मिलनेवाली अनेक नदियों के जल से

जिसकी जल राशि में वृद्धि हो रही है ऐसे [सव्वओ समंता समुच्छलंततरलतरोत्तुंग-तरंगानुत्तरंगं] सभी ओर पूरी तरह से उत्पन्न होनेवाली तरंग परम्परा से युक्त [रंगत्त-रंगभंगं] धीरे धीरे उठती हुइ तरंगों के भंग से सम्पन्न [पडुपवणाहइसमुच्छलंतजल-तरंगपरम्परासंघट्टियतडपरावत्तलोललहरीलसियफेनिलपओललियअंतरालं] प्रबल पवन के आघात से उठी जलतरंगों की परम्परा से संघट्टित तट से लौट कर आनेवाली चंचल-लहरों से सुशोभित एवं फेन युक्त जल से रमणीय मध्यभागवाले, [विगयजंबालं] कीचड से रहित [महाधुणियउद्धुरतरतरसंगममहागत्तावत्तमिलियउच्छलियपरावित्त-धावंतउल्लसियपयसं] कीचड से रहित बडी बडी नदियों के वेगवान संगम से पडे हुए गडहों में होनेवाले आवर्तों से मिले, उछल लौटे और वेग के साथ दौडे पानी से अतिशय शोभायमान [साउजलसरसं सुंदरं खीरसायरं पासइ] मधुर जल के कारण सरस और सुन्दर क्षीरसागर को ग्यारहवें स्वप्न में देखा ॥२६॥

देवविमानसुमिणे १२

मूलम्—तओ पुण सा तरुणयरारुणमंडलदिप्पमाणं, विविहविसालकिंकिणीजाल-सद्दायमाणं जाजल्लमाणलंबमाणदिव्वदामाणं दिव्वदेविड्ढिनिहाणं पयरनिसक्क-मंजुलकंचणमहामणिगणपप्फुरणदलियगाढंधयारं पलंबमाणनाणामणिरयणरइय-विविहहारं, अंबरवियारणगारकप्पप्पयारं, पंचवण्णरयणमुत्ताहारतोरणविभूसिय-चउद्दारं अट्ठुत्तरसहस्समणिखंभप्पहाविडंबियसहस्सकरं, विविहसोभाधरं विम-लसंखतलदहिघणगोक्खीरफेणरययनियरनिम्मलप्पगासं जाजल्लमाणदिव्वतेय-पुंजसंकासं मिगमहिसवराहच्छगलदद्दुरहयगयगवयभुयगखग्गउसभणरमगराइ जलयरकिन्नरसुरचमरसिंहसद्दुलअट्ठावयवणलयाकमललयाइ विचित्ताचित्त-संजायपासगजणमणतोसं सरसताललयाखव्वगव्वगंधव्वसंगीयफीयसुइमोय-

पोसघोसं, वणघणघणघणाघणोज्जियगज्जियविडंबिणा विंदारगविंददुंदुहिधुरिणज्झुणिणामणुस्सलोगं सदिगंतं पूरयंतं जलंताणलडज्झमाणणिरुवमाणकालागुरुपवरकुदुरुक्कतुरुक्कपमुहधूवदुन्निरूवमघमघायमाणगंधं, विरायमाणविविहसुहचिधंणिच्चालोगं विगयसोगं नाणाविह सरसकेलिकलाकोऊहलसंलग्गसुरवरासणाभिरामं सयलसुरवरविमाणललामं, अकयसुकयदुल्लभयरं कयसुकयसुलभयरं पुंडरीगाभिहाणं देवविमाणं पासइ ॥२७॥

शब्दार्थ—[तओ पुण सा] उसके बाद त्रिशलारानी ने पुण्डरीक नामक देवविमान देखा वह देवविमान [तरुणयरारुणमंडलदिप्पमाणं] मध्याह्नकालीन सूर्य के समान देदीप्यमान था। [विविहविसालकिंकिणीजालसद्दायमाणं] नाना प्रकार की बडी बडी घुंघरुओं के समूह के शब्द से मुखरित हो रहा था। [जाजल्लमाणलंबमाणदिव्वदामाणं]

उसमें अतिशय चमकीली सुन्दर मालाएँ लटक रही थीं [दिव्वदेविड्ढिनिहाणं] वह देवों की दिव्य ऋद्धि का निधान था [पयरणिसक्कमंजुलकंचणमहामणिगणप्फुरणदलिय-गाढंधयारं] पतरों में लगे हुए सुन्दर स्वर्ण और महामणियों के समूह के प्रकाश से सघन अंधकार को नष्ट करनेवाला था [पलंबमाणनाणामणिरयणरइयविविहहारं] उसमें अनेक प्रकार की मणियों तथा रत्नों के बने हुए विविधहार लटक रहे थे [अंबरविया-रणगारकप्पप्पयारं] उसकी गति मानो आकाश को चीर देने में समर्थ थी [पंचवण्णरय-णमुत्ताहारतोरणविभूसियचउद्दारं] उसके चारों द्वार पांच वर्णों के रत्नों एवं मोतियों के हारों के तोरणों से विभूषित थे [अट्ठुत्तरसहस्समणिखंभप्पहाविडंबियसहस्सकरं] वह एक हजार आठ मणिमयस्तंभों की प्रभा से सूर्य को तिरस्कृत करता था [विविह-सोभाधरं] विविध प्रकार की शोभा को धारण करता था [विमलसंखतलदहिघणगोक्खीर-फेणरययनियरनिम्मलप्पगासं] निर्मल शंख, दही गाय के दूध के झाग तथा चान्दी के

समूह के समान शुभ्र प्रकाशवाला था। [जाजल्लमाणदिव्वतेयपुंजसंकासं] जाज्वल्यमान दिव्य तेजोपुंज के समान था। [मिग] मृग [महिस] भैंस [वराह] सूअर [च्छगल] बकरा [दद्दुर] मेढक [हय] घोडा [गय] हाथी [गवय] रोझ [भुयग] सर्प [खग्ग] गेंडा [उसभ] बैल [णर] नर [मगराइ] मगर आदि [जलयर] जलचरों के [किंनर] किन्नर [सुर] सुर [चमर] चमर [सीह] सिंह [सद्दूल] बाघ [अट्ठावय] अष्टापद [वणलया] वनलता [कमललयाइ] कमललता [विचित्तचित्तसंजायपासगजनमणतोसं] आदि के विचित्र विचित्र चित्रों से देखनेवालों के मनमें सन्तोष उत्पन्न करनेवाला था। [सरसताललयाखव्वगव्वगंधव्वसंगीयफीयसुइमोयपोसघोसं] उसमें सरस ताल तथा लय के तीव्र गर्ववाले गन्धर्वों के गान का मधुर एवं कानों के आनंद को पुष्ट करनेवाला घोष हो रहा था [वणधणघणघणाघणोज्जियगज्जियविडंविणा] पानी ही जिनका धन है ऐसे सघनमेघों की गंभीर गर्जना की विडंबना करनेवाली [विंदारगविंददुंदुहिधुरीणज्झुणि-

णामनुस्सलोगं सदिगंतं पूरयंतं] देवसमूह की भेरियों की मनोहर ध्वनि से दिशाओं के छोर तक मनुष्यलोक को पूरित कर रहा था [जलंताणलडज्झमाणणिरुवमाण] उसमें जलती हुइ अग्नि में जलाये जानेवाले अनुपम [कालागुरु पवरकंदुरुक्कतुरुक्कपमुहधूवदुन्निरूवमघमघायमाणगंधं] काला अगर श्रेष्ठ कुंदरुक तथा तुरुष्क [लोबान] आदि धूपों की अनिर्वचनीय एवं मघमघाती हुई गंध व्याप्त थी। [विरायमाणविविहसुहचिंधं] उसमें नाना प्रकार के शुभचिह्न सुशोभित हो रहे थे [निच्चालोगं] वह निरंतर प्रकाशवाला [विगयसोगं] एवं शोक से रहित था [नाणाविह सरसकेलिकलाकोऊहलसंलग्गसुखरासणाभिरामं] विविध प्रकार की सरस क्रीडा कलाओं के कुतुहल में मग्नदेवों के आसनों से शोभायमान था [सयलसुरवरविमाणललामं] देवों के समस्त विमानों में सुन्दर था [अकयसुकयदुल्लभयरं] वह पुण्यहीनों के लिये दुर्लभ एवं [कयसुकयसुलभयरं] पुण्यवानों के लिये सुलभ ऐसे [पुंडरीगाभिहाणं देवविमाणं पासइ] पुण्डरीक नामक

देवविमान को देखा ॥२७॥

रयणरासिसुमिणे १३

मूलम्—तओ पुण सा वज्जवेरुलियलोहियक्खमसारगल्लहंसगब्भजोइरयण-अंकअंजणजायरूवअंजणपुलगरिट्ठइंदनीलगोमेयचंदप्पहभुजमोयगरुयगसोगंधि-गपुलगफडिगमरगयकक्केयणमू कंतचंदकंतप्पवालप्पमुहअसवत्तरयणनिगुरंब-प्फुरंतकरनिकरेणं विउलातलमलंकुव्वंतं गगणमंडलं पगासयंतं पुण्णरासिमिव अच्चंततुंगत्तणेण मेरुगिरिं विडंबयंतं, अजयणसंपत्तं दसदिसविगासिं पुव्व-पुण्णरासिमिव रयणरासिं पासइ ॥२८॥

शब्दार्थ—[तओ पुण सा] इसके बाद महारानी त्रिशलाने [वज्ज] वज्र [वेरुलिय] वैडूर्य [लोहियक्ख] लोहिताक्ष [मसारगल्ल] मसारगल्ल [हंसगब्भ] हंसगर्भ [जोइरयण]

ज्योतिरत्न [अंक] अंक, [अंजण] अंजन [जायरूव] जातरूप [अंजणपुलग] अंजनपुलक [रिट्ठ] रिष्ट [इंदनील] इंद्रनील [गोमेय] गोमेद [चंदप्पह] चन्द्रप्रभ [भुजमोयग] भुज-मोचक [रुयग] रुचक [सोगंधिग] सौगंधिक [पुलग] पुलक [फडिग] स्फटिक [मरगय] मरकत [कक्केयण] कर्केतन [सूरकंत] सूर्यकान्त [चंदकंत] चन्द्रकांत [प्पवालप्पमुह] और प्रवाल आदि [असवत्तरयणनिगुरंबप्फुरंतकरनिकरेणं] अनुपम रत्नों के समूह की स्फुरायमान किरणों के समुदाय से [विउलातलमलंकुव्वंतं] पृथ्वी तल को अलंकृत करनेवाली [गगणमंडलं पगासयंतं] आकाशमंडल को प्रकाश करनेवाली [पुण्णरासिमिव अच्चंततुंगत्तणेण] पुण्य की राशि के सदृश अत्यंत उंची होने से [मेरुगिरिं विडंबयंतं] मेरु पर्वत को भी मात करनेवाली [अजयणसंपत्तं] अनायास प्राप्त [दसदिसविगासिं] दशों दिशाओं में प्रकाश फैलानेवाली [पुव्वपुण्णरासिमिव] पूर्व जन्म में उपार्जित पुण्य की राशि के समान [रयणरासिं पासइ] रत्नराशि को देखा ॥२८॥

सिहिसुमिणे १४

मूलम्—तओ पुण सा विउलमंजुलपिंगलमहुघयअविच्छिन्नधाराऽभिसिंचमाण-विधूयधूमधगधगितिजलंतउज्जलजालजालललामं विमलतेयाभिरामं तरतम्म-जोगेहिं उच्छलंतीहिं अण्णोण्णं मिलंतीहिं विव जालमालाहिं संजुत्तं जालजालो-ज्जलपिहुलगगणखंडं पिव पडंतं अइविउलवेगवंतं तेयणिहिं सिहिं पासइ ॥२९॥

शब्दार्थ—[तओ पुण सा] उसके बाद त्रिशलादेवीने [विपुलमंजुलपिंगलमहुघय-अविछिन्नधाराभिसिंचमाण] अत्यंत प्रशस्तपिंगल वर्ण के मधु और घृत की अविच्छिन्न धारा से सिंचित [विधूयधूमधगधगितिजलंतउज्जलजालजालललामं] धूम से रहित धग् धग् करके जलती हुइ उज्ज्वल ज्वालाओं के समूह से सुन्दर [विमलतेयाभिरामं] निर्मल तेज से रमणीय [तरतम्मजोगेहिं उच्छलंतीहिं] तरतमता के साथ उपर को उठती हुई [अण्णोण्णं मिलंतीहिं विव] मानो आपस में मिलन कर रही हों ऐसी [जालमालाहिं

संजुत्तं] ज्वालामालाओं से युक्त [जालजालोज्जल] ज्वालाओं के समूह से प्रकाशमान [पिहुलगगणखंडं पिव पडंतं] विशाल नीचे गिर रहे आकाश–खण्ड के समान, [अइविउल-वेगवंतं] अत्यन्त तीव्रवेग से युक्त [तेयणिहिं सिहिं पासइ] प्रकाशपुंज अग्नि को देखा ॥२९॥

मूलम्–एवं सा तिसला खत्तियाणी इमे एयारूवे चउद्दसमहासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठा चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया धाराहयकयंबपुप्फगं पिव समुस्ससियरोमकूवा सुमिणुग्गहं करेइ, करित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता अतुरियमचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरीयाहिं हिययगमणिज्जाहिं

हियपल्हायणिज्जाहिं मियमहुरमंजुलाहिं गिराहिं संलवित्ता पडिबोहेइ ॥३०॥

शब्दार्थ—[एवं सा तिसला खत्तियाणी] इस प्रकार त्रिशला क्षत्रियानी [इमे एया-रूवे चउद्दसमहासुमिणे पासित्ता] पूर्वोक्त प्रकार के इन चौदह महास्वप्नों को देखकर [णं पडिबुद्धा समाणी] जागी [हट्ठतुट्ठा] उसे हर्ष और संतोष हुआ [चित्तमाणंदिया] चित्तमें आनन्द हुआ [पीइमणा] मन में प्रीति उत्पन्न हुई [परमसोमणस्सिया] परम प्रसन्नता हुई [हरिसवसविसप्पमाणहियया] हर्ष के वशीभूत होकर उसका हृदय विकसित हो गया [धाराहयकयंबपुप्फगंपिव] मेघ की धाराओं का आघात पाये कदम्ब के फूल के समान [समूससियरोमकूवा] उसे रोमांच हो आया [सुमिणुग्गहं करेइ] उसने स्वप्न का विचार किया [करित्ता] विचार करके [सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ] शय्या से उठी [अब्भुट्ठित्ता] और उठकर [अतुरियमचवलमसंभंताए] मानसिकत्वरा से रहित शारी-रिक चपलता से रहित, स्वलना से रहित [अविलंबियाए] विलम्ब रहित [रायहंससरि-

सीए गईए] राजहंसिणी जैसी गति से [जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छइ] जहां सिद्धार्थ क्षत्रिय थे वहां आती है [उवागच्छित्ता] आकर [ताहिं] सिद्धार्थ क्षत्रिय को [इट्ठाहिं] इष्ट [कंताहिं] कान्त [पियाहिं] प्रिय [मणुन्नाहिं] मनोज्ञ [मणामाहिं] मनाम (मनको अतिशय प्रिय) [ओरालाहिं] उदार-श्रेष्ठ स्वर एवं उच्चार से युक्त [कल्लाणाहिं] कल्याण-समृद्धिकारक [सिवाहिं] शिव-निर्दोष होने के कारण निरुपद्रव [धन्नाहिं] धन्य [मंगल्लाहिं] मंगलकारी [सस्सिरियाहिं] सश्रीक-अलंकारों से सुशोभित [हिययगमणिज्जाहिं] हृदय को प्रिय लगनेवाली [हिययपल्हायणिज्जाहिं] हृदय को आह्लाद उत्पन्न करनेवाली [मियमहुरमंजुलाहिं] परिमित अक्षरोंवाली मधुर मंजुल स्वरों से मीठी [गिराहिं] वाणी से [संलवित्ता] बोलकर [पडिबोहेइ] राजा सिद्धार्थ को जगाया ॥३०॥

मूलम्—तए णं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थेणं रन्ना अब्भणुन्नाया समाणी नानामणिकणगरयणभत्तिचित्तंसि भद्दासणंसि णिसियइ। निसीइत्ता

आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया एवं वयासी—एवं खलु अहं सामी! तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सुत्तजागरा गयवसहाइ चउद्दसमहासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा तं एएसिं सामी! चउद्दसण्हं महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ?। तए णं से सिद्धत्थे राया तिसलाए खत्तियाणीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे धाराहयनीवसुरभिकुसुमचंचुमालइयरोमकूवे तेसिं चउद्दसण्हं महासुमिणाणं अत्थुग्गहं करित्ता तिसलं खत्तियाणिं ताहिं इट्ठाहिं पियाहिं वग्गूहिं संलवमाणे एवं वयासी—उराला णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणा दिट्ठा, एवं कल्लाणा सिवा धन्ना मंगल्ला सस्सिरीया आरुग्गतुट्ठि दीहाउकारगा तुमे देवाणुप्पिये सुमिणा दिट्ठा, तं णं अम्हाणं अत्थलाभो देवाणुप्पिए! भविस्सइ, एवं—भोगलाभो, सुक्खलाभो, रज्जलाभो,

रट्ठलाभो भविस्सइ, किं बहुणा पुत्तलाभो वि भविस्सइ। एवं खलु तुमे देवाणुप्पिये! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं अम्हं कुलकेउं अम्हं कुलदीवं कुलपव्वयं कुलवडिंसयं कुलतिलयं कुलकित्तिकरं कुलवित्तिकरं कुलणंदियरं कुलजसकरं कुलदिणकरं कुलाधारं कुलपायवं कुलतंतुसंताणविवद्धणकरं भविविबोहकरं भवभयहरं गुणरयणसायरं सयलपाणीण हियकरं सुहकरं सुभकरं सुकुमालपाणिपायं अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरं लक्खणवंजणगुणोववेयं माणुम्माणप्पमाणपडिपुण्णसुजायसव्वंगसुंदरंगं ससिसोमागारं कंतं पियदंसणं सुरूवं दारगं पयाहिसि॥३१॥

शब्दार्थ—[तए णं सा तिसला खत्तियाणी] तदनंतर त्रिशला क्षत्रियाणी [सिद्धत्थेणं रन्ना अब्भुणुन्नाया समाणी] राजा सिद्धार्थ की आज्ञा प्राप्त कर [नाणामणि-

कणगरयणभत्तिचित्तंसि] विविध प्रकार के मणि, सुवर्ण और रत्नों की रचना से विचित्र [भद्दासणंसि णिसीयइ] भद्रासन पर बैठती है [णिसीइत्ता] बैठकर [आसत्था] आश्वा-स्त—चलने के श्रम से रहित होकर [वीसत्था] विश्वस्त—क्षोभरहित होकर [सुहासण वरगया] सुखद और श्रेष्ठ आसन पर बैठी हुइ [एवं वयासी] इस प्रकार बोली—[एवं खलु अहं सामी !] हे स्वामी ! [तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि] मैं उस पूर्व वर्णित शय्या पर [सुत्तजागरा] कुछ सोती कुछ जागती [गयवसहाइ चउद्दसमहासुमिणे पासित्ता णं पडि-बुद्धा] अवस्था में गज, वृषभ आदि चौदह महास्वप्नों को देखकर जागी हूं [तं एएसिं सामी !] हे स्वामिन् ! [चउद्दसण्हं महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भवि-स्सइ ?] इन कल्याणकारी चौदह स्वप्नों का क्या फल विशेष होगा ? [तए णं से सिद्धत्थे राया तिसलाए खत्तियाणीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा] तपश्चात् सिद्धार्थ राजा त्रिशला क्षत्रियाणी से इस अर्थ को सुनकर [निसम्म हट्ठतुट्ठे] तथा हृदय में धारण करके हृष्ट-

तुष्ट हुए [धाराहयनीवसुरभिकुसुमचंचुमालइयरोमकूवे] मेघ की धाराओं से आहत कदंब के पुष्प की तरह उनका शरीर पुलकित हो गया। उन्हें रोमांच हो आया [तेसिं चउद्दसण्हं महासुमिणाणं अत्थुग्गहं करित्ता] उन चौदह महास्वप्नों के आशय को समझकर [तिसलं खत्तियाणिं] त्रिशला क्षत्रियाणी से [ताहिं इट्ठाहिं पियाहिं वग्गूहिं संलवमाणे एवं वयासी] इष्ट एवं प्रिय वचनों से बोलते हुए इस प्रकार कहने लगे–[उराला णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणा दिट्ठा] हे देवानुप्रिये ! तुमने उदार–प्रधान स्वप्न देखा है। [एवं कल्लाणा सिवा धन्ना मंगल्ला सस्सिरीया आरुग्गतुट्ठि दीहाउकारगा तुमे देवाणुप्पिये ! सुमिणा दिट्ठा] हे देवाणुप्रिये ! तुमने कल्याणकारक स्वप्न देखा है। हे देवानुप्रिये ! तुमने शिव–उपद्रव विनाशक, धान्य–धन की प्राप्ति करानेवाला–मंगलमय–सुखकारी और सश्रीक–सुशोभनस्वप्न देखा है। देवी आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगल करनेवाला स्वप्न देखा है [तं णं अम्हाणं अत्थलाभो देवाणुप्पिए!

भविस्सइ] हे देवानुप्रिये ! इनसे हमे अर्थ का लाभ होगा [एवं भोगलाभो] भोगों का लाभ होगा [सुक्खलाभो] सुख का लाभ होगा [रज्जलाभो] राज्य का लाभ होगा [रट्ठलाभो भविस्सइ] राष्ट्र का लाभ होगा [किं बहुणा पुत्तलाभो वि भविस्सइ] विशेष क्या कहूं, पुत्र का भी लाभ होगा [एवं खलु तुमे देवानुप्पिए ! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं] इस प्रकार हे देवानुप्रिये ! नौ मास पूरे [अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं] और साढेसात अहोरात्र व्यतीत होनेपर [अम्हं कुलकेउं] तुम हमारे कुल का केतु [अम्हं कुलदीवं] हमारे कुल का दीपक [कुलपव्वयं] कुल का पर्वत [कुलवडिंसयं] कुलभूषण [कुलतिलयं] कुलतिलक [कुलकित्तिकरं] कुल की कीर्ति बढानेवाला [कुलवित्तिकरं] कुल की वृत्ति बढानेवाला [कुलणंदियरं] कुल में आनन्द बढानेवाला [कुलजसकरं] कुल का यश बढानेवाला [कुलदिणकरं] कुल में सूर्य के समान [कुलाधारं] कुल के आधार [कुलपायवं] कुलपादप [कुलतंतुसंताणविवद्धणकरं] कुल की सन्तान–

परम्परा बढानेवाला [भविविबोहकरं] भव्यजीवों को बोध देनेवाला [भवभयहरं] भव का भय हरनेवाला [गुणरयणसायरं] गुणरत्नों का सागर [सयलपाणीण हियकरं] प्राणिमात्र का हित करनेवाला [सुहकरं] सुख करनेवाला [सुभकरं] शुभ करनेवाला [सुकुमालपाणिपायं] सुकोमल हाथ पैर वाला [अहीण] अहीन—अविकल अंगवाला [पडिपुण्ण पंचिंदियसरीरं] पूरी पांचों इन्द्रियों से युक्त शरीरवाले [लक्खणवंजणगुणोववेयं] लक्षणों व्यंजनों और गुणों से सम्पन्न [माणुम्माणप्पमाणपडिपुण्णसुजायसव्वंगसुंदरगं] मान उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण यथोचित अंगों की रचना से युक्त, सर्वांग सुन्दर [ससिसोमागारं] चन्द्रमा के समान सौम्य आकारवाले [कंतं] कान्ति युक्त [पियदंसणं] प्रियदर्शन [सुरूवं] और सुरूप [दारगं पयाहिसि] पुत्र को जन्म दोगी ॥३१॥

चउद्दंतदंतिसुमिणफलं १

मूलम्—तत्थ खलु एएसु चउद्दससु महासुमिणसु इक्किक्कस्स महासुमिणस्स

इमे एयारूवें फलवित्ति विसेसे भविस्सइ तं जहा-१ चउद्दंतदंतिदंसणेणं अमू मुणे वीरो विक्कंतो दंतेणं दंती नई कूलतरुमूलं विव पभूएणं तवेणं महंत अंतरायकसायकुलं उम्मूलिस्सइ। २ दंतेण दंती वयइतइं विव वईवीरो वरीयसा तवसा नरयतिरियनरामरगईभमणसंतइं अंतिस्सइ। ३ महंतप्पहावदाणसीलतवभावभेयभिन्ने चउव्विहे धम्मे चउरोदंते फुरंतधुज्जभावो रणंगणे परक्कममाणो वारणो विव बारसविहपरिसंगणे दंसिस्सइ। ४ सुयचारित्तधम्मनिरूवणओ अगिलाणत्तणेण दिसादंती विव चउद्दिसं सायत्ती करिस्सइ॥३२॥

शब्दार्थ—[तत्थ खलु] निश्चयतः उन [एएसु चउद्दससु महासुमिणेसु] इन चौदह महास्वप्नों में से [इक्किक्कस्स महासुमिणस्स इमे एयारूवे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ तं जहा—] एक-एक महास्वप्न का यह फलविशेष होगा वह इस प्रकार है—

१ [चउदंतदंतिदंसणेणं] चार दांतोंवाले हाथी को देखने से [अमू सूरो वीरो] वह बालक शूरवीर और [विक्कंतो] पराक्रमी होगा [दंतेणं दंती नईकूलतरुमूलं विव] जैसे हाथी अपने दांतों से नदी–किनारे के वृक्षों को उखाड देता है वैसे ही [पभूएणं तवेणं महंतअंतरायकसायकुलं उम्मूलिस्सइ] वह विपुल तपस्या से महान विघ्न-रूप अंतराय और कषाय के समूह का उन्मूलन करेगा।

२ [दंतेण दंती वयइतइं विव] जैसे हाथी लताओं के समूह को उखाड कर फेंक देता है, उसी प्रकार [वई वीरो वरीयसा तवसा] वह व्रती वीर घोर तपस्या से [नरय तिरियनरामरगइब्भमणसंतइं अंतिस्सइ] नरक तिर्यंच मनुष्य और देव गतियों में भ्रमण करने की परम्परा का अंत कर देगा।

३ [चउरोदंते फुरंतधुज्जभावो] जैसे अपने अग्रेसरपन को प्रगट करनेवाला और [रणंगणे परक्कममाणो वारणो विव] युद्धभूमि में पराक्रम करनेवाला हाथी चार दांतों

को दिखलाता है उस प्रकार [महंतप्पभावदानसीलतवभावभेयभिन्ने] अत्यन्त प्रभावशाली दान शील तप और भाव के भेद से भिन्न [चउव्विहे धम्मे] चार प्रकार के धर्म को [बारसविहपरिसंगणे दंसिस्सइ] बारह प्रकार की परिषद् में दिखलाएगा।

४ [सुय चारित्तधम्मनिरूवणओ अगिलाणत्तणेण] ग्लान रहित भाव से श्रुतचारित्र रूप धर्म का निरूपण करते हुए [दिसादंतीविव] दिशाके हाथी के जैसा [चउदिसं सायत्ती करिस्सइ] चारों दिशाओं को अपने स्वाधीन करेगा ॥३२॥

उसभसुमिणफलं २

मूलम्—१ उसभदंसणेणं अमू उसभरायो सगडधुरंविव धम्मधुरं धरिस्सइ। २ सारमुयारं तव संजमभारं वहिस्सइ। ३ सुयचारित्तलक्खणं धम्मारामं असोहधाराए सुहाधाराए गिराए सिंचंतो पुप्फियं फलियं च करिस्सइ। ४ पवित्ते भरहाखित्ते खित्ते सग्गापवग्गसुहसंपायणा बीयं बोहिबीयं वाविस्सइ ॥३३॥

शब्दार्थ—[उसभदंसणेणं] वृषभ का स्वप्न देखने से [अमू] यह बालक [उसभरायो सगडधुरंविव] जैसे श्रेष्ठ वृषभ शकट की धुरा को धारण करता है उसी प्रकार [धम्मधुरं धरिस्सइ] वह धर्म की धुरा को धारण करेगा [सारमुयारं तवसंजमभारं वहिस्सइ] सारभूत और तप एवं संयम के भार को वहन करेगा। [सुयचारित्तलक्खणं] श्रुतचारित्ररूपी [धम्मारामं] धर्मरूपी बगीचे को [अमोहधाराए] अमोघ धारा समान [सुहाधाराए] अमृतधारा के समान [गिराए] वाणी की धारा से [सिंचंतो] सींचेगा और उसे [पुप्फियं फलियं च करिस्सइ] फूल–फलवान बनाएगा [पवित्ते भरहखित्ते] पवित्र भरतक्षेत्ररूपी [खित्ते सग्गापवग्गसुहसंपायणा] क्षेत्र में स्वर्ग और अपवर्ग की प्राप्ति के कारण [बीयं बोहिबीयं वाविस्सइ] बोधि बीज रूप बीज को बोएगा ॥२३॥

३ सीहसुमिणफलं

मूलम्–१ सीहदंसणेणं अमू भुवणत्तए सूरो वीरो विक्कंतो भविस्सइ।

२ वाइविंदमाणमद्दगो भविस्सइ। ३ रागदोसाइरिऊणं विजितारो भविस्सइ।
४ तिभुवणे एगछत्तं सासणं करिस्सइ ॥३४॥

शब्दार्थ—[सीहदंसणेणं] सिंह को देखने से [अमू] वह [भुवणत्तए] तीन लोक में [सूरो वीरो विक्कंतो] शूरवीर और पराक्रमी [भविस्सइ] होगा। वा

२ [वाइविंदमाणमद्दगो भविस्सइ] वादियों के समूह के मान का मर्दन करनेवाला होगा.

३ [रागदोसाइरिऊणं] रागद्वेष आदि शत्रुओं को [विजितारो भविस्सइ] जीतने-वाला होगा।

४ [तिभुवणे एगछत्तं सासणं करिस्सइ] तीनों लोकों पर एकच्छत्र शासन करेगा।३४।

४ लच्छीसुमिणफलं

मूलम्—लच्छीदंसणेणं अमू समोसरणलक्खणलच्छीउवलक्खिओ भविस्सइ। २ णाणदंसणसुहवीरियरूवाणंतचउक्कलक्खणं लच्छिं वरिस्सइ। ३ जम्मजरा-

मरणाहिवाउले अणाहे भव्वे बोहिबीयलच्छीपदाणेण सनाही करिस्सइ। ४ मोक्खमग्गाराहगाणं भव्वाणं साइ अणंतं अक्खयं अव्वाबाहं धुवं निययं सासयं अहरीकयलोगलच्छिं मोक्खलच्छिं दाहिइ ॥३५॥

शब्दार्थ—[लच्छीदंसणेणं] लक्ष्मी को देखने से [अमू] वह [समोसरणलक्खण-लच्छीउवलक्खिओ भविस्सइ] समवसरणरूप लक्ष्मी से युक्त होगा।

२ [णाणदंसणसुहवीरियरूवाणंतचउक्कलक्खणं लच्छिं वरिस्सइ] ज्ञानदर्शन सुख और वीर्य रूप अनन्त चतुष्टय की लक्ष्मी का वरण करेगा।

३ [जम्मजरामरणाहिवाउले अणाहे भव्वे बोहिबीयलच्छीपदाणेण सनाही करिस्सइ] जन्मजरामरण आधि और व्याधि से व्याकुल अनाथ भव्यों को बोधि बीजरूपी लक्ष्मी देकर सनाथ करेगा।

४ [मोक्खमग्गाराहगाणं भव्वाणं] मोक्ष मार्ग के आराधक भव्यों को [साइ अणंतं]

सादि अनन्त [अक्खयं] अक्षय [अव्वाबाहं] अव्याबाध [धुवं] ध्रुव [निययं] नियत [सासयं] शाश्वत [अहरीकयलोगलच्छि] और लौकिक लक्ष्मी को तिरस्कृत करनेवाली [मोक्खलच्छि दाहिइ] मोक्ष लक्ष्मी को देगा ॥३५॥

५ दामदुगसुमिणफलं

मूलम्—१ दामदुगदंसणेणं अमू अगाराणगारधम्मदुगणिरूवणेणं भव्वे भूसिस्सइ। २ अमंदाणंदजणगणाणादिगुणेण तिहुयणसगलजणहिययंमि चिट्ठिस्सइ। ३ आयगुणसोरहेण तिहुयणं सुरहिस्सइ। ४ सयलजणणयणाणंदकरो य भविस्सइ ॥३६॥

शब्दार्थ—१ [दामदुगदंसणेणं] दो मालाओं के देखने से [अमू] वह [अगाराणगारधम्मदुगणिरूवणेणं] अगार और अनगाररूप दो धर्मों के निरूपण से [भव्वे भूसिस्सइ] भव्यों को विभूषित करेगा।

२ [अमंदाणंदजणगणाणादिगुणेण] तीव्रतर आनन्द के जनक ज्ञान आदि गुणों के कारण [तिहुयणसगलजनहिययंमि चिट्ठिस्सइ] तीन लोक के समस्तजनों के हृदय में स्थान बनाएगा।

३ [आयगुणसोरहेण तिहुयणं सुरहिस्सइ] अपने आत्मिकगुणों की सुगन्ध से तीनों लोक को सुगंधित करेगा।

४ [सयलजणणयणाणंदकरो य भविस्सइ] सब के नयनों के आनन्दकारी होगा।३६।

६ चंदसुमिणफलं

मूलम्—चंददंसणेणं अमू भवियकुमुयकुलविगासगो जम्मजरामरणाइ जणियअणंतसंतावहारगो जिणसासणसागरवड्ढगो अणाइमिच्छत्ततिमिरपणासगो तिहुयणआल्हायगो य भविस्सइ॥३७॥

शब्दार्थ—१ [चंददंसणेणं] चन्द्रमा के देखने से [अमू] वह बालक [भविय-कुमुयकुलविगासगो] भव्यजनरूपी कुमुदों के कुल का विकास करनेवाला होगा।

२ [जम्मजरामरणाइजणियअणंतसंतावहारगो] जन्म, जरा, मरण आदि से उत्पन्न होनेवाले अनन्त संताप को दूर करनेवाला होगा।

३ [जिनसासणसागरवड्ढगो] जिनशासनरूपी सागर की वृद्धि करनेवाला होगा।

४ [अणाइ मिच्छत्ततिमिरपणासगो] अनादि कालीन मिथ्यात्वरूपी अन्धकार को नाश करनेवाला होगा।

५ [तिहुयण आल्हायगो य भविस्सइ] तीनों लोक को आल्हाद करनेवाला होगा।३७।

### ७ सूरसुमिणफलं

मूलम्—सूरदंसणेणं अमू लोगालोगप्पगासगो भविकमलविगासगो भव्व-हिययकुहरचराणंतप्पचंडमत्तंडमंडलतरुणकिरणदुब्भेयचिरंतणाऽणाइगाढमिच्छ-

त्ततिमिरप्पणासगो धम्मगगणंगणे सक्खं अइसयतेयपुंजो विव भविस्सइ ॥३८॥

शब्दार्थ—१ [सूरदंसणेणं] सूर्यदर्शन से [अमू] वह बालक [लोगालोगप्पगासो] लोक अलोक का प्रकाशक [भविकमलविगासगो] भव्य जीव रूपी कमलों का विकास करनेवाला [भव्वहिययकुहरचर] भव्यों के हृदयरूपी गुफा में स्थित [अणंतप्पचंडमत्तंड-मंडलतरुणकिरणदुब्भेय] अनंत प्रचण्ड सूर्यों की तीव्र किरणों से भी न भेदे जा सकनेवाले [चिरंतणाऽणाइगाढमिच्छत्ततिमिरप्पणासगो] चिरकालीन या अनादि-कालीन मिथ्यात्वरूपी अन्धकार का विनाश करनेवाला [धम्मगगणंगणे सक्खं अइसयतेय-पुंजो विव भविस्सइ] धर्मरूपी गगनांगण में प्रत्यक्ष अतिशय तेज के पुंज के समान होगा।३८।

८ झयसुमिणफलं

मूलम्—झयदंसणेणं अमू समारूढसुक्कज्झाणगयराओ सम्मण्णाणेण मंतिणा उवसममद्दवअज्जवसंतोसरूविणीए चउरंगिणीए सेणाए पंचमह-

व्वयरूवेहिं भडेहिं समदमाइरूवेहिं सत्थअत्थेहिं जुत्तो मुणिराओ अण्णाणमंतिसहायं कोहमाणमायालोहचउरंगिणियं णाणावरणिज्जाइभडाणुगयं रागदोसरूवसत्थत्थजुत्तं दुज्झाणगयारूढं मोहरायं जिणिऊण केवलणाणावरणनिस्सारणावतिण्ण कारणक्कमववहाणा अनियट्टि सयललोगालोगविसयतिकालस्सहावपरिणामभेयाणंतपयत्थसक्खंकारि केवलणाणकेवलदंसणसंपन्नो वेरग्गपवणपेरियं सियवायज्झयं समुच्चालिस्सइ ॥३९॥

शब्दार्थ—[झयदंसणेणं] ध्वजा के देखने से [अमू] वह बालक [समारूढसुक्कज्झाणगयराओ] शुक्लध्यानरूपी हाथी पर आरुढ होकर [सम्मणाणेण मंतिणा] सम्यक्ज्ञानरूपी मंत्री से [उवसम] उपशम [मद्दव] मार्दव [अज्जव] आर्जव और [संतोस] संतोष [रूविणीए चउरंगिणीए सेणाए] रूपी चतुरंगीणी सेना से [पंचमहव्वयरूवेहिं

भडेहिं] पंच महाव्रतरूपी योद्धाओं से और [समदमाइरूवेहिं] शम, दम आदि [सत्थ अत्थेहिं जुत्तो] शस्त्रास्त्रों से युक्त होकर [मुणिराओ] वह बालक मुनिराज बनकर [अ-ण्णाणमंतिसहायं] अज्ञानरूप मंत्री जिसका सहायक है [कोहमाणमायालोहचउरंगिणियं] क्रोध, मान, माया, लोभ ही जिसकी चतुरंगिणी सेना है [णाणावरणिज्जाइभडाणुगयं] ज्ञानावरणीय आदि जिस के योद्धा है [रागदोसरूवसत्थत्थजुत्तं] रागद्वेष के अस्त्रशस्त्रों से जो सुसज्जित है [दुज्झाणगयारूढं] दुर्ध्यानरूप गज पर जो आरूढ है [मोहरायं जिणिऊण] ऐसे मोहराज को जीतकर [केवलणाणावरणनिस्सारणात्तिण्ण] केवलज्ञाना-वरणीय कर्म के क्षय से उत्पन हुए [कारणक्कमववहाणा अनियट्टि] कारणों के क्रम के व्यवधान होने से कभी नष्ट न होनेवाले [सयललोगालोगविसय] समस्त लोक और अलोक को जाननेवाले [तिकालस्सहावपरिणामभेयाणंतपयत्थसक्खंकारि] त्रिकाल सम्बन्धी, स्वभाव एवं परिणमन के भेद से भिन्न अनन्तपदार्थों को प्रत्यक्षरूप से जान-

नेवाले, [केवलनाणकेवलदंसणसंपन्नो] केवलज्ञान और केवलदर्शन से युक्त होकर [वेरग्गपवनपेरियं] वैराग्य की वायु से प्रेरित [सियवायज्झयं समुच्चालिस्सइ] स्याद्वाद की ध्वजा को फहराएगा ॥३९॥



९ पुण्णकलससुमिणफलं

मूलम्—पुण्णकलसदंसणेणं अमू विमलसलिलेहिं कलसो विव खमा संति माहुरिय ओदारिय सोरिय गंभीरिय धेरिय मद्दव अज्जवाइगुणेहिं पुण्णे मंगलमयत्तणओ सगललोगमंगलजणओ सगललोगहिययकमलाहिट्ठायगो पंचतिंसयवाणीगुणपडिपुण्णो लोगाहिरामो धवलकित्तिकेवलणाण केवलदंसणसमलंकिओ जगहिययहरणपवणो सयलतित्थियाणं मुद्धोवरि विरायमाणो सयलजणाणमभिलसणिज्जो भविस्सइ ॥४०॥

शब्दार्थ—[पुण्णकलसदंसणेणं] पूर्ण कलश को देखने से, [विमलसलिलेहिं कलसोविव] जैसे कलश निर्मल जल से परिपूर्ण होता है, उसी प्रकार [अमू] वह बालक भी [खमा] क्षमा [संति] शान्ति [माहुरिय] माधुर्य [ओदारिय] औदार्य [सोरिय] शौर्य [गंभीरिय] गाम्भीर्य [धेरिय] धैर्य [मद्दव] मार्दव [अज्जवाइगुणेहिं पुण्णे] आर्जवादि गुणों से पूर्ण होगा [मंगलमयत्तणओ सगललोगमंगलजणओ] मंगलमय होने के कारण सम्पूर्ण लोक के मंगल का जनक होगा। [सगललोकहियकमलाहिट्ठायगो] सब लोगों के हृदय–कमल में स्थित होगा [पंचतिसयवाणीगुणपडिपुण्णो] वाणी के पैंतीसगुणों से सुशोभित होगा [लोगाहिरामो] लोक में या लोकों के लिए रमणीय होगा। [धवलकित्ति] उज्ज्वल कीर्ति [केवलणाणकेवलदंसणसमलंकिओ] केवलज्ञान और केवलदर्शन से समलंकृत होगा [जगहिययहरणपवणो सयलतित्थियाणं मुद्धोवरिविरायमाणो] जगत के हृदय को हरण करनेवाला एवं समस्त तीर्थिकों में प्रधानरूप से शोभायमान होगा। ॥३१४॥

[सयलजणाणमभिलसणिज्जो भविस्सइ] सकलजनों के लिये इष्ट होगा ॥४०॥

पउमसरोवरसुमिणफलं १०

मूलम्—पउमसरोवरदंसणेणं अमू विमलजलेणेव निम्मलमाहिमाए, सीयल-तयेव संतीए, माहुरिएणेव सोम्मभावेण, गंभीरिएणेव नाणाइगुणेण, कमलि-णीहिंविव विमलभावणाहिं मयरंदेणेव कारुण्णेणं, भमरनिगरेणेव भव्विंदेण, तरंगेणेव समभावेणं, हंसादिविहंगमेहिं विव संजतेहिं, पुप्फवाडियाहिं विव सुयाहिं साइबिंदुपायजणियमुत्ताहलसालिसुत्तिसंपुडेहिं विव गणहरोवएसवक्क-जणियसग्गापवग्गसुहसालिमुमुक्खुहियएहिं परिगारिओ पउमसरोवरो विव विराइस्सइ, एवं सयलजगजीवजोणीजायस्स आधारभूओ भविस्सइ ॥४१॥

शब्दार्थ—[पउमसरोवरदंसणेणं] पद्मसरोवर के देखने से [अमू] वह [विमलजले-

णेव निम्मलमहिमाए] पद्मसरोवर के विमलजल की तरह निर्मल महिमावाला होगा। [सीयलतयेव संतीए] जैसे पद्मसरोवर शीतलता से युक्त होता है वैसे ही वह शांति से युक्त होगा [माहुरिएणेव सोम्मभावेण] सरोवर के जल की मधुरता के समान वह सौम्य भाव से विभूषित होगा। [गंभीरिएणेव नाणाइगुणेण] सरोवर की गम्भीरता के समान वह ज्ञानादिगुणों की गम्भीरता से युक्त होगा [कमलिणीहिं विव विमलभावणाहिं] जैसे सरोवर कमलिनियों से युक्त होता है उसी प्रकार वह (पच्चीस) विमल भावनाओं से युक्त होगा [मयरंदेणेव कारुण्णेणं] जैसे सरोवर मकरंदफूलों के रस से युक्त होता है, उसी प्रकार वह षट्काय के जीवों की करुणा से कलित होगा [भमरनिगरेणेव भव्वविंदेण] जैसे सरोवर भ्रमर समूह से युक्त होता है उसी प्रकार वह प्राणियों के समूह से सेवित होगा [तरंगेणेव समभावेण] जैसे सरोवर लहरों से व्याप्त होता है, उसी प्रकार वह इष्ट अनिष्ट आदि में समताभाव से युक्त होगा [हंसादिविहंगमेहिं विव संजतेहिं] जैसे सरो-

वर हंस आदि पक्षियों से सेवित होता है उसी प्रकार वह साधुओं से सेवित होगा। [पुप्फवाडियाहिं विव भुयाहिं] जैसे सरोवर पाल पर स्थित पुष्पवाटिकाओं से शोभित होता है उसी प्रकार वह आत्मज्ञानजनित प्रमोद से युक्त होगा [साइबिंदुपायजणिय-मुत्ताहलसालिसुत्तिसंपुडेहिं] जैसे सरोवर स्वाति नक्षत्र में बरसे जल की बिन्दुओं से उत्पन्न हुए मोतियों से सुशोभित शुक्ति (सीप) से सम्पन्न होता है [विव गणहरोवएस-वक्कजणिय सग्गापवग्गसुहसालिमुमुक्खुहियएहिं परिगरिओ पउमसरोवरो विव विराइस्सइ] उसी प्रकार वह तीर्थंकर प्ररूपित यथार्थ तत्त्व का उपदेश करनेवाले गणधरों के वचन से जनित स्वर्ग मोक्ष के सुख से शोभित होनेवाले मोक्षार्थी जीवों के हृदय से सुशोभित होगा [एवं सयलजगजीवजोणीजायस्स आधारभूओ भविस्सइ] इस प्रकार वह संसार के सब जीव योनियों में उत्पन्न हुए जीवों का आधार होगा ॥४१॥

खीरसायरसुमिणफलं ११

मूलम्—खीरसायरदंसणेणं अमू नाणाइअणंतगुणगणरयणायरो माहुरियगंभीरियाइगुणगणालंकिओ ससिकिरणसरिसउज्जलविमलजसधरो सियवायभंगतरंगणिरूवगो विविहणयकल्लोलललियभंगजालंतरालसुयधम्मसलिलसंभिओ विविहविमलभावणाणईसंगमसंजायसमुदयसमज्जियगुणसमिद्धपवयणपरूवगो सयलजणाहियविहायगत्तणेणं नक्कयपीऊसहियामियगुणगणाभिराममहुराइमहुरगिरासंपन्नो भविस्सइ ॥४२॥

शब्दार्थ—[खीरसायरदंसणेणं] क्षीरसागर का स्वप्न देखने से [अमू] वह बालक [नाणाइअणंतगुणगणरयणायरो] ज्ञान आदि अनन्तगुणरूपी रत्नों की खान होगा [माहुरियगंभीरियाइगुणगणालंकिओ] वाणी की मधुरता, गंभीरता आदि गुणों के समु-

दाय से अलंकृत होगा [ससिकिरणसरिसउज्जलविमलजसधरो] चन्द्र की किरणों के सदृश प्रकाशमान एवं निष्कलंक यश का धारक होगा [सियवायभंगतरंगणिरूवगो] स्याद्वाद के भंगरूपी तरंगो का प्रवर्तक होगा [विविहणयकल्लोलललियभंगजालंतरालसुयधम्मसलिलसंभिओ] अनेक प्रकार के नयरूपी महातरंगों से सुन्दर भंगजाल जिसके मध्य में स्थित हैं ऐसे श्रुतधर्मरूपी जल से भरा होगा। [विविहविमलभावणाणईसंगमसंजायसमुदयसमज्जियगुणसमिद्धपवयणपरूवगो] अनित्य अशरण आदि भावनारूपी नदियों के कारण उत्पन्न हुइ वृद्धि से प्राप्त होनेवाले क्षमाप्रदायकत्व आदि गुणों से युक्त प्रवचनरूपी जल का प्रदर्शक होगा। [सयलजणहियविहायगत्तणेणं] समस्त प्राणियों का हितकर्ता होने से [नक्कयपीऊसहियामियगुणगणाभिराममहुराइमहुरगिरासंपन्नो भविस्सइ] अमृत से भी बढकर हितकारी अपरिमितगुणों से रमणीय एवं मधुर से भी मधुरवाणी से संपन्न होगा ॥४२॥

देवविमाणसुमिणफलं १२

मूलम्-देवविमाणदंसणेणं अमू समवसरणरूवदव्वइड्ढिसंपन्नो केवलणाणाइ भावइड्ढिसंपन्नो जगआलंबणभूओ देवदेवीविंदवंदिज्जमाणचरणो भविस्सइ।४३।

शब्दार्थ—[देवविमाणदंसणेणं] देवविमान का स्वप्न देखने से [अमू] वह बालक [समवसरणरूवदव्वइड्ढिसंपन्नो समवसरण तथा चोंतीसअतिशयरूप द्रव्यऋद्धि से संपन्न होगा [केवलणाणाइ भावइड्ढि संपन्नो] केवलज्ञान आदि भावऋद्धि से संपन्न होगा। [जगआलंबणभूओ] जगत का आश्रयभूत होगा और [देवदेवीविंदवंदिज्जमाण-चरणो भविस्सइ] देवों तथा देवियों के समूह से वंदित होगा ।।४३॥

रयणरासिसुमिणफलं १३

मूलम्—रयणरासिदंसणेणं अमू पाणाइवायविरमणाइसत्तवीसइअणगारगुण-बारसविहतवबासीअहियसत्तदससयभेयप्पभेयसत्तदससंजमअट्ठारससीलंगसह -

स्साइअणेगगुणरयणरासिरूवो भविस्सइ ।

अह य पुव्वभवोवज्जिय तित्थयरनामकम्माइलक्खणपरमपुण्णपब्भारेण तित्थयरो खीणाभिणिबोहियणाणावरणत्त१ खीणसुयणाणावरणत्त२ खीणओहीणाणावरणत्त३ खीणमणपज्जवणाणावरणत्त४ खीणकेवलणाणावरणत्त५ खीणचक्खुदंसणावरणत्त६ खीणअचक्खुदंसणावरणत्त७ खीणओहीदंसणावरणत्त८ खीणकेवलदंसणावरणत्त९ खीणनिद्दत्त१० खीणनिद्दानिद्दत्त११ खीणपयलत्त१२ खीणपयलापयलत्त१३ खीणथीणद्धित्त१४ खीणसायावेयणिज्जत्त१५ खीणअसायावेयणिज्जत्त१६ खीणदंसणमोहणिज्जत्त१७ खीणचरित्तमोहणिज्जत्त१८ खीणनेरइयाउयत्त१९ खीणतिरियाउयत्त२० खीणमणुस्साउयत्त२१ खीणदेवाउयत्त२२ खीणसुहनामत्त२३ खीणअसुहनामत्त२४ खीणउच्चगोयत्त२५ खीणनीयगो-

यत्त२६ खीणदाणंतरायत्त२७खीणलाहंतरायत्त२८खीणभोगंतरायत्त २९ खीण-उवभोगंतरायत्त३० खीणवीरियंतरायत्त३१ प्पभिइनाणाविहगुणरयणरासी सासओ सिद्धो भविस्सइ।४४॥

शब्दार्थ—[रयणरासिदंसणेण] रत्नराशि देखने से [अमू] वह बालक [पाणाइ-वायविरमणाइसत्तवीसइअणगारगुण] प्राणातिपातविरमण आदि सत्ताईस अणगारगुणों, [बारसविहतव] बारह प्रकार के तपों [बासीअहियसत्तदससयभेयप्पभेय] सत्तरहसौ-बयासी (तणावा) भेद प्रभेद सहित [सत्तदससंजम] सत्रह प्रकार के संयम [अट्ठारससीलंगसहस्साइ] और अठारह हजार शीलांगों आदि [अणेगगुणरयणरासिरूवो भविस्सइ] अनेक गुणरूपी रत्नों की राशि होगा।

[अह य पुव्वभवोवज्जिय] इसके अतिरिक्त पूर्वभव में उपार्जित [तित्थयर नाम-कम्माइलक्खणपरमपुण्णपभावेण तित्थयरो] तीर्थंकर नामकर्म आदि पुण्य के समूह

से वह तीर्थंकर होगा। तथा [खीणाभिणिबोहियणाणावरणत्त] आभिनिबोधिकज्ञानावरण का क्षय [खीणसुयणाणावरणत्त] श्रुतज्ञानावरण का क्षय [खीणओहीणाणावरणत्त] अवधिज्ञानावरण का क्षय [खीणमणपज्जवणाणावरणत्त] मनःपर्यवज्ञानावरण का क्षय [खीणकेवलणाणावरणत्त] केवलज्ञानावरण का क्षय [खीणचक्खुदंसणावरणत्त] चक्षुदर्शनावरणका क्षय [खीणअचक्खुदंसणावरणत्त] अचक्षुदर्शनावरण का क्षय [खीणओहीदंसणावरणत्त] अवधिदर्शनावरण का क्षय [खीणकेवलदंसणावरणत्त] केवलदर्शनावरण का क्षय [खीणनिद्दत्त] निद्रा का क्षय [खीणनिद्दानिद्दत्त] निद्रानिद्रा का क्षय [खीणपयलत्त] प्रचला का क्षय [खीणपयलापयलत्त] प्रचलाप्रचला का क्षय [खीणथीणद्धित्त] स्त्यानर्द्धि का क्षय [खीणसायवेयाणिज्जत्त] सातावेदनीय का क्षय [खीणअसायावेयणिज्जत्त] असातावेदनीय का क्षय [खीणदंसणमोहणिज्जत्त] दर्शनमोहनीय का क्षय [खीणचरित्तमोहणिज्जत्त] चारित्रमोहनीय का क्षय [खीणनेरइयाउयत्त] नरकायु का क्षय [खीण-

तिरियाउयत्त] तिर्यंचआयु का क्षय [खीणमणुस्साउयत्त] मनुष्यायु का क्षय [खीणदेवाउयत्त] देवआयु का क्षय [खीणसुहनामत्त] शुभनाम कर्म का क्षय [खीणअसुहनामत्त] अशुभनाम कर्म का क्षय [खीण उच्चगोयत्त] उच्चगोत्र का क्षय [खीण नीयगोयत्त] नीचगोत्र का क्षय [खीण दाणंतरायत्त] दानान्तराय का क्षय [खीणलाहंतरायत्त] लाभान्तराय का क्षय [खीण भोगंतरायत्त] भोगान्तराय का क्षय [खीण उवभोगांतरायत्त] उपभोगान्तराय का क्षय [खीण वीरियंतरायत्त] वीर्यान्तराय का क्षय [प्पभिइनाणाविहगुणरयणरासी] इत्यादि अनेक प्रकार के गुणरूपी रत्नों की राशि होगा। [सासओ सिद्धो भविस्सइ] तथा शाश्वत सिद्ध होगा ॥४४॥

निद्धूमसिहिसुमिणफलं १४

मूलम्—निद्धूमसिहिदंसणेणं अमू सिहिव्व पूओ पावगो य भविस्सइ। झाणाणलेण अणाइकालीणत्तमलं सोहिस्सइ। सुक्कज्झाणविघडियघणघाइ-

कम्ममलपडलोल्लसियविमलकेवलणाणालोएण जहवट्टियासेसभूयभवब्भावि भावसहावावभासगो भविस्सइ। विविहकठिणकठिणयरकठिणतमाभिग्गह नाणाविहघोरतवचरणेण दड्ढिंधणनिद्धूमजलियहुयवहसरिसतेअे, भवोवग्गाहि-कम्मक्खवगलेस्सातीयअप्पकंपपरमनिज्जराकारणसुहुमकिरियअनियट्टिणामतइयसुक्कज्झाणेण निस्सेसियकम्ममलकलंको अवात्तसुद्धनियसहावो उड्ढगइ-परिणामो देवमणुस्सतिरियघणघणाघणकय नाणाविह उवसग्गवारिहारारयअप्प-डिहयज्झाणसिहो निव्वायट्ठाणट्ठियअग्गिसिहा विव उड्ढगामी भविस्सइ॥४५॥

शब्दार्थ—[निद्धूमसिहिदंसणेणं] निर्धूम अग्नि के देखने से [अमू] वह बालक [सिहिव्व पूओ पावगो य भविस्सइ] अग्नि के समान पवित्र और पावक–पावनकर्त्ता होगा। [झाणाणलेणा] वह ध्यानरूपी अग्नि से [अणाइकालीणत्तमलं सोहिस्सइ] अना-

निर्धूमाग्नि-
स्वप्न-
फलम्

दिकालीन आत्मिक मल का शोधन करेगा। [सुक्कज्झाणविघडियघणघाइकम्ममलपडलोल्लसियविमलकेवलणाणालोएण जहवट्ठियासेसभूयभवब्भाविभावसहावावभासगो भविस्सइ] शुक्लध्यान से उसके घणघातिया कर्मों का क्षय होगा और उस कर्ममल के पटल के क्षय से केवलज्ञान उत्पन्न होगा और उस केवलज्ञान के प्रकाश से यथार्थ रूप से भूत, वर्तमान, तथा भावि भावों–पदार्थों के स्वभाव को जाननेवाला होगा। [विविहकठिणकठिणयरकठिणतमाभिग्गह] तथा अनेक प्रकार के कठिन कठिनतर और कठिनतम अभिग्रहों को धारण करनेवाला होगा तथा [नाणाविहघोरतवचरणेण दड्ढिंधणनिद्धूमजलियहुयवहसरिसतेओ] तथा विविध प्रकार के उग्र तपों का आचरण करके दहकती हुइ और धूम से रहित अग्नि के समान तेजस्वी होगा। [भवोवग्गाहिकम्मक्खवगलेस्सातीयअप्पकंपपरमनिज्जराकारणसुहुमकिरियअनियट्टिणामतइयसुक्कज्झाणेण]-वह संसार अर्थात् जन्म मरण के कारणभूत कर्मों का क्षय करनेवाले, लेश्या (कषाय से

युक्त योग की प्रवृत्ति) से रहित अविचल, उत्कृष्ट निर्जरा के हेतु 'सूक्ष्मक्रियाअनिवर्ति' नामक शुक्लध्यान के तीसरे पाये से [निस्सेसियकम्ममलकलंको] समस्त कर्म-मलरूपी कलंक का क्षय कर देगा [अवात्तसुद्धनियसहावो] शुद्धस्वभाव को प्राप्त करेगा [उड्ढगइपरिणामो] ऊर्ध्वगतिरूप परिणमनवाला होगा [देवमणुस्सतिरियघणघणावण-कयनाणाविहउवसग्गवारिहाराअप्पडिहयज्झाणसिहो] देव मनुष्य तथा तिर्यंचरूपी सघन मेघों द्वारा बरसाइ जानेवाली अनेक प्रकार के उपसर्गरूपी जलकी धाराओं से भी उसके ध्यान को शिखा बुझ नहीं सकती [निव्वायट्ठाणट्ठियअग्गिसिहा विव उड्ढगामी भविस्सइ] वह वायुरहित स्थान में स्थित अग्निशिखाके समान ऊर्ध्वगामी होगा॥४५॥

।इति तृतीय वाचना।

मूलम्—तए णं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठा चित्तमाणंदिया हरिसवसविसप्पमाणहियया करयलपरिग्गहियं सिरसा-

वत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—एवमेयं सामी ! तहमेयं सामी ! अवितहमेयं सामी ! असंदिद्धमेयं सामी ! इच्छियमेयं सामी । पडिच्छियमेयं सामी ! इच्छियपडिच्छियमेयं सामी ! सच्चे णं एस अट्ठे से जहेयं तुब्भे वदहत्ति कट्टु तं सुमिणं सम्मं पडिच्छइ. पडिच्छित्ता सिद्धत्थेणं रन्ना अब्भणुन्नाया समाणी नानामणिरयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता अतुरियमचवलमसंभंताए अविलंबियाए राजहंससरिसीए गईए जेणेव सए सयणगिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मा णं इमे एयारूवा महासुमिणा अन्नेहिं पावसुमिणेहिं पडिहम्मिंसुत्तिकट्टु देवगुरुधम्मसंबद्धाहिं पसत्थाहिं धम्मियाहिं कहाहिं धम्मजागरियं जागरमाणा विहरइ ॥४६॥

शब्दार्थ—[तए णं सा तिसला खत्तियाणी] तदनन्तर वह त्रिशला क्षत्रियाणी

[सिद्धत्थेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठा] राजा सिद्धार्थ के इस प्रकार कहने पर हर्षित एवं संतुष्ट हुई। [चित्तमाणंदिया] उसका चित्त आनंदित हुआ [हरिसवसविसप्पमाणहियया] हर्ष से उसका हृदय विकसित हो गया [करयलपरिग्गहियं] वह दोनों हाथ जोडकर [सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु] मस्तक पर आवर्त एवं अंजलि करके [एवं वयासी–] इस प्रकार बोली–[एवमेयं सामी !] हे स्वामिन् ! आपने जो कहा है सो ऐसा ही है [तहमेयं सामी !] आपका कथन सत्य है। [अवितहमेयं सामी] हे स्वामिन् ! आपका कथन असत्य नहीं है। [असंदिद्धमेयं सामी !] हे स्वामिन् ! यह कथन संशय रहित है। [इच्छियमेयं सामी !] हे स्वामिन् ! आपका कथन मुझे इष्ट है। [पडिच्छियमेयं सामी !] अत्यन्त इष्ट है [इच्छियपडिच्छियमेयं सामी !] हे स्वामिन् ! आपका कथन इष्ट तथा अत्यन्त इष्ट है [सच्चे णं एसअट्ठे से जहेयं तुब्भे वदहत्तिकट्टु] आपने मुझ से जो कहा है सो यह अर्थ सत्य है [त्तिकट्टु] इस प्रकार कहकर [तं सुमिणं

सम्मं पडिच्छइ] त्रिशला क्षत्रियाणी उन स्वप्न को भली भांति अंगीकार करती है। [पडिच्छित्ता] अंगिकार करके [सिद्धत्थेणं रन्ना] राजा सिद्धार्थ की [अब्भणुन्नाया समाणी] आज्ञा पाकर [णाणामणिरयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ] नाना प्रकार के मणि, सुवर्ण और रत्नों की रचना से विचित्र भद्रासन से ऊठती है [अब्भुट्ठित्ता] ऊठकर [अतुरिय–मचवलमसंभंताए] त्वरा रहित–चपलता रहित और संभ्रम रहित [अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए] विलंब रहित सुन्दर राजहंसी–सी गति से [जेणेव सए सयणगिहे तेणेव उवागच्छइ] चलकर जहां अपना शयनगृह था वहां आती है [उवागच्छित्ता] वहां आकर [मा णं इमे एयारूवा] यह इस प्रकार के [महासुमिणा] महास्वप्न [अन्नेहिं पावसुमिणेहिं पडिहम्मिसुत्तिकट्टु] अन्य पाप स्वप्नों से घात को प्राप्त न होजाएँ ऐसा विचार कर [देवगुरुधम्मसंबद्धाहिं पसत्थाहिं धम्मियाहिं कहाहिं] देव-गुरु और धर्म संबन्धी प्रशस्त धर्ममय कथाओं द्वारा [धम्मजागरियं जागरमाणा विह-

त्रिशलायाः स्वप्नप्रतिघातार्थ-जागरणम्

रइ] धर्मजागरण करती हुई विचरने लगी ॥४६॥

मूलम्—तए णं से सिद्धत्थे खत्तिए राया पच्चूसकालसमयंसि कोडुंबियपुरिसे सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! बाहिरियं उवट्ठाणसालं अज्ज सविसेसं परमरम्मं गंधोदगासित्तसंमज्जिओवलित्तसुइयं पंचवण्णसरससुरहिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवडज्झंतमघमघंतगंधुद्धूयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह य कारवेह य, एयमाणत्तियं पच्चप्पिणेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सिद्धत्थेणं रन्ना एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा रायकहियाणुसारेण बाहिरियं उवट्ठाणसालं पुव्वुत्तपगारं करित्ता य कारवित्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ॥४७॥

शब्दार्थ—[तए णं से सिद्धत्थे खत्तिए राया] तत्पश्चात् सिद्धार्थ नामके क्षत्रिय

सिद्धार्थस्य-कौटुम्बिकेभ्य आज्ञा-प्रदानम्

राजा ने [पच्चूसकालसमयंसि] प्रातःकाल के समय [कोडुंबियपुरिसे सद्दावित्ता एवं वयासी] कौटुंबिक पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार कहा–[खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया !] हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही [अज्ज बाहिरियं उवट्ठाणसालं] आज बाहर की उपस्थानशाला (सभाभवन) को [सविसेसं परमरम्मं] विशेषरूप से परमरमणीय, [गंधोदगसित्तसंमज्जिओवलित्तसुइयं] गन्धोदक से सिंचित, साफ सुथरी, लीपी हुई [पंचवण्णसरससुरहिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं] पांच वर्णों के सरस सुगन्धित एवं बिखरे हुए फूलों के समूहरूप उपचार से युक्त [कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधुवडज्झंतमघमघंतगंधुद्धूयाभिरामं] कालागुरु कुंदुरुक्क तुरुष्क (लोबान] तथा धूप के जलाने से महकती हुई गंध से व्याप्त होने के कारण मनोहर [सुगंधवरगंधियं] श्रेष्ठ सुगन्ध के चूर्ण से सुगन्धित तथा [गंधवट्टिभूयं] सुगन्ध की गुटिका (वट्टी) के समान [करेह य कारवेह य] करो और कराओ। [एयमाणत्तियं पच्चप्पिणेह] ऐसा करके तथा करवा करके मेरी यह आज्ञा वापिस सौंपो।

सिद्धार्थस्य-कौटुम्बिकेभ्य आज्ञा-प्रदानम्

[तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सिद्धत्थेणं रन्ना एवं वुत्ता समाणा] तत्पश्चात् वे कौटुंबिक पुरुष सिद्धार्थ राजा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर [हट्ठतुट्ठा] हर्षित और संतुष्ट हुए [रायकहियाणुसारेण] राजा के कथनानुसार [बाहिरियं उवट्ठाणसालं] बाहर की उपस्थान-शाला—सभामण्डप को [पुव्वुत्तपगारं] पूर्वोक्त प्रकार का [करित्ता य कारवित्ता य] करके तथा करवा करके [एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति] आज्ञा वापिस सौंपी ॥४७॥

मूलम्—तए णं से सिद्धत्थे राया कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियंमि अहपंडुरे पभाए रत्तासोगपगासकिंसुयसुयमुह-गुंजद्धरागबंधुजीवगपारावयचलणनयण—परहुयसुरत्तलोयणजासुमिण कुसुम-जलियजलणतवणिज्जकलसहिंगुलयनियररूवाइरेगरहंतसस्सिरिए दिवागरे अह कमेण उदिए तस्स दिणयरपरंपरावयारपारद्धम्मि अंधयारे, बालातवकुंकुमेणं

खइएव्व जीवलोए, लोयणविसआणुआसविगसंतविसददंसियम्मि लोए, कमलागरसंडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सयणिज्जाओ उट्ठेइ। उट्ठित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सव्वालंकारविभूसिए जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे संनिसण्णे ॥४८॥

शब्दार्थ—[तए णं से सिद्धत्थे राया] तत्पश्चात् सिद्धार्थ राजा [कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए] स्वप्नवाली रात्रि के बाद दूसरे दिन रात्रि प्रकाशमान प्रभातरूप हुई [फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियंमि] प्रफुल्लित कमलों के पत्ते विकसित हुए—काले मृग के नेत्र निद्रारहित होने से विकस्वर हुए [अह पंडुरे पभाए] फिर वह प्रभात पाण्डुर श्वेत वर्णवाला हुआ [रत्तासोगपगासकिंसुयसुयमुहगुंजद्धराग—बंधुजीवग—पारावयचलण-

नयण–परहुयसुरत्तलोयण जासुमिण कुसुमजणियजलणतवणिज्जकलस–हिंगुलयनियर रूवाइरेगरहंतसस्सिरीए दिवागरे अह कमेण उदिए] लाल अशोक की कान्ति, पलाश के पुष्प, तोते की चोंच, चीरमी के अर्द्धभाग दुपहरी के पुष्प, कबूतर के पैर और नेत्र, कोकिला के नेत्र, जासोद के फूल, जाज्वल्यमान अग्नि, स्वर्णकलश, तथा हिंगलू के समूह की लालिमा से भी अधिक लालिमा से जिसकी श्री सुशोभित हो रही है, ऐसा सूर्य क्रमशः उदित हुआ। [तस्स दिणकरपरंपरावयारपारद्धम्मि अंधयारे] सूर्य की किरणों का समूह नीचे उतरकर अंधकार का विनाश करने लगा [बालातवकुंकुमेणं खइएव्व जीवलोए] बालसूर्यरूपी कुंकुम से मानो जीवलोक व्याप्त हो गया। [लोयणविस आणु आसविगसंतविसददंसियम्मि लोए] नेत्रों के विषय का प्रचार होने से विकसित होनेवाला लोक स्पष्ट रूप से दिखाइ देने लगा [कमलागरसंडबोहए] सरोवरों में स्थित कमलों के वन को विकसित करनेवाला [उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिनयरे] तथा सह-

स्त्रकिरणोंवाला दिवाकर [तेयसा जलंते] तेज से जाज्वल्यमान हो गया। ऐसा होने पर [सयणिज्जाओ उट्ठेइ] राजा सिद्धार्थ शय्या से उठे। [उट्ठित्ता] उठकर [ण्हाए] स्नान किया [कयबलिकम्मे] पक्षि आदि को अन्नदानरूप बलिकर्म किया [कयकोउयमंगलपायच्छित्ते] कौतुकमंगल और दुःस्वप्न निवारणरूप प्रायश्चित्त किया [सव्वालंकारविभूसिए] सब अलंकारों से विभूषित हुए [जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ] फिर जहां बाहर का आस्थानमण्डप—सभामण्डप था, वहां आते हैं [उवागच्छित्ता] वहां आकर [सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसण्णे] पूर्व दिशा की ओर मुह करके उत्तम सिंहासन पर बैठे ॥४८॥

मूलम्—तए णं से सिद्धत्थेराया अप्पणो अदूरसामंते उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अट्ठ भद्दासणाइं सेयं वत्थपच्चुत्थुयाइं सिद्धत्थमंगलोवयारकयसुभकम्माइं रयावेइ, रयावित्ता नानामणिरयणमंडियं अहियपच्छणिज्जरूवं महग्घवरपट्टणु-

ग्गयं सण्हबहुभत्तिसयचित्तट्ठाणं ईहामियउसभतुरयणरमगरविहगवालगकिंनर-रुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलय भत्तिचित्तं सुखचियवरकणगपवरपेरंतदेस-भागं अब्भिंतरियं जवणियं अंछावेइ अंछावित्ता अच्छरगमउअमसूरगउच्छाइयं धवलवत्थपच्चुत्थुयं विसिट्ठं अंगसुहफासयं सुमउयं तिसलाए खत्तियाणीए भद्दासणं रयावेइ, रयावित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अट्ठंगमहानिमित्तसुत्तत्थपाढए विविहसत्थकुसले सुमिणपाढए सद्दावेह, सद्दावित्ता एयं ममाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह? तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सिद्धत्थेणं रन्ना एवं वुत्ता समाया हट्ठतुट्ठा करयलपरि-ग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु 'एवं देवो तहत्ति' आणाए विणएणं सिद्धत्थस्स रन्नो वयणं पडिसुणेंति। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा

स्वप्नपाठकानां त्रिशलायाश्च कृते भद्रासनस्थापनम्

जेणेव सुमिणपाढगाणं गिहा तेणेव उवागच्छित्ता सुमिणपाढगे सद्दावेंति ॥४९॥

शब्दार्थ—[तए णं सिद्धत्थे राया] तत्पश्चात् सिद्धार्थ राजाने [अप्पणो अदूर सामंते] अपने से न अधिक दूर और न अधिक समीप में [उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए] पूर्व–उत्तर दिशा के कोने–ईशान कोण में [अट्ठ भद्दासणाइं] आठ भद्रासन रखवाये [सेय वत्थपच्चुत्थुयाइं] वे श्वेत वस्त्रों से आच्छादित थे और [सिद्धत्थ मंगलोवयारकय-सुभकम्माइं रयावेइ] श्वेत सरसों तथा मांगलिक द्रव्यों से उनमें शुभ कर्म किया गया था। [रयावित्ता] शुभ कर्म करवा के [नाणामणिरयणमंडियं] नानामणियों और रत्नों से मण्डित [अहियपेच्छणिज्जरूवं] अतिशय दर्शनीय [महग्घवरपट्टणुग्गयं] बहुमूल्य और श्रेष्ठ नगर में बनीहुई [सण्ह बहु भत्तिसयचित्तट्ठाणं] कोमल एवं सैकडों प्रकार की रचनावाले चित्रों का स्थान भूत [ईहा मिय] ईहामृग (भेडिया) [उसभ] वृषभ [तुरय] अश्व [णर] मनुष्य [मगर] मगर [विहग] पक्षी [वालग] सर्प [किंनर] किन्नर [रुरु] रुरु

स्वप्नपाठकानां त्रिशलायाश्च कृते भद्रासनस्थापनम्

जाति केमृग [सरभ] अष्टापद [चमर] चमरी गाय [कुंजर] हाथी [वणलय] वनलता [पउमलय] और पद्मलता [भत्तिचित्तं] आदि के चित्रों से युक्त [सुखचिय वरकणग पवरपेरंतदेसभागं] श्रेष्ठ स्वर्ण के तारों से भरेहुए सुशोभित किनारोवाली [अब्भिं-तरियं जवणियं अंछावेइ] जवणिका [पर्दा] सभा के भीतरी भाग में बंधवाई [अंछावित्ता] बंधवाकर [अच्छरगमउअमसूरगउच्छाइयं धवलवत्थपच्चुत्थुयं विसिट्ठं अंगसुहफासयं सुमउयं तिसलाए खत्तियाणीए भद्दासणं रयावेइ] उसके भीतरी भाग में त्रिशला क्षत्रियाणी के लिए एक भद्रासन रखवाया। वह भद्रासन आस्तरक (खोली) और कोमल तकिया से ढंका था (श्वेतवस्त्र उस पर बिछा हुआ था) सुन्दर था। स्पर्श से अंगों को सुख उत्पन्न करनेवाला था और अतिशय मृदु था। [रयावित्ता] इस प्रकार आसन बिछवाकर राजा ने [कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ] कोटुम्बिक पुरुषों को बुलवाया [सद्दावित्ता एवं वयासी–] बुलवाकर इस प्रकार कहा—[खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया !]

स्वप्नपाठकानांत्रिशलायाश्च कृते भद्रासन स्थापनम्

हे देवानुप्रियों ! [अट्ठंगमहानिमित्तसुत्तत्थपाढए] अष्टांग महानिमित्त–ज्योतिष के सूत्र और अर्थ के पाठक [विविहसत्थकुसले] तथा विविधशास्त्रों में कुशल [सुमिणपाढए सद्दावेह] स्वप्नपाठकों को शीघ्र ही बुलाओ [सद्दावित्ता एयं ममाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह] और बुलवाकर शीघ्र ही इस आज्ञा को वापस लौटाओ।

स्वप्नपाठकानां निशलायाश्च कृते भद्रासनस्थापनम्

[तए णं ते कोडुंबियपुरिसा] उसके बाद वे कौटुम्बिक पुरुष [सिद्धत्थेणं रन्ना एवं वुत्ता समाणा] राजा सिद्धार्थ के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर [हट्ठतुट्ठा] हर्षित यावत् आनन्दित हृदय हुए। [करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु] दोनों हाथ जोडकर दसो नखों को इकट्ठा करके मस्तकपर घुमाकर अंजलि जोडकर ['एवं देवो तहत्ति' आणाए विणएणं सिद्धत्थस्स रन्नो वयणं पडिसुणेंति] 'हे देव ! ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर विनय के साथ सिद्धार्थ राजा के वचनों को स्वीकार करते हैं [तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जेणेव सुमिणपाढगाणं गिहा तेणेव उवाग-

च्छंति । तदनंतर वे कौटुम्बिकपुरुष जहां स्वप्नपाठकों के घर थे, वहाँ पहुंचते हैं और [उवागच्छित्ता] [पहुंचकर [सुमिणपाठगे सद्दावेंति] स्वप्न पाठकों को बुलाते हैं ॥४९॥

मूलम्–तए णं ते सुमिणपाढगा सिद्धत्थस्स रन्नो कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठा जाव हियया ण्हाया कयबलिकम्मा कय कोउयमंगलपायच्छित्ता अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा सएहिं सएहिं गिहेहिं पडिणिक्खमित्ता एगओ मिलंति, मिलित्ता जेणेव सिद्धत्थस्स रन्नो बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सिद्धत्थराया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सिद्धत्थं रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति। सिद्धत्थेणं रन्ना सक्कारिया सम्माणिया समाणा पुव्वन्नत्थेसु भद्दासणेसु निसीयंति ॥५०॥

शब्दार्थ—[तए णं ते सुमिणपाढगा] तत्पश्चात् वे स्वप्नपाठक [सिद्धत्थस्स रन्नो

कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा] सिद्धार्थ राजा के कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलायेजाने पर [हट्ठतुट्ठा] हृष्ट तुष्ट यावत् आनन्दित हृदय हुए। [ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता] उन्होंने स्नान किया, काकआदि को अन्नदेनेरूप बलिकर्म किया तथा कौतुक मसीतिलक आदि और सरसों दही अक्षत आदि के प्रयोगरूप मंगल तथा प्रायश्चित्त–दुःस्वप्न के फल को विघात करनेवाला प्रायश्चित्त किया [अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा] अल्प किन्तु बहुमूल्य आभरणों से शरीर को अलंकृत किया [सएहिं सएहिं गिहेहिं पडिणिक्खमित्ता एगओ मिलंति] और वे अपने अपने घरों से निकलकर एक स्थान पर इकट्ठे हुए [मिलित्ता] इकट्ठे होकर [जेणेव सिद्धत्थस्स रन्नो बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सिद्धत्थराया तेणेव उवागच्छंति] जहां सिद्धार्थराजा की बाहरी उपस्थानशाला थी और जहां राजा सिद्धार्थ थे, वहां आये [उवागच्छित्ता सिद्धत्थं रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति] आकर सिद्धार्थ राजा को जय और विजय के शब्दों से

बधाया [सिद्धत्थेणं रन्ना सक्कारिया सम्माणिया समाणा] राजा सिद्धार्थ के द्वारा उनका सत्कार और सम्मान होनेपर [पुव्वन्नत्थेसु भद्दासणेसु निसीयंति] वे स्वप्नपाठक पहले से बिछाए हुए भद्रासनों पर अलग-अलग बैठे ॥५०॥

मूलम्-तए णं से सिद्धत्थे राया जवनियंतरियं तिसलं देविं ठवेइ. ठवेत्ता सुवण्णरययाइ मंगलियवत्थुपडिपुण्णहत्थे परेणं विणएणं ते सुमिणपाढए एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया। तिसलादेवी अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी गयवसहाइ चउद्दसमहासुमिणं पासित्ता णं पडिबुद्धा तं एएसिं णं देवाणुप्पिया! उरालाणं धन्नाणं मंगल्लाणं सस्सिरीयाणं महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ?॥५१॥

सिद्धार्थकृतस्वप्नार्थविषयकः प्रश्नः

शब्दार्थ—[तए णं से सिद्धत्थे राया] तत्पश्चात् सिद्धार्थ राजा ने [जवणियंतरियं तिसलं देविं ठवेइ] जवनिका के पीछे त्रिशलादेवी को बिठलाया [ठवेत्ता सुवण्णरयथाइ मंगलियवत्थुपडिपुण्णहत्थे परेणं विणएणं] फिर हाथों में सुवर्णरजत आदि मांगलिक पदार्थों को लेकर अत्यन्त विनय के साथ [ते सुमिणपाढए एवं वयासी—] उन स्वप्नपाठकों से इस प्रकार कहा—[एवं खलु देवाणुप्पिया ! हे देवानुप्रियो !] [तिसलादेवी अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि] आज उस प्रकार की उस [पूर्ववर्णित] शय्या पर [पुव्वरत्ता वरत्तकालसमयंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी—ओहीरमाणी] मध्यरात्रि के समय कुछ सोती हुई कुछ जगती हुई, त्रिशलादेवीने [गयवसहाइ चउद्दस महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा] गज—वृषभ—आदि चौदह महास्वप्न देखे हैं स्वप्न देखकर जाग गई [तं एएसिं णं देवाणुप्पिया उरालाणं धन्नाणं मंगल्लाणं सस्सिरीयाणं महासुमिणाणं] तो हे देवानुप्रियों ! उन उदार धन्य, मांगलिक, सश्रीक—महास्वप्नों का 'के मन्ने कल्लाणे फलवित्ति विसेसे भविस्सइ' क्या फल—विशेष होगा ?॥५१॥

सिद्धार्थकृतस्वप्नार्थविषयकः प्रश्नः

स्वप्नपाठक-
दर्शितस्वप्न-
फलं तेषां
सत्काराश्च

मूलम्--तए णं ते सुमिणपाढगा सिद्धत्थस्स रन्नो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा ते महासुमिणे सम्मं ओगिण्हंति, ओगिण्हित्ता इहं अणुपविसंति, अन्नमन्नेणं सद्धिं संचालेंति। तए णं ते सुमिणपाढगा तेसिं चउद्दसण्हं महासुमिणाणं लद्धत्था गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अहिगयट्ठा सिद्धत्थस्स रन्नो पुरओ सुमिणसत्थाइं उच्चारेमाणा उच्चारेमाणा एवं वयासी--एवं खलु अम्हाणं सामी! सुमिणसत्थम्मि बावत्तरिए सुमिणेसु तीसं महासुमिणा पण्णत्ता, तत्थ णं सामी अरिहंतमायरो वा चक्कवट्टीमायरो वा अरिहंतंसि वा चक्कवट्टिंसि वा गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं तीसाए महासुमिणाणं इमे गयवसहाइ चउद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति तं एवं खलु देवाणुप्पिया! तिसलाए देवीए इमे पसत्था चउद्दस महासुमिणा दिट्ठा, एवं मंगल्ला धन्ना सस्सिरिया

आरोग्गतुट्ठिदीहाउकल्लाणमंगल्लकारगाणं सामी! महासुमिणा दिट्ठा, तं णं अत्थलाभो सामी! भविस्सइ, भोगलाभो सामी! भविस्सइ, सोक्खलाभो सामी! भविस्सइ, रज्जलाभो सामी! भविस्सइ, रट्ठलाभो सामी! भविस्सइ, पुत्तलाभो सामी! भविस्सइ। एवं खलु सामी! तिसलादेवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं य राइंदियाणं विइक्कंताणं कुलकेउं कुलदीवं कुलपव्वयं कुलवडिंसयं कुलतिलयं कुलकित्तिकरं कुलवित्तिकरं कुलणंदिकरं कुलजसकरं कुलदिणयरं कुलाधारं कुलपायवं कुलतंतुसंताणविवद्धणकरं सुकुमालपाणिपायं अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरं लक्खणवंजणगुणोववेयं माणुम्माणपमाणपडिपुण्णसुजायसव्वंगसुंदरंगं ससिसोमागारं कंतं पियदंसणं सुरूवं दारयं पयाहिइ। से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णायपरिणयमित्ते जोव्वणगम-

स्वप्नपाठक-दर्शितस्वप्न-फलं तेषां सत्कारश्च

णुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कंते वित्थिण्णविउलबलवाहणे चाउरंतचक्कवट्टी रायवई राया भविस्सइ, जिणे वा तिलुक्कनायगे धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी भविस्सइ, तं उरालाणं धन्नाणं मंगल्लाणं देवाणुप्पिया तिसलाए देवीए सुमिणा दिट्ठा। तए णं सिद्धत्थे राया तेसिं सुमिणपाढगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे चित्तमाणंदिए हरिसवसविसप्पमाणहियए ते सुमिणलक्खणपाढए एवं वयासी—एवमेयं देवाणुप्पिया! तहमेयं देवाणुप्पिया! अवितहमेयं देवाणुप्पिया! इच्छियमेयं देवाणुप्पिया! पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया! इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया! सच्चे णं एस अट्ठे से जहेय तुब्भे वयह—त्तिकट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ पडिच्छित्ता ते सुमिणलक्खणपाढए विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं वत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, विउलं जीवियरिहं पीइ-

दाणं दलइ, तओ णं ते पडिविसज्जेइ ॥५२॥

शब्दार्थ—[तए णं ते सुमिणपाढगा] उसके बाद वे स्वप्नपाठक [सिद्धत्थस्स रन्नो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा] सिद्धार्थ राजा से इस अर्थ को सुनकर [निसम्म हट्ठतुट्ठा] और हृदय में धारण करके हृष्ट तुष्ट हुए [ते महासुमिणे सम्मं ओगिण्हंति] उन्होंने उन स्वप्नों का सम्यक् प्रकार से अवग्रहण किया [ओगिण्हित्ता] अवग्रहण करके [इहं अणुपविसंति] ईहा (विचारणा) में प्रवेश किया [अन्नमन्नेणं सद्धिं संचालेंति] प्रवेश करके परस्पर एक दूसरे के साथ विचार विमर्श किया [तए णं ते सुमिणपाढगा] उसके बाद उन स्वप्न पाठकोने [तेसिं चउद्दसण्हं महासुमिणाणं] उन चौदह महास्वप्नों के [लद्धट्ठा] अर्थ को अपने आप से समझा [गहियट्ठा] दूसरों का अभिप्राय समझकर विशेष अर्थ समझा [पुच्छियट्ठा] आपस में उस अर्थ को पूछा [विणिच्छियट्ठा] अर्थ का निश्चय किया [अहिगयट्ठा] और फिर तथ्य अर्थ का निश्चय किया [सिद्धत्थस्स रन्नो पुरओ सुमिणसत्थाइं उच्चारे-

स्वप्नपाठक-दर्शितस्वप्न-फलं तेषां सत्कारश्च

माणा उच्चारेमाणा एवं वयासी] वे स्वप्नपाठक सिद्धार्थ राजा के सामने स्वप्नशास्त्रों का बार–बार उच्चारण करते हुए इस प्रकार बोले–[एवं खलु अम्हाणं सामी !] हे स्वामिन् ! इस प्रकार हमारे [सुमिणसत्थंसि बावत्तरिए सुमिणेसु] स्वप्नशास्त्र में बहत्तर प्रकारके स्वप्नों में [तीसं महासुमिणा पण्णत्ता] तीस महास्वप्न कहे गये हैं [तत्थ णं सामी अरिहंतमायरो वा] हे स्वामिन् ! अरिहंत की माताएँ और [चक्कवट्टि मायरो वा] चक्रवर्ती की माताएँ [अरिहंतंसि वा चक्कवट्टिंसि वा गब्भं वक्कममाणंसि] अरिहंत और चक्रवर्ती के गर्भ में आने पर [एएसिं तीसाए महासुमिणाणं इमे गयवसहाइ चउद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति] इन तीस महास्वप्नों में से हाथी वृषभ आदि चौदह महास्वप्नों को देखकर जगती है [तं एवं खलु देवाणुप्पिया ! तिसलाए देवीए इमे पसत्था चउद्दस महासुमिणा दिट्ठा] अतएव हे देवानुप्रिय त्रिशलादेवी ने ये शुभ चौदह महास्वप्न देखे हैं [एवं मंगल्ला, धन्ना, सस्सिरीया] इसी प्रकार

स्वप्नपाठकदर्शितस्वप्नफलं तेषां सत्कारश्च

हे स्वामिन्! मांगलिक, धन्य सश्रीक [आरोग्ग] तथा आरोग्य [तुट्ठि] संतोष [दीहाउ] दीर्घायु [कल्लाणमंगल्लकारगाणं सामी महासुमिणा दिट्ठा] कल्याण और मंगल करने वाले महास्वप्न देखे हैं। [तं णं अत्थलाभो सामी! भविस्सइ] इन्हें देखने से हे स्वामिन्! अर्थ का लाभ होगा। [भोगलाभो सामी भविस्सइ] हे स्वमिन्! भोग का लाभ होगा [सोक्खलाभो सामी! भविस्सइ] हे स्वामिन्! सौख्य का लाभ होगा। [रज्जलाभो सामी! भविस्सइ] हे स्वामिन् राज्य का लाभ होगा [रट्ठलाभो सामी! भविस्सइ] हे स्वामिन्! राष्ट्र का लाभ होगा। [पुत्तलाभो सामी! भविस्सइ] हे स्वामिन्! पुत्र का लाभ होगा। [एवं खलु सामी! तिसलादेवी नवण्हं मासाणं पडिपुण्णाणं] हे स्वामिन्! त्रिशलादेवी पूरे नौ मास व्यतीत हो जाने पर [अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं विइक्कंताणं] और साढे सात अहोरात्र बीतनेपर [कुलकेउं] कुलकेतु [कुलदीवं] कुलदीपक [कुलपव्वयं] कुलपर्वत [कुलवडिंसयं] कुलके आभूषण [कुलतिलयं] कुलतिलक

स्वप्नपाठक-दर्शितस्वप्नफलं तेषां सत्कारश्च

[कुलकित्तिकरं] कुल की कीर्ति बढानेवाला [कुलवित्तिकरं] कुल की वृत्ति मर्यादा बढानेवाला [कुलणंदिकरं] कुल में आनन्द उत्पन्न करनेवाला [कुलजसकरं] कुलका यश फैलानेवाला [कुलदिनयरं] कुल के लिए सूर्य के समान [कुलाधारं] कुल के आधार [कुलपायवं] कुल के लिए वृक्ष के समान [कुलतंतुसंताणविवद्धणकरं] कुल की वेल बढानेवाले [सुकुमालपाणिपायं] सुकुमार हाथपैरवाले [अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरं] हीनतारहित पूरी पांचों इन्द्रियों से संपन्न शरीरवाले [लक्खणवंजणगुणोववेयं] लक्षणों एवं व्यंजनों के गुणों से युक्त अथवा लक्षणों (शुभ रेखाओ) व्यंजनों (मसतिलआदि) तथा गुणों उदारता आदि से युक्त [माणुम्माणपमाणपडिपुण्णसुजायसव्वंगसुंदरंगं] मान उन्मान और प्रमाणों से युक्त मनोहर अंगोपांगों से सुन्दर शरीरवाले [ससिसोमागारं] चन्द्रमा के समान सौम्य शरीरवाले [कंतं] कमनीय [पियदंसणं] प्रियदर्शन [सुरूवं] और सुन्दररूप से सम्पन्न [दारयं पयाहिइ] पुत्र को जन्म देगी।

[सेऽवि य णं दारए] वह बालक [उम्मुक्कबालभावे] बाल्यावस्था को पार करके [विण्णायपरिणयमित्ते] विज्ञानसंपन्न होकर [जोव्वणगमणुप्पत्ते] और यौवन को प्राप्त करके [सूरे वीरे विक्कंते] शूर, वीर, और विक्रमवान् [विथिन्नविउलबलवाहणे] विस्तीर्ण तथा विपुल बल और वाहनोंवाला [चाउरंतचक्कवट्टी राजवई राया भविस्सइ] और चारों दिशाओं के अन्त तक राज्य करनेवाला चक्रवर्ती राजाधिराज होगा [जिणे वा तिलुक्कनायगे धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी भविस्सइ] अथवा तीन लोक का नायक धर्म-वरचातुरन्तचक्रवर्ती जिन होगा। (तं उराला णं धन्नाणं मंगल्लाणं देवाणुप्पिया तिसलाए देवीए सुमिणा दिट्ठा] अतः हे देवानुप्रिय! त्रिशला देवीने निश्चय ही उदार धन्य और मांगलिक स्वप्न देखा है।

[तए णं सिद्धत्थे राया] तब राजा सिद्धार्थ [तेसिं सुमिणपाढगाणं] उन स्वप्न-पाठकों से [अंतिए एयमट्ठं सोच्चा] इस बात को सुनकर [निसम्म] और समझकर

स्वप्नपाठक-
दर्शितस्वप्न-
फलं तेषां
सत्कारश्च

[हट्ठतुट्ठे] हृष्टतुष्ट [चित्तमाणंदिए] उनका चित्त आनंदित हो गया [हरिसवसविसप्पमाणहियए] हर्ष से हृदय खिल उठा [ते सुमिणलक्खणपाढए एवं वयासी] उन्होंने स्वप्नपाठकों से इस प्रकार कहा–[एवमेयं देवाणुप्पिया !] हे देवानुप्रियो ! आपने जो कहा है सो ऐसा ही है [तहमेयं देवाणुप्पिया] आपका कथन सत्य है [अवितहमेयं] असत्य नहीं है [इच्छियमेयं देवाणुप्पिया !] हे देवानुप्रियों ! आपका कथन संशय रहित है [पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया] हे देवानुप्रियों ! आपका कथन मुझे इष्ट है। [इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया !] अत्यन्त इष्ट है और इष्ट तथा इष्टतर है। [सच्चे णं एस अट्ठे से जहेयं तुब्भे वयहत्ति] आप लोगोंने मुझसे जो कहा है सो यह अर्थ सत्य है। [कट्टु ते सुमिणं सम्मं पडिच्छइ] इस प्रकार कहकर उन्होंने स्वप्नों को सम्यक् प्रकार से स्वीकार किया। [पडिच्छित्ता] स्वीकार करके [ते सुमिणलक्खणपाढए] उन स्वप्नलक्षणपाठकों को [विउलेणं] प्रचुर [असणपाणखाइमसाइमेणं] अशन, पान, खादिम और

स्वादिम से [वत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ] तथा वस्त्र, गंध, माला और अलंकारों से सत्कारित और सम्मानित किया [विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ] तथा जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया। [तओ णं ते पडिविसज्जेइ] तत्पश्चात् उन्हें विदा किया ॥५२॥

मूलम्—तए णं से सिद्धत्थे राया जेणेव तिसला खत्तियाणी जवणियंतरिया तेणेव उवागच्छित्ता तिसलं खत्तियाणिं सुमिणपाढगसुयं सव्वं फलं परिकहेइ। तए णं सा तिसला खत्तियाणी एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा सिद्धत्थेणं रन्ना अब्भणुन्नाया समाणी तओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठित्ता अतुरियमचवलमसंभंताए रायहंससरिसाए गईए जेणेव सए भवणे तेणेव उवागच्छित्ता सयं भवणं अणुप्पविट्ठा। तए णं तसि तिसलाए खत्तियाणीए दोसु

मासेसु वीइक्कंतेसु तइए मासे वट्टमाणे तस्स गब्भस्स दोहलकालसमयंसि अयमेयारूवे दोहले पाउब्भवित्था—'धन्नाओ णं ताओ अम्माओ सपुण्णाओ कयट्ठाओ कयपुण्णाओ कयलक्खणाओ सुकयविहवाओ सुलद्धेणं तासि माणुस्सए जम्मजीवियफले, जाओ णं मुहबद्ध सदोरगमुहवत्थियाणं रयहरणपडिग्गहधराणं समणाणं निग्गंथाणं अंतिए सयपइणा सद्धिं धम्मं सुयमाणीओ सामाइयपडिक्कमणं समायरंतीओ साहम्मिए सुस्सुसमाणीओ तहारूवाणं समणाणं निग्गंथाणं पडिलाभंतीओ य दोहलं विणिंति। तं सेयं जइ णं अहमवि सिद्धत्थेणं रन्ना सद्धिं एवमेव दोहलं विणिज्जामि। तए णं से सिद्धत्थे राया तीए तिसलाए खत्तियाणीए एयारूवं दोहलं वियाणित्ता तं दोहलं तहेव विणेइ। एवं तिसलाए खत्तियाणीए वीसइट्ठाणविसए सव्वेवि दोहले सिद्धत्थे राया भुज्जो

भुज्जो विणेइ। तए णं सा तिसला खत्तियाणी तेसु दोहलेसु विणीएसु विणीयदोहला संपुण्णदोहला विच्छिन्नदोहला सक्कारियदोहला सम्माणियदोहला तस्स गब्भस्स अणुकंपणट्ठाए जयं चिट्ठइ, जयं आसइ, जयं सुवइ, आहारंपि य णं णाइ सीयं णाइ उण्हं णाइ तित्तं णाइ कडुयं णाइ अंबिलं णाइ महुरं णाइ णिद्धं णाइ लुक्खं णाइ उल्लं णाइ सुक्कं आहरइ। किं बहुणा, जे तस्स गब्भस्स हिये मिये पत्थय पोसए देसे य काले य आहारो हवइ तं आहारं आहारेमाणी णाइ चिंताहिं णाइ सोगेहिं णाइ दण्णेहिं णाइ मोहेहिं णाइ भयेहिं णाइपरित्तासेहिं णाइभोयणच्छायणगंधमल्लालंकारेहिं तं गब्भं सुहं सुहेणं परिवहइ ॥५३॥

शब्दार्थ—[तए णं से सिद्धत्थे राया] उसके बाद वह सिद्धार्थराजाने [जेणेव तिसला खत्तियाणी] जहां त्रिशला क्षत्रियाणी [जवणियंतरिया० तेणेव उवागच्छित्ता] यवनिका

(पर्दे) की ओट में बैठी थी, वहां जाकर [तिसलं खत्तियाणिं सुमिणपाढगसुयं सव्वं फलं परिकहेइ] त्रिशला क्षत्रियाणी से स्वप्नपाठकों के मुख से सुना हुआ सब फल कहा [तए णं सा तिसला खत्तियाणी एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा] तब वह त्रिशला क्षत्रियाणी इस अर्थ को सुनकर और समझकर हृष्टतुष्ट हुई। [सिद्धत्थेणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी] सिद्धार्थ राजा की आज्ञा पाकर [तओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठित्ता] उस भद्रासन से उठकर [अतुरियमचवलमसंभंताए रायहंससरिसाए गईए] त्वरारहित चपलता रहित होकर राजहंसी सरीखी संभ्रमरहित गति से [जेणेव सए भवणे तेणेव उवागच्छित्ता सयं भवणं अणुपविट्ठा] जहां अपना भवन था वहां गई और अपने भवन में प्रविष्ट हुई।

[तए णं तीसे तिसलाए खत्तियाणीए दोसु मासेसु वीइक्कंतेसु तइए मासे वट्टमाणे] उसके बाद दो मास व्यतीत होनेपर, जब तीसरा मास चल रहा था तब त्रिशला क्षत्रियाणी को [तस्स गब्भस्स दोहलकालसमयंसि अयमेयारूवे दोहले पाउब्भवित्था]

दोहद के काल के अवसर पर इस प्रकार का दोहद (दोहला) उत्पन्न हुआ। वह दोहद इस प्रकार था—[धन्नाओ णं ताओ अम्माओ] वे माताएँ धन्य—भाग्यवती है [सुपुण्णाओ] पुण्यवती है [कयत्थाओ] कृतार्थ है [कयपुण्णाओ] पूर्व भव में उपार्जित पुण्यवाली है [कयलक्खणाओ] वे कृतलक्षण हैं अर्थात् उनके शरीर के लक्षण सफल है [सुकयविहवाओ] उनका वैभव सफल है। [सुलद्धे णं तासिं माणुस्सए जम्म जीवियफले] उन्हें मनुष्य सम्बन्धी जन्म और जीवन का फल प्राप्त हुआ है [जाओ णं मुहबद्धसदोरमुहवत्थियाणं] जो मुखपर डोरा सहित मुखवस्त्रिका बांधकर [रयहरणपडिग्गहधराणं] तथा हाथ में रजोहरण—पूंजनी लेकर तथारूप श्रमणों अर्थात् मुखपर डोरा सहित मुखवस्त्रिका बांधनेवाले तथा रजोहरण तथा पात्र को धारण करनेवाले [समणाणं निग्गंथाणं अंतिए] श्रमणों के निकट [सयपइणा] अपने पति के [सद्धिं धम्मं सुयमाणीओ] साथ अर्हत् प्ररूपित धर्म को सुनती है [सामाइयपडिक्कमणं समायरंतीओ]

दोनों समय सामायिक–प्रतिक्रमण करती हैं, [साहम्मिए सुस्सुसमाणीओ] और अन्न तथा वस्त्र आदि से साधर्मी जनों की सेवा करती हैं। [तहारूवाणं समणाणं निग्गंथाणं पडिलाभंतीओ य] एवं जो तथारूप श्रमण निग्रन्थों को निर्दोष आहार आदि से प्रतिलाभित करती हुइ [दोहलं विणियंति] अपने दोहद को पूर्ण करती है। [तं सेयं जइ णं अहमवि सिद्धत्थेणं रन्ना सद्धिं एवमेव दोहलं विणिज्जामि] यदि मैं भी सिद्धार्थ राजा के साथ इसी प्रकार से अपने दोहद को पूर्ण करूँ तो अच्छा हो।

[तए णं से सिद्धत्थे राया तीए तिसलाए खत्तियाणीए] उसके बाद सिद्धार्थराजाने त्रिशला क्षत्रियाणी के [एयारूवं दोहलं वियाणित्ता] इस प्रकार के दोहद को जानकर [तं दोहलं तहेव विणेइ] उसी प्रकार से उसे पूर्ण किया। [एवं तिसलाए खत्तियाणीए] इसी प्रकार त्रिशला क्षत्रियाणी के [वीसइट्ठाणविसए सव्वे वि दोहले सिद्धत्थे राया

भुज्जो भुज्जो विणेइ] बीस स्थानों के विषय में सभी दोहदों को राजा सिद्धार्थने बार-बार पूर्ण किया।

[तए णं तिसला खत्तियाणी] तब त्रिशला क्षत्रियाणी [तेसु दोहलेसु विणीएसु] उन दोहदों के पूर्ण होनेपर [विणीयदोहला] पूर्ण दोहदवाली हो गई [संपुण्णदोहला] सम्पूर्ण दोहदवाली हो गई [विच्छिन्न दोहला] दोहद रहित हो गई [सक्कारियदोहला] उसके दोहद सत्कारित हो गये [सम्मणिय दोहला] सम्मानित दोहद हो गये। [तस्स गब्भस्स अणुकंपणट्ठाए जयं चिट्ठइ] वह उस गर्भ की अनुकम्पा के लिए यतना पूर्वक खडी होती थी [जयं आसइ] यतना पूर्वक बैठती थी [जयं सुवइ] यतनापूर्वक सोती थी [आहारंपि य णं] वह आहार भी [णाइसीयं] न अधिक ठंठा [णाइ उण्हं] न अतिउष्ण [णाइ तित्तं] न अधिक तिक्त [णाइ कडुयं] न अधिक कडुआ [णाइ अंबिलं] न अधिक खट्टा [णाइ महुरं] न अधिक मधुर [णाइ णिद्धं] न अधिक स्निग्ध [णाइ लुक्खं] न अधिक

रूक्ष [णाइ उल्लं] न अधिक गीला [णाइ सुक्कं] न अधिक सूखा [आहरइ] आहार करती थी [किं बहुणा] अधिक क्या कहे [जे तस्स गब्भस्स] जो आहार उस गर्भ के लिए [हिये मिये पत्थये पोसए देसे य काले य आहारो हवइ] हित-मित पथ्य-रूप होता है देश काल के अनुकूल होता [तं आहारं आहारेमाणी] वही आहार करती थी [णाइ चिंत्ताहिं] न अति चिन्ता करती, [णाइ सोगेहिं] न अतिशोक करती [णाइ देण्णेहिं] न अति दीनता दिखलाती [नाइ मोहेहिं] न अति मोह करती [णाइ परित्तापेहिं] न अति उद्वेग करती [णाइभोयणच्छायणगंधमल्लालंकारेहिं तं गब्भं सुहं सुहेणं परिवहइ] न अति भोजन आच्छादन, गंध माला और अलंकारों का सेवन करती। वह सुखपूर्वक उस गर्भ को वहन करने लगी ॥५३॥

मूलम्—जप्पभिइं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए गब्भाओ तिसलाए खत्तियाणीए गब्भंमि साहरिए तप्पभिइं च णं बहवे

वेसमणकुंडधारिणो तिरियजंभगा देवा सक्कवयणेणं जाइं इमाइं पुरापोराणाइं महानिहाणाइं भवंति, तं जहा पहीणसामियाइं पहीणसेउयाइं पहीणगोत्तागाराइं उच्छिन्नसामियाइं उच्छिन्नसेउयाइं उच्छिन्नगोत्तागाराइं गामागरनगरखेड-कब्बडमंडबदोणमुहपट्टणनिगमासमसंवाहसंनिवेसेसु वा सिंघाडएसु वा तिएसु वा चउक्केसु वा चच्चरेसु चउम्मुहेसु वा महापहेसु वा गामट्ठाणेसु वा नगरट्ठाणेसु वा गामनिद्धमणेसु वा णगरनिद्धमणेसु वा आवणेसु वा देवकुलेसु वा सहासु वा पवासु वा आरामेसु वा उज्जाणेसु वा वणेसु वा वणसंडेसु वा सुसाण–सुण्णागारगिरिकंदरसंति सेलोवट्ठाणभवणगिहेसु सन्निक्खित्ताइं चिट्ठंति ताइं सिद्धत्थरायभवणंसि साहरंति ॥५४॥

शब्दार्थ—[जप्पभिइं च णं समणे भगवं महावीरे] जब से श्रमण भगवान महा-

सिद्धार्थ-राजभवने-त्रिजृम्भक-देवकृत-निधान-समाहरणम्

वीर [देवाणंदाए माहणीए गब्भाओ तिसलाए खत्तियाणीए गब्भंमि साहरिए] देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ से त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ में आये [तप्पभिइं च णं बहवे वेसमणकुंडधारिणो तिरियजंभगा देवा] तब से बहुत से कुबेर के आज्ञापालक मध्य-लोक में रहनेवाले त्रिजृंभग नामक देव, [सक्कवयणेणं जाइ इमाइं पुरा पोराणाइं महा-निहाणाइं भवंति] इन्द्र की आज्ञा से पुराने निधानों स्वजनों को सिद्धार्थ राजा के भवन में ले आने लगे [तं जहा] वे निधान ऐसे थे कि [पहीण सामियाइं] जिनके स्वामी मरचुके थे [पहीण सेउयाइं] जिनके निशान भी नष्ट हो चुके थे [पहीण गोत्तारागाइं] जिनके स्वामियों के गोत्र और गृह नष्ट हो चुके थे [उच्छिन्नसामियाइं उच्छिन्नसेउ-याइं उच्छिन्न गोत्तागाराइं] जिनके स्वामी उच्छिन्न थे, निशान भी उच्छिन्न थे, जिनके स्वामियों के गोत्र और गृह भी उच्छिन्न थे ये निधान [गाम] ग्रामों में [आगर] आकरों में [नगर] नगरों में [खेड] खेटों में [कब्बड] कर्बट [मडंब] मडंब [दोणमुह]

सिद्धार्थ-
राजभवने-
त्रिजम्भक-
देवकृत-
निधान-
समाहरणम्

द्रोणमुख [पट्टण] पत्तन [निगम] निगम [आसम] आश्रम [संवाह] संवाह [सन्निवेसेसु वा] और संनिवेशों में [सिंघाडएसु वा] शृंगाटक (तिकोने मार्ग) [तिएसु वा] त्रिक (तीन मार्गों के संगम) में [चउक्केसु वा] चौक में, [चच्चरेसु वा] चत्वरों में (जहां बहुत मार्ग मिलते हो ऐसे स्थानों में) [चउम्मुहेसु वा] राजमार्ग में [महापहेसु वा] महापथ में [गामट्ठाणेसु वा] उजडे गांव में [नगरट्ठाणेसु वा] उजडे नगरों में [गामनिद्धमणेसु वा] गांव की नालियों में [नगरनिद्धमणेसु वा] नगर की नालियों में [आवणेसु वा] दुकानों में [देवकुलेसु वा] देवालयों में [सहासु वा] सभास्थलों में [पवासु वा] प्याउओं में [आरामेसु वा] आरामों में [उज्जाणेसु वा] उद्यानों में [वणेसु वा] वनों में [वनसंडेसु वा] वनखण्डों में [सुसाण] स्मशानों में [सुन्नागार] सूने मकानों में [गिरिकंदर] पर्वत की गुफाओं में [संति] शान्ति गृहों (शान्तिकर्म के स्थलों] में [सेलो] शैलगृहों में [उवट्ठाण] उपस्थानगृहों में [भवणगिहेसु वा] तथा भवनगृहों (निवासगृहों) में [सन्निक्खित्ताइं

चिट्ठंति] गडे हुए थे [ताइं] उन्हें [सिद्धत्थरायभवणंसि साहरंति] वे देव सिद्धार्थ राजा के भवन में लाने लगे ॥५४॥

मूलम्—जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे नायकुलंसि साहरिए तप्पभिइं च णं तं नायकुलं हिरण्णेणं वड्ढित्था। एवं सुवण्णेण धणेणं धण्णेणं विहवेणं ईसरिएणं रिद्धीएणं सिद्धीएणं समिद्धीएणं सक्कारेणं सम्माणेणं पुरक्कारेणं रज्जेणं रट्ठेणं बलेणं वाहणेणं कोसेणं कोट्ठागारेणं पुरेणं अंतेउरेणं जणवएणं जसवाएणं कित्तिवाएणं थुइवाएणं वड्ढित्था। विउलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइएणं संतसारसावइज्जेणं पीइसक्कारसमुदएणं अईव अईव अभिवड्ढित्था। तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापिऊणं अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे

भगवतो-'वर्धमान' इति नामकरणार्थे तन्मातापित्रोःसंकल्पः

समुप्पज्जित्था—जप्पभिइं च णं अम्हे एस दारए कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कंते तप्पभिइं च णं अम्हे हिरण्णेणं वड्ढामो, जाव पीइसक्कारसमुदएणं अईव अईव वड्ढामो तं णं जयाणं अम्हाणं एस दारए उप्पज्जिस्सइ तयाणं अम्हे एयस्स दारयस्स एयाणुरूवं गुण्णं गुणनिप्फण्णं नामधिज्जं करिस्सामो 'वड्ढमाणु'–त्ति ॥५५॥

भगवतो-'वर्धमान' इति नामकरणार्थं तन्मातापित्रोःसंकल्पः

शब्दार्थ—[जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे] जिस रात्रि में श्रमण भगवान महावीर का [नायकुलंसि साहरिए] ज्ञातकुल में संहरण किया गया [तप्पभिइं च णं तं नायकुलं] उस रात्रि में ज्ञातकुल की [हिरण्णेणं वड्ढित्था] हिरण्य–चांदी से वृद्धि हुई [एवं सुवण्णेण] इसी प्रकार स्वर्ण से [धणेण] धन से [धण्णेण] धान्य से [विहवेण] विभव से [ईसरिएणं] ऐश्वर्य से [रिद्धीएणं] ऋद्धि से [सिद्धीएणं] सिद्धि से [समिद्धी-

एणं] समृद्धि से [सक्कारेणं] सत्कार से [सम्माणेणं] सन्मान से [पुरक्कारेणं] पुरस्कार से [रज्जेणं] राज्य से [रट्ठेणं] राष्ट्र से [बलेणं] बल–सेना से [वाहणेणं] वाहन से [कोसेणं] कोष से [कोट्ठागारेणं] अन्नभण्डार से [पुरेणं] पुर से [अंतेउरेणं] अन्तःपुर से [जणवएणं] जनपद से [जसवाएणं] यशोवाद से [कित्तिवाएणं] कीर्तिवाद से [थुइवाएणं] स्तुतिवाद से [वड्ढित्था] वृद्धि हुई। [विउलधनकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइएणं] ज्ञातकुल प्रचुर धन स्वर्ण, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, शिला, प्रवाल, लाल आदि रत्नों से [संतसारसावइज्जेणं] वास्तविक प्रधान द्रव्यों से [पीइसक्कारसमुदएणं] प्रीति एवं सत्कार की प्राप्ति से [अईव अईव अभिवड्ढित्था] खूब खूब बढा।

[तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स] तब श्रमण भगवान् महावीर के [अम्मापिऊणं] मातापिता को [अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए] यह आध्यात्मिक–आत्मा में भीतरही भीतर होनेवाला विचार चिन्तित वारंवार होनेवाला विचार [कप्पिए] कल्पित–कार्यपरि-

भगवतो-'वर्धमान' इति नामकरणार्थं तन्मातापित्रोः संकल्पः

णत करने योग्य विचार [पत्थिए] स्वीकृत विचार [मणोगए] मनोगत विचार [संकप्पे] संकल्प–निश्चित विचार [समुपज्जित्था] उत्पन्न हुआ कि [जप्पभिइं च णं अम्हे एस दारए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते] जब से यह बालक हमारे यहां उदर में गर्भ रूप से उत्पन्न हुआ है, [तप्पभिइं च णं अम्हे हिरण्णेणं वड्ढामो] तभी से हम हिरण्य चांदी से [जाव पीइसक्कारसमुदएणं] यावत् प्रीति सत्कार आदि के समूह से [अईव अईव वड्ढामो] खूब खूब वृद्धि पा रहे हैं, [तं णं जयाणं अम्हाणं एस दारए उप्पज्जिस्सइ] अतः जब हमारा यह बालक जन्म लेगा, [तयाणं अम्हे एयस्स दारयस्स एयाणुरूवं] तब हम इस बालक का, इसी के अनुरूप [गुण्णं गुणनिप्फण्णं नामधिज्जं करिस्सामो] 'वड्ढमाणु'-त्ति] गुणयुक्त गुणनिष्पन्न नाम रक्खेंगे–'वर्द्धमान' ॥५५॥

भगवतो-'वर्धमान' इति नाम-करणार्थं तन्मातापित्रोः संकल्पः

मूलम्-तेणं कालेणं तेणं समएणं तिसलाखत्तियाणी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं वीइक्कंताणं, जेसे गिम्हाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे चित्तसुद्धे, तस्स णं चित्तसुद्धस्स तेरसी दिवसेणं, उच्चट्ठाणं गएसु सत्तसु गहेसु पढमे चंदज्जोगे सोम्मासु दिसासु वितिमिरासु विसुद्धासु जइएसु सव्व सउणेसु पयाहिणाणुकूलंसि भूमिसप्पंसि मारुयंसि पवायंसि, णिफन्नमइणंयिसि कालंसि, पमुइयप्पकीलिएसु जणवएसु पुव्वरत्तावरत्त कालं समयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं चंदेणं जोगमुवागएणं तेल्लोगउज्जोयगरं मोक्खमग्गधम्मधुरं हियकरं सुहकरं संतिकरं कंतिधरं चउव्विह संघणेयारं उयारं कढिणकम्मदलभेयारं गुणपारावारं सुकुमारं कुमारं पसूया ॥५६॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं तेणं समएणं] उस काल और उस समय में [तिसला खत्तियाणी] त्रिशला क्षत्रियाणीने [नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं] गर्भ के नौ महिने पूरे बीत जाने पर [अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं वीइक्कंताणं] तथा साढे सात रात्रि व्यतीत हो जाने पर [जे से गिम्हाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खेचित्तसुद्धे] जब ग्रीष्म का पहला महीना और दूसरा पक्ष चैत्र सुदि था [तस्स णं चित्तसुद्धस्स तेरसी दिवसेणं] उस चैत्र सुदि पक्ष की त्रयोदशी के दिन [उच्चट्ठाण गएसु सत्तसु गहेसु] सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, और शनि ये सात ग्रह उच्च स्थान पर थे [पढमे चंदजोगे] चन्द्रमा का योग प्रधान था। जब [सोम्मासु दिसासु] दिशाए सौम्य एवं [वितिमिरासु विसुद्धासु] उज्ज्वल और निर्मल थी [जइएसु सव्व सउणेसु] सभी शकुन जयवंत थे [पयाहिणा-णुकूलंसि भूमि सप्पंसि मारुयंसि पवायंसि] प्रदक्षिण क्रम से अनुकूल वायु पृथ्वी पर मन्द मन्द चल रही थी [णिप्फन्नमेइणीयंसि कालंसि] पृथ्वी धान्य से संपन्न थी [पमु-

इयप्पकीलिएसु] देशवासी लोग प्रसन्न और क्रीडा परायण थे [पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि] ऐसे अवसर पर मध्यरात्रि के समय में [हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं चंदेणं जोगमुवागएणं] हस्तोत्तरा नक्षत्र का चन्द्रप्रभा के साथ योग होने पर [तेल्लोग उज्जोयगरं] तीनों लोकों में उद्योत करनेवाले [मोक्खमग्गधम्मधुरं] मोक्षमार्गरूप धर्म की धुरा को धारण करनेवाले [हियकरं] हितकारी [सुहकरं] सुखकारी [संतिकरं] शान्तिकारी [कतिधरं] कान्ति के घर [चउव्विहसंघणेयारं] चतुर्विध संघ के नेता [उयारं] उदार [कढिणकम्मदलभेयारं] कठिन कर्म-दल को भेदनेवाले [गुणपारावारं] गुणों के सागर [सुकुमारं] सुकुमार [कुमारं] कुमार को [पसुया] जन्म दिया ॥५६॥

मूलम्-तिहिं उच्चहिं नरिंदो, पंचहिं तह होइ अद्धचक्कीय। छहिं होइ चक्कवट्टी, सत्तहिं तित्थंकरो होइ ॥५७॥

शब्दार्थ—जिस बालक के जन्म तीन ग्रह ऊँचे हो तो वह बालक राजा होता है पांच ग्रह उच्च हों तो अर्ध चक्रवर्ती वासुदेव होता। छह ग्रह ऊँचे हों तो चक्रवर्ती होता है और सात ग्रह उच्च स्थान पर हों तो तीर्थंकर होता है ॥५७॥

इति श्री विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा कलितललितकलापालापक-प्रविशुद्ध गद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्री शाहूछत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त जैनशास्त्राचार्य-पदभूषित कोल्हापुरराजगुरु बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराज-विरचित

श्रीकल्पसूत्रस्य प्रथमो भागः सम्पूर्णः

## प्रस्तावना

आगमोद्धारक पूज्यश्री घासीलाल म. सा. ने अपने बत्तीस आगमों की संस्कृत टीका एवं हिन्दी और गुजराती भाषामें अनुवाद करके स्था. जैन समाजका बडा भारी उपकार किया है। उसी प्रकार उन महानुभावने अपनी स्थानकवासी मान्यता एवं प्ररूपणानुसार कल्पसूत्र की स्वतंत्र तोरसे रचना कर समाज पर भारी उपकार किया है

कल्पसूत्र में अनगारों के धर्म का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। शास्त्रों में अनेक स्थल में गृहस्थों के एवं श्रावकों के सामान्य एवं विशेषधर्म प्रसंगानुसार अर्थात् यथावसर कहे हैं परंच गृहस्थ के धर्मका कोई एक ही स्थल पर निर्देश मिलता नहीं है अतः कोई गृहस्थको किसी विषय में जिज्ञासा होने पर उसके निवारणार्थ अलग अलग शास्त्रग्रंथ देखना पडता है

अतः वह न्यूनता दूर हो, एवं गृहस्थों के तथा श्रावकों के सामान्य या विशेष

धर्म निवम वगैरह एक ही स्थलपर उपलब्ध हो इस प्रकार के शुभ आशय से पूज्य घासीलाल म. सा. के सुशिष्य घोरतपस्वी श्री मदनलाल म. सा. ने अनेक शास्त्रोंमें से गृहस्थ एवं श्रावकों के सामान्य और विशेष धर्म नियमका संग्रह किया है जो इधर दिया जाता है आशा है इससे स्था. जैन समाज को अपने धर्म नियम का सरलता के साथ जानकारीकी सरलता होगी एवं इसका लाभ ले अपने धर्म के विशेष मार्गदर्शन प्राप्त कर आभारी होंगे.

शास्त्रोद्धार समिति

श्रीशासनदेवेभ्यो नमः

मङ्गलाचरणम्

भक्तामरप्रवरमौलिमणिव्रजेषु, ज्योतिः प्रभूतसलिलेषु सरोवरोषु ।
चेतोलिमंजुविकसत्कमलायमानं, श्रीवर्द्धमानचरणं शरणं व्रजामि ॥१॥

सामान्याऽगार-(गृहस्थ) धर्मस्वरूपम् ।

मुहूर्त्ते सर्वार्थसिद्धे नमस्कारसमन्वितः । नित्यं प्रातः समुत्थाय धर्मजागरणां चरेत् ॥१॥

अइणिस्सारे विसए विसोवमे मम कहं मणो जाइ ।
माणुस्स जम्मं णिच्चा कडं किं च ओसिट्ठं ॥१॥
अहुणा किमणुट्ठेय एसो कस्सोचिओ तहा कालो ।
णिच्चं मच्चू सहओ अणुधावइ पुट्ठलग्गो मे ॥२॥
णहि सह गच्छइ बंधू धणधन्नकलत्तपुत्तमित्ताई ।
णियकय कम्मदुमफलरसस्स संसायओ बला जीवो ॥३॥

तम्हा एगो अप्पा सच्चो णिच्चो य सव्वसुहरासी।
चिच्चा बाहिरभावे दट्ठव्वो नाणदंसणाहारो ॥४॥ इति॥

प्रातःकृत्यं समास्थाय मातापित्रभिवन्दनम्। गुरोश्च दर्शनं कुर्याद्भक्तिश्रद्धादिसंयुतः ॥२॥
धर्मोपदेशं शृणुयात्तथा श्रद्धानवान् भवेत्। देवे गुरौ च धर्मे च सर्वदाऽऽलस्यवर्जितः ॥३॥
दानशीलो भवेत्तद्वत्सतां सङ्गं न हापयेत्। सेवेत व्रतिनः किञ्च वृद्धान् दीनांस्तु रक्षयेत् ॥४॥
भृत्यान् सद्भावयेन्नित्यं, सुपात्रादिप्रदानवान्। आश्रितानात्मवत्पश्येत्समाहितमतिस्तथा।५।
द्रव्यादिभावानालोक्य प्रवर्त्तेत यथोचितम्। धर्मशास्त्रं तथा नीतिग्रन्थांश्च परिलोकयेत् ॥६॥
महतां पुरतस्तद्वद्विनयेन समाचरेत्। विपत्तौ धैर्यशाली स्यात्सम्पद्यनभिमानवान् ॥७॥
सुकार्ये परसाहाय्यं, विदध्याद्विजितेन्द्रियः। यदन्नाद्युपलभ्येत, तदद्यात्तुष्टमानसः ॥८॥
पुरादौ साधवो विज्ञ,-श्रावका यत्र संस्थिताः,
तत्रैव निवसेन्मार्गं, समालोक्य विलङ्घयेत् ॥९॥

विहायाऽऽडम्बरं वेषं, समनस्कश्चरेत्कृतिम्, सर्वैः सह सदा मैत्रीं, विदधीत विशेषतः ॥१०॥
दुःखी स्यात्परदुःखेन, सुखेन च सुखी भवेत्।
किं भक्ष्यं किमभक्ष्यं च, तद्विशिष्य विचारयेत् ॥११॥
देशस्य धर्म—जात्योश्च, पारम्पर्यक्रमागतौ। वेषाऽऽचारौ सदा रक्षेत्सत्कुर्याच्च गृहागतम् ॥१२॥
अनुव्रजेत्सत्यधर्मं दध्याज्जीवदयां तथा। पवित्रो मृदुभाषेत कार्पण्यं च परित्यजेत् ॥१३॥
निशायां नैव भोक्तव्यं प्रमादपि कदाचन। न केनापि कथां कुर्याद् गर्हितां च तथा वृथा॥१४॥
नाम्भः पिबेत्पटापूतं मृषाभाषां च वर्जयेत्। आसज्जेत न च क्वापि शयानं न प्रबोधयेत् ॥१५॥
न दूयेत परोन्नत्या निन्द्य-कार्याणि नाऽऽचरेत्। अकाले चांबुभुक्षायां न भुञ्जीत प्रमादतः॥१६।
वीयान्नायाधिकं धर्म-विरुद्धं नाऽऽचरेत्तथा। मलमूत्रे नावरुन्ध्या-त्तत्र ते न समुत्सृजेत्॥१७॥
मित्रेण सह कापट्यं न कुर्यान्नाविचारितम्। क्रोधाभिमानरुक्षत्वाकर्त्तव्यानि विवर्जयेत् ॥१८॥
सदा निरस्येदालस्यं स्वकर्त्तव्येषु यत्नवान्। बन्धुभिश्च महद्भिश्च विरुन्ध्याज्जातु न क्वचित्॥१९।

त्यजेद्योग्यमुद्वाह-मभियोगं मनागपि। प्रजाहितेच्छुनात द्वद्रिद्रोहं च महीक्षिता ॥२०॥
द्यूतं मांसं सुरां चौर्यं वेश्याऽऽखेट-परस्त्रियः। रसलोलुपतामह्नि स्वापं निन्दां परस्य च ॥२१॥
तृष्णामख्यातिना तद्वत्सम्बन्धं कुलरोगिणा। प्रियमेव वदेत्सत्य-मपृष्टो नोत्तरं स्पृशेत् ॥२२॥
मध्ये कस्यापि वार्त्ताया विच्छेदं न समायरेत्। न ब्रूयात्स्वगृहच्छिद्रं पुरतो यस्य-कस्यचित् ॥२३॥
नैव वस्तु व्यवहारे-दज्ञातमपरीक्षितम्। न कुर्यात्कस्यचित्कीर्त्ति-खण्डं विश्वासघातनम् ॥२४॥
योगक्षेमच्छेद-भेदौ ग्रामादीनां न साधयेत्।
न भुञ्जीतावण्टयित्वा वस्तु किञ्चिदपि क्वचित् ॥२५॥
अनीत्या नार्जयेद्द्रव्यं निजमूलधनापहम्।
तन्नाऽऽचरेज्जातु यत्स्यादिहाऽमुत्र च गर्हितम् ॥२६॥
परस्त्रिया सहैकाकी न गच्छेन्न च संवदेत्। न वा तया सहैकान्तवासमासादयेदपि ॥२७॥
न गृह्णीयात्तथोत्कोचं गृहादीनि प्रमार्जयेत्। न व्याप्रियेत प्रमादा-दल्पमूलधनेन च ॥२८॥

नान्यायमवलम्बेत जातुचित्सङ्कटेऽपि सन्। महापरिग्रहं किञ्च महारम्भं विवर्जयेत् ॥२९॥
अन्यायिनो न पक्षी स्या न्नाहेत्वन्यस्य वेश्मगः। न व्रजेद्दुर्गमं मार्ग-मेकाकी मुग्धमानसः ॥३०॥
न नदीं नापि कासार-प्रभृतिं बाहुतस्तरेत्। बालकप्रवयोग्लानगर्भिणीचेटकाश्रितान् ॥३१॥
असन्तोष्य न भुञ्जीत न च कञ्चित्कलङ्कयेत्। न द्रुह्येद् गुरुदेवाय धर्माय च कथञ्चन ॥३२॥
विटीतमालभङ्गादि व्यसनानि विवर्जयेत्। इत्येवमुक्तः सामान्योऽगारधर्मो जिनेश्वरैः ॥३३॥

भावार्थः—सर्वार्थसिद्ध मुहूर्त्त में ऊठकर नमस्कार मन्त्रोच्चारण पूर्वक धर्मजागरणा करे वह इस प्रकार है—

अहा ! ये इन्द्रियों के विषय सर्वथा निस्सार हैं, विषके समान हैं। मेरा मन इनकी ओर क्यों आकर्षित होता है ? यह मनुष्य जन्म पाकर मैंने इसे अकारण खो दिया। जितना यह शेष रहा है इसमें क्या करना चाहिए ? ॥१॥ यह समय किस कर्तव्य में लगाना चाहिए ? मृत्यु अनिवार्य है और वह सदैव परछाई की नाई मेरे पीछे पीछे

लगी रहती है ॥२॥ बन्धु-बान्धव, धन-धान्य, कलत्र-पुत्र और मित्र, कोई भी साथ जानेवाला नहीं है। जिसने जैसा कर्मरूपी वृक्ष लगाया है, उसे वैसे ही वृक्षके फलका रस (अनुभाग) भोगना पडता है ॥३॥ इसलिए समस्त बाह्य वस्तुओं का परित्याग कर सत्य, नित्य, सर्व सुखों के समूह, अनन्त ज्ञानदर्शनके धारक केवल आत्माको साक्षात् करो ॥४॥

इस प्रकारकी धर्मजागरणा करे, माता-पिताके चरणों में मस्तक नमाए, गुरुओं-मुनियों का दर्शन करे, धर्मका उपदेश सुने, देव गुरु और धर्म पर परम प्रतीति रखे, शक्तिके अनुसार सदा दानशील रहे, सत्संगति करे, व्रतधारियों और वृद्धजनों की सेवा-शुश्रूषा करे, दीनहीन प्राणियों की रक्षा करे, नौकर-चाकरों से प्रेममय व्यवहार करें, अभयदान सुपात्रदान और करुणादान दे, आश्रित जनों का निजकी नाई पालन-पोषण करें, द्रव्यक्षेत्र काल भावको देखकर प्रवृत्ति करे, धर्म-शास्त्रों का स्वाध्याय करे, नीति-शास्त्रों का अवलोकन करे, गुरुजनों के सन्मुख विनयपूर्वक वर्त्ताव करे, विपत्ति आने पर

धैर्य धरे, संपत्ति होने पर अभिमान न करे, शुभ कार्यों में दूसरों को सहायता दे, इन्द्रियों को वशमें रखे, जैसा भोजन–पान प्राप्त हो जाय उसीको प्रसन्नचित्त होकर खावे, जिस नगर आदिमें साधु या विशेषज्ञ–विद्वान् श्रावक निवास करते हों उसी नगर आदिमें निवास करे, रास्ता देखकर चले, आडम्बर का वेष (शोकीनोंका ठाठ–बाट) न रखे, कर्तव्यका पालन मनसे करे, सबके साथ मित्रता रखे, दूसरे के दुःखमें दुःखी और सुखमें सुखी हो, भक्ष्य–अभक्ष्यका विचार रखे, अपने देशका धर्मका और जातिका प्राचीन वेष धारण करे, जो घर पर आवे उसका सत्कार करे, सत्य धर्मका पालन करे, प्राणी मात्र पर अनुकम्पा रखे, पवित्रता–पूर्वक प्रवृत्ति करे, सदा कोमलवाणी बोले, मक्खीचूस (कंजूस) न हो, रात्रिभोजन न करे, वृथा बकवाद न करे, विना छना पानी न पिए, मिथ्या भाषण न करे, किसी वस्तुमें अत्यन्त आसक्त न हो, विशेष कारण विना सोतेको न जगावे, परका अभ्युदय देख दुःखी न हो, निन्दनीय कार्योंसे दूर रहे,

असमयमें और विना भूखके भोजन न करे, आयसे अधिक व्यय न करे, धर्म-विरुद्ध आचरण न करे, मल-मूत्रको न रोके, मलमूत्र पर मल-मूत्र त्याग नहीं करे, मित्रके साथ कपट न करे, विशेष विचार किये विना कोई भी कार्य न करे, क्रोध, मान, रुखाई और अकर्त्तव्यसे दूर रहे, करने योग्य कार्य में प्रमाद न करे, बन्धुवर्ग तथा महान् जनों से विरोध न बांधे, अयोग्य विवाह, अपराध, राजद्रोह, जुआ, मांसभक्षण, मदिरापान, चोरी, वेश्यागमन, पापर्द्धि (शिकार खेलना), परस्त्रीसेवनरूप सात व्यसन, चटोरापन, दिनमें नींद लेना, पराई निन्दा, परधनकी तृष्णा, अपरिचित्त और कौलिक (कुलपरम्परासे आये हुए छूतके) रोगीके साथ विवाहादि सम्बन्धका परित्याग करे। प्रिय सत्य ही बोले, विना पूछे उत्तर न दे, कोई बात-चीत करता हो तो बीचमें न बोले, घरकी बुराई किसीसे न कहे, विना जाने और परीक्षा किये किसी वस्तुका व्यवहार न करे, किसीकी प्रतिपत्तिमें हस्तक्षेप न करे, विश्वासघात न करे, ग्राम नगर आदिके योग-क्षेम (अल-

ब्ध वस्तुके लाभ करने और लब्धकी रक्षा करने) में विघ्न न डाले। विना बांटे (पासमें बैठे हुओंको विना दिये) कभी किसी वस्तुको न खावे, अन्यायसे धनोपार्जन न करे, इसलोक–परलोक से प्रतीकूल कार्य न करे, परस्त्री के साथ अकेला न जावे, न बोले और न एकान्त में निवास करे, घूंस (रिश्वत) न ले, सुबह–साम घरकी सफाई करे, थोडी पूंजी से बडा व्यापार न करे, प्राणों पर संकट आने पर भी अनीति का आश्रय न ले, महा आरम्भ महापरिग्रहवाला काम न करे, अन्यायी का पक्ष न ले, विना प्रयोजन किसीके घरमें प्रवेश न करे, विकट मार्ग में अकेला न जावे, भुजाओं से नदी तालाब आदि में न तैरे, बालक वृद्ध रोगी गर्भवती भृत्य और आश्रित को सन्तुष्ट किये विना भोजन न करे, किसीको कलङ्कित न करे, कलंक लगानेवाला कोई कार्य न करे, गुरु और धर्म के साथ द्रोह करने की इच्छा तक न करे, बीडी, तमाकु और भांग आदि व्यसनों का सर्वथा त्याग करे इत्यादि।

भूयो भूयो भाविनो भूमिपालान्, नत्वा नत्वा याचते रामभद्रः।
सामान्योऽयं धर्मसेतु निंबद्धः, काले काले रक्षणीयो भवद्भिः॥

सामान्य रूप अगार धर्म का भगवान् ने इस प्रकार वर्णन किया है। अब विशेष रूप से आगार-धर्म का वर्णन करते हैं-

मूलम्-से जे गामागर जाव सण्णिवेसेसु मणुया भवंति, तं जहा- अप्पारंभा अप्पपरिग्गहा धम्मिया धम्माणुया धम्मिट्ठा धम्मक्खाई धम्मप्पलोई धम्मपलज्जणा धम्मसमुदायारा धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा सुसीला सुव्वया सुप्पडियाणंदा साहूहिं एगच्चाओ पाणाइवायाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया, एवं जावपडिग्गहाओ, एगच्चाओ कोहाओ माणाओ माणाओ कोहाओ पेज्जाओ दोसाओ कलहाओ अब्भक्खाणाओ पेसुण्णाओ

परपरिवायाओ अरइरईओ मायामोसाओ मिच्छादंसणसल्लाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया, एगच्चाओ आरंभसमारंभाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया, एगच्चाओ करणकारावणाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया एगच्चाओ पयणपयावणाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ पयणपयावणाओ अपडिविरया, एगच्चाओ कोट्टणपिट्टणतज्जणतालणवहबंधपरिकिलेसाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया, एगच्चाओ ण्हाणमद्दणवण्णगविलेवणसद्दफरिसरसरूवगंधमल्लालंकाराओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया, जे यावण्णे तहप्पगारा सावज्जजोगोवहिया कम्मंता परपाणपरियावणकरा कज्जंति तओ वि एगच्चाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया ॥६२॥

शब्दार्थ—[से जे इमे] जो ये [गामागर जाव सण्णिवेसेसु मणुया भवंति] ग्राम आकर यावत् सन्निवेशों में मनुष्य रहते हैं [तं जहा] जैसे [अप्पारंभा अप्पपरिग्गहा धम्मिया धम्माणुया] अल्प आरंभी-जो पृथिव्यादिक जीवों के उपमर्दनवाले कृष्यादिक आरंभ को अल्प करते हैं वे, अल्प परिग्रही-अर्थात् जिनके धन धान्यादिक के स्वीकार रूप ममत्व भाव अल्प होता है वे, धार्मिक–प्राणातिपातादिक विरमणरूप धर्म से जो युक्त होते हैं वे, तथा धर्मानुग-धर्मपद्धति के अनुसार जो चलते हैं वे, [धम्मिट्ठा धम्मक्खाई, धम्मप्पलोई धम्मपलज्जणा धम्मसमुदायारा] धर्मेष्ट–धर्म ही जिन्हे प्रिय हैं वे, अथवा धर्मिष्ठ–धर्म के अतिशय से जो युक्त हैं वे, धर्मख्याति–धर्म से जिनकी ख्याति हुई है वे अथवा–धर्मख्यायी–भव्यजनों के लिए जो श्रुतचारित्ररूप धर्म का कथन करनेवाले होते हैं वे, धर्मप्रलोकी–धर्म को जो उपादेय रूप से मानते हैं वे, धर्मप्ररंजन धर्म के सेवन करने में जो अधिक अनुराग संपन्न होते हैं वे, धर्म समुदाचार–धर्म ही

जिनका उत्तम आचार हैं वे, [धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा] तथा जो धर्म से ही अपनी जीविका चलाते हैं वे, [सुसीला सुव्वया सुप्पडियाणंदा] शोभन आचार जिनका है वे सुव्रत–निरतिचार व्रतों के जो पालन करनेवाले हैं वे सुप्रत्यानन्द–जिनका चित्त सदा अच्छे प्रकार से आनंद संपन्न रहा करता है वे, तथा जो [साहुहिं एगच्चाओ] साधु के समीप प्रत्याख्यान लेकर केवल एक [पाणाइवायाओ] स्थूल प्राणातिपातरूप से [जावज्जीवाए पडिविरया] जीवन पर्यन्त–प्रतिविरत–निवृत्त रहते हैं, [एगच्चाओ अपडिविरया] परंतु सूक्ष्मरूप प्राणातिपात से विरक्त नहीं रहते हैं वे [एवं जाव पडिग्गहाओ] तथा इसी प्रकार स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान, स्थूल मैथुन, एवं स्थूल परिग्रह से विरक्त रहते हैं वे [एगच्चाओ कोहाओ माणाओ मायाओ कोहाओ पेज्जाओ दोसाओ कलहाओ अब्भक्खाणीओ पेसुण्णाओ परपरिवायाओ अरइरईओ मायामोसाओ मिच्छादंसणसल्लाओ पडिविरया जावज्जीवाए] इसी प्रकार स्थूल क्रोध, मान, माया,

लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यात, पैशून्य, परपरिवाद, अरति, रति, मायामृषा, एवं मिथ्यादर्शन शल्य से जीवन पर्यन्त प्रतिविरत रहा करते हैं, [एगच्चाओ अपडिविरया] किन्तु सूक्ष्म क्रोधादिकों से प्रतिविरत नहीं रहते हैं, [एगच्चाओ आरंभ समारंभाओ पडिविरया जावज्जीवाए] ऐसे ही वे स्थूल आरंभ समारंभ से ही जीवन पर्यन्त विरक्त रहते हैं [एगच्चाओ अप्पडिविरया] सूक्ष्म आरंभ समारंभ से नहीं। [एगच्चाओ करणकारावणाओ पडिविरया जावज्जीवाए] कोइ ऐसे हैं जो केवल स्वयं करने से एवं दूसरों से कराने से जीवन पर्यन्त विरत रहते हैं, [एगच्चाओ अपडिविरया] कोइ ऐसे हैं जो राजा की आज्ञा आदि के कारण इनसे प्रतिविरत नहीं है [एगच्चाओ पयण—पयावणाओ पडिविरया जावज्जीवाए] कोइ २ ऐसे हैं जो पचन पाचनक्रिया से जीवन पर्यन्त विरत हैं। [एगच्चाओ पयणपयावणाओ अपडिविरया] कोई २ ऐसे है जो इन पचन-पाचनादि क्रियाओं से विरत नहीं है। [एगच्चाओ कोट्टणपिट्टणतज्जणतालण—वह—बंध—परिकिलेसाओ पडिविरया जावज्जीवाए] कोई २

ऐसे है जो कुट्टनछेदनपिट्टन-पीटना वस्त्रादिक का जिस प्रकार मुद्गरादिक से कूटना होता है उसी प्रकार मुद्गर मूसल आदि से पीटना-कूटना, तर्जन-खोटे वचनो द्वारा भर्त्सना करना, ताडन चपेटा थप्पड आदि मारना, वध—प्राणव्यपरोपण करना, बन्ध रज्जु पाश आदि से किसी को बांधना, एवं परिक्लेश, किसी को बाधा आदि उत्पन्न करना इन सब कार्यों यावज्जीवन प्रतिविरत है, [एगच्चाओ अपडिविरया] कोई २ ऐसे है जो इन क्रियाओं से प्रतिविरत नहीं है [एगच्चाओण्हाणमद्दणवण्णगविलेवणसद्द-फरिस-रसरूवगंधमल्लालंकाराओ पडिविरया जावज्जीवाए] कोइ २ ऐसे हैं जो जीवन पर्यन्त स्नान से, मर्दन से, विलेपन से, शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श, इन इन्द्रियों के योगो से माला एवं अलंकार आदि से निवृत्त है [एगच्चाओ अपडिविरया] कोई २ ऐसे भी हैं जो इनसे बिलकुल ही प्रतिविरत नहीं है। [जे यावण्णे तहप्पगारा सावज्जजोगो-वहिया कम्मंता परपाणपरियावणकरा कज्जंति] इसी प्रकार के और भी जितने सावद्य

योगोपधिक अर्थात् सावद्य योग युक्त और माया कषाय जन्य तथा दूसरों के प्राणों को परिताप पहुंचाने वाले कृष्यादि व्यापार हैं [तओवि] उनसे भी कितनेक ऐसे मनुष्य हैं जो [एगच्चाओ पडिविरया जावज्जीवाए] एकान्तः जीवनपर्यन्त प्रतिविरत हैं तथा कितनेक ऐसे है जो [एगच्चाओ अपडिविरया] इनसे प्रतिविरत नहीं हैं ॥६२॥

औ. सूत्र ६२ पेज ६४७ से

मूलम्—तं जहा समणोवासगा भवंति, अभिगयजीवाजीवा उवलद्ध पुण्णपावा आसवसंवरनिज्जरकिरियाअहिगरणबंधमोक्खकुसला असहेज्जा देवासुरनागजक्खरक्खसकिन्नरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगाइएहिं देवगणेहिं निग्गंथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जा, निग्गंथे पावयणे णिस्संकिया णिक्कंखिया निव्वितिगिच्छा लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा अभिगयट्ठा अट्ठिमिंजपेमा-

णुरागरत्ता, अयमाउसो! निग्गंथे पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे, ऊसिय फलिहा अवंगुयदुवारा चियत्तंतेउरघरप्पवेसा बहूहिं सीलव्वयगुण-वेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासेहिं चउद्दसट्ठमुदिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेत्ता समणे निग्गंथे फासुयएसणिज्जेणं असणपाणखाइम-साइमेणं वत्थपडिग्गहकंबलपायपुंछणेणं ओसहभेसज्जेणं पडिहारिएण य पीढ-फलगसेज्जासंथारएणं पडिलाभेमाणा विहरंति, विहरित्ता भत्तं पच्चक्खंति, ते बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेदेंति छेदित्ता आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे, कालं किच्चा उक्कोसेणं अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववत्तारो भवंति, ताहिं तेसिं गई, बावीसं सागरोवमाइं ठिई आराहगा सेसं तहेव ॥६३॥

शब्दार्थ—[तं जहा] इसी प्रकार [समणोवासगा भवंति] अन्य श्रमणोपासक

होते है जोकि [अभिगयजीवाजीवा] जीव और अजीव के यथार्थ स्वरूप के ज्ञाता होते हैं [उवलद्धपुण्णपावा] पुण्य एवं पाप का यथावस्थित स्वरूप जिन्होंने अच्छी तरह जान लिया है [आसवसंवरनिज्जरकिरियाअहिगरणबंधमोक्खकुसला] आस्त्रवसंवरनिर्जरा, क्रिया अधिकरण, बंध, मोक्ष इनमें हेय कौन २ हैं और उपादेय कौन २ हैं इस प्रकार हेय और उपादेय के ज्ञान से जिनका भाव परिपक्व हो चुका है जिस प्रकार नौकामें छिद्रों द्वारा जल का प्रवेश होता रहता है उसी प्रकार इस आत्मा रूप सरोवर मे जिसके द्वारा अष्टविध कर्म रूप जल का आगमन होता है उसका नाम आस्त्रव है। मिथ्या दर्शन, अविरति, प्रमाद कषाय, एवं, योग के भेद से यह आस्त्रव अनेक प्रकार का है। छिद्रों के बंद करने से जिस प्रकार नौका मे पानी का आना रुक जाता है, उसी प्रकार जिन परिणामों से आते हुए कर्म रुकजाते हैं उन परिणामों का नाम संवर है। गुप्ति, समिति, एवं परिषह आदि के भेद से यह संवर अनेक प्रकार का

कहा गया है। जीवप्रदेश से कर्मों के एकदेश का नाशहोना इसका नाम निर्जरा है। काय आदि संबंधो का नाम क्रिया है। नरकगति मे जाने की योग्यता जीव जिसके द्वारा प्राप्त करता है। वह अधिकरण है द्रव्य और भाव के भेद से यह दो प्रकार का है। यहां पर भाव अधिकरण का कथन है, अतः वह क्रोधादिक कषाय रूप जानना चाहिए। जीव का एवं कर्मपुग्दलों का परस्पर में एकक्षेत्रावगाह रूप संबंध का नाम बंध है। समस्त कर्मा की अत्यन्त–आत्यन्तिक क्षय का नाम मोक्ष है। समस्त कर्मा के क्षय होने पर उनके संयोग से आपादित मूर्तित्व का शीघ्र ही पर्यवसान जीव में हो जाता है इससे अमूर्तित्व स्वरूप स्वभाव का प्राचुर्य होने से उसका अव्याबाध रूप से अवस्थान हो जाता है। कहा भी है–समस्त कर्मों का विगम ही मोक्ष है और वही जीव का शुद्ध स्वरूप है। इस स्वरूप के प्राप्त होते ही जीव का अवस्थान अव्याबाधरूप से आत्मा में हो जाता है। जो 'असाहाय्या' है

अर्थात् धर्म जनित सामर्थ्य के अतिशयसे देवादिकों के सहायता की स्वप्न में भी इच्छा नहीं रखते हैं, अथवा अपने द्वारा कृत शुभाशुभ कर्म आत्मा स्वयं ही भोग करता है दूसरों की सहायता इसमें कार्यकारी नहीं हो सकती–इस प्रकार की मानसिक दृढता के कारण जो दूसरों की सहायता की थोडी सी भी परवाह नहीं करते हैं। [देवासुरनागजक्खरक्खसकिंनरकिंपुरिसगंधव्वमहोरगाइएहिं देवगणेहिं निग्गंथाओ पावणयाओ, अणइक्कमणिज्जा] देव, असुरकुमार, नागकुमार, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड, सुपर्णकुमार, गन्धर्व, एवं महोरग इत्यादिक देवगणों द्वारा भी जो निर्गन्थ प्रवचन से एक वाड भी विचलित नहीं किए जा सकते हैं [निग्गंथे पावयणे णिस्संकिया णिक्कंखिया णिव्वितिगिच्छा लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा अभिगयट्ठा] निर्ग्रंथ प्रवचन मे जिनकी श्रद्धा निःशंकित हो, निकांक्षित हो परमत की ओर जिनके हृदयमें जाने की अथवा उसे सराहने आदि की थोडी सी भी अभिलाषा

नहीं है। निर्विचिकित्सागुण से जो भरपूर है। फल की प्रति जिनकी श्रद्धा संदेह से सर्वथा रिक्त है जो लब्धार्थ है। गृहीतार्थ है, पृष्ठार्थ है, अभिगतार्थ है [विणिच्छियट्ठा] विनिश्चितार्थ हैं [अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ता] प्रवचन के प्रति अनुराग जिनकी नस २ में भरा हुवा है ऐसे ये श्रावकजन वार्तालाप के प्रसंगमे अपने २ पुत्रादि कों को अथवा अन्य जनों को इस प्रकार कह कर समझाते हैं बुझाते है [अयमाउसो ! निग्गंथे पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे सेसमणट्ठे] हे आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही मोक्ष का कारण है, इसलिए यही परमार्थ भूत है इससे भिन्न जो कुप्रवचन है—मिथ्यादृष्टियों द्वारा उपदिष्ट प्रवचन है वह तथा धन धान्य पुत्र एवं कलत्रादि, अनर्थ के कारण है। इन व्यक्तियों का [ऊसिय फलिहा] हृदय स्फटिक मणि की समान निर्मल रहा करता है। [अवंगुयदुवारा] इनके घर के दरवाजे सदा दान के लिए खुले रहा करते है [चियतंतेउरघरप्पवेसा] राजा के अंतःपुर में भी इनको आने

जाने की कोइ रोक टोक भी नहीं होती है [बहूहिं सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोव-वासेहिं चउद्दस अट्ठमुदिट्ठ पुण्णमासिणीसु] 'शील' शब्द से सामायिक, देशावगासिक पोषध, अतिथीसंविभाग' ये चार लिए जाते ह। 'वृत' से पांच अणुवृत 'गुण' से तीन 'गुणवृत लिए जाते ह। विरमण–मिथ्यात्व से निवृत होना, प्रत्याख्यान-पर्वदिनो में निषिद्धवस्तुका त्यागकरना। पोषधोपवास (पोषं धत्ते) इस व्युत्पत्ति से धर्म की वृद्धि को जो करता है वह पोषध कहलाता है। अर्थात् चतुर्दशी, अमावस्या अष्टमी, पूर्णिमा ये पोषध कहलाते ह इन पर्व दिनों में आहार, शरीर सत्कार, अब्रह्मचर्य और सावद्य व्यापार इन चारों का त्याग करना पोषधोपवास हैं। इस प्रकार के श्रावक धर्म को [सम्मं अणुपालेत्ता] अच्छी तरह पालन करते हैं। [समणे निग्गंथे] श्रमणनिर्ग्रन्थों को [फासुएसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं] प्रासुक एषणीय, अशन, पान, खाद्य, तथा स्वाद्य ऐसे चारों प्रकार में आहारों को [वत्थपरिग्गहकंबलपायपुंछणेणं ओसह भेस-

ज्जेणं] एवं वस्त्र पात्र कम्बल, रजोहरण औषध [पडिहारिएण य पीढफलगसेज्जा संथारएणं पडिलाभेमाणा विहरंति] एवं प्रतिहारिक (पडिहारा) पीठ (बाजोठ) फलक (पाट) शय्या (वसति) और संस्तारक आदि से, मुनिराजों को प्रतिलाभित करते हुए विचरते हैं अर्थात् उन्हे इन पूर्वोक्त वस्तुओं को आवश्यकतानुसार प्रदान करते हैं। [विहरिता भत्तं पच्चक्खंति] पश्चात् अन्तिम समय में भक्त प्रत्याख्यान करते हैं। [ते बहुइं भत्ताइं अणसगाए छेदेंति] वे अनेक भक्त का अनशन द्वारा छेदन करते हैं [छेदित्ता, आलोइयपडिक्कंता, समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा] छेदन कर अपने पापस्थानों की अलोचना एवं प्रतिक्रमण करके वे समाधि सहित कालअवसर मे कालकर [उक्कोसेणं अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववत्तारो भवंति] जघन्य से पहले देवलोक उत्कृष्ट से बारहवें देवलोक अच्युतकल्प में देवपर्याय से उत्पन्न होते हैं। [तहिं तेसिं गई, बावीसं सागरोवमाइं ठिई, आरहगा, सेसं तहेव] प्रथम देवलोक में से इन की उत्कृष्ट

दोसागरोपम और बारहवें देवलोक में उत्कृष्ट २२ सागरोपम की स्थिति कही गई है। अवशिष्ट सामान्य धर्म से लेकर सब कथन यहां पर्यन्तका समझना चाहिए ॥६३॥

मूलम्—ते णं भंते! मणुया णिस्सीला णिव्वया णिम्मेरा णिग्गुणा निप्पचक्खाणपोसहोववासा उसण्णं मंसाहारा मच्छाहारा खुड्डाहारा कुणिमाहारा कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिंति कहिं उववज्जिहिंति? गोयमा! उसण्णं णरगतिरिक्खजोणिएसु उववज्जिहिंति॥ (जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति)

अर्थ—अहो भगवन् वे मनुष्य शीलाचार रहित, सामायिक आदि व्रतरहित गुणरहित कुलजाति धर्म की मर्यादा रहित, रात्रिभोजन नौकारसी आदि प्रत्याख्यान रहित पोषधोपवास रहित प्रायः मांस का आहार करनेवाले, जलचर मत्स्यादि का आहार करनेवाले क्षुद्र द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय तथा इंडा विगेरे का आहार करनेवाले

कुणिम का–मरे हुए मनुष्य, हाथी, घोडा, गाय भेंस विगेरहका आहार करनेवाले होते हैं, वे काल के अवसर में काल कर कहां जाते है कहां उत्पन्न होते है? अहो गौतम वे प्रायः नरक तिर्यंच में उत्पन्न होते हैं।

[सूरं वा मेरगं वावि, अन्नं वा मज्जगं रसं] इत्यादि वचन से मद्यपान का भी शास्त्रकारने निषेध किया है जैसे–सुरं–सुरापान 'मेरगं–सरके का पान 'मज्जगं' मद जनक पान–गांजा अफीन आदि का पान करने योग्य नहीं है ये शास्त्र से निषिद्ध मद्य-पान करनेवाले नरक तिर्यंच गतिको प्राप्त होते हैं। (दशवैकालिक सूत्र अ. ५)

श्रावक के इक्कीस गुण हैं

१ नौ तत्त्व और पच्चीस क्रिया का ज्ञान करना, २ देवताकी भी सहायता न चाहना, ३ मनुष्य तिर्यञ्च और देवता के उपसर्ग आने पर भी धर्म में दृढ रहना ४ जैन धर्म में शंका कांक्षा विचिकित्सा न करना ५ जिनवाणी में उपयोग सहीत श्रद्धा करना

६ जिनधर्म में हाड़ हाड़ की मिंजी रंगना ७ अविश्वासी के घर नहीं जाना ८ दान देने के लिए सदा दरवाजा खुला रखना ९ अन्तःपुर में प्रवेश करने पर भी किसी को अप्रतीति न होना १० महीने में छह पौषध करना ११ यथाशक्ति तपस्या करना १२ अशन-पान आदि चौदह प्रकारका शुद्ध दान देना १३ उभयकाल छह आवश्यक करना १४ बारहव्रत धारण करना १५ तीन मनोरथों का चिन्तन करना ४ विसामा, (विश्रान्ति करना) १६ पन्द्रह कर्मादान टालना १७ ग्यारह पडिमा धारण करना १८, सर्व जीवों पर अनुकम्पा करना १९ सब जीवों पर समताभाव रखना २० व्रत पच्चक्खाण निर्मल पालना २१ आलोचना आदि करके आराधक होना.

प्रकारान्तर से भी २१ गुण हैं। १ क्षुद्रता नहीं २ रूपनिधि (सौन्दर्य) ३ सौम्य ४ जन प्रियता ५ अक्रूरता ६ पापभीरूता ७ अशठता ८ सुदाक्षिण्य ९ लज्जालुता १० दयालुता ११ सौम्यदृष्टिपन (शान्तनजर) १२ अमत्सरता (इर्ष्या न करना) १३ गुणा-

नुरागिता १४ सत्यवादिपन १५ सुपक्षता (न्यायपक्षक ग्रहण) १६ दीर्घदर्शिता (आगे-पीछे का गहरा विचार करना) १७ विशेषज्ञता (प्रत्येक तत्व को बारिक रीति से जानना) १८ वृद्धानुगतता (शिष्टों की परम्परा का पालन करना) १९ विनीतता (विनयवान् होना) २० कृतज्ञता (दूसरों से किये हुए उपकार को न भूलना) २१ परहितकारिता (परोपकार करना)

छ आवश्यक फल

मूलम्—सामाइएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सामाइएणं सावज्जजोग-विरइ जणयइ ॥८॥

अर्थ—हे भगवन् ! सामायिकथी जीवने शुं फल थाय छे? सामायिकथी सावद्य पापना योगनी निवृति थाय छे॥८॥

मूलम्—चउविसत्थएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? चउविसत्थएणं दंसण-विसोहिं जणयइ ॥९॥

अर्थ—हे भगवन् ! चौवीश तीर्थंकरनी स्तुतिथी जीवने शुं फलनी प्राप्ति थाय छे ? चौवीश तीर्थंकरनी स्तुतिथी दर्शन विशुद्धि थाय छे.

मूलम्—वंदणएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? वंदणएणं नीयागोयं कम्मं खवेइ उच्चागोयं कम्मं निबंधइ सोहग्गं च णं अप्पडिहयं आणाफलं निवत्तेइ-दाहिणभावं च णं जणयइ ॥१०॥

अर्थ—हे भगवन् ! वंदन करवाथी जीवने शो लाभ थाय छे ? वंदनाथी नीच गोत्र कर्मनो क्षय करीने उच्च गोत्र कर्म बांधे छे अविच्छिन्न सौभाग्य तथा आज्ञाफल प्राप्त करे छे अने विश्ववल्लभ थाय छे ॥१०॥

मूलम्-पडिक्कमणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? पडिक्कमणेणं वयछिंदाइ पिहेइ पिहियवयछिद्दे पुण जीवे निरुद्धासवे असबलचरित्ते अट्ठसु पवयणमायासु उवउत्ते अपुहुत्तं सुप्पणिहिए विहरइ॥११॥

अर्थ-हे भगवन्! प्रतिक्रमण करवाथी जीवने शुं फल प्राप्त थाय छे? प्रतिक्रमणथी व्रतोंमां पडेला छिद्रो ढंकाय छे पछी शुद्ध व्रतधारी थइने आश्रवोने रोके छे आठ प्रवचन मातामां सावधान थाय छे शुद्ध चारित्र पालतो समाधिपूर्वक संयममां विचरे छे।११।

मूलम्-काउस्सग्गेणं भंते! जीवे किं जणयइ? काउस्सगेणं तीयपडुप्पण्णं पायच्छित्तं विसोहइ विसुद्धपायच्छित्ते य जीवे निव्वुयहियये ओहरियभरूव्व भारवाहे पसत्थज्झाणोवगए सुहसुहेणं विहरइ ॥१२॥

अर्थ-हे भगवन् काउस्सगथी जीवने शुं फल प्राप्त थाय छे? काउस्सगथी भूत

अने वर्तमान कालना अतिचारोंनी शुद्धि थाय छे आ शुद्धिथी जीव बोझा रहित हलको निश्चित अने प्रशस्त ध्यानयुक्त थईने सुखपूर्वक विचरे छे ॥१२॥

मूलम्—पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयई ? पच्चक्खाणेणं आसव-निरूंभई पच्चक्खाणेणं इच्छानिरोहं जणयई । इच्छाणिरोहं गए य णं जीवे सव्व दव्वेसु विणीयतण्हे सीइभूए विहरइ ॥१३॥

अर्थ—हे भगवन् ! पच्चक्खाणथी जीवने शो लाभ थाय छे ? पच्चक्खाणथी जीव आस्रवद्वारोने रूंधे छे अने ईच्छा निरोध करे छे इच्छानिरोधथी जीव बधा द्रव्योथी तृष्णा रहित थइने शांतिथी विचरे छे ॥१३॥

मूलम्—थयथुइमंगलेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? थयथुइमंगलेणं नाण-दंसणचरित्तं बोहिलाभं जणयइ नाणदंसणचरित्तं बोहिलाभं संपन्ने य णं जीवे

अंतकिरियं कप्पविमाणोववत्तियं आरोहेणं आरोहेई ॥१४॥

अर्थ-हे भगवन्! स्तवन अने स्तुति मंगल करवाथी एटले के 'नमोत्थुणं' नो पाठ करवाथी जीवने शो लाभ थाय छे? स्तवनने स्तुति मंगलथी ज्ञानदर्शनचारित्ररूप बोधि लाभे छे, आ बोधिलब्ध जीव कां तो मोक्ष पामे छे अथवा कल्पविमानमां उत्पन्न थई आराधक थाय छे ॥१४॥

मूलम्-अप्पिया देवकामाणं कामरूवविउव्विणो ।

उड्ढं कप्पेसु चिट्ठंति, पुव्वा वाससया बहु ॥१५॥

अर्थ-देवसंबंधी सुखों के लिये ही मानो समर्पित किये हैं अर्थात् पूर्वभव में आचरित पुण्यों के द्वारा ही मानो उस स्थान पर लाकर रख दिये हैं इसलिये वहां अपनी इच्छानुसार रूपों को बनाते हुए वे देव ऊपर ऊपर के सौधर्म आदि कल्पों में कंई पूर्वों तक तथा असंख्यात सैंकडों वर्ष पर्यन्त निवास करते हैं अर्थात् वहां के सुखोंका उपभोग करते हैं ।१५।

मूलम्—तत्थ ठिच्चा जहा ठाणं जक्खा आउक्खए चुया।
उवेंति माणुसं जोणिं, से दसंगे भिजायए ॥१६॥

अर्थ—उन देवलोकों में यथास्थान स्थित होकर अपनी २ योग्यताके अनुसार स्थितिको प्राप्त कर वे देव वहां की आयु समाप्त होनेपर वहां से च्यव कर मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं। वहां पर वह प्रत्येक जीव अपने पुण्य कर्म के अवशेष रह जाने से दश प्रकार के भोगोपभोगों की सामग्रीवाला होता है ॥१६॥

मूलम्—खित्तं वत्थु हिरण्णं च, पसवो दासपोरुसं।
चत्तारि कामकंधाणि, तत्थ से उववज्जइ ॥१७॥

अर्थ—ग्रामउद्यान आदि क्षेत्र वास्तु भूमिगृह आदि उच्छ्रीत प्रासाद आदि सुवर्ण गाय, भेंस हाथी घोडा आदि चेटक चेटी, दास आदि पौरुषेय ये चार तथा कामभोगके हेतुरूप स्कंध पुद्गल समूह जहां होते हैं ऐसे कुलों में वह जीव उत्पन्न होता है १ ।१७।

मूलम्-मित्तवं नाइवं होइ, उच्चागोए य वण्णवं ।
अप्पायंके महापण्णे अभिजाए जसो बले॥१८॥

अर्थ-वह जीव सन्मित्रों से युक्त होता है २ प्रशस्त जाति से संपन्न होता है ३ उत्कृष्ट कुलवाला होता है ४ शरीर में अच्छे वर्णवाला होता है रूप लावण्य आदि से संपन्न होता है५, रोगादिक रहित होता है६, विशिष्ट बुद्धिशाली होता है७, विनीत होता है ८, ख्याति से युक्त होता है ९, प्रत्येक कार्य को करने की शक्तिवाला होता है ॥१८॥

मूलम्-भुच्चा माणुस्सए भोए. अप्पडिरूवे अहाउयम् ।
पुव्वं विसुद्धसद्धमे, केवलं बोहि बुज्झिया ॥१९॥

अर्थ-वह जीव निरुपम-उपमारहित वह है उतनी ही पुरी आयु तक मनुष्य-भव संबंधी भोगों को भोगकर पूर्व जन्म में निदान आदि से रहित होने के कारण सद्धर्मशाली होता हुआ केवल निर्मल सम्यक्त्वको पाते हैं और उसे प्राप्त करके-

मूलम्-चउरंगं दुल्लहं नच्चा, संजमं पडिवज्जिया।
तवसा धुयकम्मंसे, सिद्धे हवइ सासए ॥त्तिबेमि॥२०॥

अर्थ-दुर्लभ इस चतुरंगी को मनुष्यत्व, श्रुति श्रद्धा और संयम में वीर्योल्लास को प्राप्त करके तथा संयम को अंगीकार करके एवं तपसे अवशिष्ट कर्मांशको नष्ट करके शाश्वत सिद्ध हो जाता है ॥२०॥ उत्तराध्ययनसूत्र

मूलम्-तहारूवं भंते! समणं वा माहणं वा पज्जुवासमाणस्स किं फला पज्जुवासणा गोयमा! सवणफला, से णं भंते! सवणे किं फले? णाणफले, से णं भंते! नाणे किं फले? विण्णाणफले? से णं भंते! विण्णाणं किं फले? पच्चक्खाणफले से णं भंते! पच्चक्खाणे किं फले? संजमफले, से णं भंते!

संजमे किं फले? अणासवे फले, अणासवे किं फले? तवेफले, तवे किं फले? तवे वोदाणफले, वोदाणे किं फले? अकिरिया फले, से णं भंते अकिरिया किं फला? सिद्धि पज्जवसाणफला पण्णत्ता गोयमा! १७८

अर्थ—हे भगवन् तथारूप (जिन प्ररूपित नियमों के अनुसार महाव्रतों के पालक) श्रमण माहण की सेवा करनेवाले के लिए सेवा का क्या फल होता है? हे गौतम! शास्त्रश्रवण का फल होता है। हे पुण्य! शास्त्रश्रवण का क्या फल होता है? उसमें ज्ञान प्राप्ति का फल होता है। ज्ञानप्राप्ति का क्या फल होता है? ज्ञान से हेय उपादेय जानने रूप विज्ञान फल की प्राप्ति होती है। विज्ञान प्राप्ति का क्या फल होता है? उसमें प्रत्याख्यान फल की प्राप्ति होती है। प्रत्याख्यान का क्या फल होता है? उसमें संयम रूप फल की प्राप्ति होती है। संयम रूप प्राप्ति का क्या फल होता है? अनाश्रव

अर्थात् नूतन कर्मोका नहीं आना रूप फल होता है। इसी प्रकार अनाश्रव से तप फल की प्राप्ति होती है, तपसे पूर्व कर्म के विनाशरूप फल की प्राप्ति होती है। पूर्व-कर्म के विनाश से अक्रिया रूप फल की अर्थात् योग निरोध फल की प्राप्ति होती है। हे पूज्य! उस योग निरोध का क्या फल होता है? हे गौतम उसका सिद्धि मोक्ष अव-स्था रूप सर्वोत्कृष्ट अंतिम फल कहा गया है। स्थानांगसूत्र स्था. ५

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं जीवा सुलभबोहियत्ताए कम्मं पगरेंति अरिहंताणं वण्णं वदमाणे अरिहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स वण्णं वदमाणे आयरियउवज्झायाणं वण्णं वदमाणे चाउवण्णस्स संघस्स वण्णं वदमाणे विविक्कतवबंभचेराणं देवाणं वण्णं वदमाणे १३६

अर्थ—पांच कारणों से जीव सुलभबोधि होने का कर्म बांधा करते हैं:—१ अरिहंतों

का गुणानुवाद बोलते हुए २ अरिहंत प्रणीत धर्मका गुणानुवाद बोलते हुए ३ आचार्य उपाध्याय महाराज का गुणानुवाद बोलते हुए ४ चतुर्विध श्रीसंघका गुणानुवाद बोलते हुए ५ निर्दोष ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले महात्माओं का (इस कारण से देवता होनेवालों का गुणानुवाद बोलने वालों को सुलभबोधि की प्राप्ति होती है। स्थानांगसूत्र स्था. ३

मूलम्—तिहिं ठाणेहिं समणोवासए महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ तं कयाणं अहं अप्पं वा बहुं वा परिग्गहं परिचइस्सामि कयाणमहं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि कयाणमपच्छिममारणंतिय संलेहणा झूसणा झूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगए कालमवकंखमाणे विहरिस्सामि एवं समणसा सवयसा सकायसा जागरमाणे समणोवासए महानिज्जरे महापज्ज-वसाणे भवइ ॥३८॥

अर्थ--तीन स्थानों द्वारा (कारणोद्वारा) श्रमणोपासक महानिर्जरावाला, महापर्यवसानवाला (कर्मों की) (अनंत निर्जरावाला) होता है वह इस प्रकार है कब मैं अल्प अथवा बहुत (सभी प्रकार के) परिग्रह को छोडूंगा कब मैं श्रावक से साधु धर्म को ग्रहण करूंगा (दीक्षा) (लूंगा) कब मैं अपश्चिम मारणान्तिकी संलेखना (मृत्यु के समय कषाय का उपशम करके और देह में मूर्च्छा न रख करके जो तप विशेष किया जाता है वह संथारा) कर्मों को क्षय करने की क्रिया का आचरण करता हुआ भोजन पानी आदि का प्रत्याख्यान किया हुआ स्वस्थता पूर्वक अचल रह कर मृत्यु की प्रतीक्षा करता हुआ विचरूंगा अर्थात् रहूंगा इस प्रकार मन से वचन से और काया से जागृत होता हुआ (संयम की साधना करता हुआ) श्रमणोपासक महानिर्जरावाला और महापर्यवसानवाला (कर्मों के अनंत परमाणुओं के क्षय करनेवाला) होता है॥३८॥

## अथ पच्चीस क्रिया का नाम तथा भावार्थ

१ काइया क्रिया का दो भेद–१ 'अणुवरयकाइया' पाप से नहीं निवर्तने से लागे। २ 'दुपउत्तकाइया'–इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट विषय से नहीं निवर्तने से लागे। या अजतनासे प्रवर्तावे घणा काल से काया वोसराया विना पाछला रह्या हुआ काया का पुद्गल उसकी क्रिया लागे।

२ अहिगरणीया (अधिकरण) क्रिया का दो भेद–१ 'संजोजनादिगरणिया'–खड्ग मूशलहथियारकसि कुदाला इत्यादि संग्रह करे उनकी क्रिया लागे। २ 'निव्वत्तणादिगरणिया' शस्त्र हथियार वगेरह नया न बनावे तथा मरम्मत करावे उनकी क्रिया लागे।

३ पाउसिया क्रिया का दो भेद–१ 'जीव पाउसीया' जीव पर द्वेष करने से लागे तथा मत्सर परिणाम राखे उसकी क्रिया लागे। ३ 'अजीवपाउसिया'–अजीव पर द्वेष करे तथा मत्सर परिणाम राखे उसकी क्रिया लागे।

४ परितावणिया क्रिया का दो भेद—१ 'सहत्थ परितावणिया' आप तपे तथा दूसराने तपावे (परितापना उपजावे) उसकी क्रिया लागे।

५ पाणाइवाइया क्रिया का दो भेद–१ 'सहत्थ पाणाइवाइया'–खुद के हाथ से खुद का तथा दूसरे का प्राण हरे उसकी क्रिया लागे। २ 'परहत्थपाणाइवाइया' दूसरे के हाथ से खुद का तथा दूसरे का प्राण हरावे उसकी क्रिया लागे। जीवरी हिंसा करे।

६ अपच्चक्खाणिया का दो भेद–१ 'जीव अपच्चक्खाणिया' २ 'अजीव अपच्चक्खाणिया' व्रतपच्चखाण किंचित्मात्र पण नहीं करे चोथे गुणस्थान तक लागे।

७ आरम्भिया क्रिया का दो भेद–१ जीव आरम्भिया–जीव को आरम्भ बधावे। अजीव आरम्भिया-अजीव को आरम्भ बधावे। खेती, बाग बगीचा, मील कल दूकान, मकान वगेरह को आरम्भ बधावे उसकी क्रिया लागे।

८ परिग्गहिया क्रिया का दो भेद—१ 'जीवपरिग्गहिया'-घोडा, ऊंट, बैल, हाथी,

दास-दासी वगेरा को परिग्रह बधावे उसकी क्रिया लागे। २ 'अजीवपरिग्गहिया' धन, आभूषण, कपडा, मकान वगेरह को परिग्रह बधावे उसकी क्रिया लागे।

९ मायावणिया का दो भेद-१ आय भाव कंकणया-अपनी आत्मा के वास्ते ठगाइ करे व अपनी आत्मा का खोटा भाव छिपाने खोटा आचरण आचरे खोटा लेख लिखे। २ परभाव कंकणया-पराया ते वास्ते ठगाई करे, करावे, खोटा आचरण करे तथा करावे, खोटा लेख लिखे तथा लिखावे।

१० मिथ्यादंसणवत्तिया का दो भेद-१ 'उणाइरित मिथ्यादंसण' ओछा, अधिका सर्दहे तथा परूपे उसकी क्रिया लागे। २ तवाइरित मिथ्यादंसण विपरीत सर्दहे तथा परूपे उसकी क्रिया लागे।

११ दिट्ठीया क्रिया का दो भेद-१ जीव दिट्ठीया घोडा, हाथी, विगेरह को देखकर सरावे या [illegible] तो क्रिया लागे। २ अजीव दिट्ठीया-चित्रामादि आभूषण देखकर

सरावे या विसरावे तो क्रिया लागे ।

१२ पुट्टिया क्रिया का दो भेद–१ 'जीवपुट्टिया'। २ 'अजीवपुट्टिया'। जीव अजीव के ऊपर रागद्वेष लाकर हाथ फेरे तथा खोटा भाव से प्रश्न करे (सवाल करे)

१३ पाडुच्चिया क्रिया का दो भेद—१ 'जीव पाडुच्चिया'-जीव को खोटो वंच्छे तथा उस पर इर्षा करे उसकी क्रिया लागे। २ 'अजीवपाडुच्चिया' द्वेषबुद्धि से अजीव पर खोटी चिन्तवना करे उसकी क्रिया लागे। बाहिर वस्तु के निमित्त से लागे जैसे ओघा पातरा, घर, हाट, इत्यादिक से अथवा सामान्य तरेसु रागद्वेष करने से तथा दूसरे की सम्पदा देखकर इर्षा करने से ।

१४ सामंतोवणिवाईया क्रिया का दो भेद–१ 'जीवसामंतोवणिवाईया' २ 'अजीव सामंतोवणिवाईया'-जीव अजीव का समुदाय इकट्ठा करना उसकी क्रिया लागे। अपना भला पदार्थ देखकर लोगों आगे प्रशंसा करे याने पोमावतो फिरे तथा अपनी वस्तु ने

दूसरों सरावे तो राजी हुवे। तथा विसरावे तो भी राजी हुवे तथा नाटक मेला, तमासा मनुष्य को फांसी देता (चोरमारता) देखे उसकी क्रिया लागे।

१५ साहत्थिया क्रिया का दो भेद—१ 'जीव साहत्थिया'-जीवने खुदरे हाथ से पकड़ कर हणे (मारे) उसकी क्रिया लागे। २ 'अजीवसहत्थिया' तलवार, वन्दुक आदि पकड़-कर हणे (मारे) उसकी क्रिया लागे।

१६ नेसत्थिया क्रिया उसका दो भेद—१ 'जीव नेसत्थिया'-जीव में जीव नांखने से जैसे वनस्पति में पाणी फेंके अथवा गुरु चेलाने दूसरे सन्तों के पास व्यावच में भेजे या पुत्र को पिता दूसरी जगह भेजे या निकाल दे (वियोग से जीव खेद पावे याने दुःख पावे) उसकी क्रिया लागे।

२ 'अजीव नेसत्थिया'-पत्थर, तीर धनुष इत्यादि फेंकवा से क्रिया लागे।

१७ आणवणिया क्रिया का दो भेद—१ 'जीव आणवणिया' २ 'अजीव आणवणिया'

जीव अजीव वस्तु कोईके पास से मंगावा से देवे। या नहीं देवे, उस पर रागद्वेप उपजे जीसको क्रिया लागे।

१८ वेदारणिया का दो भेद—१ जीव वेदारणिया अजीववेदारणिया जेसे सुपारी का दो टुकडा करे। जीव अजीव को काटे तथा जाणे जे जाणे की आज्ञा देवे तथा उनका अदातागुण करके वेचे तथा हिंसाकारक दलाली करे।

१९ अणाभोगवत्तिया का दो भेद–१ अणाउत्त आयणता–असावधानपणे से वस्त्रादिक को ग्रहण करे वा पहिरे उसकी क्रिया लागे। २ 'अणाउत्तधम्मज्जणता' उपयोग विना पात्रादिक पुंजे उसकी क्रिया लागे। उपयोग विना शून्यपणे तथा अज्ञानतासे लागे।

२० अणवकंखवत्तिया का दो भेद–१ 'आयसरीरअणवकंखवत्तिया' खुद के शरीर से पाप लागे वेसा काम करे आपघात करे उसकी क्रिया लागे। २ 'पर शरीर अणवकंखवत्तिया–दूसरा का शरीर से पाप लागे वैसा कर्म करे परघात करे उसकी क्रिया लागे। इहलोक

वा परलोक से विरुद्ध काम करे। इहलोक में निंदा हुवे परलोक में बिगाडे वैसा काम करे।

२१ पेज्जवत्तिया का दो भेद–१ 'मायावत्तिया'-कपटाई से राग धरे उसकी क्रिया लागे। २ 'लोभवत्तिया'–लोभ से राग धरे उसकी क्रिया लागे।

२२ दोषवत्तिया का दो भेद–१ 'कोहे' क्रोध से क्रिया लागे २ 'माणे' मानसे क्रिया लागे।

२३ पउग्ग क्रिया का तीन भेद १ मणपउग्ग। २ वयपउग्ग। ३ कायपउग्ग। मन वचन काया का जोग से कर्म ग्रहण करे याने शुभ अशुभ प्रवर्तावे।

२४ सामुदाणिया क्रिया का तीन भेद–१ 'अणंतरसामुदाणिया' काल में छेटी पडी जावे और काल में छेटी नहीं पडे दोनों साथ। प्रयोग क्रिया द्वारा ग्रहण क्रिया कर्म सामुदाणि से खीच्चा उन कर्मों का भेद चार प्रकार से करे १ प्रकृतिपणे २ स्थितिपणे ३ अनुभागपणे ४ प्रदेशपणे, दृष्टान्त जैसे मेदा को आलोय कर लोघो बनायो जब तो प्रयोग क्रिया लागे और पीछे लोघाने लेकर पेटो, निमकी, खाजा इत्यादिक नाना प्रकार

पणे बनाया जब सामुदाणी क्रिया लागे। (पहले के समय भेद करे अवान्तर क्रिया दूजे समय तीजे समय भेद करे तब परंपर क्रिया)।

२५ 'इरियावहिया क्रिया'—वीतरागी तथा केवली ने पहले समय में लागे दूजे समय वेदे तीजे समय निर्जरे।

### श्रावक की ग्यारह पडिमा

अब श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन करते हुए सूत्रकार प्रथम प्रतिमा का वर्णन करते हैं—'सव्वधम्मरुइ' इत्यादि।

मूलम्—अह पढमा उवासगपडिमासव्वधम्मरुइ यावि भवइ। तस्स णं बहुइं सीलवयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासाइं नो सम्मं पट्ठविय पुव्वाइं भवंति। एवं दंसणवासगा भवइ। इमा पढमा उवासगपडिमा १ ॥१८॥

अर्थ—पहली उपासक प्रतिमा में उपासक को क्षान्ति आदि सर्व धर्मों में प्रीति होती है। यहां चकार वाक्यालङ्कार में है, अपि शब्द से धर्म में दृढता और सद्गुण में रुचिवाला होता है। किन्तु उस क्रियावादी उपासक के बहुत से शील, व्रत, गुण, विरमण, प्रत्या-ख्यान, पोषधोपवास आदि ग्रहण किये हुए नहीं होते हैं। शील—शब्द से सामायिक, देशावकाशिक, पोषध, अतिथिसंविभाग, ये चार लिये जाते हैं। व्रत से पांच अणुव्रत, गुण से तीन गुणव्रत लिये जाते हैं। विरमण-मिथ्यात्व से निवृत्ति करना। प्रत्याख्यान-पर्व-दिनों में निषिद्ध वस्तु का त्याग करना। पोषधोपवास-'पोषं धत्ते' इस व्युत्पत्ति से धर्म की वृद्धि को जो करता है वह पोषध कहाजाता है, अर्थात् चतुर्दशी, अमावास्या, अष्टमी, पूर्णिमा आदि पर्वदिनों में अनुष्ठान करने योग्य व्रत को पोषध कहते हैं। वह आहारत्याग १, शरीरसत्कारत्याग २, ब्रह्मचर्य ३, अव्यापार ४, इन भेदो से चार प्रकार का है। ऐसे नियमरूपी पोषध में, अथवा पोषध के साथ जो उपवास हो इस

को पोषधोपवास कहते हैं। ये सब उनको सर्वथा नहीं होते हैं। इस प्रकार प्रथम-प्रतिमाधारी दर्शन-श्रावक होता है। सम्यक्श्रद्धानरूप यह प्रथम उपासक प्रतिमा है, यह प्रतिमा एक मास की होती है।१८।

अब दूसरी उपासक प्रतिमा का वर्णन करते हैं–'अहावरा दोच्चा' इत्यादि।

मूलम्–अहावरा दोच्चा उवासगपडिमा, सव्वधम्मरूइ यावि भवइ। तस्स णं बहुइं सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासाइं सम्मं पट्ठवियाइं भवंति। से णं सामाइय देसावगासिय नो सम्मं अणुपालित्ता भवइ। दोच्चा उवासगपडिमा २॥१९॥

अर्थ–दूसरी उपासक प्रतिमा–व्रतप्रतिमा का निरूपण किया जाता है–दूसरी प्रतिमा वाले श्रावक की क्षान्त्यादि सर्व धर्म में रुचि होती है, और वह शीलव्रत आदि को सम्यक्रूप से धारण करता है किन्तु वह सामायिक और देशावकाशिक का सम्यक्

पालन नहीं करता है। सामायिक-समस्य आयः समायः। सम-रागद्वेषरहित सर्वभूतों को आत्मवत् जाननेरूप आत्मपरिणाम, उसका आय-बढते हुए शरद् ऋतु के चन्द्रकला के समान प्रतिक्षण विलक्षण ज्ञानादि का लाभ, अथवा समता से होनेवाली प्रतिक्षण में अपूर्व २ कर्मनिर्जरा के कारणरूप शुद्धि का लाभ। वही जिसका प्रयोजन हो उसको सामायिक कहते हैं। कहा भी है—

'सामायिकं गुणानामाधारः खमिव सर्वभावानाम्।
न हि सामायिकहीना, श्चरणादिगुणान्विता येन ॥१॥
तस्माज्जगाद भगवान्, सामायिकमेव निरूपमोपायम्।
शारीरमानसानेकदुःखनाशस्य मोक्षस्य' ॥२॥ इति ॥

सामायिक सब गुणों का आधार है, जैसे सब भावों का आधार आकाश है। सामायिकहीन को चारित्र आदि गुण नहीं होते हैं ॥१॥ अतः भगवान् ने सामायिक को

ही सकल दुःख का विनाशक मोक्ष का निरूपम उपाय कहा है ॥२॥

सामायिक का विवरण विस्तार से उपासकदशाङ्गसूत्र की अगारधर्मसंजीवनी टीका से जान लेना। यद्यपि श्रावक के लिये बारह व्रतों का सम्यग् आराधन करना आवश्यक है तो भी वह सामायिक व्रत और देशावकाशिक व्रत का सम्यक्तया शरीर से आराधन नहीं कर सकता है। इस दूसरी प्रतिमा–व्रत प्रतिमा का दो मास में सम्पादन होता है ॥१९॥

अब तृतीय उपासक प्रतिमा का वर्णन करते हैं–'अहावरा तच्चा' इत्यादि ।

मूलम्–अहावरा तच्चा उवासगपडिमा। सव्वधम्मरूई यावि भवइ। तस्स णं बहूइं सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासाइं सम्मं पट्ठवियाइं भवंति से णं सामाइयं देसावगासियं सम्मं अणुपालिता भवइ। से णं चउद्दसिअट्ठमिउद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहोववासं नो सम्मं अणुपा-

लिता भवइ। तच्चा उवासगपडिमा ३ ॥२०॥

अर्थ-अब तिसरी प्रतिमा का निरूपण करते हैं-उसको क्षान्त्यादि सर्व धर्म में रुचि होती है, इत्यादि पूर्ववत् समझना चाहिये। उसके शील व्रत आदि धारण किये हुए होते हैं। वह सामायिक व्रत और देशावकाशिकव्रत का सम्यक् पालन करता है परन्तु चतुर्दशी अष्टमी अमावास्या और पौर्णमासी, इन तिथियों में पोषधोपवास का सम्यक् पालन नहीं करता है। यह तीन मास की प्रतिमा है ३ ॥२०॥

अब चौथी उपासकप्रतिमा का वर्णन करते हैं-'अहावरा चउत्थी' इत्यादि।

मूलम्-अहावरा चउत्थी उवासगपडिमा सव्वधम्मरूई यावि भवइ। तस्स णं बहुइं सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासाइं सम्मं पट्ठवियाइं भवंति। से णं सामाइयं देसावगासियं सम्मं अणुपालिता भवइ। से णं

चउद्दसिअट्ठमिउद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालिता भवइ। से णं एगराइयं उवासगपडिमं नो सम्मं अणुपालिता भवइ। चउत्थी उवासगपडिमा ४ ॥२१॥

अर्थ--अब तृतीय प्रतिमा का निरूपण करने के बाद चतुर्थी उपासकप्रतिमा का निरूपण किया जाता है--उसके क्षान्त्यादि सर्व धर्म में रुचि होती है तथा आत्मा में बहुत से शील, व्रत, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान, पोषधोपवास, सम्यक्रूप से ग्रहण किये हुए होते हैं। वह सामायिक व्रत और देशावकाशिक व्रत का सम्यक् पालन करता है। और चतुर्दशी अष्टमी अमावास्या पौर्णमासी तिथियों में प्रतिपूर्ण पोषध का सम्यक् अनुपालन करता है किन्तु जिस दिन में उपवास करता है, उस दिन में 'एकरात्रि की' उपासक प्रतिमा की सम्यक् आराधन नहीं करता है। चतुर्थी उपासक प्रतिमा चार महीने की है ४ ॥२१॥

अब पांचवी उपासकप्रतिमा का वर्णन करते हैं–'अहावरा पंचमी' इत्यादि।

मूलम्–अहावरा पंचमी उवासगपडिमा। सव्वधम्मरूई यावि भवइ। तस्स णं बहुइं सीलव्वय जाव सम्मं अणुपालिता भवइ से णं सामाइयं तहेव से णं एगराइयं उवासगपडिमं सम्मं अणुपालिता भवइ। से णं असिणाणए, वियड-भोइ, मउडिकडे, दिया बंभयारी, रत्ति परिमाणकडे। से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे, जहन्नेणं एगाहं वा दुवाहं वा तियाहं वा उक्कोसेणं पंचमासं विह-रइ। पंचमा उवासगपडिमा ५॥२२॥

अर्थ-अब पांचवीं प्रतिमा कहते हैं–इस प्रतिमावाले की क्षान्त्यादि सर्व धर्म विषयक रुचि होती है। उसके शील आदि व्रत ग्रहण किए रहते हैं। वह सामायिक और देशावकाशिक व्रत की भली-भांति आराधना करता है। चतुर्दशी आदि पर्व दिनों में

पोषधव्रत का भी अच्छी प्रकार पालन करता है। एक रात्रि की उपासक प्रतिमा का भी सम्यक् प्रकार से पालन करता है। वह स्नान नहीं करता, रात्रिभोजन का त्याग करता है। धोती की एक लांग खुली रखता है। दिन में ब्रह्मचारी रहता है और रात्रि में मैथुन का परिणाम करनेवाला होता है। इस प्रकार विचरता हुवा कम से कम एक दिन या तीन दिन से लेकर अधिक से अधिन पांच मास तक विचरता है इस का यह तात्पर्य है कि-यह प्रतिमाधारी जो कालधर्म को प्राप्त हो जाय अथवा दीक्षा ले ले तो प्रतिमापालन भङ्गरूप दोष उसको नहीं लगता है। और यदि जावजीव भी इस प्रतिमा का पालन करे तो भी दोष नहीं है। यह प्रतिमा पांच मास की होती है ५ ॥२२॥

अब छठी उपासकप्रतिमा का निरूपण करते हैं—'अहावरा छट्ठी' इत्यादि।

मूलम्—अहावरा छट्ठी उवासगपडिमा। सव्वधम्मरूई यावि भवइ, जाव से णं एगराइयं उवासगपडिमं अणुपालिता भवइ से णं असिणाणए, वियड-

मोइ मउलिकडे, दिया वा राओ वा बंभयारी, सचित्ताहारे से अपरिण्णाए भवइ। से णं एयारूवेण विहारेण विहरमाणे जहन्नेणं एगाहं दुयाहं वा जाव उक्कोसेणं छम्मासे विहरेज्जा। छट्ठी उवासगपडिमा ६ ॥२३॥

अर्थ--अब पांचवीं प्रतिका के बाद छठी प्रतिमा का निरूपण किया जाता है। जैसे कि जो छट्ठी प्रतिमा ग्रहण करता है उसकी सर्वधर्मविषयक रुचि होती हैं। 'यावत्' शब्द से उसकी आत्मा में अनेक शील, व्रत, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान, पोषधोपवास सम्यक् ग्रहण किये हुए होते हैं। वह सामायिक व्रत का और देशावकाशिक व्रत का सम्यक् अनुपालन करता है। चतुर्दशी आदि तिथियों में प्रतिपूर्ण पोषध का सम्यक् अनुपालन करता है। तथा एकरात्रि की उपासकप्रतिमा का पालन करता है स्नान नहीं करता है। रात्रिभोजन नहीं करता है। धोती की एक लांग खुली रखता है। दिन और रात्रि में ब्रह्मचर्यव्रत पालन करता है। इसके औषध आदि सेवन के अथवा दूसरे कारणवश

सचित्ताहार का त्याग नहीं होता है, अर्थात् विना कारण सचित्त आहार का त्याग होता है। वह उपासक इस प्रकार के नियम से जघन्य एक दिन दो दिन तीन दिन और उत्कृष्ट छः मास तक रहता है। यह छठी उपासकप्रतिमा छह महिने की होती है ६ ॥२३॥

अब सातवीं उपासकप्रतिमा का वर्णन करते हैं–'अहावरा सत्तमा' इत्यादि।

मूलम्–अहावरा सत्तमा उवासगपडिमा सव्वधम्मरूई यावि भवइ। जाव ओवरायं वा बंभयारी सचित्ताहारे से परिण्णाए भवइ। आरंभे से अपरिण्णाए भवइ। से णं एयारूवेण विहारेण विहरमाणे जहन्नेण एगाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा जाव उक्कोसेण सत्तमासं विहरेज्जा। से तं सत्तमा उवासगपडिमा ७ ॥२४॥

अर्थ–अब छट्ठी प्रतिमा के बाद सातवी प्रतिमा का निरूपण करते हैं, जैसे कि-उसकी सर्वधर्म में रुचि होती है। शील, व्रत, गुण, आदि पूर्ववत् जानना। रात्र्यपरात्र–अहो-

रात्र, अर्थात् रात और दिन सदैव ब्रह्मचारी रहता है। उसके अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य इन चार प्रकार के सचित्त आहार त्याग होता है। अशन में चना आदि, तथा अपक्व और दुष्पक्व औषधि आदि, पान में सचित्त जल तथा तत्काल में डाले हुए सचित्त लवण आदि से मिश्रित, खाद्य में लकडी और खरबूजा आदि, स्वाद्य में दन्त-धावन (दतवन) ताम्बूल, हरडे आदि आहार सचित्त आहार कहा जाता है। वह इन सब का परित्याग करता है, तथा आरम्भ-पचन पाचन आदि सावद्य व्यापार का कराना और अनुमोदन आदि का त्याग नहीं करता है। वह इस वृत्ति से जघन्य एक दिन दो दिन या तीन दिन तक उत्कर्ष से सात महीने तक विचरता है। यह सातवीं उपासक प्रतिमा सात मास की होती है ७ ॥२४॥

अब आठवीं उपासकप्रतिमा का निरूपण करते हैं–'अहावरा अट्ठमा' इत्यादि।

मूलम्–अहावरा अट्ठमा उवासगपडिमा। सव्वधम्मरुई यावि भवइ। जाव

राओवरायं बंभयारी। सचित्ताहारे से परिण्णाए भवइ। आरंभे से परिण्णाए भवइ। पेसारंभे अपरिण्णाए भवइ से णं एयारूवेण विहारेण विहरमाणे जाव जहन्नेण एगाहं दुयाहं तियाहं वा जाव उक्कोसेण अट्ठ मासे विहरेज्जा से तं अट्ठमा उवासगपडिमा८॥२५॥

अर्थ- अब आठवीं प्रतिमा की प्ररूपणा करते हैं--इस प्रतिमा को धारण करनेवाले की सर्वधर्म विषयक रुचि होती है, वह यावद् रात्रि और दिवस में ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करता है। सचित्त आहार का परित्याग कर देता है। वह स्वयं आरम्भ–कृषि, वाणिज्य आदि सावद्य व्यापार का परित्याग करता है किन्तु दूसरों भृत्य आदि से आरम्भ कराने का परित्याग नहीं करता है। उपासक की आठवीं प्रतिमा में स्वयं किये हुए आरम्भ का ही त्याग होता हैं, प्रेष्यारम्भ का अर्थात् दूसरे से आरम्भ कराने का त्याग नहीं होता।

प्रेष्यारम्भ में यह विशेषता जाननी चाहिये:—

प्रेष्यारम्भ इस प्रकार का होना चाहिये कि जिस में आत्मा का तीव्र परिणमन हो। वह भी जीवननिर्वाह का दूसरा उपाय न होने के कारण मन्द मन्दतर परिणाम से अप्रत्याख्यान है। उस में भी अपने या दूसरे के लिये आरम्भ में प्रवृत्त हुए प्रेष्य की प्रेरणा करे, किन्तु अपने लिए नया आरम्भ नहीं करावे।

यहां शंका होती है कि—स्वयं आरम्भमात्र से निवृत्त होने से क्या लाभ ? क्यों कि जो दोष स्वयं आरम्भ करने में होता है वही दोष प्रेष्य-भृत्य दास आदि के द्वारा कराने में भी होगा।

उत्तर में कहा जाता है कि—जो सर्वथा सम्पूर्णरूप से निर्दय कठोर, तीव्ररूप परिणाम की धारा स्वयं किये जाने वाले आरम्भ में होता है, वैसी प्रेष्यारम्भ में नहीं होती। जैसे बडे वेग से दौडने वाला पुरुष कोई पत्थर आदि की ठोकर खाकर गिरता

हुआ मन्दगति से प्रवृति करता है वैसे ही आत्मपरिणाम भी प्रेष्य का सम्बन्ध पाकर मन्द हो जाते हैं और वह विचार करने लगते हैं कि–'अहो ! यह जीवन का निर्वाह आरम्भमय है, और आरम्भ दुर्गति का हेतु होने से सर्वथा हेय–त्याज्य है, तब मैं जीवन निर्वाह कैसे करूँ ?' ऐसा विचार कर भृत्यों की प्रेरणा करते समय ही अपने आत्मपरिणाम शिथिल हो जाते हैं।

कोई कहते हैं कि–स्वयं एक होने से और विवेकपूर्वक कार्य करने वाला होने से स्वयंकृत आरम्भ अल्प है और प्रेष्यद्वारा कराया हुआ महा आरम्भ है, क्योंकि–प्रेष्य–अपने से भिन्न होने के कारण समस्त संसार के सभी प्रेष्यों का ग्रहण हो जाता है और वे विवेकपूर्वक कार्य भी नहीं कर सकते हैं। जो ऐसा कहते हैं वह ठीक नहीं है, क्यों कि उसमें आरम्भ के प्रति कर्त्ता का व्यापार साक्षात् कारण होने से, तीव्रतर परिणाम होते हैं अतः कारित आदि की अपेक्षा स्वयंकृत आरम्भ ही महा आरम्भ है।

कारित आदि आरम्भ इस से अधिक तीव्र नहीं है।

स्वयंकृत आरम्भ महा आरम्भ होने के कारण ही त्रिविध करणों में भगवान ने इस को ही प्रथम कहा है। और इसके फल का उपभोग भी कारित आदि की अपेक्षा अत्यन्त कटु है। जैसे तण्डुलमत्स्य स्वयं कारणरूप तीव्र परिणाम मात्र से ही सप्तम सातवें नरकगामी होता है। अतः सबसे प्रथम उसका ही प्रत्याख्यान करना उचित है। इसी आशय से भगवान् ने सामायिक प्रतिज्ञा में इस प्रकार कहा है—'करेमि भंते। सामाइयं' इत्यादि। यहां स्वयंकृत सावद्ययोग का प्रथम प्रत्याख्यान करने के लिये पहले 'न करेमि' ऐसा ही कहा किन्तु 'न कारयामि' ऐसा नहीं कहा। अत एव भगवान् ने इस सूत्र में आठवीं प्रतिमा का निरूपण करते समय 'आरंभे से परिण्णाए भवइ' इस वचन से स्वयंकृत आरम्भ का ही प्रत्याख्यान कहा है किन्तु प्रेष्यारम्भ का नहीं। इस से विरुद्ध निरूपण करने से उत्सूत्र प्ररूपणा का दोष आवेगा, और इस से अनन्त

संसार की प्राप्ति होगी।

वह उपासक ऐसा करता हुआ जघन्य एक दिन दो दिन अथवा तीन दिन और उत्कृष्ट आठ मास तक रहता है। यह आठवीं प्रतिमा आठ महीने की होती है ८ ॥२५॥

अब नववीं प्रतिमा का निरूपण करते हैं–'अहावरा नवमा' इत्यादि।

मूलम्–अहावरा नवमा उवासगपडिमा। सव्वधम्मरुई यावि भवइ। जाव राओवरायं बंभयारी। सचित्ताहारे से परिण्णाए भवइ। आरंभे से परिण्णाए भवइ। पेसारंभे से परिण्णाए भवइ। उद्दिट्ठभत्ते से अपरिण्णाए भवइ। से णं एयारूवेण विहारेण विहरमाणे जहन्नेण एगाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा उक्कोसेण नवमासे विहरेज्जा से त्तं नवमा उवासगपडिमा ९ ॥२६॥

अर्थ–आठवीं प्रतिमा के बाद नववीं प्रतिमा का निरूपण करते हैं–यह सर्व धर्म

में रुचि वाला होता है। रात्रि और दिवस में ब्रह्मचर्य पालता है। सचित्ताहार का प्रत्याख्यान करता है। कृषि वाणिज्य आदि आरम्भ का परित्याग करता है। भृत्य आदि अन्य द्वारा आरम्भ कराने का परित्याग करता है, परन्तु उसके उद्दिष्टभक्त–उसके लिए बनाये गये आहार आदि का परित्याग नहीं होता है। वह इस प्रकार से जघन्य एक दिन दो दिन तीन दिन और उत्कृष्ट नव मास पर्यन्त विचरता है। यह नववीं प्रतिमा नौ महीने की होती है ९॥ २६॥

अब दशवीं प्रतिमा का वर्णन करते हैं–'अहावरा दसमा' इत्यादि।

मूलम्–अहावरा दसमा उवासगपडिमा। सव्वधम्मरुई यावि भवइ। जाव उद्दिट्ठभत्ते से परिण्णाए भवइ। से णं खुरमुंडए वा सिहधारए वा। तस्स णं आभट्ठस्स समाभट्ठस्स वा कप्पंति दुवे मासाओ भासित्तए, जहा जाणं वा जाणं अजाणं वा णो जाणं। से णं एयारूवेण विहारेण विहरमाणे जहन्नेणं

एगाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा उक्कोसेण दस मासं विहरेज्जा। से त्तं दसमा उवासगपडिमा १० ॥२७॥

अर्थ—नववीं प्रतिमा का निरूपण हुआ। अब दशवीं प्रतिमाका निरूपण करते हैं— यह सर्व धर्म में रुचि रखता है यावत् इस के उद्दिष्टभक्त अर्थात् भक्त प्रतिमा बाले के लिये बनाये हुए आहार का भी परित्याग होता है। क्षुरमुण्डित होने अथवा केश 'रखे, इस दशमी प्रतिमाधारी का किसी द्वारा एक बार या अनेक बार पूछे जाने पर दो भाषा बोलनी कल्पे, अर्थात् किसी पूछने पर जानता हो तो 'मैं जानता हूँ' ऐसा कहे, अगर न जानता हो तो मैं नहीं जानता हूँ ऐसा कहे। वह उपासक इस रीति से विचरता हुआ जघन्य एक दिन दो दिन अथवा तीन दिन तक और उत्कृष्ट दश मास तक इसका अराधन करे। यह दशवीं प्रतिमा दश मास की होती है १० ॥२७॥

अब ग्यारहवीं प्रतिमा का निरूपण करते हैं–'अहावरा एगारसमा' इत्यादि ।

मूलम्–अहावरा एगारसमा उवासगपडिमा । सव्वधम्मरुई यावि भवइ । जाव उद्दिट्ठभत्तं से परिण्णाए भवइ । से णं खुरमुंडए वा लुंचियसिरए वा, गहियायारभंडगनेवत्थे । जे इमे समणाणं निग्गंथाणं धम्मे पण्णत्ते, तं सम्मं काएणं फासेमाणे, पालेमाणे पुरओ जुग्गमायाए पेहमाणे, दट्ठूण तसे पाणे उद्धट्टु पाए रीएज्जा, साहट्टु पाए रीएज्जा, तिरिच्छं वा पायं कट्टु रीएज्जा सति परक्कमे संजयामेव परिक्कमेज्जा, नो उज्जुयं गच्छेज्जा । समणभूए से । केवलं से नाइए पेज्जबंधणे अवोच्छिन्ने भवइ । एवं से कप्पइ नायवीहिं पत्तेउं ११ ॥२८॥

अर्थ–दशवीं प्रतिमा का निरूपण करके अनन्तर ग्यारहवीं प्रतिमा का निरूपण

किया जाता है—यह सर्वधर्मविषयक रुचि वाला होता है यावत् उद्दिष्टभक्तका परित्याग करता है। क्षुरमुण्डित होता है, अथवा केशो का लुञ्चन करता है। वह साधु जैसा आचार अर्थात् साधु के समान आचार और वेष—वस्त्र, पात्र और यथाकल्प डोरे के साथ मुखवस्त्रिका, रजोहरण एवं प्रमार्जिका, चद्दर, चोलपट्ट, शय्या, संस्तारक आदि को धारण करके श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए भगवानने जैसा धर्म बताया है, वैसे धर्म का सम्यक्तया काय से स्पर्श करता हुआ और पालन करता हुआ चलते समय आगे युग्ममात्र—झुसरा प्रमाण भूमि को देखता हुआ द्वीन्द्रिय आदि प्राणियों को देख कर पैर को जीव की रक्षा के लिये उठा कर चले। एवं जीव की रक्षा के लिये पैर को संकुचित करके चले और टेढा करके चले किन्तु जीवसहित मार्ग पर सीधा न चले। यह विधि दूसरा मार्ग हो तो ईर्यासमिति के अनुसार दूसरे मार्ग से चले, अर्थात् जिस प्रकार जीव रक्षा हो वैसे चलना चाहिये। यह प्रतिमाधारी श्रावक श्रमणभूत—साधु सदृश होता है

किन्तु इसके केवल ज्ञातिवर्ग से प्रेमबन्धन का व्यवच्छेद नहीं होता है। वह स्वज्ञाति में ही भिक्षावृत्ति के लिए जाता है ११ ॥२८॥

( दर्शनना पांच अतिचार )

दंसण—सरधवुं, श्रद्धा समकित साचु सत्य परमत्थ—परमअर्थ, जीवादिक नव तत्वना पदार्थनो संथवो वा—परिचय करवो अभ्यास करवो तथा सुदिठ—भला दिन छे सारी दृष्टिये जोया छे परमत्थ—सूत्रना अर्थ सिद्धांत वचन सेवणा—(एवा गुरुजीनी सेवा भक्ति करवी) वा वि--अथवा वळी वावन्न समकित पामीने वमी गया चारित्रथी खसी गया एवा कुदंसण--(वळी) कुदर्शन जेनुं छे एवा मूळथी जेओ समकित पाम्या नथी एवा मिथ्या (विवज्जणा--वर्जवा) (एवानो) संग न करवो य समस्त सद्दहणा एवी समकितनी श्रद्धा (उपर कह्या) मुजब चार बोले करी समकितनी श्रद्धा राखवी तेज समकित) एवा समकितना (समणोवासएणं--एहवा समकितना व्रत धारणहार श्रमणोपासक श्रावकने

समत्तस्स--समकितना पंच अइयारा--पांच अतिचार (पेयाला म्होटा जाणियव्वा) जाणवा (पण न समायरियव्वा--नहि आचरवा योग्य) संका (१) जीन वचनमां सत्य असत्यनी शंका राखी होय कंखा (२) बीजा मार्गनी इच्छा राखी होय वितिगिच्छा (३) जैन धर्मनी करणीना फलनो संदेह राख्यो होय परपासंड परसंसा (४) बीजा मिथ्यात्वी मतनो संग कीधो होय ए रीते दर्शन (समकित) ना पांच अतिचार माहेलो कोइ दोष लाग्यो होय तो

बारह व्रत

मूलम्--पहिला अणुव्रत---थूल पाणाइवायाओ वेरमणं त्रसजीव बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदिय, पंचेंदिय, जानके पहिचानके, संकप्पओ हणण हरणावण पच्चक्खाण, ससरीर सविसेस पीडाकारणी ससंबंधि सविसेस पीडाकारणी सावराहिणे वा वज्जिउण, जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा, वयसा, कायसा ऐसे पहिले

स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत के पंच•अइयारा पयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा बंधे, वहे, छविच्छेए, अइभोर, भत्तपाण वुच्छेए ।

अर्थ-प्रथम प्राणातिपात विरमण व्रत–सूक्ष्म, एकेन्द्रिय, बेइंदिय तेइंदिय, चउरिंदिय और पंचिंदिय जीवने जानकर पहिचान कर अपने मारने की बुद्धि से हणवा, हणावानां पच्चक्खाण। दुर्भावनावश हिंसा करनी नहीं, करवानी नहीं.

आगार–कोई खूनी मनुष्य अथवा हिंसक पशु खुदकी या दूसरे की जान लेने पर बाध्य हो जाय उस वक्त अपने प्राण बचाने के लिये या अनुकंपा से दूसरे के प्राण बचाने के लिये उसको शिक्षा देने के लिये ऐसा मार्ग अपनाना पडे। कोई मनुष्य बलात्कार से किसी के शील को हानि पहूंचाने पर या उसके जानमाल लूटने पर बाध्य होजावे ऐसे बल पर अपराधी को शिक्षा देनी पडे या सजा देनी पडे उसका आगार।

राज्य अथवा सरकार की नौकरी के कारण, सरकार के नियम अनुसार अपराधी

को सजा देनी पडे उसका आगार।

राजा के हुकम से या किसी ऊपर के अमलदार के हुकम से किसी को सजा करनी पडे, करवानी पडे उसका आगार।

अपने शरीर में या किसी अन्य मनुष्य अथवा जानवर के शरीर में कीडे पड गये हो, उन कीडों से शरीर में वेदना होती हो तो वेदना दूर करने के लिये दवा का सेवन करना पडे उसका आगार।

विषयभोग करता, टट्टी-पेशाब करता, थूंकता नाक सिनकता समुर्च्छिमनी विराधना होवे उसका आगार।

रास्ते में चलना, पशुओं को गाडी में जोडकर गाडी चलाना, खेती का काम करना व्यापार होनेके कारण अनाज की, मसालों की तथा अन्य खानेपीने की वस्तुओं की संभाल करते उनको निकालना, फिर भरना, रसोई बनाने के लिये अग्नि चूले-सिगडी

जलाना, नदी नाले पानी के लिये खुदाना, नींदमें करवटे बदलना तथा अन्य क्रिया करते त्रस जीव की हिंसा अथवा विराधना होय उसका आगार। पांच स्थावर के आरंभ की कोई क्रिया करना उसका आगार।

पांच स्थावर की मर्यादा–पृथ्वी–नये मकान बनाने के, पुराने मकानों को गिराकर फिर से बनाना, उसमें मोरी, खिडकी, दरवाजे, टोंड, अलमारी नये बनवाना अथवा टूट-फूट ठीक करवानी पडे तो एक वर्ष में कितने मकानो की संख्या....की मर्यादा

अनाज रखने के लिये या कोई दूसरी वस्तु को जमीन भोंरे में खढा खोदकर उसमें डाटनी पडे तो उसके लिये कितने गज लम्बा....कितने गज चौडा....कितने गज ऊंडा....

कोयला की, पत्थर की खान खोदनी पडे तो मेरे घर उपयोग के लिये जीवन पर्यंत अथवा वर्ष....व्यापार संबंधी एक वर्ष में सीमित संख्या.......!

जमीन में खेती करनी या करवानी पडे तो वर्ष में जमीन की सीमित संख्या वीघा....! सडके बनवाने, नदियो के ऊपर रास्ते के लिये पुल बनवाने पडे तो एक वर्ष में माइल बावडी, कुओ खोदने पडे या खुद्वाने पडे तो जीवनपर्यंत के लिये....

कपडे धोनेका सोडा खार एक वर्ष में मण....पापड बनाने का खार एक वर्ष में मण....नमक मण....हिंगलु सेर....फटकडी सेर....सींधानमक सेर....गेरू सेर........ अपने घर के लिये जरूरत पडे तो सचित्त पृथ्वी की बनी हुई चीजों की सीमित संख्या मण....वर्ष एकमें घर-मकान के लिये चूना एक वर्षमां मण....मट्टी के गाडा नं.... कांकरा के गाडा नं....रेती के गाडा नं....सीमेंट....इंट....आटा पीसने की चक्की, पानी भरनेका डोल, छाजला, हमामदस्ता, खरल, चलनी नई लेनी पडे तो सीमित संख्या वर्ष एक में नंग....

आगार—वनस्पति अथवा हरे साग-सब्जी का आरम्भ समारंभ करना, चलते

हुए वस्तु लेना, रखना, छीलते हुए, लपेटते हुए कोई सचित्त वस्तु पृथ्वी की हिंसा हो तो उसका आगार।

पानी की मर्यादा—घर में रोजाना पानी की जरूरत पीने के लिये, नहाने-धोने के लिये पडती है उसके लिये एक दिन में कितना पानी भरना या भरवाना उसकी सीमित संख्या....पानी की जरूरत विवाह में, मेहमानों के लिए अथवा कोई अन्य कार्य के लिये पानी के टांकी की संख्या नंग....कपडों की गांठ बांध कर धोना, नहाना नदी, तालाब, वावडी तथा कुए के पानी से तो महिने में कितने दिन....इसके अलावा अशुची तथा सूतक-स्नान का आगार। खेती करने के लिये पानी निकालना कुअेसे पडे उसकी सीमित संख्या दिन में नंग....मकान नया बनवाने में या पुराने मकान की टूट-फूट ठीक करने, कराने में पानी भरना, भरवाना पडे तो दिन में सीमित संख्या

आगार—आग को बुझाने का, कुअे में पडी वस्तु को निकालने का, जानमाल

बचाने का अपनी मर्यादा के अलावा पानी का उपयोग करना पडे उसका आगार। बरसात में चलते हुए, नदी, समुद्र के रास्ते को पार करने के लिये, जानवरों को पानी पिलाते हुए, घरमें गली में, शहर में भरे हुए पानी को निकालना या निकलवाने में जो आरम्भ होय उसका आगार।

आग की मर्यादा—रोजाना के लिए रसोई करनी या करवानी पडे तो एक दिन में कितने चुले–सिगडी नंग...इसके अलावा विवाह तथा अन्य कोई सामाजिक प्रसंग के लिए ज्यादा जरूरत पडे तो आगार। रोजानी रोशनी के लिए दिया बत्ती, लालटेन बिजली के बल्ब जलाने पडे उसकी सीमित संख्या एक दिनमें नंग....इसके अलावा विवाह दीवाली और अन्य महोत्सव पर, या राजा और सरकार के कहने पर, अधिक रोशनी करनी पडे उसका आगार। अपनी इच्छा से फटाके जैसी आतिशबाजी फोडनी नहीं। विवाह, दीवाली तथा सरकार के हुकुम पर या बच्चों के लिए फटाके आतिश-

बाजी चलाना, चलवाना पडे तो एक वर्ष में दिन....ठन्डी अधिक पडने पर, प्रसूति के कारण सगडी, हीटर जलाना या जलवाना पडे तो दिन में नंग....कोई कारण विशेष धूप खेनी पडे तो दिनमें....धूप अगरबत्ती, मोमबत्ती जलानी पडे तो दिन एक में नंग.... दियासलाई पेटी आग जलाने के लिए दिन एक में नंग....विवाह, दीवाली प्रसंगे घीका जलाना पडे तो एक दिन में नंग....

आगार—एक जगह से दूसरी जगह आंच रखते हुए आग की ज्वाला का फैलाना, बन्दुक से गोली चलाना अपनी रक्षा के लिए, दवा बनाने के लिए भट्ठी का जलाना, जलवाना, लुहार के यहां कोई काम करना, करवाना, मृत शरीर का अग्नि-संस्कार करना, करवाना इनसे जो हिंसा अग्नि की होती है उसका आगार

वायरा—हवा की मर्यादाः—जिससे वायुकाय कि हिंसा होय ऐसे उपकरणो की सीमित संख्या दिन एक में नंग....झुला नंग....पंखा हाथ का, पंखा बिजली का नंग

हमामदस्ता नंग....रेटीयु नंग....छाजला नंग....झाड़ू नंग....पालणा नंग....खरल नंग....चकलाबेलन नंग....चलनी नंग....चक्की नंग....हारमोनियमबाजा नंग....पियानो नंग....तार नंग...सारंगी नंग...तबला-ढोलक नंग...गाने बजाने का यंत्र या बाजे नंग...रेलगाडी में बैठना मुसाफरी करना, एक महिने में दिन...हवाईजहाज में उडना एक महिने में दिन...इसके अलावा नियम का उपयोग रखना

आगारः—बच्चों के लिए पतंग उडाना, राष्ट्र के झंडे का लहराना पसीने के लिए हवा करना, कोई वस्तु को एक जगह से दूसरी जगह रखते हुए, शरीर के अंगों से हाथ पैर हिलाने से, ताली तथा चुटकी बजाने से जो वायुकाय की हिंसा होती है उसका आगार।

वनस्पति की मर्यादाः—अपने पालतु जानवरों के लिए हरा घास लाना या दूसरे से मंगवाना पडे तो एक दिन में कितना पोटला नंग ..हरा चारा एक वर्ष के लिए गाडा नंग...खेत में, बगीचा-बाग में सडे हुए को काटना कटवाना पडे तो एक दिन में वीघा...

साग सुखाने के लिए या अचार बनाने के लिए हरा-साग सब्जी लाना पडे या किसीसे मंगाना पडे, छीलनी या छिलवानी पडे तो एक दिन में मण...विवाह अथवा मेहमानों के लिए कमी ज्यादा साग–सब्जी का उपयोग करना पडे उसका आगार।

अचार डालने के लिए एक वर्ष में मण...सुखाने के लिए एक वर्ष में मण... अपने बाग-बगीचे में जो साग-फल फूल लगे हों या लगवाये हों उन में से एक दिनमें कितने मण...अनाज, दाल मसाला पीसना-पिसवाना पडे एक दिन में मण... भूंजना-भुजवांना पडे तो दिन एक में मण...पकाना-पकवाना पडे तो दिन में मण... काटना-कटवाना पडे तो दिन एक में...उगाना-उगवाना पडे तो दिन एक में मण... सफा करना सफाकरवाना पडे तो एक दिन में मण...नारियल बधारना-बधरवाना पडे तो एक दिल में नंग...सुपारी काटनी-कटवानी पडे तो एक दिन में सेर...सचित्त धनिया, जीरा, सोंढ, सोंफ रोजाना काम में लेना पडे तो एक दिन में सेर...अपने

खेत में हुए अनाज को लाना पडे, दूसरों से मंगाना पडे तो एक वर्ष मे मण...

आगारः—पृथ्वी, पानी, अग्नि का आरंभ करते हुए, पृथ्वी पर चलते–फिरते हुए, वस्तुओ लेते-रखते हुए, दुष्काल मे अपनी भूख से पेट को भरने के लिए जो वनस्पति की हिंसा अथवा विराधना होय उसका आगार।

पांच स्थावर की मर्यादा में आगार–ऊपर लिखे मुजब पांच स्थावर की मर्यादा करी है। इसके अलावा पांचवें तथा सातवें व्रत में जो सीमित संख्या करी है उस प्रकार के व्यापार, कारखाने, ठेके अथवा नौकरी में किसी मालिक अथवा उच्च अधिकारी के हुक्म से वह काम करना पडे, अनुकंपा होते हुए पांच स्थावर की हिंसा होय तो उसका आगार। इसी प्रकार जाती, पंचायत या कोई दूसरी संस्था की व्यवस्था करनी पडे या कोई रिस्तेदार के ट्रस्टी बनकर काम करना पडे, कोई कंपनी में भागीदार बनना पडे, उसके शेयर खरीदने पडे, कारखाने बंधवाने पडे, उसके लिए पांच

स्थावरों की हिंसा या विराधना होय तो आगार।

प्रतिज्ञाः—ऊपर लिखे प्रमाणे इस प्रथम व्रत के अनुसार श्रावक या गृहस्थ को दो करण, तीन योग से जीवन पर्यंत इस व्रत का पालन करना, उसके पांच अतिचार का आचरण नहीं करना—इस में भूल—चूक, पराधीनता बुढोप का आगार। कोई भी त्रस जीवों की संकल्प पूर्वक, द्वेष से क्रूरतापूर्वक गाढे बन्धनों से नहीं बांधना। घातक प्रहार या हत्या करनी नहीं। अपने स्वार्थहेतु अङ्गों को काटना—कटवाना, छेदना, छेदवाना नहीं। सामर्थ्य से अधिक वजन किसी पशु पर लादना नहीं। समय पर भोजन—पानी की अंतराय डालना नहीं। किसी की आजीविका में वाधा डालना नहीं।

मूलम्—दूसरा अणुव्रत—थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं कन्नालीक, गवालीक, भोगालीक, नासावहारे थापणमोसो, कूट साक्ष्य इत्यादि स्थूल झूठ बोलने का पच्चक्खाण, जावजीवाए दुविहं, तिविहेण, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, ऐसे दूजा

स्थूल मृषावाद विरमणव्रत के 'पंचअइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा— सहस्सब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदारमंतभेए, मोसुवएसे, कूडलेहकरणे'।

दूसरा मृषावाद विरमणव्रत—समाज में प्रतिष्ठा तथा प्रेम को ख्याति को नुकसान पहुंचे तथा धर्म और कुल को कलंक लगे और दूसरे का जानी माली नुकसान हो ऐसा झूठ ज्ञानपूर्वक बोलना नहीं, बोलाना नहीं। बडा झूठ पांच प्रकार का है।

(१) कन्या संबंधी—उम्र, गुण, अवगुण गलत बतलाना नहीं (२) गो आदि पशु संबंधी—गुण, दोष मिथ्या बोलना नहीं। (३) भूमि संबंधी—अधिकार जमाने के लिये झूठ बोलना नहीं। (४) किसी की जमा रकम या धरोहर दबाने संबंधी झूठ बोलना नहीं, बोलाना नहीं (५) झूठी साक्षी या मिथ्या लेख संबंधी बोलना नहीं बोलाना नहीं।

आगारः—ऊपर के पांच प्रकार की झूठ में किसी जीवके प्राणों को बचाने के लिए या अधर्मी क्रूर मनुष्य को शिक्षा कराने के लिए असत्य का सूक्ष्म सेवन करना पडे

उसका आगार। आजीविका के लिए, हंसी-मजाक में, क्रोध के कारण, सरकारी नौकरी में सरकार के हुकम के कारण सूक्ष्म असत्य बोलने का आगार।

दूसरे व्रत के पांच अतिचार—विना विचारे किसी दोषारोपण करना नहीं। किसी की गुप्त बात को अचानक प्रकट करना नहीं। किसी भी स्त्री–पुरुष को अपनी गुप्त मंत्रणा को प्रकट करना नहीं। किसी को निरर्थक मिथ्या उपदेश देना नहीं। झूठे लेख लिखना, जाली हस्ताक्षर, मुद्रा, दस्तावेज आदि बनाना तथा बनाके देने का नहीं।

३ तीसरा अणुव्रत—'थूलाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं' अथवा स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत, घर–मकान तोडकर, गांठडी तोडकर, ताले पर दूसरी ताली, चावी लगाकर माल निकाल लेना रास्ते चलते हुए लोगों को लूट लेना, किसी भी दूसरे की चीज को पडी हुई देखकर उठा लेना और कब्जा कर लेना इत्यादि स्थूल अदत्तादान का पच्चक्खाण किन्तु सगे, सम्बन्धी और व्यापार तथा जंगल में पडी हुई वस्तु जिसका

मालिक निश्चित नही हो उसका आगार रखकर स्थूल अदत्तादान का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं, तिविहेण, न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा। ऐसे तीसरे स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत 'समणोवासएणं पंचअइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा तं जहा–तेनाहडे तक्करप्पओगे, विरुद्धरज्जाइक्कमे, कूडतुलकूऽमाणे, तप्पडिरूवगववहारे।

मूलम्–तीसरा अदत्तादान विरमण व्रतः—चोरी करने के इरादे से किसी की वस्तु चोरनी नहीं, चुरवानी नहीं किसी दूसरे की वस्तु को, मालसामान को अनीतिपूर्वक दबा लेना नहीं किन्तु कोई उसकी मिल्कत का दुरुपयोग करने से रोके अथवा उसका भला करने की इच्छा से ऐसा करे तो आगार। किसी से घूस रिश्वत लेनी नहीं किंतु न्याय से किसी को लाभ होता है और वह खुश होकर बक्षीस अथवा इनाम दे तो उसका आगार। लेने-देने में भूल से कोई ज्यादा रकम आजाय तो मालिक को वापिस लौटा देनी या धर्मादा में दे देनी किंतु उसको रख लेना नहीं। किसी की

गिरी हुई कीमती वस्तु मिलने पर उसके मालिक को लौटा देना अथवा राजकीय व्यवस्था के अनुसार उसकी कार्यवाही करना।

आगार—किसी संबंधी या मित्र जिसका पूर्ण अपने पर विश्वास हो यदि वह पीछे से खास जरूरत होने के कारण उसका घर खोलकर वस्तु लेवे तो आगार, किंतु उसके मालिक को शीघ्र ही इस चीज को बता देना चाहिए, जाण करा देनी। साधारण वस्तु जैसे कागज, कलम, सुपारी मंजन, दवाई इत्यादि वस्तु का लेना स्थूल चोरी लौकिक व्यवहार में नहीं आती है इसलिये इन वस्तुओं को मालिक की बिना आज्ञा के लेने का आगार। धरती–मकान में छिपाया हुआ धन यदि मिल जावे तो राजकीय कानून से उसकी चोखवट कर लेनी। यदि अपना हक उस धन पर हो जावे और अपने परिग्रह में वह धन ज्यादा होता हो तो उसको धर्म के शुभ कार्य मे उपयोग करना।

तीसरे व्रत के अतिचार—चोर के द्वारा लाई हुई वस्तु रखनी नहीं, रखवानी नहीं ! चोर को चोरी करने में सहायता देना नहीं। राजकीय व्यवस्था के विरुद्ध कार्य करना नहीं ! चालाकी से खोटा नाप तोल रखना नहीं। असली दिखलाकर नकली देना नहीं, मेल–सेल अथवा मिलावट करना नहीं।

चौथा अणुव्रत—थूलाओ मेहुणवेरमणसदारसंतोसिए अवसेसं मेहुणविहिपच्चक्खाणं जावज्जीवाए, दिव्वं–देवता संबंधी दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि मणसा, वयसा, कायसा तथा मनुष्य, तिर्यंच संबंधी एगविहं एगविहेणं न करेमि, कायसा–ऐसे चौथा स्थूल मेहुण वेरमण वृत पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा–इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहिया गमणे अणंगकीड़ा, परविवाहकरणे, काम भोगतिव्वाभिलासे !

चौथा मैथुन विरमण व्रत—पंचो की साक्षी से विवाहित पत्नी के साथ महिने

एक में दिवस....के अलावा ब्रह्मचर्य का पालन करना ! इसके उपरांत देवता संबंधी 'दुविहं, तिविहेणं' छः कोटीये' और मनुष्य तिर्यंच संबंधी 'एगविहं, एगविहेणं' एक कोटिये अब्रह्म सेवन करने का पच्चखाण दिन में विषय भोग सेवन करना नहीं ! स्वाभाविक अंगो के अतिरिक्त अन्य अंगो से संभोग करना नहीं, स्वजातिय से संभोग करना नहीं ।

चौथे व्रत के पांच अतिचार—(१)अल्पवयवाली विवाहित पत्नी के साथ मैथुन सेवन करना नहीं ! (२) अविवाहित स्त्री जो थोडे समय के लिये अपने पास रहे उससे भोग करना नहीं ! (३) जिसके अब्रह्म सेवन करने के पच्चखाण हो, उसके साथ काम क्रीडा करनी नहीं ! (४) अपने ऊपर आश्रित संतानों एवं पशुओं के अतिरिक्त अन्य का विवाह आदि करके मैथुन की ओर प्रवृत करना नहीं ! (५) कामोत्तेजक औषधियों तथा पदार्थों का सेवन करना नहीं !

पांचवां अणुव्रत—थूलाओ परिग्गह वेरमण अथवा स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत, धन धान्य यथा परिमाण, क्षेत्र वास्तु यथा परिमाण, हिरण्य सुवर्ण यथा परिमाण, द्विपद चतुष्पद यथा परिमाण, कुप्पश्चतु यथा परिमाण। जो मर्यादा की हो उसके अलावा परिग्रह रखना जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि, मणसा, वयसा कायसा–ऐसे पांचवें स्थूल परिग्रह परिमाणव्रत समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा खेत्तवत्थु पमाणइक्कमे, हिरण्ण सुवर्णपमाणाइक्कमे, धन धन्नपमाणइक्कमे, दुपयचउप्पयपमाणइक्कमे, कुवियपमाणाइक्कमे।

पांचवा परिग्रह परिमाण व्रत—उघाडी जमीन, खेत, बाग बगीचा वाडा राखवा पडें तो बीघा....गिरवे रखनी पडे तो वीघा....ढकी हुई जमीन, घर दुकान छोटे, बडे मकानो नंग चांदी के गहणे सोने, के गहणे घर के लिये जीवन पर्यंत के लिये सोने के गहणे बने हुये–सेर....खाली सोना की लगडी या पासा सेर....सोना चांदी

तथा और धातुओं का व्यापार करना पडे तो एक वर्ष में रू....हीरा, माणक, मोती के जेवरात जीवनपर्यंत के लिये रू....व्यापार करना पडे तो एक वर्ष में रू....एकत्रित की हुई रकम अपने जीवन पर्यंत के लिये रू....व्यापार के लिये रूपये व्याज से लेने देने पडे तो वर्ष एक का रू....तक। सब प्रकार का अनाज घर खर्च के रखना पडे तो एक वर्ष में मण....यदि अनाज का व्यापार करना पडे तो एक वर्ष में रू....का व्यापार नौकर चाकर मजदूर रखने पडे तो एक वर्ष में संख्या....

विस्तारपूर्वक गाय....भेंस....बकरी....बैल....घोडा...ऊँट....हाथी...कुत्ते....बक्स... पिटारा....तिजुरी...अलमारी ट्रंक....टेबिल अथवा मेज....छुरा....सरोता डिब्बा–डिब्बी...जस्त की कोठी....मट्टी की झाल मट्टी की मटकी....मट्टी के थैले....मट्टी की टेकरी सोने के बरतन....चांदी के बरतन जरमन सिल्वर के बरतन....कलई किये हुवे बर-तन....पीतल के बरतन कांसी के बरतन....लोहे के बरतन पिलेटिनम के बरतन....

एल्युमिनीयम के वरतन....चीनी के बरतन....सब प्रकार के बरतन अपने घर काम के लिये पहिले से जो पास में हों उसका रू....तक। इसके उपरांत नये बरतन लाने पडे तो एक वर्ष में रू....तक।

रथ, तांगा, बग्गी, मोटर पास रखने पडे तो नंग....नाव, आगबोट, वहाण, मछवा रखनेपडे तो नंग...ऊन अथवा रूई की गांसडी वांधने की मील प्रेस रखनी पडे तो नंग....कपडे के व्यापार करना करवाना, व्यापार में एक वर्ष में रू सूत, रूई, ऊन कपासिया का व्यापार एक वर्ष में रू...किराणा, दवा का व्यापार एक वर्ष में रू...बरतन काच का सामान इत्यादि का व्यापार एक वर्ष में रू...छुटक हर प्रकार का व्यापार करना पडे तो वर्ष एक में... आगार उपरोक्त मर्यादा के अलावा कोई वस्तु लेने में आवे और उसकी मर्यादा में बिकरी होय नहीं तो रखनी पडे। अनुकंपा से किसी मनुष्य अथवा जानवर को रखना पडे, कोई संबंधी या जान-पहिचानवाले

की संपत्ति की व्यवस्था करनी पडे, किसी का ट्रस्टी बनना पडे । पंचायत की मिल्कत की देखभाल करनी पडे, निराधार का रक्षण करना पडे, कंपनी में भागीदार रखना पडे शेयर खरीदना पडे । संबंधी अथवा जान पहिचान वाले को व्यापार संबंधी सलाह देनी पडे । किसी भी व्यापार की दलाली करनी पडे, नौकरी करनी पडे । अजीविका के लिये कोई भी योग्य व्यापार करना पडे, इन सबका आगार ।

पांचवें व्रत के पांच अतिचार (१) खुली जमीन जैसे खेत, बाग की खुली जमीन, मकान–दुकान ढकी जमीन की सीमित संख्या उपरांत दूसरे मकान की या जमीन की संख्या की सीमित संख्या में मिलाकर एक करना नहीं । (२) सोना चांदी रखने की मर्यादा उपरांत नये गहने भारी वजन के बनवा कर उसमें गिनती करना नहीं । (३) मुद्राये, रूपये, मोहर आदि तथा खाद्यान्न की मर्यादा के उपरांत दूसरे के नाम लिखना नहीं और खाद्यान्न को दूसरे के यहां खुद सौदा करके रखवाना नहीं ।

(४) पशु, दास नौकर की मर्यादा उपरांत दूसरे के नाम से रखना नहीं, संख्या में हेर फेर करना नहीं। (५) लोहा, ताम्बा, पीतल कमती मूल्य के धातुओं की मर्यादा के अतिरिक्त अधिक रखना नहीं। उनकी कीमत कमती लगाकर मर्यादा का उल्लंघन करना नहीं।

छठादिशापरिमाणव्रत—उड्ढदिशा यथापरिमाण, अहोदिसा यथापरिमाण, तिरियदिसा यथापरिमाण एवं मए यथा परिमाणं' इन किये हुये परिमाण के उपरांत आगे चलकर पांच आश्रव सेवन का पच्चक्खाण, जाव जीवाए, दुविहं, तिविहेणं, न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा ऐसे छट्ठे विरमणव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा–उड्ढदिसिपमाणाइक्कमे, अहोदिसिपमाणाइक्कमे, तिरियदिसिपमाणाइक्कमे, खेत्तवुड्ढी सइ अंतरद्धा।

छट्ठादिशापरिमाणव्रत—अपने स्थान से ऊँची–नीची दिशा अथवा आकाश–पाताल तथा पूर्व पश्चिम आदि चार दिशाये एवं चारों कोणो अर्थात् दशों दिशा की

मर्यादा कर लेना चाहे पैदल चलकर या रेल, मोटर जहाज, नाव में हवाई जहाज में बैठकर जाने का क्षेत्र माइल या गाउ अथवा कोस में ...इसके उपरांत मर्यादित क्षेत्र अपनी इच्छा से अठारह पाप सेवन करने के, सेवन कराने के जीवन पर्यंत के पच्चक्खाण। इसमें कागज या पत्र, तार, टेलीफोन से माल मंगाना पडे, किसी को जाकर लाना पडे, वकील, मुनीम को भेजना पडे, धर्म या परमार्थ के काम जाना पडे इन सबके आगार।

छट्ठे व्रत के पांच अतिचार टालने के—ऊर्ध्व यानि आकाश की तरफ जाने की मर्यादा का उल्लंघन करना नहीं। नीचे यानि पाताल की तरफ कुआ, तलघर आदि में जाकर मर्यादा का उल्लंघन करना नहीं। दशो दिशाओं में मर्यादा का उल्लंघन करना नहीं। एक दिशा का क्षेत्र घटा कर उतना ही दूसरी में बढाना नहीं। दिशाओं के परिमाण को भूलना नहीं।

सातवां अणुव्रत उपभोग–परिभोग परिमाणव्रत—उवभोगपरिभोगविहिं पच्चक्खाएमाणे–१ उल्लणियाविहि, २ दंतणविहि ३ फलविहि ४ अब्भंगणविहि ५ उव्वट्टणविहि, ६ मज्जनविहि ७ वत्थविहि, ८ विलेवणविहि, ९ पुप्फविहि, १० आभरणविहि ११ धूवणविहि १२ पेज्जविहि १३ भक्खणविहि, १४ आदेयविहि १५ सूपविहि १६ विगयविहि, १७ सागविहि १८ माहुरयविहि, १९ जिमणविहि, २० पाणगविहि, २१ मुहवासविहि, २२ वाहणविहि २३ वारणविहि २४ सयणविहि २५ सचित्तविहि २६ दव्वविहि इत्यादि का यथा परिमाण किया है इसके उपरांत उपभोग–परिभोग वस्तु को भोगनिमित्त से भोगने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि, मणसा, वयसा, कायसा–एवम् सातवां व्रत उपभोग परिभोग दुविहे पण्णत्ते तं जहा–भोयणे य, कम्मणे य, भोयणाओ समणोवासयाणं पंच अइयरा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा–सचित्ताहारे, सचित्तपडिवद्धाहारे, अपोलिओ सहिभक्खणया,

दुप्पोलिओसहिभक्खणया, तुच्छोसहिभक्खणया। कम्मओणं समणोवासएणं पन्नरस कम्मदाणाइं जाणियव्वाइं, न समायरियव्वाइं, तं जहा–इंगालकम्मे, वणकम्मे, साडीकम्मे, भाडीकम्मे, फोडीकम्मे, दंतवणिज्जे, लक्खवणिज्जे, रसवणिज्जे, केसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे, जंतपीलणकम्मे, निल्लंछणकम्मे, दवग्गिदावणया कम्मे, सरदहतलाय सोसणया कम्मे, असइजणपोसणयाकम्मे।

सातवां भोगोपभोग परिमाणव्रत—जिस वस्तु का उपयोग एक दफे किया जाय जैसे अनाज फूल–फल इत्यादि उसको उपभोग कहते हैं। जिस वस्तु का उपयोग वारंबार किया जावे जैसे घर, ओढने के कपडे, गहने इत्यादि इसे परिभोग कहते हैं।

इनकी मर्यादा इस प्रकार है। १ गीले शरीर को पोंछने के तौलिये आदि का परिमाण एक दिन में नंग....२ दांत साफ करने के साधनों की मर्यादा एक दिन में...३ नहाने अथवा मस्तक धोने के लिये अरीठा, आंवला, शिकाकाई साबुन, सेम्पो एक

दिन में नंग...शेर ४ शरीर पर मालिस करने का तेल शेर ५ उबटन, साबुन, आटा, छाप, मिट्टी इत्यादि सेर....६ स्नान तथा जल का परिमाण महिने अथवा एक दिन का...इसके अलावा कारण विशेष के आगार। ७। पहिनने, ओढने; बिछाने के वस्त्रों की मर्यादा दिन में नंग....गज....इसके अलावा विशेष कारण से आगार। ८ चन्दन; केसर क्रीम वगैरह शेर ..९ पुष्पों की तम्बाकु सूंघने एक दिन में वजन तोला....१० आभूषणे स्वके अथवा दूसरे के रूपये...तोला...११धूप अगरबत्ती एक दिन में तोला ...१२ गर्म दूध, मावो; रवडी, चाय, काफी आदि एक दिन में सेर—केफी चीज के केफ करना नहीं–विशेष कारण से आगार। १३ पकवानों में मिठाई तरह तरह की खाने के लिये एक दिन में सेर १४ पकाया अथवा उबाला हुआ चावल; खिचडी आदि सेर...१५ दाल; चना; मूंग; मोंठ आदि सेर १६ घी; दूध, दही, तेल आदि विगय सेर...चीनी, गुड, खांड, मक्खन, शहद सेर....१७ हरे शाक–सब्जियों को मर्यादा

एक दिन मे सेर...रस...

हरे शाक सब्जि के नाम—चांवला की फली, गुवार की फली, सेंव की फली, भिन्डी, मटर, तोरई ककडी, घीया तरबूज, करेला बेंगन, टिन्डा, कोला, मोगरी, सींगरी, टमाटर, परवल,

१८ पत्तीहरी का साक—पालक की भाजी, मेथी की भाजी, बथुआ की भाजी, सरसों की भाजी हरे चने के पत्तों की भाजी सूवा की भाजी, कोतमीर या धनिये की भाजी, पोदीने की भाजी पत्तेवाली गोबी

पत्ते हरी सब्जीके—अजवान के पत्ते, भींडी के पत्ते, तुलसी के पत्ते, अरवी के पत्ते, नागरवेल के पत्ते, मूंगफली के पत्ते, कमल के पत्ते,

फूल—गुलाब के फूल ताजा,

फल के प्रकार—हरा नारियल, हरी मिरच, आनानास, कटारे, कमरख, हरे-

बादाम, अंजीर, हरी सुपारी, अंगूर, हरे छिवारे, हरी सोंफ, सीताफल, सिगांडे, अमरूद, आम, केला, बेर बडे, लालबेर, अनार, जामून, निबू, आंवला, फालसे, नारंगी, चकोवरा, सेव, खरबूजा, बिजोरा, लिसोडा.

गन्ने—गन्ने का रस

बाल—गेहूं की बाजरी की, मक्का की, जुव्वार की बाल

अचार—केरी का अचार या लोंजी, किसमिस–छिवारे का अचार या चटनी, हरी मिरच का अचार, नीबूँ का अचार, बांस का अचार

दांतन—बावल के पेड की दतौन, इमली के पेड की दतौन, बोरडी के पेडकी दतौन, नीम के पेड की दतौन, जामून के पेडे की दतौन

जमीं कन्द या कंदमूल के प्रकार—गाजर, मूली, प्याज, लहसुन, आलू, हलदर, शकरिया अथवा शकरकंदी, सुरण, मूंगफली, रतालू, उपरोक्त लिखे हरी सब्जी

की मर्यादा करी है इसके अलावा किसी कारण विशेष से या सूखी हुई सब्जीयों के मिठाई अथवा किसी खाने की वस्तु में मेवा (सूखा मेवा) मिला हुआ हो, दाल, चटनी का आगार। बदाम, पिस्ता, चिरोंजी सब प्रकार के मेवों का प्रमाण एक दिन में सेर...जिस प्रकार का भोजन खा सकते हों वह शाकाहारी भोजन सब प्रकार का एक दिन का सेर...पानी पीने की मर्यादा दिन एक में सेर....सुपारी, इलायची आदि मुँह साफ करने के लिये दिन एक में सेर...जूते, चम्पल, जुराब खडाऊ आदि एक वर्ष में जोडे...वाहन तीन प्रकार के (१) तांगा बग्गी, रथ, बैलगाडी जिन्हे जानवर खेंचते हैं एक दिन में संख्या....(२) हाथी, ऊँट, घोडे, खच्चर की सवारी करना एक दिन में संख्या....(३) नाव, पानी का जहाज, समुद्र, नदियों को पार करने के लिये एक दिन में संख्या....मोटर, साइकिल, रेलगाडी, विमान एक दिन अथवा एक मास में संख्या....सोने, बैठने के बिस्तर, कुर्शी, टेबिल या मेज, पलंग, तख्त एक

दिन में नंग....पालकी में बैठना पडे तो महिने एक में कितने दफे....सब प्रकार के सचित्त द्रव्य एक दिन में नंग....सचित्त-अचित्त दोनों द्रव्य एक दिन में नंग....इनके उपरांत नियमानुसार छब्बीस बोल की मर्यादा करी है इन मर्यादाओं को श्रावक एक करण तीन योग से ग्रहण करता है पच्चक्खाण करता है। एक दिन की जगह एक महिना या एक वर्ष की मर्यादा कर लेनी। ए मर्यादा खुद के लिये है। सातमें व्रत में बीस अतिचार हैं जिस में भोजन के पांच अतिचार हैं। त्यागी हुई सचित्त वस्तु जब तक अचित्त नहीं हुई हो, तब तक खाने योग्य नहीं है। सचित्त के साथ अचित्त वस्तु लगी हो वह वस्तु खाने के योग्य नहीं है। बिना पकी हुई वस्तु खानी नहीं। आधी कच्ची और आधी पक्की वस्तु खाने का नहीं। असार वस्तु खाने की नहीं कारण कि उसमें खाने का थोडा किंतु फेंकने का ज्यादा होता है।

## पंदरह कर्मादान

१ इंगालकर्म—चुना, इंट, नलिया, कोयला, मिट्टी के वर्तन आदि अग्नि में पकाने से बनते हैं इस प्रकार भट्टी बनाकर पकाने का व्यवसाय नहीं करना। घर के उपयोग के लिये इन चीजों का आगार। कोयले की खान में से कोयला निकलता है उसका व्यवसाय करना पडे तो एक वर्ष में रू....कुंभार, लुहार, सुनार, ठठेरा का व्यवसाय करना पडे या उनके बनाई हुई वस्तुओं का व्यवसाय करना पडे तो एक वर्ष में रू....रूई की मील जीन, कपडे की मील या दूसरे कारखानों में इनके वने हुये सामान का व्यापार करना पडे तो एक वर्ष में रू....

२ वनकर्म–हरेभरे वृक्ष कटवाना, जंगल का ठेका लेना ये व्यवसाय करना नहीं। आजिविका के लिये ऐसे व्यापार करने का पच्चक्खाण। सुखे हुये लकडे का व्यवसाय करना पडे तो एक वर्ष में रू....

३ शकटकर्म–तांगा, रथ, बैलगाडी, थेले आदि वाहनों को बनाकर बेचने का व्यवसाय करना नहीं

४ भाडिकर्म–तांगागाडी, पशुगाडी किराये पर देना नहीं। घर के काम के लिये आगार।

५ स्फोटक-कर्म–वन, पत्थर आदि खोदने तथा चक्की चलाना नहीं। घरके काम में जरूरत पडे तो एक वर्ष में रू....

६ दंतवाणिज्य–हाथी को मार कर उसके दांत का व्यापार करना नहीं। तैय्यार दांत का व्यापार करना पडे तो एक वर्ष में रू....

७ केशवाणिज्य–पशु पक्षी के पंखो का, चर्म का व्यापार करना नहीं। दास, पशु, नौकर आदि का व्यापार करना नहीं।

८ रसवाणिज्य–मदिरा, मक्खन, शहद, मांस, चरबी आदि व्यापार के पच्चक्खाण। घी, तेल, शरबत का व्यापार करने का एक वर्ष में रू....का आगार।

९ लाक्षवाणिज्य–लाख, फटकडी, खार आदि का व्यापार करना नहीं। यदि पहिले से व्यापार इनका करते हो तो एक वर्ष में रू....

१० विषवाणिज्य–अफीम, संखिया आदि जहरीले पदार्थों का व्यापार करना नहीं। अफीम का व्यापार यदि करना पडे तो एक वर्ष में रू....चाकु, छुरी आदि का व्यापार करना पडे तो एक वर्ष में रू....

११ यंत्रपीडन कर्म–तिल, गन्ना, कपास आदि पीलने का व्यापार करना नहीं। जिन्होंने पहिले से इन व्यापार को कर रक्खा हो वे मर्यादा करलें। नये रूप में इन व्यवसाय को नहीं करे। मील, जीन, घाणी, चर्खा नंग....इनमें माल पीलने का मण.... इसके अलावा इन कारखानों को पैसा उधार देना पडे या भागीदारी रखनी पडे तो आगार।

१२ निलम्घिन कर्म–मनुष्य या जानवर के अंगों को छेदने का, उनको नपुंसक बनाने का–ऐसे व्यापार करने का पच्चक्खाण। यदि कोई रोग के कारण ऐसा करना

करवाना पडे उसका आगार।

१३ दावाग्निदापन कर्म—जंगल में या अन्य जगह आजिविका अर्थे आग लगाना नहीं

१४ सरद्रहतालाबशोषण कर्म—तलाव, नदी, सरोवर आदि जलाशय सुखाने का कार्य आजिविका के लिये करना नहीं इसके पच्चक्खाण।

१५ असतीजन पोषण कर्म—शिकार के लिये कुत्ते, बिल्ली आदि हिंसक पशु को रखना नहीं, वैश्या आदि रखना नहीं। अकुकंपा अर्थे रखने का आगार।

इन पंद्रह कर्मादान में यदि किसी को व्यापार करना पडे तो रू....आगार है नौकरी के कारण, सेठ के हुकम से, राजा के हुकम से, दुकाल, विषम विपत्ति के कारण।

व्यसन—खराब व्यसन जुआ खेलना, मांस खाना, शराब पीना, वैश्यागमन करना, परस्त्री से भोग करना, शिकार करना, चोरी करना, गांजा, चरस पीना, नसे के लिये अफीम खाना आदि हैं इन सब व्यसनों को करना नहीं। यदि अफीम, गांजा,

चरस का पहिले से व्यसन हो तो एक महिने में रू....! बीडी, सिगरेट, चिलम, हुक्का पीना नहीं। यदि पहिले से व्यसन हो तो एक दिन में केवल वार....के उपरांत नियम ले लेना।

मूलम्--आंठवा अनर्थदण्ड व्रत--अणट्ठादण्ड वेरमणव्रत चउव्विहे अणत्थदण्डे पन्नत्ते तं जहा--अवज्झाणचरिये, पमायाचरिये, हिंसप्पयाणे, पावकम्मोवएसे, एवं आठवें अणट्ठादण्ड सेवन करने का पच्चक्खाण (जिसमे आठ आगार आए वा, राए वा, नाए वा, परिवारे वा, देवे वा, नागे वा, जक्खे वा, भूए वा, ऐतिएहिं आगारेहिं अणत्थ जावज्जीवाए दुविहं, तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, एवं आठवां अणत्थदंड विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा--कंदप्पे, कुकुईए, मोहरीए, संजुत्ताहिगरणे, उवभोग परिभोग अईरत्ते।

आठवुं अनर्थदण्ड व्रत—निरर्थक आर्त्त और रौद्र ध्यान में संलग्न होना नहीं। दुःख पडने पर रोना-धोना करना नहीं, लोकाचार प्रमाणे करना पडे इसका आगार,

प्रमादवश दूसरे कि निन्दा करना नहीं, बुरा चिंतववुं नहीं यदि कभि ऐसे विचार हो जाय तो ज्ञानबोध से ऐसे विचारों को मन से दूर हटाना चाहिये और पश्चात्ताप करना चाहिये। खराब ध्यान के कारण आपघात करना नहीं—कुए में पडकर, जहर खाकर या गले में फांसी लगाकर, हीराकणी चूस कर अपना आपघात कभी करना नहीं। किसी को फांसी लगती होय तो वहां देखने जाना नहीं। प्रमादवश निरर्थक जीवहिंसा होय इस प्रकार घी, तेल आदि को खुले रखना नहीं। संमुर्च्छिम उत्पन्न होय इस प्रकार गंदगी करनी नहीं। हिंसाकारी साधनों का संग्रह करना नहीं। बिना कारण किसी को पापकारक उपदेश करना नहीं, गलत सलाह देनी नहीं! भोगोपभोग की सामग्रियों को जुटाना नहीं।

आठवां अणुव्रत का पांच अतिचार—कंदर्प-व्यर्थ ही कामवासना संबंधी बाते करना नहीं। कामक्रीडा कुचेष्टा करना नहीं। मर्मभेदक वचन बोलना नहीं। हिंसा-

कारक साधनों संग्रह करना नहीं। भोगोपभोग की अधिक वस्तु संग्रह करना नहीं।

नवमां सामायिक व्रत-मूलम्-सवसावज्जं जोगं पच्चक्खामि जाव नियमं पज्जुवासामि, दुविहं, तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा ऐसी सद्दहणा परूपणा करके सामायिक का अवसर आवे सायायिक करूं, तब फरसना करके शुद्ध होऊं, ऐसे नवमें सामायिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरिव्वा तं जहा--मणदुप्पणिहाणे काय दुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया।

नवमां सामायिक व्रत—वर्ष एक में सामायिक करनी रहजाय तो वन सके जहां तक लिये हुये नियमानुसार पूरी करनी चाहिये किंतु उसमें रोग के कारण, बुढापे के कारण, परवशता के कारण का आगार। जहां तक अपनी शक्ति बने छः कोटिये जीवन पर्यंत के लिये इस व्रत के पांच अतिचार टालना चाहिए। मणदुप्पणिहाणे-सामायिकमा मन के दस दोष, वयदुप्पणिहाणे--वचन पापकारी सामायिक में बोले

उसके दस दोष, सामायिक में (कायदुप्पणिहाणे) काया के बारह दोष की पापाकारी प्रवर्ती (सामाइयस्सई अकरणया) सामायिक की स्मृति नहीं रखकर भूल जाना (सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया) अव्यवस्थित रूप से सामायिक करना समय से पूर्व पारना।

## शिक्षाव्रतानि (४)

इह संबुता सिक्खा परमपययातिसाहिया किरिया।
तब्बहुलाई वयाइं जाइं सिक्खावयाइं एयाइं ॥१॥
सामाइयं च देसावगासियं पोसहोववासी य। अइहीण संविभागी, इच्चेवं त्ताणि चत्तारि॥२॥

### (१ सामायिकव्रतम्)

जो सव्वजीवेसु समाणभावो अरागदोसेण समो इहेसो।
एयस्स आयो कहिओ समायो सामाइयं होइ वयं तयत्थं ॥३॥
चाओ सावज्जजोगाणं णिरवज्जाण सेवणं। आवस्सगं वये अस्सि–मुभयं किंति बुच्चइ ॥४॥

कम्माणं पावहेऊणं कालओ परिवज्जणं। सावज्जजोगसंघाओ णेओ हव्व जिणागमे ॥५॥
सुद्धाणं किरियाणं जं, सव्वहा परिपालणं। तमेयं णिरवज्जक्ख—जोगसेवणमीरियं ॥६॥
समतापतये चऽस्सो—भयस्सावस्सगत्तणं। तम्हा एयं दुगं कल्लं जयणेण समायरे ॥७॥
वोच्छं सामाइस्सास्स वयस्सायरणे विहिं। समणस्संतिए गच्चा कुज्जा सामाइयव्वयं ॥८॥
जं वा पोसहसालाए उज्जाणे वा गिहेवि वा। सुविवित्ते थले ठिच्चा अणुचिट्ठे जहिं-कहिं॥९॥
धओ तरीओ परिहाणवत्थं तहेव मुत्तेगदसं वसाणी।
बद्धुं सदोरं मुहवत्तिमासे पमड्ढभूसंथरियासणट्ठो ॥१०॥
सणमुक्करणो रसा तयाणिं समणं वा जिणमेव वंदिऊणं।
इरियावहिया विहाणजुत्तो समणाणाअ चरे य काउसग्गं ॥११॥
तओ पठिय 'लोगस्स' पाढं सड्ढी समाहिओ। समणस्स मुहा विन्न-सावगस्स मुहा वि वा ।१२।
तयभावे सयं वावि पसन्नया वियक्खाणी 'करेमि भंते' इच्चस्स पाठं किच्चा जिइंदिओ ॥१३॥

दोहिं करणओ तीहिं जोएहिं य जहिच्छियं । गिण्हिज्जा समणोवासी वयं सामाइयं सया ।१४।
'णमोत्थु णं'-ति तप्पच्छा दुवारं पपढे सुही । समणं वद्धमाणं वा वंदिऊण तहा पुणो ।१५।
समिइपंचग-गुत्तितिगासिओ ववहरे य मुणीव समाहिओ ।
पवयणामियसायवसंगओ णियसरूवविचिंतणतप्परो ॥१६॥
सज्झाय-ज्झाणओ धम्म-चच्चाए य मुहू मुहू ।
अणुचिट्ठे वयं सामाइयं दोसविवज्जियं ॥१७॥इति॥

शिक्षाव्रत (४)

परम पद को (मोक्ष) प्राप्त करने की कारणभूत क्रिया को शिक्षा कहते हैं। शिक्षा के लिए व्रत या शिक्षा–प्रधान व्रत शिक्षाव्रत कहलाते हैं, अर्थात् शिक्षाव्रत वे हैं जिन्हे बारम्बार सेवन करना पडता है। शिक्षाव्रत चार हैं (१) सामायिक (२) देशावकाशिक (३) पोषधोपवास और (४) अतिथिसंविभाग।

(९ वें व्रत का वर्णन)

(१) सामायिक—समभाव का आय (प्राप्त) होना समाय है, और समायके लिए की जानेवाली क्रियाकों सामायिक कहते हैं। समस्त सुखों के साधन और प्राणीमात्र को अपने समान देखनेवाले ऐसे समता—भाव की प्राप्ति के लिए सामायिक व्रत का अनुष्ठान किया जाता है। इस में सावद्य योग का त्याग और निरवद्ययोग का सेवन करना आवश्यक है। मन—वचन और काया के पापजनक व्यापारों का काल की मर्यादा करके त्याग कर देना सावद्ययोग परित्याग है और शुद्ध क्रियाओं में प्रवृत्ति करना निरवद्ययोग का प्रतिसेवन हैं। समताभाव की प्राप्ति करने के लिए ये दोनों समान रूप से उपयोगी है, अतः सावद्ययोग के त्याग करने की जैसे निरवद्ययोग में प्रवृत्ति करने का भी प्रयत्न करना चाहिए।

इस व्रत के आचरण की विधि इस प्रकार है—

मुनिके समीप, पौषधशाला में, उद्यान में या स्व परके ग्रह में अर्थात् जहां मनमें संकल्प–विकल्प न उठे और चित्त स्थिर रहे, ऐसे किसी भी एकान्त स्थान में मुक्तैकदेश होकर अर्थात् धोती की एक लांग खुली रखकर उत्तरासण (दुपट्टा) ओडकर रजोहरण से अथवा पूंजणी से भूमि को पूंजकर और बैठने के आसन (पथरणा) को पलेवण करके यतनापूर्वक बिछे हुए आसन पर बैठ कर; अथवा शक्ति हो तो खडा रहकर मुहपत्तिका और दोरा का पडिलेहण करके डोरासहित मुखवस्त्रिका मुख पर बांध कर 'णमोक्कार' मंत्र बोल कर यदि साधुजी हो तो उन्हें वन्दना करके उनसे सामायिक की आज्ञा लेकर श्रावक, क्रमसे ऐर्यापथिक कायोत्सर्ग पालन करे और साधुजी न हो तो बडे श्रावक की आज्ञा लेकर सामायिक करे। इसके पश्चात् 'लोगस्स' का पाठ करे। फिर साधुजी से या विद्वान् श्रावक से अथवा अपने ही मुख से 'करेमि भंते' के पाठ

द्वारा दो करण तीन योगों से इच्छानुसार एक दो तीन आदि सामायिक ले लेवें। इसके पश्चात् नीचे बैठ के 'नमोत्थु णं' का दो बार पाठ करे। फिर श्रमण (साधु) या श्री महावीरस्वामी की वन्दना करके, नीचे लिखी हुई विधि के अनुसार पांच समिति तीन गुप्ति की आराधना करता हुआ मुनि के जैसा अप्रमादी होकर विचरे। अर्थात्–स्वाध्याय, ध्यान, धर्मचर्चा आदि करता हुआ बारम्बार निर्दोष सामायिक में रहे।

सामायिक सम्बन्धी प्रश्नोत्तर सामायिक के भाजन चार प्रकार के है जैसे–द्रव्य क्षेत्र, काल भाव सामायिक का द्रव्य–भव्य जीव सामायिक का क्षेत्र–त्रसनाल अन्य-क्षेत्र मे नहीं। सामायिक काल-देश उणा अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल, सामायिक भाव–क्षयोपशमिक भाव में

## सामायिक का प्रणतिचार

द्रव्य थकी–सावद्ययोगो की निवृत्ति क्षेत्र थकी–लोक प्रमाणे काल थकी मर्यादा-

पूर्वक जैसे १–२–३ आदि भावथकी—करणयोग की

## सामायिक शुद्धताचार

द्रव्य से शुद्ध द्रव्य बैठा पूंजणी मुखपति माला सामायिक का क्षेत्रशुद्ध—एकान्त निर्विघ्न स्थान सामायिक का भावशुद्ध कालपूर्ण हो तब तक सामायिक का भावशुद्ध ३२ दोषो पर दृष्टि त्याग करें अल्पबहुत्व—सामायिक में सब से थोडा काल स्पर्शा, उनसे क्षेत्र असंख्यातगुणा स्पर्शा उनसे द्रव्य अनंतगुणा स्पर्शा, उनसे भाव अनंतगुणा

सामायिकं की भावना के विषय में गोतभस्वामी के प्रश्न का भगवान् का उत्तर—'गोयमा' हे गौतम ! 'तस्स णं एवं भवइ, णो मे हिरण्णे, णो मे सुवण्णे, णो मे कंसे, णो मे दूसे' यह बात बिलकुल ठीक है कि सामायिक धारण करनेवाले व्यक्ति की जब तक वह सामायिक में स्थित है ऐसी ही भावना रहती है कि हिरण्य (चांदीरूप-धातु) मेरा नहीं है, सुवर्ण मेरा नहीं है कांस्यपात्र विशेष मेरा नहीं है वस्त्र मेरे नहीं है

'णो मे विउलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमादीए संतसारसावएज्जे' इस प्रकार विपुल धन गुडशर्करादिक कनकसुवर्णकर्केतन आदि रत्न, चन्द्रकान्त आदि मणिगण मौक्तिक, शंख शुभसूचक शिलाखण्डविशेष, मूंगा पद्मरागादिकरत्न ये सब परंपरा से उपार्जित किया हुआ मौजूदा सारभूत द्रव्य मेरा नहीं है; इस प्रकार वह हिरण्यादि परिग्रह का 'द्विविधं त्रिविधेन' के अनुसार प्रत्याख्यान करता है। इसीलिये वह अपने भाण्डकी सामायिक से उठने के बाद गवेषणा करता है ऐसा कहा है। यही बात 'ममत्तभावे पुण से अपरिण्णाए भवइ' इस सूत्रद्वारा समझाई गई है। अर्थात् सामायिक करने के निमित्त उतारे गये वस्त्रादिकों की अथवा घर में रखे हुए पदार्थों की की जिन्हें चोरने चुरा लिया है उसने सामायिक करते समय उनमें अनुमतिरूप ममताभाव का प्रत्याख्यान नहीं किया था इस कारण वह सामायिक के बाद अपने भाण्ड की गवेषणा करता है। दूसरे के भाण्ड की गवेषणा नहीं करता। अर्थात् जिन भाण्डों

की वह गवेषणा कर रहा है वे भाण्ड उसीके हैं अनुमति का त्याग नहीं करने से वे उसके स्वामित्व से बहिर्भूत नहीं हुए हैं।

'तस्स णं एवं भवइ, णो मे माया, णो मे पिया णो मे भाया, णो मे भगिणी' हे गौतम! कृत सामायिकवाले उस श्रमणोपासक के मनमें ऐसा विचार आता है कि मेरी माता नहीं है, मेरा पिता नहीं है, मेरा भाई नहीं है, मेरी बहिन नहीं है 'णो मे भज्जा, णो मे पुत्ता, णो मे धूया, णो मे सुण्हा' मेरी भार्या नहीं है, मेरा पुत्र नहीं है, मेरी लड़की नहीं है, मेरी पुत्रवधू नहीं है। इस प्रकार से प्रभु का उत्तर सुनकर अब

आशंका के समाधान निमित्त 'पेज्जबंधणे पुण से अवोच्छिन्ने भवइ' प्रभु कहते हैं कि हे गौतम! उस श्रावक का प्रेमबन्धन ममताभाव जो कि अनुमतिरूप है उसके साथ व्युच्छिन्न नहीं हुआ है। तात्पर्य कहने का यह है कि उसने जो सावद्ययोग का परित्याग किया है वह मन, वचन, काय इनकी दो कोटि से कृतकारित से किया है न कि इनकी अनुमति से। (भ. सूत्र श. ८ उ. ५ सू. १)

मूलम्—तए णं से संखे समणोवासए ते समणोवासए एवं वयासी—तुब्भेणं देवाणुप्पिया ? विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेह, तएणं अम्हे तं विपुलं असणं पाणं खाइमं आसाएमाणा, विसाएमाणा, परिभाएमाणा, परिभुंजेमाणा, पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणा विहरिस्सामो। तएणं ते समणोवासगा संखस्स समणोवासगस्स एयमट्ठं विणएणं पडिसुणंति। तए णं तस्स

संखस्स समणोवासगस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—नो खलु मे सेयं तं विउलं असणं जाव साइमं आसाएमाणस्स, विसाएमाणस्स, परिभुंजेमाणस्स, परिभाएमाणस्स पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणस्स विहरित्तए, सेयं खलु मे पोसहसालाए पोसहियस्स बंभयारिस्स उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स, ववगयमालावन्नगविलेवणस्स निक्खित्तसत्थमुसलस्स, एगस्स अबिइयस्स दब्भसंथारोवगयस्स पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणस्स विहरित्तए तिकट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेता जेणेव सावत्थी नयरी, जेणेव सए गिहे, जेणेव उप्पला समणोवासिया तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता, उप्पलं समणोवासियं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता, जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता, पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जिता, उच्चारपासवण-

भूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता, दब्भसंथारगं संथरइ, संथरित्ता, दब्भसंथारगं दुरूहइ, दुरूहिता, पोसहसालाए पोसहिए, बंभयारी जाव पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणे विहरइ।

'तएणं से' इत्यादि।

अर्थ–इस सूत्रद्वारा सूत्रकारने शंख श्रमणोपासक का ही वर्णन किया है। [तए णं से संखे समणोवासए ते समणोवासए एवं वयासी] इसके बाद उस श्रमणोपासक शंखने उन श्रमणोपासकों से ऐसा कहा–[तुब्भेणं देवाणुप्पिया विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेह] देवानुप्रियो! आप लोग विपुल मात्रा में अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप आहार को तैयार करवाओ [तएणं अम्हें तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभुंजेमाणा पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणा विहरिस्सामि] तब हम लोग उस चारों प्रकार के आहार से क्षुधा को शांत करते हुए,

तथा एक दूसरे के लिये भी उसे देते हुए इस प्रकार करते हुए हम लोग पाक्षिक पौषध करेंगे [तएणं से समणोवासया संखस्स समणोवासगस्स एयमट्ठं विणएणं पडिसुणंति] जब श्रमणोपास शंखने श्रमणोपासकों से ऐसा अपना हार्दिक अभिप्राय कहा—तब उन श्रमणोपासकों ने उसके कथन रूप अर्थ को विनयपूर्वक स्वीकार कर लिया [तए णं तस्स संखस्स समणोवासगस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था] इसके बादही श्रमणोपासक उस शंख के मनमें ऐसा चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित संकल्प उत्पन्न हुआ [नो खलु मे सेयं तं विउलं असणं जाव साइमं आसाए माणस्स विसाएमाणस्स परिभुंजेमाणस्स पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणस्स विहरित्तए] कि मुझे इस प्रकार से पाक्षिक पौषध करना योग्य नही हैं चारों प्रकार का आहार करता रहूं और पाक्षिक पौषध भी करता रहूं अपि तु–[सेयं खलु मे पोसहसालाए पोसहियस्स बंभयारिस्स उम्मुक्कमणिसुवन्नस्स] ऐसा करना ही उचित है कि मैं पौषधशाला में बैठूं और पौषध

करूं, ब्रह्मचर्यपूर्वक रहूं और मणिसुवर्ण आदि का सर्वथा त्याग कर दूं [ववगयमालावन्नविलेवणस्स निक्खित्थमुसलस्स एगस्स अबिइयस्स, दब्भसंथारोवगयस्स] मालावर्णक का और मर्दन कराने का त्यागपूर्वक, मुशल आदि शस्त्र का परित्यागपूर्वक दर्भ के आसन उपर बैठूं [पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणस्स विहरित्तए तिकट्टु एवं संपेहेइ] क्योंकि इस स्थिति में रहकर पालित किया गया पाक्षिकपौषध–पौषधोपवास मुझे अधिक श्रेयस्कर होगा, क्योंकि पूर्वपौषध की अपेक्षा यह पौषध विशिष्टनिर्जरा का हेतु होता है– इस प्रकार से उसने पौषध करने का निश्चय किया 'संपेहित्ता जेणेव सावत्थी नयरी, जेणेव सए गिहे, जेणेव उप्पला समणोवासिया तेणेव उवागच्छइ' इस प्रकार निश्चय करके वह जहां श्रावस्ती नगरी थी और उसमें भी जहां अपना घर था और उसमें भी जहां वह श्रमणोपासिका उत्पला थी वहां आया 'उवागच्छित्ता उप्पलं समणोवासियं आपुच्छइ' वहां आकर के उसने श्रमणोपासिका उत्पला से पूछा–'आपुच्छित्ता जेणेव

पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ' पूछकर फिर वह जहां पर पौषधशाला थी वहां पर गया 'उवागच्छित्ता पोसहसालं अणुपविसइ' वहां जाकर के उसने पौषधशाला में प्रवेश किया 'अणुपविसित्ता पोसहसालं पमज्जइ' वहां प्रवेशकर उसने पौषधशाला का प्रमार्जन करके फिर उसने उच्चारपासवणभूमि की प्रतिलेखना की 'पडिलेहित्ता दब्भसंथारगं संथरेइ' प्रतिलेखना करके फिर उसने दर्भ का संथारा बिछाया 'संथरित्ता दब्भसंथारगं दुरूहइ' दर्भ का संथारा बिछाकर फिर वह उस दर्भ के संथारे पर बैठ गया 'दुरूहित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी जाव पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणे विहरइ' संथारे पर बैठ कर पौषधव्रत को धारण किये हुए वह ब्रह्मचर्य को पालता हुआ यावत्—मणि और सुवर्ण का त्यागी, माला और विलेपन का परिहार करनेवाला, एवं मुशलसे विरक्त बना हुआ, अकेला एवं दर्भ के आसन पर बैठ कर पाक्षिकपौषध का पालन करने लगा।

दसवां व्रत दो प्रकार का होता है (१) सिद्धान्त की दृष्टि से छठा और सातवां व्रत में

जाव जीव के लिए की गई व्यापक मर्यादा को एक दिन रात के लिये संक्षिप्त करनी है

(२) परंपरा की दृष्टि से दसवां व्रत होता है--उस में २४ घंटा (अहोरात्र) उपाश्रय में रहकर छकाय जीवों को अभयदान देनेरूप संवरकरणी करनी चाहिए, उसमें कोई गृहस्थ आहार के लिये आहार देवें और अपने घर से आहार मंगवाकर आहार करे अथवा तो स्वयं गोचरी कर आहार लावे और आहार करे तो कर सकता है इस को दयाव्रत कहा जाता है इस में उपवास अथवा एकासणा करना फर्जियात नहीं है इस दूसरे प्रकार में भी प्रथम के जैसा संक्षिप्त मर्यादा एक दिन के लिये धारने की है.

दसवां देशावकाशिक व्रत—मूलम्—सुवह दिन प्रभात से आरंभ करके रात तक पूर्वादिक छ दिशाओं कि जितनी भूमिका की मर्यादा रखी हो उसके अलावा पांच आश्रव सेवा का पच्चक्खाण, 'जाव अहोरत्तं दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा, वयसा, कायसा'—जितनी भूमि की मर्यादा रक्खी, जितनी द्रव्यादिक

की मर्यादा की है, उसके उपरांत उपभोग परिभोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण, 'जाव अहोरत्तं एगविहं तिविहेणं न करेमि, मणसा, वयसा, कायसा' ऐसे दशवें देशावकाशिक व्रत के 'पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा--आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, वहिया पुग्गलपक्खेवे—

दशवां देशावकाशिक व्रत—एक वर्ष अहोरात्र का संवर नंग....तथा देशावकाशिक नंग....करने का कहीं होसके तो सामायिक....करके या दिन....के चौथा व्रत का पालन करना चाहिये। छःकोटी जीवनपर्यन्त इस व्रत के पांच अतिचार टालना १ मर्यादित क्षेत्र में उपयोग के लिये मर्यादितक्षेत्र के बाहर की वस्तु दूसरों से मंगवाना २ मर्यादा के बाहर दूसरों के साथ वस्तु को भेजना। ३ मर्यादित क्षेत्र के बाहर रहे हुए व्यक्ति से शब्द आदि का इशारा करके कार्य कराना। ४ दूसरे को रूप दिखाकर अथवा हाथ आदिका संकेत करके वस्तु मंगाना। ५ कंकड, पत्थर आदि फेंककर संकेत करना।

ये पांच अतिचार टाल कर दशवां व्रत का पालन जावजीव तक तीन कोटी तथा छ कोटि में पालन करना।

ग्यारहवां पोषधोपवास व्रत–मूलम्–'पडिपुन्न पोसहोववासं' असणपाणं खाइमं साइमं का पच्चक्खाण, मालावन्नगविलेवण का पच्चक्खाण, सत्थमुसलादिक सावज्ज जोगसेवन का पच्चक्खाण 'जाव अहोरत्तं पज्जुहसामि दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा', ऐसी सद्दहणा, परूवणा तो है, पौषध का अवसर आने से पौषध करूं, तब फरसना करके शुद्ध होऊं, एसे ग्यारहवां पडिपुन्नपोषध व्रत के 'पंच अइयारा जाणियव्वा न समारियव्वा तं जहा--'अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सिज्जा संथारए २, अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय सिज्जा संथारए ३, अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमि ४, अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय उच्चारपासवणभूमि ५, पोसहोववासस्स सम्मं अणणुपालणया'। ग्यारहवां पौषधव्रत, एक वर्षमां पौषध संख्या....करना। यदि पौषध नहीं कर

सके तो सामायिक २५ करके एक पौषध समझना या पौषध नियम की पूर्ति करना।

२५ सामायिक नहीं कर सके तो दो दिन का उपवास (बेला) करलेना या उपवास एक २ करलेना या ८ दिन हरी सब्जी का त्याग करलेना इस प्रकार पौषध का नियम लिया हुआ करके उसको पौषध समझ लेना। इसमें रोग के कारण, अवस्था के कारण यदि नियमानुसार नहीं हो सके तो दूसरे वर्ष में बाकी रहे हुए पौषध पूरे करना। इसके पांच अतिचार टालना है। (१) उपाश्रय तथा शय्या को बिना देखे या अच्छी प्रकार देखे बिना प्रयोग करे। (२) शय्या का उपयोग पूंजे बिना या अच्छी प्रकार पूंजे बिना प्रयोग करे। (३) बिना देखे या अच्छी प्रकार देखे बिना लघुशंका आदि के स्थानों का प्रयोग करे। (४) बिना पूंजे या अच्छी प्रकार पूंजे बिना लघुशंका आदि के स्थानों का प्रयोग करे। (५) पौषध का विधिपूर्वक पालन नहीं करे। उपर्युक्त दोषों को टालकर जीवनपर्यंत छःकोटि से प्रतिपूर्ण पौषध करना

अगारि सामाइयंगाणी, सड्ढीका अणफासओ।
पोसहं दुहओ पक्खं एगरायं न हावए॥

गृहस्थपण सामायिक श्रुतचारित्ररूप अंगोनु श्रद्धापूर्वक मन वचन कायाथी पालन करे महिने का छ पौषध करे एक रात्रि की भी हानि न करे।

एव्वं सिक्खा समावन्ने गिहिवासे वि सुव्वये।
मुच्छई छ वि पव्वाओ, गच्छे जक्खसलोगयं॥

आवी रीते गृहस्थावासमां रहेनार सुव्रतोनु पालन करवाथी औदारिक शरीर छोडीने यक्ष नामक देवलोकमां जाय छे.

बारहवां अतिथि संविभाग व्रत—मूलम्–समणे निग्गंथे फासुएणं एसणिज्जेणं, असणपाणखाइमसाइमेणं, वत्थपडिग्गहकंबलपायपुंछणेणं पडिहारिएणं पीढफलगसिज्जा संथारएणं, ओसहभेसज्जेण य पडिलाभेमाणे विहरामि। ऐसी हमारी सद्दहणा, परूवणा

है, साधु–साध्वी का योग मिलने पर निर्दोष दान दूं तब शुद्ध होऊं। ऐसे बाहरवें अतिथि संविभाग व्रत के 'पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा–१ सचित्त निक्खेवणया, २ सचित्त पिहणया, ३ कालाइक्कमे, ४ परोवएसे, ५ मच्छरियाए।

बारहवां अतिथि संविभाग व्रत—साधु–साध्वी को निर्दोष आहार, पानी, चौदह प्रकार का दान देना। यदि साधु–साध्वी का योग नहीं मिले तो भावना भाना। गोचरी के लिये आये साधु-साध्वीजी को असुजतुं आहार नही हों, यदि कारण से असुजतुं होय तो दिन पांच के लिए एक विगय (दूध, दहीं, घी, तेल, चीनी) का त्याग करना। इस व्रत के पांच अतिचार टालना जरूरी है। १ 'सचित्त निक्खेवणया' साधु को नहीं देने की बुद्धि से निर्दोष और अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु पर रख देना जिस से वे नही ले सके। २ 'सचित्त पिहणया' अचित्त वस्तु को सचित्त से ढक देना। ३ 'कालाइक्कमे' गोचरी के समय को चुका देना। ४ 'परोवएसे' स्वयं की भावना नहीं

देने की होने से दूसरों को देने के लिये कहना। ५ 'मच्छरियाए' दान देकर अहंकार करना अथवा दूसरे दाताओं से ईर्षा करना।

ये पांच अतिचार टाल कर बारहवां व्रत का पालन जीवनपर्यन्त करना। बारहवां व्रत लेनेवाले प्रत्येक श्रावक श्राविकाओ हमेशा सत्पात्रे दान करवुं। शंकित आदि व्रत ग्यारह लिए हैं उन्हें शुद्ध भाव से जीवन सुधि पालना। उसमें रोग, बुढापा, परवश, काल दुकाल, देवा के कारण, मेल–मिलाप, विदेश जाने पर आगार। सर्व व्रतों को समझना किन्तु बन सके वहां तक थोडा सा भी दोष व्रतों के पालने में लगाना नहीं।

बारह व्रत समाप्त

जं किंचिउ पूइकडं सड्ढी मागंतु सीहियं। सहस्संतरियं भुंजे दुपक्खं चेव सेवइ ॥१॥
तमेव अवियाणंता विसमंसि अकोविया। मच्छा वेसालिया चेव उदगस्सऽभियागमे ॥२।

अथ उद्गम का १६ दोष—(दातारसुं लागे)

मूल गाथा—आहाकम्मुद्देसियं पूईकम्मेयं मसिजाएं य।
ठवणा पाहुडियाए पाओअरं कीयपामिच्चे ॥१॥
परियट्टिएं अभिहडे उब्भिन्ने मालोहडे इय।
अच्छिज्जे अणिसिट्ठे अज्झोयरए य सोलसमे ॥२॥

१ आहाकम्मे—साधु के निमित्त बनावे ते दोष २ जिस साधु के लिए आधाकर्मी आहार बनाया है वही साधु ले तो उसको आधाकर्मी दोष लगे। और दूसरा साधु ले तो उद्देसिय दोष लगे। ३ सूजता आहार मांहि आधाकर्मी का अंशमात्र भी मिल जाय 'हजार घर के आंतरे भी आधाकर्मी आहार का अंश मात्र मिल जाय' तो दोष। ४ आपरे वास्ते और साधु रे वास्ते भेला रांधे तो दोष। ५ साधु निमित्त असनादि आहार स्थापकर रखे दूसरे को न दे तो दोष। ६ साधु अर्थे पावणा आघा पाछा करे तो दोष। ७

अंधारा में भी प्रकाश करके देवे तो दोष। ८ साधु निमित्त आहार वस्त्र और पात्र आदि मोल लाकर तथा उपाश्रय बेचाता लेकर देवे तो दोष। ९ साधु निमित्त आहारादि उधार लाकर देवें तो दोष। १० साधु निमित्त अपनी वस्तु देकर बदले में दूसरी वस्तु लाकर देवे तो दोष। ११ आहारादि देने के निमित्त अथवा साथ साथ जाकर देवे तो दोष सामने जाकर आहारादि देवे तो दोष। १२ लेपनादिक (छांदा) खोलकर देवे तो दोष। १३ सीडी-नीसरणी लगा कर ऊंचे नीचे तीरच्छे से वस्तु नीकाल कर देवे तो दोष। १४ निरबल से सबल जबरदस्ती दिलवावे या खूस कर देवे ते दोष। १५ दो के सीर की वस्तु एक दूसरे की विना मरजी देवे तो दोष। १६ अगाडी आंधण मांहि साधु आया जाण अधिक ऊर देवे तो दोष ॥इति उद्गम का १६ दोष गृहस्थ साधु को लगता है॥

॥ अथ उत्पाद का १६ दोष—(जीम्यारे लोलुपीपणा से साधु लगावे)

मूलम्—धाई दूई निमित्ते आजीवे वणीमग्गे तिगिच्छाय।

कोहे[9] माणे[10] माया लोभे[11] य हवंति दस एए ॥३॥
पुव्वि-पच्छा संथव[11] विज्जा[12] मंते[13] य चूर्ण[14] जोगे[15] य।
उप्पायणाइ दोसा सोलसमे मूलकम्मे[16] य ॥४॥

१ घायेरा काम करके आहारादि लेवे ते दोष। २ दूतपना याने गृहस्थ का सन्देशा पहुंचाकर आहारादि लेवे ते दोष। ३ भूत भविष्य वर्त्तमानकाल के लाभालाभ सुख-दुःख जीवित मरणादि बतला कर आहारादि लेवे ते दोष। ४ अपना जाति कुल आदि प्रकाश कर आहारादि लेवे ते दोष। ५ रंक भीखारी के जैसा दीनपना से मांगकर आहारादि लेवे ते दोष। ६ वैद्यकी करके आहारादि लेवे ते दोष। ७ क्रोध करके आहारादि लेवे ते दोष। ८ अहंकार करके लेवे ते दोष। ९ कपटाई करके लेवे ते दोष। १० लोभ करके अधिक आहारादि लेवे, अथवा लोभ बतलाकर लेवे ते दोष। ११ पहले या पिछे दाता की प्रशंसा करके आहारादि लेवे ते दोष। १२ जिसकी अधिष्ठाता

देवी हो अथवा जो साधना से सिद्ध की गई हो उसको विद्या कहते हैं, ऐसी विद्या का प्रयोग से आहारादि लेवे ते दोष। १३ जिसका अधिष्ठाता देव हो अथवा विना साधना के अक्षर विन्यास मात्र हो उसको मंत्र कहते हैं, ऐसा मंत्र का प्रयोग से आहारादि लेवे ते दोष। १४ एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु मिलाने से अनेक प्रकार की सिद्धि हो ऐसा अदृष्ट अंजनादि के प्रयोग से आहारादि लेवे ते दोष। १५ पाद लेपनादि सिद्धि बतला कर आहारादि लेवे ते दोष। १६ गर्भपातादि औषध बतला-कर आहारादि लेवे ते दोष ॥इति

॥ अथ एषणा का १० दोष—(गृहस्थ तथा साधु दोनों से लागे)

मूलम्–संकिय मक्खिय निक्खित्त पिहिय साहरिय दायगुम्मीसि।
अपरिणय लित्त छड्डिय एसणदोसा दस हवंति ॥५॥

१ गृहस्थ को तथा साधु को शंका पड़ जाने बाद आहारादि लेवे ते दोष। २ सचित्त

पाणी आदि से हाथ की रेखा या बाल भीजे हो उसके हाथ से आहारादि लेवे ते दोष। ३ असूजति वस्तु ऊपर सूजती वस्तु पडी हो ते लेवे ते दोष। ४ सूजति वस्तु सचित्त से ढांकी हो ते लेवे ते दोष। ५ अजोग वस्तु जिस वासण में पडी हो वह वस्तु दूसरे वासण में डालकर उसी वासण से योग्य आहार देवे ते लेवे ते दोष। या जहां पश्चात् कर्म होने की संभावना हो ऐसे घर में एक भाजन से दूसरे भाजन में आहारादि डालकर दे उस में पिछे से सचित्त पाणी से धोने की शंका होने पर उसी भाजन से आहारादि लेवे ते दोष। ६ अंधा लूला लंगडा आदि अजयणा करता बहरावे उससे लेवे ते दोष। ७ मिश्र सचित्त अचित्त चीज लेवे ते दोष। ८ शस्त्र पूरा परगम्या विना थोडे समय रो लेवे ते दोष। ९ तुरत की जगह लीपी हुई हो उसके ऊपर चल कर आहारादि लेवे ते दोष। १० अशनादि छांटा पडता लेवे ते दोष॥ इति एषणाका १० दोष॥

॥ अथ ५ दोष आवश्यकसूत्र में कहा है ॥

१ उघाड किवाड उग्घाडणाए–चूं चूं करतो कवाड ठेलीने उघाड कर तथा उघडा कर आहारादि ले ते दोष। २ मंडी पाहुडिआए–शेष निकाला हुवा लेवे ते दोष। ३ बलिपाहुडिआए–उच्छालने अर्थे बल बाकुला उछाल्या पहला लेवे ते दोष उच्छालने के बाद गृहस्थी भोगवे वह लेना न अटके। ४ अदिट्ठराए–अणदिठे वासण का आहारादि लेवे ते दोष। ५ परिट्ठावणिआए–निरस आहार को परठावने की इच्छा कर सरस आहारादि लेवे ते दोष। १ सेणीएपिंड–अपने पूर्व सज्जनादि (नातिला गोतिला) से ही लाया हुआ आहार करे ते दोष। २ अकारण–बिना कारण चीज मांगकर लावे ते दोष। उ. सू. द. वै.

१ दाणट्ठा–ग्रहगोचरादि के निमित्ते डाकोत वगैरह के वास्ते किया हुआ आहारादि वह जिम्यां पहले लेवे ते दोष, उसके जीमने बाद बचा हुआ गृहस्थ जीमे तो वह लेने

में अटके नहीं। २ पुण्णट्ठाए—पुन्य के अर्थे किया हुआ। जैसे—दुकान में धर्मादा निकाला हुआ धन का तथा मरण के अनन्तर पुन्य का किया हुआ आहारादि लेवे ते दोष। ३ समणट्ठा—बाबा योगी संन्यासी के अर्थे किया हुआ आहारादि लेवे ते दोष। उसको जीमने बाद गृहस्थ जीमे तो वह लेना अटके नहीं। ४ वणीमग्गट्ठा—रंक भिखारी के वास्ते किया हुआ आहारादि लेवे ते दोष। उसके जीमने के बाद गृहस्थ जीमे तो वह लेना अटके नहीं। ५ निआगपिंड—नित्यप्रति एक ही घर का आहारादि लेवे ते दोष। ६ सज्झायरपिंड—शय्यातर याने जिसकी आज्ञा से मकान में ठहरा हो उसके घर का आहार लेवे ते दोष। ७ रायपिंड—राजपिंड जैसे राजा के लिए बनाया आहार लेवे ते दोष। ८ किमिच्छिए—१ दानशाला का आहारादि लेवे ते दोष। २ कोई कोई इसी प्रकार भी कहते हैं कि बताय बताय नाम से मांग मांग लेवे ते दोष। ९ संघट्टिए—सचित्त के संघट्टेरो आहारादि लेवे तो दोष। १० बहुज्झाए—थोडा खाने में

आवे और ज्यादा नांखने में आवे ऐसो आहार लेवे तो दोष। ११ परिकुट्ठं कुलकं—धोबी आदि निषेध कुल का तथा चोर के घर का आहारादि लेवे तो दोष। १२ मामगं-वर्ज्या हुआ घर का आहारादि लेवे ते दोष। जैसे कोई कहे म्हारे घेर मत आयजो उसको वर्ज्या घर, कहते हैं। १३ अचियतकुलं—गणिका आदि अविश्वसनीय कुलका आहार लेवे ते दोष। १४ पुव्वकम्मे पच्छाकम्मे—पहला दोष लगावे तथा पिछे दोष लगावे जैसे-आहार वहेराया पहेला साधु आया जानकर आघा पाछा कर दे, तथा वहेराया पिछे फिर बनाई ले या काचे पानी सुं ठाम या हाथ धो लेवे ते दोष। १५ सुईयंगे गावि-तत्काल व्याय गाय हो उस रस्ते से जाकर आहारादि लेवे तो दोष। १६ एलगं—बकरो घर आगल बेठो होवे ते उलंघ कर आहारादि लेवे ते दोष। १७ दारगं--जिस द्वार पर लडका या लडकी आडी बैठी हो उसको उलंघकर आहारादि लेवे ते दोष। १८ साणगं-जिस द्वार पर श्वान (कुत्ता) बैठा हो उसको उलंघ कर आहारादि लेवे ते दोष।

१९ वच्छगं--जिस द्वार पर गाय का बछडा बैठा हो उसको उलंघकर आहारादि लेवे तो दोष। उलंघ धी अनपवेसे और भी ऐसा कोई बछडा बैठा हो उसको उलंघकर आहारादि लेवे तो दोष। २० अगाईता चलाईता—आगे पीछे करे जैसे--कच्चा पाणी का लोटा हाथ में है साधु साध्वी आया देख जावतो पीछे फिर जाय, या कोई सचित्त वस्तु हाथ में है साधु आया देख रख दे तथा पहले घर में जाकर बर्तन आगे पीछे कर दे वह आहारादि लेवे ते दोष। २१ गोवणी कालमासणी--गर्भवती स्त्री सात मास पीछे उठ बैठ कर आहारादि दे वह लेवे तो दोष। २२ थाणं पेजमाणी—बालक चूंघ-स्तनपान कर रहा है उस वक्त चूंग्रते को छुडाकर आहार बहोरावे वह लेवे तो दोष। २३ नीयं दवारतामसं—कोठी ओवरी भरवारी जो नीचो बारणो भीतर अंधेरो पडतो होय ऐसी जगह का आहार लेवे ते दोष।

### आचाराङ्गसूत्रमां बतावेल छ दोषो

१ निएपिंडं–नित्य आहार वाटने के लिए त्याग करे माप से वाटे वह आहार लेवे ते दोष। २ संखंडियं (संखडो) न्यात जीमणवार शहेर सारणी में जीमता हो उसमें जाकर आहारादि लेवे ते दोष। ३ वागायं—जाचक-मांगनेवाले को अन्तराय देकर आहारादि लेवे ते दोष।४ सधारवेणे—गमतां कथा वार्ता से रिझाय कर आहारादि लेवे ते दोष। ५ फुमेज्झवा (वीएजवा) फूंक देकर या पंखा से ठार कर आहार देवे वह लेवे ते दोष। ६ भूमालुहडं नीचे भोंयरे से या उपर सीडी लगाकर आहारादि देवे वह लेवे ते दोष।

१ पावणीए—पावणा के अर्थे किया हुआ आहार पावणा जीम्यां पहले लेवे ते दोष। २ मंसारे—अभक्ष्य मांस आदि का आहार लेवे ते दोष। (ठाणांगसूत्र)

### भगवतीसूत्र

१ अङ्गरेअं—सराई सराई राग सहित आहार करे ते दोष। उसका चारित्र कोयले

समान कहनां। २ घूमे मस्तक (माथा) धूणी धूणी कुसराई कुसराई द्वेष सहित आहारादि करे ते दोष। उसका चारित्र धूवां समान कहा है। ३ संजोअणा—स्वादनिपजाने के लिए संयोग मिलाकर आहारादि लावे ते दोष। ४ खेत्ताइकंते—जो क्षेत्र में रहे वहां सूर्योदय पहले और सूर्यास्त के पीछे आहारादि लेवे ते दोष। ५ कालाइक्कंते—पहेल पहोरको लाया आहारादि चोथे पहोर में भोगवे ते दोष। ६ मग्गाइक्कंते—दो कोश उपरांत असनादि ले जाकर भोगवे ते दोष। ७ पमणाइक्कंते—प्रमाण सुं अधिक आहार लेवे ते दोष। ८ आउए—गृहस्थ के आमंत्रण से उसके घर जाकर आहारादि लेवे ते दोष। ९ कंतारभत्तं—अटवी (जंगल) में जो दानशाला वगैरह हो वहां आहारादि बंटता हो वह लेवे तो दोष। १० दुब्भिक्खभत्तं—दुष्काल में दानशाला रंक भीखारी के लिए खोली हो उसका आहारादि लेवे तो दोष। ११ वद्लीयाभत्तं—वरसाद् आया हो उस समय कोई दातार भीखारी को कोई जगह आहार बांटथो होय वह लेवे तो दोष। १२ गिला-

णभत्तं रोगी ग्लानी के लिए किया हुआ आहारादि उसको जीम्या पहेला लेवे ते दोष।

प्रश्नव्याकरण

१ रहगं–चूरमारो त्याग है और लाडु बनाकर बहरावे वह लेवे तो दोष। २ पजुजायं–दहिरा त्याग है और दहिरा राईतो बनाकर याने पर्याय बदलाकर देवे वह दोष। ३ सहयागय–साधु आपरे हाथ सुं औषध-पाणी अलावे आहारादि लेवे तो दोष। ४ अनुत्तरवाह समणट्ठा (अन्तोवाहच्च) भीतरसुं तीन बारणा उपरांत काढकर देवे वह लेवे ते दोष। ५ मनोरंच–चारण भाट के जैसे विरदावली करके आहार लेवे ते दोष।

नीशीथसूत्र

१ उगासियं–बहुत से मनुष्यो में से पुकार करके कहे कि 'कोई यहां दातार है' ऐसा कहकर आहारादि लेवे ते दोष। २ अडवीभत्तं—अटवी में मजुरादिके भातका आहारादि मजुर जीम्या पहेलां लेवे ते दोष। ३ अन्नत्थीयाभत्तं—अन्य तीर्थी रोटी टुकडा

मांग कर लावे वह आहारादि लेवे ते दोष। ४ पासट्टाभत्तं—(पासत्थिएणं) ढिलापासंत्था–शीथला चारी (क्रियारहित) का आहारादि लेवे ते दोष। ५ दुगुंच्छियं कुलं-ढेढ चमार आदि निंदनीय कुल, जिस कुल में जाने से दुगुंछा करे उसका आहारादि लेवे ते दोष। सज्झाए निसीए सागारियं (निसीहीआए)--सज्यातर के नेसरा–घरो तथा दलाली का आहारादि लेवे ते दोष।

दशाश्रुतस्कंध

१ बालट्ठा--बालकके अर्थे किया हुआ आहार बालक जीम्या पहेला लेवे ते दोष। २ गब्भिणी अट्ठा--गर्भिणी स्त्री के अर्थे किया आहारादि गर्भवती स्त्री जिम्या पहेले लेवे ते दोष।

बृहत्कल्पसूत्र

१ प्रासिया--कालप्रमाण उपर को तथा वासी राख कर खावे तो दोष।

॥ इति आहार के १०६ दोष समास ॥

मूलम्—तए णं सुदत्ते अणगारे मासखमणस्स पारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, जहा गोयमस्वामी तहेव धम्मघोसे थेरे आपुच्छइ जाव अडमाणे सुमुहस्स गाहावइस्स गिहं अणुपविट्ठे। तए णं से सुमुहे गाहावई सुदत्ते अणगारे एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे० आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, करित्ता सुदत्तं अणगारं सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसिता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयहत्थेणं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिलाभेस्सामि त्ति कट्टु तुट्ठे पडिलाभेमाणे तुट्ठे पडिलाभिएत्ति तुट्ठे तए णं तस्स सुमुहस्स गाहावइस्स तेणं

दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पत्तसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं सुदत्ते अनगारे पडिलाभिए समाणे संसारे परित्तीकए।

अर्थ—तत्पश्चात् ते श्री सुदत्त अनगार मास क्षमणपारणा के दिन प्रथम पौरुषी में स्वाध्याय करके भगवान् श्री गौतमस्वामी की भांति यथावसर (भिक्षा) गोचरी के समय में आचार्य शिरोमणि श्री धर्मघोष आचार्यश्री से भिक्षा लाने के लिए आज्ञा प्राप्त कर हस्तिनापुर नगर में भिक्षा के लिए घूमते हुए प्रसिद्ध नागरिक सुमुख गाथापति (गृहस्थ) के घर पहुंचे। ज्यों ही उस सुमुख गाथापतिने सुदत्त अणगार को अपने घर पर पधारते हुए देखा (त्यों ही उन महाभाग परम तपस्वी मुनिराजश्री के परम पुनीत संक्लेश नाशक दर्शन करके वह बहुत ही हर्षित हुआ। सुदत्त अनगार को देखकर उसके मनमें अपरिमित तृप्ति हुई मुनि दर्शन से उसके हृदय में असाधारण तथा अपूर्व धर्मानुराग जाग्रत हुआ हर्षातिरेक से उसका अन्तःकरण भर गया। आनन्द

के मारे उसकी चित्तवृत्ति उल्लासित होने लगी। अविलम्ब वह अपने सुखासन से उठा और उठकर पादपीठ से नीचे उतरा और उसने अपने पैरों में से उपानह (जूते) उतारकर उसने एक शाटिक उत्तरासंग–विना सिया वस्त्रविशेष मुख पर धारण किया वस्त्र धारण कर फिर वह सुदत्त अणगार के सन्मुख सात आठ पग चला चलकर उसने तिक्खुत्तो के पाठ के साथ तीन वार आदक्षिण प्रदक्षिणा की अर्थात् हाथ जोडकर दक्षिण कर्ण मूल से प्रारम्भ कर ललाट प्रदेश पर घुमाते हुए वाम कर्ण के अन्त तक चक्राकार घुमाकर फिर उस अंजलि को अपने मस्तक पर स्थापन करना उसको आदक्षिण प्रदक्षिण कहते हैं अर्थात् वंदना नमस्कार किया.

सुमुख गाथापति के भावों का वर्णन करते हुए (पू० श्री घासीलालजी महाराज ने श्री विपाकसूत्र की टीका में निम्न ३ श्लोक दिए हैं)

अद्य मे फलितो गेहे, सुरद्रुःकुसुमं विना। अनभ्रा घातुला वृष्टि–र्मरुस्थल्यां सुरद्रुमः ॥१॥

दारिद्रस्य गृहे हेमनिचयः प्रकटो भवेत्। प्रीणितोऽहंखदालोकात् पीयूषपानतो यथा ॥२॥
परोपकृतिधौरेयाऽवधार्य वचनं मम। भवत्पादरजः पातात् पवित्री कुरु मे गृहम् ॥३॥

अर्थ—हे भदन्त ! आज आपका मेरे घर में पधारना मानो मेरे घर में कल्पवृक्ष विना फूल के ही फला है, बिना बादल के ही पर्याप्त वृष्टि हुई है, या यों कहुं कि मरु स्थली में कल्पवृक्ष उगा है ॥१॥ दरिद्र के घर आंगन में मानो निधान प्रगट हुआ हो हे भदन्त! मैं आपके दर्शन से इतना प्रसन्न हूं, जैसे कोई चिरकल का तृषित–प्यासा अमृत पान से प्रसन्न होता है ॥२॥ हे परोपकारी महापुरुष! आप मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर अपने चरण रज के कण से इस मेरे घर को पवित्र करें ॥३॥

नमस्कार करने के बाद रसोई घरमें आया। मैं आज अपने हाथ से निर्ग्रंथ मुनिराज को विपुल अशन पान खाद्य और स्वाद्य का दान दूंगा ऐसा विचार कर प्रसन्न चित्त हुआ फिर दान देते समय मेरे अहोभाग्य है कि आज मैं मुनिराज को विपुल

अशनादिं दे रहा हूं ऐसा सोच कर प्रसन्नचित्त हुआ और जब दान दे चुका तब भी 'अद्यमे सफलं जन्म' आज मेरा जन्म सफल हुआ कि मैंने अपने हाथ से धर्मदेव को विपुल अशनादि प्रदान कर लाभ प्राप्त किया है ऐसा विचार कर भी प्रसन्नचित्त हुआ तत्पश्चात् उस गाथापति सुमुख द्रव्य की शुद्धि से त्रिविध-त्रिकार शुद्ध माने-द्रव्यशुद्धि अर्थात् मुनिके लिये पचन पाचन किया हुआ न हो (१) मुनिके लिये खरिदा हुआ न हो (२) मुनिके लिये सामने लाकर दिया हुआ न हो अर्थात् पूर्वोक्त १०६ दोषवर्जित आहार दायक-दाता की शुद्धि से प्रशस्त भावयुक्त अपने पवित्र मनकी शुद्धि से-निरवद्य भाषाशुद्धि अर्थात् वचन की शुद्धि से (मुखपर उत्तरासंग बांधने से वचनशुद्धिथी) सचित्त वस्तु उनके पास न होने से काया की शुद्धि से सुमुखगाथापति प्रतिग्राहक की पात्रशुद्धि से आरंभ समारंभ का मन, वचन, काया से त्याग होने से पात्रशुद्धिथी (अतिचार रहित तप और संयम के आराधक सुदत्त जैसे

महामुनि की शुद्धि से) इन तीन प्रकार की शुद्धियों से एवं तीन करण की शुद्धि से [मानसिक वाचिक और कायिक शुद्धि से] सर्व संपत्करी भिक्षा के अभिग्राहक उन मुनि श्रेष्ठ श्री सुदत्त अणगार को आहारदान प्रतिलाभ कर अपना संसार अल्प किया अर्थात् परिमित संसारी हुए।

सुदत्त अणगार कैसे थे ?

जावंति के साहू रयहरण मुहपत्ति गुच्छग पडिगहधरा पंचमहावयधरा अट्ठारहसहस्स सीलांगरहधरा अक्खेयआयारचरित्ता ते सव्वे सरिसा मणसा मत्थएणं वंदामि।

अर्थ—जेना मुखे मुहपत्ति बांधेली होय जेना पासे रजोहरण गुच्छो होय श्वेतवस्त्र धारण करनारा अने पात्राने राखनारा एवा वेषवाला अने ज्ञानदर्शन तथा चारित्रने धारण करनारा पांच महाव्रतने धारण करनारा तेमज अढार हजार शीलना अंग रूप रथने धारण करनारा संपदानी वृद्धि अक्षय आचार अने तपना धणी ते सर्वने मारा

मस्तके करी शुद्ध अंतःकरणथी वंदना करूं छुं

'समणोवासगस्स णं भंते ! तहारूवं समणं वा माहणं वा फासुएसणिज्जेणं असणपाण खाइमसाइमेणं पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ ? गोयमा ! एगंतसो निज्जरा कज्जइ

(भगवतीसूत्र)

दुल्लहाओ मुहादाई मुहाजीवी वि दुल्लहा मुहादाई मुहाजीवी दो वि गच्छंति सुग्गइं

दशवैकालिक

अर्थ—तथारूप श्रमण माहन को प्रासुक एसणिज्ज अशनपानखाद्यस्वाद्यरूप चार प्रकार का आहार तथारूप श्रमण को देने से कोनसा फलकी प्राप्ति होती है ?

उत्तर–हे गौतम ! एकांतरूप से निर्जरा होती है। भगवतीसूत्र

निरवद्य आहार देनेवाला दाता दुर्लभ है एवं निर्दोष–निरवद्य आहार पानीसे निर्वाह करनेवाला भी दुर्लभ है। निर्दोष आहार लेनेवाला तथा निर्दोष आहार का

दान करनेवाला दोनों सुगति–मोक्षगति में जाते हैं ।

यहां श्रावक धर्म के साथ संबंधित होने से साधु का आचार दिखाया है अथवा पडिमाधारी श्रावकको भी ऐसा ही आहारपानी ग्रहण करना चाहिये स्थानांगसूत्र के चौथे ठाणे में चार प्रकार के श्रावक कहे हैं–जैसे–चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता तं जहा–अम्मापिइसमाणे, माईसमाणे, अद्दागसमाणे, पडागसमाणे, अर्थ–चार प्रकार के श्रावक कहे गये हैं जोकि मातापिता के समान१, भाई के समान२, दर्पण के समान३ पताका के समान ४

ऊपर कहे हुए दोषों से रहित आहार देनेवाला दाता और उन निर्दोष आहार को लेनेवाला साधु ये दोनो सुगति अर्थात् मोक्षगति को प्राप्त करते हैं ।

श्रावकों का चार विश्रामस्थान

मूलम्—एवामेव समणोवासगस्स चत्तारि आसासा पण्णत्ता, तं जहा–जत्थ णं

सीलव्वयगुणव्वयवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासाइं पडिवज्जेइ तत्थ वि य से एगे आसासे पण्णत्ते १ जत्थ वि य णं सामाइयं देसावगासियं सम्ममणुपालेइ तत्थ वि य से एगे आसासे पण्णत्ते २, जत्थ वि य णं से चाउद्दसमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेइ, तत्थ वि य से आसासे पण्णत्ते ३, जत्थ वि य णं अपच्छिम मारणंतिअसंलेहणा जोसणाजूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगमे कालमणवकंखमाणे विहरइ तत्थ वि य से एगे आसासे पण्णत्ते ४ ॥

अर्थ—श्रमणोपासक को चार आवास–विश्रामस्थान कहे हैं पहला आवास वह है जो शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, अनर्थदंडविरमण, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास को स्वीकार करता है १, दूसरा विश्रामस्थान वह कहा गया है जो सामायिक देशावकाशिक का सम्यक् रीति से वह पालन करने लगता है २, तीसरा विश्राम उसका वह कहा गया है जो चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, और पूर्णिमा तिथियों में पौषध का पूर्णरूप से पालन

करता है ३, तथा चौथा आवास वह कहा गया है जब वह मरण काल समन्धिनी अपश्चिम संलेखना को धारण कर लेता है, भक्तपान का प्रत्याख्यान कर देता है, और अपने काल की आकांक्षा रहित होकर पाद्पोपगमन 'संथारा' वाला होता है ४ ॥

अनंत चोवीसी जिने नमुं, सिद्ध अनंता क्रोड, केवलज्ञान स्थीवर सभी वन्दु बे कर जोड
दोही करोड केवलधरा, वेद्वाणी जिन वीस, सहस्त्र जुगल कोडी नमुं साधु नमुं निशदिन
खमे खमाया, में खम्या, सभी जीवालार सिद्ध साधु आलोवसु वेर नहीं किस लार,
खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवावि खम्मंतु मे मित्ति मे सव्वभूएसु वेरमज्जं न केणइ,
एमाइएहिं ओलोइय निंदिय गरहिय दुगुंच्छियं सव्व तिविहेणं पडिक्कंतो वंदामि जिण चोवीसं

७ सात लाख पृथ्वीकाय ७ सात लाख अप्काय ७ सात लाख तेउकाय ७ सात वायुकाय १० दस लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय १४ चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय २ बे लाख द्वीन्द्रिय २ बे लाख तेइन्द्रिय २ बे लाख चोन्द्रिय ४ चार लाख नारकी

४ चार लाख देवता ४ चार लाख तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय १४ चौदह लाख मनुष्य जाती ४ चार गति ८४ चोर्यासी लाख जीवायोनी में कोइ जीव हण्यो होय, हणाव्यो होय, हणता ने भलो जाण्यो होय १८ लाख २४ चोवीस हजार १२० एकसोवीस इर्यावहिया पाठ में दोष लाग्यो होय तो 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं। एक करोड साडा सत्ताणु लाख कुलकोडी जीवों की विराधना कीधी होय 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं'

अठारह पापस्थान

(१) प्राणातिपात–जीवने प्राणपर्याप्तिथी रहित करवो अर्थात् जीवहिंसा (२) मृषावाद–जूठुं बोलवुं ते (३) अदत्तादान–पराइ वस्तु मालिकना आप्या शिवाय लेवी ते (४) मैथुन–अब्रह्मचर्य (कुशील सेवन) (५) परिग्रह–नव प्रकारना बाह्य परिग्रह अने

चौद प्रकारना आभ्यंतर परिग्रह (६) क्रोध–गुस्सो–रीस (७) मान–अहंकार (८) माया-कपट (९) लोभ–ममता (१०) राग–प्रीति (११) द्वेष–अदेखाई (१२) कलह–क्लेश कजीयो, कंकास (१३) अभ्याख्यान–आळ चडाववुं, अर्थात् जेनामां जे नथी तेनुं आरोपण करवुं ते (१४) पैशुन्य–चाडी चुगली करवी ते (१५) परपरिवाद–पारकानुं वांकुं बोलवुं, निंदा करवी (१६) रई अरई-पापना काममां सुख भोगवतां राजी थवुं अने धर्मना काममां दुःख भोगवतां नाखुश थवुं ते (१७) माया मोसो–कपटरहित जूठुं बोलवुं ते (१८) मिथ्यादर्शनशल्य–खोटी श्रद्धारूप शल्य (कुदेव, कुगुरू, कुधर्मने सेववानी अभिलाषा)

चौद प्रकार का परिग्रह नीचे प्रमाणे छे

१ मिथ्यात्व, २ स्त्रीवेद, ३ पुरुषवेद, ४ नपुंसकवेद, ५ हास्य, ६ रति, ७ अरति,

८ भय, ९ शोक, १० दुगुंच्छा ११ क्रोध १२ मान १३ माया अने १४ लोभ.



## मिथ्यात्व का भेद

१ अभिग्रह मिथ्यात्व–ते अपने ध्यान में आवे सो साचा, अर्थात् अपना ही मन मान्यां माने। २ अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व–बधा देव अने बधा गुरुने मानवा ते। ३ अभिनिवेशिकमिथ्यात्व–पोताना मतने खोटो जाणवा छतां मूके नहीं तेमज कुयुक्तिथी पोषण करे। ४ सांशयिक मिथ्यात्व–सत्य धर्ममां पण शंकाशील रहेवुं ते। ५ अणाभोग मिथ्यात्व–जेमां बिलकुल जाणपणुं नथी ते। ६ लौकिक मिथ्यात्व–दुनियामां जे देव, गुरु, धर्मनी विपरीत स्थापना करेली छे, तेने मानवा अने तेमनां पर्व विगेरे उजववां ते। ७ लोकोत्तर मिथ्यात्व–तीर्थंकर देवनी बीजा पाखंडो मत वालानी जेम मानता करे

(स्थापेल चितरेल के घडेल चीत्र के जेमां गुण नथी तेनी मानता पूजा करे पासत्था-ओमां गुरुपणानी बुद्धि करे)। ८ कुप्रावचन मिथ्यात्व–त्रणसो त्रेसठ पाखंडी मतने माने। ९ जीवने अजीव सरधे तो मिथ्यात्व। १० अजीव ने जीव सरधे तो मिथ्यात्व। ११ साधुने कुसाधु सरधे तो मिथ्यात्व। १२ कुसाधुने साधु सरधे तो मिथ्यात्व। १३ जिन-मार्गने अन्यमार्ग सरधे तो मिथ्यात्व। १४ अन्यमार्गने जिनमार्ग सरधे तो मिथ्यात्व। १५ धर्मने अधर्म सरधे तो मिथ्यात्व। १६ अधर्मने धर्म सरधे तो मिथ्यात्व। १७ आठ कर्मथी नथी मुकाणा तेने मुकाणा सरधे तो मिथ्यात्व। १८ आठ कर्मथी मुकाणा तेने नथी मुकाणा सरधे–तेवी श्रद्धा करे तो ते मिथ्यात्व। १९ उन्मार्ग को—



मार्ग श्रद्धे, सो मिथ्यात्व; जैसे--सात कुव्यसन को सेवन काम, क्रीडा करना, स्नान इत्यादि संसार में परिभ्रमण कराने का जो मार्ग है, उनको मोक्ष का हेतु श्रद्धे सो मिथ्यात्व। २० रूपी पदार्थ को अरूपी श्रद्धे सो मिथ्यात्व, जैसे--वायुकायादि सूक्ष्म होने से दृष्टि न आवे उनको अरूपी श्रद्धे सो मिथ्यात्व। २१ अरूपी को रूपी समझे तो मिथ्यात्व, जैसे--धर्मास्तिकायादि जो अरूपी है उनको रूपी श्रद्धे सो मिथ्यात्व। २२ अविनय मिथ्यात्व--जिनेश्वर तथा गुरु का वचन उत्थापे, गुणवंत, तपस्वी, वैरागी इत्यादि उत्तम पुरुषों से कृतघ्नीपणे करे, छिद्र देखता रहे, निन्दादि अविनय करे सो मिथ्यात्व। २३ आशातना मिथ्यात्व--गुरु को ३३ आशातना का काम करे सो मिथ्यात्व। २४ अक्रिया मिथ्यात्व--जैसे प्रतिक्रमणादिक क्रिया न माने सो मिथ्यात्व। २५ अज्ञान मिथ्यात्व--जैसे सत्य असत्य का विवेक न होने से सांसारिक कार्य कर्मों का बंधन रूप जैसा का तैसा रहने से और सत्य ज्ञान का अभाव से अज्ञान को थापे सो

मिथ्यात्व। जैसे पशुवध को तथा भगवान् के निमित्त फलफूल तोडे चढावे उसको धर्म समझे। सो मिथ्यात्व।

मूलम्-से किं तं भंते ! सावगाणं स अट्ठा सहेउया अप्पच्छिमाए मारणंतियाए संलेहणाए झूसणाए आराहणाए विहि प० ? गो० ! सा एवामेव सअट्ठा सहेउया जाव आराहणाए विहि प० तं० गामंसि वा नयरंसि वा जाव रायहाणियंसि वा सब्भितरंसि वा बाहिरंसि वा उवस्सयं पडिलेहिज्जा उवस्सयं पडिलेहित्ता उवस्सयं पमज्जिज्जा, उवस्सयं पमज्जित्ता 'एवं पोसहसालाए किरिया वि नायव्वा' उच्चारपासवणभूमियं पडिलेहिज्जा, उच्चारपासवणभूमियं पडिलेहित्ता उच्चारपासवणभूमियं पमज्जिज्जा उच्चारपासवणभूमियं पमज्जित्ता, दब्भाइयं संथारं पडिलेहिज्जा, दब्भाइयं संथारं पडि-

लेहित्ता दब्भाइयं संथारं पमज्जिज्जा, दब्भाइयं संथारं पमज्जित्ता दब्भाइयं संथारं संथरिज्जा दब्भाइयं संथारं संथरित्ता, दब्भाइयं संथारं दुरुहिज्जा दब्भाइयं संथारं दुरूहित्ता, पुव्वदिसि तहा उत्तरदिसाभिमुहे पलियंकाइ आसणंसि आसेज्जा आसित्ता मुहपत्तिं पडिलेहेज्जा मुहपत्तिं पडिलेहित्ता मुहपत्तिं पमज्जेज्जा मुहपत्तिं पमज्जित्ता मुहपत्तिं मुहे बंधेज्जा मुहपत्तिं मुहे बंधेत्ता गमणागमणं पडिकम्मेज्जा गमणागमणं पडिकम्मेइत्ता सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वदिज्जा णमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव ठाणं संपत्ताणं ठाणं संपाविउकामाणं णमो जिणाणं जीयभयाणं, एवं वदित्ता तयाणंतरं च णं पुणो वि एवं वदिज्जा, णमोत्थुणं सव्वसिद्धाणं भगवंताणं जाव निब्भयाणं एवं वदित्ता, जो भवइ धम्मायरियो तस्स णं वि णमोत्थुणं भणिज्जा

जहा सयं मइ अणुसारेणं तं भणित्ता चउण्हं तित्थाणं खामणं करिज्जा, चउण्हं तित्थाणं खामणं करित्ता एवं सव्वजीवजीवाजोणीउ खमेज्जा खामइत्ता सयं धम्मायरियस्स णामं मणमाणे पुव्वगाहियणाणदंसणवयतवस्स णं सव्वस्स णं अइयाराइं आलोइज्जा, पडिकम्मेज्जा, णिंदेज्जा आलोइत्ता पडिकम्मेइत्ता, निंदित्ता तयाणंतरं च णं अइयारेणं अत्ताणं निसल्लं करेज्जा, अत्ताणं अइयारेणं निसल्लं करित्ता एवं वदेज्जा तस्स णं भगवओ सक्खाओ सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव मिच्छादंसणसल्लं अकरणिज्जं जोगं पच्चक्ख मि जाव जीवा य तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणेमि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरहामि अप्पाणं वोसिरामि एवं वदेज्जा, एवं वदित्ता तओ पच्छा चउविहं वि आहारं पच्चक्खे-

ज्जा जावजीवाए चउविहं वि आहारं पच्चक्खित्ता, तओ पच्छा एवं वदिज्जा जं पिय इमं सरीरं इदं कंतं, पियं मणुण्णं मणामं थिज्जं समयं विसासियं अणुमयं बहुमयं भण्डकरण्डगसमाणं रयणकरण्डगभूयं मा णं सियं, मा णं उण्हं मा णं खुहा मा णं पिवासा, मा णं बाला, मा णं चोरा, मा णं दंसा मा णं मसगा एवं मा णं वाहियं वा पित्तियं वा समियं वा सन्निवाहियं वा विविहा रोगायंगा परिसोवसग्गा फासा फुसंति 'एवं पि य सरीरं चरमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं अप्पाणं वोसरिज्जा, अप्पाणं सरीरं वोसिराविता कालं अणवकखमाणे विहर-माणस्स तस्स णं पंचाइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा पं० तं० इहलोगा-संसप्पओगे १ परलोगासंसप्पओगे २ जीवियासंसप्पओगे ३ मरणासंसप्पओगे ४ कामभोगे संसप्पओगे ५ से तं संलेहणा विही'

अर्थ—हे पूज्य ! श्रावकने अर्थ सहित हेतु सहित छेल्ला मरणना अवसरे कराति शारीरिक अने मानसिक तपथी कषाय आदिनो नाश करवो—संथारो सेववानी आराधवानी विधि कही ते शुं ? हे गौतम ! ते ए प्रकारे अर्थ सहित हेतु सहित यावत् आराधवानी विधि कही ते कहे छे—गामने विषे अथवा नगरने विषे अथवा राजधानीने विषे अथवा ए सर्वने विषे अंदर अने बहार उपाश्रयने पडिलेहे—निरखे उपाश्रयने निरखीने उपाश्रयने पुंजे उपाश्रयने पूंजीने (एम पोषधशालानी क्रियानुं पण जाणवुं) उच्चारपासवण भूमिने निरखे उच्चारपासवणभूमिने निरखीने उच्चारपासवणभूमिने पूंजे उच्चारपासवण भूमीने पूंजीने दर्भ आदि संथरी आने जुए दर्भ आदि संथरी आने जोइने दर्भ आदि संथरी आने पूंजे दर्भ आदि संथरी आने पाथरे दर्भ आदि संथरी आने पाथरीने दर्भ आदि संथरीआ पर बेसे दर्भ आदि संथारिआ पर बेसीने पूर्वदिशा अगर उत्तरदिशा तरफ मुख राखी पर्यंकादि आसन पर बेसे बेसीने मुहपत्तिने जुए मुहपत्तिने जोइने मुहपत्तिने

पूंजे मुहपत्तिने पूंजीने दोरासहित मुखे बांधे मुहपत्ति मुखे बांधीने इरियावइ पडिक्कम्मे इरियावहि पडिक्कम्मिने मस्तके आवर्तन करीने अंजलि (जोडेला बे हाथ) अडाडीने एम बोले नमस्कार हो अरिहंत भगवंतोने यावत् मोक्ष स्थानमां जवा वालाओने नमस्कार हो जिनेश्वरोने अने भयना जीतनाराओने नमस्कार हो एम बोलीने (त्यार पछी फरी पण एम बोले नमस्कार हो सिद्ध भगवंतोने यावत् भयरहितोने एम बोलीने जे धर्माचार्य होय तेने पण नमस्कार हो एम बोले जेम पोतानी मति अनुसरे तेम बोलीने चार तीर्थोने क्षमापना करे [खमावे] चार तीर्थने क्षमापन करीने [खमावीने] एम सर्व जीव अने जीवाजोनिने खमावे खमावीने पोताना धर्माचार्यनु नाम बोलता थका पूर्वे ग्रहण करेला ज्ञानदर्शन व्रत तप ते सर्वना अतिचारोने आलोवे पडिक्कम्मे निंदे आलोवीने पडिक्कम्मिने निंदीने त्यारपछी अतिचारथी आत्माने शल्य रहित करे आत्माने अतिचारोथी शल्य रहित करीने एम बोले ते भगवंतनी साक्षीए सर्वथा प्राणातिपातने तजुं छुं

यावत् मिथ्यादर्शनसल्यने अने नहि सेववा योग्य योगने तजुं छुं जीवन पर्यंत त्रण करण अने त्रण योगे करीने मन वडे वचन वडे काया वडे करूं नहीं करावुं नहि अने बीजा करताने अनुमोदुं नहीं तेने हे पूज्य! पडिक्कमु छुं निंदु छुं गर्हा करु छुं [कषाय] पापकारी आत्माने तजुं छुं एम बोले एम बोलीने त्यार पछी चार प्रकारना आहारने पण जीवन पर्यंत तजे चार प्रकारना आहारने तजीने त्यार पछी एम कहे आ शरीर जे इष्टकारी कंतकारी प्रियकारी मनोज्ञ मनने अति वहालुं, धीरजवान् विश्वासनुं ठेकाणुं मानवा योग्य अनुमत विशेष मानवा योग्य बहुमूलां घरेणांना करंडिया समान-करंडिया तुल्य रखे शीत-टाढ वाय, रखे ताप लागे, रखे भूख लागे, रखे तृषा लागे, रखे जंगली हिंसक जनावरों के सर्पो विगेरे नुकसान करे रखे चोर हेरान करे रखे डांस करडे रखे मच्छर करडे एम रखे व्याधि थाय अथवा पित्त थाय अथवा सलेखम थाय त्रिदोष थाय अथवा विविध प्रकारना रोगो अने पीडाओ थाय परीषहो तथा उपसर्गो स्पर्शे (एवा) पोताना शरीरने

पण छेल्ला श्वासोश्वास सुधी तजे पोताना शरीरने तजीने मृत्युने अवांछतो थको विचरतो थको तेना पांच अतिचार जाणवा पण आदरवा नहीं ते कहे छे–१ आ लोकना पौद्गलिक सुखनी अभिलाषा करे के मरीने हुं मनुष्य लोकमां मोटो राजा थाऊं विगेरे २ परलोकना पौद्गलिक सुखनी इच्छा करे के मोटो देवता थाऊं ३ जीवतरनी वांछना करे [जाजा दिवस जीवुं तो ठीक जेथी लोकमां यशकीर्ति वधे] ४ मरणनी इच्छा करे [रोगथी कंटाळी शीघ्र मरवानी इच्छा करे] ५ कामभोगनी इच्छा करे ते एमज संलेखनानी विधि कही छे.

दोहा–मरण महा मंगलीक है, मरण मोक्षदातार।
मरणे से डरना नहीं, पंडितमरण है सार॥

मूलम्–इमं सरीरं अणिच्चं, असुई असुई संभवं असासया वासमिणं दुःख केसाणं भायणं।
जन्म दुक्खं जरा दुक्खं रोगाणि मरणाणि य, अहो दुक्खो हु संसारो जत्थ कीसंति जंतओ॥

अर्थ—आ शरीर अनित्य छे अपवित्र छे अशुचिथी उत्पन्न थयुं छे आ शरीर या जीवन रहेवानु अशाश्वत छे अने आ दुःखों तथा क्लेशोनुं भाजन—पात्र छे जन्म दुःख रूप छे जरा दुःख छे रोग अने मरण दुःख छे अरे आ बधो संसार दुःख रूप छे अरे आमां जीव क्लेश ज मेलवे छे

ठाणांगसूत्र—मूलम्—तओ ठाणा सुसीलस्स सुव्वयस्स सगुणस्स समेरस्स सपच्चक्खाणपोसहोववासस्स पसत्था भवंति तं अस्सिं लोगे पसत्थे भवइ आयाई पसत्था भवइ॥

अर्थ—तीन स्थानों से शीलवाले की, सुव्रतवाले की, गुणवाले की, दयायुक्त की [अथवा मर्यादावाले की] प्रत्याख्यान पोषध उपवासवाले की प्रशंसा होती है। वह इस प्रकार है—इस लोक में प्रशंसा वाला होता है, परलोकमें प्रशंसा वाला होता है, आगामिकालमें प्रशंसावाला होता है॥

## ॥ सुभाषितानि ॥

पंचमहव्वयसुव्वयमूलं, समणमणाइल साहुसुचिण्णं ।
वेरविरामणपज्जवसाणं, सव्वसमुद्दमहोदही तित्थं ॥१॥

तित्थंकरेहिं सुदेसियमग्गं, नरगतिरियविवज्जियमग्गं ।
सव्वं पवित्तं सुनिम्मियसारं, सिद्धिविमाणं अवंगुयदारं ॥२॥

देवनरिंदनमंसिय –पूइयं, सव्वजगुत्तम–मंगलमग्गं ।
दुद्धरिसं गुणनायगमेगं, मोक्खपहस्स–वडिंसगभूयं ॥३॥

धम्मारामे चरे भिक्खू, धिइमं धम्म–सारही ।
धम्मारामे रया–दंते, बंभचेर–समाहिए ॥४॥

देव दाणव–गंधव्वा, जक्खरक्खस्स–किण्णरा ।
बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करंति तं ॥५॥

एस धम्मे धुवे निच्चे, सासये जिणदेसिए ।
सिद्धा सिज्झंति चाणेणं, सिज्झिस्संति तहावरे ॥६॥

अरहंत सिद्ध पवयण, गुरु थेर बहुस्सुए तवस्सीसु ।
वच्छल्लया य तेसिं, अभिक्खनाणोवओगे य ।७॥

दंसणविणयआवस्सए य, सीलव्वए निरइयारे ।
खणलवतवच्चियाए, वेयावच्चे समाहीए ॥८॥

अपुव्वनाणग्गहणे, सुयभत्ती पव्वयणपभावणया ।
एएहिं कारणेहिं, तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥९॥

जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवकणं जे करंति भावेणं ।
अमला असंकिलिट्ठा, ते हुंति परित्तसंसारी ॥१०॥

एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचणं।
अहिंसासमयं चेव, एयावत्तं वियाणिया ॥११॥
जाइं च वुड्ढिं च इहेज्ज पासं भूतेहिं जाणे पडिलेहसायं।
तम्हातिविज्जो परमंति णच्चा, सम्मत्तदंसी न करेइ पावं ॥१२॥
उम्मुच्च पासं इह मच्चिएहिं, आरंभजीवी उभयाणुपस्सी।
कामेसु गिद्धा णिचयं करंति, संसिंचमाणा पुणरेति गब्भं ॥१३॥
सवणे नाणे य विन्नाणे, पच्चक्खाणे य संजमे।
अणण्हए तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धि ॥१४॥
जीवियं नाभिगच्छेज्जा, मरणं नो वि पत्थए।
दुहओ वि न इच्छेज्जा, जीवियं मरणं तहा ॥१७॥
सारं दंसणनाणं, सारं तवनियमसंजमं सीलं।

सारं जिणवरं धम्मं, सारं संलेहणा पंडियमरणं ॥१८॥
कल्लाणकोडिकारिणी, दुग्गइ दुह निट्ठवणी।
संसारजलहितारणी, एगंत होइ जीवदया ॥१९॥
आरंभे नत्थि दया, महिला संगेण नासइ बम्भं।
संकाए नासइ सम्मत्तं, पव्वज्जा अत्थग्गहणेणं ॥२०॥
मज्जं विसयकसाया, निंदाविकहाय पंचमी भणिया।
एए पंचप्पमाया, जीवा पाडंति संसारे ॥२१॥
लब्भंति विउला भोए लब्भंति सुरसंपया।
लब्भंति पुत्तमित्तं च एगो धम्मो न लब्भइ ॥२२॥
न वि सुही देवता देवलोए, न वि सुही पुढवीपइराया।
न वि सुही सेट्ठि सेणावइ य, एगंत सुही मुणीवीयरागी ॥२३॥

निग्गंथं पवयणं सच्चं—निर्ग्रंथप्रवचनसत्य

एगोमे सासओ अप्पा, नाण—दंसणसंजुओः ।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोग—लक्खणा ॥ [प्रा. आ.]

एक मारो आत्मा ज ज्ञान—दर्शन साथे शाश्वत चिरस्थायी छे. बाकी मित्र, पत्नी, बंधुजन आदि बधा बाह्यभाव संयोग लक्षण होईने अनित्य-अस्थायी नाशवान् छे.

एगोहं नत्थि मे कोई, नाह—मन्नस्स कस्सई ।
एवं अदीण—मणसा, अप्पाणमणुसासइ ॥ [प्रा. आ.]

हुं एक छु, अन्य कोई मारुं नथी, हुं पण दृश्यमान कोई अन्य नो नथी, आ प्रमाणे अदीन मनथी आत्मानुं अनुशासनकरो.

एगे जिए जिया पंच; पंचजिए जिया दस ।
दसहाउ जिणित्ताणं, सव्वसत्तू जिणा महं ॥ [उत्तरा० २३ : ३६]

एक आत्माने जीतवाथी पांच-कषाय सहित-अने पांचने जीतवाथी दस जीताई

जाय छे. जेणे दसने जीत्या तेणे बधा शत्रु जीती लीधा.

एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इंदियाणि य ।
ते जिणित्तु जहा नायं, विहरामि अहं मुणी ॥ [उत्तरा० २३ : ३८]

वगर जीताएल आत्मा शत्रु छे तथा चार कषाय अने पांच इन्द्रिय पण शत्रु छे. एमने विधिपूर्वक जीतीने हुं सुखपूर्वक विचरूं छु.

अप्पा खलु सययं रक्खियव्वो, सव्विंदिएहिं सुसमाहिएहिं ।
अरक्खिओ जाइपहं उवेइ, सुरक्खिओ सव्व-दुहाण मुच्चइ ॥ [दश० चू० २: १६]

बधी इन्द्रियोनें वश करी आत्मानी निरंतर रक्षा करवी जोइए, कारण के अरक्षित आत्मा जन्ममरणने प्राप्त करतो रहे छे, ज्यारे सुरक्षित आत्मा बधा दुःखोथी मुक्त थाय छे.

पंचिंदियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोहं च ।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वं अप्पे जिए जियं ॥ [उत्तरा० ९ : ३६]

पांच इन्द्रिय, क्रोध, मान, माया, लोभ अने दुर्जय आत्मा आ दस शत्रु छे. एक

आत्माने जीती लेवाथी बधा जीती लेवाय छे.

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नंदणं वणं ॥ [उ० २० : ३६]

आ आत्मा ज वैतरणी नदी छे अने आ आत्मा ज कूट शाल्मली वृक्ष छे. आत्मा ज इच्छानुसार दूध आपनारी-कामदुहा धेनु छे अने आज नंदनवन छे.

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ ॥ [उत्तरा० २० : ३७]

आत्मा ज सुख अने दुःखने उत्पन्न करनार अने तेने हणनार पण आत्मा ज छे. आत्मा ज सदाचारथी मित्र अने दुराचारथी अमित्र-शत्रु छे.

कोहं माणं च मायं च, लोभं च पाववड्ढणं।
वमे चत्तारि दोसे उ, इच्छंतो हियमप्पणो ॥ [दश०८ : ३७]

क्रोध, मान, माया अने लोभ पापने वधारनार छे. पोतानुं हित चाहनार आत्माए

आ चार दोषोनो वमननी जेम त्याग करी नाखवो जोइए.

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणय-नासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्व-विणासणो ॥ [दश० ८ : ३८]

क्रोध परस्परनी प्रीतिनो नाश करे छे. मानथी विनय नष्ट थाय छे, माया मित्रतानो नाश करे छे अने लोभ बधा गुणोनो नाश करे छे.

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
मायं चाऽज्जवभावेणं, लोहं संतोसओ जिणे ॥ [दश० ८ : ३८]

उपशम—क्षमा भावथी क्रोधनो नाश करवो अने कोमलताथी मानने जीतवुं, सरल भावथी माया-कपटने अने लोभने संतोषथी जीतवो जोइए.

कोहो य माणो य अणिग्गहीया, माया य लोभो य पवड्ढमाणा।
चत्तारि एए कसिणा कसाया, सिंचंति मूलाइं पुणब्भवस्स ॥ [दश० ८ : ४०]

अनियंत्रित क्रोध अने मान तथा वधी गएल माया अने लोभ आ चारे मलिन कषाय

भव-भ्रमण रूपी छोडना जड-मूळने सींचवावाळा छे. आना कारणोथीज जन्ममरणनी वृद्धि थाय छे.

कोहं माणं निगिण्हित्ता, मायं लोभं च सव्वसो ।
इंदियाइं वसे काउं, अप्पाणं उवसंहरे ॥ [उत्त० २२: ४८]

क्रोध, मान अने माया तथा लोभनो बधी रीते निग्रह करीने तथा इन्द्रियोने वश करी आत्माने स्थिर करो.

सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा ।
कामे य पत्थेमाणा, अकामा जंति दोग्गइं ॥ [उत्त० ९ : ५३]

कामभोग शल्य रूप छे, काम भोग विषरूप छे. कामभोग झेरी नागण समान छे. भोगीनी प्रार्थना करतां करतां बिचारा जीवो, तेमने प्राप्त कर्या विना ज दुर्गतिमां चाल्या जाय छे.

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडम्बियं ।
सव्वे आभरणा भारा सव्वे कामा दुहावहा॥ [उत्त० १३ : १६]

सर्व गीत विलाप छे, सर्व नृत्य व्यर्थ चेष्टा रूप छे. सर्व आभूषण भाररूप छे, अने सर्व कामभोग दुःखरूप छे.

'सामाइयं नाम सावज्जजोगपरिवज्जणं निरवज्जजोग-पडिसेवणं च [आ० सूत्र]

सामायिकनो अर्थ छे—'सावद्य एटले पापजनक कार्योनो त्याग करवो अने निरवद्य अर्थात् पापरहित कार्योनो स्वीकार करवो.'

'आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे' [भगवती]

आत्मा ज सामायिक छे अने आत्मा ज सामायिकनुं फळ या अर्थ छे.

दिवसे दिवसे लक्खं, देइ सुवण्णस्स खंडियं एगो।
एगो पुण सामाइयं, करेइ न पहुप्पए तस्स ॥ [संबोध चत्तारि १७]

एक माणस प्रतिदिन लाख सोनानी महोरोनुं दान करे छे अने बीजो मात्र बे घडीनी सामायिक करे छे, तो ते सोनानी महोरोनुं दान करवावाळी व्यक्ति, सामायिक करवावाळानी समानता प्राप्त करी शकती नथी.

सामाइअसामग्गी, अमरा चिंतंति हिअय-मज्झंमि ।
जइ हुज्ज पहरिमिक्कं, तइय देवत्तणं सुलहं ॥ [सं० स० १८]

सामायिकनी सामग्रीनी प्राप्ति थाय ते माटे देव पण चिंतित रहे छे. जो एक प्रहर पण सामायिक भावनी प्राप्ति थइ जात तो देवपणुं सुलभ-सरळ बने छे.

निंदा पसंसासु समो, समो अ माणावमाण-कारिसु ।
समसयण-परिअणमणो, सामाइअ-संगओ जीवो ॥ [सं० स० १९]

सामायिकमां निंदा प्रशंसा अने मान अपमानमां पण जीव सम बने छे, पछी सामायिक भावमां परिणत जीव स्वजन अने परजनमां पण समवृत्तिवाळो बने छे.

सामाउय-वय-जुत्तो, जाव मणो हीइनियम-संजुत्तो ।
छिन्नह असुहं कम्मं, सामाइय जत्तिया वारा ॥ [प्रा० आ०]

चंचल मनने नियंत्रणमां राखीने ज्यां सुधी सामायिक व्रतनी अखंडधारा चालु

रहे छे, त्यां सुधी अशुभ कर्म बराबर क्षीण थतां रहे छे.

तिव्वतवं तवमाणे, जं नवि निट्ठवइ जम्मकोडीहिं ।
तं समभावि अचित्तो, खवेइ कम्मं खणद्धेण ॥ [प्रा० आ०]

करोडो जन्म सुधी निरन्तर उग्र तपश्चर्या करवावाळो साधक, जे कर्मनो नाश नथी करी शकतो, ते कर्मोनो समभावपूर्वक सामायिक करवावाळो साधक मात्र अर्धी क्षणमां नाश करी नाखे छे.

जे केवि गया मोक्खं, जे वि य गच्छंति जे गमिस्संति ।
ते सव्वे सामाइयप्पभावेणं मुणेयव्वं ॥ [प्रा० आ०]

जे साधको भूतकाळमां मोक्ष गया छे, वर्तमानमां जाय छे अने भविष्यमां जशे, तो ते बधा सामायिकनो ज प्रभाव छे.

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो ।

अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य ॥ [उत्तरा० १ : १५]

विपरीत, ऊलटुं जवावाळा मननुं दमन करो कारण के आत्मदमन बहु कठण छे, आत्मदमन करवावाळो आलोक अने परलोकमां सुखी थाय छे.

वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य।
मा हं परेहिं दमंतो, बंधणेहि वहेहि य ॥ [उत्तरा० १ : १६]

संयम अने तपथी पोताना आत्मानुं दमन करवुं सारुं छे. बीजाओ द्वारा बंधन या तपथी दमावुं सारुं नथी.

कामाणुगिद्धिप्पभवं खु दुक्खं, सव्वलोगस्स सदेवगस्स ।
जे काइयं माणसियं च किंचि, तस्संतगं गच्छइ वीयरागो ॥ [उ० ३२:१९]

देव दानव सहित संपूर्ण लोकने कामासक्तिजन्य ज दुःख थाय छे. वीतराग, शारीरिक अने मानसिक जे कोई दुःख छे तेनो तेओ अन्त प्राप्त करी ले छे.

रागो य दोसो वि य कम्मबीयं; कम्मं च मोहप्पभवं वयंति ।
कम्मं च जाइ–मरणस्स मूलं, दुक्खं च जाइमरणं वयंति ॥ [उ० ३२ : ७]

राग अने द्वेष ए बधां कर्मनां बीज छे, कर्म मोहथी उत्पन्न थाय छे, कर्म ज जन्म मरणनुं मूळ छे अने जन्म मरण ज दुःख छे.

न वि सुही देवता देवलोए, न वि सुही पुढविपतिराया ।
न वि सुही सेट्ठ–सेणावई य, एगंत सुही मुणि वीयरागी ॥ [प्रा० आ०]

देवलोकमां देवता पण सुखी नथी, पृथ्वीपति राजा पण सुखी नथी वळी शेठ सेनापति पण सुखी नथी, केवळ वीतरागी साधु ज एकान्त सुखी छे. समभाव ज सुखनुं साधन छे.

इति श्री विश्वविख्यात जगद्वल्लभादि पदभूषित पूज्य श्री घासीलाल म. सा. के सुशिष्य
९१–९२ तपस्या करनेवाले तपस्वी मुनिश्री मदनलालजी महाराज संग्रहीत
॥ श्रावकधर्म संग्रह संपूर्ण ॥

सम्यक्त्व धर्म का स्वरूप–

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं पावापुरी णामं णयरी होत्था रिद्धत्थिमियसमिद्धा। तत्थ णं पावाए पुरीए सीहसेणो णाम राया होत्था, महया हिमवंतमहंतमलयमंदरमहिंदसारे। तस्स णं सीहसेणस्स रण्णो सीलसेणा णामं देवी, हत्थिवालो णामं पुत्तो जुवराया होत्था। तीए णं पावाए पुरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सव्वोउयपुप्फफलसमिद्धे, रम्मे णंदणवणप्पगासे महासेणं नामं उज्जाणे होत्था। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे महासेणे उज्जाणे समोसढे धम्मकहा–से बेमि जे य अतीता, जे य पडुप्पन्ना, जे य आगमिस्सा, अरहंता भगवंतो ते सव्वे वि एवमाइक्खंति, एवं भासंति, एवं पण्णवेंति, एवं परूवेंति, सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता, ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, ण परिघेत्तव्वा, ण परितावेयव्वा न उद्दवेयव्वा॥

एस धम्मे, सुद्धे, णितिए, सासए समेच्च लोयं, खेयन्नेहिं पवत्तिते–तं जहा–

उट्ठिएसु वा, अणुट्ठिएसु वा, उवरयदंडेसु वा, अणुवरयदंडेसु वा, सोवहिएसु वा, अणोवहिएसु वा, संजोगरएसु वा, असंजोगरएसु वा; ॥ तत्थं चेयं तहा चेयं अस्सिं चेयं पवुच्चइ ॥

अर्थ—उस काल और उस समय में पावापुरी नगरी थी। वह ऋद्ध—ऊंचे—ऊंचे भवनों से युक्त, स्तिमित—स्वपर चक्र के भयसे रहित और समृद्ध धन-धान्य की समृद्धि से युक्त थी। उस पावापुरी नगरी में सिंहसेन नामका राजा था। वह महाहिमवान्, महामलय, मेरु और महेन्द्र पर्वत के समान श्रेष्ठ था। उस सिंहसेन राजा की शीलसेना नामकी रानी थी। हस्तिपाल नामक पुत्र युवराज था। उस पावापुरी के बाहर उत्तर पूर्वदिशा में, सब ऋतुओं के पुष्पों तथा फलों से समृद्ध रमणीय नंदनवन के समान प्रकाशवाला महासेन नामका उद्यान था, उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर महासेन उद्यान में पधारे, वहां पर धर्म परिषदा में धर्मकथा कही जो इस प्रकार है—मैं कहता हूं की जो तीर्थंकर भगवान् भूतकाल में हो गये हैं, जो वर्तमान

काल में वर्तते हैं, एवं जो भविष्य काल में होंगे वे सब इसी प्रकार कहते हैं, बोलते हैं, वर्णन करते हैं की सर्व प्राण, सर्व भूत, सर्व जीव, और सभी सत्वों को न हणे उन पर हकुमत न चलावे, उनको पकडना नहीं उनको मारे नहीं एवं उनको हैरान न करे ऐसा परम पवित्र और नित्य धर्म, लोक के दुःखों को जानने वाले प्रभुने सुनने को तत्पर हुए न हुवे ऐसे जनों को, मुनियों को गृहस्थों को, रागियों को, त्यागियों को, भोगियों को एवं योगियों को कहा है—

यह धर्म ही सत्य धर्म है एवं केवल जिनप्रवचन में ही वर्णित है॥



ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां,
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥१॥



हरिगीतच्छन्दः

करते अवज्ञा जो हमारी यत्न ना उकके लिये।
जो जानते हैं तत्त्व कुछ फिर यत्न ना उनके लिये॥
जनमेगा मुझसा व्यक्ति कोई तत्त्व इससे पायगा।
है काल निरवधि विपुलपृथ्वी ध्यान में यह लायगा॥१॥

# ॥ कल्पसूत्रम् ॥

(द्वितीयो भागः)

## तीर्थंकराभिषेकस्य अधिकारः

मूलम्–जं समयं च णं तिसला खत्तियाणी दारयं पसूया तं समयं च णं दिव्वुज्जोएणं तेल्लुक्कं पयासियं, आगासे देवदुंदुहीओ आहयाओ, अंतोमुहुत्तं णारयजीवाणंपि दसविहखित्तवेयणा परिक्खीणा, अन्नोन्नवेरं च तेसिं उवसमियं अघणा सचंदणा कलियललियकमलासिट्ठी वुट्ठी जाया। फारा वसुहारा वुट्ठा,

पवणा य सुहफासणा मंजुला अणुकूला मलयजउप्पलसीयला मंदमंदा सोर-ब्भाणंदा तं दारगं फासिउं विव पवाया। देवेहिं दसद्धवण्णाइं कुसुमाइं निवार-याइं, चेलुक्खेवे कए, अंतरा य आगासे 'अहोजम्मं अहोजम्मं' ति घुट्टं। उज्जाणाणि य अकालम्मि चेव सव्वोउयकुसुम-निहाणाणि संजायाणि। बावी-कूवतडागाइ-जलासएसु जलानि विमलानि जायाणि। जणवए य जणमणा हरिस-पगरिसवसेण पवनवेगेण सरसि घणरसाविव विसप्पमाणा संजाया। वणवासिणो जंतुणो जम्मजायाणि वेराणि विहुणिय सहाहारिणो सह विहारिणो य जाया। अंबरमंडलं धाराहराडंबरविहुरं अमलं चक्कचिक्कचंचियं जायं। कोइलाइपक्खिणो सालरसालतमालपमुहसाहिसाहासिहावलंबिणो सहयारसरसमंजरीरसस्सायमा-योदंचियपंचमस्सरा मुहुरा अणंतगुणग्गामधामपहुल्लामजसगायगसूयमागह-

चारणविडंबिणो महुरं परं कूइउ मारभित्था ॥सू० १॥

भावार्थ—जिस समय त्रिशला क्षत्रियाणी ने पुत्र को जन्म दिया उस समय दिव्य उद्योत से तीनों लोक प्रकाशित हो गये। आकाश में देवदुंदुभियां बजने लगीं। अन्तर्मुहूर्त्त के लिए नरक के जीवों की भी दस प्रकार की क्षेत्र वेदनाएं शान्त हो गईं।

दश प्रकार की क्षेत्रवेदना–१ अनन्तशीत, २ अनन्तउष्ण, ३ अनन्तभूख, ४ अनन्तप्यास, ५ अनन्तखुजली, ६ अनन्तपराधीनता, ७ अनन्तभय, ८ अनन्तशोक, ९ अनन्तजरा, १० अनन्तव्याधि–

उन्होंने आपस का वैर त्याग दिया। मेघों के अभाव में भी, चन्दन की गन्ध से युक्त, सुन्दर कमलों से युक्त वर्षा हुई। सोने की प्रचुर वर्षा हुई। सुखद स्पर्शवाला, मनोहर, अनुकूल, मलयज चन्दन और कमल के समान शीतल, सुगंध से आनन्द देनेवाला मन्दमन्द पवन चलने लगा, मानो बाल्य अवस्था में स्थित भगवान् का स्पर्श

करनेके लिए ही चला हो। देवों ने पांच वर्णों के पुष्पों की वर्षा की, वस्त्रों की वर्षा की। 'अहो जन्म, अहो जन्म' का आकाश में घोष हुआ। उद्यान असमय में ही सब ऋतुओं के फलों के भंडार बन गये। वावडी, कूप, तालाब आदि जलाशयों का जल विमल हो गया। जैसे वायु के वेग से तालाब का जल चंचल हो उठता है, उसी प्रकार जनपद की जनता के मन हर्ष के प्रकर्ष से चंचल हो उठे। जंगली जानवर जन्मजात वैर को त्याग कर एक साथ आहार और विहार करने लगे। नभमण्डल मेघों की घटाओं से विहीन, विमल और विमानों की चमक से चमकने लगा। साल रसाल (आम्र) तथा तमाल आदि वृक्षों की चोटियों पर चढे हुए कोकिल आदि पक्षी आम की रसीली मंजरियों के रसास्वादन से जनित आनन्द से पंचम स्वर में बोलने लगे और अनन्त गुणगण के धाम भगवान् के ललाम यश का गान करनेवाले सूत, मागध और चारणों को भी मात करते हुए कूजने लगे। ये सब विषय अन्तर्मुहूर्त्त तक रहा ॥१॥

मूलम्—जं रयणिं च णं तिसला खत्तियाणी दारगं पसूया, तं रयणिं च णं भवणवइवाणमंतरजोइसियविमाणवासिदेवेहिं य देवीहिं य उवयंतेहिं य एगं महं दिव्वे देवुज्जोए देवसण्णिवाए देवकहक्कहे उप्पिं जलगभूए यावि होत्था।

अह य देवा य देवीओ य एगं महं अमयवासं च गंधवासं च चुण्णवासं च पुप्फवासं च हिरण्णवासं च रयणवासं च वासिंसु ॥२॥

भावार्थ—जिस रात्रि में त्रिशला क्षत्रियाणी ने पुत्र को जन्म दिया उस रात्रि में भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों और देवियों का भगवान् के समीप आते और ऊपर जाते समय एक महान् दिव्य देव-प्रकाश हुआ, देवों का आपस में मिलन हुआ, देवों का 'कल-कल' शब्द हुआ—अस्फुट सामूहिक शोर हुआ, तथा देवों की अत्यन्त भीड हुई।

इस के पश्चात् देवों और देवियों ने एक बहुत बडी अमृतवर्षा की सुगंधजल की वर्षा की, पुष्पों की वर्षा की, सोनेचांदी की वर्षा की और रत्नों की वर्षा की ॥२॥

मूलम्--भगवंतो तित्थयरा समुप्पज्जंति, तेणं कालेणं तेणं समएणं अहोलोगवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारी महत्तरियाओ सएहिं २ भवणेहिं पासायवडिंसएहिं पत्तेयं २ चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं महत्तरियाहिं सपरिवाराहिं सत्तहिं अणियाहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं सोलसाहिं आयरक्खदेव साहस्सीहिं अण्णेहि य बहुहिं भवणवईवाणमंतरेहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडाओ महयाहयणट्टगीयवाइय जाव भोगभोगाइं भुंजमाणीओ विहरंति तं जहा भोगंकरा भोगवई सुभोगा भोगमालिणी तोयधारा विचित्ता य पुप्फमाला अणिंदिया तए णं तासिं अहोलोअवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारी महत्तरियाण

पत्तेयं २ आसणाइं चलंति। तए णं ताओ अहो लोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी महत्तरियाओ पत्तेयं २ आसणाइं चालयाइं पासंति २ त्ता ओहिं पउंजंति २ त्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएन्ति २त्ता अण्णमण्णं सद्दावेइ २त्ता एवं वयासी-उप्पण्णे खलु भो जंबुद्दीवे २ भारहे वासे खत्तीयकुण्डनयरे भगवं तित्थयरे तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं अहोलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारी महत्तरियाणं भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करित्तए ॥ तं गच्छामो णं अहमवि भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करेमो त्तिकट्टु एवं वयंति २त्ता पत्तेयं २ आभिओगिए देवे सद्दावेंति २ एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अणेग खंभसयसण्णिविट्ठे लीलट्ठियं एवं विमाणवण्णओ भाणियव्वो जाव जोयणविच्छिण्णो दिव्वे जाणविमाणे विउव्वह २त्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति॥ तए णं

आभिओगा देवा अणेगखंभसय जाव पच्चप्पिणंति ।१। एएणं ताओ अहोलोगवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारी महत्तरियाओ हट्ठतुट्ठाओ पत्तेयं २ चउहिं सामाणिय साहस्सीहिं, चउहिं महत्तरियाहिं जाव अण्णेहिं बहुहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडाओ तेहिं दिव्वे जाणविमाणे दुरूहंति २ त्ता सव्विड्ढीए सव्वजुईए घणमुइंगपवणप्पवाइअरवेणं ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणगरे जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणं तेहिं दिव्वेहिं जाणविमाणेहिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति २ त्ता उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए इसिं चउरंगुलमसंपत्ते धरणियले ते दिव्वे जाणविमाणे ठविंति २ त्ता पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव सद्धिं संपरिवुडाओ दिव्वेहिंतो जाण-

विमाणेहिंतो पच्चोरुहंति २ त्ता सव्वड्ढीए जाव णाइएणं जेणेव भयवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति २त्ता भयवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति २ त्ता पत्तेयं २ करयलपरिग्गहीयं सिर-सावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—णमोत्थुणं ते रयणकुच्छिधारिए जग-प्पईव दीतीए जगमंगलस्स चक्खुणो य मुत्तस्स सव्वजगजीववच्छलस्स हिय-कारगमग्गदेसीय अवागिड्ढी विभुप्पभुस्स जिणस्स णाणिस्स णायगस्स बुद्धस्स बोहगस्स सव्वलोगनाहस्स सव्वजगमंगलस्स-निम्ममस्स पवरकुलसमुब्भवस्स, जाईए खत्तियस्स लोगुत्तमस्स जणणी धण्णासी पुण्णासी तं कयत्थासी अम्हेणं देवाणुप्पिए! अहे लोगवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारी महत्तरीयाओ भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामो, तेणं तुब्भेहिं ण भीइयव्वं इति कट्टु,

उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अवक्कमंति २ त्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति २त्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दंडे निस्सरंति, तं जहा--रयणाणं जाव संवट्टगवाए विउव्वंति २त्ता तेणं सिवेणं मउएणं मारुएणं अणुद्धुएणं भूमितलविमलकरणेणं मणहरेणं सव्वोउअ सुरहिकुसुमगंधाणुवासिएणं पिंडिमनीहारिमेणं गंधुद्धुएणं तिरियं पव्वाइएणं भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणस्स सव्वओ समंता जोयणपरिमंडलं से जहाणामए कम्मगदारए सिया जाव तहेव जं तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कयवरं वा असुमइमचोक्खुपूइयं दुब्भिगंधं तं सव्वं आहूणिय आहूणिय एगंते एडेंति एडेत्ता जेणेव भगवं तित्थयरे माया य तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए य अदूरसामंते आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥२॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं उड्ढ-

लोयवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारी महत्तरियाओ सएहिं सएहिं कुंडेहिं सएहिं सएहिं भवणेहिं सएहिं सएहिं पासायवडिंसएहिं वडिंसएहिं पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं एवं तं चेव पुव्ववण्णिय जाव विहरंति, तं जहा-[गाहा]

मेहंकरा, मेहवइ सुमेहा मेहमालिणी,
सुवच्छा वच्छमित्ता य वारिसेणा बलाहया ॥१॥

तए णं तासिं उड्ढलोअवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारी महत्तरिआणं पत्तेयं पत्तेयं आसणाइं चलंति एवं तं चेव पुव्ववण्णिअं भाणियव्वं जाव अम्हेणं देवाणुप्पिए ! उड्ढलोए वत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी महत्तरीआओ भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामो तेणं तुब्भेहिं ण भीइयव्वं तिकट्टु, उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति अवक्कमित्ता जाव अब्भवद्दलए

विउव्वंति विउव्वित्ता जाव तं निहरयं णट्ठरयं भट्ठरयं पसंतरयं उवसंतरयं करेंती करित्ता खिप्पामेव पच्चुवसमंति एवं पुप्फवासं वासंति वासंतित्ता जाव कालागरूपवर जाव सुरवराभिगण जाव करेंति करित्ता जेणेव भयवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता जाव आगायमाणीओ परि-गायमाणीओ चिट्ठंति ॥३॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं पुरत्थिमरूअगवत्थवाओ अट्ठ दिसाकुमारी महत्तारियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं तहेव जाव विहरंति तं जहा-

गाहा— णंदुत्तरा य, णंदा य आणंदा णंदिवद्धणा ।
विजया य वैजयंति जयंति अपराजिया ॥१॥

सेसं तं चेव जाव तुब्भेहिं ण भीइयव्वं तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयर-माउएय पुरत्थिमेणं आयंसहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चि-

ट्ठंति ॥४॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं दाहिणरूअगवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारी महत्तरीयाओ तहेव जाव विहरंति तं जहा–

(गाहा) समाहारा सुप्पइण्णा सुप्पबुद्धा जसोहरा ।
लच्छिमई सेसवई चित्तागुत्ता वसुंधरा ॥१॥

तहेव जाव तुब्भेहिं णभीइयव्वं तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाउए य दाहिणेणं भिंगारहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ।५। तेणं कालेणं तेणं समएणं पच्चत्थिमरुअगवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारी महत्तरीआओ सएहिं सएहिं जाव विहरंति, तं जहा–

गाहा–इलादेवी सुरादेवी पुहवी पउमावई तहा ।
एगणासा णवमिया भद्दा सीया य अट्ठमा ॥१॥

तहेव जाव तुब्भेहिं ण भीइयव्वं तिकट्टु, भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाउए य पच्चत्थिमेणं तालिअंटहत्थगयाओ आगायमाणीओ २ चिट्ठंति ॥५॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं उत्तरिल्लरुअगवत्थव्वाओ जाव विहरंति तं जहा—

गाहा—अलंबुसा मिस्सकेसी य पुंडरीआ य वारुणी।
हासा सव्वप्पभा चेव सिरिहिरी चेव उत्तरओ ॥१॥

तहेव जाव वंदित्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाउए य उत्तरेणं चामरहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥६॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं विदिसारूअगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरीआओ जाव विहरंति तं जहा—चित्ताय चित्तकणगा सतेरा सुदामिणी तहेव जाव ण भीइअव्वं तिकट्टु वंदित्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाउए य चउसु वि दिसासु दीविआ

हत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥७॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं मज्झिमरुअगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरिआओ सएहिं सएहिं कूडेहिं तहेव जाव विहरंति तं जहा रूआ रूअंसा सुरूवा रूवगावई तहेव जाव तुब्भेहिं ण भीइयव्वं तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स चउरंगुलवज्जं णाभिणालं कप्पंति कप्पित्ता वियरंग खणंति २ त्ता वियरगे णाभि णिहणांति २ त्ता रयणाण य वइराण य पुरेंति २ त्ता हरितालिआए पेढं बंधंति बंधित्ता तिदिसिं तओ कयलीहरए विउव्वंति ॥ तए णं तेसिं कयलीहरगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ चउस्सालए विउव्वंति, तए णं तेसिं चउस्सालगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ सीहासणा विउव्वंति, तेसिं णं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते सव्वो वण्णओ भाणियव्वो, तए णं तओ रूअगमज्झवत्थव्वाओ चत्तारि

दिसाकुमारी महत्तरियाओ जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति २ त्ता भगवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिण्हंति गिण्हित्ता तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हंति २ त्ता जेणेव दाहिणिल्ले कयलीहरए जेणेव चउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता भयवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीआवेंति २ त्ता सयपागसहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भिगिंति २ त्ता सुरभिणा गंधवट्टएणं उवट्टेंति २ त्ता भगवं तित्थयरकरयलपुडेणं तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हंति २ त्ता जेणेव पुरत्थिमिल्ले कयलीहरए जेणेव चउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता भयवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति २ त्ता तिहिं उदएहिं मज्जावेंति तं जहा गंधोदएणं पुप्फोदएणं सुद्धोदएणं मज्जाविंति २ त्ता सव्वालंकारविभूसिण्हं करेंति २ त्ता

भयवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हंति २ त्ता जेणेव उत्तरिल्ले कयलीहरए जेणेव चउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता भयवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयाविंति २ त्ता भगवओ भयवं पव्वयाओए २ त्ता तए णं ताओ रूअगमज्झवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरियाओ भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हंति २ त्ता जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणं तेणेव उवागच्छंति २ त्ता तित्थयरमायरं सयणिज्जंसि णीसीआविंति २ त्ता भयवं तित्थयरं माउए वासे ठवेंति २ त्ता आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति।८॥ ॥३

अर्थ—अब पांचवां अधिकार तीर्थंकर भगवान् के जन्म महोत्सव का कहते हैं—उस काल और उस समय में अधोलोक में रहनेवाली महत्तरिका आठ दिशाकुमारीयां अपने

अपने परिवार सहित सात अनिक सात अनिकाधिपति सोल हजार आत्मरक्षक देव और अन्य बहुत भवनपति वाणव्यंतर देव वा देवियों सहित पखरी हुई बडे नृत्य गीत व वादिंत्र सहित यावत् भोग भोगती हुई विचरती हैं। इनके नाम—१ भोगंकरा २ भोगवती ३ सुभोगा ४ भोगमालिनी ५ तोयधारा ६ विचित्रा ७ पुष्पमाला ८ अनिंदिका इस समय अधोलोक में रहनेवाली महत्तरिका दिशाकुमारीका के अपने २ आसन चलायमान होते हैं अपने आसन चलायमान हुवा देखकर वे अवधिज्ञान प्रयुंजते हैं, और भगवान् तीर्थंकर को अवधिज्ञान से देखते हैं फिर सब परस्पर मिलकर ऐसा कहते हैं अहो देवानुप्रिय ? जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में क्षत्रीयकुंड नगर में भगवान् तीर्थंकर उत्पन्न हुए हैं, और अतीत वर्तमान व अनागत अधोदिशा में रहनेवाली महत्तरिका दिशाकुमारिओं का यह जीताचार है कि तिर्थंकर का जन्माभिषेक करे, इससे अपने को भी तीर्थंकर का जन्म महोत्सव करने को जाना चाहिए यों कहकर प्रत्येक आभियोगिक

देवों को बुलाती हैं और कहती है, अहो देवानुप्रिय ! अनेक स्तंभवाला और लीला-सहित पुत्तलियों वाला वगैरह वर्णनयुक्त यावत् एक योजन का चौडा विमान की विकुर्वणा करो और मुझे मेरी आज्ञा पीछे दो. वे ऐसा ही करके उनकी आज्ञा पीछी देते हैं ॥१॥ तत्पश्चात् अधोलोकमें रहनेवाली महत्तरिका आठ दिशाकुमारियां हृष्टतुष्ट होकर अपने अपने चार हजार सामानिक चार महत्तरिका यावत् अन्य बहुत देव एवं देवियों सहित परवरी हुई दिव्य यान विमान पर बैठ कर फिर सब ऋद्धि सब द्युति सहित घन मृदंग व झूसिर के शब्द से उत्कृष्ट दिव्य देवगति से जहां भगवान् तीर्थंकर का जन्म लेने का नगर है वहां आती है, वहां जन्म भवन को अपने दीव्य यान विमान से तीन वार प्रदक्षिणा करती है फिर ईशान कोन में पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर विमान रखकर चार हजार सामानिक देव सहित यावत् अपने परिवार से परवरी हुई सब ऋद्धि द्युति यावत् मृदंगो के शब्द से जहां भगवान् तीर्थंकर व उनकी माता है वहां आती है

भगवान् तीर्थंकर व उनकी माता को तीन वार आदान प्रदक्षिणा करके दोनों हाथ जोडकर मस्तक से आवर्तना करके अंजलि सहित ऐसा बोलती हैं–अहो जगत् के प्रदीपको जन्मदेने वाली व रत्नकुक्षि धारण करनेवाली तुमको नमस्कार होवो, जगत् में मंगल करनेवाले अज्ञान से अंध बने हुए जीवों को चक्षुसमान सब जगज्जीव के वत्सल–हितकारक मार्ग दर्शानेवाले पुद्गल सुख में गृद्धता रहित रागद्वेष को जीतनेवाले ज्ञानी धर्म के नायक स्वयं सब पदार्थ को जानने वाले सबको तत्वज्ञान बताने वाले सब लोक के नाथ सब जगत् में मंगल समान निर्ममत्वी, श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होनेवाले क्षत्रिय-कुल में जन्म ग्रहण करनेवाले और लोक में उत्तम ऐसे उत्तम पुरुष की तुम जननी हो तूम धन्य है, कृत पुण्यवाली तुम हो. अहो देवानुप्रिये ! हम अधोलोक में रहनेवाली महत्तरिका आठ दिशाकुमारी देवियां हैं, हम तीर्थंकर के जन्म का महोत्सव करेंगे। इस से तुम डरना नहीं, यों कहकर ईशानकोन में जाकर वैक्रिय समुद्घात करती है संख्यात

योजन का दंड वनाती है रत्न यावत् संवर्तक वायु की विकुर्वणा करती है फिर उस कल्याणकारी मृदु अनुद्धूत भूमितल को विमल करनेवाला मनहर सव ऋतु के सुगंधित पुष्पों की गंध का विस्तार करनेवाला और सुगंध के लानेवाला ऐसा तीच्छां वायु से भगवान् तीर्थंकर का जन्म भवन से चारों तरफ एक एक योजन के मंडल में जो कुच्छ तृण कच्चर अशूचि व दुरभिगंध वगैरह होवे उसे लेकर दूर डाल देती हैं जैसे कोई किंकर (झाडू निकालनेवाला) काम करता हो वैसे करती है, फिर जहां भगवान् तीर्थंकर व उनकी माता हो वहां आकर पासमें गीत गाती हुई विशेष गाती हुई खडी रहती है ॥२॥ उस काल उस समय में ऊर्ध्वलोक में रहनेवाली महत्तरिका आठ दिशाकुमारियां अपने २ कूटमें अपने २ भवन में अपने २ प्रासादावतंसक में अपने २ चार हजार सामानिक सहित यावत् विचरती हैं जिनके नाम—१ मेघंकरा २ मेघवती ३ सुमेघा ४ मेघमालिनी ५ सुवत्सा ६ वत्समित्रा ७ वारिषेणा और ८ बलाहका० उस समय

ऊर्ध्वलोक में रहनेवाली आठ दिशाकुमारियों के आसन चलते हैं तब वे अपने अवधिज्ञान से तीर्थंकर का जन्म हुवा देखते हैं वगैरह पूर्वोक्त कथन सब यहां कहना यावत् हम ऊर्ध्वलोक में रहनेवाली आठ दिशाकुमारियां हैं हम भगवान् तीर्थंकर का जन्म का अभिषेक करेंगे इससे तुम डरना नहीं यों कहकर ईशानकोन में जाकर यावत् बद्लकी विकुर्वणा करती हैं यावत् पानी वर्षाकर रजका नाश करती है उसे उपशमा देती हैं सब रज को नष्ट भ्रष्ट कर फिर शीघ्रमेव ऐसे ही पुष्पों की वृष्टि करती हैं यावत् काला गुरू कुंदुरुक तुरुक इत्यादि धूप की सुगंध से एक योजन पर्यंत मघमघायमान करती हैं यावत् देवों के आने जैसी जगह करती है वहां से भगवान् तीर्थंकर व उनकी माता जहां होती है वहां आकर उनके पास यावत् विशिष्टतर गाती हुई खडी रहती है ॥३॥ उस काल उस समय में पूर्व में रुचक कूट पर रहनेवाली आठ दिशाकुमारियां यावत् विचरती हैं जिनके नाम—नंदुत्तरा, नंदा, आनंदा, नंदीवर्धना विजया वैजयंति, जयंति

और अपराजिता हैं, शेष सब पूर्वोक्त प्रकार जानना यावत् तुमको डरना नहीं ऐसा कहकर तीर्थंकर व उनकी माता के पास हाथ में काच रखकर गीत गाती हुई खडी रहती है ॥४॥ उस काल उस समय में दक्षिण के रुचक पर्वत पर रहनेवाली महत्तरिका आठ दिशाकुमारियां यावत् विचरती है तद्यथा—१ समाहारा २ सुप्रज्ञा ३ सुप्रबुद्धा ४ यशोधरा ५ लक्ष्मीवती ६ शेषवती ७ चित्रगुप्ता और ८ वसुंधरा वे भी पूर्वोक्त प्रकार भगवंत की माता को वंदना नमस्कार कर यावत् कहती है कि तुम डरना नहीं हम दक्षिण दिशा की महत्तरिका आठ दिशाकुमारियां तीर्थंकर का जन्म महोत्सव करेगीं यो कहकर भगवान् तीर्थंकर व उनकी माता के पास दक्षिण दिशा की तरफ हाथ में झारी लेकर गाती हुई खडी रहती हैं उस काल उस समय में पश्चिम दिशा के रुचक पर्वत पर रहनेवाली आठ दिशाकुमारियां अपने २ आवास में यावत् विचरती हैं जिनके नाम- १ इलादेवी २ सुरादेवी ३ पृथ्वीदेवी ४ पद्मावती ५ एकनासा ६ नवमिका ७ भद्रा और

८ सीता वे भी पूर्वोक्त प्रकार से तीर्थंकर की माता को कहती है कि तुम डरो मत यों कहकर तीर्थंकर व उनकी माता के पास पश्चिम में तालवृंत [पंखा] हाथ में लेकर गाती हुई खडी रहती है ॥५॥ उस काल उस समय में उत्तर दिशा के रुचक पर्वत पर रहनेवाली यावत् विचरती हैं जिनके नाम--१ अलम्बुषा २ मिश्रकेशा ३ पुण्डरीका ४ वारुणी ५ हासा ६ सर्वप्रभा ७ श्री और ८ ह्री वे भी तीर्थंकर की माता को वंदना नमस्कार कर उत्तर दिशा में चामर लेकर गीत गाती हुई खडी रहती है ॥६॥ उस काल उस समय में विदिशा के रुचक पर्वत पर रहनेवाली चार महत्तरिका दिशाकुमारियां यावत् रहती हैं जिनके नाम--१ चित्रा, २ चित्रकनका ३ सतेरा और ४ सुदामिनी वैसे ही यावत् डरना नहीं वहां तक सब कहना वे भगवान् तीर्थंकर व उनकी माता को वंदना नमस्कार कर उनके पास चार विदिशाओं में दीपिका हाथ में लेकर गीत गाती हुई खडी रहती हैं ॥७॥ उस काल उस समय में बीचके रुचक पर्वत पर रहनेवाली चार महत्त-

रिका दिशाकुमारी अपने २ कूट में यावत् विचरती हैं उनके नाम—१ रूपा २ रूपांसा ३ सुरूप और ४ रूपकावती ये भी पूर्वोक्त प्रकार तीर्थंकर भगवान् की माता के पास आती है और कहती है कि तुम डरना नहीं यों कहकर भगवान् तीर्थंकर की चार अंगुल छोडकर नाभी नाल का छेदन करती है, उस नाल को खड्डा में गाडती है फिर रत्नों व वज्ररत्नों से उस खड्डे को पूरा करती है उस पर हरताल की पीठिका बांधती है हरताल की पीठिका बांधकर पूर्व उत्तर व दक्षिण इन तीन दिशामें तीन कदली के घर का वैक्रिय करती हैं कदली घरके बीच में तीन चोशाल भुवन का वैक्रिय करती है इनके बीच में तीन सिंहासन का वैक्रिय करती हैं। फिर वे मध्य रुचक पर रहनेवाली चार महत्तरिका (व्यंतर जाती की देवियां) तीर्थंकर व उनकी माता के पास आती है, वहां तीर्थंकरको करतल (हथेली) में और

माता को वाहा से पकडकर दक्षिण दिशा के कदली गृह में लाती है वहां भगवान् को और उनकी माता को सिंहासन पर बैठाती है फि.र वहां शतपाक व सहस्रपाक तेल से

उनके शरीर को मर्दन करती है सुगंधित महागंधवाला गंध पूडा से उनको पीठी लगाती है वहां से उन दोनों को पूर्व दिशा के कदली गृह में चौसाल भुवन में सिंहासन पास लाती हैं वहां उस सिंहासन पर दोनों को बैठाकर तीन प्रकार के पानी से स्नान कराती है जैसेकी—१ गंधोदक २ पुष्पोदक और ३ शुद्धोदक इस प्रकार तीन प्रकार के पानी से स्नान कराये पीछे भगवान् तीर्थंकर को करतल से और उनकी माता को बांहा से पकडकर उत्तर दिशा के कदली गृह के चउसाल के सिंहासन पास आती हैं वहां उनको सिंहासन पर बैठाकर आशीर्वाद देती है कि अहो भगवन् पर्वत जितनी आयुष्य वाले होवो तत्पश्चात् वहां से भगवान् तीर्थंकर को और उनकी माता को हाथ से ग्रहण कर जहां जन्म भवन होता है वहां लाती है वहां तीर्थंकर की माता को उनके शय्या पर बैठाती है और तीर्थंकर को उनकी माता के पास बैठाती हैं फिर वे गाती हुई पास में खडी रहती है ॥३॥

मूलम्--तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्केणं देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरंदरे सयक्कतु सहस्सक्खे मघवं पागसासणे दाहिणड्ढ लोगाहिवई बत्तीसाविमाणवाससयसहस्साहिवई, एरावणवाहणे सुरिंदे, अयरंबरवत्थधरे आलईय मालमउडे नव हेमचारुचित्तचंचलकुंडलाविलहिज्जमाणगल्ले भासुरबोंदी पलंबवणमालधरे महिड्ढीए महज्जुइए महब्बले महायसे महाणुभागे महासोक्खे सोहम्मकप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए सक्कंसि सीहासणंसि से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणवाससयसाहस्सीणं चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं तेत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं सोहम्मकप्पवासीणं

वेमाणियाणं देवी य वण्णगाणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगं आणाईसरसेणावच्चं करेमाणे पालेमाणे महयाहयणट्टगीयवाइयतंतीतल-तालतुडियघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ ॥ तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो, आसणं चलइ। तए णं से सक्के जाव आसणं चालियं पासइ पासित्ता ओहिं पउंजइ २ त्ता भयवं तित्थयरं ओहिणा आभोएइ २ त्ता हट्ठतुट्ठ चित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविस-प्पमाणहियए धाराहय कयंबकुसुमचंचुमालइअऊसवियरोमकूवे वि असिय वर-कमलनयणवयणे पचकियवरकडगतुडियकेऊरमउडकुंडलहारविरायंतरइयवच्छे, पालंबपलंबमाणघोलंतभूसणधरे ससंभमं तुरियं चवलं सुरिंदे सीहासणाओ अब्भु-ट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहई २ त्ता वेरुलिय वरिट्ठरिट्ठ अंजणणिउणो-

च्चिय मिसिमिसंत मणिरयणमंडिआओ पाउआओ ओमुअइ २ त्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ २ त्ता अंजलि मउलियग्गहत्थे तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ २ त्ता वामं जाणु अंचेइ २ त्ता दाहिणं जाणुधरणि अलंसि साहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणि अलंसि निवेसयइ २ त्ता ईसिं पच्चुण्णयइ २ त्ता कडगतुडिअथंभियाओ भुयाओ साहरइ २ त्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—णमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं आइगराणं तित्थयराणं सयं संबुद्धाणं पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरियाणं, पुरिसवरगंधहत्थीणं, लोगुत्तमाणं, लोगणाहाणं, लोगहियाणं, लोगपइवाणं, लोगपज्जोयगराणं, अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, जीवदयाणं, बोहिदयाणं, धम्मदयाणं, धम्मदेसियाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं,

दीवोत्ताणं, सरणगइपइट्ठाणं अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं, वि अट्ट छउमाणं, जिणाणं, जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं, बुद्धाणं बोहियाणं, मुत्ताणं मोअगाणं, सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं सिवमयलमउअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावत्तियं सिद्धिगइणामधेयं, ठाणं संपत्ताणं, णमो जिणाणं जीयभयाणं, णमोत्थुणं भगवओ तित्थयरस्स आइगरस्स जाव संपाविओ कामस्स वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए पासउ मे भयवं तत्थगए इहगयं तिकट्टु वंदइ णमंसइ २ त्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ।९। ॥४॥

भावार्थ–उस काल और उस समय में शक्र नामक देवेन्द्र देवराज, हाथ में वज्र धारण करनेवाले, दैत्यों को विदारने वाले, सो बार श्रावक की पडिमा-प्रतिमा के आराधक, सहस्र चक्षुओं के धारक, महामेघ जिसके वश में है ऐसा एवं पाक नामक दैत्य को शिक्षा करनेवाले,

मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा के संपूर्ण अर्धलोक के अधिपति सौधर्म देवलोक संबंधी ३२ बत्तीस लाख विमान के स्वामी, ऐरावत गज का वाहनवाले, देवताओं में इन्द्र रज रहित निर्मल वस्त्र धारण करनेवाले, गले में माला, मस्तक पर मुकुट धारण करनेवाले नवीन सुवर्ण के झगमगाट करते हुए मनोहर चंचल दोनों कान के कुंडल से सुशोभित गंडस्थलवाले, प्रकाशमान देहवाले, लटकती हुई माला धारण करनेवाले, महर्द्धिक महाद्युतिक महाबलवंत महायशवंत, महानुभाववाले, महासुखवाले ऐसे देवेन्द्र सौधर्म देवलोक के सौधर्मावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में शक्र सिंहासन पर बत्तीस लाख विमान, चौरासी हजार सामानिक देव, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देव, चार लोकपाल, परिवार सहित आठ अग्रमहिषियों तीन परिषदा, सात अनीक, सात अनीकाधिपति, तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देव और अन्य बहुत देव और देवियों का वैसे ही आभियोगिकों का अधिपतिपना, अग्रगामीपना, स्वामीपना, महत्तरिकपना, आज्ञा ईश्वर और सेनापतिपना

करते हुवे बडे २ नाद से नृत्य गीत, तंतीताल त्रुटित और मृदंग के शब्द से भोग भोगते हुवे विचर रहे हैं। उस समय शक्र देवेन्द्र का आसन चलायमान होता है, जब शक्र देवेन्द्र का आसन चलायमान होता है तब शक्रेन्द्र अवधिज्ञान प्रयुंजते है और अवधिज्ञान से भगवान् तीर्थंकर को देखते हैं देखकर देवेन्द्र शक्र हृष्टतुष्ट होते हैं, चित्त में आनंदित होते हैं उत्कृष्ट सौम्य मनवाले होते है हर्षवश से हृदय विकसायमान होता है। वृष्टि की धारा से हणाया हुवा कदंब वृक्ष के पुष्प समान विकसायमान होते हैं, विकसित रोमकूप होते हैं, श्रेष्ठ कमल के समान नयन और वदन विकसायमान होते हैं, प्रचलित श्रेष्ठ कडे त्रुटित, केयूर, मुकुट कुंडल व हृदय के हार वगैरह लम्बे लटकते हुए रहते हैं, इस प्रकार के शक्र देवेन्द्र ससंभ्रांत शीघ्रमेव अपने सिंहासन से उपस्थित होते है फिर वेरुलिय व रिष्टरत्नों से जडित अंजन समान कृष्णवर्ण की उपचित प्रदीप्त मणिरत्नों से मंडित पगरखीयां निकालते है फिर पादपीठ से नीचे उतरकर एक वस्त्र

का उत्तरासंग करते है। दोनों हाथ की अंजलि मस्तक पर स्थापित कर तीर्थंकर के सन्मुख सात आठ पांव जाते हैं वहां बाया पांव उंचा करके दाहिना पांव खडा करते है फिर तीन बार पृथ्वीतल पर मस्तक रख कर किंचिन्मात्र नमन कर कडे त्रुटित से लंबित भुजाएँ पीछी खींचकर करतल मिलाकर शिर से आवर्त देकर व मस्तक पर अंजलि स्थापित करके ऐसा बोलते हैं कि अरिहंत भगवान् को नमस्कार होवो। वे कैसे है धर्म की आदि करने वाले चार तीर्थ स्थापन करनेवाले स्वयमेव तत्वज्ञान प्राप्त करने वाले पुरुषों में उत्तम, पुरुषों में सिंह समान, पुरुषों में पुंडरिक कमल समान पुरुषों में गंध हस्ति समान लोक में उत्तम, लोक के नाथ लोक के हितकारी लोक में प्रदीप समान लोक में उद्योत करनेवाले अभयदान के दाता, ज्ञानरूप चक्षु के दाता, मोक्ष-मार्ग के दाता भयभीत प्राणियों को शरण देनेवाले, संयमरूप जीवीतव्य देनेवाले, समकितरूप बोधिबीज देनेवाले, धर्म देनेवाले, धर्म के उपदेश करनेवाले धर्म के नायक

धर्मरूप रथ के सारथि धर्म में चातुरंत चक्रवर्ती संसार समुद्र में द्वीप समान शरणागत को आधारभूत, अप्रतिहत केवलज्ञान व केवलदर्शन धारण करनेवाले, छद्मस्थपना रहित स्वयं रागद्वेष का जय करनेवाले अन्य से रागद्वेष का जय करानेवाले स्वयं संसार समुद्र से तीरनेवाले, अन्य को तिरानेवाले स्वयं तत्वज्ञान जाननेवाले अन्य को तत्वज्ञान बतलाने वाले स्वयं अष्ट कर्म से मुक्त होनेवाले और अन्य को मुक्त करानेवाले सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं उपद्रव रहित अचल रोग रहित अनंत अव्यय अव्याबाध और जहां से पुनरागमन होवे नहीं वैसी सिद्धिगति को प्राप्त करनेवाले और सातों भयों को जीतने वाले सिद्ध भगवान् को नमस्कार होवो। भगवान् तीर्थंकर धर्म के आदि करनेवाले यावत् मोक्ष प्राप्त करनेवालों को नमस्कार होवो। अहो भगवन् आप वहां रहे हुवे को भी मैं यहां रहा हुवा नमस्कार करता हूं यहां रहे हुवे आप मुझे देखते हो, यों वंदना नमस्कार कर अपने सिंहासन पर शक्रेन्द्र बैठते हैं ॥४॥

मूलम्–तएणं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अयमेयारूवे जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था–उप्पण्णे खलु भो! जंबुद्दीवे दीवे भयवं तित्थयरे तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवराईणं तित्थयराणं जम्मण-महिमं करित्तए तं गच्छामि णं अहंपि भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमाहिमं करेमि तिकट्टु एवं संपेहेइ २ त्ता हरिणेगमेसिं पायत्ताणियाहिवइं देवे सद्दा-वेई २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सभाए सुहम्माए मेघो-घरसियगंभीरमहुरं सद्दं जोयणपरिमंडलसुघोससुस्सरं घंटं तिखुत्तो उल्लाल-माणे २ महया २ सद्देणं उग्घोसमाणे २ एवं वयासी–आणवेइणं भो! सक्के देविंदे देवराया गच्छइ णं भो! सक्के देविंदे देवराया जंबूद्दीवे दीवे भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमाहिमं करित्तए, तुब्भेवि णं देवाणुप्पिया! सव्विड्ढिए सव्व

जुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदयएणं सबायरेणं सव्वविभूइए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वणाडएहिं सव्वरोहेहिं सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारविभूसाए सव्वदिव्वतुडियसद्दसण्णिणाएणं महया इड्ढीए जाव रवेणं णिअयपरियालसंपरिवुडा सयाइं २ जाणविमाणवाहणाइं दुरूढा समाणा अकालपरिहीणं चेव सक्कस्स जाव अंतियं पाउब्भवह ॥सू० ५॥

भावार्थ—उस समय शक्र देवेन्द्र को ऐसा संकल्प उत्पन्न होता है कि जम्बूद्वीप में भगवान् तीर्थंकरका जन्म हुआ है इससे अतीत वर्तमान व अनागत शक्र देवेन्द्र का यह जीताचार है कि भगवान् तीर्थंकरका जन्म महोत्सव करना इससे भगवान् तीर्थंकरका जन्म महोत्सव करने को मैं भी जाऊँ ऐसा विचार करके हरिणगमेषी नामक पदात्यानिक के अधिपति को बोलाते हैं और कहते हैं कि अहो देवानुप्रिय ! सुधर्मा

सभा में जाकर मेघ के समान गंभीर मधुर शब्द करनेवाली एक योजन की विस्तारवाली सुस्वरवाली घंटा को तीन बार बजाते हुवे बडे २ शब्द से उद्घोषणा करो कि शक्र देवेन्द्र देवराजा आज्ञा करते हैं, शक्र देवेन्द्र देवराजा जम्बूद्वीप में भगवान् तीर्थंकरका जन्म महोत्सव करने के लिए जाते हैं इससे अहो देवानुप्रिय! तुम भी सब ऋद्धि सब द्युति, सब समुदय और सब प्रकार की विभूति सहित सब विभूषा सब संभ्रम सब नाटक सब आरोह सब पुष्प, गंध, माला, अलंकार व विभूषा सब दीव्यत्रुटित शब्द सन्निपात महाऋद्धि यावत् शब्द सहित अपने २ परिवार से परवरे हुए अपने २ यान विमान पर बैठकर विलम्ब रहित शक्र देवेन्द्र के सन्मुख आवो ॥५॥

मूलम्—तए णं से हरिणगमेसी देवे पायत्ताणियाहिवई सक्केणं देविंदेणं देव-रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे जाव एवं देवोत्ति आणाए विणएणं वयणं पडीसुणेई २ त्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरायस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव सभाए

सुहम्माए मेघोघरसियगंभीरमहुर य सद्दा जोयणपरिमंडल सुघोसघंटा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तं मेघोघरसियगंभीरमहुर य सद्दं जोयण परिमंडलं सुघोसं घंटं तिखुत्तो उल्लालेई। तए णं तीसे मेघोघरसियगंभीरमहुरसद्दाए जोयणपरिमंडलाए सुघोसाए घंटाए तिखुत्तो उल्हालिआए समाणीए सोहम्मे अण्णेहिं एगूणेहिं बत्तीसविमाणावाससयसहस्सेहिं अण्णाइं एगूणाइं बत्तीसघंटासयसहस्साइं जमगसमगं कणकणरावं काओ पयत्ताइं विहुत्था तए णं से सोहम्मे कप्पे पासायविमाणनिक्खुडा वडियसद्दसमुट्ठियप्पडिसुआ सयसहस्सं संकुले जाए आवि होत्था॥६॥

भावार्थ—वह हरिणगमेषि नामक पदात्यानिक के अधिपति शक्र देवेन्द्र के पास से ऐसा सुनकर हृष्टतुष्ट होते हैं यावत् अहो देव ! वैसा करूँगा यों कहकर आज्ञा

को विनयपूर्वक सुनता है फिर शक्र देवेन्द्र के पास से निकलकर सुधर्मा सभा में आता है वहां मेघ के गर्जारव समान गंभीर मधुर शब्द से एक योजन के परिमंडलीवाली घंटा को तीन बार बजाता है तब उस मेघ घर में गंभीर मधुर शब्दका एक योजन में प्रसार करने वाली सुघोष घंटा को तीन वक्त बजा ने से अन्य एक कम बत्तीस लाख विमान की उतनी ही घंटा के समूह का एक साथ कणकणाट शब्द होता है वही शब्द सौधर्म देवलोक के विमान प्रासाद वगैरह जो गंभीर प्रदेश हैं वहां फैलता हुवा उसकी प्रतिध्वनि से लक्षगम शब्द उस घंटा के हो जाते हैं ॥सू-६॥

मूलम्–तए णं तेसिं सोहम्मकप्पवासीणं बहूणं विमाणिआणं देवाण य देवीण य एगंतरइप्पसत्तणिच्चप्पमत्तविसयसुहमुच्छियाणं सुसरघंटारसिअ विउलबोलतुरियचवलबोहए कए समाणे घोसणकोऊहल दिण्णकण्णए मग्ग-

चित्त उवउत्तमाणसाणं से पायत्ताणियाहिवई देवे तोसिं घंटारवंसि निसंत संतपडिसिसमाणंसि तत्थ २ ताहिं २ देसे २ महया २ सद्देण उग्घोसेमाणे २ एवं वयासी (गाहा) हंदि सुणंतु भवंतो बहवे सोहम्मवासिणो देवा सोहम्मकप्पवइणो इणमो वयणहियसुहत्थं आणवेइ णं भो सक्के तं चेव जाव अंतियं पाउब्भवए ।७।

भावार्थ—उस समय उस सौधर्म देवलोक में रहनेवाले बहुत वैमानिकदेव और देवियां रमने में एकांत आशक्त हो रहे थे। एकांत प्रेमानुरागरक्त बने थे विषयसुख में मूर्च्छित बने हुए थे वे मधुर शब्द वाली सुघोष घंटा से जागृत हो जाते और उद्घोषणा सुनने के लिए कान व मन को एकाग्र बनालेते हैं वह अधिपति उस घंटा शब्द से शांत बने हुवे स्थान में बडे २ शब्द से उद्घोषणा करते हुवे ऐसा कहते हैं कि सौधर्मदेवलोक में रहनेवाले बहुत देवता व देवियां तुम यह हितकारी व सुख करनेवाले

वचन सुनो शक्र देवेन्द्र आज्ञा करते हैं यावत् उनके पास शीघ्रमेव आवो सू-७

मूलम्--तए णं ते देवा य देवीओ य एयमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठ जाव हियया-अप्पेगइया वंदणवत्तियं एवं सक्कारवत्तियं, सम्माणवत्तियं दंसणवत्तियं कोउहल-वत्तियं जिणसभत्तिरागेण अप्पेगइया सक्कस्स वयणमणुवट्टमाणा अप्पेगइया अण्ण-मण्णमणुवहमाणा अप्पेगइया जीयमेय एवमाइ त्तिकट्टु जाव पाउब्भवंति ।८।

भावार्थ---तब वे देव और देवियां ऐसा सुनकर हृष्टतुष्ट होते है। कितनेक वंदन करने के लिये कितनेक (आदर) करने के लिए कितनेक सत्कार के लिये सन्मान के लिये दर्शन के लिए कुतूहल के लिए जिनदेव की भक्तिके लिए कितनेक तीर्थंकरके वचनों के अनुवर्ती बनेहुए कितनेक एक एक के अनुवर्ती बने हुए कितनेक यह हमारा जीताचार है ऐसा मानकर शक्र देवेन्द्र के पास जाते हैं ॥सू-८॥

मूलम्—तए णं से सक्के देविंदे देवराया ते बहवे वेमाणिय देवा य देवीओ य अकालपरिहीणं चेव अंतियं पाउब्भवमाणे पासइ २ त्ता हट्ठे पालयं णामं अभिओगियं देवं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं लीलट्ठिएअ सालभंजीआकालियं ईहामियउसह-तुरगणरमगरविहगवालगकिण्णररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलय भत्तिचित्त-खंभुग्गयवइररेइया परिगयाभिरामं विज्जाहरजमलजुयलं जंस जुत्त पिव अच्ची-सहस्स मालिणीयं रूवगसहस्सकलियं भिसमाणं भिब्भिसयाणं चक्खुल्लोयणलेसं सुहफासं सस्सिरियरूवं घंटावलिचलियं महुरमणहरसरं सुहकंतं दरिसणिज्जं णिउणोचिअभिसिभिसितं मणिरयणघंटियाजालपरिक्खित्तं जोयणसयसहस्स-विच्छिण्णं पंच जोयणसयमुव्विद्धं सिग्घतुरियजइणणिव्वाहिं दिव्वजाणविमाणं

विउव्वेहि २ त्ता एसमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि ॥९॥

भावार्थ—अब वह शक्र देवेन्द्र देव राजा अपने बहुत वैमानिक देवता देवियों को शीघ्रमेव अपने पास आए हुए देखकर हृष्टतुष्ट होते हैं और पालक नामक आभियोगिक देवको बुलाकर कहते हैं अहो देवानुप्रिय ! अनेक स्तंभवाला क्रीडा करती हुई पुत्तलियों से कलित ईहामृत वृषभ तुरग नर, मगर, विहग, व्यालक, किन्नर रुरु, सरभ चमर, कुंजर वनलता पद्मलता, समान चित्रवाले, स्तंभ पर उद्भवित वज्रमय वेदिका से मनोहर विद्याधरों के युगल युक्त सूर्य जैसे हजारो किरणों से कलित अतिशोभावाला तेज में कीरण डालता हुआ चक्षुओंको अवलोकन योग्य सुखकारी स्पर्शवाला सश्रीकरूपवाला घंटाकी पंक्तियोंसे चंचल मनोहर मधुर स्वरवाला सुखकारी कांत दर्शनीय निपुण कारिगरोंने बनाया हुआ मणीरत्न घंटाजालसे घेराया हुआ एक लाख योजन का विस्तार वाला पांचसौ योजनका उंचा शीघ्र त्वरित कार्य करने वाला ऐसा दीव्य यान विमान

की विकुर्वणा करो और मुझे मेरी आज्ञा पीछी दो ॥९॥

मूलम्--तए णं से पालए देवे सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव वेउव्वियसमुग्धाएणं समोहणइ २ त्ता तहेव करेइ तस्स णं दिव्वस्स जाणविमाणस्स तिदिसिं तओ तिसोवाणयपडिरूवगा वण्णओ तेसि णं पडिरूवगाणं पुरओ पत्तेयं २ तोरण वण्णओ जाव पडिरूवगा तस्स णं जाणविमाणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागं से जहा णामए अलिंगपुक्खेइवा जाव दीवियचम्मेइ वा अणेगसंकुकीलगसहस्सवितत आवड पव्वावडसेढिप्पसेढि सुत्थिय सोवत्थिय वद्धमाणपुसमाणवमच्छंडगमगरंडजारामारा फुल्लावलिपउमपत्तसागरतरंगवसंतलयपउमलयभत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं सप्पभेहिं समरीइएहिं सउज्जोएहिं णाणाविहं पंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए तेसिं

णं मणीणं वण्णो गंधो फासो य भाणियव्वो, से जहा रायप्पसेणइज्जा तस्स णं भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए पेच्छाघरमडंवे अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे वण्णओ जाव पडिरूवे तस्स उल्लोए पउमलया भत्तिचित्ते जाव सव्वतवणिज्जमए जाव पडिरूवे तस्स णं मंडवस्स बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्जदेसभागं महं एगा मणिपेढिया अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं चत्तारि जोयणाई बाहल्लेणं सव्वमणिवई वण्णओ तीसए उवरिं महं एगे सीहासणे वण्णओ तस्स उवरिं महं एगे विजयदूसे सव्वरयणामए वण्णओ तस्स मज्झदेसभाए एगे वइरामए अंकुसे एत्थ णं महं एगे कुंभिक्के मुत्तदामे, से णं अण्ण अण्णिहिं तदद्दुच्चत्तप्पमाणमित्तेहिं चउहिं अद्धकुंभिक्केहिं मुत्तादामेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ते णं दामा तवणिज्जभे बूसगा सुवण्णपयरगमंडिया

णाणामणिरयणविविहहारद्धहारउवसोहिया समुइया ईसिं अण्णमण्णसंपत्ता पुव्वाइएहिं वाएहिं मंदं मंदं एज्जमाणा २ जाव निव्वुइकरेणं सद्देणं ते पएसे आपूरेमाणा २ जाव अईव २ उवसोहेमाणा २ चिट्ठंति ॥१०॥

भावार्थ—तत्पश्चात् वह पालक देव शक्र देवेंद्र से ऐसा सुनकर हृष्टतुष्ट होता है यावत् वैक्रिय समुद्घात करके वैसा ही करता है उस दिव्य यान विमान को तिन दिशा में तीन त्रिसोपान होते हैं उन पंक्तियों के आगे तोरण कहे हैं यावत् प्रतिरूप हैं उस यान विमान के अंदर बहुत सम रमणीय भूमि विभाग कहा है जैसे मृदंग का तल होता है यावत् दीपडेका चर्म होता है उसमें अनेक खीलों जडे हुवे होते हैं आवर्त प्रत्यावर्त श्रेणी प्रश्रेणी स्वस्तिक वर्धमान पुष्यमान मच्छ के अंडे मगर के अंडे स्त्री पुरुष के जोडे कंदर्पचेष्टा पुष्पावली पद्मपत्र सागर तरंग वसंत ऋतुकी लता पद्मलता वगैरह के चित्रवाला कांतिप्रभा श्री व उद्योत वाली पांच प्रकार की मणियों सहित सुशोभित है उन

मणियों का वर्ण गंध रस व स्पर्श राजप्रश्नीय सूत्र से जानना उस भूमिभागके मध्य बीच में प्रेक्षागृह मंडप कहा है वह अनेक स्तंभवाला यावत् प्रतिरूप है उस प्रेक्षागृह मंडपके बहुत रमणीय भूमि विभाग के मध्य बीच में एक बडी मणिपीढिका कही है यह आठ योजन की लम्बी चौडी व चार योजन की जाडी है सर्वांग मणिमयी है वगैरह वर्णन करना उस पर एक सिंहासन वह भी वर्णन युक्त है इस पर दिव्य देवदूष्य—वस्त्र ढका है सर्वांग रजत मय वगैरह वर्णन युक्त है। उसके ऊपर मध्य बीच में एक वज्र-रत्न मय अंकुश कहा है यहां पर एक वडे कुंभी समान मुक्ताफल की माला है उसके आसपास उससे आधे प्रमाणवाली चार कुंभिका समान माला कही है, वे मालाओं तपनीय सुवर्णमय उंचे प्राकार से परिमंडित हैं विविध प्रकार के मणियों व रत्नों से विविध प्रकारके हार अर्धहार से सुशोभित है आनंद उत्पन्न करनेवाला है परस्पर किंचिन्मात्र नहीं लगता हुआ पूर्वादि दशों दिशा के वायु को घेर कर हलते हुए यावत्

निवृत्ति सुख करने वाले शब्दसे विमान के प्रदेश को पूर्ण करता हुआ यावत् अत्यंत शोभता हुआ है ॥१०॥

मूलम्--तस्स णं सीहासणस्स अवरूत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णस्स चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं चउरासीइ भद्दासणसाहस्सीओ पुरत्थिमेणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं, एवं दाहिणपुरत्थिमेणं अब्भिंतरपरिसाए दुवालसण्हं देवसाहस्सीणं दाहिणेणं मज्झिमपरिसाए चउदसण्हं देवसाहस्सीणं दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरपरिसाए सोलसाए देवसाहस्सीणं पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणियाहिवई एएणं तस्स सीहासणस्स चउद्दिसि चउण्हं चउरासीण आयरक्खदेवसाहस्सीणं एवमाइ वि भासियव्वं सूरियाभगमेणं जाव पच्चप्पिणइ ॥११॥

भावार्थ—उस सिंहासन से वायव्य कोन उत्तर व ईशान कोन में शक्र देवेन्द्र के ८४००० सामानिकदेव के चौरासी हजार भद्रासन कहे हैं पूर्वदिशा में आठ अग्रमहिषियों के आठ भद्रासन कहे हैं ऐसे ही अग्नि कोन में आभ्यन्तर परिषदा के बारह हजारदेव, के दक्षिण में मध्य परिषदा के चौदह हजार देव के नैऋत्य कोन में बाहिरकी परिषदा के सोलह हजार देव के पश्चिम में सात अनिकाधिपति के सात भद्रासन कहे हैं और उसके चारों दिशा में ३३६००० तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देव के उतने भद्रासन कहे हैं यह सब सूर्याभदेव जैसे कहना यावत् इस प्रकार विमान बना करके वह पालक देव आज्ञा पीछे देता है ॥११॥

मूलम्–तए णं से सक्के देविंदे देवराया जाव हट्ठहिअए दिव्वं जिणंदाभिगमणजुग्गं सव्वालंकारविभूसियं उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वइ २ त्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं णट्टाणीएणं गंधव्वाणीएण य सद्धिं तं विमाणं

अणुप्पयाहिणी करेमाणे २ पुव्विलेणं तिसोवाणेणं दुरूहइ २ त्ता जाव सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे एवं चेव सामाणिआवि उत्तरेणं तिसोवाणेणं दुरूहित्ता पत्तेयं २ पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति अवसेसा देवा य देवीओ य दाहिणिल्लेणं तिसोवाणेण दुरूहित्ता तहेव जाव णिसीअंति ॥१२॥

भावार्थ—तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराजा यावत् हृष्टतुष्ट बनकर दिव्य जिनेंद्र के अभिगमन के योग्य सब अलंकार से विभूषित बनकर उत्तरवैक्रिय रूप करते हैं और आठ अग्रमहिषियों व उनके परिवार नृत्यानीक गंधर्वानीकसहित विमानको प्रदक्षिणा करता हुआ पूर्वके त्रिसोपानसे विमान पर चडकर पूर्वाभिमुख से सिंहासन पर बैठता है ऐसे ही सामानिक देव उत्तर दिशा के पंक्तियों से चडकर अपने अपने भद्रासन पर बैठते हैं शेष देवता व देवियां दक्षिण दिशाके पंक्तियों से चडकर यावत् अपने २ भद्रासन पर बैठते हैं ॥१२॥

मूलम्—तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णस्स दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठ मंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया तयाणंतरं च णं पुण्णकलसभिंगारं दिव्वा य छत्तपडागा सचामरा य दंसणरइआलो अदारिसणिज्जा वाउद्धुय विजयवेजयंति समूसिता गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया तयाणंतरं च णं छत्तभिंगारं, तयाणंतरं च णं वइरामयवट्टलट्ठसंठिया सुसिलिट्ठपरिघट्ठमट्ठसुपइट्ठिए विसिट्ठे अणेगवरपंचवण्णकुडभी सहस्सपरिमंडियाभिरामे वाउद्धुयविजयवेजयंतिपडागछत्ताइछत्तकलिए तुंगे गगणतलमणुलिहंतसिहरे जोयणसहस्समूसिए महइमहालइए महिंदज्झए पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिए तयाणंतरं च णं सरूवनेवत्थ परिअत्थि असुसज्जा सव्वालंकारविभूसिया पंचअणिआ पंचअणिआहिवईणो जाव संपट्ठिआ तयाणं

तरं च णं बहवे आभियोगिआ देवा य देवीओ य सएहिं २ रूवेहिं जाव निओगेहिं सक्के देविंदे २ पुरओ अमग्गओ य पासओ य अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया तयाणंतरं च णं बहवे सोहम्मकप्पवासी देवा य देवीओ य सव्विड्ढीए जाव दुरूढासमाणा मग्गओ य जाव संपट्ठिया तए णं से सक्के देविंदे देवराया तेणं पंचाणीय परिक्खित्तेणं जाव महिंदझएणं पुरओ पकिच्छिज्जमाणेणं चउरासीए सामाणिय जाव परिवुडे सविड्ढीए जाव रवेणं सोहम्मकप्पस्स मज्झं मज्झेणं तं दिव्वं देवड्ढिं जाव उवदंसेमाणे २ जेणेव सोहम्मस्स कप्पस्स उत्तरिल्ले निज्जाणमग्गे तेणेव उवागच्छई २ त्ता जोयणसयसाहस्सीएहिं विग्गहेहिं ओवयमाणे २ ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए वीइवयमाणे २ तिरियमसंखिज्जाणे दीवेसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं जेणेव णंदीसरवरदीवे जेणेव दाहिणपुरत्थिमिल्ले रइकर

पव्वए तेणेव उवागच्छई एवं जा चेव सूरियाभस्स वत्तव्वया णवरं सल्लाहिंगारो वत्तव्वो जाव तं दिव्वं देविड्ढिं जाव दिव्वं जाणविमाणं पडिसाहरमाणे २ जाव जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणगरे जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणे तेणेव उवागच्छइ २त्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणं तेणं दिव्वेण जाणविमाणेणं तिखुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २त्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए चउरंगुलमसंपत्ते धरणियले तं दिव्वं जाणविमाणं ठवेई २त्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं दोहिं अणीएहिं गंधव्वाणिएण य णट्टाणीएण य सद्धिं ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरूहइ तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउरासीइ सामाणियसाहस्सीओ ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ उत्तरिल्लेणं

तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरूहंति अवसेसा देवा य देवीओ य ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति ॥१३॥

भावार्थ—जब शक्र देवेन्द्र उस विमानपर आरूढ होता है तब उसके आगे आठ आठ मंगल चलते हैं तदनंतर पूर्ण कलश झारी दिव्य पताका चामर और आंखको सुखकारी देखने योग्य वायु से कंपायमान विजय वैजयंती नामक पताका गगनतलको स्पर्श करती हुई यथानुक्रम से निकलती है तदनंतर छत्र सहित भृंगार कलश चलता है तदनंतर वज्ररत्नमय, वर्तुल लष्ठ सुश्लिष्ठ घटारी मठारी विशिष्ठ अनेक प्रकारकी पांचवर्ण वाली अन्य छोटी ध्वजाओं से सुशोभित और वायुसे उडती हुई विजय वैजयंती पताका व छत्रातिछत्र वाली गगन तल को स्पर्श करती एक हजार योजनकी महेन्द्रध्वजा आगे चलती है तदनंतर अपने २ नेपथ्य (वेश) में सज्ज बने हुए व सब अलंकार से विभूषित पांच अनीक व उनके अधिपति देव अनुक्रम से चलते हैं तद-

नंतर बहुत आभियोगिक देवता व देवियों अपने रूप से यावत् कार्य से शक्र देवेन्द्र के आगे पीछे व आसपाससे चलते हैं तदनंतर सौधर्म देवलोक रहनेवाले बहुत देवता व देवियों सब ऋद्धि सहित यावत् विमान पर आरूढ हुए आगे चलते हैं तत्पश्चात् पांच अनीकसे परिक्षिप्त यावत् महेन्द्रध्वजा जिनके आगे चलती है ऐसा शक्र देवेन्द्र चौरासी हजार सामानीक देव सहित यावत् परवरा हुआ सब ऋद्धि यावत् बडे २ शब्द सहित सौधर्म देवलोक के मध्य बीच में होकर दिव्य देव ऋद्धिबताता हुवा जहां सौधर्म देवलोकका उत्तरदिशाका निर्यान (नीचे उतरनेका) मार्ग है वहां एक लाख योजन का शरीर बनाकर आता हुआ उत्कृष्ट दिव्य यावत् देवगति से जाता हुआ, तीर्च्छा असंख्यात द्वीप समुद्र के मध्य बीच में होकर जहां नंदीश्वर द्वीप है वहां अग्नि कौन के रतिकर पर्वत पर आता है यों जैसे सूर्याभ देवकी वक्तव्यता कही है वैसा ही कहना विशेष में यहां शकेन्द्रका अधिकार कहना यावत् दिव्य देवऋद्धि यावत् यान विमान को साहरन करके

भगवान् तीर्थंकरका जन्म होनेका नगर एवं जहां उनका जन्म भवन होता है वहां आता है उस भवन को दिव्य यान विमान से तीन वार प्रदक्षिणा करके भगवान् तीर्थंकरके जन्म भवन से ईशान कोन में पृथ्वी तल से चार अंगुल ऊंचा दिव्य यान विमान रखता है फिर आठ अग्रमहिषियों और गंधर्वानीक ८ नृत्यानीक यों दो अनीक सहित पूर्व दिशा की पंक्तियों से नीचे उतरते हैं तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र के चौरासी हजार सामानीक देव उस दिव्य यान विमान के उत्तर दिशा की पंक्तियों से नीचे उतरते ह और शेष देवता व देवियों उस दिव्य यान विमान से दक्षिणकी पंक्तियों से नीचे उतरते हैं ॥१३॥

मूलम्—तए णं से सक्के देविंदे देवराया चउरासीए सामाणियसाहस्सीएहिं जाव सद्धिं संपरिवुडे, सव्विड्ढीए जाव दुंदुहि णिग्घोसणाइयरवेणं जेणेव भयवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आलोए चेव पणामं करेइ २ त्ता भयवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ त्ता

करयल जाव एवं वयासी णमुत्थु ते रयणकुच्छिधारिए एवं जहा दिसाकुमारीओ जाव धण्णासि पुण्णासि तं कयत्थासि अहण्णं देवाणुप्पिए ! सक्के णामं देविंदे देवराया भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामि तण्णं तुब्भेहिं णो भी- इयव्वं तिकट्टु उवसोवणिं दलयई २ त्ता तित्थयर पडिरूवगं विउव्वइ २ त्ता तित्थयरमाऊए पासे ठवेइ २ त्ता पंच सक्के विउव्वइ २ त्ता एगे सक्के भयवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिण्हइ, एक्के सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ दुव्वे सक्का उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेंति एगे सक्के पुरओ वज्जपाणी पवुट्ठइ ॥१४॥

भावार्थ—तत्पश्चात् वह शक्र देवेन्द्र चौरासी हजार सामानीक सहित यावत् परवरा हुआ सब ऋद्धि यावत् दुंदुभि बजाता हुआ जहां भगवान् तीर्थंकर व उनकी माता होती है वहां आता है उनको देखते ही प्रणाम कर तीन वार आदक्षिण प्रदक्षिणा करके दोनों हाथ जोडकर ऐसा कहता है कि अहो रत्न कुक्षिको धारन करनेवाली तुमको

नमस्कार होवो यों जसे दिशाकुमारियोंने कहा वैसे ही कहना यावत् अहो देवानुप्रिय! तू धन्या है तू पुन्य वाली है तू कृतार्थ है अहो देवानुप्रिये! मैं शक्र नामक देवेंद्र भगवान् तीर्थंकरका जन्म महोत्सव करूँगा इससे तुम डरना नहीं यों कहकर तीर्थंकर की माता को उपस्थापिनी निद्रा देकर तीर्थंकर जैसा दूसरा रूप बनाकर उनके पास रखता है फिर पांच शक्र का वैक्रेय बनाता है जिन में से एक शकेन्द्र भगवान् तीर्थंकर को करतल से ग्रहण करता है एक शकेन्द्रपीछे रहकर छत्र धारण करता दो शकेन्द्र दोनों बाजु रह कर चामर वींजते और एक शकेन्द्र हाथ में वज्र धारणकर तीर्थंकरके आगे चलता है।१४।

मूलम्—तए णं से सक्के देविंदे देवराया अण्णेहिं बहूहिं भवणवई वाणमंतरजोइसवेमाणीएहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे सविड्ढीए जाव णाईएणं ताए उक्किट्ठाए जाव वीइवयमाणे २ जेणेव मंदरे पव्वए जेणेव पंडगवणे जेणेव अभिसेयसिला जेणेव अभिसेयसीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणव-

रगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ॥१५॥

भावार्थ—फिर वह देवेन्द्र बहुत भवनपति वाणव्यंतर ज्योतिषी व वैमानिक देव देवियों से परवरा हुआ सब ऋद्धि द्युति यावत् नाद से उत्कृष्ट दिव्य देव गतिसे मेरू पर्वत के पंडग वन में अभिषेक शिला के सिंहासन पास आता है वहां सिंहासन पर भगवान् तीर्थंकर को पूर्वाभिमुखसे बैठाता हैं ॥१५॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया मूलपाणी वसभवाहणे सुरिंदे उत्तरड्ढलोगाहिवई अट्ठावीसई विमाणवाससयसहस्साहिवई अरयंवरवत्थधरे एवं जहा सक्के इमं णाणत्तं महाघोसाघंटा लहुपरक्कमो पायत्ताणियाहिवई पुप्फओ विमाणकारी दक्खिणिल्ले णिज्जाणमग्गे उत्तरपुरत्थिमिल्लो रइकरपव्वओ मंदरे समोसरिओ जाव पज्जुवासइ एवं अवसिट्ठा वि इंदा

भाणियव्वा जाव अच्चुओत्ति इमं णाणत्तं (गाहा) चउरासीई असीई बावत्तरी सत्तरीय सट्ठीयपण्णा चत्तालीसा तीसा वीसा दससहस्सा एए सामाणियाणं (गाहा) बत्तीसट्ठा वीसा बारस अडचउरा सयसहस्सा पण्णा चत्तालीसा छच्च सहस्सा सहस्सारे आणय पाणय कप्पे चत्तारि सया रण्णच्चूए तिण्णि एए विमाणाणं इमे जाणविमाणकारी देवा तं जहा गाहा–पालय पुप्फय सोमणसे सिरिवच्छेयणंदियावत्ते कामगमे पीइगमे मणोरमे विमल सव्वओ भद्दे सोहम्मगाणं सणंकुमाराणं बंभलोयगाणं महासुक्काणं पाणयागाणं इंदाणं सुघोसघंटाहरिणगमेसी पायत्ताणिआहिवई उत्तरिल्ला णिज्जाण भूमी दाहिणपुरत्थिमिल्ले रइकर पव्वए ईसाण माहिंदलंतसहस्सारेच्चुअगाणं इदाणं महाघोसाघंटा लहुपरक्कमोपायत्ताणीयाहिवई दक्खिणिल्ले णिज्जाणमग्गे उत्तरपुरत्थिमिल्ले-

रइकरगपव्वए परिसाओणं जहा जीवाभिगमे आयरक्खा सामाणिय चउग्गुणा सव्वेसिं जाणविमाणा सव्वेसिं जोयणसहस्सविच्छिण्णा उच्चत्तेणं सविमाणप्पमाणा महिंदज्झया सव्वेसिं जोयणसाहस्सीया सक्कवज्जा मंदरे समोसरंती जाव पज्जुवासंति ॥१६॥

भावार्थ—उस काल उस समय में ईशान नामक देवेन्द्र देवराजा हाथ में त्रिशूल-धारण करनेवाला वृषभका वाहनवाला देवताओं का इन्द्र उत्तरार्ध लोक का अधिपति अठाईस लाख विमानका स्वामी रज रहित वस्त्र धारण करने वाला यों जैसी शकेन्द्र की वक्तव्यता कही थी वैसे ही सब वक्तव्यता यहां कहना। विशेष में महाघोष घंटा बजाता है लघुपराक्रम नामक पादात्यनीक के अधिपति देव घंटा बजाता है पुष्पक नामक विमान का वैक्रिय करता है दक्षिण दिशाके निर्यान मार्ग से उतरता है ईशान कोन रतिकर पर्वत पर ठहरता है और मेरुपर्वत पर जाता है यावत् पर्युपासना करता है ऐसे ही अच्युत

पर्यंत शेष सब इन्द्रोंका कहना। इसमें जो जो विशेषता है सो कहते हैं सौधर्मेन्द्र के ८४ हजार सामानीक देव है। ईशानेन्द्र के ८० हजार सनत्कुमारेन्द्र के ७२ हजार माहेन्द्र के ७० हजार ब्रह्मेन्द्र के ६० हजार लांतकेन्द्रके ५० हजार महाशुक्रेन्द्र के ४० हजार सहस्रारेन्द्र के ३० हजार प्राणतेन्द्र के २० हजार और अच्युतेन्द्रके १०ह जार सामानिक देव हैं।

अब विमान की संख्या कहते हैं सौधर्मेन्द्र देवलोक में ३२ लाख विमान, ईशानेन्द्र के २८ लाख विमान, सनत्कुमारेन्द्र के १२ लाख माहेन्द्र के ८ लाख ब्रह्मेन्द्र के ४ लाख लांतकेन्द्र के ५० हजार महाशुकेन्द्र के ४० हजार सहस्रारेन्द्र के ६ हजार प्राणतेन्द्र के ४०० और अच्युतेन्द्र के ३०० विमान कहे हैं अब यान विमान के नाम कहते हैं १ पालक २ पुष्पक ३ सौमणस ४ श्रीवत्स ५ नंदावर्त ६ कामगम ७ प्रीतिगम ८ मनोरम ९ विमल और १० सर्वतोभद्र। सौधर्मेन्द्र सनत्कुमारेन्द्र ब्रह्मेन्द्र महाशुकेन्द्र और प्राणतेन्द्र इन पांच इन्द्रों के सुघोष नामक घंटा है और हरिणगमेषी नामक पदात्यनीक देवता है। इनके निकलने

के द्वार उत्तर दिशा में है और अग्निकोन के रतिकर पर्वत पर विश्राम लेते हैं ईशानेन्द्र, माहेन्द्र, लांतकेन्द्र, सहस्रारेन्द्र और अच्युतेन्द्र इन पांचो के महाघोष नामक घंटा है, लघुपराक्रम नामक पदातिका अधिपति देवता है। दक्षिण दिशा में निकलने का द्वार है और ईशानकोन के रतिकर पर्वत पर विश्रामस्थान है इनकी तीनों परिषदा के देवों का कथन जीवाभिगमसूत्र से जानना। सामानिक देवों से आत्मरक्षक देव चोगुने जानना। सब के यान विमान एक लाख योजन का लम्बा चौडा और अपने २ देवलोक के विमान जितना उंचा बनाते है सबकी महेन्द्र ध्वजा एक हजार योजन की। शक्रेन्द्र तीर्थंकर के जन्म नगर में आते हैं और शेष इन्द्र अपने २ स्थान से सीधे मेरु पर्वत पर आते हैं यावत् पर्युपासना करते हैं ॥१६॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिंदे असुरराया चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसी चउसट्ठी सामाणियसाह-

स्सीहिं तेत्तीसाए तायत्तीसएहिं चउहिं लोगपालेहिं पंचहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणियाहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं चउहिं चउसट्ठीहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहिं जहा सक्को णवरमिमं णाणत्तं दुमो पायत्ताणियाहिवई ओघस्सरा घंटा विमाणं पण्णासं जोयणसहस्साइं महिंदज्जओ पंच जोयणसहस्साइं विमाणकारी आभिओगिओ देवो अवसिट्ठं तं चेव जाव मंदरे समोसरइ पज्जुवासइ ॥१७॥

भावार्थ—उस काल और उस समय में चमरेन्द्र नामक असुरेन्द्र असुरकुमार जाति के देवों की चमरचंचा राजधानी में सुधर्मा सभामें चमर सिंहासन पर ६४ हजार सामानिक तेत्तीस त्रायस्त्रिंशक चार लोकपाल परिवार सहित पांच अग्रमहिषीयों तीन परिषदा सात अनीक, सात अनीकाधिपति, दो लाख छप्पन हजार आत्मरक्षक और अन्य बहुत

देवता एवं देवी के साथ भोग भोगता हुआ विचरता है वगेरह सब वर्णन शक्रेन्द्र जैसे ही कहना परंतु यहां पर विशेषता बताते हैं। दुम पदात्यानिक का अधिपति ओघस्वर घंटा पचास हजार योजन का विमान लम्बा चौडा पांच हजार योजन की उंची महेन्द्र ध्वजा विमान बनाने-वाला आभियोगी देवता, शेष सब पूर्वोक्त प्रकार कहना। यह मेरु पर्वत पर सीधे जाते हैं।१७।

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं बलिरसुरिंदे असुरराया एवमेव णवरं सट्ठी सामाणिय साहस्सीओ चउगुणा आयरक्खा महादुमो पायत्ताणीयाहिवई महाओघरस्सरा घंटा सेसं तं चेव परिसाओ जहा जीवाभिगमे ॥१८॥

भावार्थ—उस काल और उस समय में बलि नामक असुरेन्द्र यावत् भोगोपभोग भोगता हुआ विचरता है इसका भी कथन पूर्वोक्त प्रकार से कहना। विशेष में ६० हजार सामानिक देव दो लाख चालीस हजार आत्मरक्षक देव महादुम नामक पदाति अनीक का अधिपति यहां ओघस्वर घंटा और शेष पूर्वोक्त प्रकार जानना। यावत् मेरु पर्वत पर

सीधे जाते हैं। उनकी परिषदा जीवाभिगम सूत्र से जानना ॥१८॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं धरणे तहेव णाणत्तं छ सामाणिय साहस्सीओ छ अग्गमहिसीओ चउगुणा आयरक्खा मेघस्सरा घंटा भद्दसेणो पायत्ताणीयाहिवई विमाणं पणवीसं जोयणसहस्साइं माहिंदज्झओ अड्ढाइज्जाइं जोयणसहस्साइं एवं असुरिंदवज्जियाणं भवणवासि इंदाणं णवरं असुराणं ओघस्सरा घंटा णागाणं मेघस्सरा सुवण्णाणं हंसस्सरा विज्जूणं कोंचस्सरा अग्गीणं मंजूस्सरादिसाणं मंजूघोसा उदहीणं सुस्सरा दीवाणं महुरस्सरा वाऊणं णंदिस्सरा थणियाणं णंदीघोसा (गाहा) चउसट्ठी सट्ठी खलु छच्च सहस्साओ असुरवज्जाणं सामाणियाओ एए चउग्गुणो आयरक्खाओ दाहिणिल्लाणं पायत्ताणीयाहिवई भद्दसेणो उत्तरिल्लाणं दक्खो ॥१९॥

भावार्थ—उस काल और उस समय में धरणेन्द्र नामक नागकुमारेन्द्र यावत् मेरु पर्वत पर जाते हैं वहां तक अधिकार पूर्वोक्त जैसे कहना विशेष में छ हजार सामानिक, अढाइ हजार योजन की उंची महेन्द्र ध्वजा, ऐसे ही असुरेन्द्र सिवाय भवनवासी के सब इन्द्रों का जानना। विशेष से असुरकुमार के ओघस्वरवाली घंटा नागकुमार के मेघस्वरवाली घंटा सुवर्णकुमार के हंसस्वरवाली विद्युत्कुमार के क्रौंचस्वरवाली, अग्निकुमार के मंजूस्वरवाली, दिशाकुमार के मंजुघोषवाली उदधिकुमार के सुस्वर द्वीपकुमार के मधुरस्वरवाली वायुकुमार के नंदीस्वरवाली और स्तनितकुमार के नंदीघोषवाली घंटा है। चमरेन्द्र के ६४ हजार सामानिकदेव बलेन्द्र के ६० हजार और शेष १८ इन्द्रों के छ २ हजार सामानिक देव कहे हैं। इनसे चौगुणे आत्मरक्षक देव हैं चमरेन्द्र सिवाय दक्षिण दिशा के नव इन्द्रों का पालक नामक पदातिका स्वामी है उत्तर दिशा के बलेन्द्र का भद्रसेन नामक पदातिका स्वामी है और शेष दक्षिण दिशा के

नव इन्द्रों के दक्ष नामक पदातिका स्वामी है ॥१९॥

मूलम्—वाणमंतरजोइसिया णेयव्वा एवं चेव णवरं चत्तारि सामाणिअ साहस्सीओ, चत्तारि अग्गमहिसीओ सोलस आयरक्खसहस्सा विमाणा जोयण सहस्सं, महिंदज्झया पणवीसजोयणसयं घंटा दाहिणाणं मंजुस्सरा उत्तराणं मंजुघोसा पायत्ताणियाहिवई विमाणकारिय आभिओगा देवा जोइसियाणं सुस्सरा सुस्सरणिग्घोसाओ घंटाओ मंदरे समोसरणं जाव पज्जुवासंति ॥२०॥

भावार्थ—इस प्रकार का कथन वानव्यंतर देवता का और ज्योतिषी देवता का भी कहना इस में इतना विशेष चार हजार सामानिक देव, चार अग्रमहिषी सोलह हजार आत्मरक्षक देव एक हजार योजन का लम्बा चौडा विमान सवासो योजन की महेन्द्र ध्वजा व्यंतर जाति के दक्षिण दिशा के १६ इन्द्र के मंजुस्वरा नामक घंटा उत्तर दिशा के १६ इन्द्र

के मंजुघोषा नामक घंटा है, कटक का स्वामी भी पालदेव है ज्योतिषी में चंद्रमा इन्द्र के सुस्वरा नामक घंटा है और सूर्य के सुस्वरा निर्घोष नामक घंटा है यों १० वैमानिक के २० भवनपति के ३२ वानव्यंतर के और २ ज्योतीषी के सब मिलकर ६४ इन्द्र मेरु पर्वत पर आकर तीर्थंकर भगवान की पर्युपासना करते हैं ॥२०॥

मूलम्-तए णं से अच्चुए देविंदे देवराया महिंदे देवाहिवे आभिओगे देवे सद्दावेइ २त्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! महत्थं महग्घं महरिहं विउलं तित्थयराभिसेयं उवट्ठावेह ॥२१॥

भावार्थ—फिर अच्युतेन्द्र नामक देवेन्द्र देवता का राजा और सब देवेन्द्र का स्वामी आभियोगिक देवता को बुलाते हैं और कहते हैं कि अहो देवानुप्रिय! महा-अर्थवाला महदर्घ्य, महामूल्यवाला ऐसा तीथकर का जन्म का अभिषेक करो ॥२१॥

मूलम्-तए णं से आभियोगा देवा हट्ठतुट्ठा जाव पडिसुणित्ता, उत्तरपुर-

त्थिमं दिसीभायं अवक्कमंति अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं जाव समोहणित्ता, सुवण्णमया १, रययमया २, रयणमया ३, सुवण्णरययमया ४, सुवण्णरयणमया ५, रययरयणमया ६, सुवण्णरययरयणमया ७, मट्टियामया ८ जे कलसा तेसिं कलसाणं इक्किक्काए जाईए अट्ठुत्तरसहस्सं अट्ठुत्तरसहस्सं ईक्किक्कस्स इंदस्स आसी। एवं चउसट्ठीए इंदाणं छण्णवइ-आहिय-सोलससहस्ससंजुयाइं पंचलक्खाइं कलसाणं दट्ठूण सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो इमेयारूवे अज्झत्थिए पत्थिए चिंतिए कप्पिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'जे इमावालो सिरिसकुसुम—सुउमालो पहू एवइयाणं जलसंमियाणं महाकलसाणं महइमहालयं जलधारं कहं सहिस्सइ' त्ति। एवंविहं सक्कस्स अज्झत्थियं ओहिणा आभोइय तहा संसयनिवारणट्ठं अउलबलपरक्कमो भयवं सयपादंगुट्ठग्गेणं सीहासणस्स

एगदेसे फुसइ। तए णं भगवओ तित्थयरस्स अंगुट्ठग्गफासमेत्तेणं मेरु 'महा-पुरिसाणं चरणफासेण अहं पावणो जाओम्हि'-त्ति कट्टु हरिसिओ विव कंपिउमारद्धो ॥२२॥

भावार्थ—तदनन्तर वे आभियोगिक देव हृष्टतुष्ट हुए यावत् यह वचन सुनकर के उत्तर पूर्व दिशा की ओर ईशानकोने में जाकर वैक्रिय समुद्घात करते हैं वैक्रिय-समुद्घात करके वैक्रिय समुद्घात से आठ सहस्रसुवर्ण का कलश एवं तत्पश्चात् १ स्वर्ण के, (२) चांदी के, (३) रत्नों के, (४) सोने–चांदी के, (५) सोने–रत्नों के, (६) चांदी-रत्नों के, (७) सोने–चांदी–रत्नों के तथा (८) मृत्तिका के, इन आठ प्रकार के कलशों में से एक एक जाति के प्रत्येक इन्द्र के पास एक हजार आठ कलश थे। इस प्रकार चोंसठ इन्द्रों के कुल पांच लाख, सोलह हजार, छ्यानवे कलश हुए। इतने कलशों को देखकर देवेन्द्र देवराज शक्र को ऐसा आध्यात्मिक, प्रार्थित, चिन्तित, कल्पित, मनोगत

संकल्प हुआ कि शिरीष के कुसुम के समान सुकुमार यह शिशु भगवान् इतने जलपूर्ण महाकलशों की अत्यन्त विशाल जलधारा को किस प्रकार सहेंगे ?

शक्र के इस प्रकार पांचो प्रकार के विचार अवधिज्ञान से जानकर, उनकी शंका को दूर करने के लिये, अतुल बल और पराक्रम वाले तीर्थंकर भगवान् ने अपने पैर के अंगुठे के अग्रभाग से सिंहासन के एक भाग का स्पर्श किया, तब भगवान् तीर्थंकर के अंगुठे के स्पर्शमात्र से मेरु पर्वत कांपने लगा, मानो 'महापुरुषों के चरणस्पर्श से मैं पावन हो गया' ऐसा सोचकर हर्ष से हिलने लगा हो ॥२२॥

मूलम्—जं समयं च णं मेरु कंपिउमारद्धो. तं समयं च णं पुढवी कंपिया, समुद्दो खुद्धो, सिहराणि पडिउमारद्धाणि। तेसिं सयलजगजीवजायहियय विदारगो भयभेरवो महासद्दो समुब्भूओ। तिहुयणंसि महं कोलाहलो जाओ। लोगा भयभीया जाया। सव्वजंतुणो भयाउला सयसयट्ठाणाओ निस्सरिय को अम्हाणं

तायगो' भविस्सइ त्तिकट्टु सरणमन्नोसिउ विव जत्थ तत्थ पलाइउमारद्धो। सव्वे देवा देवीओ यावि भउव्विग्गमाणसा जाया।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया एवं चिंतेइ-'जण्णं अयं विसालो मेरु इमस्स कोमलाओवि कोमलस्स बालगस्स पहुणो उवरि पडिस्सइ, तो अस्स बालगस्स का दसा भविस्सइ? इमस्स बालगस्स अम्मापिऊणं समीवे कहं गमिस्सामि? किं कहिस्सामि? त्तिकट्टु सक्किंदो अट्टज्झाणोवगओ झियायइ। तओ 'केण एवं कडं' त्तिकट्टु सक्के देविंदे देवराया आसुरुत्ते मिसिमिसंते कोवग्गिणा संजलिए ओहिं पउंजइ। तए णं ओहिणा नियदोसं विण्णाय भगवओ तित्थयरस्स पायमूले करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी-णायमेयं अरहा! विण्णायमेयं अरहा! परिण्णायमेयं अरहा! सुय-

मेयं अरहा! अणुहूयमेयं अरहा! जे अईया जे य पडुप्पन्ना जे य आगमिस्सा अरहंता भगवंतो ते सव्वेऽवि अणंतबलिया अणंतवीरिया अणंतपुरिसक्कारपरक्कमा हवंति तिकट्टु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नियअवराहं खमावेइ ॥२३॥

भावार्थ—जिस समय मेरु पर्वत कांपने लगा, उस समय निश्चय ही सारी पृथ्वी कांप उठी, समुद्र क्षुब्ध हो गया, शिखर गिरने लगे, समस्त संसार के जीवों के हृदय को विदारण करनेवाला महान् भयंकर नाद हुआ। तीनों लोक में बडा कोलाहल हो गया। लोग डर गये। सब प्राणी भय से व्याकुल होकर, अपने-अपने स्थान से निकलकर 'कौन हमारी रक्षा करेगा' ऐसा सोचकर शरण खोजने के लिए इधर-उधर भागने लगे और सभी देवो एवं देवताओं का चित्त भी भय से कांपने लगा।

तब देवेन्द्र देवराज शक्र ने इस प्रकार विचार किया—अगर यह विशाल मेरु पर्वत, कमल से भी कोमल, बालवयवाले उन प्रभु के ऊपर गिर जायगा तो इनकी क्या दशा

होगी ? कैसे मैं इनके मातापिता के पास जाऊंगा ? क्या कहूंगा ?। इस प्रकार विचार करके शक्रेन्द्र आर्त्तध्यान से युक्त होकर चिन्ता करने लगे।

फिर 'किसने ऐसा किया है?' यह सोचकर शक्र देवेन्द्र देवराज को क्रोध आगया। क्रोध की अग्नि से वह प्रज्वलित हो गये। उनने अवधिज्ञान का उपयोग लगाया। तब अवधिज्ञान से अपना ही दोष जानकर भगवान् तीर्थंकर के चरणमूल में दोनों हाथ जोडकर और मस्तक पर आवर्त्त एवं अंजलि करके वह इस प्रकार बोले—'हे भगवन्! मैंने जाना है, हे भगवन्! मैंने अच्छी प्रकार जाना है, हे भगवन्! मैंने खूब अच्छी प्रकार जाना है, हे भगवन्! मैंने सुना है, हे भगवन्! मैंने अनुभव भी कर लिया है कि जो अर्हन्त भगवान् अतीतकाल में हो चुके हैं, जो अर्हन्त भगवान् वर्त्तमान में है, और जो अर्हन्त भगवान् भविष्य में होंगे, वे सभी अनन्तबली, अनन्तवीर्यवान्, अनन्तपुरुषकार—पराक्रम के धनी होते हैं।' इस प्रकार बोलकर उनको वन्दना की, नमस्कार

किया, वन्दना नमस्कार करके अपने अपराध को खमाया ॥२३॥

मूलम्—तए णं सव्वे इंदा हरिसवसविसप्पमाणहियया सव्विड्ढिए जाव महया रवेणं अच्चु इंदाइक्कमेण भगवं तित्थयरं तित्थयराभिसेएणं अभिसिंचिंसु।

तए णं सक्किंदेण अणुवममहावीरत्ताचं चियत्तणेणं कंपियमेरु 'भीमभयभेरवं उरालं अचेलयाइयं परिसहं सहिस्सइ' त्तिकट्टु य भगवओ गिव्वाणगणसमक्खं अत्थधामं सिरीमहावीरेति नामं कयं ॥२४॥

भावार्थ—तत्पश्चात् हर्ष से विकसित चित्तवाले होकर सब इन्द्रोंने पूरे ठाठ के साथ यावत् महान् घोष करते हुए, अच्युतेन्द्र आदि के क्रम से भगवान् तीर्थंकर का अभिषेक किया।

तत्पश्चात् शक्रेन्द्र ने, अनुपम महावीरता से युक्त होने के कारण, मेरु पर्वत को

कम्पित कर देने के कारण, तथा 'यह भगवान् भविष्यत् काल में घोर भय से भयानक अचेलता आदि बडे-बडे परीषहों को सहन करेंगे' यह सोचकर, देवों के समूह के सामने भगवान् का गुणनिष्पन्न 'श्री महावीर' ऐसा नाम रक्खा ॥२४॥

मूलम्—तए णं सक्के देविंदे देवराया पंचसक्के विउव्वइ २ त्ता एगे सक्के भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं गिण्हइ एगे सक्के पिट्ठओ य आयावत्तं धरेइ दुवे सक्का उभओ पासिं चामरूक्खेवं करेंति एगे सक्के वज्जपाणि पुरओ पगढई ॥२५॥

भावार्थ—तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र पांच शक्र का रूप वैक्रिय करते हैं एक शक्रेन्द्र भगवान् तीर्थंकर को करतल से ग्रहण करते हैं एक शक्रेन्द्र पीछे रहकर छत्र धारण करते हैं दो शक्रेन्द्र दोनों बाजु चामर विंजते हैं और एक शक्रेन्द्र हाथ में वज्र धारण कर खडे रहते हैं ॥२५॥

मूलम्—एएणं से सक्के चउरासीए सामाणियसाहस्सीहिं जाव अण्णेहिं य भवणवईवाणमंतरजोइसवेमाणिएहिं देवेहिं देविहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए

जाव णाइयरवेणं ताए उक्किट्ठाए जाव जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मण णयरे जेणेव जम्मण भवणं जेणेव तित्थयरमाया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता भयवं तित्थयर-माउए पासे ठवेइ २ त्ता तित्थयरपडिरूवगं पडिसाहरइ २ त्ता ओसोवणिं पडिसाहरइ २ त्ता एगं महं खोमजुयलं कुंडलजुयलं च भगवओ तित्थयरस्स ओसीसगमूले ठवेइ २ त्ता एगं महं सिरिदामगडं तवणिज्जलंबूसगं सुवण्णपयरगमंडियं णाणा मणिरयणविविहहारद्धहारउवसोहियसमुदयं भगवओ तित्थयरस्स उल्लोअंसि निक्खिवइ तए णं भगवं तित्थयरे अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणे २ सुहंसुहेणं अभिरममाणे चिट्ठइ ॥२६॥

भावार्थ—तत्पश्चात् वह शक्रेन्द्र ८४ हजार सामानीक यावत् अन्य भवनपति वाण-व्यंतर ज्योतिषी व वैमानिक देवता और देवियों सहित सब ऋद्धि यावत् शब्द से

उत्कृष्ट दिव्य देवगति से जहां भगवान् तीर्थंकर का जन्म नगर और जन्म भवन और जहां तीर्थंकर की माता है वहां आते हैं वहां भगवान् तीर्थंकर को उनकी माता के पास रखते हैं वहां से तीर्थंकर का जो रूप पहिले बनाकर रखते हैं उसका साहरन करते हैं अवस्थापिनी निद्रा का भी साहरन करते हैं और एक बडा क्षोम युगल (अत्युत्तम कार्पास वस्त्र) और कुंडल का युगल ये दोनों तीर्थंकर के ओसीसा के नीचे रखते हैं फिर एक बडा सौभाग्यवंत विचित्र रत्नों की माला का हार सुवर्णमय उंचा लम्बा अनेक प्रकार के मणि रत्नमय विविध प्रकार के हार अर्धहार से सुशोभित श्रीदाम कांड नामक दडा भगवंत को दिखने में आवे ऐसा रखते हैं तत्पश्चात् भगवान् तीर्थंकर को अनिमिष दृष्टि से देखते हुए आनंद करते हुए रहते हैं ॥२६॥

मूलम्—तए णं से सक्के देविंदे देवराया वेसमणं देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! बत्तीसं हिरण्णकोडीओ बत्तीसं सुवण्ण-

कोडीओ बत्तीसं रयणकोडीओ बत्तीसं णंदाइं बत्तीसं भद्दाइं सुभगसुभगरूवे जोयणलावण्णे य भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहराइ २ त्ता एय-माणत्तियं पच्चप्पिणाहि तए णं से वेसमणे देवे सक्केण जाव विणएणं वयणं पडिसुणेइ २ त्ता जंभए देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जाव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहरह २ त्ता एय-माणत्तियं पच्चप्पिणह तए णं ते जंभगा देवा वेसमणेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव खिप्पामेव बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जाव सुभगसोभग्गरूवं जोव्वण लावण्णं भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहरंति २ त्ता जेणेव वेसमण-देवे तेणेव जाव पच्चप्पिणंति तए णं से सक्के वेसमणदेवे जेणेव सक्के देविंदे देवराया जाव पच्चप्पिणइ ॥२७॥

भावार्थ—तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराज, वैश्रमण देव को बुलाकर ऐसा कहते हैं अहो देवानुप्रिय बत्तीस क्रोड हिरण्य बत्तीस क्रोड सुवर्ण बत्तीस क्रोड रत्न बत्तीस नंद-नामक वृत्तासन बत्तीस भद्रासन अच्छा रूप लावण्य वगैरह भगवान् तीर्थंकर के जन्म भवन में साहरन करो और मुझे मेरी आज्ञा पीछी दो तत्पश्चात् वैश्रमण शक्र देवेन्द्र के उस वचन को श्रवण करते हैं और जृंभक देवों को बुलाते हैं और उनको कहते हैं कि अहो देवानुप्रिय ! बत्तीस क्रोड हिरण्य वगैरह भगवान् तीर्थंकर के भवन में लाओ और इतना करके मुझे मेरी आज्ञा पीछी दो वैश्रमण देव के ऐसा कहने पर जृंभक देव हृष्ट-तुष्ट होते हैं यावत् बत्तीस क्रोड हिरण्य यावत् सुभग सौभाग्य रूप यौवन लावण्य वगैरह तीर्थंकर के भवन में साहरन करके जहां वैश्रमण देव रहते हैं वहां आकर उनको उनकी आज्ञा पीछी देते हैं तत्पश्चात् वह वैश्रमण देव शक्र देवेन्द्र के पास आकर उनको उनकी आज्ञा पीछी देते हैं ॥२७॥

मूलम्—तए णं से सक्के देविंदे देवराया आभिओगे देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरंसि सिंघाडग जाव महापहेसु महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयह हंदि सुणंतु भवंतो बहवे भवणवइवाणमंतरजोइसवेमाणिया देवा य देवीओ य जेणं देवाणुप्पिया! तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए वा उवरिं असुहं मणं पहारेइ तस्स णं अज्जगमंजरियाइव सयलसुद्धाणं फुट्टओ त्तिकट्टु घोसणं घोसेह २ त्ता एय- माणत्तियं पच्चप्पिणह तए णं ते आभिओगदेवा जाव एवं देवो त्ति आणाए पडिसुणेंति २ त्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतियाओ पडिणिक्खमंति २ त्ता खिप्पामेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणगरंसि सिंघाडग जाव एवं वयासी हंदि सुणंतु भवंतो बहवे भवणवई जाव जेणं देवाणुप्पिया! तित्थयरस्स जाव

फुट्टिहिति त्तिकट्टु घोसणं घोसंति २त्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति तए णं त बहवे भवणवइवाणमंतरजोइसवेमाणिया देवा भगवओ तित्थयरस्स जम्मण महिमं करेंति २त्ता जेणेव णंदीसरदीवे तेणेव उवागच्छंति २त्ता अट्ठहियाओ महा महिमाओ करेंति २त्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया इति पंचमाधिकार ॥२८॥

भावार्थ—तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र आभियोगिक (सेवक) देवों को बुलाते हैं और कहते हैं कि अहो देवानुप्रिय! भगवान् तीर्थंकर के जन्म नगर में शृंगाटक यावत् महापथ में बडे २ शब्द से उद्घोषणा करके ऐसा बोले अहो बहुत भवनपति वाणव्यंतर ज्योतिषी व वैमानिक देवता और देवियों सुनो! कि जो कोई तीर्थंकर व उनकी माता पर असुख (दुःख) करेंगे उनका मस्तक ताडवृक्ष की मंजरी समान तोड दिया जायगा ऐसी उद्घोषणा

करके मुझे मेरी आज्ञा पीछी दो तत्पश्चात् वे आभियोगिक देव उस आज्ञा को विनयपूर्वक श्रवण करते हैं और शक्र देवेन्द्र के पास से निकल कर भगवान् तीर्थंकर के जन्म नगर में श्रृङ्गाटक यावत् महापथ में आकर ऐसा बोलते हैं कि अहो बहुत भवनपति यावत् वैमानिक देवों में जो कोई तीर्थंकर भगवान् का अथवा उनकी माता का बुरा चिंतवन करेगा उसका मस्तक ताडवृक्ष की मंजरी जैसे तोड दिया जायगा इस प्रकार उसकी उद्घोषणा करके शक्रेन्द्र को उनकी आज्ञा पीछी देते हैं तत्पश्चात् वे बहुत भवनपति वाणव्यंतर ज्योतिषी व वैमानिक देव भगवान् तीर्थंकर का जन्म महोत्सव करके जहां नंदीश्वर द्वीप है वहां आते है वहां अष्टान्हिक (अट्ठाइ) महोत्सव करते हैं फिर वे सब अपने २ स्थान जाते हैं इस प्रकार यह तीर्थंकर के जन्मोत्सव का पांचवा अधिकार संपूर्ण हुआ ॥२८॥

मूलम्—तएणं तिसलाए देवीए ताओ अंगपडियारियाओ तिसलं देविं नवण्हं मासाणं जाव दारगं पयायं पासइ, पासित्ता सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं

जेणेव सिद्धत्थे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सिद्धत्थं रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति वद्धावित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी–एवं खलु देवाणुप्पिया! तिसला देवी णवण्हं मासाणं जाव दारगं पयाया, तण्णं अम्हं देवाणुप्पियाणं पियं णिवेदेमो पियं भे भवउ। तए णं से सिद्धत्थे राया तासिणं अंगपडियारियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ चित्तमाणंदिए हरिसवसविसप्पमाणहियए ताओ अंगपडियारियाओ महुरेहिं वयणेहिं विउलेणं पुप्फगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता मत्थयधोयाओ करेइ पुत्ताणुपुत्तियं वित्तिं कप्पेइ कप्पित्ता पडिविसज्जेइ ॥२९॥

भावार्थ—तदनन्तर त्रिशला देवी की अंगपरिचारिकाएं–दासियां नौ मास साढे सात दिन पूरे होने पर त्रिशला देवी के पुत्रजन्म को देखकर शीघ्र तुरन्त चपल और

वेगयुक्त गति से चलकर जहां सिद्धार्थ राजा थे वहां पहूंची। पहूंचकर सिद्धार्थ राजाको जय विजय ध्वनि से वधाया, वधा कर दोनों हाथ जोड मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोली हे देवानुप्रिय! आज त्रिशला देवीने नो मास साढे सात दिन पूरे होने पर एक–पुत्र को जन्म दिया है इसलिये हम हे देवानुप्रिय आपको प्रियवाक्य से निवेदन करते हैं। आपका प्रिय हो। फिर सिद्धार्थ राजा उन दासियों के मुखसे जन्मरूप इस अर्थ को सुनकर हृष्टतुष्ट हुआ, उनके चित्त में बहुत प्रसन्नता हुई, अति हर्ष के कारण उनका हृदय प्रफुल्लित हो गया, एवं उन सिद्धार्थ राजाने दासियों का मधुर वचनों से और विपुल पुष्प, गंध माल्य–फूलों की मालाओं से सत्कार किया सम्मान किया, सत्कार सन्मान करके फिर उसने उन्हें मस्तक धौत किया–अर्थात् दासीपने के कृत्य से मुक्त कर दिया और पुत्र पौत्र भोग्य योग्य आजीविका से युक्त कर दिया। अर्थात् उन्हे इस प्रकार की जीविका लगादी की जिससे उनके पुत्र पौत्र तक भी बैठे २ खा

सके। इस प्रकार की व्यवस्था करके फिर राजाने उन्हें वहां से विसर्जित कर दिया ॥२९॥

मूलम्-तए णं उदंचंतउस्सवो सिद्धत्थभूवो पच्चूसकालसमयंसि पमोय कयंबमोयगपहुजम्मणमूयगजायगनिउरंबं देण्णसेण्ण पराभवसुण्णं करीअ। नागरियसमायवणमवि रायराय कमलाविलासहासवसुसलीलाऽऽसारेहिं फारेहिं दुक्खदावाणलसमुज्जलंतकीलकवलपवलभयाओ विमोइऊण उब्भिदंताऽमंदा-नंदकंदंकुरंपूरं करीअ। कारागारनिगडियजणवारं च निगडाओ मोईअ। उत्तरो-त्तरोल्लसंतप्पवाहेण उस्साहेण तं खत्तियकुण्डग्गामं नयरं सब्भिंतरबाहिरियं आसित्तसम्मज्जिओवलित्तं सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरचउम्मुहमहापह पहेसु सित्त-सुइसमट्ठरत्थंतरावणवाहियं मंचाइमंचकलियं नाणाविहरागभूसियज्झयपडागमं-डियं लाउल्लोइयजुत्तं गोसीससरसरत्तचंदनदद्दरदिन्नपंचंगुलितलं उवचियचंदण-

कलसं चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागं, आसत्तोवसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावं पंचवन्नसरससुरहिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं कालागुरुपवरकुंदरुक्कतुरुक्कधूवडज्झंतमघमघंतगंधुद्धूयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं नडनट्टगजल्लमल्लमुट्ठियवेलंबगपवगकहग पाढगलासगआरक्खगलंखतूणइल्लतुंबवीणिय अणेगतालायराणुचरियं कारावेइ। जूअसहस्सं मूसलसहस्सं च आणाइत्ता एगओ ठवावेइ, जण्णं अस्सिं महोच्छवंसि कोवि सगडे वा, हले वा णो वाहउ, नो वा मुसलेहिं किंचि वि खंडरत्ति ॥३०॥

शब्दार्थ—[तए णं उदंचंतउस्सवो सिद्धत्थभूवो] तत् पश्चात् सिद्धार्थ राजा उत्सव मनाने के लिये उद्यत हुए। [पच्चूसकालसमयं स] प्रातःकाल होने पर [पमोयकयंबमोयगपहुजम्मणसूयगजायगनिउरंबं देण्णसेण्णपराभवसुण्णं करीअ] उन्होंने आनन्द

के समूह को देनेवाले भगवान् के जन्म को सूचित करनेवाले अंतःपुर के दासदासियों को तथा याचकों को दीनता रूपी सेना के पराजय से रहित कर दिया अर्थात् सदा के लिए उन्हें दरिद्रता के भार से मुक्त कर दिया [नागरियसमायवणमवि रायराय कमलाविलासहासवसुसलिलाआसारेहिं] तथा नगरनिवासी जनसमूहरूपी वन को भी कुबेर की लक्ष्मी के विलासका उपहास करनेवाले अर्थात् अत्यधिक, धनरूपी जलकी विशाल धाराएँ बरसाकर, [फारेहिं दुक्खदावानलसमुज्जलंतकीलकवलपबलभयाओ विमोइऊण उब्भिदंता अमंदानंदकंदंकुरपूरं करीअ] दुक्खरूपी दावानल की जलती हुई ज्वालाओं का ग्रास होने के प्रबल भय से मुक्त करके उत्पन्न होनेवाले अतिशय प्रमोदरूपी अंकुर समूह से सम्पन्न कर दिया [कारागारनिगडिय-जणवारं च निगडाओ मोइअ] इसके अतिरिक्त सिद्धार्थ राजाने कारागार में कैद किये हुए जो अपराधी जनों के समूह थे, उनको बेडियों से मुक्त करवा दिया [उत्तरोत्तरोल्लसंतप्पवाहेण उस्साहेण तं

खत्तियकुंडग्गामं नयरं] राजा सिद्धार्थ के उत्साह की धारा उत्तरोत्तर बढती जा रही थी। उन्होंने क्षत्रियकुण्डग्राम नगर को [सब्भिंतरबाहिरियं आसित्तसंमज्जिओवलित्तं] भीतर से भी और बाहर से भी खूब सजवाया। पहले धूल को शान्त करने के लिए भूमिको जल से सिंचवाया, फिर बुहारी से झडवाया और फिर गोबर तथा मृत्तिका से लीपवाया। [सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरचउम्मुहमहापहपहेसु] शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख महापथ और पथों में [सित्त सुइ संमट्ठरत्थंतरावणवीहियं] रथ्याओं के मध्यभाग में तथा बाजार की गलियों में सिंचन करवाया, इनकी सफाई करवाई [मंचाइ-मंचकलियं] मचानों और मचानों पर मचानों से युक्त कर दिया। [नाणाविह रागभूसि-यज्झयपडागमंडियं] तरह तरह के रंगों से शोभित ध्वजाओं एवं पताकाओं से मण्डित करवाया। [लोउल्लोइयजुत्तं] गोबर आदि से लीपवाया खडी आदि से पुतवाया [गोसीस सरसरत्तचंदनदद्दरदिन्नपंचंगुलितलं] गोशीर्षचन्दन तथा लाल चंदन के बहुत से हाथे

लगवाये [उवचिय चन्दनकलसं] चंदन से लिप्त कलश स्थापित करवाये [चंदनघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागं] द्वार द्वार पर चंदन लिप्त घटों से रमणीय तोरण बनवाये [आसत्तोवसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावं] नीचे से ऊपर तक के भाग को स्पर्श करनेवाली विस्तीर्ण गोल और लम्बी फूलमालाओं के समूह से सुशोभित करवाया [पंचवण्णसरससुरहिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं] जहां तहां बिखरे हुए काले नीले आदि पांच वर्णों के सुन्दर और सुरभिसम्पन्न पुष्पों के समूह की शोभा से युक्त करवा दिया [कालागुरुपवरकुंदरुक्कतुरुक्कधूवडज्झंतमघमघंतगंधुद्धूयाभिरामं] तथा कालागुरु श्रेष्ठ कुन्दुरुक्क (चीडा नामक गंधद्रव्य) तुरुष्क (लोबान) तथा दशांगधूप आदि अनेक सुगन्धि द्रव्यों के जलाने से उत्पन्न हुई गन्ध, हवा से चारों ओर फैल रही थी और इस प्रकार सारे नगर को मनोहर बनवाया [सुगंधवरगंधियं] उत्तम चूर्णों से सुगन्धित करवाया [गंधवट्टिभूयं] गंध की वट्टी के समान बनवाया [नडनट्टगजल्लमल्लमुट्ठिय वेलं-

बगपवगकहगपाढगलासगआरक्खगलंखतूणइल्लतुंबवीणियअणेगतालायराणुचरियं कारावेइ] नटों,: नर्तकों, (स्वयं नाचनेवाले) जल्लों-वरत्रा-रस्सी पर खेल करनेवाले मल्लों, (मौष्टिकों घूसेबाजी करनेवाले एक प्रकार के मल्ल), विलम्बक (विदूषक) प्लावक (छलांगमारकर गडहे आदि को लांघनेवाले) (कथक-मजेदार कहानी कहनेवाले) (पाठक सुक्तियां सुनानेवाले, जासक-रास गानेवाले, आरक्षक-शुभाशुभ शकुन कहनेवाले नैमित्तिक, लंख-वांस पर खेल खेलनेवाले, तूणावंत-तूणानामक बाजा बजाकर कथा करनेवाले इन सब से नगर को युक्त करवाया [जूअसहस्सं मुसलसहस्सं च आणाइत्ता एगओ ठवावेइ] हजारों धुराएँ तथा हजारों मूसल मंगाकर एक जगह रखवा दिये [जण्णं अस्सिं महोच्छवंसि को वि सगडे वा हले वा णो वाहउ] जिससे कि इस महोत्सव में कोई भी मनुष्य गाडी और हल न जोते [नो वा मुसलेहिं किंचिवि खंडउत्ति] तथा किसी भी धान्य आदि वस्तु को न कूटे, अर्थात् सभी लोग उत्सव में सम्मिलित

होकर आनन्द का उपभोग करे ॥३०॥

अर्थ—'तए णं' इत्यादि। तब राजा सिद्धार्थ उत्सव मनाने के लिए उद्यत हुए। प्रातःकाल के अवसर पर उन्होंने आनन्द के समूह को देनेवाले भगवान् के जन्म को सूचित करनेवाले अन्तःपुर के दासदासियों को तथा भिखारियों को दीनतारूपी सेना के पराजय से रहित कर दिया। अर्थात् सदा के लिए उन्हें दरिद्रता से मुक्त कर दिया। तथा नगर निवासी जनसमूहरूपी वन को भी कुबेर की लक्ष्मी के विलास का उपहास करनेवाले अर्थात् अत्यधिक, धनरूपी जल की विशाल धाराएँ बरसा कर, दुःखरूपी दावानल की जलती हुई ज्वालाओं का ग्रास होने के प्रबल भय से मुक्त करके, उत्पन्न होनेवाले अतिशय प्रमोदरूपी अंकुर–समूह से सम्पन्न कर दिया। अभिप्राय यह है कि सिद्धार्थ राजाने कुबेर के धन से भी अधिक धन देकर नागरिकजनों को दरिद्रता के दुःख से रहित बना दिया। और आनन्द से युक्त कर दिया। इसके अतिरिक्त सिद्धार्थ

राजाने कारागार में कैद किये हुए जो अपराधी जनों के समूह थे, उनको बेडियों से मुक्त करवा दिया।

राजा सिद्धार्थ के उत्साह की धारा उत्तरोत्तर बढती जा रही थी। उन्होंने क्षत्रिय-कुंडग्राम को भीतर से भी और बाहर से भी खूब सजवाया। पहले धूल को शांत करने के लिए भूमिको जल से सिंचवाया, फिर बुहारी से झडवाया और फिर गोवर तथा मृत्तिका से लीपवाया। शृंगाटक (तिकोने स्थान), त्रिक (तीन रास्तों का संगम स्थल) चतुष्क (चार मार्गो के मिलने का स्थान--चौराहा), चत्वर (बहु रास्तों का संगम स्थल), चतुर्मुख (चार द्वारों वाला स्थान), महापथ (राजमार्ग) और पथ (सामान्य रास्ता) में जो भी मार्ग के मध्य भाग में थे, तथा बाजार की गलियां थीं, उन सबको सिंचवाया, साफ करवाया और शोधित करवाया। महोत्सव देखने के लिए लोगों को बैठने के वास्ते मंच (मचान) बनवा दिये, और उन मचानों पर भी मचान बनवा दिये। नाना प्रकार

के रंगों से विभूषित और ध्वजापताकाओं से मण्डित करवा दिया। जिन पर सिंह आदि के चिह्न बने रहते हैं और जो बडे आकार की होती हैं वे ध्वजा या वैजयन्ती कहलाती हैं। छोटी-छोटी ध्वजाएँ पताकाएँ कही जाती हैं। इन रंगों, ध्वजाओं और पताकाओं से नगर को सुशोभित करवाया। भूमितल गोबर से लींपवा दिया गया, और दीवारों पर चूना आदि से सफेदी करवा दी गई। गोशीर्ष-हरिचन्दन तथा सरस लालचन्दन के बहुत से दीवाल आदि स्थान-स्थान पर हाथे लगवा दिये। घरों के भीतर, चौकों में चन्दन के लेप से युक्त कलश रखवा दिये। नगर के द्वार-द्वार पर चन्दन लिप्त घटों के रमणीय तोरण बनवा दिये। तथा उन द्वारों को, नीचे जमीन से लगी हुई और ऊपर तक छूई हुई बहुत सी गोलाकार और लम्बाकार मालाओं के समूह से मण्डित करवा दिये, जहां-तहां बिखेरे हुए काले, नीले, पीले, लाल और शुक्ल-इन पांच वर्णों के सुन्दर और सुरभिसम्पन्न पुष्पों के समूह की शोभा से युक्त करवा दिये।

तथा–कृष्णागुरू, श्रेष्ठ कुन्दुरुक्क (चीडा–नामक गंधद्रव्य), तुरुष्क–(लोबान) तथा धूप–दशांग आदि, जो अनेक सुगंधि द्रव्यों की मिलावट से बनती है, और जिसकी गंध विलक्षण होती है, इन सब के जलाने से उत्पन्न हुई गंध, हवा से चारों ओर फैल रही थी, और इस प्रकार सारे नगर को मनोहर बनवाया। बढिया सुगंधित चूर्णों की गंध से भी सुगंधित करवाया, अर्थात् नगर को उत्कृष्ट गंध से व्याप्त करवा दिया। इस कारण यह ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे गंध–द्रव्य की बट्टी हो।

तथा–नट, नर्त्तक (स्वयं नाचनेवाले), जल्ल (वस्त्रा पर–रस्सी पर खेल करनेवाले) मल्ल, मौष्टिक (घूंसेबाजी करनेवाले एक प्रकार के मल्ल), विलम्बक (विदूषक–मुख-विकार आदि करके जनता को हंसानेवाले), प्लावक (छलांग मार कर गड़हे आदि को लांघनेवाले), कथक (मजेदार कहानी कहने वाले), पाठक (सूक्तियों सुनाने वाले), लासक [रास–गान करने वाले], आरक्षक [शुभाशुभ शकुन कहने वाले नैमित्तिक] लंख [वांस

ऊपर खेल करने वाले), तूणावन्त (तूणा नामक बाजा बजाकर कथा करने वाले),—इन सब से नगर को युक्त करवाया ।

तथा हजारों जूए और हजारों मूशल मंगवाकर एक किनारे रखवा दिये, जिससे कि इस महोत्सव में, अर्थात् श्री महावीर प्रभु के जन्म के उपलक्ष्य में मनाये जाने वाले उत्सव के समय, कोई भी मनुष्य गाडी और हल न जोते, तथा किसी भी धान्य आदि वस्तु को न कूटे, अर्थात् सभी लोग उत्सव में सम्मिलित होकर आनन्द का उपभोग करें ॥३०॥

मूलम्—तए णं ललिय-सीलालंकियमहिला गिइ कुसला तिसला कमणिज्जगुणजालं विसालभालं बालं विलोगिय समुच्छलंतामंदाणंदतरलतरंग-महासिनेहकरुणागिहणिमामज्जमाणमाणसा इत्थीपुरिसलक्खणणाणवियक्खणा, पईयपुत्तलक्खणा तं थविउमुवक्कमित्था किं गुणगणवज्जिएहिं बहूहिं तणएहिं ?

वरमेगो वि अतंदो कुलकेरवचंदो भवारिसो असरिसुज्जलगुणो सुओ, जो पुराकय सुकयकलावेण पाविज्जइ, जेण य गंधवाहेण परिमलराजी विव माउपिइपसिद्धी दिसोदिसि वितन्निज्जइ, सोरब्भभरिया मिलाणकुसुमभार-भासुर सुरतरुणा नंदणुज्जाणमिव य तेल्लोक्कं गुणगुणेण वासिज्जइ, अतेलपूरेण मणिदीवेणेव य पगासिज्जइ, अपासिज्जइ य हिययदरीचरी चिरंतणा णाणातिमिरराई। सच्चं वुत्तं—

पत्तं न तावयइ नेव मलं पमूए, णेहं न संहरइ नेव गुणे खिणेइ।
दव्वावसाणसमए चलयं न धाइ, पुत्तो इमो कुलगिहे किल कोवि दीवो ॥

एसो लोगुत्तरगुणगणजुओ सुओ पभूयप्पमोयं जणयइ। अवि य—

सीयलं चंदणं वुत्तं, तओ चंदो सुसीयलो।
चंदचंदणओ सीओ म्हं णंदनसंगमो ॥२॥

सिया उ महुरा नूनं सुहाइ महुरा तओ।
तेहिं वि अस्स बालस्स संगमो महुरो महं॥३॥
कणगं सुहयं लोए, रयणं च महासुहं।
तेहिं वि य महासोक्खो अस्स बालस्स संगमो॥४॥३१॥

शब्दार्थ—[तए णं] उसके बाद [सा ललियसीलालंकियमहिला किइ कुसला] सुन्दर निर्दोष शील–स्वभाव अथवा सद्वृत्त से युक्त महिलाओं के कर्तव्यों में निपुण, [तिसला कमणिज्जगुणजालं विसालभालं बालं विलोगिय] उस त्रिशला देवीने मनोहर गुणगण वाले शुभलक्षणयुक्त ललाटवाले अपने पुत्र [महावीर] को देख कर [समुच्छलंता मंदाणंदतरलतरतरंगमहासिनेहवरुणगिहणिमामज्जमाणमाणसा] उछलते हुए अतिशय चंचल आनन्दरूप तरङ्गवाले महास्नेहरूपी समुद्र में तैरती हुई [इत्थी–पुरिस-

लक्खणणाणवियक्खणा] स्त्रीपुरुषों के शुभाशुभ लक्षण-परिज्ञान में कुशल एवं [पइय-पुत्तलक्खणा] बालक के लक्षण को पहचानने वाली [तं थविउमुवक्कमित्था] त्रिशला बालक की स्तुति करने लगी-[किं गुणगणवज्जिएहिं बहूहिं तणएहिं?] गुणविहीन बहुत पुत्रों से भी क्या [वरमेगोवि अतंदो कुलकेरवचंदो भवारिसो असरिसुज्जलगुणो सुओ] किन्तु अप्रमादी, कुलरूपी कैरव-रात्रिविकासी कमल को विकसित करने में चन्द्ररूप, तेरे जैसा अनुपम उज्ज्वलगुण वाला एक ही पुत्र अच्छा है। [जो पुराकयसुकयकलावेण पाविज्जइ] जो पुत्र पूर्वजन्मोपार्जित प्रचुर पुण्यों से प्राप्त होता है। [जेण य गंधवाहेण परिमलराजी विव माउपिइपसिद्धी दिसोदिसि वितन्निज्जइ] जैसे गन्धवाह-पवनपुष्पों की सुगन्धि को दिशा-विदिशाओं में प्रसारित करता है, उसी प्रकार जो पुत्र अपने माता पिता के नाम को सर्वत्र प्रसिद्ध करता है। [सोरब्भभरियामिलाण कुसुम भार-भासुर सुरतरुणानंदणुज्जाणमिव य तेल्लोक्कं गुणगणेण वासिज्जइ] तथा हे सुपुत्र! तुम्हारे

जैसे सत्पुत्र से यह तीनों लोक गुणगण से सुवासित होते हैं जैसे सुगन्धियुक्त खिले हुए पुष्पों के गुच्छों से शोभित कल्पवृक्ष से नन्दनवन [अतेलपूरेण मणिदीवेणेव य पगासिज्जइ] तथा तैलरहित मणिदीप गृहादिक को प्रकाशित करता है उसी प्रकार तेरे जैसा पुत्र तीनों लोक को प्रकाशित करता है [अपासिज्जइ य हिययदरीचरी चिरंतणाणाणतिमिरराई] और जो त्रैलोक्यवर्ती जीवों के हृदयरूपी गुफा में संचरण करने वाले चिरकालिक अज्ञानरूप अंधकार—समूह को दूर करता है। [सच्चं वुत्तं] सच ही कहा है—

[पत्तं न तावयइ] जो पात्र को संतप्त नहीं करता [नेव मलं पसूए] मल को उत्पन्न नहीं करता [णेहं न संहरइ] स्नेह का संहार नहीं करता [नेव गुणेखिणेइ] गुणों का नाश नहीं करता [दव्वावसाणसमए चलयं न धाइ] और द्रव्य के विनाश काल में अस्थिरता को प्राप्त नहीं होता है [पुत्तो इमो कुलगिहे किल को वि दीवो] ऐसा यह पुत्र रूप दीपक कुलरूपी गृह में कोई विलक्षण ही दीपक है। [एसो लोगुत्तरगुणगण-

जुओ सुओ पभूयप्पमोयं जणयइ] यह लोकोत्तर गुणगणों से युक्त पुत्र बहुत आनन्द-दायी होता है। [अवि य] और भी कहा है—

[सीयलं चंदणं वुत्तं] इस लोक में चंदन शीतल है [तओ चंदो सुसीयलो] उसकी अपेक्षा चन्द्रमा अधिक शीतल है [चंदचंदणओ सीओ] परन्तु चन्द्र और चन्दन की अपेक्षा [महं पांदणसंगमो] पुत्र के अङ्ग का स्पर्श अत्यन्त शीतल होता है ॥२॥

[सिया उ महुरा नूणं] मिसरी मीठी होती है, [सुहाइ महुरा तओ] उससे भी मीठा अमृत होता है [तेहिं वि अस्स बालस्स, संगमो महुरो महं] और उससे भी मीठा पुत्र का स्पर्श होता है। [कणगं सुहयं लोए] सोना इस लोक में सुखदायी है [रयणं च महासुखम्] उसकी अपेक्षा रत्न अधिक सुखदायी है [तेहिं वि य महासोक्खो अस्स बालस्स संगमो] इन दोनों से भी बढकर इस अनुपम पुत्र का स्पर्शसुखदायक है ॥३१॥

अर्थ—'अह ललियसीलालंकिय'—इत्यादि।

फिर उत्सव की समाप्ति के बाद वह शील से सुन्दर, महिलाओं के कर्तव्य में कुशल, उछलती हुई अत्यंत-चंचल आनन्द रूपी तरंगों से युक्त महास्नेहरूपी समुद्र में तैरती हुई, खिले हुए कमल के समान मुखवाली, स्त्री पुरुषों के शुभाशुभलक्षण जानने वाली, तथा बालक के लक्षण को पहचानने वाली त्रिशला रानी, सुन्दर गुणों से अलंकृत, विशाल भालवाले बालककी स्तुति करने लगी–

गुणविहीन बहुत पुत्रों से भी क्या? किन्तु अप्रमादी, कुलरूपी कैरवराजीविकासी कमल को विकसित करने में चन्द्ररूप, तेरे जैसा अनुपम उज्ज्वल गुणवाला एक ही पुत्र अच्छा है, जो पुत्र पूर्वजन्मोपार्जित प्रचुर पुण्यों से प्राप्त होता है। जैसे–गन्धवाह-पवन पुण्यों की सुगन्धि को दिशा विदिशाओं में प्रसारित करता है, उसी प्रकार जो पुत्र अपने माता पिता के नाम को सर्वत्र प्रसिद्ध करता है। जैसे सुगन्धि युक्त अम्लान (खिले हुए) पुष्पों के भार से सुशोभित कल्पवृक्ष, नन्दनवन को सुवासित करता है। उसी

प्रकार आपके जैसे पुत्र अपने गुणगान से तीनों लोक को सुवासित करता है। तथा जैसे तेल रहित मणिदीप गृहादिक को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार तेरे जैसा पुत्र तीनों लोक को प्रकाशित करता है, और वह त्रैलोक्यवर्ती जीवों के हृदयरूपी गुफा में संचरण करने वाले चिरकालिक अज्ञानरूप अन्धकार समूह को दूर करता है। कहा भी है–

'जो पात्र को संतप्त नहीं करता, मल को उत्पन्न नहीं करता, स्नेह का संहार नहीं करता, गुणों का नाश नहीं करता और द्रव्य के विनाश काल में अस्थिरता को प्राप्त नहीं होता है, ऐसा यह पुत्ररूप दीपक, कुलरूपी गृह में कोई विक्षलण ही दीपक है' ॥१॥

यह लोकोत्तर गुणगणों से युक्त पुत्र बहुत आनन्ददायी होता है। और भी कहा है–

चन्दन शीतल कहा गया है, उससे भी शीतल चन्द्र है, और चन्द्र–चन्दन से भी महान् शीतल पुत्र का स्पर्श है। मिसरी मीठी होती है, उससे भी मीठा अमृत होता है, और उससे भी मीठा पुत्र का स्पर्श होता है ॥२॥

सोना इस लोक में सुखदायी है, उसकी अपेक्षा रत्न अधिक सुखदायी है, इन दोनों से भी बढकर इस अनुपम पुत्र का स्पर्श महासुखदायक है ॥३॥

टीकार्थ—देवों, असुरों और मनुष्यों के समूह से जिसका चरण–वन्दित है, ऐसे अपने बालक का मुखकमल देखकर, त्रिशला देवी के हृदय में जो भाव उत्पन्न हुआ, उसको सूत्रकार 'अह ललियसीलालंकिय–इत्यादि सूत्र–द्वारा प्रदर्शित करते हैं।

इसके बाद, सुन्दर–निर्दोष शील–स्वभाव अथवा सद्वृत से युक्त महिलाओं के कर्त्तव्य में निपुण, स्त्री–पुरुष के लक्षण–परिज्ञान में कुशल तथा जिसने अपने पुत्र के लक्षण जान लिये हैं, ऐसी उस त्रिशला देवीने, मनोहर गुणगणवाले शुभलक्षणयुक्त ललाटवाले अपने पुत्र महावीर को देखकर, उछलते हुए अतिशय चञ्चल आनन्दरूप तरङ्ग वाले महास्नेहरूपी समुद्र में तैरती हुई, पूर्वोक्त गुणगण से सुशोभित अपने उस अनुपम पुत्र की प्रशंसा करना प्रारंभ किया। वह इस प्रकार–

धैर्य, औदार्य आदि सद्गुणों से रहित बहुत पुत्रों से क्या ? अर्थात्–ऐसे निर्गुण पुत्रों का कुछ भी प्रयोजन नहीं हैं। इसकी अपेक्षा तो हे पुत्र ! तुम्हारे–सदृश अद्वितीय विशुद्ध गुणयुक्त अतन्द्र उत्साही कुलरूपी कैरव–श्वेतकमल के प्रबोधन करने में चन्द्ररूप एक ही पुत्र श्रेष्ठ है, जो पुत्र पूर्वजन्मोपार्जित पुण्य से प्राप्त होता है। हे पुत्र! तुम्हारे जैसे सत्पुत्र के द्वारा माता–पिता की ख्याति दिशाविदिशाओं में सर्वत्र फैल जाती है, जैसे–वायुद्वारा दिशा–विदिशाओं में पुष्पों की सुगन्धि। अर्थात् –जिस प्रकार वायु–द्वारा पुष्पों की सुगन्धि दिशा–विदिशाओं में सर्वत्र प्रसारित होती है उसी प्रकार तुम्हारे–जैसे सत्पुत्र से माता–पिता की ख्याति दिशा–विदिशाओं में सर्वत्र फैलती है। तथा हे पुत्र ! तुम्हारे जैसे सत्पुत्र से यह तीनों लोक गुणगान से सुवासित होते हैं, जैसे–सुगन्धियुक्त खिले हुए पुष्पों के गुच्छों से शोभित कल्पवृक्ष से नन्दनवन ! अर्थात्–जैसे कल्पवृक्ष अपने पुष्पों की सुगन्धि से समस्त नन्दनवन को

सुगन्धित करता है, उसी प्रकार तुम्हारे–जैसा सत्पुत्र अपने गुणों से इस समस्त लोक को शोभित बनाता है। तथा–हे पुत्र ! तुम्हारे–जैसे पुत्र से यह तीनों लोक प्रकाशित किये जाते हैं, जैसे तेल-विना के मणिदीप से यह घर आदि। अर्थात्-जिस प्रकार तेल रहित मणिदीप सर्वदा समानरूप से गृह आदि को प्रकाशित करता है उसी प्रकार तुम्हारे-जैसे सत्पुत्र तीनों लोकों को सतत समानरूप से प्रकाशित करता है। तथा तेरे-जैसा सत्पुत्र तीनों लोक के जीवों के हृदयरूपी कन्दरा के अभ्यन्तर में संचरण करने वाले चिरकालिक-अनादिकालीन अज्ञानरूप अन्धकार की परम्परा को दूर करता है।

फिर से कहती है-'पात्रं न तापयति' इत्यादि।

इसका अर्थ यह है-कुलरूप-वंशरूप घर में यह सत्पुत्ररूप अलौकिक दीपक निश्चय ही कोई अपूर्व विलक्षण दीपक है जो सत्पुत्ररूप दीपक पात्र को अर्थात् सज्जन पुरुषों को सन्ताप नहीं पहुंचाता है, अथवा अपने आधाररूप माता पिता आदि को अपने आचरण

से कभी भी संतप्त-दुःखित नहीं करता है, कभी भी पापाचरण नहीं करता है, स्नेह को प्रेम को अर्थात् दया को कभी भी नहीं छोडता है, इसका अभिप्राय यह है, कि वह किसी के ऊपर दया-रहित नहीं होता है, दया-दाक्षिण्य-आदि सद्गुणों का नाश वह कभी भी नहीं करता है, तथा द्रव्य के अवसान काल में, अर्थात् धनके क्षीण हो जाने पर चंचलता "अस्थिरता को धारण नहीं करता हैं, अर्थात् किसी भी परिस्थिति में वह नीतिमार्ग का परित्याग नहीं करता हैं। इस श्लोक का अभिप्राय यह है-दीपक अपने आधारपात्र को संतप्त करता है, मल अर्थात् कज्जल उत्पन्न करता है, स्नेह-तेल का शोषण करता है, गुण का-बत्ती का नाश करता है और तेलरूप द्रव्य के अभाव-के समय में अस्थिरता को प्राप्त करता है अर्थात् बुझने लगता है। परन्तु सत्पुत्ररूप दीपक तो ऐसा नहीं होता है, वह तो सर्वथा इससे विलक्षण होता है।

अहा! यह लोकोत्तर गुणों से विभूषित सत्पुत्र अतिशय आनन्ददायी होता है।

त्रिशला रानी फिर कहती है-इस लोक में चन्दन शीतल है, उसकी अपेक्षा चन्द्रमा अधिक शीतल है, परन्तु चन्द्र और चन्दन की अपेक्षा पुत्र के अङ्ग का स्पर्श अत्यंत शीतल होता है ॥२॥

मिसरी मीठी होती है और मिसरी से अमृत अधिक मीठा होता है, परन्तु मिसरी और अमृत इन दोनों से भी बालक का स्पर्श अत्यंत मीठा है ॥३॥

तथा इस लोक में कनक—सोना सुख देने वाला है, रत्न सोने से भी अधिक सुखदायी होता है परन्तु पुत्र का स्पर्श तो इन दोनों से भी महान् सुखदायी है ।३१।

मूलम्—तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो, एक्कारसमे दिवसे विइक्कंते, निव्वत्ते सूयगे, संपत्ते बारसेहिं, विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडाविंति उवक्खडावित्ता मित्तणाइसयणसंबंधिपरियणे उवनिमंतेंति,

उवनिमंतित्ता बहूणं समणमाहणकिवणवणीमगाभिच्छुंडगारंतीणं विच्छड्डेंति, दायाएसु णं दायं पज्जाभाएंति, पज्जाभाइत्ता मित्तणाइ सयणसंबंधिपरियणे भुंजावेंति भुंजावित्ता मित्तणाइसयणसंबंधिपरियणे समक्खं इमं एयारूवं कहेंति जप्पभिइं च णं अम्हं इमं दारए गब्भं वइक्कंते तप्पभिइं च णं इमं कुलं विउलेणं हिरण्णेणं सुवण्णेणं धणेणं धण्णेणं विहवेणं ईसरिएणं रिद्धीएणं सिद्धिएणं समिद्धिएणं सक्कारेणं सम्माणेणं पुरक्कारेणं रज्जेणं रट्ठेणं बलेणं वाहणेणं कोसेणं कोट्ठागारेणं पुरेणं अंते उरेणं जणवएणं जाणवएणं जसवाएणं कित्तिवाएणं वण्णावाएणं सद्दवाएणं सिलोगवाएणं थुइवाएणं विउलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइएणं संतसावइज्जेणं पीई सक्कारसमुदएणं अईव-अईव परिवड्ढियं, तं होउ णं इमस्स दारगस्स गोण्णं गुणनिप्फण्णं नामधिज्जं

मातापितृभ्याम् कृत भगवतोनामाभिधानम्

॥११०॥

'वद्धमाणे' त्ति कट्टु भगवओ महावीरस्स 'वद्धमाणे' त्ति नामधिज्जं करेंति। समणे भगवं महावीरे गुत्तेणं कासवे। तस्स णं इमे तिण्णि नामधिज्जा एव-माहिज्जंति—अम्मापिउसंतिए 'वद्धमाणे' त्ति सहसमुइयाए 'समणे' त्ति अयले भयभेरवाणं खंता पडिमासतपारए अरतिरतिसहे दविए धितिविरियसंपन्ने वसग्गसहेत्ति देवेहिं से कतं णामं समणं भगवं महावीरे ॥३२॥

शब्दर्थ—[तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो] इसके बाद श्रमण भगवान महावीर के माता पिताने [एक्कारसमे दिवसे विइक्कंते] ग्यारहवां दिन बीतने पर [निव्वत्ते सूयगे] सूतक—जन्माशौच के निवृत्त होने पर, [संपत्ते बारसाहे] बारहवें दिन [विउलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडाविंति] बहुतसा अशन पान, खाद्य और स्वाद्य भोजन बनवाया। [उवक्खडावित्ता] भोजन बनवाकर [मित्तणाइ सयणसबंधिपरियणे

मातापितृभ्याम् कृत भगवतो-नामाभिधानम्

उवनिमंतेंति] मित्रों ज्ञातिजनों, संबन्धीजनों और परिजनों को आमन्त्रित किया [उवनिमंतित्ता] आमंत्रित करके [बहूणं समणमाहणकिवणवणीमगभिच्छुंडगारंतीणं विच्छड्डेंति] बहुत से श्रमणों ब्राह्मणों, दीनों, याचकों, भिखारियों तथा गृहस्थों को भोजन–वस्त्र अदि दिया, [दायाएसु णं दायं पज्जाभाएंति] भागीदारों को उनका भाग बांटा [पज्जाभाइत्ता] बांटकर [मित्तणाइसयणसंबंधिपरियणे भुंजावेंति] मित्रों ज्ञातिजनों स्वजनों सम्बन्धीजनों और परिजनों को भोजन कराया [भुंजावित्ता] भोजन करा के फिर [मित्तनाइसयणसंबंधिपरियणसमक्खं इमं एयारूवं कहेंति] मित्रों ज्ञातिजनों, स्वजनों सम्बन्धीजनों और परिजनों के समक्ष इस प्रकार का यह वचन कहा–[जप्पभिइं च णं अम्हं इमे दारए गब्भं वइक्कंते] जब से हमारा यह बालक गर्भ में आया [तप्पभिइं च णं इम कुलं] तभी से यह कुल [विउलेणं हिरण्णेणं] विपुल हिरण्य से [सुवण्णेणं] सुवर्ण से [धणेणं] धन से [धण्णे णं] धान्यसे [विहवेणं] विभव से [ईसरिएणं] ऐश्वर्य से

[रिद्धीएणं] ऋद्धि से [सिद्धीएणं] सिद्धि से [समिद्धीएणं] समृद्धि से [सक्कारेणं] सत्कारसे से [सम्माणेणं] सन्मान से [पुरक्कारेणं] पुरस्कारसे [रज्जेणं] राज्य से, [रट्ठेणं] राष्ट्र से, [बलेणं] बल से [वाहणेणं] वाहण से [कोसेणं] कोष से [कोट्ठागारेणं] कोष्ठागारसे [पुरेणं] पुरसे [अंतेउरेणं] अन्तःपुर से [जणवएणं] जनपद से [जाणवएणं] जानपद से [जसवाएणं] यशोवाद से [कित्तिवाएणं] कीर्तिवादसे [वण्णवाएणं] वर्णवाद से [सद्दवाएणं] शब्दवाद से [सिलोगवाएणं] श्लोकवाद से [थुईवाएणं] स्तुतिवाद से [विउल धण] विपुल धन [कणग] स्वर्ण [रयण] रत्न [मणि] मणि [मोत्तिय] मोती [संख] शंख [सिलप्पवाल] शिला प्रवाल [रत्तरयण] रक्तरत्न [माइएणं] आदि [संतसावइज्जेणं] वास्तविक सम्पत्ति से [पीइ—सक्कारसमुदएणं] और प्रीति तथा सत्कार की प्राप्ति से [अईव—अईव] खूब खूब [परिवड्ढियं] वृद्धि को प्राप्त हुआ है [ तं होउ णं इमस्स दारगस्स] अतएव इस बालक का [गोण्णं गुणनिप्फण्णं नामधिज्जं वद्ध-

माणे' त्ति कट्टु] गुणमय गुणनिष्पन्न 'वर्द्धमान' नाम हो [भगवओ महावीरस्स 'वद्ध-माणे' त्ति नामधिज्जं करेंति] इस प्रकार कह कर भगवान महावीर का 'बर्द्धमान' नाम रक्खा। [समणे भगवं महावीरे गुत्तेणं कासवे] श्रमण भगवान् महवीर काश्यप गौत्रीय थे [तस्स णं इमे तिण्णि नामधिज्जा एवमहिज्जंति] उनके तीन नाम इस प्रकार कहे जाते है [ अम्मापिउसंतिए 'वद्धमाणे' त्ति] माता पिता द्वारा रक्खा हुआ नाम वर्द्धमान [सहसंमुइयाए 'समणे त्ति] सह समुदिता–सह भाविनी तपश्चर्या आदि की शक्ति के कारण इसका नाम श्रमण था।

मातापितृभ्याम् कृत भगवतोनामाभिधानम्

[अयले भयभरेवाणं खंता पडिमासतपारए] अचल, भय भेरव को सहने वाले क्षमा शील प्रतिमास तप में रत रहने वाले [अरति रति सहे] अरति और रति को सहने वाले [दविए] संयम वाले [धितिविरियसम्पन्ने] धृति वीर्य से सम्पन्न [परि-सहोवसग्गसहेत्ति] तथा परीषह उपसर्गों को सहने वाले होने के कारण [देवेहिं से कतं

णामं समणे भगवं महावीरे] देवों ने नामकरण किया श्रमण भगवान् महावीर

॥ इति पंचम वाचना ॥सू० ३२॥

अर्थ—'तएणं' 'समणस्स' इत्यादि। इसके बाद श्रमण भगवान् श्री महावीर के माता पिता ने ग्यारह दिन बीत जाने पर और सूतक—जन्म संबंधी अशौच दूर हो जाने पर, बारहवें दिन बहुत सा अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, तैयार करवाया और मित्रों को, ज्ञातियों—स्वजातीय जनों को, स्वजनों—आत्मीय जनों को, संबन्धियों-पुत्र और पुत्रियों के श्वशुर आदि संबन्धियों को तथा परिजनों-दासीदास आदि परिजनों को भोजन के लिए बुलाया-निमंत्रित किया। उन्हें निमंत्रित करके बहुत-से शाक्य आदि श्रमणों ब्राह्मणों, कृपणों दीनों, वनीपकों-याचकों, भिक्षोण्डो-भिखारियों और गृहस्थों को भोजन वस्त्र आदि का दान दिया। जो लोग पैत्रिक सम्पत्ति में भागीदार थे, उन्हें सम्पत्ति का बँटवारा किया। बँटवारा करके मित्रों, ज्ञातिजनों स्वजनों, संबंधियों और परिजनों को भोजन

—करवाया। भोजन करवाकर, मित्र ज्ञाति, स्वजन, संबंधी और परिजनों के सामने आगे कहे जाने वाले वचन कहे—'जब से हमारा यह बालक गर्भ में आया है तब से लेकर हमारा यह कुल विपुल हिरण्य से—चांदी से, सुवर्ण से—सोने से, धन से, गाय घोडा आदि से धान्य से—व्रीहि, शालि, जौ, आदि से विभव से, आनन्द से ऐश्वर्य से धन या जन के अधिपतित्व से, ऋद्धि से—सम्पत्ति से, सिद्धि से—इष्ट वस्तुओं की प्राप्ति से, समृद्धि से, बढती हुई सम्पत्ती से, सत्कार से जनता द्वारा किये जाने वाले उत्थान आदि सत्कार से, सम्मान से, आसन देने आदि रूप सम्मान, से, पुरस्कार से—सब कामों में अग्रुवापन से राज्य से—स्वामी, आमात्य, मित्र, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेना इन सात अंगोवाले राज्य से राष्ट्र से,—देश से, बल से,—सेना से वाहन से रथ आदि वाहनों से, कोष से-रत्नों आदि के भंडार से, कोष्ठागार से-धान्य भंडार से, पुर से-नगर से, अन्तः पुर से-रनवास के परिवार से, जनपद से-देश प्राप्ति से, जानपद से-प्रजा से,

यशोवाद से–'अहा ! यह कैसा पुण्य-भागी हैं इस प्रकार एक देश व्यापी साधुवाद से, कीर्तिवाद से-सर्वदिशाव्यापी साधुवाद से, वर्णवाद से-प्रशंसावाद से, शब्दवाद से, अर्द्धदिशाव्यापी साधुवाद से, श्लोकवाद से-सर्वत्र गुणों के बखान से, स्तुतिवाद से -बन्दीजनों द्वारा किये जाने वाले गुण कीर्तन से तथा-विपुल धन से, विपुल स्वर्ण से, विपुल कर्केतन आदि रत्नों से, विपुल चन्द्रकान्त आदि मणियों से, विपुल मोतियों से, विपुल दक्षिणावर्त्तादि शंखों से, विपुल राजपदरूप शिला से, विपुल मूगों से, विपुल लालों से, तथा आदि शब्द से विपुल चीनी वस्त्र कंबल आदि से, तथा-विद्यमान प्रधान द्रव्यों से, प्रीति से-मानसिक तुष्टि से, सत्कार से-स्वजनों द्वारा वस्त्रादि से किये हुए सत्कार से अधिकाधिक वृद्धि को प्राप्त हुआ है। इस कारण हमारे इस बालक का गुणों से प्राप्त, गुणनिष्पन्न नाम 'वर्द्धमान हो'।

इस प्रकार कहकर भगवान् श्री महावीर का नाम 'वर्द्धमान' रखा। श्रमण भगवान्

श्री महावीर काश्यपगोत्रीय थे। उनके यह तीन नाम इस प्रकार कहे जाते हैं-माता-पिता का रखा हुआ नाम 'वर्द्धमान'। सहभाविनी (जन्म-जात) तपश्चर्या आदि की शक्ति के कारण दूसरा नाम-'श्रमण'। इन्द्रादि देवों द्वारा रक्खा हुआ तृतीय नाम-'महावीर' ॥३२॥

मूलम्—तए णं भगवं महावीरे कमेण धवलदलविलसंतावितियाचंदोव्व सोम्मकरेहिं संतगुणानियरेहिं गिरिकंदरमल्लीणे चंपगपायवेव वएणं संवड्ढइ। एवं से भगवं महावीरे मऊरपक्खकागपक्खसोहीहिं सवएहिं सिसूहिं सद्धिं बालवओ अणुरूवं गोवियसरूवं कीलेइ।

एगया देवलोए देवगणालंकियाए सुहम्माए सहाए समासीणो सुणासीरो सोहम्मिंदो अणुवमगुणेहिं वद्धमाणस्स वद्धमाणस्स पहुणो परक्कमं वण्णिउं उवक्कमइ तं सोच्चा निसम्म सव्वे देवा देवीओ य हरिसवसविसप्पमाणहियया

संजाया। तत्थ कोऽवि मिच्छादिट्ठी देवो तं पहुपरक्कममहिमं असद्दहंतो इस्सा-लुओ अंगीकयदुब्भावणो मणुस्सलोगं हव्वमागम्म बालेहिं कीलमाणं भयवं नियपिट्ठम्मि समारोहिय सयवेउव्वियसत्तीए सरीरं सत्तट्ठतालतरुपरिमियं लंब-माणं विउव्विय पहुं जिघंसू उवरि आगासतलाओ अहो पाडिउमारभीय। तं दट्ठूणं तक्खणमेव पगिइभिरुणो सिसुणो सिग्घं सिग्घं पलाइउमारद्धा। चाउ-रीचंचू पहू ओहिणा देवकयं उवद्दवं मुणिय एवं चिंतेइ जं एए बाला ममं पेमालुणो अम्मापिउणो कहिस्संति, तं णं मं उवद्दवसंकुलं विण्णाय मा खेय-खिन्ना हवंतु—त्ति सिग्घं तं दुरासयं दिविसयं नमइउं तप्पिट्ठमज्झासीणो एवं पहू मूढगूढासयण्णू तप्पिट्ठुवरि नियसरीरस्स अप्फारं भारं आरोविअ तेणं सो दुरासओ देवो तारेण सरेण चिक्करिय पुढवीतले निवडिओ। तए णं देवाणं

जयज्झुणी सुरज्झुणि समजाणि। तए णं णयग्गीवो सो देवो खामिय देवाहि-
देवो समत्तो सयधामं पत्तो ॥३३॥

शब्दार्थ—[तए णं भगवं महावीरे धवलदलविलसंतबितियाचंदोव्व] तब क्रम से शुक्लपक्ष की द्वितीया का चन्द्र [सोम्मकरेहिं संतगुणनियरेहिं गिरिकंदरमल्लीणे चंपगपायवेव वएण संवड्ढइ] जैसे अपनी सोम्यकिरणों से बढता है, उसी प्रकार भगवान् महावीर सद्गुणों के समूह से तथा जैसे पर्वत की गुफा में स्थित चम्पक-वृक्ष क्रम से बढता है उसी प्रकार वय से, बढने लगे [एवं से भगवं महावीरे मऊरपक्खकागपक्ख-सोहीहिं सवएहिं सिसूहिं सद्धिं बालवओ अणुरूवं गोवियसरूवं कीलेइ] इस प्रकार भगवान् महावीर मयूरपक्ष से सुशोभित चोटी से शोभायमान समवयस्क बालकों के साथ अपने असली स्वरूप को गोपन करके, बाल्यावस्था के अनुरूप क्रीडा करने लगे।

[एगया देवलोए देवगणालंकियाए सुहम्माए सभाए] एकबार देवलोक में देव

समूह से अलंकृत सुधर्मा सभा में [समासीणो सुणासीरो सोहम्मिंदो अणुवमगुणेहिं वड्ढमाणस्स वड्ढमाणस्स] बैठे हुए सौधर्मेन्द्र ने अनुपम गुणों से बढते हुए वर्धमान [पहुणो] प्रभु के [परक्कमवण्णिउं उवक्कमइ] पराक्रम का वर्णन करना आरंभ किया [तं सोच्चा निसम्म सव्वे देवा देवीओ य हरिसवसविसप्पमाणहियया संजाया] उसे सुनकर और समझकर सभी देवों और देवियों का हृदय हर्ष के वशीभूत होकर खिल गया। [तत्थ कोऽवि मिच्छादिट्ठी देवो तं पहुपरक्कममहिमं] किन्तु उनमें से प्रभु के पराक्रम की महिमा पर [असद्दहंतो इस्सालुओ अंगीकयदुब्भावणो मणुस्सलोगं हव्व-मागम्म] विश्वास न करता हुआ, ईर्षालु तथा दुर्भावना को अंगीकार करनेवाला एक मिथ्यादृष्टिदेव शीघ्र मनुष्यलोक में आकर [बालेहिं कीलमाणं भयवं नियपिट्ठम्मि समारोहिय] बालकों के साथ क्रीडा करते हुए भगवान् को अपनी पीठ पर बिठाकर [सयवेउव्वियसत्तीए सरीरं सत्तट्ठतालतरुपरिमियं लंबमाणं विउव्विय] अपने वैक्रिय

शक्ति से शरीर को सात–आठ ताडवृक्षों जितना लम्बा ऊँचा बनाकर [पहुं जिघंसु उवरि आगासतलाओ अहो पाडिउ मारभीअ] भगवान् को मारने की इच्छा से उसने प्रभु को उँचे आकाशतल से नीचे गिराना आरंभ किया। [तं दट्ठूण तक्खणमेव पगिइ भीरूणो सिसुणो सिग्घं सिग्घं पलाइउमारद्धा] यह दृश्य देखकर स्वभाव से डरपोक बालक उसी समय जल्दी–जल्दी इधर उधर भागने लगे [चाउरी चंचू–पहू ओहिणा देवकयं उवद्दवं मुणिय एवं चिंतेइ] अपनी चतुराई के लिए प्रसिद्ध प्रभु ने अवधिज्ञान से इस उपद्रव को देवकृत जानकर इस प्रकार विचार किया–[जं एए बाला ममं पेमालुणो अम्मापिउणो कहिस्संति,] ये बालक मेरे स्नेहशील मातापिता से कहेंगे अर्थात् देवकृत इस संकट की बात उन्हें बतायेंगे [तेणं मं उवद्दवसंकुलं विण्णाय मा खेय-खिन्ना हवंतु-त्ति] वे उसे सुनकर माता पिता मुझे संकट ग्रस्त जानकर चिन्तायुक्त न बने, इस प्रकार विचार करके [सिग्घं तं दुरासयं दिवि सयं नमइउं] शीघ्र ही उस

दुष्ट अभिप्राय वाले देव को नमाने के लिए [तप्पिट्ठमज्झासीणो एव पहू मूढगूढा-सयण्णू तप्पिट्ठुवरि नियसरीरस्स अप्फारं भारं आरोविय] देव की पीठ पर चढे चढे ही अपने शरीर को थोडा सा भारीकर दिया। [ते णं सो दुरासओ देवो तारेण सरेण च्चिक्करिय पुढवीतले निवडिओ] प्रभु के शरीर का स्वल्प भार पडने पर वह देव उसे भी सहन न कर सका वह दुरात्मादेव बहुत उच्चस्वर से चीत्कार करके पृथ्वीतल पर आ गिरा [तए णं देवाणं जयज्झुणी सुरज्झुणी समजणि] उसके गिरने पर आकाश में देवों की जयध्वनि हुई [तए णं णयग्गीवो सो देवो खामिय देवाहिदेवो पत्त सम्मत्तो सयधामं पत्तो] तत्पश्चात् भगवान् के चरणों पर शिर रखकर वह उपद्रव करनेवाला देवने भगवान् से अपना अपराध खमाया और सम्यक्त्व प्राप्त कर अपने स्थान पर चला गया।३३।

अर्थ—'तए णं' इत्यादि। नामकरण के बाद भगवान् श्रीमहावीर क्रमशः अपने सद्गुणों के समूह से उसी प्रकार बढने लगे, जैसे शुक्लपक्ष में विराजमान द्वितीया का चन्द्रमा

बढता है, तथा वय से ऐसे बढने लगे जैसे पर्वत की गुफा में स्थित चम्पक वृक्ष बढता है। इस प्रकार वह भगवान् मयूर के पांखों से युक्त चोटियों से सोहनेवाले, समान वयवाले बालकों के साथ, बाल्यावस्था के योग्य, अपने महान् शक्तिमय स्वरूप को छिपाकर क्रीडा करने लगे। एक समय देवलोक में देवगणों से सुशोभित सुधर्मा नामकी सभा में सौधर्म देवलोक के स्वामी इन्द्र बैठे हुए थे। उन्होंने अपने अनुपम गुणों से वर्धमान (बढते हुए) श्री वर्धमान प्रभुके बल-पराक्रम का वर्णन करना प्रारंभ किया। उस वर्णन किये जाने वाले पराक्रम को कानों से सुनकर और हृदय में धारण करके सब देवों और देवियों का मानस हर्ष से विकसित हो गया। उन देव-देवियों में से किसी एक मिथ्यादृष्टि देव को श्री भगवान् महावीर के पराक्रम की महिमा पर विश्वास नहीं हुआ वह ईर्षालु था, अतः उसके मन में दुर्भावना उत्पन्न हुई। वह तत्काल ही मनुष्य लोक में आया और बालकों के साथ क्रीडा करते हुए भगवान् वर्द्धमान स्वामी को अपनी पीठ पर चढा

लिया। उसने अपनी वैक्रिय शक्ति से अपने शरीर को सात–आठ ताड वृक्षों जितना लम्बा–ऊंचा बनाकर श्री महावीर स्वामी का हनन करने की इच्छा की। उसने प्रभु को उंचे आकाशतल से नीचे गिराना आरंभ किया।

यह दृश्य देखकर स्वभाव से भीरू बालक उसी समय भागने लगे। अपनी चतुराई से जगत् प्रसिद्ध श्री महावीर स्वामीने, अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर जान लिया कि यह उपसर्ग देव का किया हुआ है। तब उन्होंने इस प्रकार सोचा–ये बालक मेरे-स्नेहशील माता–पिता से कहेंगे–अर्थात् देवकृत इस संकट की बात उन्हें बतायेंगे। उसे सुनकर माता–पिता मुझे संकट–ग्रस्त जानकर चिन्तायुक्त न बनें' इस प्रकार विचार करके शीघ्र ही उस अभिप्राय वाले देवको नमाने के लिए, देव की पीठ पर चढे–चढे ही अपने शरीर को थोडा–सा भारी करदिया। प्रभु के शरीर का स्वल्प भार पडने पर वह देव उसे भी सहन न कर सका। वह दुरात्मा देव बहुत उच्च–स्वर से

चीत्कार करके पृथ्वीतल पर आ गिरा। उसके गिरने पर आकाश में देवों की जयध्वनि हुई। तत्पश्चात् श्री भगवान् के चरणों पर शिर रखकर वह उपद्रव करने वाला देवने भगवान् से अपना अपराध खमाया और सम्यक्त्व प्राप्त कर अपने स्थान पर चलागया ॥३३॥

मूलम्—तए णं अण्णया कयाइं पहुस्स अम्मापिउणो सयलकलाकलियं-ललियवच्छल्लेणं कलाकलावं सिक्खेउं महामहेणं महोवहारेणं अणवज्जेसु वज्जेसु वज्जमाणेसु पउरपरिवारपरियरियं तं कलायरियसविहे णिंति। भयवं उ ओहिण्णू अविअणभिण्णुमुद्दाए अम्मापिऊणमणुरोहेण कलायरियपासे पट्ठिओ। पहुस्स सोहणमागमणं अवगामिय कलायरियो पसन्नो उच्चासणमज्झासीणो अहीणपमोयपीणो अहुणेव तरलतरहारो अणुगयपरिवारो रायकुमारो भासमाणो वद्धमाणो ममंतिए आगमिस्सइ त्तिकट्टु तप्पडिच्छं करीअ। किन्तु खंडिय

भगवतः कलाचार्य-समीपे प्रस्थानादि वर्णनम्

लिया। उसने अपनी वैक्रिय शक्ति से अपने शरीर को सात–आठ ताड वृक्षों जितना लम्बा–ऊंचा बनाकर श्री महावीर स्वामी का हनन करने की इच्छा की। उसने प्रभु को उंचे आकाशतल से नीचे गिराना आरंभ किया।

यह दृश्य देखकर स्वभाव से भीरू बालक उसी समय भागने लगे। अपनी चतुराई से जगत् प्रसिद्ध श्री महावीर स्वामीने, अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर जान लिया कि यह उपसर्ग देव का किया हुआ है। तब उन्होंने इस प्रकार सोचा–ये बालक मेरे-स्नेहशील माता–पिता से कहेंगे–अर्थात् देवकृत इस संकट की बात उन्हें बतायेंगे। उसे सुनकर माता–पिता मुझे संकट–ग्रस्त जानकर चिन्तायुक्त न बनें' इस प्रकार विचार करके शीघ्र ही उस अभिप्राय वाले देवको नमाने के लिए, देव की पीठ पर चढे–चढे ही अपने शरीर को थोडा–सा भारी करदिया। प्रभु के शरीर का स्वल्प भार पडने पर वह देव उसे भी सहन न कर सका। वह दुरात्मा देव बहुत उच्च–स्वर से

चीत्कार करके पृथ्वीतल पर आ गिरा। उसके गिरने पर आकाश में देवों की जयध्वनि हुई। तत्पश्चात् श्री भगवान् के चरणों पर शिर रखकर वह उपद्रव करने वाला देवने भगवान् से अपना अपराध खमाया और सम्यक्त्व प्राप्त कर अपने स्थान पर चलागया ॥३३॥

मूलम्—तए णं अण्णया कयाइं पहुस्स अम्मापिउणो सयलकलाकलियं-ललियवच्छल्लेणं कलाकलावं सिक्खेउं महामहेणं महोवहारेणं अणवज्जेसु वज्जेसु वज्जमाणेसु पउरपरिवारपरियरियं तं कलायरियसविहे णिंति। भयवं उ ओहिण्णू अविअणभिण्णुमुद्दाए अम्मापिऊणमणुरोहेण कलायरियपासे पट्ठिओ। पहुस्स सोहणमागमणं अवगमिय कलायरियो पसन्नो उच्चासणमज्झासीणो अहीणपमोयपीणो अहुणेव तरलतरहारो अणुगयपरिवारो रायकुमारो भासमाणो वद्धमाणो ममंतिए आगमिस्सइ त्तिकट्टु तप्पडिच्छं करीअ। किन्तु खंडिय

कलामंडिओ पंडिओ किं अखण्डकलामंडिअं तं पुरिसुत्तमं सयलाणवज्जविज्जा-अहिट्ठाइ-देवया विहेयवंदण भयवं पाढिउं सक्किज्जा? परिसुद्धं कंचणं किं सोहिज्जा? अंबतरू तोरणेहिं किं अलंकरिज्जा? अमयं महुरदव्वेहिं किं वासिज्जा? सरस्सई पाठविहिं किं सिक्खिज्जा? चंदम्मि धवलत्तं किं आरोविज्जा? सुवण्णं सुवण्णजलेण किं परिक्करिज्जा? जो भयवं णाणत्तिगमहालओ महाविण्णाणजलही महासामत्थणिही महाबुद्धि महाधीरो महागम्भीरो य अत्थि सो अप्पणाणिणो अंतिए पढिउं गच्छिज्जंति महं असमंजसं। एयाए पवित्तीए देवलोए सुहम्माए सहाए सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणं चलियं। तए णं आसणे चलिए समाणे ओहिणा आभोइय सक्किंदो सिग्घं तओ पट्ठिओ माहणरूवेण पहुसमीवे आगमिय पहुं उच्चासणे

उवणिवेसिअ जा जा पण्हाइं कलायरियाहियए संसयरूवेण ठियाई ताइं चेव पण्हाइं पुच्छेइ. तत्थ इंदेण वागरणविसयं पण्हं कयं, भगवया तं वागरिय संखेवेण सव्वं वागरणं कहियं। तओ पच्छा इंदेण णयप्पमाणसरूवं पुच्छियं तं भगवया संखेवेण आघविय सव्वं णाणमम्मं पयासियं। तओ पच्छा तेण धम्मविसए पुच्छियं। भगवया धम्मसरूवं आघवमाणेणं उवसमो आघविओ, उवसमं आघवमाणेणं विवेगो आघविओ, विवेगं आघवमाणेणं विरमणं आघवियं, विरमणं आघवमाणेणं पावाणं कम्माणं अगरणं आघवियं, तं आघवमाणेणं णिज्जरा वंधमोक्खसरूवं आघवियं ॥मू० ३४॥

शब्दार्थ—[तए णं अण्णया कयाइं पहुस्स] इसके बाद किसी समय प्रभु के [अम्मापिउणो सयलकलाकलियंपि] मातापिता ने सकलकलाओं के ज्ञान से युक्त प्रभु

कलामंडिओ पंडिओ किं अखण्डकलामंडिअं तं पुरिसुत्तमं सयलाणवज्जविज्ञा-अहिट्ठाइ-देवया विहेयवंदण भयवं पाढिउं सक्किज्जा? परिसुद्धं कंचणं किं सोहिज्जा? अंबतरू तोरणेहिं किं अलंकरिज्जा? अमयं महुरदव्वेहिं किं वासिज्जा? सरस्सई पाठविहिं किं सिक्खिज्जा? चंदम्मि धवलत्तं किं आरोविज्जा? सुवण्णं सुवण्णजलेण किं परिक्करिज्जा? जो भयवं णाणत्तिगमहालओ महाविण्णाणजलही महासामत्थणिही महाबुद्धि महाधीरो महागम्भीरो य अत्थि सो अप्पणाणिणो अंतिए पढिउं गच्छिज्जंति महं असमंजसं। एयाए पवित्तीए देवलोए सुहम्माए सहाए सक्कस्स देविंदस्स देव-रण्णो आसणं चलियं। तए णं आसणे चलिए समाणे ओहिणा आभोइय सक्किंदो सिग्घं तओ पट्ठिओ माहणरूवेण पहुसमीवे आगमिय पहुं उच्चासणे

भगवतः कलाचार्य-समीपे प्रस्थानादि वर्णनम्

उवणिवेसिअ जा जा पण्हाइं कलायरियहियए संसयरूवेण ठियाई ताइं चेव पण्हाइं पुच्छेइ. तत्थ इंदेण वागरणविसयं पण्हं कयं, भगवया तं वागरिय संखेवेण सव्वं वागरणं कहियं। तओ पच्छा इंदेण णयप्पमाणसरूवं पुच्छियं तं भगवया संखेवेण आघविय सव्वं णाणमम्मं पयासियं। तओ पच्छा तेण धम्मविसए पुच्छियं। भगवया धम्मसरूवं आघवमाणेणं उवसमो आघविओ, उवसमं आघवमाणेणं विवेगो आघविओ, विवेगं आघवमाणेणं विरमणं आघवियं, विरमणं आघवमाणेणं पावाणं कम्माणं अगरणं आघवियं, तं आघवमाणेणं णिज्जरा वंधमोक्खसरूवं आघवियं ॥सू० ३४॥

शब्दार्थ—[तए णं अण्णया कयाइं पहुस्स] इसके बाद किसी समय प्रभु के [अम्मापिउणो सयलकलाकलियंपि] मातापिता ने सकलकलाओं के ज्ञान से युक्त प्रभु

को [ललियवच्छल्लेणं कलाकलावं सिक्खेउं] अतिशय वात्सल्य के कारण कला कलाप सीखने ने के लिये [महामहेणं महोवहारेणं अणवज्जेसु वज्जेसु वज्जमाणेसु] बडे उत्सव और बहुत उपहारों के साथ तथा मनोहर बाजों के साथ एवं [पउरपरिवार परियरियं तं कलायरियसविहे णिंति] तथा विपुल परिवार के साथ कलाचार्य के ससीप भेजा [भयवं उ ओहिण्णू अविअणभिण्णुमुद्दाए] भगवान् अवधिज्ञानी होने पर भी अनभिज्ञ–सी आकृति बनाये, [अम्मापिऊण मणुरोहेण कलायरियपासे पट्ठिओ] माता पिता के अनुरोध से कलाचार्य के पास जाने के लिए रवाना हुए [पहुस्स सोहणमागमणं-अवगमिय कलायरिओ पसन्नो] भगवान् का शुभागमन जानकर कलाचार्य प्रसन्न हुए [उच्चासणमज्झासीणो] ऊंचे आसन पर बैठ गये [अहीणपमोयपीणो] अतिशय प्रमोद से फूल गया [अहुणेवतरलतरहारो अणुगयपरिवारो रायकुमारो भासमाणो वद्धमाणो] अनुपमहारका धारक परिवार समेत राजकुमार वर्द्धमान [ममंतिए आगसिस्सइ

भगवतः कलाचार्य समीपे प्रस्थानादि वर्णनम्

–त्ति कट्टु तप्पडिच्छं करीअ] अभी मेरे पास आनेवाला है, ऐसा सोचकर उसकी प्रतीक्षा करने लगा [किन्तु खंडिय कलामंडिओ पंडिओ किं अखंडकलामंडियं तं पुरिसुत्तमं] किन्तु थोडी सी कला को जाननेवाला पण्डित सकल कलाओं से सुशोभित [सयलाणवज्जविज्जा अहिट्ठाइ देवया विहेय वंदणं भयवं पाढिउं सक्किज्जा ?] समस्त समीचीन विद्याओं के अधिष्ठायक देवोंद्वारा वन्दना करने योग्य त्रिशला तनय पुरुषोत्तम भगवान् को क्या पढा सकता था ? [परिसुद्धं कंचणं किं सोहिज्जा ?] पूर्णरूप से शुद्ध सुवर्ण को क्या शोधा जाता है ? नहीं क्योंकि वह स्वयं शुद्ध है [अंबतरूतोरणेहिं किं अलंकरिज्जा ?] क्या आम के वृक्ष को तोरणों से सजाया जाता है ? नहीं कारण वह पत्तों से सजा हुआ है [अमयं महुरदव्वेहिं किं वासिज्जा ?] क्या अमृत को मधुर द्रव्यों से वासित किया जाता है नहीं कारण अमृत स्वयं मधुर है [सरस्सई पाठविहिं किं सिक्खिज्जा ?] शारदा देवी को क्या पाठविधि सीखाइ जाती है ? नहीं कारण यह स्वयं शिक्षित है।

[चंदम्मि धवलत्तं किं आरोविज्जा ?] क्या चन्द्रमा में धवलता का आरोपण किया जाता है ? नहीं कारण चन्द्र स्वयं शुभ्र है। [सुवण्णं सुवण्णजलेण किं परिक्करिज्जा ?] क्या सुवर्ण को सुवर्ण के पानी से संस्कारित करने की आवश्यकता रहती है ? नहीं कारण स्वर्ण स्वयं स्वर्ण जल से परिष्कृत है [जो भयवं णाणत्तिगमहालओ] जो भगवान् तीन ज्ञान—मतिश्रुत-अवधि के भण्डार हैं [महाविण्णाणजलही] महान् विज्ञान के समुद्र, [महासामत्थणिहि] विशाल शक्ति के निधान [महाबुद्धि] महान् बुद्धिमान [महाधीरो] महाधीर [महागम्भीरो य अत्थि] और महान् गम्भीर है [सो अप्पणाणिणो अंतिए पढिउं गच्छिज्जंति महं असमंजसं] वे वर्द्धमान स्वामी अल्पज्ञानी कलाचार्य के पास पढने जाएँ यह अत्यन्त अयुक्त बात थी [एयाए पवित्तीए देवलोए सुहम्माए सहाए सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणं चलिअं] इस प्रवृत्ति से देवलोक में सुधर्मा सभा में शक्र देवेन्द्र देवराज का आसन चलायमान हुआ [तए णं आसणे चलिए समाणे ओहिणा आभोगिय सक्किंदो सिग्घं

तओ पट्ठिओ] आसन के चलायमान होने पर अवधिज्ञान का उपयोग लगाने से आसन के चलायमान होने का कारण ज्ञात हो गया। तब शक्रेन्द्र शीघ्र ही देवलोक से चला और [माहणरूवेण पहुसमीवे आगमिय पहुं उच्चासणे उवणिवेसिय] ब्राह्मण का रूप बना कर प्रभु के पास आया। प्रभु को उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करके [जा जा पण्हाइं कलायरियहियए संसयरूवेण ठियाइं ताइं चेव पण्हाइं पुच्छेइं] जो जो प्रश्न कलाचार्य के हृदय में संशयरूप से स्थित थे वेही प्रश्न पूछे [तत्थ इंदेण वागरणविसयं पण्हं कयं] उन प्रश्नों में सर्व प्रथम इन्द्रने व्याकरण विषयक प्रश्न पूछा [भगवया तं वागरिय संखेवेण सव्वं वागरणं कहियं] भगवान् वर्द्धमान स्वामीने उस प्रश्न की उचित रूप से व्याख्या करके, थोडे ही अक्षरों में समस्त व्याकरण शास्त्र कह दिया [तओ पच्छा इंदेण णयप्पमाणसरूवं पुच्छियं] इसके बाद इंद्रने नय और प्रमाण का स्वरूप पूछा [तं भगवया संखेवेण आघविय सव्वं णायमम्मं पयासियं] भगवान ने संक्षेप में

उसका उत्तर देकर सम्पूर्ण न्याय शास्त्र का सार प्रकाशित कर दिया [तओ पच्छा तेण धम्मविसए पुच्छियं] इसके बाद इन्द्रने धर्म के विषय में प्रश्न पूछा [भगवया धम्मसरूवं आघवमाणेणं उवसमो आघविओ] भगवान वर्द्धमान ने धर्म का स्वरूप बतलाते हुए उपशम–मनोनिग्रह कहा [उवसमं आघवमाणेणं विवेगो आघविओ] उपशम कहते हुए विवेक कहा [विवेगं आघवमाणेणं विरमणं आघवियं] विवेक कहते हुए विरमण कहा [विरमणं आघवमाणेणं पावाणं कम्माणं अगरणं आघवियं] विरमण कहते हुए पापकर्मों का अकरण (न करना) कहा [तं आघवमाणेणं णिज्जराबंधमोक्खसरूवं आघवियं] पापकर्मों का अकरण कहते हुए निर्जरा, बंध और मोक्ष का स्वरूप कहा ॥सू० ३४॥

अर्थ—'तए णं' इत्यादि। तदन्तर किसी समय भगवन् महावीर स्वामी के माता-पिता ने समस्त कलाओं के ज्ञाता प्रभु को भी प्रगाढ प्रेम के कारण, कलाओं का ज्ञान प्राप्त कराने के लिए महोत्सव के साथ, भारी भेंट के साथ, मनोहर गाजों–बाजों के

साथ और बहुत बडे परिवार के साथ, कलाशिक्षक के समीप पहुँचाया। भगवान् वर्द्धमान अवधिज्ञान से विभूषित होकर भी अनजान की सी चेष्टा करके, माता–पिता के आग्रह से कलाचार्य के समीप पधारे। कलाचार्य, श्री वर्द्धमान का शोभन आगमन जानकर प्रसन्न हुआ। और ऊँचे आसन पर बैठा हुआ वह हर्ष की तीव्रता से फूल उठा–पुष्ट हो गया। अद्वितीय हार के धारणहार, गंभीरता आदि गुणों से सुशोभित सिद्धार्थ महाराज के पुत्र राजकुमार वर्द्धमान अभी–अभी परिवार सहित मेरे समीप आयेंगे, इस प्रकार विचार कर कलाचार्य उनके आने की बाट जोहने लगा।

किन्तु थोडी सी कलाओं का ज्ञाता पंडित, समस्त कलाओं में निपुण, पुरुषों में उत्तम, सब श्रेष्ठ विद्याओं के अधिपति देवता के द्वारा भी वन्दनीय अर्थात् सरस्वती के द्वारा भी स्तवनीय त्रिशलानन्दन भगवान् को क्या पढाने में समर्थ हो सकता था? अर्थात् नहीं हो सकता था, क्योंकि वे तो स्वयं संबुद्ध थे। इसी अर्थ को दूसरे प्रकार से

कहते हैं-पूर्णरूप से शुद्ध स्वर्ण को क्या शोधा जाता है? नहीं शोधा जाता, क्योंकि वह तो स्वतः शुद्ध है। आम के वृक्ष को तोरणों से सिंगारा जाय ?, नहीं, वह तो स्वयं ही पत्तों से युक्त है। अमृत को मधुर द्रव्यों से क्या वासित किया जाय ?, नहीं, क्योंकि वह तो स्वभाव से ही मधुर होता है। शारदा देवी को क्या पाठविधि सिखाने की आवश्यकता होती है ?, नहीं, क्योंकि वह तो स्वयं सीखी हुई है। चन्द्रमा में धवलता है। सोने का सोने के पानी से संस्कार करने की आवश्यकता है? नहीं वह तो स्वयं ही परिष्कृत है। जो भगवान् तीन ज्ञान—मतिश्रुतअवधि के भण्डार, समस्त कलाओं के सागर, विशाल शक्ति के निधान, महान् मतिमान्, महाधीर—धीरों में अग्रगण्य और अत्यधिक गंभीरता आदि गुणों से संपन्न थे, वे वर्द्धमान स्वामी, अल्पज्ञानी कलाचार्य के पास पढने जाएँ, यह अत्यन्त अयुक्त बात थी। भगवान् के कलाचार्य के समीप शिक्षा ग्रहण करने के लिए जाने की प्रवृत्ति से देवलोक में, सुधर्मा सभा में, शक्र देवेन्द्र

देवराज का आसन चलायमान हुआ।

आसन कम्पायमान होने पर अवधिज्ञान का उपयोग लगाने से आसन के कांपने का कारण ज्ञात हो गया। तब शकेन्द्र शीघ्र ही देवलोक से चला और ब्राह्मण का रूप बना कर प्रभु के पास आया। प्रभु को उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करके, जो प्रश्न कलाचार्य के हृदय म संशय रूप से स्थित थे, वे ही प्रश्न पूछे। उन प्रश्नों में सर्वप्रथम इन्द्र ने व्याकरण संबंधी प्रश्न पूछा। भगवान् वर्द्धमान स्वामीने उस प्रश्न की उचित रूप से व्याख्या करके, थोडे ही अक्षरों में समस्त व्याकरणशास्त्र कह दिया। तभी से 'जैनेन्द्र व्याकरण' की प्रसिद्धी हुई।

व्याकरण–विषयक प्रश्न के पश्चात् इन्द्र ने नैगमादिनयों का तथा प्रत्यक्ष, परोक्ष प्रमाणों का स्वरूप पूछा। भगवान् ने संक्षेप में उसका उत्तर देकर सम्पूर्ण न्यायशास्त्र का सार प्रकाशित कर दिया। तत्पश्चात् इन्द्र ने धर्म के विषय में प्रश्न किया। भगवान्

श्री वर्द्धमान स्वामी ने धर्म का स्वरूप बतलाते हुए उपशम–मनोनिग्रह कहा। उपशम कहते हुए विरमण (सावद्य व्यापारों का त्याग) कहा। विरमण कहते हुए प्राणातिपात–आदि पापों का न करना कहा। पापों का न करना कह कर निर्जरा, बंध और मोक्ष का स्वरूप कहा ॥३४॥

मूलम्–एएसिं णं पण्हाणं चित्तचमक्कारपवत्तेण वागरेण तत्थट्ठिया सव्वे जणा विम्हिया जाया। कलायरिओ वि पसन्नचित्तो संजाओ। तओ पच्छा तेण चिन्तियं–अच्छेरयमिणं जं एएण दुद्धमुहेण सुउमालेण बालेण एयारिसी विज्जा कओ सिक्खिया ? जो मम मणंसि चिरकालाओ संदेहो आसी, जो य न केणावि अज्जपज्जंतं निवारिओ, सो सव्वो अज्ज अणेण निवारिओ। सच्चमेयं, जं महापुरिसम्मि एयारिसा गुणा हवंति चेव केरिसं अस्स गांभी–

रियं जं एयारिसगुणगणसंपण्णोऽवि एसो एत्थ पढिउं समागओ सच्चं अद्ध-भरिओ घडो सद्दं करेइ न पुण्णो। दुब्बलो चिक्करेइ न सूरो, कंसं गुंजेइ न कणयं महापुरिसा णियमहिमं न पयासेंति। तए णं से सक्के देविंदे देवराया णियं इंदरूवं पगडिय सयलगुणणिहिणो महावीरपहुणो अउलबलवीरियबुद्धि-पहुत्तं तत्थट्ठिए जणे परिचाइंसु जं इमो सयलगुणआलबालो सुउमालो बालो न साहारणो किंतु सव्वसत्थपारगो सव्वजगजीवजोणीरक्खणपरायणो सिरि वद्धमाणो चरमतित्थयरो अत्थि त्ति।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। पहू य सुसज्जीकयं गयमारुहिय तेण जणसमुदाएण अवलोइज्जमाणे अवलोइज्जमाणे

सप्पासायं सप्पासायं अभिगमीअ। एयारिसपवित्त पहुपवित्तिओ माउपियाईणं चेयसि भुज्जो भुज्जो अमंदाणंदसिंधूच्छलंततरंगो न संमाओ ॥३५॥

शब्दार्थ—[एएसिं णं पण्हाणं चित्तचमक्कारपवत्तेण] इन प्रश्नों के चित्त में चमत्कार उत्पन्न करनेवाले [वागरेण तत्थट्ठिया सव्वे जणा विम्हिया जाया] उत्तर से वहां स्थित सभी जन चकित रह गये। [कलायरिओ वि पसन्नचित्तो संजाओ] कलाचार्य भी प्रसन्न चित्त हुआ। [तओ पच्छा तेण चिंतियं] उसके बाद कलाचार्य ने सोचा [अच्छेरयमिणं जं एएण दुद्धमुहेण सुउमालेण बालेण] यह आश्चर्य है कि इस दुधमुहे सुकुमार बालक ने [एयारिसी विज्जा कओ सिक्खिया?] ऐसी विद्या किससे सीखी? [जो मम मणंसि चिरकालाओ संदेहो आसी] मेरे मनमें चिरकाल से जो सन्देह था [जो य न केण वि अज्जपज्जंतं निवारिओ] और जिसे आज तक किसीने दूर नहीं किया था, [सो सव्वो अणेण निवारिओ] वह सब आज इसने दूर कर दिया [सच्चमेयं जं महा-

भगवतः कलाचार्यसमीपे प्रस्थानादि वर्णनम्

पुरिसम्मि एयारिसा गुणा हवंति चेव] सच है महापुरुषों में ऐसे गुण होते ही हैं [केरिसं अस्स गांभीरियं जं एयारिसगुणगणसंपण्णो वि] कैसी गम्भीरता है इस में, जो ऐसे गुण गण से संपन्न होकर भी [एसो एत्थ पढिउं समागओ] यह यहां पढने आया है [सच्चं अद्धभरिओ घडो सद्दं करेइ न पुण्णो] सच है, आधा भरा हुआ घडा ही आवाज करता है पूरा भरा नहीं [दुब्बलो चिक्करेइ न सूरो] दुर्बल ही चीत्कार करता है शूर नहीं [कंसं गुंजेइ न कणयं] कांसा आवाज करता है न कि सोना [महापुरिसा णियमहिमं न पयासेंति] महापुरुष अपनी महिमा को आप प्रकाश नहीं करते।

[तए णं से सक्के देविंदे देवराया] उसके बाद शक्र देवेन्द्र देवराज ने [णिय इंद रूवं पगडिय] अपना इन्द्र का रूप प्रकट करके [सयलगुणणिहिणो महावीरपहुणो अउल-बलवीरियबुद्धिपहुत्तं] सकलगुणों के सागर वीर प्रभु के अतुल बल वीर्य बुद्धि और प्रभाव [तत्थट्ठिए जणे परिचाइंसु] का परिचय दिया कि [जं इमो सयलगुणआलवालो

सुउमालो बालो न साहारणो] यह समस्त गुणों का आलवाल (क्यारी) सुकुमार बालक साधारण नहीं है [किंतु सव्व सत्थपारिणो सव्वजगजीवजोणीरक्खणपरायणो सिरि-वद्धमाणो चरमतित्थयरो अत्थि त्ति] किन्तु समस्त शास्त्रों में पारंगत जगत के सर्व प्राणियों की रक्षा करने में तत्पर श्री वर्द्धमान स्वामी चरमतीर्थंकर है।

[तए णं से सक्के देविंदे देवराया] इसके बाद शक्रेन्द्र देवराज ने [समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ] श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की नमस्कार किया [वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए] वन्दना नमस्कार करके जिस दिशा से प्रकट हुए थे उसी दिशा में चले गये।

[पहू य सुसज्जीकयं गयमारुहिय तेण जनसमुदाएण] भगवान् सिंगारे हुए हाथी पर बैठ कर बार बार उस जनसमुदाय के द्वारा [अवलोइज्जमाणे अवलोइज्जमाणे सप्पासायं सप्पासायं अभिगमीअ] अवलोकन किये जाते हुए प्रसन्नता के साथ अपने

प्रासाद की ओर चले [एयारिसपवित्त पहु पवित्तिओ माउपियाइणं चेयसि भुज्जो भुज्जो अमंदाणंदसिंधूच्छलंततरलतरंगो न संमाओ] प्रभु की इस पवित्र प्रवृत्ति से माता पिता के चित्त में पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाली तीव्र आनन्द–सागर की उछलती हुई चपल लहरें समाई नहीं ॥३५॥

अर्थ—'एएसि णं' इत्यादि। इन व्याकरण, नय, प्रमाण, एवं धर्मसंबंधी प्रश्नों के चित्त में सन्तोष उत्पन्न करने वाले उत्तर से वहां स्थित सभी लोग आश्चर्ययुक्त हो गये। कलाचार्य का अन्तःकरण भी सन्तुष्ट हुआ। तत्पश्चात् कलाचार्य ने विचार किया। क्या विचार किया सो कहते हैं–'अहा, आश्चर्यजनक है कि इस दूधमुंहे कोमल बालक ने ऐसी चित्त में चमत्कार करने वाली विद्या किस मनुष्य से सीखी है? मेरे मनमें जो शंका बहुत समय से बनी हुई थी और आज तक जिस शंका का किसी ने भी समाधान नहीं किया था, वह सब शंका आज बालक वर्द्धमान ने दूर कर दी। यथार्थ ही

भगवतः कलाचार्य-समीपे प्रस्थानादि वर्णनम्

है महापुरुषों के गुण चित्त में चमत्कार उत्पन्न करने वाले होते ही हैं। इस बालक की गंभीरता कैसी है कि चमत्कारिक गुणों के समूह से सम्पन्न होने पर भी यह मेरे पास शिक्षा ग्रहण करने के लिए चला आया! यह ठीक ही कहा जाता है कि, आधा भरा हुआ घडा ही आवाज करता है पूरा भरा नहीं, दुर्बल जन ही चिल्लाते हैं शूर नहीं, कांसा बजता है, किन्तु स्वर्ण नहीं बजता। इसी प्रकार महापुरुष अपनी महिमा को प्रकाशित नहीं करते!

तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराज ने अपने इन्द्र रूप को प्रकट करके समस्त गुणों के समुद्र भगवान् महावीर के अतुल बल, वीर्य, बुद्धि और प्रभुता का वहां स्थित जनों को परिचय कराया कि–यह दया–दाक्षिण्य आदि सब गुणों के आलवाल (क्यारी) सुकुमार बाल सामान्य नहीं हैं किन्तु समस्त शास्त्रों के पारगामी तथा सारे संसार में जीवों की जो मनुष्यादि योनियां है, उनकी रक्षा करने में तत्पर श्री वर्द्धमान–नामक

अन्तिम—चौबीसवें तीर्थंकर हैं।

श्री वीर भगवान् का परिचय देने के पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराज ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके जिस दिशा से प्रकट हुए थे, उसी दिशा में चले गये। श्री वर्द्धमान स्वामी बढिया सजाये हुए गजराज पर सवार होकर साथ आये हुए, एवं शिक्षास्थान में एकत्र हुए जनसमूह द्वारा तथा परिजन समूह के द्वारा पुनः पुनः निर्निमेष दृष्टि द्वारा देखे जाते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने राजमहल में चले गये।

इन्द्र द्वारा किये गये प्रश्नों के समाधान, कलाचार्य को संतुष्ट करना एवं सकलजनों को प्रसन्न करना—इस प्रकार की श्री वीरस्वामी की प्रवृत्ति से माता—पिता के तथा आदि शब्द से भाई विगैरह के मन में प्रबल हर्ष—रूपी सागर की बार—बार उछलती एवं चंचल तरंगे समा न सकीं। आशय यह है कि वह हर्ष भीतर न समाया तो

आंसुओं के बहाने बाहर निकल पडा ॥३५॥

मूलम्—तए णं तं समयं भगवं महावीरं उम्मुक्कबालभावं विण्णायपरिणयमेत्तं णवंगसुत्तपडिबोहियं जाणिय अम्मापियरो सागेयपुराहिवस्स समरवीरस्स रण्णो धूयाए धारिणीए देवीए अंगजायाए जसोयाए राजवरकण्णाए पाणिं गिण्हाविंसु। तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स पियदंसणेति नामं धूया जाया। सा च जोव्वणगमणुपत्ता सयस्स भायणिज्जस्स जमालिस्स दिन्ना। तीसे पियदंसणाए धूया सेसवईति नामं जाया। समणस्स भगवओ महावीरस्स पिउणो कासवगोत्तस्स सिद्धत्थेत्ति वा, सेज्जंसेत्ति वा जसंसेत्ति वा तओ नाम धेज्जा। माउणो वासिट्ठगुत्ताए तिसलेति वा, विदेहादिण्णेत्ति वा, पियकारिणीति वा तओ नामधेज्जा।

भगवओ पित्तियए सुपासे कासवगोत्ते, जेट्ठे भाया नंदिवद्धणे कासवगोत्ते। जेट्ठा भइणी सुदंसणा कासवगोत्ता। भज्जा जसोया कोडिण्णगोत्ता। धूयाए कासवगुत्ताए अणोज्जाइ वा पियदंसणाइ वा दो नामधिज्जा। णत्तुईए कोसियगोत्ताए सेसवईति वा जसवईति वा दो नामधिज्जा होत्था। समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासाविच्चिज्जा समणोवासगा यावि होत्था। तेणं बहूणं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता अपच्छिमाए संलेहणाइए झोसणाए झोसिय सरीरा कालमासे कालं किच्चा बारसमे अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववण्णो, तओ णं महाविदेहे सिज्झिस्संति ॥३६॥

शब्दार्थ—[तए णं तं समणं भगवं महावीरं] इसके बाद भगवान महावीर को [उम्मुक्कबालभावं] बाल्यावस्था से मुक्त [विण्णाय परिणयमेत्तं] परिपक्व ज्ञानवाला तथा

[णवंगसुत्तपडिबोहियं] नौ–अंग–दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, जिह्वा, त्वचा और मन बाल्यावस्था के कारण जो सोये–से थे–अव्यक्त चेतनावाले थे उन्हें जागृत हुए [जाणिय] जानकर अर्थात् यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ जानकर [अम्मापियरो] मातापिता ने [सागेयपुराहिवस्स समरवीरस्स रन्नो धूयाए] साकेतपुर के राजा समरवीर की कन्या, एवं [धारिणीए देवीए अंगजायाए जसोयाए राजवरकन्नाए पाणिं गिण्हाविंसु] धारिणी देवी की अंगजात 'यशोदा' नामक श्रेष्ठ राजकन्या के साथ पाणिग्रहण–विवाह कराया।

[तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स] पश्चात् श्रमण भगवान महावीर के [पियदंसणेति नामं धूया जाया] घर प्रियदर्शना नामक कन्या का जन्म हुआ [सा च जोव्वणगमणुपत्ता] जब वह युवा हुइ तो [सयस्स भाइणिज्जस्स जमालिस्स दिन्ना] भगवान ने उसे अपने भागिनेय–भानजे जमाली को दी–जमाली के साथ उसका विवाह कर दिया [तीसे पियदंसणाए धूया सेसवईति नामं जाया] उस प्रियदर्शना नामकी

कन्या से शेषवती नामक पुत्री हुइ [समणस्स भगवओ महावीरस्स पिउणो कासवगोत्तस्स तओ नामधेज्जा] श्रमण भगवान महावीर के काश्यपगोत्रीय पिता के तीन नाम थे [सिद्धत्थेत्ति वा, सेज्जंसेति वा, जसंसेति वा] सिद्धार्थ, श्रेयांस और यशस्वी [माउणो वासिट्ठगुत्ताए तिसलेति, वा विदेहदिण्णेति वा, पियकारिणीति वा तओ नामधेज्जा] वासिष्ठगोत्रीय माता के तीन नाम थे–त्रिशला विदेहदत्ता, और प्रियकारिणी

[भगवओ पित्तियए सुपासे कासवगोत्ते] भगवान के काका काश्यपगोत्रीय सुपार्श्व थे। [जेट्ठे भाया नंदीवद्धणे कासवगोत्ते] एवं बडे भ्राता काश्यपगोत्रीय नन्दिवर्द्धन थे। [जेट्ठा भइणी सुदंसणा कासवगोत्ता] बडी बहन सुदर्शना भी काश्यप गोत्रीय थी [भज्जा जसोया कोडिण्णगोत्ता] और उनकी पत्नी यशोदा कौडिन्यगोत्र की थी [धूयाए कासवगुत्ताए अणोज्जाइ वा पियदंसणाइ वा दो नामधिज्जा] उनकी काश्यपगोत्र की लडकी के दो नाम थे–अनवद्या और प्रियदर्शना [णत्तुईए कोसियगोत्ताए सेसवईति वा

जसवईति वा दो नामधिज्जा होत्था] उनकी दौहित्री [नातिन] कौशिक गोत्र की थी। उसके दो नाम थे–शेषवती और यशस्वती।

[समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो] श्रमण भगवान महावीर के माता पिता [पासावच्चिज्जा समणोवासगा यावि होत्था] पार्श्वापत्यीय (पार्श्वनाथ के अनुयायी) श्रमणोपासक थे [तेणं बहूणं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता] वे दोनों बहुत वर्षोंतक श्रमणोपासक–श्रावकव्रत को पालकर [अपच्छिमाए संलेहणाए झोसणाए झोसियसरीरा] अन्तिम समय में होनेवाली मारणांतिक संलेखना–जोषणा से शरीर को जोषित करके [कालमासे कालं किच्चा बारसमे अच्चुए कप्पे] मृत्यु के अवसर पर काल करके बारहवे अच्युत नामक देवलोक में [देवत्ताए उववण्णा] देवरूप से उत्पन्न हुए। [तओ णं महाविदेहे सिज्झिस्संति] वहां से चवकर वे महाविदेह में सिद्ध होंगे ॥३६॥

अर्थ—'तए णं' इत्यादि। तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने बाल्यवय को

पार किया हुआ, एवं परिपक्व–विज्ञानवाला, दो कान, दो आंख, दो नाक, रसना, त्वचा और मन–यह नौ अंग जो सुप्त थे, उन्हें यौवन के कारण जाग्रत हुआ देखकर, माता-पिताने अयोध्या के राजा समरवीर की पुत्री और धारिणी नाम देवी की अंगजात यशोदा नामक श्रेष्ठ राजकन्या के साथ उसका विवाह कराया। विवाह के बाद काल-क्रम से श्रमण भगवान् महावीर को 'प्रियदर्शना' नामक एक कन्या की प्राप्ति हुई। प्रियदर्शना धीरे धीरे यौवन अवस्था में पहुंची तो भगवान् ने उसे अपने भागिनेय जमालि को दी–जमालि के साथ उसका विवाह कर दिया। प्रियदर्शना की भी कन्या शेषवती नामक हुई। श्रमण भगवान महावीर के पिता के, जो काश्यपगोत्र में उत्पन्न हुए थे, तीन नाम थे–सिद्धार्थ, श्रेयांस, और यशस्वी। वाशिष्ठ गोत्र में उत्पन्न माता के तीन नाम थे–त्रिशला, विदेहदत्ता और प्रियकारिणी।

भगवान के काका काश्यपगोत्रोत्पन्न 'सुपार्श्व' थे। बडे भ्राता काश्यपगोत्रोत्पन्न

नन्दिवर्धन थे। बडी बहिन काश्यपगोत्रीया सुदर्शना थी। पत्नी का नाम यशोदा था, वह कौडिन्य-गोत्र में उत्पन्न हुई थी। उनकी कन्या काश्यपगोत्रीया के दो नाम थे प्रियदर्शना और अनवद्या। कौशिकगोत्र में उत्पन्न नातिक के दो नाम थे शेषवती और यशस्वती। भगवान के मातापिता भगवान् पार्श्वनाथ की शिष्यपरम्परा से संबंध रखने वाले श्रावक थे। वे बहुत वर्षोंतक श्रमणोपासकपर्याय पालकर सब से अन्त में, मरण के समय में होने वाली संलेखना-जोषणा से शरीर को जोषित करके [समाधि-मरण का सेवन करके] कालमास में काल करके बारहवें अच्युत-नामक कल्प में देवपर्याय से उत्पन्न हुए। वहां से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होंगे और मुक्ति प्राप्त करेंगे ॥३६॥

मूलम्-तेणं कालेणं तेणं समएणं लोगंतियदेवाणं सपरिवाराणं आसणाइं चलंति। तए णं ते देवा भगवओ निक्खमणाभिप्पायं ओहिणा आभोगिय भगवओ अंतिए आगमिय आगासे ठिच्चा भयवं वंदमाणा नमंसमाणा एवं

वयासी–जय जय भगवं ! बुज्झाहि लोयनाह ! सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए पवत्तेहि धम्मतित्थं, जं सव्वलोए सव्वपाणभूयजीवसत्ताणं खेमंकरं आगमेसि भद्दं च भविस्सइ-त्ति। जं सयं बुद्धस्सवि भगवओ अभिणिक्खमणत्थं देवाणं कहणं तं तेसिं देवाणं जीयं कप्पं।

तयाणं समणं भगवं महावीरे संवच्छरदाणं दलइ, तं जहा–पुव्वं सूराओ जाव जामं अट्ठसयसहस्साहियं एग कोडिं एग दिवसेणं दलइ। एवं एगम्मि-संवच्छरे तिण्णि कोडिसयाइं अट्ठासीइ कोडीओ असीइ सयसहस्साइं (३८८-८०००००) सुवण्णमुद्दाणं भगवया दिण्णाइं। तए णं से णंदिवद्धणे राया भगवं कहइ भवं एगादिवसमेत्तं रज्जं करीअ तओ पच्छा निक्खमणं करेइ तं सोच्चा भगवं मौणभावमलम्बीअ चिट्ठइ, तओपच्छा भगवं राजाभिसेएण रज्जे

ठावेइ तओ णंदिवद्धणे राया भगवं पुच्छिय भाया किं दलयामो किं पयच्छामो किंवा ते हियइच्छिए सामत्थे तएणं भगवं एवं वयासी—इच्छामि णं भाया ! कुत्तियावणाओ रयहरणं पडिग्गहं च उवणेह—कासवं च सद्दावेह। तएणं से णंदिवद्धणे राया भगवओ अभिनिक्खमणमहोच्छवं करेइ ॥३७॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं तेणं समएणं] उस काल और उस समय में [लोगंतिय देवाणं सपरिवाराणं आसणाइं चलंति] परिवार सहित लोकान्तिक देवों के आसन चलायमान हुए [तए णं ते देवा भगवओ निक्खमणाभिप्पायं ओहिणा आभोगिय भगवओ अंतिए आगमिय आगासे ठिच्चा] तब वे देव भगवान के दीक्षा अंगीकार करने के अभिप्राय को अवधिज्ञान से जानकर भगवान के समीप आये। और आकाश में स्थित होकर [भयवं वंदमाणा नमंसमाणा एवं वयासी—जय जय भगवं ! बुज्झाहि लोगनाह !]

भगवान को वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले—'जय जय हो भगवन् ! बोध प्राप्त करिये हे तीन लोक के नाथ ! [सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए पवत्तेहि धम्मतित्थं] समस्त जगत् के जीवों की रक्षा और दया के लिये धर्म तीर्थका प्रवर्तन कीजिए [जं सव्वलोए सव्वपाणभूयजीवसत्ताइं खेमंकरं आगमेसिभद्दं च भविस्सइत्ति] जो सर्वलोक में सर्व प्राणियों, भूतों जीवों और सत्त्वों के लिए क्षेमंकर होगा और भविष्य में कल्याणकर होगा। [जं सयं बुद्धस्सवि भगवओ अभिणिक्खमणत्थं देवाणं कहणं तं तेसिं देवाणं जीयकप्पं] स्वयंबुद्ध भगवान को प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए देवों का जो कथन है वह उनका जीतकल्प है—परम्परागत आचार है।

[तयाणं समणे भगवं महावीरे संवच्छरदाणं दलइ] उसके बाद भगवान महावीर वर्षीदान देने लगे [तं जहा—पुव्वं सूराओ जाव जामं अट्ठ सयसहस्साहियं एगं कोडिं एगदिवसेणं दलइ] वह इस प्रकार—सूर्योदय से पहले एक प्रहर दिन तक एक

भगवतः संवत्सर-दानपूर्वक निष्क्रमण वर्णनम्

करोड आठ लाख स्वर्णमुद्राएँ एक दिन में दान देते थे [एवं एगम्मि संवच्छरे तिण्णि कोडीसयाइं अट्ठासीई कोडिओ असीइ सयसहस्साइं सुवण्णमुद्दाणं भगवया दिण्णाइं] इस प्रकार एक वर्ष में, तीन सौ अठासी करोड, अस्सीलाख सुवर्ण मुद्राओं का भगवान ने दान दिया [तएणं] तत्पश्चात् [से णंदिवद्धणे राया] वह नंदिवर्धन राजा [भगवं कहइ] भगवान् को प्रार्थना करके कहने लगे [भवं] आप [एगदिवसमेत्तं] एक दिवस भी [रज्जं करीअ] राज्य करके [तओ पच्छा] उसके पीछे [णिक्खमणं करेइ] निष्क्रमण करना योग्य है [तं सोच्चा] नंदिवर्धन राजा का इस वचन को सुनकर [भगवं] भगवान [मौणभावमवलम्बिय चिट्ठइ] मौन रहे [तओ पच्छा] भगवान को मौन देखकर नंदिवर्धनने [भगवं राजाभिसएण] बडे समारोह के साथ भगवान का राज्याभिषेक करके [रज्जे ठावेइ] राज्य में स्थापित किया [तओ] तत्पश्चात् [णंदिवड्ढणे राया] नंदिवर्धन राजा [भगवं पुच्छिय] भगवान को पूछने लगे [भाया किं दलयामो] हे भाई आपको

क्या देवें [किं पयच्छामो] क्या अर्पित करे [किं वा ते हियइच्छिए सामत्थे] आपके हृदय में क्या प्रिय है? [तएणं भगवं एवं वयासी] तब भगवान ने ऐसा कहा [इच्छमि णं भाया] हे भ्रात मैं इच्छता हूं [कुत्तियावणाओ] कुत्तियावण की दुकान से [रयहरणं पडिग्गहणं च उवणेह] रजोहरण एवं पात्रादि लाकर मुझे दे [कासवं च सद्दावेह] एवं नाइको भी बुलावो [तए णं से नंदिवद्धणे राया भगवओ अभिनिक्खमणमहोच्छवं करेइ] उसके बाद नन्दिवर्द्धन राजा ने भगवान का अभिनिष्क्रमण महोत्सव किया ॥३७॥

अर्थ—'तेणं कालेणं' इत्यादि। उस काल और उस समय में अर्थात् प्रथम वर्ष बीत जाने पर और दूसरा वर्ष प्रारंभ होने पर सपरिवार लोकान्तिक देवों के आसन चलायमान हुए। आसनों के चलायमान होने के अनन्तर लोकान्तिक देव भगवान की प्रव्रज्या की इच्छा को अवधिज्ञान से जानकर भगवान के समीप उपस्थित हुए। आकाश में स्थित होकर भगवान् वीर प्रभु को वन्दना—नमस्कार करते हुए वे इस प्रकार बोले-

प्रभो ! आप की जय हो, जय हो, (आप पुनः पुनः सर्वोत्कृष्ट होकर वर्ते)। हे त्रिलोकी नाथ ! आप बोध प्राप्त कीजिये तथा जगत् के एकेन्द्रिय आदि सभी प्राणियों की रक्षा के लिए और दया के लिये धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति कीजिये। अर्थात् मरनेवाले एकेन्द्रिय आदि प्राणियों की रक्षा के लिए 'मा हन, मा हन' अर्थात् 'मत मारो, मत मारो' ऐसा, तथा 'दया करो, करुणा करो' ऐसा उपदेश कीजिये। यह धर्मतीर्थ समस्त लोक में द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय रूप प्राणियों को, भूतों (वनस्पतियों) को, जीवों (पंचेन्द्रियों) को तथा सत्वों (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय) को कल्याणकारी है और भविष्य में भी कल्याणकारी होगा।

इस प्रकार स्वयं बोध को प्राप्त भगवान को दीक्षा ग्रहण करने के लिए लोकान्तिक देवों का जो कहना है, सो उनका जितकल्प (परंपरागत आचारमात्र) ही है। तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने वर्षीदान देना प्रारंभ किया। वह इस प्रकार सूर्योदय के

पहले से आरंभ करके एक प्रहर-पर्यन्त एक करोड आठ लाख सुवर्ण मुद्राएँ प्रतिदिन देते थे। इस प्रकार सबका जोड करने से एक वर्ष में तीन अरब, अठासी करोड, अस्सी लाख स्वर्णमुद्राएँ दी। तत्पश्चात् नन्दिवर्धन राजा ने भगवान् श्री महावीर की दीक्षा महोत्सव का प्रारंभ किया ॥३७॥

मूलम्—तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अभिनिक्खमणनिच्छयं जाणेत्ता सक्कप्पमुहा चउसट्ठी वि इंदा भवणवइ वाणमंतर जोइसिय विमाणवासिणो देवा य देवीओ य सएहिं सएहिं परिवारेहिं परिवुडा सईयाहिं सईयाहिं इड्ढीहिं समागया। तं समयं जहा कुसुमियं वणसंडे, सरयकाले जहा पउमसरो पउमभरेणं जहा वा सिद्धत्थवणं कणियारवणं, चंपयवणं कुसुमभरेणं सोहइ तहा गगणतलं सुरगणेहिं सोहइ ॥३८॥

शब्दार्थ—[तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अभिनिक्खमणनिच्छयं जाणेत्ता] तब श्रमण भगवान महावीर के अभिनिष्क्रमण का निश्चय जानकर [सक्कप्पमुहा चउसट्ठी वि इंदा भवणवइ वाणमंतरजोइसिय—विमाणवासिणो देवा य] शक्र आदि चौसठ इन्द्र, भवनपति, व्यंतर ज्योतिष्कविमानवासी देव देवियां [सएहिं सएहिं परिवारेहिं परिवुडा सईयाहिं सईयाहिं इड्ढीहिं समागया] अपने अपने परिवारों सहित और अपनी-अपनी ऋद्धि के साथ आये [तं समयं जहा कुसुमियं वणसंडं सरयकाले जहा पउमसरो] उस समय आकाश सुरगणों से ऐसा सुशोभित हुआ, जैसे शरदृऋतु में पद्मसरोवर कमलों से शोभायमान होता है [पउमभरेणं जहा वा सिद्धत्थवणं, कणियारवणं चंपयवणं कुसुमभरेणं सोहइ तहा गगणतलं सुरगणेहिं सोहइ] अथवा जैसे सिद्धार्थवन, कर्णिकावन एवं चंपकवन कुसुमों के भार से शोभायमान होता है ऐसा ही आकाश, देवगणों से शोभने लगा ॥३८॥

अर्थ—तब श्रमण भगवान महावीर के दीक्षा अंगीकार करने के निश्चय को जानकर

शक्र आदि चौसठ इन्द्र भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक, विमानवासी देव तथा देवियां अपने अपने परिवारों से युक्त तथा अपनी–अपनी विमान आदि विभूति के साथ आये। उस समय जैसे पुष्पित वनषंड तथा शरदृऋतु में कमलयुक्त सरोवर अथवा सरसों का वन, कनेर का वन एवं चम्पा का वन पुष्पों के समूह से शोभित होता है उसी प्रकार आकाशमंडल सुरसमूहों से शोभायमान हुआ ॥३८॥

मूलम्–तए णं ते चउसट्ठि वि इंदा देवा य देवीओ य वरपडहभेरिझल्लरि-संखेहिं सयसहस्सेहिं तूरेहिं तयवितयघणझुसिरेहिं चउव्विहेहिं आउज्जेहि य वज्जमाणेहिं आणट्टगसएहिं णट्टिज्जमाणेहिं सव्व दिव्वतुडियसद्दनिनाएणं महया रवेणं महइए विभूईए महया य हिययोल्लासेणं महं तित्थयरनिक्खमणमहं करिउ-मारभिंसु तं जहा-सक्के देविंदे देवराया करितुरगाइ णाणाविह चित्तचित्तियं हारद्ध-

हाराइ भूसणं भूसियं मुत्ताहलपयरजालविवद्धमाणसोहं आल्हायणिज्जं पउमकय-भत्तिचित्तं णाणाविहरयणमणिमऊखसिहाविचित्तं णाणावण्णघंटापडागपरिमंडिय-ग्गसिहरं मज्झट्ठियसपायपीढसीहासणं एगं महं पुरिससहस्सवाहिणिं चंदप्पहं सिबियं विउव्वइ, विउव्वित्ता जेणेव समणे भयवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं–पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता परिहिय बहुमुल्लाभरणखोमयवत्थं भगवं तित्थयरं सिबियाए निसियावेइ।

तए णं सक्कीसाणा दो वि इंदा दोहिं पासेहिं मणिरयणखइयदंडाहिं चामराहिं भवयं वीयंति। तए णं तं सिबियं पुव्वं पुलइय रोमकूवा हरिसवसविसप्पमाणहियया मणुस्सा उव्वहंति, पच्छा असुरिंदा सुरिंदा णागिंदा सुवण्णिंदा य

उव्वहंति तत्थ तं सिवियं पुव्वदिसाए सुरिंदा, दाहिणाए दिसाए नागिंदा, पच्छिमदिसाए असुरकुमारिंदा उत्तरदिसाए सुवण्णकुमारिंदा उव्वहंति ॥३९॥

इन्द्रादि-देवैः कृत निष्क्रमण महोत्सवः

शब्दार्थ—[तए णं ते चउसट्ठी वि इंदा देवा य देवीओ य] तत्पश्चात् उन चौसठ इन्द्रों ने, देवों ने और देवियों ने भगवान महावीर का दीक्षा महोत्सव मनाना आरंभ किया। [वरपडहभेरिझल्लरिसंखेहिं सयसहस्सेहिं तूरेहिं तयवितयघणझुसिरेहिं चउव्विहेहिं आउज्जेहिं य वज्जमाणेहिं] बडे बडे ढोल बजने लगे, भेरियां बजने लगी, झालरों और शंखों की ध्वनि होने लगी। लाखों मृदंग आदि वाद्य बजने लगे। वीणा आदि तत पटह आदि वितत कांसे के ताल आदि घण, और बांसुरी आदि शुषिर, इस प्रकार चार प्रकार के वाद्य बज उठे [आणट्टगसएहिं णट्टिज्जमाणेहिं] उत्तम उत्तम सैकडों नर्तक नाटय करने लगे [सव्वदिव्वतुडियसद्दनिनाएणं] समस्त दिव्य बाजों के शब्दों की ध्वनि से [महया रवेणं] महान् शब्दों से [महईए विभूईए महया य हिय-

योल्लासेणं] महती सम्पत्ति से, महती विभूति से तथा महान् हार्दिक उल्लास से [महं तित्थयरनिक्खमणमहं करिउ मारभिंसु, तं जहा–] सभी ने तीर्थंकर भगवान का महान् दीक्षा महोत्सव करना आरंभ किया–वह इस प्रकार–

[सक्के देविंदे देवराया करितुरगाइ णाणाविहचित्तचित्तियं] शक्र देवेन्द्र देवराज ने हाथी, घोडा आदि अनेक प्रकार के चित्रों से चित्रित [हारद्धहाराइभूसणभूसियं] हार और अर्धहार आदि आभूषणों से आभूषित [मुत्ताहलपयरजालविवद्धमाणसोहं] मोतियों के समूहों के जालों [गवाक्षों] से शोभित [आल्हायणिज्जं पल्हायणिज्जं] चित्त में आनन्द उत्पन्न करनेवाली और आल्हादउत्पन्न करनेवाली [पउमकयभत्तिचित्तं] कमलों द्वारा की हुइ रचना से अद्भूत [नाणाविह रयणमणिमऊखसिहाविचित्तं] अनेक प्रकार के रत्नों और मणियों की किरणों से जगमगाती हुइ [णाणावण्णघंटापडागपरिमंडियग्ग-सिहरं] विविध रंगों के घण्टाओं और पताकाओं से जिसका शिखर शोभित हो रहा है

ऐसी तथा [मज्झट्ठियसपायपीठसीहासणं] जिस के मध्य में पादपीठ से युक्त सिंहासन रचा गया है ऐसी [एगं महं पुरिससहस्सवाहिणिं चंदप्पहं सिवियं विउव्वइ] एक बडी हजारपुरुष वाहिणी चन्द्रप्रभा नामकी शिबिका की विकुर्वणा की [विउव्वित्ता] विकुर्वणा करके [जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता] जहां श्रमण भगवान महावीर थे वहीं शक्र आये। आकर [समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता] तीन बार आदक्षिण–प्रदक्षिणपूर्वक श्रमण भगवान् महावीर को [वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता] वन्दना की नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके [परिहियबहुमुल्लाभरणखोमयवत्थं भयवं तित्थयरं सिवियाए निसियावेइ] बहुमूल्य आभरण और क्षोमवस्त्र धारण किये हुए भगवान तीर्थंकर को शिबिका में बिठलाये।

[तए णं सक्कीसाणा दो वि इंदा दोहिं पासेहिं मणिरयणखइयदंडाहि चामराहिं भयवं वीयंति] तब शक्रेन्द्र और ईशान दोनों इन्द्र दोनों बगलों में खडे होकर मणियों और

रत्नों से जडे हुए दंडवाले चामर भगवान पर वींजने लगे। [तए णं तं सिवियं पुव्वं पुलइयरोमकूवा हरिसवसविसप्पमाणहियया] उस शिबिका को पहले तो पुलकितरोमकूपवाले और हर्ष से विकसित हृदयवाले [मणुस्सा उव्वहंति] मनुष्य वहन करते हैं [पच्छा सुरिंदा असुरिंदणागिंदा सुवण्णिंदा य उव्वहंति] उसके बाद सुरेन्द्र असुरेन्द्र, नागेन्द्र और सुपर्णेन्द्र वहन करने लगे [तत्थ णं तं सिवियं पुव्वदिसाए सुरिंदा, दाहिणाए दिसाए नागिंदा, पच्छिमदिसाए असुरकुमारिंदा उत्तरदिसाए सुवण्णकुमारिंदा उव्वहंति] उनमें से शिबिका के पूर्व दिशा के भाग को सुरेन्द्र दक्षिण दिशा के भाग को नागेन्द्र पश्चिम दिशा के भाग को असुरकुमारेन्द्र एवं उत्तर दिशा के भाग को सुपर्णकुमारेन्द्र वहन करते हैं ॥३९॥

अर्थ—देवों के आने के पश्चात् उन चौसठ इन्द्रों ने, देवों ने और देवियों ने भगवान् महावीर का दीक्षा महोत्सव मनाना आरंभ किया। बडे बडे ढोल बजने लगे भेरियों

इन्द्रादि-देवैः कृत निष्क्रमण महोत्सवः

बजने लगीं झालरों और शंखों की ध्वनि होने लगी। लाखों मृदंग आदि वाद्य बजने लगे। वीणा आदि तत, पटह आदि वितत, कांसे के ताल आदि घन और बांसुरी आदि शुषिर, इस प्रकार के वाद्य बज उठे। कहा भी हैं–

'ततं वीणादिकं ज्ञेयं विततं पटहादिकम्।
घनं तु कांस्यतालादि, वंशादि शुषिरं मतम् ॥१॥इति॥

वीणा आदि को तत, पटह (ढोल) आदि को वितत, कांसे के ताल आदि को घन और बांसुरी आदि को शुषिर माना गया है ॥१॥

उत्तम–उत्तम सैकडों नर्तकनाट्य करने लगे। समस्त बाजों के शब्दों की ध्वनि से, महान् शब्दों से, महती सम्पत्ति से, महती विभूति से तथा महान् हार्दिक उल्लास से सभी ने तीर्थंकर का महान् दीक्षामहोत्सव करना आरंभ किया। वह इस प्रकार–शक्र देवेन्द्र देवराज ने शिबिका (पालकी) की विकुर्वणा की, अर्थात् वैक्रियशक्ति से ॥१६६॥

पालकी का निर्माण किया। वह पालकी कैसी थी, सो कहते हैं-हाथी घोडे आदि के बहुत प्रकार के चित्रों से युक्त थी। हार (अठारह लडों का), अर्द्धहार (नौ लडों का) आदि भूषणों से भूषित थी। मोतियों के समूहों के जालों (गवाक्षों) से उसकी शोभा बढ रही थी। चित्त में आनन्द उत्पन्न करने वाली और अतिशय मानसिक आह्लाद उत्पन्न करने वाली थी। कमलों द्वारा की गई रचना से अनुपम थी। अनेक प्रकार के कर्केतन आदि रत्नों तथा वैडूर्य आदि मणियों की किरणों की दीप्ति से जगमगी रही थी। विविध रंगों के घंटाओं और पताकाओं से उसके शिखर का अग्रभाग सुशोभित था। उसके बीच में पादपीठ सहित सिंहासन रक्खा था। इस प्रकार की एक बडी हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य चन्द्रप्रभा नामकी शिबिका वैक्रियशक्ति से उत्पन्न की।

शिबिका की विकुर्वणा करके शक्रेन्द्र जिस जगह श्रमण भगवान महावीर थे, उसी जगह आये। आकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण पूर्वक

वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके महा मूल्यवान् क्षौम वस्त्रों को धारण किये हुए भगवान् तीर्थंकर को शिबिका में बिठलाये। तत्पश्चात् शक्र और ईशान यह दोनों इन्द्र भगवान के दाहिने बांये पार्श्व–भाग में (खडे होकर) मणियों और रत्नों के डंडो वाले चामर भगवान् श्री वीर स्वामी पर बींजने लगे। तदनन्तर श्री वीर भगवान् जिसमें विराजमान थे, उस पालकी को पहले रोमांचित और हर्ष के वश उल्लसित हृदयवाले मनुष्योंने उठाया। बाद में वैमानिकों के इन्द्र, सौधर्म, चमर और बलि नामक असुरेन्द्र, धरण और भूतानन्द नामक नागकुमारेन्द्र, वेणुदेव और वेणुदालि नामक सुवर्णकुमारेन्द्र–ये छह भवनपतियों के इन्द्र क्रमशः वहन करने लगे। शिबिका को वहन करने वाले सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों, नागकुमारेन्द्रों तथा सुवर्णकुमारेन्द्रों में से सुरेन्द्र सौधर्मादि उस वीराधिष्ठित शिबिका को पूर्व दिशा की तरफ से वहन किये, भूतानन्द नामक नागकुमारेन्द्रो पश्चिम दिशा की तरफ से, धरण और असुरेन्द्र चमर

इन्द्रादि-
देवैः कृत
निष्क्रमण
महोत्सवः

बलि दक्षिण की तरफ से वहन किये और वेणुदेव तथा वेणुदालि नामक दोनों सुवर्ण-कुमारेन्द्र उत्तर की ओर से वहन करते हैं ॥३९॥



मूलम्—तए णं ते मणुया सुरिंदा असुरकुमारिंदा णागकुमारिंदा सुवण्ण-कुमारिंदा य तं सिबियं उव्वहमाणा उत्तरखत्तियकुंडपुरसन्निवेसस्स मज्झं-मज्झेण निग्गच्छंति निग्गच्छित्ता जेणेव णायसंडे उज्जाणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता ईसिरयणिप्पमाणं अच्छोप्पेणं भूमिभागेणं सणियं सणियं पुरिससहस्सवाहिणिं चंदप्पहं सिबियं ठवेंति। तए णं समणे भगवं महावीरे ताओ सिबियाओ सणियं सणियं पच्चोयरइ, पच्चोयरित्ता सीहासणवरे पुव्वाभिमुहे संनिसण्णे। तओ पच्छा उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हारद्धहाराइयं, सव्वालंकारं ओमुयइ। तए णं वेसमणे देवे जंतुवायपडिए समणस्स

भगवओ महावीरस्स हंसलक्खणे सेयवत्थे आभरणालंकाराइं पडिच्छइ ॥४०॥

शब्दार्थ—[तए णं ते मणुया सुरिंदा असुरकुमारिंदा णागकुमारिंदा सुवण्णकुमारिंदा य तं सिबियं] उसके बाद वे मनुष्य-सुरेन्द्र, दोनों असुरेन्द्र, दोनों नागकुमारेन्द्र और दोनों सुपर्णकुमारेन्द्र उस शिबिका को [उव्वहमाणा उत्तरखत्तियकुंडपुरसन्निवेसस्स मज्झं मज्झेण निग्गच्छंति निग्गच्छित्ता] वहन करते हुए उत्तरक्षत्रियकुण्डपुर संन्निवेश के बीचोंबीच से निकले। निकलकर [जेणेव णायसंडे उज्जाणे तेणेव उवागच्छंति] जहां ज्ञातखण्ड उद्यान था वहां पहुंचे [उवागच्छित्ता ईसि रयणिप्पमाणं अच्छोप्पेणं भूमिभागेणं सणियं सणियं] पहुंचकर उन्होंने एक हाथ से कुछ कम धरती के ऊपर धीरे धीरे [पुरिससहस्सवाहिणिं चंदप्पहं सिबियं ठवेंति] पुरुष सहस्रवाहिणी चन्द्रप्रभा शिबिका को स्थापित किया [तए णं समणे भगवं महावीरे ताओ सिबियाओ सणियं सणियं पच्चोयरइ] तब श्रमण भगवान महावीर उस शिबिका से धीरे-धीरे नीचे उतरे

सुरेन्द्रादीनां शिबिकावहनम्

[पच्चोयरित्ता सीहासणवरे पुव्वाभिमुहे संनिसण्णे] उतरकर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व की और मुख करके विराजे [तओ पच्छा उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए उवागच्छइ] तदनन्तर भगवान उत्तर पूर्वदिशा–ईशानकोण में जाते हैं। [उवागच्छित्ता हारद्धहाराइयं सव्वालंकारं ओमुयइ] जाकर हार, अर्द्धहार आदि समस्त अलंकारों को उतारने लगे [तए णं वेसमणे देवे जंतुवायपडिए समणस्स भगवओ महावीरस्स हंसलक्खणे सेयवत्थे आभरणालंकाराइं पडिच्छइ] तब वैश्रमण देव उडते जंतु की तरह अचानक आ पहुंचे और उन्होंने हंस के समान उजले श्वेत वस्त्र में उन अलंकारों को ले लिये ॥४०॥

अर्थ—तत्पश्चात् वे मनुष्य, सुरेन्द्र, दोनों असुरकुमारेन्द्र, दोनों नागकुमारेन्द्र, एवं दोनों सुपर्णकुमारेन्द्र श्री वीर भगवान् द्वारा आश्रित पालकी को वहन करते–कंधों पर धारण करते हुए उत्तरक्षत्रिय कुण्डपुर नगर के बीचोंबीच होकर निकले। निकल कर जहां ज्ञातखण्ड नामक उद्यान था, वहीं आये। आकर के एक हाथ से कुछ

पसूत्रे
न्दार्थे
७२॥

कम ऊपर–अधर में, धीरे–धीरे, उस पुरुषसहस्रवाहिनी (हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य) चन्द्रप्रभा नामक पालकी को ठहराया। तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर उस शिविका में से धीरे धीरे उतरे। उतर कर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्वदिशा में मुख करके विराजमान हुए। तत्पश्चात् भगवान वीर प्रभु उत्तर-पूर्व दिशा के अन्तराल में ईशानकोण में पधारे। पधारकर हार, अर्धहार आदि समस्त अलंकारों को उतारने लगे। तब वैश्रवण देव उडते जन्तु की तरह अचानक आपहुंचे और उन्होंने हंस के समान उजले श्वेत वस्त्र में उन अलंकारों को ले लिये ॥४०॥

सुरेन्द्रादीनां शिविका वहनम्

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं जेसे हेमंताणं पढमे मासे पढमे पक्खे मग्गसिरबहुले, तस्स णं मग्गसिरबहुलस्स दसमीए तिहीए सुव्वएणं दिवसेणं, विजएणं मुहुत्तेणं, हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं चंदेणं जोगमुवगएणं पाईण गामिणिए छायाए बियत्ताए पोरिसीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं भगवं महावीरे दाहिणेणं

हत्थेणं दाहिणे, वामेणं हत्थेणं वामं, पंचमुट्ठियं लोयं करेइ तओ सग्गाहिवे देविंदे देवराया भगवं सदोरयमुहपत्तिं रयहरणं गोच्छगं पडिग्गयं देवदूसं वत्थं पडिग्गाहियं च पडिच्छइ। तओ साहुवेसं गहिय सिद्धाणं नमोक्कारं करेइ, करित्ता 'सव्वं मे अकरणिज्जं पावकम्मं' त्ति कट्टु सीहवित्तीए सामाइयं चरित्तं पडिवज्जइ। तं समयं च णं देवासुरपरिसामणुयपरिसा य आलेक्खचित्तभूयाविव चिट्ठइ। तए णं से सक्के देविंदे देवराया जंतुवायपडिए समणस्स भगवओ महावीरस्स केसाइं वयरामएणं थालेणं पडिच्छइ, जं समयं च णं भयवं सामाइयं चरित्तं पडिवज्जइ तं समयं च णं भगवओ वद्धमाणस्स चउत्थे मणपज्जवनाणे समुप्पण्णे। तेल्लुकं पयासियं।

तए णं सक्कप्पमुहा चउसट्ठी वि इंदा सव्वे देवा य देवीओ य भगवं 'जयउ

भगवतः सर्वालङ्कार-त्यागपूर्वकं सामायिक चारित्र-प्रतिपत्तिः

भयवं! पालउ समणं धम्मं, नासउ सुक्कज्झाणेणं अट्ठविहकम्मसत्तू, पराजयउ-रागद्दोसमल्लं, आरोहउ मोक्खसोहं' इच्चाइ रूवेण अभिणंदमाणा अभिणंदमाणा अभिथुणमाणा अभिथुणमाणा आगासे जयज्झुणि कुणमाणा २ जामेव-दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया। तए णं समणं भगवं महावीरे मित्त-णाइणियगसयणसंबंधिपरियणं पडिविसज्जेइ, सयं च इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ—'जमहं बारसवासाइं वोसट्ठकाए चत्तदेहे जे केइ दिव्वा वा मणुस्सा वा तेरिच्छिया वा उवसग्गा समुप्पज्जिस्संति तं सम्मं सहिस्सामि खमिस्सामि तितिक्खिस्सामि अहियाइस्सामि नो णं कस्सवि साइज्जं इच्छिस्सामि' त्ति ॥४१॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं तेणं समएणं] उस काल और उस समय में [जे से हेमंताणं पढमे मासे पढमे पक्खे मग्गसिरबहुले] जो हेमन्त का प्रथम मास था, प्रथम

भगवतः सर्वालङ्कार-त्यागपूर्वकं सामायिक चारित्र-प्रतिपत्तिः

पखवाडा (पक्ष) था अर्थात् मार्गशीर्ष का कृष्णपक्ष था [तस्स णं मग्गसिरबहुलस्स दसमीए तिहीए सुव्वएणं दिवसेणं] उस मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष की दसमी तिथि में सुव्रत दिन में [विजएणं मुहुत्तेणं] विजय मुहूर्त्त में [हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं] उत्तराफाल्गुणी नक्षत्र के साथ [चंदेण जोगमुवगएणं पाइणगामिणीए छायाए वियत्ताए] चन्द्रमा का योग होने पर छाया जब पूर्व की ओर जा रही थी [पोरसीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं भगवं महावीरे] और जब दिन का एक प्रहर शेष रह गया था, ऐसे समय में, निर्जल षष्ठ भक्त (चोवीहार बेला) के साथ भगवान महावीर ने [दाहिणेणं हत्थेणं दाहिणं वामेणं हत्थेणं वामं पंचमुट्ठियलोयं करेइ] दाहिने हाथ से दाहिणी तरफ का और बायं हाथ से बांयी तरफ का पंचमुष्टिक लोच किया [तओ सग्गाहिवे देविंदे देवराया] तब स्वर्ग का अधिपति देवेन्द्र देवराज ने [भगवं] भगवान को [सदोरयमुहपत्तिं] सदोरकमुखवस्त्रिका [रयहरणं] रजोहरण [गोच्छगं] गोछा [पडिग्गयं] पात्रा एवं [देवदूसं वत्थं] देवदूष्यवस्त्र

भगवतः सर्वालङ्कारत्यागपूर्वकं सामायिकचारित्रप्रतिपत्तिः

[पडिच्छइ] दिया [तओ साहुवेसं गहिय] तत्पश्चात् भगवान के साधुवेष ग्रहण करने से एक अंतमुहूर्त्तपर्यन्त तीनों लोकों में प्रकाश हुवा तत्पश्चात् भगवान श्रीने [सिद्धाणं णमोक्कारं करेइ] श्रीसिद्ध भगवान् को नमस्कार किया [करित्ता सव्वं मे अकरणिज्जं पावकम्मं त्तिकट्टु] नमस्कार करके 'मेरे लिए समस्त पापकर्म अकरणीय है' इस प्रकार कह कर [सीहवित्तीए सामाइयं चरित्तं पडिवज्जइ] सिंहवृत्ति से सामायिक चारित्र अंगीकार किया [तं समयं च णं देवासुरपरिसा मणुयपरिसा य आलेक्खचित्तभूयाविव चिट्ठइ] उस समय देवों की परिषद्, और मनुष्यों की परिषद् चित्रलिखित के समान रह गई [तएणं से सक्के देविंदे देवराया जंतुवायपडिए समणस्स महावीरस्स केसाइं वयरामएणं थालेणं पडिच्छइ] तब वह शक्र देवेन्द्र देवराज अचानक आकर श्रमण भगवान महावीर के केशों को वज्ररत्नमय थाल में लिये और [जं समयं च णं भयवं सामाइयं चरित्तं पडिवज्जइ तं समयं च णं भगवओ वद्धमाणस्स चउत्थे मणपज्जवनाणे समुप्पण्णे] जिस

भगवतः सर्वालङ्कार-त्यागपूर्वकं सामायिक चारित्र-प्रतिपत्तिः

समय भगवान ने सामाइक चारित्र अंगीकार किया उसी समय भगवान वर्द्धमानस्वामी को चौथा मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हो गया, [तिल्लुकं पयासियं] तीनों लोक प्रकाशित हुए।

[तएणं सक्कप्पमुहा चउसट्ठी वि इंदा सव्वे देवा य देवीओ य भगवं] तत्पश्चात् शक्र वगैरह चौसठ इन्द्र सब देव और देवियां भगवान का अभिनन्दन करते हुए कहने लगे [जयउ भयवं ! पालउ समणधम्मं] भगवन् ! जयवंता हों, श्रमणधर्म का पालन करें [नासउ सुक्कज्झाणेण अट्ठविह कम्मसत्तू] शुक्लध्यान से आठ प्रकार के कर्मशत्रुओं का विनाश करें [पराजयउ रागद्दोसमल्लं] रागद्वेषरूपी मल्लों का पराजय करें [आरोहउ मोक्खसोहं] मुक्ति–महल पर आरोहण कीजिए [इच्चाइरूवेण अभिणंदमाणा अभिणंदमाणा अभिथुणमाणा अभिथुणमाणा आगासे जयज्झुणिं कुणमाणा २ जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया] इस प्रकार बारबार अभिनन्दन एवं स्तुति करते हुए और बारबार जयनाद करते हुए जिस दिशा से प्रकट हुए थे उसी दिशा में चले गये

भगवतः
सर्वालङ्कार-
त्यागपूर्वकं
सामायिक
चारित्र-
प्रतिपत्तिः

[तएणं समणे भगवं महावीरे मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरियणं पडिविसज्जेइ] तब श्रमण भगवान महावीर ने मित्रो, ज्ञातिजनों, निजजनों, संबंधिजनों और परिजनों का विसर्जन किया [सयं च इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ] और स्वयं ने इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण किया [जमहं वारसवासाइं वोसट्ठकाए चत्तदेहे जे केइ दिव्वा वा माणुस्सा वा तेरिच्छिया वा उवसग्गा समुप्पज्जिस्संति] मैं बारह वर्ष पर्यन्त कायोत्सर्ग करके, देहममत्व का परित्याग करके, जो भी कोई देव सम्बन्धी, मनुष्यसम्बन्धी और तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग उत्पन्न होंगे [तं सम्मं सहिस्सामि खमिस्सामि तितिक्खिस्सामि अहियाइस्सामि नो णं कस्स वि साइज्जं इच्छिस्सामि त्ति] उन्हें सम्यक् प्रकार से सहन करूंगा, क्षमा करूंगा, तितिक्षा करूंगा निश्चल रहूंगा। मैं किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं करूंगा ॥४१॥

अर्थ—'तेणं कालेणं' उस काल उस समय में जो प्रसिद्ध हेमन्तऋतु के चार

मासों में प्रथम मास मार्गशीर्ष था, प्रथम पक्ष–मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष था, उस मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष की दशमी तिथिमें, सुव्रत नामक दिन में, विजया नामक मुहूर्त्त में हस्तनक्षत्र से उपलक्षित उत्तरा नक्षत्र अर्थात् उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर, छाया जब पूर्व दिशा की ओर जा रही थी, अर्थात् अपराह्न के समय में, एक प्रहर जब शेष था, अर्थात् दिन के चौथे प्रहर में, जलपान–रहित (चौवीहार) षष्ठभक्त के साथ, भगवान् महावीर ने दाहिने हाथ से दाहिनी ओर का और बांयें हाथ से बांयी तरफ का पंचमुष्टिक लोच किया। तब स्वर्ग के अधिपति देवेन्द्र देवराजने भगवान को सदोरक-मुखवस्त्रिका, रजोहरण, गोछा और देवदूष्यवस्त्र अर्पण किया तदनन्तर भगवान ने साधुवेष धारण किया साधुवेष ग्रहण करने से एक अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त तीनों लोक में प्रकाश हुआ, भगवान्ने साधुवेष ग्रहण करके सिद्धों को नमस्कार किया। नमस्कार करके 'मेरे लिए समस्त प्राणातिपात आदि पाप–सावद्यकर्म अकर्तव्य हैं, इस प्रकार ज्ञ–परिज्ञा से जान-

भगवतः सर्वालङ्कार-त्यागपूर्वकं सामायिक-चारित्र-प्रतिपत्तिः

कर और प्रत्याख्यान–परिज्ञा से त्यागकर सिंहवृत्ति से सामायिक चारित्र अंगीकार किया। उस समय देवों और असुरों का समूह तथा मनुष्यों का समूह चित्रलिखित के समान स्तब्ध रह गया। श्री वीर प्रभु के चारित्र–ग्रहण के पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराज अचानक ही आ पहुंचे और उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर के केशों को हीरे के थाल में ले लिये। जिस समय भगवान् ने सामायिक चारित्र को अंगीकार किया, उसी समय भगवान् वर्धमान को चौथा, अर्थात् मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल रूप पांच ज्ञानों में से चौथा मनः पर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया।

भगवतः सर्वालङ्कार-त्यागपूर्वकं सामायिक चारित्र-प्रतिपत्तिः

तब शक्र आदि चौसठ इन्द्र सभी देव और देवियाँ श्री वीर प्रभु का इस प्रकार अभिनन्दन करने लगे–'भगवान् सर्वोत्कृष्ट होकर वर्तें। साधु धर्म का पालन कीजिए, आठ प्रकार के कर्मरिपुओं के शुक्ल ध्यान से दूर कीजिए, रागद्वेष रूपी मल्लों का मान-मर्दन कीजिए, मुक्तिमहल पर आरोहण कीजिए।' इत्यादि रूप से चित्तोत्साहजनक

वचनों से पुनः पुनः अभिनन्दन तथा स्तवन करते हुए, आकाश में जय-जयकार करते हुए, जिस दिशा से प्रकट हुए थे उसी दिशा में चले गये ।

शक्र आदि के चले जाने के पश्चात् श्रवण भगवान महावीर ने मित्रजनों, सजातियों, निजजनों (पुत्रादिकों) स्वजनों (काका आदि को), संबंधीजनों, (पुत्र-पुत्री आदि के श्वसुर आदि नातेदारों) तथा परिजनों (दासीदास-वगैरह) को विसर्जित किया और स्वयं इस प्रकार का अभिग्रह-नियम ग्रहण किया-'मैं बारह वर्षों तक कायोत्सर्ग किये, देहममत्व का त्याग किये, देवों संबंधी, मनुष्यों सम्बंधी अथवा तिर्यंचों संबंधी जो भी उपसर्ग उत्पन्न होंगे उन उत्पन्न हुए उपसर्गों को मानसिक दृढता के साथ निर्भय भाव से सहन करूंगा, विना क्रोध के क्षमा करूंगा, अदीन भाव से सहन करूंगा, और निश्चल रहकर सहन करूँगा। उन उपसर्गों के सहन करने आदि में किसी देव या मनुष्य की सहायता की अभिलाषा भी नहीं करूँगा ॥४१॥

भगवतः सर्वालङ्कार-त्यागपूर्वकं सामायिक चारित्र-प्रतिपत्तिः

मूलम्—तए णं समणे भगवं महावीरे इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हित्ता वोसट्ठकाए चत्तदेहे मुहुत्तसेसे दिवसे कुम्मारग्गामं पट्ठिए। तए णं सिरिवद्धमाणसामी जाव नयनपहगामी आसी ताव णंदिवद्धणपमुहा उम्मुहा जणा निय नियलोयणपुडेहिं पहुदरिसणामयं पिबमाणा पहरिसमाणा आसी। अह य पहू जहा तहा दिट्ठिसरणिओ विप्पकिट्ठो जाओ तहा तहा दारिद्दाणं विव सव्वेसिं सोकरिसहरिसो पणट्ठुमारभीअ, गिम्हकालम्मि सरोवराणं जलमिव हरिसोल्लासो सोसिउ मुवाकमीअ, वारिविरहेण पफुल्लं कमलकुलं विव सव्वेसिं हिययदुस्सहेण पहुविरहेण मलिणं जायं, तमुज्जीविउ पवत्तो सोंडीरो सीयलमंदसुगंधिसमीरो वि भुयंगमसासायइ, पुव्वं जाओ तद्दिक्खमहोच्छवणंदणवणे तद्दरिसणकप्पतरूतले इट्ठसिद्धीए आणंदलहरीओ जायाओ ताओ सव्वाओ

पहुविरहवडवाणलम्मि पणट्ठाओ। पहुस्स दुस्सहो विरहो चंदविरहो चगोरमिव, हिययनिखायं सल्लमिव अखिले जणे वहिए करीअ। परिओ वित्थरिएण फारेण पहुविरहंधयारेण आययलोयणेसु समाणेसु वि तत्थट्ठिया जणा अनयणा जाया, पाइणा समीईणा पहुपगासणवीणा तत्थच्चा सोहा निव्वाण दीवगिहसोहेव नासीअ। पहुम्मि विरहिए समाणे पयंसि गलिए नईपुलिणमिव, रसे गलिए दलमिव जणमणो मलिणो संजाओ, जणनयणाओ फारा वारिधारा पाउसम्मि वुट्ठि धाराविव वहिउमारभीअ, पहुवरग्गओ अरिमद्दणो नंदिवद्धणो नरिंदो पक्खलंताऽऽभरणो पडंतपसूणसमूहो छिण्णाणोगहो विव विगयचेयणो अवणियले सव्वंगेण घसत्तिपडिओ, तं दट्ठूणं सव्वे सामंतप्पभियओ अवि सामंतओ अवणियले निवडिया। तए णं विलीणचेयणो नंदिवद्धणो भूवो

कहंपि चेयणायारेण सीयलोवयारेण चेयणं णीओ अवि अईव वहिओ भवीअ, निरंतरईसिउसिणसलिलोच्छलिय धारामोयणाइं लोयणाइं पमज्जिअ पज्जदुक्ख-भायणं सयमप्पाणमेव निंदीअ धी ! धी ! अम्हाणं पावविवागं, अमू बंधुविरहो पागसासणी असणीविव अम्हे णिहणइ। एवं दुस्सहपहुविरहदुक्खेण खिण्णो पयाभिणंदणो णंदिवद्धणो राया मुत्तकंठमाकंदीअ। अस्सा हत्थिण्णोवि अस्सूइं पमुंचमाणा अत्थोगसोगमाइणो भवीअ। तयाणिं णच्चमूरेहि मऊरेहि वि नच्चं विसरियं, विडविणो कुसुमाइं चईअ, काणणविहरणपरायणहरिणा उपात्ताइं तणाइं, कणभक्खिणो पक्खिणो य आहारं परिहरीअ। एवं सव्वेसु पाणिसु पहुविरहविहुरेसु सो णरवरो पहुं चेयसा चिंतमाणो तओ एवं वयासी—जत्थ तत्थ य स सघत्थ तुमं चेवावलोयए विउत्तो सित्ति तुं वीर ! दुक्खाएवाणुमिज्जइ ॥४२॥

प्रभुविरहे नन्दि-वर्धनादीनां विलाप-वर्णनम्

शब्दार्थ—[तए णं समणे भगवं महावीरे इमेयारूवे अभिग्गहं अभिगिण्हित्ता] तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर इस प्रकार के इस अभिग्रह को ग्रहण करके [वोसट्ठकाए चत्तदेहे मुहुत्तसेसे दिवसे कुम्मारग्गामं पट्ठिए] शरीर की शुश्रूषा और ममता का त्याग किये हुए एक मुहूर्त दिन शेष रहने पर कुमारग्राम की ओर विहार किया। [तएणं सिरि वद्धमाणसामी जाव नयणपहगामी आसी ताव] उसके बाद जब तक श्री वर्धमान स्वामी नयनपथगामी थे—दिखाई देते थे तब तक [णंदिवद्धणपमुहा उम्मुहा जणा णियणियभोयणपुडेहिं पहुदरिसणामयं पिबमाणा पहरिसमाणा आसी] नन्दिवर्द्धन आदि सब जन अपने अपने नयन पुटों से प्रभुदर्शन का अमृत—पान करते हुए हर्षित रहे, [अहय पहू जहा तहा दिट्ठिसरणिओ विप्पकिट्ठो जाओ तहा तहा दारिद्दाणं विव सव्वेसिं सोक्करिसहरिसो पणट्ठुमारभीअ] किन्तु प्रभु ज्यों ज्यों नजरों से ओझल होते गये त्यों-त्यों दरिद्रों के समान सबका उत्कर्षहर्ष समाप्त होने लगा [गिम्हकालम्मि सरोवराणं

जलमिव हरिसोल्लासो सोसिउ मुवाकमीअ] जैसे ग्रिष्म के समय में सरोवरों का जल सूखने लगता है, उसी प्रकार उन का हर्ष सूखने लगा। [वारिविरहेण पफुल्लं कमल-कुलं विव सव्वेसिं हिययदुस्सहेण पहुविरहेण मलिणं जायं] जैसे पानी के बिना विकसित कमल मुरझा जाता है उसी प्रकार सब का हृदय दुस्सह प्रभु विरह से मुरझाने लगा [तमुज्जीविउं पवत्तो सोंडीरो सीयलमंदसुगंधि समिरोवि भुयंगमसासायइ] उसे ताजा करने केलिये प्रवृत्त हुआ चतुर पवन शीतलमंद और सुगन्धित होने पर भी सांप के श्वास के समान जहरीला प्रतीत होने लगा। [पुव्वं जाओ तद्दिक्खमहोच्छवनंदणवणे तद्दरिसणकप्पतरुतले इट्ठसिद्धीए आणंदलहरिओ जायाओ] पहले भगवान् वर्धमान स्वामी के दीक्षा ग्रहण के निमित्त हुए उत्सवरूपी नन्दनवन में श्री वर्द्धमान स्वामी के दर्शनरूप कल्पवृक्ष के मूल में इष्टसिद्धि से आनन्द की जो लहरे उत्पन्न हुइ थीं [ताओ सव्वाओ पहुविरहवडवानलम्मि पणट्ठाओ] वह सब प्रभु के विरहरूप वडवानल

में भस्म हो गई। [पहुस्स दुस्सहो विरहो चंदविरहो चंगोरमिव] जैसे चन्द्रमा का वियोग चकोर को व्यथित करता है उसी प्रकार [हिययनिखायं सल्लमिव अखिले जणे वहिए करीअ] उसी प्रकार भगवान् का विरह हृदय में चुभे हुए कांटे के समान सभी जनों को व्यथित करने लगा [परिओ वित्थरिएण कारेण पहुविरहंधयारेण आययलोयणेसु समाणेसु वि तत्थट्ठिया जणा अनयणा जाया] सब ओर फैले हुए विशाल प्रभु विरह के अन्धकार के कारण दीर्घनयन होने पर भी दीक्षास्थान पर विद्यमान जन नेत्र हीन जैसे हो गये [पाईणा समीईणा पहुपगासणवीणा तत्थच्चा सोहा निव्वाणदीवसिहगिहसोहेव नासीअ] पहले की वहां की प्रभु के प्रकाश से नूतन और सलोनी शोभा उसी प्रकार नष्ट हो गई, जैसे दीपशिखा के बुझ जाने पर घर की शोभा नष्ट हो जाती है। [पहुम्मि विरहिए समाणे पयंसि गलिए नईपुलिणमिव रसे गलिए दलमिव जणमणो संजाओ] जैसे पानी के बह कर निकल जाने पर नदी का तट शोभा-

हीन हो जाता है, और जैसे रसभाग सूख जाने पर पत्ता मलिन—फीका निष्प्रभ हो जाता है, उसी प्रकार लोगों का मन फीका होगया [जणनयणाओ फारा वारिधारा पाउसम्मि वुट्टिधाराविव वहिउमारभीअ] वर्षाऋतु की पानी की धारा की तरह लोगों के आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी [पहुवरग्गजो अरिमद्दणो नंदिवद्धणो नरिंदो पक्खलंता आभरणो पडंतपसूणसमूहो छिण्णाणोगहोविव विगयचेयणो अवणियले सव्वंगेण धसत्ति पडिओ] भगवान् के भ्राता शत्रुओं के मर्दक नन्दिवर्धनराजा बेसुध होकर धडाम से सर्वांग से कटे वृक्ष की तरह धरती पर गिड पडे, उनके सभी आभूषण ऐसे गिर पडे मानो वृक्ष के फल झड गये हो [तं दट्ठूणं सव्वे सामंतप्पभियओ आवि समंतओ अवणियले निवडिया] उन्हें गिरा देखकर सभी सामन्तगण आदि भी इधर उधर धरती पर गिर पडे [तएणं विलीणो णंदिवद्धणो भूवो कहंपि चेयणायारेण सियलोवयारेण] चेयणं णीओऽवि अईव वहिओ भवीअ] उसके बाद संज्ञाहीन नन्दिवर्द्धन राजा

प्रभुविरहे नन्दिवर्धनादीनां विलापवर्णनम्

॥१८८॥

किसी प्रकार चेतना उत्पन्न करनेवाले शीतलोपचार से होश में आये भी तो अतीव व्यथा का अनुभव करने लगे [निरंतरईसिउसिणसलिलोच्छलिय धारामोयणाइं लोयणाइं पमज्जिय पज्जदुक्खभायणं सयमप्पाणमेव निंदीअ–धी ! धी ! अम्हाणं पावविवागं] अनवरत हल्के से उष्ण जल की उछलती धारा बहाने वाले नेत्रों को पोंछकर वह अतीव दुःख के पात्र अपनी आत्मा की इस प्रकार निंदा करने लगे धिक्कार है–धिक्कार है हमारे पाप के परिणाम को ! [अमू बंधुविरहो पागसासणी असणी विव अम्हे णिहणइ] यह बन्धु-वियोग इन्द्र के वज्र की तरह हमें चोट पहुँचा रहा है [एवं दुस्सह पहुविरहदुक्खेण खिण्णो पयाभिणंदणो णंदिवद्धणो राया मुत्तकंठ माकंदीअ] इस प्रकार प्रभु के दुस्सह विरह के दुख से खिन्न और प्रजा को आनन्द देने वाले नंदिवर्द्धन राजा मुक्त कण्ठ से आक्रन्दन करने लगे [अस्सा हत्थिणे अवि अस्सूइं पमुंचमाणा अत्थोगसोगमाइणो भवीअ] घोडे और हाथी आंसू बहाते हुए प्रबल शोक करने लगे [तयाणि नच्चसूरेहि मऊरेहि वि नच्चं

प्रभुविरहे नन्दिवर्धनादीनां विलापवर्णनम्

विसरीयं] उस समय नृत्यकरने में शूर मयूर भी नाचना भूल गये [विडविणी कुसुमाइं चईअ] वृक्ष फूलों का त्याग करने लगे [काणणविरहणपरायणहरिणा उपात्ताइं तणाइं] वन में विचरण करने में परायण हरिणों ने मुख में ग्रहण किये तृणों को भी त्याग दिया और [कणभक्खिणो पक्खिणोय आहारं परिहरीअ] कण भक्षण करने वाले पक्षियों ने चुगना बंद कर दिया [एवं सव्वेसु पाणिसु पहुविरहविहुरेसु सो नरवरो पहुं चेयसा चिंतमाणो तओ एवं वयासी] इस प्रकार सभी प्राणिगण प्रभु के विरह से व्यथित होगए उसके बाद भगवान् के विरह से दुःखी राजा नंदिवर्द्धन मन ही मन भगवान् का चिन्तन करते हुए बोले—

[जत्थ तत्थ य सधत्थ तुमं चेवावलोयए] हे भ्रात ! मैं यत्र तत्र सर्वत्र तुझे ही देखता हूँ [विउत्तो सित्ति तुं वीर ! दुक्खाएवाणु मिज्जंति] अतः कौन कहता है कि तुम्हारा वियोग हो गया है किन्तु जब अंतर में दुःख होता है तब लगता है कि तुम्हारा वियोग

हो गया है। [एवं भासमाणो णदिवद्धणो राया स णिसंतं पट्टिओ] इस प्रकार बोलते हुए नंदीवर्धन राजा ज्ञात खण्ड उद्यान से अपने भवन की ओर रवाना हुए ॥४२॥

अर्थ—'तए णं' इत्यादि। दीक्षा ग्रहण करने के अनन्तर श्रमण भगवान महावीर पूर्वोक्त अभिग्रह को अंगीकार करके शरीर की शुश्रूषा के त्यागी हुए और देह संबंधी मोह से रहित हुए, जब अनुमान दो घडी दिन शेष था, तब 'कुर्मार' ग्राम की ओर विहार किये। उस समय, जितने समय तक श्री वर्धमान स्वामी दिखाई देते रहे, उतने समय तक नन्दिवर्धन आदि जन भगवान् श्री वर्धमान प्रभु को देखने के लिए उनकी ओर मुंह उठाए हुए नेत्र–पुटों से उनके दर्शनरूपी अमृत का पान करते रहे और प्रसन्न होते रहे, किन्तु बाद में श्री वर्धमान स्वामी जैसे–जैसे दृष्टिपथ से दूर होते चले गये, वैसे–वैसे दीनों के समान वहां खडे हुए सभी लोगों का वह उत्कृष्ट आनन्द दूर होने लगा। जैसे ग्रीष्म ऋतु में सरोवरों का जल सूखने लगता है, उसी प्रकार उनका हर्षो-

ल्लास सूखने लगा। जैसे जल के अभाव से विकसित कमलों का समूह शोभाविहीन हो जाता है, उसी प्रकार वहां स्थितजनों के हृदय दुस्सह प्रभु–विरह से श्री वर्धमान स्वामी के वियोग से मुरझा गया। सब के हृदय को प्रफुल्लित करने के लिए प्रवृत्त हुआ सुन्दर, शीतल, मन्द और सुगंधिक समीर (पवन) भी सांप के श्वास के समान संतापर्वक हो उठा। पहले भगवान् वर्धमान स्वामी के दीक्षा ग्रहण के निमित्त हुए उत्सवरूपी नन्दनवन में, श्री वर्धमान स्वामी के दर्शन रूप कल्पवृक्ष के मूल में इष्ट सिद्धि से आनन्द की जो लहरें उत्पन्न हुई थी, वह सब प्रभु के विरहरूप वडवानल में भस्म हो गई। जैसे चन्द्रमा का वियोग चकोर को व्यथित करता है, उसी प्रकार भगवान् का वियोग लोकों को व्यथित करने लगा। अथवा जैसे हृदय–प्रदेश में चुमा हुआ शल्य व्यथा पहुंचाता है, वैसे ही वह वियोग सब को व्यथा देने लगा। सब ओर फैले: हुए विशाल प्रभु विरह के अन्धकार के कारण दीर्घनयन होने पर भी दीक्षास्थान

पर विद्यमान जन नेत्रहीन जैसे हो गये! प्रभु के विराजने से नवीन वहां की पहले वाली शोभा, अर्थात् भगवान् वर्धमान के विराजने के स्थान की वह रमणीयता उसी प्रकार नष्ट हो गई, जैसे दीपक के बुझ जाने पर भवन की शोभा नष्ट हो जाती है। जैसे पानी का बहाव समाप्त हो जाने पर नदी के तट की शोभा मलीन हो जाती है अथवा रस–भाग के सूख जाने पर पत्ते निष्प्रभ हो जाते हैं, उसी प्रकार लोगों के हृदय मलीन उत्साहहीन हो गये। लोगों के लोचनों से महती अश्रुधारा ऐसी प्रवाहित होने लगी, जैसे वर्षाकाल में वर्षा की धारा वह रही हो। भगवान् के ज्येष्ठभ्राता, शत्रुओं के विजेता नन्दिवर्धन राजा, जिनके आभूषण नीचे गिर रहे थे, इस प्रकार सब अवयवों से धरती पर धड़ाम से गिर गये, जैसे झरते हुए पुष्पों वाला वृक्ष कट कर गिर गया हो धरतीपर गिरने के बाद वह मूर्छित हो गये। फिर–मूर्छा दूर करने वाले शीतल उपचार से–पंखा आदि के द्वारा हवा करने आदि से होश में आये भी तो अत्यंत ही दुःखी

हुए। वह लगातार किंचित उष्ण जल की धारा के समान अश्रुधारा बहाने वाले नेत्रों को पोंछकर अत्यन्त दुःखित अपने आत्मा की ही निन्दा करने लगे—हमारे पाप के परिणाम को धिक्कार है। यह बन्धुवियोग हमको इन्द्र के वज्र के समान व्यथा पहुँचा रहा है। इस प्रकार असह्य प्रभु वियोग श्री वर्धमान स्वामी के विरह—जनित खेद से दुःखित हो कर अपनी प्रजा को आनन्दित करने वाले नन्दिवर्धन राजा चिल्ला—चिल्ला कर रुदन करने लगे। उस समय में अश्व और हस्ती भी आंसू बहाते हुए अत्यन्त शोक के भागी हुए। श्री वर्धमान स्वामी से वियोग के समय नाचने में निपुण मयूर नृत्य करना भूल गये ! वृक्षोंने फूलों का परित्याग कर दिया, अर्थात् वे भी प्रभु के विरह से फ़लों की शोभा से रहित हो गए, तथा वन में विहार करने वाले मृगों ने मुख में लिया हुआ घास भी त्याग दिया। कण का भक्षण करने वाले पक्षियों ने कणभक्षण करना भी छोड दिया इस प्रकार समस्त प्राणीगण भगवान् के वियोग से व्यथित हुए

तत्पश्चात् भगवान् के विरह से दुःखी नन्दिवर्ध राजा श्री वर्धमान स्वामी को हृदय से स्मरण करते हुए कहते है ।

"यत्र तत्र च सर्वत्र, त्वामेवाऽऽलोकयाम्यम् ॥
वियुक्तोऽसीति त्वं, वीर! दुःखादेवानुमीयते" ॥१॥

अर्थात्-हे भ्राता में जहां तहां सब जगह तेरे को ही देखता हूँ. अतः कौन कहता है कि तेरा वियोग हुआ है, मुझे तो चारों ओर तूं ही तूं दिखाई दे रहा है परंतु हे वीर ! जब अंतर में दुःख होता है तब अनुमान करता हूं कि तेरा वियोग हो गया है। इस प्रकार मन ही मन बोलते हुए नन्दिवर्धन राजा ज्ञातखण्ड उद्यान से अपने भवन की ओर रवाना हुए ॥४२॥

मूलम्—तत्थ णंदिवद्धणेण वुत्तं हे वीर ! अम्हे तं विणा सुण्णं वणं विव पिउकाणणं विव भयजणणं भवणं कहं गमिस्सामो ।

हवंति एत्थ सिलोगा—

तए विना वीर! कहं वयामो। गिहेऽहुणा सुण्णवणोवमाणे ॥
गोट्ठी सुहं केण सहायरामो। मोक्खामहे केण सहाऽह बंधू ॥१॥
सव्वेसु कज्जेसु य वीर-वीरे,-च्चामंतणादंसणओ तवज्ज!
पेमप्पकिट्ठइ भजीअ मोयं। णिराऽऽसया कं अह आसयामो ॥२॥
अइप्पियं बंधव! दंसणं ते, सुहंजणं भावि कयम्ह अक्खिणं।
नीरागचित्तोऽवि कयाह अम्हे। सरिस्ससी सव्वगुणाभिराम ॥३॥

इच्चेवं भुज्जो भुज्जो विलपंताणं तेसिं सव्वेसिं अच्छवो मोत्तियमालव्व फारा अस्सुहारा निस्संदिउ मुवाकमीअ। तह य अच्छिसुत्तियाओ अस्सुबिंदु-मुत्ताहलाणिं परिओ विकिरिउ मारभीअ। एवं सोगमयं समयं निरिक्खिय

दिनमणी वि मंदधिणी जाओ। एगो अवरस्स दुक्खं परोप्परं दट्ठुं दूयया इत्ति विभाविय विय सहस्स किरणो अत्थमिओ। सूरे अत्थमिए धरा य अंधयारा आच्छायणं धरीअ। जणा य सोगाउरा विच्छायवयणा सयं सयं गिहं पडिगया।४३।

शब्दार्थ—[तत्थ णंदिवद्धणेण वुत्तं] उन शोकाकुल लोगो में से नंदिवर्द्धन ने कहा–हे वीर ! [अम्हे तं विणा सूण्णं वणं व्विव पिउकाणणं विव भयजणणं भवणं कहं गमिस्सामो] हे वीर ! तुम्हारे विना सुनसान वन के समान और स्मशान के समान भयंकर भवन–राजभवन में हम किस प्रकार जाएँगे ? [हवंति य एत्थ सिलोगा–] इस विषय में श्लोक भी है–[तए विणा वीर ! कहं वयामो] हे वीर। तुम्हारे विना हम कसे जाए ? [गिहे अहूणा सुण्णवणोवमाणे] इस समय राजभवन तो सुनसान वन के समान जान पडता है [गोट्ठीसुहं केण सहायरामो] हे वीर ! हम किसके साथ गोष्ठी (वार्तालाप) के सुख का अनुभव करेंगे ? [भोक्खामहे केण सहाऽहबंधू] हे बन्धो ! हम

किस के साथ बैठकर भोजन करेंगे [सव्वेसु कज्जेसु य वीर--वीरे च्चामंतणादंसणओ तवज्ज] हे आर्य! सभी कार्यों में 'हे वीर, हे वीर इस प्रकार तुम्हें संबोधित करके, तुम्हारे दर्शन करके [पेमप्पकिट्ठीइ भजीअ मोयं] तुम्हारे प्रेमकी प्रकृष्टता से आनन्द भोगते थे [णिरासया कं अह आसयामो] किन्तु आज हम निराधार हो गये। अब किसका आश्रय लेंगे [अइप्पियं बंधव! दंसणं ते सुहं जणं भावि कयऽम्ह अक्खिणं] हे बन्धु! मेरे नेत्रों के लिए सुखद अंजन के समान तथा अत्यन्त प्रिय तुम्हारा दर्शन अब कब होगा? [नीराग चित्तोऽवि कयाह अम्हे सरिस्ससी सव्वगुणाभिरामा] हे सर्वगुणाभिराम! तुम विरक्त चित्त होकर भी कब हमें स्मरण करोगे?

[इच्चेवं भुज्जो भुज्जो विलपंताणं] इस तरह बार बार विलाप करते हुए नन्दिवर्धन तथा अन्य लोगों के नेत्रों से [तेसिं सव्वेसिं अच्छओ मोत्तियमालव्वफारा अस्सुहारा निस्संदिउमुवाकमीअ] उन सभी जनों के नेत्रों से मोतियों की माला के

समान बडी बडी आंसुओं की धारा निकलने लगी [तहय अच्छिसुत्तियाओ विंदु मुत्ताहलाणि परिओ विकिरिडमारभीअ] अतएव आंखों रूपी सीपों से अश्रुरूपी मोती इधर-उधर बिखरने लगे। [एवं सोगमयं समयं निरिक्खिय दिनमणीवि मंदधिणी जाओ] इस प्रकार का शोक अवसर जानकर मानो सूर्य भी मन्दकिरण अस्तोन्मुख हो गया [एगो अवरस्स दुक्खं परोप्परं दट्ठुं दूयइत्ति विभावियविव सहस्स किरणो अत्थमिओ] एक दूसरे के दुःख को देखकर परस्पर दुःखी होता है, मानो यही सोचकर सूर्य अस्ताचलकी ओर चला गया। [सूरे अत्थमिए धराय अंधयारा आच्छायणं धरीअ] सूर्य के अस्त हो जाने पर पृथ्वी ने अंधकार रूपी काले वस्त्र को धारण कर लिया [जणा य सोगाउरा विच्छायावयणा सयं सयं गिहं पडिगया] सभी लोग शोक से व्याकुल एवं मुरझाये चेहरे से अपने अपने घर पर चले गये ॥४३॥

अर्थ—शोकाकुल लोगों में से नन्दिवर्धन ने इस प्रकार विलाप के वचनों का उच्चा

रण किया 'हे वीर ! तुम्हारे विना सुनसान वन के समान भयंकर भवन राजभवन में हम किस प्रकार जाएंगे। इस विषय में श्लोक भी है–'तए विना' इत्यादि। हे वीर तुम्हारे विना अब शून्य वन के सदृश भवन में हम किस प्रकार जाएं? हे बन्धु इस समय हम वह गोष्ठी का सुख तत्व विचारण से होने वाला आनन्द किस के साथ अनुभव करेंगे और किस के साथ भोजन करेंगे ? ॥१॥

हे आर्य सभी कामों में 'हे वीर' इस प्रकार तुम्हें संबोधित करके और तुम्हारे दर्शन करके तथा तुम्हारे प्रेम की प्रचुरता से हम आनन्द लाभ किया करते थे। अब तुम्हारे वियोग में हम निराधार हो गये हैं। हाय किसका आधार लें ? २॥

हे बन्धु हमारे नेत्रों के लिए सुखजनक अंजन के समान तथा अत्यन्त प्रिय तुम्हारा दर्शन फिर कब होगा ? हे समस्त गुणों से सुन्दर ! राग रहित चित्तवाले होकर भी तुम हमें कब स्मरण करोगे ? ॥३॥

इस तरह बार-बार दुःखमय वचन उच्चारण करने वाले नन्दिवर्धन आदि सभीजनों के नेत्रों से मोतियों की माला के समान महती आसुओं की धारा निकलने लगी। अत एव आंखों रूपी सीपों से अश्रु रूपी मोती इधर उधर विखरने लगे । इस प्रकार का शोक अवसर जानकर मानों सूर्य भी मन्द किरण एवं अस्तोन्मुख हो गया। एक दूसरे के दुःख को देखकर परस्पर दुःखी होता है मानो यही सोचकर सूर्य अस्ताचल की ओर चला गया सूर्य के अस्त हो जाने पर पृथ्वी ने अंधकार रूपी काले वस्त्र को धारण कर लिया, अर्थात् अंधकार से ढक गई । सभी लोग शोक से आकुल थे अतएव सबके चहरे फीके पड गये थे। वे अपने-अपने स्थान पर चले गए ॥४३॥

मूलम्-जया णं समणे भगवं महावीरे खत्तियकुंडग्गामाओ निग्गच्छित्ता कुम्मारगामस्स समीवं समणुपत्ते, तया णं सूरो अत्थमिओ, सूरे अत्थमिए साहूणं विहरणं अकप्पणिज्जंति कट्टु भयवं गामासण्णतरुयले

बारसपोरिसिए काउसग्गे ठिए। भयवं य जाव जीवं परीसहसहनसीले आसि, अओ इंददिण्णे देवदूसेण वि वत्थेण भगवया हेमंते वि सरीरं नो पिहियं। इंद-दिण्णं देवदूसं वत्थं जं भगवया धरियं तं 'सव्वतित्थयराणं इमो कप्पो' त्ति कट्टु धरियं। अभिणिक्खमणसमए जं भगवओ सरीरं सुगंधिदव्वेण चंदणेण य चच्चियं आसि, तग्गंधलुद्धा मुद्धा सुगंधप्पिया भमरपिवीलियाइ जंतुणो साहियं चाउम्मासं जाव पहुसरीरं ओलग्गिय ओलग्गिय मंसं रुहिरं च चोसीअ, परं भगवया णो ते णिवारिया। तओ पच्छा बीए दिवसे कोऽवि गोवो बलिवद्दे पहुसमीवे ठविय पहुं कहीअ-हे भिक्खू! इमे मे बलिवद्दा रक्खणिज्जा, न कहिंपि गच्छिज्जं' त्ति कहिय सो गोवो भोयणपाणट्ठं णियगिहे गओ। भुत्त-पीओ सो पहुपासे आगमिय बलिवद्दे अदट्ठूणं तेसिं गवेसणाए अहोरत्तं वणं

वणं भमीअ। एवं गवेसणाए जया नो लद्धा बलिवद्दा तया सो पहुसमीवे आगच्छइ। तत्थ चरियतणे तत्थ ठिए बलिवद्दे पासइ। तए णं से गोवे आसुरत्ते मिसमिसेमाणे पहुमेवं कहीअ—

'रे भिक्खु! किं मम बलिवद्दे संगोविय मए सह हासं करेसि? भुंजाहि एयस्स फलं' ति कहिय जाव भयवं तज्जेउं तालेउं च समुज्जयइ ताव दिवि सक्कस्स आसणं चलइ। तए णं से सक्के देविंदे देवराया ओहिणा भगवओ उवसग्गं आभोगिय मणुस्सलोए हव्व मागमिअ तं गोवं एवं वयासी—'हं भो! गोवा! अपत्थियपत्थया! दुरंतपंतलक्खणा हीणपुण्ण! चाउद्दसिया! सिरिहिरिधिइकित्तिपरिवज्जिया! अधम्मकामया! अपुण्णकामया! नरयनिगोयकामया! अधम्मकंखिया! अधम्मपिवासिया! अपुण्णकंखिया! अपुण्णपिवासिया! नरयनिगोय-

कंखिया ! नरय निगोयपिवासिया ! किमट्ठं एरिसं पावकम्मं करिसि ? जं तिलोयनाहं तिलोय-वंदियं तिलोयसुहयरं तिलोयहियकरं भगवं उवसग्गेसि' त्ति कट्टु तं तज्जिउं तालिउं हणिउं उवाकमीअ। तं दट्ठुं करुणावरुणालए भगवं सक्कं देविंदं देवरायं पडिसेहिअ। तए णं से सक्के देविंदे देवराया पहुं एवं वयासी—'पहू ! देवाणुप्पियाणं अग्गेवि बहवे दुस्सहा परीसहोवसग्गा आवडिस्संति, अओऽहं तं निवारिउं तुम्हाणं अंतिए चिट्ठामि। सक्किंदस्स तं वयणं सोच्चा भगवया कहियं—'सक्का ! जे य अईया, जे य अणागया, जे य पडुप्पण्णा तित्थयरा ते सव्वेवि सएण उट्ठाणकम्मबलवीरिय-पुरिसक्कार-परक्कमेणं कम्माइं खवेंति असहेज्जा चेव विहरंति, नो णं देवासुरणागजक्खरक्खसाकिन्नरकिंपुरिसगरुल-गंधव्वमहोरगाईणं साहिज्जं इच्छंति' त्ति णो णं सक्का ! ममं कस्सावि साहेज्ज-

पओयणं। एवं सोच्चा सक्के देविंदे देवराया नियमवराहं खमाविय वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए॥४४॥

शब्दार्थ—[जयाणं समणे भगवं महावीरे खत्तियकुंडग्गामाओ निग्गच्छित्ता] जब श्रमण भगवान महावीर क्षत्रियकुण्डग्राम से विहारकर [कुम्मारगामस्स समीवं समणुपत्ते ] कुर्मार ग्राम के समीप पहुँचे [तया णं सूरो अत्थमिओ] तब सूर्य अस्त हो गया [सूरे अत्थमिए साहूणं विहरणं अकप्पणिज्जंति कट्टु भगवं गामासण्णतरुथले काउसग्गे ठिए] सूर्य के अस्त हो जाने पर साधुओं को विहार करना नहीं कल्पता, यह सोचकर भगवान् ग्राम के समीप में एक वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग करके स्थित हो गये ।

[भगवं य जावजीवं परीसहसहनसीले आसी] भगवान् जीवनपर्यन्तशीत उष्ण आदि परीषहों को सहन करने वाले थे [अओ इंददिण्णेण देवदूसेण वि वत्थेण भगवया

हेमंते वि सरीरं नो पिहियं] अतएव उन्होंने इन्द्र के द्वारा दिये हुए देवदूष्य वस्त्र से हेमंत ऋतु में भी शरीर नहीं ढका [इंददिण्णं देवदूसं वत्थं जं भगवया धरियं तं सव्वतित्थयराणं इमो कप्पो, त्ति कट्टु धरियं] इन्द्र का दिया हुआ देवदूष्य वस्त्र जो भगवान ने धारण किया सो समस्त तीर्थंकरों का यह कल्प है, ऐसा समझकर ही धारण किया था [अभिणिक्खमणसमए जं भगवओ सरीरं सुगंधिदव्वेण चंदणेण य चच्चियं आसी] दीक्षा के समय भगवान का शरीर सुगंधी द्रव्यों से तथा चंदन से चर्चित था [तग्गंधलुद्धा मुद्धा सुगंधप्पिया भमरपिवीलियाइ जंतुणो] अतः उस सुगंध के लोभी मुग्ध एवं सुगंध प्रिय भ्रमर आदि जन्तुओंने [साहियं चाउम्मासं जाव पहु-सरीरं ओलग्गिय ओलग्गिय मंसं रुहिरं च चोसीअ] चारमास से भी कुछ अधिक समय तक प्रभु के शरीर में चिपट चिपट कर उनका मांस और रुधिर चूसा, [ परं भगवया णो ते णिवारिया] परन्तु भगवान् ने उनका निवारण नहीं किया

[तओ पच्छा कोऽवि गोवो बलिवद्दे पहुसमीवे ठविय पहुं कहीअ] तत्पश्चात् एक गुवाल अपने बैलों को प्रभु के समीप खडा करके बोला—हे भिक्खू ! [इमे मे बलिवद्दा रक्खणिज्जा न कहिंपि गच्छिज्ज त्ति] हे भिक्षु ! मेरे इन बैलों की रखवाली करना, ये कहीं चले न जायें [कहिय सो गोवो भोयणपाणट्ठं णिय गिहे गओ] इस प्रकार कहकर वह गुवाल भोजन पानी के निमित्त अपने घर चला गया [भुत्तपीओ सो पहुपासे आगमिय बलिवद्दे अदट्ठूणं तेसिं गवेसणाए अहोरत्तं वणं वणं भमीअ] खा पीकर वह प्रभु के पास आया। बैले दिखाई न दिये । तब वह दिन-भर और रातभर सारे वन में बैलों की खोज करता रहा [एवं गवेसणाए जया नो लद्धा बलिवद्दा तया सो पहुसमीवे आगच्छइ] इस प्रकार खोज करने पर भी जब बैल नहीं मिले तो वह वापस भगवान् के पास लौट आया [तत्थ चरियतणे तत्थ ठिए बलिवद्दे पासइ] उसने देखा बैल घास खाकर तृप्त हुए वहां बैठे हैं । [तएणं से गोवे आसुरत्ते

मिस मिसेमाणे पहु मेवं कहीअ–] तब वह गुवाल बहुत क्रुद्ध हुआ और मिसमिसाता प्रभु से इस प्रकार बोला—

["रे भिक्खू ! किं मम बलिवद्दे संगोविय मए सह हासं करेसि ? ] अरे भिक्षु ! मेरे बैलों को छिपाकर क्या मेरे साथ उपहास करता है ? [भुंजाहि एयस्स फलं" ] ले इसी हांसी का फल भोग" [त्ति कहिय जाव भयवं तज्जेउं च समुज्जयइ] इस प्रकार कह कर वह ज्यों ही भगवान् की तर्जना और ताडना करने को उद्यत हुआ [ताव दिवि सक्कस्स आसणं चलइ] यों ही उसी समय शक्र का आसन चलायमान हुआ [तएणं से सक्के देविंदे देवराया ओहिणा भगवओ उवसग्गं आभोगिय मणुस्सलोए हव्वमागमिय तं गोवं एवं वयासी–] तब शक्र देवेन्द्र देवराज अवधिज्ञान से भगवान् पर उपसर्ग आया जान कर तत्काल मनुष्यलोक में आये और ग्वाले से बोले–[हं भो ! गोवा ! अपत्थियपत्थया ! ] अरे गोप अप्रार्थित का प्रार्थित [दुरंतपंतलक्खणा] कुलक्षणी

[हीण पुण्ण ] पुण्य हीन [चाउद्दसिया] काली चौदस का जन्मा [सिरिहिरिधिइकित्ति-परिवज्जिया ] श्री ह्री धृति और कीर्ति से परिवर्जित [अधम्मकामया] अधर्मका इच्छुक [अपुण्णकामया] पाप का अभिलाषी [नरयनिगोयकामया] नरक और निगोदका इच्छुक [अधम्मकंखिया ] अधर्मकांक्षी [अधम्मपिवासिया] अधर्म का प्यासा [अपुण्णकंखिया ?] अपुण्य का कांक्षा करने वाला [नरयनिगोयकंखिया] नरक निगोद की कांक्षा करनेवाला [नरय निगोयपिवासिया !] नरक निगोद का प्यासा [किमट्ठं एरिसं पावकम्मं करिसि ?] तू किस लिये यह पाप कर्म कर रहा है ? [जं तिलोयनाहं] जो त्रिलोक के नाथ [तिलोयवंदियं] त्रिलोक वन्दित [तिलोयसुहयरं] त्रिलोक के सुखकर [तिलोयहियकरं] तीन लोक का हित करनेवाले [भगवं उवसग्गेसि'–त्ति तं तज्जिउं तालिउं हणिउं उवाकमीअ] भगवान् को उपसर्ग करता है इस प्रकार कह कर शक्र उसे तर्जन करने ताडन करने और मारने को उद्यत हुए। [तं दट्ठुं करुणावरुणालए भगवं

सक्कं देविंद देवरायं पडिसेहीअ] यह देखकर दया के सागर भगवान ने शक्र देवेन्द्र देवराज को रोक दिया [तए णं से सक्के देविंदे देवराया पहुं एवं वयासी] तब वह शक्र देवेन्द्र देवराज भगवान् से इस प्रकार बोले–[पहू ! देवाणुप्पियाणं अग्गे वि बहवे दुस्सहा परिसहोवसग्गा आवडिस्संति] भगवन् ! आप देवानुप्रिय को आगे भी बहुत से दुस्सह परीषह और उपसर्ग आएंगे [अओऽहं ते निवारिउं तुम्हाणं अंतिए चिट्ठामि] अतः उसका निवारण करने के लिये मैं आप के पास रहता हूँ। [सक्किंदस्स तं वयणं सोच्चा भगवया कहियं] शक्रेन्द्र का कथन सुनकर भगवान् बोले [सक्का ! जे य अईया ! जे य अणागया, जे य पडुप्पण्णा तित्थयरा ते सव्वेवि सएण उट्ठाण–कम्म –बल वीरिय पुरिसक्कारपरक्कमेणं कम्माइं खवेंति असहेज्जा चेव विहरंति] हे शक्र! जो तीर्थंकर अतीत काल में हुए है, भविष्यत् में होंगे और वर्तमान में है वे सभी अपने उत्थान कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार और पराक्रम से कर्मों का क्षय करते हैं असहाय ही विचरते

हैं। [नो णं देवा सुर, नाग, जक्ख, रक्खस, किंनर, किंपुरिस, गरुल, गंधव्वमहोरगाइणं साहिज्जं इच्छंति] देवों, असुरों, नागों, यक्षों, राक्षसों, किन्नरो, किंपुरुषों गरुडों, गन्धर्वों और महोरगों आदि देवों की सहायता की इच्छा नहीं करते [त्ति नो णं सक्का ! ममं कस्सवि साहेज्जपओयणं] हे शक्र ! मुझे किसी की सहायता का प्रयोजन नहीं है। [एवं सोच्चा सक्के देविंदे देवराया निय अवराहं खमाविय वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए] इस प्रकार सुनकर शक्र देवेन्द्र देवराज ने अपना अपराध खमाया और वन्दना नमस्कार कर जिस दिशा से प्रकट हुआ था उसी दिशा में चला गया ॥४४॥

भावार्थ—जिस समय श्रमण भगवान् महावीर क्षत्रिय कुण्डग्राम से विहार कर कुमार ग्राम के समीप गये, उस समय सूर्य अस्त हो गया, सूर्य अस्त हो जाने पर साधुओं को विहार करना नहीं कल्पता, ऐसा नियम है, ऐसा जानकर भगवान् महावीर

स्वामी, कुमार ग्राम के समीप एक वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग करके स्थित हो गये।

भगवान् जीवनपर्यन्त शीत, उष्ण आदि परीषहों को सहन करने वाले थे। उन्होंने इन्द्र के द्वारा दिये हुए देवदूष्य वस्त्र से हेमन्त ऋतु में भी, शरीर रक्षा के हेतु से शरीर को आच्छादित नहीं किया।

कहा भी है—

आयावयंति गिम्हेसु, हेमंतेसु अवाउडा ।
वासासु पडिसंलीणा, संजया सुसमाहिया ॥ दशवै. अ. ३. गा. १२

इन्द्र द्वारा दिया गया देवदूष्य वस्त्र जो भगवान् ने ग्रहण किया सो सभी तीर्थकरों का, इन्द्र के द्वारा अर्पित किये गये वस्त्र को ग्रहण करना आचार है ऐसा जानकर ग्रहण किया दीक्षा के अवसर पर भगवान् के शरीर का सुगन्धित द्रव्यों से कस्तूरी–कुंकुम आदि

से, तथा श्रीखण्ड चन्दन से लेपन किया गया था, उनकी सुगन्ध में आसक्त, अतएव मोह को प्राप्त एवं सुगंध के अनुरागी भ्रमर आदि जन्तु, चार मास से भी कुछ अधिक समय तक प्रभु के शरीर में बार-बार चिपटकर उनके मांस और रुधिर को चूसते थे, मगर भगवान् ने मांस और रुधिर चूसने वाले उन जन्तुओं को हटाया तक नहीं। कारण की भगवान् कैसे होते हैं इसके लिये शास्त्रकारोंने कहा है—

परीसह रिउदंता, धूयमोहा जिइंदिया।
सव्वदुक्खपहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो॥ दशवै अ. ३ गा. १३

तत्पश्चात् कोई गुवाल बैलों को प्रभु के पास खडा कर के प्रभु से बोला— हे भिक्षु! मेरे इन बैलों की देखरेख करना जिससे कहीं चले न जाएँ। इस प्रकार कहकर वह गुवाल भोजन पानी के लिए अपने घर चला गया। खाने-पीने के पश्चात् वह अपने घर से भगवान् के निकट आया तो उसे वहां बैल न दिखे। तब

वह बैलों की खोज में दिनभर और रात–भर निकट वर्ती प्रत्येक वन में भटका। इस प्रकार खोज करने पर भी बैल न मिले तो वह गुवाल लौटकर भगवान् के पास आया। आकर उसने देखा कि बैल घास खाकर तृप्त हुए वहां बैठे हैं।

बैलों को देखने के अनन्तर गुवाल एकदम क्रोध से लाल हो गया। क्रोध से जलता हुआ ऊपर नीचे पैर पटकता हुआ वह श्री वीर प्रभु से बोला–'रे भिक्षु! मेरे बैलों को छिपाकर मेरे साथ हांसी करता है ? ले, इस हांसी का फल भोग, इस प्रकार कहकर ज्यों ही वह भगवान् की तर्जना (तर्जनी अंगुली उठाकर भर्त्सना) करने और ताडना करने (थप्पड, आदि से मारने) को उद्यत होता है, त्यों ही स्वर्ग लोक में शक्र का आसन कांपने लगा, आसन कांपने पर शक्र देवेन्द्र देवराज ने अवधिज्ञान से भगवान् वीर स्वामी पर आये हुए उपसर्ग को जानकर, और उसी समय मनुष्य लोक में आकर उस गुवाल से कहा–रे गुवाल ! अरे जिसकी कोई इच्छा नहीं करता उसकी अर्थात्

मृत्यु की इच्छा करने वाले ! अरे दुष्ट फलदायक और अशोभन लक्षणों वाले। (जिनसे शुभ-अशुभ समझा जाय वह लक्षण सामुद्रिक शास्त्र में प्रसिद्ध हथेली आदि की रेखाएँ तिल, मषा आदि अथवा चेष्टाएं लक्षण कहलाती है) अरे हीन पुण्य वाले कृष्ण चतुर्दशी को जन्म लेने वाले। अर्थात् पापी ! अरे श्री (शोभा या वैभव) ह्री (लज्जा) धृति (धैर्य) कीर्ति (ख्याति) से सर्वथा शून्य ! अरे अधर्म के कामी ! अरे अपुण्य और नरक-निगोद के कामी ! अरे। अधर्म की कांक्षा करने वाले। अधर्म के प्यासे। अरे अपुण्य की कांक्षा करने वाले। अरे अपुण्य के प्यासे।, अरे नरक निगोद की आकांक्षा करने वाले अरे नरक-निगोद के प्यासे। किस प्रयोजन से तूं ऐसा पाप कर्म कर रहा है ? जो त्रिलोक के नाथ, त्रिलोकवन्दित, त्रिलोक के प्रमोदकारी, त्रिलोक के कल्याणकारी भगवान् महावीर स्वामी को उपसर्ग करता है ? इस प्रकार कहकर इन्द्र, गुवाल को तर्जन करने ताडन करने और मारने को उद्यत हुए।

यह देखकर दया के सागर भगवान् श्री वीर स्वामी ने शक्र देवेन्द्र देवराज को रोक दिया। तब वह शक्र देवेन्द्र देवराज वीर भगवान् से इस प्रकार वचन बोले— स्वामिन् ! देवानुप्रिय को अर्थात् आप को आगे भी अनेक कष्ट परीषह और उपसर्ग (परीषह शीत, उष्ण आदि, उपसर्ग देवादिकृत कष्ट) आएंगे। मैं उनका प्रतीकार करने के लिए देवानुप्रिय के पास रहता हूं। तब शक्रेन्द्र के वचन सुनकर भगवान् महावीर स्वामी ने कहा—हे शक्र ! जो अतीत कालीन, भविष्यत् कालीन और वर्तमान कालीन तीर्थंकर हैं वे सभी अपने ही उत्थान (चेष्टा—विशेष) कर्म (चलना आदि क्रिया) वल (शरीर की शक्ति) वीर्य (जीव संबंधी सामर्थ्य) पुरुषकार (पुरुषार्थ), और पराक्रम (कार्य में सफल हो जाने वाला पुरुषार्थ) से कर्मो का क्षय करते हैं। दूसरे की सहायता के विना ही विचरते हैं देवों असुरों नागों, यक्षों राक्षसों, किन्नरों, कि पुरुषों गरुडों गन्धर्वों और महारोगों की अपेक्षा नहीं करते। इस कारण हे शक्र। मुझे किसी की सहायता से

प्रयोजन नहीं है। इस प्रकार के वचन सुनकर शक्र देवेन्द्र देवराज ने अपना अपराध खमाकर वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके जिस दिशा से प्रादुर्भूत हुए थे, उसी दिशा में चले गये ॥सू० ४४॥

मूलम्—तए णं समणे भगवं महावीरे कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मीलियम्मि अह पंडुरे पहाए रत्तासोगप्पगासे किंसुय-सुयमुह गुंजद्धरागसरिसे, कमलागर-संडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते—सदोरय मुहपत्तिं पडिलेहित्ता, सदोरय मुहपत्तिं मुहेबंधीअ पडिलेहिज्ज गोच्छगं, गोच्छगलइयंगुलिओ, वत्थाई पडिलेहए रयहरणं पडिलेहित्ता पात्तगं पडिलेहए। कहियमावि-

पंच्चयत्थं च लोगस्स नाणविहविगप्पणं। जत्तत्थं गहणत्थं च, लोगे लिंग-

षष्ठक्षपण-
पारणार्थं
बहुल-
ब्राह्मणगृहे-
गमनादि
वर्णनम्

पओयणं कुम्मारगामाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहं सुहेणं विहरमाणे जेणेव कोल्लागसन्निवेसे तेणेव उवागच्छइ। तए णं से समणे भगवं महावीरे छट्ठक्खमणपारणे भिक्खायरियट्ठाए बहुलस्स माहणस्स गिहं अणुपविट्ठे। तेण बहुलेण माहणेण भत्तिबहुमाणेण खीरं दिण्णं, तत्थ णं तस्स बहुलस्स तेणं दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिग्गाहियसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं भगवम्मि पडिलाभिए समाणे गिहंसि य इमाइं पंचदिव्वाइं पाउब्भूयाइं तं जहा—वसुहारा वुट्ठा दसद्धवण्णे कुसुमे निवाइए, चेलुक्खेवे कए, आहयाओ देव दुंदुहीओ, अंतरा वि य णं आगासंसि अहोदाणं अहोदाणं त्ति घुट्ठे य। तए णं से समणे भगवं महावीरे कोल्लागाओ संनिवेसाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जणवयविहारं विहरइ ॥४५॥

षष्ठक्षपणपारणार्थं बहुलब्राह्मणगृहेगमनादि वर्णनम्

शब्दार्थ—[तएणं] तत्पश्चात् [समणे भगवं महावीरे] श्रमण भगवान् महावीर [कल्लं] दूसरे दिन [पाउप्पभायाए रयणीए] जिस में प्रभात प्रकट हो चुका है, ऐसी रजनी के होने पर [फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मीलियंमि अहपंडुरे पहाए] तथा विकसित कमल पत्रों एवं चित्र मृग के नयनों का उन्मीलन जिस में हो चुका है, ऐसे शुभ्र आभायुक्त प्रातः काल के होने पर, तथा [रत्तासोगप्पगास किंसुय सुयमुह गुंजद्धराग सरिसे कमलागरसंडबोहए] रक्त अशोक के प्रकाश तुल्य पलाश पुष्प के समान, शुक के मुख के समान और गुंजा के आधे भाग की ललाई के समान, कमल वनों को विकसित करनेवाला प्रभात होने पर [उट्ठियम्मि सूरे] आकाश में सूर्य का उदय होने पर [सहस्स रस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते] सहस्र किरणवाला दिनकर जब अपने तेजसे आकाश में चमकने लगा तब [सदोरयमुहपत्तिं पडिलेहित्ता] दोरा के साथ मुहपत्ति का प्रतिलेखन कर [सदोरयमुहपत्तिं मुहेबंधिअ] सदोरक मुखवस्त्रिका मुख पर बांध कर के

[पडिलेहिज्ज गोच्छगं] गोच्छा का प्रतिलेखन किया [गोच्छगलइयंगुलिओ] गोच्छक को अंगुलियों से ग्रहण करके [वत्थाई पडिलेहए] वस्त्र को ग्रहण किया [रयहरणं पडिलेहित्ता] रजोहरण का प्रतिलेखन करके [पात्तगं पडिलेहए] पात्रा का प्रतिलेखन किया। [कहियमवि] कहा भी है—

[पच्चत्थं च लोगस्स] लोगों में प्रतीति–विश्वास के लिये [नाणाविहविगप्पणं] वर्षाकल्प आदि समय में संयम पालने के लिये [जत्तत्थं गहणत्थं च] केवलज्ञानादि ग्रहण के लिये एवं भव्य जीवों को श्रुतज्ञान का लाभ देने के लिये [लोगे लिंगपओयणं] लोक में साधुचिन्ह–धर्मचिन्ह की आवश्यकता है [तएणं समणे भगवं महावीरे कुम्मारगामाओ निग्गच्छइ] उसके बाद श्रमण भगवान् महावीर कुमारग्राम से निकलते हैं [निग्गच्छित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणो गामाणुगामं दूइज्जमाणो] निकलकर पूर्ववर्ती तीर्थंकरों की परम्परा के अनुसार विचरण करते हुए तथा एक ग्राम से दूसरे ग्राम [सुहं सुहेणं विहरमाणेणं]

सुखपूर्वक विहार करते हुए [जेणेव कोल्लागसंनिवेसे तेणेव उवागच्छइ] जहां कोल्लागसंनिवेश था वहां पधारे [तए णं से समणे भगवं महावीरे छट्ठक्खमणपारणे भिक्खायरियट्ठाए बहुलस्स माहणस्स गिहं अणुप्पविट्ठे] वहां श्रमण भगवान् महावीर ने षष्ठ भक्त [बेले] के पारणे के दिन भिक्षाचर्या के लिए भ्रमण करते हुए बहुल नामक ब्राह्मण के घर में प्रवेश किया [तेण बहुलेण माहणेण भत्तिबहुमाणेण पडिग्गाहे खीरं दिण्णं] बहुल ब्राह्मण ने भक्ति और अत्यन्तसत्कार के साथ भगवान् के पात्र में खीर का दान दिया [तत्थ णं तस्स बहुलस्स तेणं दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिग्गाहगसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं] वहां उस ब्राह्मण के घर में द्रव्यशुद्ध, दायकशुद्ध, एवं प्रतिग्राहक शुद्ध इस प्रकार तीन करण शुद्धदान से [भगवंमि पडिलाभिए समाणे गिहंसि य इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं तं जहा] भगवान को बहराने पर यह पांच दिव्य प्रकट हुए [वसुहारा वुट्ठा] वसुधारा—स्वर्ण की वृष्टि हुई [दसद्धवण्णे कुसुमे निवाइए] पांच

षष्ठक्षपणपारणार्थं बहुल-ब्राह्मणगृहे-गमनादि वर्णनम्

वर्णों के फूलों की वर्षा हुइ [चेलुक्खेवे कए] वस्त्रों की वर्षा हुई [आहयाओ दुंदुहीओ] आकाश में दुंदुभि बजी और [अंतरा वि य णं आगासंसि अहोदाणं अहोदाणं ति घुट्ठे] आकाश में 'अहोदानं, अहोदानं,' इस प्रकार का घोष हुआ। [तए णं से समणे भगवं महावीरे कोल्लागाओ संनिवेसाओ पडिनिक्खमइ] उसके बाद श्रमण भगवान् महावीर कोल्लाग संनिवेश से निकले [पडिनिक्खमित्ता जणवयविहारं विहरइ] और निकल कर जनपद में विचरने लगे ॥४५॥

भावार्थ—शक्र के चले जाने के पश्चात् श्रमण भगवान् महावीरने दूसरे दिन में प्रभात प्रकट हो चुका है, ऐसी रात्री के होने पर तथा कमलपत्रों के विकास एवं चित्रमृग के नयनों का जिस में उन्मीलन हो चुका है ऐसे शुभ्र आभायुक्त प्रातः काल होने पर तथा रक्त अशोक के प्रकाश तुल्य पलाश पुष्प के समान शुक के मुख समान एवं गुंजा के अर्ध भाग की ललई के समान कमलवनों को विकसित करनेवाला

पष्ठक्षपण-
पारणार्थं
बहुल-
ब्राह्मणगृहे
गमनादि
वर्णनम्

प्रभात होने पर आकाश में सूर्य का उदय होने पर सहस्र किरणवाला सूर्य जब अपने तेजसे आकाश में चमकने लगा, तब सदोरक मुहपत्ति का प्रतिलेखन किया, एवं सदोरक मुहपत्ति को मुख पर बांध करके गोछे का प्रतिलेखन किया गोछे को अंगुलियों से ग्रहण करके वस्त्र को धारण किया रजोहरण का प्रतिलेखन करके पात्रा का प्रतिलेखन करके गोछे से पात्रा को पुंज्या इस प्रकार साधुसमाचारी किया कहा भी है–

[पच्चत्थं च लोगस्स] इत्यादि कहने का भाव यह है की लोगों में प्रतीति–विश्वास के लिये तथा वर्षाकल्प आदि समय में संयम पालने के लिये केवलज्ञानादिको ग्रहण करने के लिये और भव्य जीवों को श्रुतज्ञान का लाभ देने के लिये साधुचिन्ह धारण करना आवश्यक है इस आगमोक्त नियमानुसार साधु समाचारी करके कुमारग्राम से विहार किया और पूर्ववर्ती तीर्थंकरों की परम्परा से विचरते हुए, एक गांव से दूसरे गांव सुखपूर्वक विहार करते हुए जहां कोल्लाग सन्निवेश था वहां पधारे। कोल्लाग

सन्निवेश में श्रमण भगवान् महावीर ने षष्ठभक्त (बेले) के पारणे के दिन भिक्षाचर्या के लिए भ्रमण करते हुए बहुलनामक ब्राह्मण के घर में प्रवेश किया। बहुल ब्राह्मण ने भक्ति और अत्यंत सत्कार के साथ भगवान् को खीर का दान दिया। दान ग्रहण करने के अनन्तर अशनादि रूप द्रव्य से शुद्ध द्रव्य और भाव से शुद्ध, दाता के कारण तथा अतिचार रहित तप और संयम से सम्पन्न ग्राहक (पात्र) के शुद्ध होने से, इस प्रकार द्रव्य, दाता, और पात्र, तीनों शुद्ध होने से तथा दाता के मन–वचन–काय रूप तीनों करण शुद्ध होने से भगवान् वीर को बहराने पर उस बहुल ब्राह्मण के घर में आगे कही जानेवाली पांच देवकृत वस्तुएँ प्रगट हुई। वे इस प्रकार हैं–(१) देवों ने स्वर्ण की वृष्टि की। (२) पंचवरण के कुसुम वरसाये। (३) वस्त्रों की वर्षा की। (४) दुंदुभियां वजाई। (५) आकाश में 'अहोदान, अहोदान' का उच्चस्वर से नाद किया। तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर कोल्लाग सन्निवेश से निकले और निकलकर जनपद–विहार विचरने लगे ॥४५॥

षष्ठक्षपण-पारणार्थं वहुल-ब्राह्मणगृहे-गमनादि वर्णनम्

मूलम्—तए णं से विहरमाणे भगवं पढमंमि चाउमासम्मि अत्थियं गामं समणुपत्ते। तत्थ णं मूलपाणिजक्खस्स जक्खाययणे राओ काउसग्गे ठिए। दुल्लक्खे सो जक्खो सयपगडिं अणुसरंतो भगवं उवसग्गे इतत्थ पुव्वं सो दंसमसगाइं समुप्पाइय पहुं तेहिं दंसीअ। तेण उवसग्गेण अक्खुद्धं सज्झाण-लुद्धं विलोइय विच्छिए उप्पाइय तेहिं दंसीअ। तेण वि अवियलं अविकंपियं पासिय विउव्विएण महाविसेण महासीविसेण भगवओ सरीरम्मि दंसीअ तेण वि वायजाएण अयलमिव अवियलं दट्ठूणं तेण वि रिच्छा विउव्विया। ते य पखरणखरधाएहिं उवद्दवीअ। तओ वि अणुव्विग्गं सयज्झाणलग्गं दट्ठूणं विउव्विएहिं घुरघुरायमाणेहिं सुलग्गमुहखुरेहिं सुयरेहिं फालीअ। तेण वि अविसण्णं झाणणिसण्णं विलोइय सज्जो समुप्पाइएणं कुलिसग्गतिक्खदंतग्गेणं

करिणा उवद्दवीअ। तेण वि दढं थिरं अवियलं दट्ठूणं विउव्विएहिं खरतर-नरवरदाढेहिं वग्घेहिं उवद्दवीअ। तेण वि अवियलियं पासिय विउव्विएहिं केस-रीहिं खरयरनहरदाढग्गघाएहिं उवद्दवीअ। तेण पुणो वि थिरं थिरसरीरं विलो-इय पगडीए अईयवियरालेहिं वेयालेहिं उवद्दवीअ। एवं सो दुरासओ जक्खो पुण्णं रत्तिं जाव उवसग्गे कारं-कारं खेयखिण्णो विसण्णो जाओ, परं भयवं अविसण्णे अणाइले अव्वहिए अदीणमाणसे तिविहमणवयकायगुत्ते चेव सव्वे वि उवसग्गे सम्मं सहीअ, खमीअ तितिक्खीय अहियासीअ। तए णं से जक्खे ओहिणा पहुं मनसा वि अविचलियं दढं आभोगिय अगाहं खमासायरं पहुं सयावराहं खमाविय वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सयं ठाणं गओ। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तत्थ णं अट्ठाहिं मासद्धखमणेहिं

चाउम्मासं वइक्कमिय अत्थियाओ गामाओ पडिनिक्खमइ। पडिनिक्खमित्ता पवणुव्व अप्पडिहयविहारेणं विहरमाणे सेयंवियं णयरिं पट्ठिए ॥४६॥

शब्दार्थ—[तए णं से विहरमाणे भगवं पढमंमि चाउमासम्मि अत्थियं गामं समणुपत्ते] उसके बाद विहार करते हुए भगवान प्रथम चातुर्मास अस्थिक ग्राम में पधारे [तत्थ णं सूलपाणिजक्खस्स जक्खायणे राओ काउसग्गे ठिए] वहां शूलपाणि नामक यक्ष के यक्षायतन में रात्रि के समय कायोत्सर्ग में स्थित हुए। [दुल्लक्खे सो जक्खो सयपगडिं अणुसरंतो भगवं उवसग्गे। इतत्थ पुव्वं सो दंसमसगाइं समुप्पाइय पहुं तेहिं दंसीअ] दुष्ट भावनावाले उस यक्षने अपनी प्रकृति का अनुसरण करते हुए भगवान को उपसर्ग किया। पहले तो उसने डांस मच्छर उत्पन्न करके उन से प्रभु को डसवाया। [तेण उवसग्गेण अक्खुद्धं सज्झाणलुद्धं विलोइय विच्छिए उप्पाइय तेहिं दंसीअ] उस उपसर्ग से भी भगवान को अक्षुब्ध और धर्मध्यान में लुब्ध—लीन देखकर बिच्छुओं को

उत्पन्न करके उन से डंसवाया। [तेण वि अवियलं अविकंपियं पासिय विउव्विएण महाविसेण महासीविसेण भगवओ सरीरम्मि दंसीअ] उस उपसर्ग से भी अचल और अकम्पित देखकर विकुर्वणा से उत्पन्न किये हुए अत्यन्त विष वाले महान् सर्प से भगवान के शरीर को डंसवाया। [तेण वि वायजाएण अयलमिव अवियलं दट्ठूणं तेण रिच्छा विउव्विया] जैसे पवन समूह से पर्वत अचल रहता है उसी प्रकार भगवान को सर्पदंश से भी अचल देखकर उसने रीछों के रूप बनाये [ते य पखरण खरधाएहिं उवद्दवीअ] रिछों के रूप में उसने तीखे नाखूनों से भगवान को कष्ट दिया [तओ वि अणुविग्गं सयज्झाणलग्गं दट्ठूणं विउव्वेएहिं घुरुघुरायमाणेहिं सुलग्गमुहखुरेहिं सुयरेहिं फालीय] उस से भी अनुद्विग्न और ध्यान में संलग्न देखकर विकुर्वणाजनित, घुरघुराते हुए, कांटे की नौंक के जैसे तीखे दांतवाले शूकरों से विदारण करवाया [तेण वि अविसण्णं झाणणिसण्णं विलोइय सज्जो समुप्पाइएणं कुलिसग्गतिक्खदंतग्गेणं करिणा उव-

द्दवीअ] उससे भी विषाद को अप्राप्त और ध्यानमग्न भगवान को देखकर शीघ्र ही उत्पन्न किये हुए वज्र की नोंक के समान तीखे दांतों के अग्रभाग वाले हाथी से भगवान को कष्ट दिया [तेण वि दढं थिरं अवियलं दट्ठूणं विउव्विएहिं खरतरनखरदाढेहिं वग्घेहिं उवद्दवीअ] उस से भी भगवान को दृढ स्थिर एवं अविचल देखकर विकुर्वणा से उत्पन्न किये हुए अतिशय तीक्ष्ण नख और दाढोंवाले व्याघ्रों से उपसर्ग करवाया [तेण वि अवियलं पासिय विउव्विएहिं केसरीहिं खरयरनहरदाढग्गघाएहिं उवद्दवीअ] उस से विचलित न हुए देखकर विकुर्वणा से उत्पन्न किये हुए केसरीसिंहों द्वारा तीक्ष्णतर नखों और दाढों के अग्रभाग से उपसर्ग करवाया। [तेण पुणो वि थिरं थिरसरीरं विलोइय पगडीए अईव वियरालेहिं वेयालेहिं उवद्दवीअ] उस उपसर्ग से भी भगवान को स्थिर चित्त और स्थिरकाय देखा तो स्वभाव से अत्यन्त विकराल वेतालों से उपसर्ग करवाया [एवं सो दुरासओ जक्खो पुण्णं रत्ति

जाव उवसग्गे कारं कारं खेयखिन्नो विसण्णो जाओ] इस प्रकार वह दुराशय यक्ष सारी रात उपसर्ग करवा करवा कर खेदखिन्न और विषादयुक्त हो गया [परं भयवं अविसण्णे अणाइले अव्वहिए अदीणमाणसे तिविह मनवयकायगुत्ते चेव ते सव्वे वि उवसग्गे सम्मं सहीअ, खमीअ, तितिक्खीय, अहियासीअ] परन्तु भगवान ने विषाद रहित कलुषता रहित व्यथा रहित दीनता रहित तथा मनवचन काया से गुप्त जितेन्द्रिय रहकर ही उन सब उपसर्गों को सम्यग् प्रकार से सहन किया बिना क्रोध के सहन किया अदीन भाव से सहन किया और निश्चलता के साथ सहन किया [तए णं से जक्खे ओहिणा पहुं मणसा वि अविचलियं दढं आभोगिय अगाहं खमासायरं पहुं सयावराहं खमाविय वंदइ नमंसइ] तब यक्ष ने अवधिज्ञान से प्रभु को मन से भी चलित न हुआ तथा दृढ जानकर अथाग क्षमा के सागर प्रभु से अपने अपराध के लिए क्षमा मांग कर वन्दन नमस्कार किया [वंदित्ता नमंसित्ता सयं ठाणं गओ] वन्दना नमस्कार करके

अपनी जगह चला गया। [तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे] उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर ने [तत्थ णं अट्ठाहिं मासद्धखमणेहिं चाउम्मासं वइक्कमिय अत्थियाओ गामाओ पडिनिक्खमइ] उस अस्थिक ग्राम में चातुर्मास किया और चातुर्मास में अर्द्धमासखमण किया। इस प्रकार भगवान आठ अर्धमासखमणों से चातुर्मास व्यतीत करके अस्थिक ग्राम से निकले [पडिनिक्खमित्ता पवणुव्व अप्पडिहयविहारेणं विहरमाणे सेयंबियं णयरिं पट्ठिए] निकलकर वायु के समान अप्रतिबद्ध विहार से विचरते हुए भगवान श्वेताम्बीनगरी की ओर पधारे ॥४६॥

भावार्थ—तत्पश्चात् क्रम से विहार करते हुए श्री वीर प्रभु पहले चौमासे में अस्थिक नामक ग्राम में पधारे। वहां शूलपाणि नामक यक्ष के यक्षायतन में, रात्रि के समय, कायोत्सर्ग करके स्थित हुए। वह यक्ष दुष्ट भावनावाला था। उसने अपने स्वभाव के अनुसार भगवान् को उपसर्ग दिया। उसने डांसों और मच्छरों के अनेक समूह वैक्रिय

शक्ति से उत्पन्न करके भगवान् को उनसे कटवाया। भगवान् डांस–मच्छरों के द्वारा उत्पन्न किये उपसर्ग से क्षुब्ध न हुए, और प्रशस्त ध्यान में लीन रहे तो उसने विच्छुओं को उत्पन्न करके उनसे डसवाया। इस उपसर्ग से भी भगवान् को विचलित या कंपित हुए न देख उसने वैक्रियशक्ति से उत्पन्न किये गये उग्र विषवाले विशालकाय सर्प से भगवान् के शरीर में डसवाया। भगवान् इससे अकंपित रहे, जैसे पवन के समूह से पर्वत अकंपित रहता है, तब उस यक्ष ने भालुओं–रीछों की विकुर्वणा की। भालुओंने अनेक तीक्ष्ण नखों से भगवान् को उपद्रव किया। यक्षने देखा कि भगवान् उससे भी त्रास को प्राप्त न हुए और आत्मध्यान में लीन हैं। तो उसने विकुर्वणा से उत्पन्न किये हुए घुरघुर शब्द करते हुए, कांटे की नौंक के सदृश तीक्ष्ण दांतों वाले शूकरों से भगवान् को विदारण करवाया। उससे भी भगवान को विषाद न हुआ और वे ध्यान में स्थिर रहे तो उसने तत्काल ही वज्र के अग्रभाग के जैसे तीखे दन्ताग्रभागों वाले

हाथियों द्वारा उपसर्ग किया। उस पर भी भगवान् को दृढ, स्थिर अतएव मन वचन काय से अविचल देखकर यक्षने अत्यन्त तीखे नाखूनों, एवं दांतों वाले व्याघ्रों द्वारा उपसर्ग किया। तब भी प्रभु अविचल रहे तो यक्ष ने अतिशय तीखे नखों और दाढों के अग्रभाग वाले सिंहों द्वारा उपसर्ग करवाया, तब भी भगवान् का न तो चित्त ही चंचल हुआ, और न शरीर ही। वे कार्योत्सर्ग से विचलित न होकर जब स्थिर ही बने रहे, तो यह देखकर यक्ष ने स्वभाव से विकराल वैतालनामक व्यन्तरदेवों के द्वारा भगवान् को सताया। इस प्रकार उस दुष्ट स्वभाववाले यक्षने सारी रात भगवान् को उपसर्ग किये। उपसर्ग करके वह स्वयं थक गया, इस कारण उसे विषाद हुआ, परन्तु भगवान् महावीर को विषाद नहीं हुआ। वे द्वेष से अछूत रहे। उन्होंने उद्वेग का अनुभव नहीं किया। उनके मनमें दीनता का प्रवेश न हुआ। वे कृत–कारित–अनुमोदना–रूप तीनों करणों से युक्त मन, वचन, काय से गुप्त रहे, और यक्ष द्वारा किये हुए समस्त उपसर्गों को

निर्भय भाव से, शान्तिपूर्वक अदीनता के साथ तथा निश्चल रूप से सहन करते रहे। तब उस यक्षने अवधिज्ञान से जाना कि प्रभु तो मन से भी ध्यान से विचलित नहीं हुए। यही नहीं, उनकी प्रबल स्थिरता भी उसने देखी तब अथाह क्षमा के सागर दूसरों द्वारा किये अपकार को सहन करनेवाले एवं गुण के समुद्र भगवान् से अपने अपराध की क्षमा मांगी। उन्हें वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके वह अपने स्थान पर चला गया। उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर ने उस अस्थिक ग्राम में आठ अर्धमास क्षपण (पन्द्रह-पन्द्रह दिन के आठ बार के) तपश्चरण करके वह चातुर्मास व्यतीत किया। चातुर्मास व्यतीत करके भगवान् अस्थिक ग्राम से निकले और वायु के समान अप्रतिबद्ध-विहार करते हुए श्वेताम्बी नामक नगरी की ओर पधारे ॥४६॥

मूलम्—अह य सेयंवियाए णयरीए दो मग्गा संति-एगो वंको बीओ

उज्जू य। तत्थ जे से उज्जुमग्गे तत्थ एगा वियडा महाडवी अत्थि। तीए वियडाए महाडवीए चंडकोसिओ णामं एगो दिट्ठीविसो कालोव्व महाविगरालो कालो वालो णिवसमाणो आसी। सो य नियकूरयाए तेण मग्गेण गमणागमणं कुणमाणे पंथजणे दिट्ठीए जालेमाणे घाएमाणे मारेमाणे दंसेमाणे विहरइ। सो तीए महाडवीए परिभमिय परिभमिय जं किंचि सउणगमवि पासइ तं पि णं डहइ। तस्स विसप्पहावेण तत्थ तणाणि वि दड्ढाणि, णय पुणो नवीणाणि तणाणि समुब्भवंति एएणं महोद्दवेण सो मग्गो आरुद्धो आसी। तेण उज्जु-मग्गेण गच्छमाणं भगवं गोवदारगा एवं वइंसु—'रे भिक्खू! एएण उज्जुणा मग्गेण मा गच्छाहि, वंकेण गच्छाहि, जे णं कण्णो तुट्टइ तेण कण्णभूसणेण वि किं पओअणं? उज्जुमग्गे महाडवीए एगो महाविगरालो दिट्ठीविसो सप्पो

चिट्ठइ। सो तुमं भक्खिहिइ' तं सोच्चा पहू णाणबलेण चिंतीअ—जं सो सप्पो जइवि उग्गकोहपगडी तहवि सुलहबोही अत्थि, जीवस्स कंचि वि अणिट्ठकरिं पयडिं तिव्वत्तणेण उदयावलियं पविट्ठं दट्ठूणं जणा तं परिवट्टणसंभवबाहिरं मन्नंति, वत्थुओ सो तहा भविउं न अरिहइ, मणस्स कोऽवि अंसो जया वियडो होइ तया सो उचिएण उवाएण परिवट्टिउं सक्किज्जइ। एयावइयं चेव नो किंतु अणिट्ठंसस्स जावइयं तिव्वं बलं पडिकूले विसए हवइ तं तावइयं चेव अणुकूले वि विसए परिवट्टिउं सक्किज्जइ, काइवि बलवई चित्तठिई इट्ठा वा अणिट्ठा वा होउ, सा अइसइओवओगियाए गेज्झा एव, जओ दुविहाऽवि चित्तट्ठिई समाणसामत्थवई हवइ, परमिमो भेओ एगा वट्टमाणक्खणे सुहे पओइया अन्नाय असुहे, तहं वि दुण्हं कज्जसाहणसामत्थं तुल्लं चेव

गणणिज्जं। जीए सत्तीए सुहा वा असुहा वा परिणामा हवंति। सा सत्ती अवस्सं इच्छणिज्जा एवं मुणेयव्वा। जहा—आमन्नाणं साउपक्कन्नयाए पायणे अणेगोवओगिवत्थूणं भासरासी करणे य समत्था सत्ती एगाओ चेव अग्गिओ समुब्भवइ तहा सुहा असुहकायव्व परायणा सत्ती अप्पणो एगओ एव अंसाओ उब्भवइ, परं तीए सत्तीए उवओगं सुहे असुहे वा कुज्जा। इच्चेयावइयं अवसिस्सइ। मणुस्साणं एयारिसो वियारो भमभरिओ दीसइ, जं तिव्वा अणिट्ठपवित्तिगरी सत्ती भुज्जो भुज्जो धिक्करिय बाहिं करणिज्जेति, परं तेण सह एयं विस्सरंति जं मणुस्सस्स जा सत्ती जावइयं अणिट्ठं काउं सक्केइ सा चेव सत्ती इट्ठमवि तावइयं चेव काउं सक्केइ, जहा जो चक्कवट्टी जीए सत्तीए सत्तम नरय पुढवि जोग्गाइं जावइयाइं हिंसाइ कूरकम्माइं अज्जिउं सक्केइ, सो चेव चक्क-

वट्टी जइ तं सत्तिं कज्जे संजोएइ, तो तावइयाइं चेव अहिंसाइ सुहकम्माइं अज्जिय मोक्खमावि पत्तुं सक्कइ। जे जीवा सुहमसुहं वा किं पि काउं न सक्केंति जे य तेयहीणा गलिबालिवद्दा विव होंति जे य जडा विव जगसत्ताए आहणिज्जंति। जेसिं पामरयाए भोगलालसाए दारिद्दस्स पमायस्स य अवही एव नत्थि एयारिसा जीवा न किं पि काउं सक्केंति। जेसु पुण अत्तबलसोरियाइयं होइ ते सुहे असुहे वा पज्जाए होंतु इच्छणिज्जा एव। जओ असुहपज्जाए वि तं अत्तबलाइयं जे ण अप्पंसेण निव्वत्तं तस्स अप्पंसस्स सत्ती वि खओवसमभावेण चेव जीवेण पाविज्जइ। सा सत्ती निमित्तं पाविय जहिट्ठं परिवट्टिउं सक्किज्जइ, अओ तत्थ गमणे लाहो एव-त्ति चिंतिय भगवं तेणेव उज्जुणा मग्गेण पट्ठिए। जया भयवं तीए अडवीए पविट्ठे। तया तत्थ धूली पाणिणं

गमणागमणाभावाओ चरणाइचिंधरहिया जहट्ठिया चेव। जलनालियाओ जलाभावेण सुक्काओ। जुण्णा रुक्खा तव्विसजालाए दड्ढा सुक्का य। सडिय-पडियजुण्णपत्ताइ संघाएण भूमिभागो आच्छाइओ, वम्मीयसहस्सेहिं संकंतो लुत्तमग्गो य आसी। कुडीरा सव्वे भूमिसाइणो संजाया। एयारिसीए महा-डवीए भगवं जेणेव चंडकोसियस्स वम्मीयं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तत्थ काउसग्गेण ठिए ॥४७॥

शब्दार्थ—[अह य सेयंबियाए णयरीए दो मग्गा संति–एगो वंको बीओ उज्जू] श्वेताम्बी नगरी के दो मार्ग थे एक टेढा और दूसरा सीधा [तत्थ जे से उज्जुमग्गो तत्थ एगा वियडा महाडवी अत्थि] जो मार्ग सीधा था, उसमें एक विकट महाअटवी पडती थी [तीए वियडाए महाडवीए चंडकोसीओ नामं एगो दिट्ठिविसो कालोव्व महाविगरालो

कालो वालो णिवसमाणो आसि] उस भयानक जंगल में चण्डकोशिक नाम का काल के जैसा विकराल काला दृष्टि विष सर्प रहता था [सो य निनिय कूरयाए तेण मग्गेण गमणाऽऽगमणं कुणमाणे पंथजणे दिट्ठीए जालेमाणे मारेमाणे दंसेमाणे विहरइ] वह अपनी क्रूरता से उस रास्ते से आने जानेवाले पथिकों को अपनी दृष्टि के विष से जलाता घात करता मारता और डंसता था [सो तीए महाऽवीए परिभमिय परिभमिय जं कंचि सउणगमवि पासइ तं पि णं डहइ] वह उस जंगल में घूम घूम कर जिस किसी पक्षी को भी देखता, उसी को भस्म कर देता था [तस्स विसप्पहावेण तत्थ तणाणि वि दड्ढाणि] उसके विष के प्रभाव से वहां का घास भी जल गया था [ण य पुणो नवीणाणि तणाणि समुब्भवंति] उस विष के कारण वहां नया घास भी नहीं उगता था। [एएण महोवद्दवेण सो मग्गो ओरुद्धो आसी] इस महान उपद्रव के कारण वह मार्ग रुक गया था अर्थात् उधर से कोई आता जाता नहीं था [तेण उज्जुमग्गेण गच्छ-

माणं भगवं गोवदारगा एवं वइसु] उस सीधे मार्ग से भगवान को जाते देखकर ग्वाल बालकों ने इस प्रकार कहा–[रे भिक्खू ! एएण उज्जुणा मग्गेण मा गच्छाहि, वंकेण गच्छाहि] अरे भिक्षु! इस सरल रास्ते से मत जाओ; किन्तु टेढे रास्ते से जाओ [जे णं कण्णो तुट्टइ तेण कण्णभूसणेण वि किं पओअणं ?] जिससे कान टूट जाय, उस कान के गहने से क्या लाभ ? [उज्जुमग्गे महाडवीए एगो महाविगरालो दिट्ठिविसो सप्पो चिट्ठइ] इस सीधे मार्ग में महा अटवी में अत्यन्त भयंकर दृष्टिविष सर्प रहता है [सो तुमं भक्खिहिइ] वह तुम्हें खा जायगा [तं सोच्चा पहू णाणबलेण चिंतीअ] यह सुनकर भगवान ने ज्ञानबल से सोचा [जं सो सप्पो जइ वि उग्गकोहपगडी तहवि सुलहबोही अत्थि] यद्यपि वह सर्प भयंकर क्रोधी है फिर भी वह सुलभबोधि है [जीवस्स कंचिवि अणिट्ठकरिं पयडिं तिव्वत्तणेण उदयावलियं पविट्ठं दट्ठूणं जणा तं परिवट्टण-संभवबाहिरं मन्नंति] जीव की किसी अनिष्टकारी प्रकृति को तीव्रता के साथ उदया-

चण्डकौशिक वल्मिकपार्श्वे भगवतः कायोत्सर्गः

वस्था में प्रविष्ट देखकर लोग यह मान लेते हैं कि इसकी प्रकृति में परिवर्तन आना संभव नहीं है। [वत्थुओ सा तहा भविउं न अरिहइ] किन्तु वास्तव में यह बात नहीं है [मणस्स कोऽवि अंसो जया वियडो होइ तया सो उचिएण उवाएण परिवट्टिउं सक्किज्जइ] मन का कोई भी अंश जब विकृत हो जाता है तो उचित उपाय से उसे बदला जा सकता है [एयावइयं चेव नो किंतु अणिट्ठंसस्स जावइयं तिव्वं बलं पडिकूले विसए हवइ तं तावइयं चेव अणुकूलेऽवि विसए परिवट्टिउं सक्किज्जइ] यही नहीं, अनिष्ट अंश का जितना बल प्रतिकूल विषय में होता है उतना ही तीव्र और अनुकूल विषय में भी पलटा जा सकता है [काइवि बलवइ चित्तठिई इट्ठा वा अनिट्ठा वा होउ] चित्त की कोई भी बलवती स्थिति, चाहे वह इष्ट हो या अनिष्ट हो [सा अइसइ ओवओगियाए गेज्झा एव] अतिशय उपयोगी रूप में ही उसे ग्रहण करना चाहिये [जओ दुविहा वि चित्तट्ठिई समाण सामत्थवई हवइ] कारण यह है कि दोनों (इष्ट और अनिष्ट)

प्रकार की चित्तस्थिति समान शक्ति संपन्न होती है [परमिमो भेओ—एगा वट्टमाणक्खणे सुहे पओइया अन्नाय असुहे] दोनों में अन्तर यही है कि एक वर्तमान में शुभ में प्रयुक्त हो रही है और दूसरी अशुभ में [तह वि दुण्हं कज्जसाहणसामत्थं तुल्लं चेव गणणिज्जं] फिर भी दोनों का अपने अपने कार्य को सिद्ध करने का सामर्थ्य तो समान ही गिना जाना चाहिये [जीए सत्तीए सुहा वा असुहा वा परिणामा हवंति, सा सत्ती अवस्सं इच्छणिज्जा एव मुणेयव्वा] जिस मूलभूत शक्ति से शुभ या अशुभ परिणाम उत्पन्न होते हैं वह शक्ति अवश्य ही वांछनीय है ऐसा समझना चाहिये [जहा—आमन्नाणं साउपक्कन्नयाए पायणे अणेगोवओगिवत्थूणं भासरासी य समत्था सत्ती एगाओ च्चेव अग्गिओ समुब्भवइ] उदाहरण के लिए अग्नि की शक्ति को लीजिए एक ही अग्नि की शक्ति कच्चे अन्न को अच्छी प्रकार पकाती भी है और अनेक उपयोगी वस्तु को भस्म भी करती है। यह दो प्रकार की शक्ति अग्नि से ही उत्पन्न होती है [तहा सुहाऽ-

सुहकायव्व परायणा सत्ती अप्पणो एगओ एव अंसाओ उब्भवइ] इसी प्रकार शुभ और अशुभ कर्तव्य में प्रयुक्त होनेवाली शक्ति आत्मा के एक ही अंश से उत्पन्न होती है। [परं तीए सत्तीए उवओगं सुहे असुहे वा कुज्जा, इच्चेयावइयं अवसिस्सइ] यह बात दूसरी है कि उस शक्ति का उपयोग शुभ में करना या अशुभ में करना, यही शेष रहता है। यह व्यक्तियों के अधीन है। [जं तिव्वा अणिट्ठपवित्तिगरी सत्ती भुज्जो भुज्जो धिक्कारिय बाहिं करणिज्जेत्ति मणुस्साणं एयारिसो वियारो भमभरियो दीसइ] 'तीव्र अनिष्ट वृत्ति को उत्पन्न करनेवाली शक्ति का बार बार धिक्कार कर बहिष्कार करना चाहिये' मनुष्यों का यह विचार भ्रम पूर्ण है [परं तेण सह एयं विस्सरंति जं मणुस्सस्स जा सत्ती जावइयं अनिट्ठं काउं सक्केइ सा चेव सत्ती इट्ठमवि तावइयं चेव काउं सक्कइ] ऐसा विचार करनेवाले लोग भूल जाते है कि मनुष्य की जो शक्ति जितना अधिक अनिष्ट कर सकती है, वही शक्ति उतना ही अधिक इष्ट साधन भी कर सकती है।

[जहा जो चक्कवट्टी जीए सत्तीए सत्तमनरय पुढवि जोग्गाइं जावइयाइं हिंसाइ कूरकम्माइं अज्जिउं सक्केइ] जो चक्रवर्ती जिस शक्ति से सातवें नरक में जाने योग्य जितने हिंसादि क्रूर कर्मों का अर्जन कर सकता है [सो चेव चक्कवट्टी जइ तं सत्तिं इट्ठकज्जे संजोएइ] वही चक्रवर्ती यदि उस शक्ति को अच्छे कार्य में लगाता है [तो तावइयाइं चेव अहिंसाइ सुहकम्माइं अज्जिय मोक्खमवि पत्तुं सक्केइ] और उस शक्ति से अहिंसा आदि शुभ कर्म का उपार्जन करता है तो वह उस शक्ति से मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। [जे जीवा सुहमसुहं वा किंपि काउं न सक्केंति] जो जीव सामर्थ्य विहीन हैं–शुभ या अशुभ कुछ भी नहीं कर सकते [जे य तेयहीणा गलिबलिवद्दा विव होंति] जो गलियार बैल की तरह तेजोहीन होते हैं [जे य जडा विव जगसत्ताए आहणिज्जंति] जो जड की भांति जगत् की सत्ता से दबे रहते हैं [जेसिं पामरयाए भोगलालसाए दारिद्दस्स पमायस्स य अवही एव नत्थि] जिनकी पामरता की भोगलालसा की दरिद्रता की और

प्रमाद की कोइ सीमा ही नहीं है [एयारिसा जीवा न किंपि काउं सक्केंति] ऐसे प्राणी कुछ भी नहीं कर सकते [जेसु अत्तबलसोरियाइयं होइ ते सुहे असुहे वा पज्जाए होंतु इच्छणिज्जा एव] जिन में आत्मबल है, शौर्य आदि गुण हैं वे चाहे शुभ अवस्था में हों या अशुभ अवस्था में हो वांछनीय ही है [जओ असुहपज्जाएवि तं अत्तबलाइयं जेण अप्पंसेण निव्वत्तं, तस्स अप्पंसस्स सत्ती वि खओवसमभावेण चेव जीवेण पाविज्जइ] क्योंकि अशुभ अवस्था में भी वह आत्मबल आदि जिस आत्मांश से निष्पन्न हुए है, उस आत्मांश की शक्ति भी क्षयोपशम भाव से ही जीव को प्राप्त होती है [सा सत्ती निमित्तं पाविय जहिट्ठं परिवट्टिउं सक्किज्जइ] वह शक्ति निमित्त पाकर इच्छानुसार बदली जा सकती है [अओ तत्थ गमणे लाहो एव त्ति चिंतिय भगवं तेणेव उज्जुणा मग्गेण पट्ठिए] अतएव वहां जाने में लाभ ही है यह सोचकर भगवान ने उसी सीधे मार्ग से प्रस्थान किया [जया भगवं तीए अडवीए पविट्ठे तया तत्थ धूली पाणिणां गम-

णागमणाभावाओ चरणाइ चिंधरहिया जहट्ठिया चेव] जब भगवान उस अटवी में प्रविष्ट हुए तो वहां की धूल प्राणियों का गमनागमन न होने से चरण चिन्ह आदि से रहित, ज्यों कि त्यों थी। [जलनालियाओ जलाभावेण सुक्काओ] जल की नालियां जलाभाव से सूख गइ थी [जुण्णा रुक्खा तव्विसजालाए दड्ढा सुक्का य] पुराने पेड चंडकौशिक के विष की ज्वालाओं से जल गये थे और सूख गये थे [सडियपडिय जुण्णपत्ताइ संघाएण भूमिभागो आच्छाइओ] भूभाग सडे पडे जीर्ण पत्तों के ढेर से ढक गया था। [वम्मीयसहस्सेहिं संकंतो लुत्तमग्गो य आसी] हजारों बांबियों से व्याप्त था और मार्ग लुप्त हो गया था [कुडीरा सव्वे भूमिसाइणो संजाया] वहां की सभी छोटी छोटी कुटियां धराशाही हो गइ थी [एयारिसीए महाडवीए भगवं जेणेव चंडकोसियस्स वम्मीयं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तत्थ काउसग्गेण ठिए] ऐसी महाअटवी में जहां चण्डकौशिक की बांबी थी वहां पहुंच कर भगवान उस बांबी के पास कायोत्सर्गपूर्वक स्थित हो गये ॥४७॥

चण्डकौशिक वल्मिकपार्श्वे भगवतः कायोत्सर्गः

भावार्थ—श्वेताम्बी नगरी के दो मार्ग थे—एक चक्कर काटकर और दूसरा सीधा था। इन दोनों में जो सीधा रास्ता था उस में एक भयानक जंगल पडता था। उस भयानक जंगल में चंडकौशिक नामक एक सांप रहता था। वह दृष्टिविष था, अर्थात् उसकी दृष्टि में विष था। जिस पर वह दृष्टि पडे वह भस्म हो जाय। वह मृत्यु के जैसा अत्यंत भयंकर और काले रंग का था। वह सर्प अपने दुष्ट स्वभाव के कारण उस महाटवी के मार्ग से गमन—आगमन करनेवाले पथिकों को अपनी दृष्टि से जलाता हुआ पूंछ से ताडना करता हुआ, प्राणहीन बनाता हुआ, और दांतों से प्रहार करता हुआ रहता था। वह उस अटवी में बार—बार इधर—उधर घूमता हुआ जिस किसी पक्षी को भी देखता, उस आकाशचारी पक्षी को भी अपने दृष्टिविष से भस्म कर देता था। ऐसी स्थिति में जमीन पर चलने वाले मनुष्य आदि प्राणियों का तो कहना ही क्या? उस चण्डकौशिक सर्प के विष के प्रभाव से विष की ज्वालाएँ फैलने से, उस अटवी का

घास–फुस भी भस्म हो गया था। भस्म होने के बाद नया घास उगता नहीं था। चंडकौशिक के विषजनित इस उपद्रव के कारण अटवी का वह मार्ग रुक गया था कोई आवागमन नहीं करता था। उसी सीधे मार्ग से भगवान को जाते देख गुवालों के लडकों ने भगवान् से कहा–हे भिक्षु! इस सीधे रास्ते से मत जाओ, चक्करदार रास्ते से जाओ। जिससे कान ही टूट जाय, उस कान के आभूषण से क्या प्रयोजन? अर्थात् इस सीधे रास्ते से क्या लाभ जब कि इस से जाने पर लक्ष्य स्थान पर पहुंचने से पहले ही प्राणों से हाथ धोना पडे? यह सीधा रास्ता कान तोड देनेवाले गहने के समान है। इस रास्ते में एक महाविकराल दृष्टिविष सर्प है। वह तुम्हें खा जायगा। गुवालों के लडकों की बात सुनकर श्री महावीर स्वामीने अपने ज्ञानबल से विचार किया–'यद्यपि चंडकौशिक सर्प उग्र क्रोध स्वभाववाला है, फिरभी है सुलभ बोधि है। जीव की किसी भी अनर्थकारिणी प्रकृति को, उग्र रूप से, उदयावलि का में आई देख-

कर लोग मान लेते हैं कि उसमें परिवर्तन होना संभव नहीं हैं. किन्तु यथार्थ में वह अपरिवर्तनीय नहीं होती । जब चित्त का कोई भी अंश विकारयुक्त हो जाता है तो उचित उपाय से उसे विकृत अवस्था से अविकृत अवस्था में पलटा जा सकता है। इतना ही नहीं कि चित्त के विकृत अंश को बदलकर अविकृत बनाया जा सकता है, किन्तु उस विकृत अंश का जितना सामर्थ्य प्रतिकूल अनिष्ट विषय में होता है, उतने ही सामर्थ्य के साथ उसका अनुकूल इष्ट विषय में भी झुकाव हो सकता है। चित्त की कोई भी स्थिति क्यों न हो, अगर उस में बल है, वह सामर्थ्यशालिनी है, तो चाहे वह अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल हो, अर्थात् वह कुमार्गगामिनी हो या सुमार्गगामिनी हो, उस उत्कर्ष प्राप्त शक्ति को उपयोगी ही मानना चाहिये । कारण यह है कि चित्त की यह दोनों प्रकार की स्थितियां तुल्य सामर्थ्यवाली होती है । दोनों में भेद है तो केवल यही कि पहली चित्तस्थिति वर्तमान में शुभफलजनक कार्य में, फिर भी

उन दोनों चित्तस्थितियों में शुभ–अशुभ फल को उत्पन्न करने की शक्ति तो समान ही है। अतएव जिस शक्ति के कारण शुभ या अशुभ परिणाम उत्पन्न होते हैं, वह मूलभूत शक्ति निस्सन्देह अपेक्षित ही हैं। जैसे अग्नि की शक्ति कच्चे चावल आदि अन्नों को भली भांति पकाने में समर्थ होती है, और अनेकानेक उपयोगी वस्तुओं को भस्म करने में भी समर्थ होती हैं, वह द्विविध शक्ति एक ही अग्नि से उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार शुभ और अशुभ कर्तव्य में प्रयुक्त होनेवाली शक्ति भी आत्मा के एक ही अंश से उत्पन्न होती है। अलबत्त उसका शुभ कार्य में उपयोग करना यही शेष रहता है। यह व्यक्तियों के अधीन है। सबला अनिष्ट–प्रवृत्ति जनक शक्ति बार–बार धिक्कार देकर दूर करने योग्य हैं। ऐसा जो लोग विचार करते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि 'मनुष्य की जो शक्ति, जितना अनिष्ट कर सकती है, वही उतना इष्ट भी कर सकती है। इस विषय में चक्रवर्ती का उदाहरण लीजिए। कोई चक्रवर्ती जिस शक्ति से सातवीं

नरक भूमि में जाने योग्य जितने प्राणातिपात आदि क्रूर कर्म उपार्जन करने में समर्थ होता है, वही चक्रबर्ती उसी शक्ति को अगर शुभ में लगा दे तो उतने ही अहिंसा आदि को उपार्जन करके मोक्ष भी पा सकता है। जो प्राणी शुभ और अशुभ, दोनों में से किसी भी एक को उग्र शक्ति के साथ करने में असमर्थ होते हैं, और जो निस्तेज हैं, वलियार बैल के समान है, जो जड की भांति जगत् की शक्ति से अभिभूत हो जाते हैं और जिन की पामरता, भोगकामना, दरिद्रता और प्रमाद की कोई सीमा ही नहीं है, ऐसे प्राणी क्या कर सकते है ? उनसे कुछ भी नहीं हो सकता। इनके विपरीत, जिन जीवों में आत्मबल है, शूरता आदि है, वे शुभ या अशुभ किसी भी पर्याय में क्यों न हो, समानरूप से वांछनीय है। क्यों कि अशुभ पर्याय में भी जो आत्मबल आदि जिस आत्मांश से उत्पन्न हुआ है, उस आत्मांश की शक्ति अनर्थकारी सामर्थ्य भी क्षयोपशम के द्वारा ही जीव को प्राप्त होत है। वह क्षयोपशममात्रजनित

शक्ति, कारण मिलने पर इच्छानुसार परिवर्तित की जा सकती है, अतः जहां चंडकौशिक रहता है, वहां जाने में लाभ हो सकता है। इस प्रकार विचार कर श्री वीर प्रभु उसी सीधे मार्ग से रवाना हुए।

जिस समय भगवान् महावीर उस भयानक अटवी में प्रविष्ट हुए, उस समय वहां की धूल पैरों आदि के निशानों से रहित थी, क्यों कि वहां किसीका भी आवागमन नहीं होता था, अतएव वह ज्यों कि त्यों थी। वहां की जल की नालियां जलाभाव के कारण सूखी पड़ी थीं। कितने ही पुराने पेड़ चंडकौशिक के विष की ज्वाला से भस्म हो गये थे और कितने ही सूख गये थे। अटवी का भूभाग सडे पडे और सूखे पत्तों के ढेरों से आच्छादित हो गया था और हजारों बावियों से व्याप्त था। मार्ग कहीं दिखाई नहीं देता था। वहां के सभी कुटीर धराशाइ [जमीन दोस्त] हो गये थे। ऐसी दुरभि अटवी में भगवान् वहीं पहुंचे; जहां चंडकौशिक की बांबी थी। वहां पहुंचकर भगवान्

उस बांवी के पास ही कायोत्सर्ग पूर्वक स्थित हो गये ॥४७॥

मूलम्—तए णं से चंडकोसिए विसहरे कुद्धे समाणे बिलाओ बाहिरं निस्सरीय काउस्सग्गट्ठियं पहुं दट्ठूणं चिंतीअ केरिसो इमो मच्चुभयविप्पमुक्को मणुस्सो जो खाणूविव थिरत्तणेण ठिओ, संपइ चेव इमं अहं विसजालाए भासरासी करोमि त्ति कट्टु कोहेणं धमधमंतो आसुरुत्तो मिसिमिसेमाणो विसग्गिं वममाणो फणं वित्थारयंतो भयंकरेहिं फुक्कारेहिं दिट्ठिं फोरेमाणो सूरं निज्झाइत्ता सामि पलोएइ। सो न डज्जइ जहा अण्णे, एवं दोच्चंपि तच्चंपि पलोएइ तहवि सो न डज्झइ, ताहे पहुं पायंगुट्ठम्मि डसइ, डसित्ता मा मे उवरि पडिज्ज त्ति कट्टु पच्चोसक्कइ। तहवि पहू न पडइ। काउसग्गाओ लेसमवि न चलइ। एवं दोच्चंपि तच्चंपि डसइ, तहवि णो पडइ, ताहे अम-

रिसेणं पहुं पलोयंतो अच्छइ। एवं तं भगवं संतमुहं अउलकंतिमंतं सोम्मं सोम्मवयणं सोम्मदिट्ठिं माहुरियगुणजुत्तं खमासीलं पिच्छंतस्स तस्स ताणि विसभरियाणि अच्छीणि विज्झाइयाणि। तओ कोहपुंजरूवो सो चंडकोसिओ थद्धो जाओ। पहुस्स संतिबलेण तस्स कोहो समिओ। तस्स कोहजालाए उवरिं पहुणा खमाजलं सित्तं तेण सो संतो संत सहावो संजाओ। एयारिसं संतिसंपन्नं चंडकोसियं दट्ठूणं पहू एवं वयासी—हे चंडकोसिय ! ओबुज्झ, ओबुज्झ, कोहं ओमुंच ओमुंच पुव्वभवे कोहवसेणेव कालमासे कालं किच्चा सप्पो जाओ। पुणोऽवि पावं करेसि, तेण पुणोऽवि दुग्गइं पावेहिसि। अओ अप्पाणं कल्लाणमग्गे पवत्तेहि—त्ति। एवं पहुस्स अमियसमं पबोहवयणं सोच्चा चंडकोसिओ वियारसायरे पडिओ पुव्वभवजाइं सरइ। तेण सो निय-

चण्डकौशिकस्य भगवदुपरि विषप्रयोगः चण्डकौशिकप्रतिबोधश्च

पुव्वभवे कोहपगडीए णियमरणं विण्णाय पच्छायावं करिय हिंसयपगडिं विमुंचिय संतसहावो संजाओ। तए णं से सप्पे तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता सुहेण झाणेण कालमासे कालं किच्चा उक्कोसओ अट्ठारस सागरोवमट्ठिइए सहस्साराभिहे अट्ठमे देवलोए उक्कोसट्ठिइओ एगोवयारो देवो जाओ। महाविदेहे सो सिज्झिस्सइ ॥४८॥

शब्दार्थ—[तए णं से चंडकोसिए विसहरे कुद्धे समाणे बिलाओ बाहिरं निस्सरिय काउसग्गट्ठियं पहुं दट्ठूणं चिंतिअ] तब वह चण्डकौशिक सर्प क्रुद्ध होकर बिल से बाहर निकला और कायोत्सर्ग में स्थित प्रभु को देखकर सोचने लगा–[केरिसो इमो मच्चुभयविप्पमुक्को मणुस्सो जो खाणू विव थिरत्तणेण ठिओ] कौन है यह मौत के भय से मुक्त मानव जो ठूठ की भांति स्थिर होकर खडा है ? [संपइ चेव इमं अहं

विसजालाए भासरासी करोमि–त्ति कट्टु] मैं इसको अभी विष की ज्वाला से भस्म कर देता हूं। ऐसा सोचकर [कोहेण धमधमंतो आसुरुत्तो मिसिमिसे माणो विसग्गि वममाणो फणं वित्थारयंतो भयंकरेहिं फुक्कारेहिं दिट्ठिं फोरेमाणो सुरं निज्झाइत्ता सामिं पलोएइ] क्रोध से धमधमाता हुआ अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, विष की ज्वालाओं का वमन करता हुआ फण फैलाता हुआ भीषण फूत्कार करता हुआ सूर्य की ओर देख-कर प्रभु की ओर देखनेलगा [सो न डज्झइ जहा अण्णे] किन्तु उसका भयंकर विष-दृष्टि से भी भगवान् अन्य की तरह जले नहीं [एवं दोच्चंपि तच्चंपि पलोएइ तहवि सो न डज्झइ] सर्प ने दूसरी बार और तिसरी बार भी देखा, फिर भी प्रभु जले नहीं [ताहे पहुं पायंगुट्ठम्मि डसइ] तब उसने प्रभु के पाव के अंगूठे में डंस लिया [डसित्ता 'मा मे उवरि पडिज्ज' त्ति कट्टु पच्चो सक्कइ] डंसकर 'यह मेरे ऊपर ही न गिरपडे' यह सोच कर दूर सरक गया [तहवि पहू न पडइ] फिर भी भगवान् गिरे नहीं [काउस्सग्गाओ

चण्डकौशिकस्य भगवदुपरि विषप्रयोगः चण्डकौशिकप्रतिबोधश्च

लेसमवि न चलइ] और न कायोत्सर्ग से ही चलित हुए [एवं दोच्चंपि तच्चंपि डसइ, तहवि णो पडइ, ताहे अमरिसेणं पहुं पलोयंतो अच्छइ] यह देखकर वह दूसरी बार और तीसरी बार भी प्रभु को डंसा फिर भी भगवान् न गिरे तब वह अत्यन्त क्रोध भरी दृष्टि से भगवान् को देखने लगा [एवं तं भगवं संतमुद्दं अउलकंतिमंतं सोम्मं सोम्मवयणं सोम्मदिट्ठिं माहुरियगुणजुत्तं खमासीलं पिच्छंतस्स तस्स ताणि विसभरियाणि अच्छीणी विज्झाइयाणि] शांतमुद्रावाले, अतुलकान्ति के धनी सौम्य, सौम्यमुख, सौम्यदृष्टि मधुरता के गुण से युक्त और क्षमाशील भगवान् को देखनेवाले उस चंडकौशिक की विषभरी आंखे शांत हो गई। [तओ कोहपुंजरूवो सो चंडकोसिओ थद्धो जाओ] क्रोध का पिण्ड वह चण्डकौशिक स्तब्ध रह गया [पहुस्स संतिबलेण तस्स कोहो समिओ] प्रभु की शान्ति के बल से उसका क्रोध शांत हो गया [तस्स कोहजालाए उवरिं पहुणा खमाजलं सित्तं, तेण सो संतो संतसहावो संजाओ] उसकी क्रोध ज्वाला पर

चण्डकौशिकस्य भगवदुपरिविषप्रयोगः चण्डकौशिकप्रतिबोधश्च

भगवान् ने क्षमा का जल सींच दिया इस कारण वह शांत और शान्तस्वभावी हो गया [एयारिसं संतिसंपन्नं चण्डकोसियं दट्ठूणं पहू एवं वयासी–] इस प्रकार चंडकौशिक को शान्ति संपन्न देखकर प्रभु ने इस प्रकार कहा–[हे चंडकोसिय ! ओबुज्झ, ओबुज्झ, कोहं ओमुंच, ओमुंच,] हे चण्डकौशिक ! बोध पाओ ! बोध पाओ ! क्रोध को छोडो, छोडो ! [पुव्वभवे कोहवसेणेव कालमासे कालं किच्चा तुवं सप्पो जाओ] पूर्व भव में क्रोध के वशीभूत होकर ही कालमास में काल करके तुम सर्प हुए। [पुणोऽवि पावं करेसि तेण पुणोवि दुग्गइं पावेहिसि, अओ अप्पाणं कल्लाणमग्गे पवत्तेहि–त्ति] अब फिर पाप कर रहे हो तो फिर दुर्गति पावोगे, अतएव अपने आपको कल्याण–मार्ग में प्रवृत्त करो [एवं पहुस्स अमियसमं पबोहवयणं सोच्चा चंडकोसिओ वियारसायरे पडिओ पुव्वभवजाइं सरइ] प्रभु के अमृत के समान यह प्रबोध वचन सुनकर चण्ड-कौशिक विचार सागर में डूब गया। उसे पूर्व के जन्म का स्मरण हो आया [तेण सो

चण्डकौ-
शिकस्य
भगवदुपरि-
विषप्रयोगः
चण्डकौ-
शिकप्रति
बोधश्च

णियपुव्वभवे कोहपगडीए णियमरणं विण्णाय पच्छायावं करिय हिंसयपगडिं विमुंचिय संतसहाओ संजाओ] उस से वह पूर्व भव में क्रोध–प्रकृति से अपना मरण जानकर पश्चात्ताप करके और हिंसक प्रकृति का त्याग करके शांत स्वभाव हो गया [तए णं से सप्पे तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता सुहेण झाणेण कालमासे कालं किच्चा] तत् पश्चात् वह सर्प अनशन से तीस भक्त छेदन करके अर्थात् पंद्रह दिन का अनशन करके शुभध्यान के साथ काल मास में काल करके [उक्कोसओ अट्ठारससागरोवमट्ठिइए सहस्सारा-भिहे अट्ठमे देवलोए उक्कोसट्ठिइओ एगावयारो देवो जाओ] अठारह सागरोपम की उत्कृष्ट स्थितिवाले सहस्रार नामक आठवे देवलोक में उत्कृष्ट स्थितिवाला एकावतारी देवहुआ [महाविदेहे सो सिज्झिस्सइ] वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा ॥४८॥

भावार्थ—वीर भगवान् के कायोत्सर्ग में स्थित हो जाने के पश्चात् दृष्टिविष चंडकौशिक नामक सर्प क्रोध से युक्त होकर अपने बिल से बाहर निकला। बाहर

चण्डकौशिकस्य भगवदुपरि-विषप्रयोगः चण्डकौशिकप्रतिबोधश्च

निकलकर कायोत्सर्ग में स्थित प्रभु को देखकर वह विचार करने लगा—यह मृत्यु के भय से रहित मनुष्य कैसा हैं जो मेरे बिल के समीप खड़ा है ? यह ठूंठ के समान अडिग रूप से खडा हुआ है। यह भले खड़ा है, परन्तु इसको अभी–अभी विष के उग्र तेज से राख का ढेर कर देता हूं। इस प्रकार विचार कर चण्डकौशिक रोषवश घमघमाट करने लगा। एकदम कुपित हो गया। क्रोध से जल उठा। विषरूपी अग्नि को निकालनेलगा। भयानक फण फैलाकर, नेत्र फाड़कर और सूर्य की ओर देखकर भगवान् की तरफ देखने लगा। किन्तु विष भरे नेत्रों से देखने पर भी प्रभु भस्म न हुए, जैसे दूसरे प्राणी नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार उसने दूसरी बार भी देखा और तीसरी बार भी देखा। फिर भी वीर भगवान् भस्म न हुए। तब उस सर्प ने पैर के अंगूठे में काट खाया। काट कर उसने सोचा–'यह कहीं मेरे शरीर पर न गिर पडे' अतएव वह दूर तक सरक गया। मगर अंगूठे में डसने पर भी भगवान् नहीं गिरे। यही नहीं,

चण्डकौशिकस्य भगवदुपरि-विषप्रयोगः चण्डकौशिकप्रतिबोधश्च

चण्डकौशिकस्य भगवदुपरि विषप्रयोगः चण्डकौशिकप्रतिबोधश्च

किन्तु वे कायोत्सर्ग से लेश मात्र भी चलायमान न हुए। तब क्रोधयुक्त होकर दूसरी बार और तीसरी बार भी प्रभु को डंसा, तथापि प्रभू गिरे नहीं। तत्पश्चात् वह रोष के साथ प्रभु को देखता रहा। शांत आकार वाले, अनुपम कांति से मन्डित, मृदुस्वभाव वाले, मधुरता से अलंकृत और क्षमाशील भगवान् वीर स्वामी को देखते हुए चंडकौशिक सर्प की, प्रलयकाल की आग के समान, विष से परिपूर्ण आंखें बुझ गई अर्थात् शांत हो गई। तब क्रोध का पुंज उग्र क्रोधी चंडकौशिक सर्प कुंठित हो गया। वीर प्रभु की शांति के प्रभाव से उसका क्रोध शांत हो गया। चंडकौशिक की क्रोध-ज्वाला पर भगवान् महावीर ने क्षमा का जल सींच दिया, अर्थात् अपनी क्षमा एवं शांति के प्रभाव से प्रभु ने उसके क्रोध को नष्ट कर दिया। क्षमा का जल सींचने से वह आकृति से भी शांत हो गया और प्रकृति से भी शांत हो गया। इस प्रकार चडकौशिक को शांत देखकर वीर प्रभु ने उससे कहा-हे चंडकौशिक ! तुम बूझो, बूझो बोध प्राप्त करो, बोध

प्राप्त करो, क्रोध को तज दो, तज दो, अर्थात् पूरी तरह–त्याग दो, क्यों कि पूर्व भव में क्रोध के कारण ही तुम काल मास में काल करके सांप हुए हो। इस भव में भी वही क्रोध रूप पाप कर रहे हो, इस पाप का आचरण करने से आगामी भव में भी नरक आदि गर्हित गति प्राप्त करोगे, क्यों कि क्रोध दुर्गति का कारण है, अतः तुम अपनी आत्मा को मोक्ष के मार्ग में लगाओ। इस प्रकार के वीर भगवान् के बोध जनक उपदेश को सुनकर चंडकौशिक विचारों के समुद्र में डूब गया। उसे अपनी पूर्वभव संबंधी जाति का स्मरण हो आया। पूर्व भव के जाति स्मरण से उसे विदित हो गया कि मैं क्रोध–प्रकृति के कारण ही काल धर्म को प्राप्त हुआ था तब उसने पश्चात्ताप किया और अपने हिंसक स्वभाव को त्याग कर शांत स्वभाव धारण कर लिया। तत्पश्चात् वह तीस भक्त अनशन से छेद कर, प्रशस्त ध्यान के साथ, काल मास में काल करके, अठारह सागरोगम की उत्कृष्ट स्थिति वाले सहस्रार नामक

आठवें देवलोक में अठारह सागरोपम की स्थिति वाला, एक ही भव करके मोक्ष में जाने वाला देव हुआ। देवायु की समाप्ति के पश्चात्, वहां से च्युत होकर वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा ॥४८॥

मूलम्—एवं णं समणं भगवं महावीरे चंडकोसियसप्पोवरि उवयारं किच्चा ताओ अडवीओ पडिनिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता उत्तरवायालाभिहे गामं समागच्छइ। तत्थ एगो णागसेणो नामं गाहावई परिवसई तस्स एगो एव पुत्तो आसी। सो विदेसगओ बारस वरिसाओ अकालवुट्ठी विव अकम्हा गिहे समागओ। अओ सो णागसेणो पुत्तागमणमहोच्छवम्मि विविह असणपाणखाइमसाइमाइं उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्तणाइणियग—सयणसंबंधिपरियणे भुंजावेइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं पक्खोववासपारणगे

भिक्खायरियाए तस्सगिहं अणुप्पविट्ठे। तए णं नागसेणो गाहावई भगवं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ० आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, करित्ता भगवं सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहीणं करेइ करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयहत्थेणं तेण नागसेणेण उक्किट्ठेणं भत्तिबहुमाणेणं भगवं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिलाभेसामि तिकट्टु तुट्ठे पडिलाभेमाणे तुट्ठे पडिलाभिए त्तितुट्ठे। तए णं तस्स नागसेणस्स तेणं दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिग्गाहसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं भगवंमि पडिलाभिए समाणे संसारे परित्तीकए गिहंसि य इमाइं पंचदिव्वाइं पाउब्भूयाइं

वाचालग्रामे नागसेनगृहे भगवतो भिक्षा-ग्रहणम्

तं जहा—वसुहारा वुट्ठा १, दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाइए २, चेलुक्खेवे कए ३, आहयाओ दुंदुहीओ ४, अंतराऽवि य णं आगासंसि अहोदाणं २ ति घुट्ठे य ॥४९॥

शब्दार्थ—[एवं णं समणे भगवं महावीरे चंडकोसियसप्पोवरि उवयारं किच्चा] इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर चंडकौशिक सर्प पर उपकार करके [ताओ अडवीओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता उत्तरवायालाभिहे गामे समागच्छइ] उस अटवी से बाहर निकले। निकलकर उत्तरवाचाल नामके ग्राम में पधारे [तत्थ एगो नागसेनो नामं गाहावाई परिवसई] वहां नागसेन नामका एक गाथापति रहता था [तस्स एगो एव पुत्तो आसी] उसके एक ही पुत्र था [सो विदेसगओ बारसवरिसाओ अकाल वुट्ठी विव अकम्हा गिहे समागओ] वह विदेश गया हुआ था। बारह वर्ष वाद अकालवृष्टि के समान वह अचानक ही घर आ गया। [अओ सो नागसेणो पुत्तागमणमहोच्छवम्मि विविह असणपाणखाइमसाइमाइं उवक्खडावेइ] इसलिए नागसेन ने पुत्र के आगमन

के उत्सव में त्रिविध प्रकार के अशन, पान, खादिम और स्वादिम बनवाये [उवक्खडा-वित्ता मित्तनाइ णियगसयणसंबंधिपरियणे भुंजावेइ] और बनवाकर मित्रों ज्ञातिजनों निजकजनों स्वजनों संबन्धी जनों और परिजनों को भोजन जिमाया। [तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं पक्खोववासपारणगे भिक्खायरियाए तस्स गिहं अनुपविट्ठे] उस काल और उस समय में भगवान् अर्द्धमासखमण के पारणे के दिन आहार के लिये नागसेन के घर में प्रविष्ट हुए [तए णं नागसेणो गाहावई भगवं एज्जमाणं पासइ] तत्पश्चात् नागसेन गाथापतिने भगवान् को अपने घर पधारे हुए देखा और [पासित्ता] देखकर [हट्ठतुट्ठ० आसणाओ अब्भुट्ठेइ] उसको बहुत हर्ष हुआ भगवान् को देखकर उसके मनमें तृप्ति हुइ आनंद से उसका चित्त उल्लसित होने लगा वह शीघ्र ही आसन से ऊठा और [अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ] उठकर पादपीठ से होकर वह उससे नीचे उतरा [पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ] उतरकर अपने पैरों से पादु-

वाचालग्रामे नागसेनगृहे भगवतो भिक्षा-ग्रहणम्

काए उतारी [ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ] पादुकाएँ उतारकर उसने एक-शाटिक उत्तरासंग धारण किया [करित्ता भगवं सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ] वस्त्र धारण करके वह भगवान् के सामने सात आठ पग चला [अणुगच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ] चलकर उसने तीनबार आदक्षिण प्रदक्षिणा की [करित्ता वंदइ नमंसइ] बाद में उसने भगवान को वंदना की नमस्कार किया [वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव भत्त-घरे तेणेव उवागच्छइ] पंचांग नमनपूर्वक नमस्कार करके जहां रसोई घरथा वहां पर आया [उवागच्छित्ता] आकरके [सयहत्थेणं] अपने हाथ से [तेण नागसेणेण उक्किट्ठेणं भत्तिबहुमाणेणं भगवं] नागसेन ने उत्कृष्ट भक्ति और बहुमान के साथ भगवान् को [विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिलाभेस्सामित्ति कट्टु तुट्ठे, पडिलाभेमाणे तुट्ठे] विपुल अशनपान खाद्य और स्वाद्य का दान दूंगा ऐसा विचार कर प्रसन्नचित्त हुआ देते समय दान दे रहा हूं ऐसा विचार कर अधिक से प्रसन्न हुआ [पडिलाभिएत्ति

वाचालग्रामे नागसेनगृहे भगवतो भिक्षा-ग्रहणम्

तुट्ठे] दान देकर में आज भगवान् को अशनादि दिया हूं ऐसा सोचकर अधिक प्रसन्न हुआ [तए णं तस्स नागसेणस्स तेणं दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिग्गाहगसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं भगवम्मि पडिलाभिए समाणे] तब द्रव्य शुद्ध, दायक शुद्ध, प्रतिग्राहकशुद्ध—त्रिकरणशुद्ध आहार भगवान् को बहराने पर [संसारे परित्तीकए] अपना संसार अल्प किया [गिहंसि य इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं तं जहा] नागसेन के घर में यह पांच दिव्य वस्तु प्रगट हुई वे इस प्रकार हैं-[१—वसुहारा वुट्ठा २—दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाइए ३ चेलुक्खेवे कए ४ आहयाओ दुंदुहिओ, ५ अंतराऽवि य णं आगासंसि अहोदाणं ति घुट्ठे य] १ सोने की वर्षा हुई २ पांचरंग के फूलों की वर्षा हुई ३ वस्त्रों की वर्षा हुई ४ दुंदुभियों का घोष हुआ और ५ आकाश में अहोदान अहोदान की ध्वनि हुई ॥ ४९ ॥

भावार्थ—इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने चंडकौशिक को प्रतिबोध देकर

मोक्ष का भागीबनाकर उसका उपकार किया। तदनन्तर जिस अटवी में चंडकौशिक रहता था, उस अटवी से प्रभु बाहर निकले। बाहर निकलकर उत्तर वाचाल नामक ग्राम में पधारे। उस ग्राम में नागसेन नाम का एक गृहस्थ रहता था। उसका एकाकी पुत्र विदेश गया हुआ था। बारह वर्ष के बाद, अकाल-वर्षा के समान, अचानक ही वह घर आ पहुंचा। पुत्र के आगमन की खुशी के उपलक्ष्य में नागसेन ने बड़ा भारी उत्सव मनाया। उसमें नाना प्रकार के अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य भोजन पाचकों से बनवाये। बनवाकर मित्रों को, सजातियों को, पुत्र आदि निजक जनों को, काका आदि स्वजनों को, रिश्तेदारों को, तथा दास-दासी आदि परिजनों को जिमाया। उस काल उस समय में भगवान वीर प्रभु अर्धमास खमण के पारणक के दिन भिक्षाचर्या (गोचरी) के लिए उस गाथापति के घर में प्रविष्ट हुए। नागसेन गाथापति ने भगवान् को अपने घर पधारे हुए देखा और देखकर उसको बहुत हर्ष हुआ भगवान् को देखकर

वाचालग्रामे नागसेनगृहे भगवतो भिक्षा-ग्रहणम्

उसके मनमें तृप्ति हुइ आनंद से उसका मन उल्लसित होने लगा वह शीघ्र ही आसन से ऊठा और उठकर पादपीठ से होकर वह उससे नीचे उतरा उतरकर अपने पैरोंसे पादुकाएं उतारकर (पगरखियां निकालकर) मुखपर उसने एकशाटिक उत्तरासंग धारण किया वस्त्र धारण करके वह भगवान् के सामने सात आठ पग चला चलकर उसने तीनबार आदक्षिण प्रदक्षिणा की बादमें उसने भगवान् को वंदना की नमस्कार किया पंचांग नमनपूर्वक नमस्कार करके जहां रसोई घर था वहां पर आया आकरके अपने हाथ से नागसेन गाथापति ने उत्कृष्ट भक्ति और बहुमान से भगवान् को विपुल अशनपान खाद्य और स्वाद्य का दान दूंगा ऐसा विचार कर प्रसन्न चित्त हुआ दान देते समय में आज भगवान् को अशनादि दे रहा हूं ऐसा सोचकर अधिक प्रसन्न हुआ दान देने के बाद भगवान् को आज में अशनादि दान दिया ऐसा सोच कर प्रसन्न चित्त हुवा तब द्रव्यशुद्ध दायकशुद्ध और प्रतिग्राहकशुद्ध इस प्रकार त्रिविध शुद्ध और त्रिकरण (मन, वचन, काय) से शुद्ध आहार

भगवान् को बहराने से अपना संसार अल्प किया, नागसेन के घर में आगे कही जानेवाली पांच दिव्य वस्तुओं का प्रादुर्भाव हुआ, अर्थात् पांच दिव्य वस्तुएं प्रगट हुइ। वे यह हैं–(१) देवों ने स्वर्ण की वर्षा की (२) पांच वर्णों के पुष्पों की वर्षा की (३) वस्त्रों की वृष्टि की (४) दुंदुभियां बजाई (५) आकाश में 'अहोदान अहोदान' की घोषणा की ॥४९॥

मूलम्-तए णं से समणे भगवं महावीरे तओ गामाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता सेयंबियाए नयरीए मज्झं मज्झेणं विहरमाणे जेणेव सुरहिपुरं णयरं तेणेव उवागच्छइ। तए णं महारण्णे सुण्णागारे रत्तीए काउसग्गे ठिए। तत्थ णं भगवओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि माई मिच्छादिट्ठी एगे संगमाभिहे देवे अंतियं पाउब्भूए। तए णं से देवे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसिमाणे काउसग्गट्ठियं पहुं एवं वयासी–हे भो भिक्खू! अपत्थियपत्थया! सिरिहिरि–

धिइकित्तिपरिवज्जिया ! धम्मकामया ! पुण्णकामया ! सग्गकामया ! मोक्ख-कामया ! धम्मकंखिया धम्मापिवासिया ! णो णं तुमं ममं जाणासि ? अहं तुमं धम्माओ परिभंसेमि 'त्ति कट्टु पउरं रयपुंजं उप्पाडिय पहुस्स सासोच्छासं निरुंधइ। तह वि पहुं अक्खुद्ध दट्ठूणं पच्छा से तिक्खतुंडाओ महापिवी-लियाओ विउव्विय ताहिं दंसावेइ, निदंसावेइ, उवदंसावेइ तेणं पहुसरीराओ पबलरुहिरधारा निस्सरइ, तहवि पहू नो चलेइ। तओ पच्छा तिक्ख विस-भरियकंटयाइं विच्छियसयसहस्साइं विउव्विय पहुं उवसग्गेइ। पच्छा तेण विगरालसुंडे तिक्खदंते दंती विउव्विए। से णं सुंडीए भयवं उट्ठाविय अहे पाडेइ, तओ छुरियतिक्खदंतग्गेण विदारिय पाएहिं मद्देइ। तओ से भयभेरवेण पिसायरूवेण भीसेइ। तओ सीहं विउव्विय पहू सरीरं फालेइ। तए णं भगवओ

उपकाराप-
कार विषये
भगवतः
समभावः

उवरिं महाभारं लोहमयं गोलयं पक्खिवेइ। एवं सप्परिच्छमूयरभूयपेयाइ कएहिं णाणाविहेहिं उवसग्गेहिं उवसग्गिओऽवि भगवं अविचलिए अकंपिए अभीए अतसीए अत्तत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए असंभंते तं उज्जलं महं विउलं घोरं तिव्वं चंडं पगाढं दुरहियासं वेयणं समभावेण सम्मं सहेइ खमेइ तितिक्खेइ अहियासेइ नो णं मणसा वि तस्स असुहं चिंतेइ, तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए चेव विहरइ। एवं से संगमं देवं जणवयविहारं विहरमाणं भगवं पच्छा गामिय छम्मासं जाव उवसग्गीय तहावि बहुस्स वज्जरिसह नारायसंघयणत्तणेण न पाणहाणी जाया। एवं णं विहरमाणे भगवं संवच्छरं साहियं मासं सचेलए, तओ परं एकया हेमंते भगवं देवदूसं पासे ठवित्ता काउसग्गे ठिए तं समए एगो सीयपीडिओ जणो आगमीय देवदूसं वत्थं गहिय गओ, अओ भगवं

उपकाराप-
कार विषये
भगवतः
समभावः

अचेलए होत्था ।

तए णं से समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे बीयं चाउम्मासं रायगिहस्स णयरस्स नालंदाभिहाणे पाडगे मास-मासक्खमणतवेणं ठिए। तत्थ णं पढममासक्खमणपारणगे विजयसेट्ठिणा भगवं पडिलाभिए१। एवं बितियपारणगे णंदसेट्ठिणा, तइयपारणगे सुणंदसेट्ठिणा, चउ-त्थपारणगे बहुलमाहणेण पडिलाभिए संसारेपरित्तीकए। सव्वत्थ पंचदिव्वाइं पाउ-ब्भूयाइं। एवं तइयं चाउम्मासं चंपाए नयरीए दुदुमासक्खमणेण ठिए२। चउत्थं चाउम्मासं चउम्मासक्खमणेणं पिट्ठचंपाए ठिए४। पंचमं चाउम्मासं भद्दिलपुरम्मि नयरे नाणाविहाभिग्गह जुत्तेणं चाउम्मासक्खमणेणं ठिए५। छट्ठं पुण चाउम्मासं भद्दिलपुरम्मि णयरे नाणाविहाभिग्गहजुत्तेणं चाउम्मासियतवेणं ठिए ६। सत्तमं

उपकाराप-
कार विषये
भगवतः
समभावः

चाउम्मासं आलंभियाए णयरीए चाउम्मासियतवेण ठिए ७। अट्ठमं चाउम्मासं रायगिहे णयरे चाउम्मासियतवेण ठिए ८॥५०॥

शब्दार्थ—[तएणं से समणे भगवं महावीरे तओ गामाओ निग्गच्छइ] उसके बाद श्रमण भगवान् महावीर उस उत्तर वाचाल गांव से बाहर निकलते हैं [निग्गच्छित्ता सेयंबियाए नयरीए मज्झं मज्झेण विहरमाणे जेणेव सुरहिपुरं णयरं तेणेव उवागच्छइ] निकलकर श्वेताम्बिका नगरी के बीचों बीच से चलकर जहां सुरभिपुर नामका नगर था वहीं पधारते हैं [तए णं महारण्णे सुण्णागारे रत्तीए काउसग्गे ठिए] और एक महारण्य में जाकर सूने घर में रातभर का कायोत्सर्ग करके स्थित हो गये। [तत्थ णं भगवओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि माई मिच्छादिट्ठी एगे संगमाभिहे देवे अंतियं पाउब्भूए] वहां मध्यरात्रि के समय मायी मिथ्यादृष्टि संगम नामक एक देव भगवान् के निकट प्रकट हुआ [तए णं से देवे आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे

काउस्सग्गट्ठियं पहुं एवं वयासी] उसके बाद वह देव शीघ्र ही रुष्ट हो गया। क्रुद्ध, कुपित रौद्राकार धारक और दांत पीसता हुआ वह देव कायोत्सर्ग में स्थित भगवान् महावीर से इस प्रकार बोला–[हं भो भिक्खू! अपत्थियपत्थया! सिरिहिरी–धिइ–कित्ति परिवज्जिया] अरे भिक्षु! मौत की कामना करनेवाले! श्री, ह्री धृति और कीर्ति से शून्य! [धम्मकामया] धर्म की अभिलाषा करने वाला [पुण्णकामया] पुण्य की कामना वाला [सग्गकामया] स्वर्ग का अभिलाषी [मोक्खकामया] मोक्ष का इच्छुक [४ धम्मपिवासिया] धर्म का पिपासु ४ [नो णं तुमं ममं जाणासि?] तू मुझे नहीं जानता है? [अहं तुमं धम्माओ परिभंसेमि] देख, मैं तुझे अभी धर्म से भ्रष्ट करता हूं [त्ति कट्टु] ऐसा कह कर [पउरं रयपुंजं उप्पाडिय पहुस्स सासोच्छासं निरुंधइ] उसने विशाल धूल का पटल उडाकर भगवान् के श्वासोच्छ्वास को रोक दिया [तह वि पहुं अक्खुद्धं दट्टु णं पच्छा से तिक्खतुंडाओ महापिवीलियाओ विउव्विय ताहिं

दंसावेइ निदंसावेइ, उवदंसावेइ] तब भी भगवान् बर्धमान स्वामी को क्षुब्ध हुआ न देखकर उसने तीखे मुखवाली बडी बडी चीटियों की विकुर्वणा करके उन से डंसवाया, खूब डंसवाया और पूरी तरह डंसवाया। [तेण पहुसरीराओ पबलरुहिरधारा निस्सरेइ, तहवि पहू नो चलइ] ससे प्रभु के शरीर से रुधिर की प्रबल धारा वह निकली, फिर भी प्रभु चलायमान न हुए। [तओ पच्छा तिक्खविसभरियकंटयाइं विच्छिय सयं सहस्साइं विउव्विय पहुं उवसग्गेइ] उसके बाद उग्र विष से परिपूर्ण कांटों वाले लाखों बिच्छुओं की विकुर्वणा कर प्रभु को उपसर्ग करवाया [पच्छा तेण विगरालसुंडे तिक्खंदंते दंती विउव्विए] उसके बाद भयानक सूंड वाले और तीखे दांतों वाले हाथी की विकुर्वणा की [ से णं सुंडाए भयवं उड्डाविय अहे पाडइ] उस हाथी ने सूंड से भगवान् को ऊपर उठा कर नीचे गिराया [तओ छुरियतिक्खदंतग्गेण विदारिय पाएहिं मद्देइ] और फिर छुरी की तरह तीक्ष्ण दांतों से विदारण कर के पावों से कुचला [तओ

उपकारापकार विपये भगवतः समभावः

से भयभेरवेण पिसायरूवेण भीसेइ] उसके बाद उस देवने भयंकर पिशाच का रूप बनाकर डरवाया [तओ सीहं विउव्विय पहुसरीरं फालेइ] फिर सिंह की विकुर्वणा करके प्रभु के शरीर को फाडा [तए णं भगवं उवरिं महाभारं लोहमयं व गोलयं पक्खिवेइ] उसके बाद भगवान् के ऊपर बहुत भारी लोहे का गोला फैंका। [एवं सप्परिच्छसूयरभूयपेयाइकएहिं नाणाविहेहिं उवसग्गेहिं उवसग्गिओऽवि भगवं अविचलिए] इसी प्रकार सर्प शूकर, भूत, प्रेत, आदि द्वारा किये गये नाना प्रकार के उग्र उपसर्गों से भी भगावान् विचलित न हुए [अकंपिए अभीए अतसिए अत्तत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए असंभंते तं उज्जलं महं विउलं घोरं तिव्वं चंडं पगाढं दुरहियासं वेयणं समभावेण सम्मं सहेइ] वे अकंपित, अभीत अत्रासित, अत्रस्त, अनुद्विग्न अक्षुभित और असंभ्रांत रहे। उन्होंने उस उज्ज्वल, महती, विपुल, घोर; तीव्र, चण्ड, प्रगाढ, एवं दुस्सह वेदना को समभाव से सम्यक् प्रकार से सहन किया [खमेइ तिति-

क्खेइ अहियासेइ नो णं मणसावि तस्स असुहं चिंतेइ] क्षमा किया, तितिक्षा की और अध्यास किया। मन से भी उस देव का अशुभ नहीं सोचा [तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए चेव विहरइ] मौन भाव से धर्मध्यान में लीन होकर ही विचरते रहे। [एवं से संगमे देवे जणवयविहारं विहरमाणं भगवं पच्छागमिय छम्मासं जाव उवसग्गीअ] इस प्रकार उस संगम देव ने जनपद विहारकरते हुए भगवान् के पीछे जाकर छमास तक उपसर्ग किये [तहावि पहुस्स वज्जरिसहनारायसंघयणत्तणेय न पाणहाणी जाया] तथापि प्रभु का वज्र ऋषभनाराच संहनन होने से प्राणहानि नहीं हुई। [एवं णं विहरमाणे भगवं संवच्छरं साहियमासं सचेलए] इस प्रकार विचरण करते हुए भगवान् एकमास अधिक एक वर्ष पर्यन्त सचेलक रहे [तओ परं] तत्पश्चात् [एकया] एक समय [हेमंते] हेमन्त ऋतु के समय [भगवं] भगवान् [देवदूसं] देवदूष्य वस्त्र को [पासे ठवित्ता] बाजू पर रखकर के [काउसग्गे ठिए] कायोत्सर्ग—ध्यान करने में

बैठे [तं समयं] उस समय [एगो सीय पीडिओजणो] शीत से पीडित कोइ मनुष्य [आगमीय] आकर [देवदूसं वत्थं गहिय गओ] देवदूष्य वस्त्र को उठाले गया [अओ अचेलए होत्था] अतः तत्पश्चात् फिर से देवदूष्य वस्त्र ग्रहण न करने से भगवान् अचेलक हो गये।

[तए णं से समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे] उसके बाद श्रमण भगवान् महावीर पूर्ववर्ती तीर्थंकरों की परम्पराका अनुसरण करते हुए ग्रामानुग्राम विचरते हुए [बीयं चाउम्मासं रायगिहस्स णयरस्स नालंदाभिहाणे पाडगे मासमासक्खमणतवेणं ठिए] दूसरे चोमासे में राजगृह नगर के नालंदा नामक पाडे में मासखमण तपस्या के साथ स्थित हुए। [तत्थ णं पढममासक्खमणपारणगे विजयसेट्ठिणा भगवं पडिलाभिए] वहां पहले मासखमण के पारणे के दिन विजय सेठ ने आहारदान दिया। [एवं बितियपारणगे णंदसेट्ठिणा] इसी प्रकार दूसरे पारणक के दिन नन्द सेठ ने [तइय पारणगे सुनंदसेट्ठिणा] तीसरे पारणक के दिन सुनन्द सेठ ने और

[चउत्थ पारणगे बहुलमाहणेण पडिलाभिए] चौथे पारणक के दिन कोल्लाग सन्निवेश में बहुल ब्राह्मणने आहार दिया। [संसारे परित्तीकए] और अपना संसार अल्प किया [सव्वत्थ पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं] सब जगह पांच दिव्य प्रकट हुए। [एवं तइयं चाउम्मासं चंपाए नयरीए दुदुमासक्खमणेण ठिए ३] इसी प्रकार प्रभु तीसरे चातुर्मास में चंपा नगरी में दो दो मास खमण कर के स्थित हुए [चउत्थं चाउम्मासं चउम्मासक्खमणेण पिट्ठिचंपाए ठिए] चौथे चातुर्मास में चारमास के चौमासी तप के साथ पृष्ठचंपा में स्थित हुए [पंचमं चाउम्मासं भद्दिलपुरम्मि नयरे नानाविहाभिग्गहजुत्तेण चाउम्मासक्खमणेणं ठिए] पांचवें चौमासे में भद्दिलपुर नगर में चौमासी तपस्या एवं नानाविध अभिग्रह के साथ स्थित हुए [छट्ठं पुण चाउम्मासं भद्दिलपुरम्मि नगरे नानाविहाभिग्गहजुत्तेणं चाउमासक्खमणेणं ठिए] छठे चातुर्मास में भी भद्दिलपुर नगर में विविध प्रकार के अभिग्रह के एवं चौमासी तप के साथ स्थित हुए [सत्तमं चाउम्मासं आलंभियाए

णयरीए चाउम्मासिय तवेण ठिए] सातवें चौमासे में आलंभिका नगरी में चौमासी तप के साथ स्थित हुए [अट्ठमं चाउम्मासं रायग्गिहे नयरे चाउम्मासिय तवेण ठिए] आठवें चौमासे में राजगृह नगर में चौमासी तप के साथ स्थित हुए ॥५०॥

भावार्थ—नागसेन गाथापति के घर आहार ग्रहण करने के श्रमण भगवान् महावीर उस उत्तरवाचाल गांव से बाहर निकले निकल कर श्वेताम्बिका नगरी के वीचों बीच से चलकर जहां सुरभिपुर नामका नगरथा वहीं पधारते हैं। वहां पर महा अटवी में जाकर एक शून्य मकान में सम्पूर्ण रात्री तक के कायोत्सर्ग में स्थित हुए। वहां भगवान् महावीर स्वामी के समीप, पूर्वरात्री—अपररात्रिकाल के समय अर्थात् मध्यरात्री में एक मायावी और मिथ्यादृष्टि संगम नामक देव प्रकट हुआ। वह एकदम ही लाल नेत्रोंवाला हो गया, रूष्ट हो गया क्रुद्ध हो गया और भयानक आकार से युक्त हो गया। क्रोध से जलते हुए उस देव ने कायोत्सर्ग में स्थित प्रभु से यह वचन कहे—'हं भो! इस प्रकार के अपमान-

सूचक संबोधन के साथ वह बोला अरे मृत्यु की इच्छा करने वाले! अरे लक्ष्मी, लज्जा, धैर्य और ख्याति से हीन। अरे धर्म पुण्य स्वर्ग और मोक्ष की कामना करने वाले! अरे धर्म पुण्य स्वर्ग और मोक्ष की लालसा करनेवाले! अरे धर्म पुण्य स्वर्ग और मोक्ष के प्यासे! तू मुझ संगम देव को नहीं जानता ? ले, मैं तुझे धर्म से भ्रष्ट करता हूं।' इस प्रकार कहकर उसने बहुत बड़ा धूलि–समूह वैक्रिय शक्ति से उडाकर प्रभु के श्वासोच्छ्वास का निरोधकर दिया। इतने पर भी प्रभु को क्षोभरहित देखकर उसने तीखे मुखवाली लाखों चीटियों को विकुर्वणा करके प्रभु को उनसे कटवाया, खूब कटवाया और पूरी तरह सभी अंगों में कटवाया। इससे प्रभु के शरीर से रुधिर की तेज धारा बहने लगी। फिर भी भगवन् कायोत्सर्ग से विचलित नहीं हुए! तब संगम देव ने भयानक सूंडवाले और तीखे दांतोवाले हस्ती की विकुर्वणा की। संगम देव द्वारा वैक्रिय शक्ति से उत्पन्न किये गये हाथी ने भगवान् को उपर ऊठाकर नीचे

धरती पर पटका। नीचे पटककर उसने छुरों के समान तीक्ष्ण दांतों के अग्रभाग से प्रभु के शरीर को विदारण करके पैरों से कुचला फिर भी भगवान् कायोत्सर्ग से विचलित न हुए। तब भगवान् को अडग देखकर संगम देव ने अत्यंत ही भयानक पिशाच का रूप बनाकर उन्हें भयभीत करना चाहा फिर भी भगवान् चलायमान न हुए। तब प्रभु को क्षोभरहित देखकर सिंह की विकुवर्णा की और उस सिंह से प्रभु के शरीर को विदारण करवाया। इतने पर भी प्रभु कायोत्सर्ग से लेश मात्र भी नहीं डिगे। तब उसने भगवान् ऊपर अत्यधिक भारवाला लौहे का गोला तेजी के साथ फैंका, इस पर भी भगवान् अकंप बने रहे। इसी प्रकार जैसा कि पहले शूलपाणि यक्ष के उपसर्ग-वर्णन में कहा गया है, उसी प्रकार इस संगम देव ने भी सांप, बीछु, रींछ, शूकर, भूत, प्रेत आदि को वैक्रियशक्ति से उत्पन्न करके भगवान् को उपसर्ग दिया, मगर भगवान् कायोत्सर्ग से चलित न हुए, कम्पित न हुए, निर्भय रहे, त्रास, को प्राप्त न

उपकारापकारविषये भगवतः समभावः

हुए, अतएव त्रास से वर्जित रहे या 'अत्तत्थ' अर्थात् आत्मस्थ ही बने रहे, उद्वेगहीन रहे, क्षोभहीन रहे, विस्मय हीन रहे। इन उपसर्गों से उत्पन्न हुई ज्वलंत, महान्, प्रचुर, भयंकर, उग्र, कठोर, गाढी, एवं दुस्सह वेदना को समाधान से सहन किया उन्होंने न किसी को प्रिय, न किसी को द्वेष्य–द्वेष का पात्र–समझा। अपकारी और उपकारी पर समान बुद्धि रखी। इस वेदना को भगवान् ने सम्यक् प्रकार से निर्भय भाव से सहन किया, क्रोध भाव से क्षमा किया। दीनता न लाकर तितिक्षा की, निश्चल रहकर अध्यास किया। मन से भी संगम देव का अनिष्ट नहीं सोचा, बल्कि मौन धारण करके धर्मध्यान में मग्न ही रहे। इस प्रकार जनपद में विचरते हुए भगवान् के पिछे–पिछे लगकर संगमदेवने छह महीनों तक उपसर्ग किया। परन्तु भगवान् वज्रऋषभनाराचसंहनन वाले होने से उनकी प्राणहानि नहीं हुई। इस प्रकार जनपद में विचरते हुए भगवान् वीर स्वामी एक मास अधिक एक वर्ष तक, अर्थात् तेरह मास तक

देवदूष्य वस्त्र को धारण किये रहे—सचेलक रहे, तत्पश्चात् एक समय हेमंत ऋतुके समय में भगवान् देवदूष्य वस्त्र को बाजू पर रखकर कायोत्सर्ग में स्थित थे, उस समय शीत से पीडित कोई मनुष्य आकर भगवान् ने बाजू पर रखा हुवा उस देवदूष्य वस्त्र को लेकर चला गया अतः उसके पीछे देवदूष्य वस्त्र को पुनः धारण न करने से भगवान् अचेल हो गये।

अचेलक होने के पश्चात् भगवान् महावीर ने पूर्ववर्त्ती जिनों तीर्थंकरों—की परम्परा का पालन करते हुए और एक गांव से दूसरे गांव विचरते हुए, दूसरे चौमासे में राजगृह नगर के नालन्दा नामक पाडे में, मास—मास खमण करके स्थित हुए। पहले मासखमण के पारणे में विजय—सेठ ने भगवान् को आहार—दान दिया। (१)। विजय सेठ के ही समान, दूसरे मासखमण के पारणे में नन्द सेठ ने, आहार वहराया। (२) तीसरे मास खमण के पारणे में सुनन्द सेठ ने (३)। और चौथे मासखमण। के पारणे के दिन कोल्लाकसन्निवेश में बहुल ब्राह्मण ने भगवान् को वहराया, ये चारों ने अपना

संसार को अल्प किया। (४), इन चारों पारणों के अवसर पर स्वर्ण वर्षा आदि पांच–पांच दिव्य, पदार्थ प्रकट हुए। इसी प्रकार तीसरा चातुर्मास चम्पा नगरी में हुआ। इस चार्तुमास में भगवान् ने दो–दो मास का पारणा किया ३। चौथे चौमासे में पृष्ठ चम्पा नगरी में रहे। वहां चौमासी तप किया ४। पांचवां चौमासा भद्रिका नगरी में किया, और वहां भी चौमासी तप किया। फिर भगवान् ने भद्रिका नगरी में नाना प्रकार के अभिग्रहों से युक्त चौमासी तपस्या के साथ छठा चौमासा किया। सातवां चर्तुमास आलम्भिका नगरी में चौमासी तप से व्यतीत किया। आंठवां चर्तुमास राजगृह नगर में चौमासी तपश्चरण के साथ किया ॥५०॥

मूलम्–तए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नयराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता कढिणकम्मक्खवणट्ठं अणारियदेसं समणुपत्ते। तत्थ णं नवमं चाउम्मासं चाउम्मासतवेण ठिए। तत्थ णं भगवं इरियासमिइसमिए

इत्थीजणकए भोगपत्थणारूवे अणुकूलपरीसहे मिलिच्छजणकए पडिकूल परीसहे य सहमाणे तितिक्खेमाणे अहियासेमाणे तुसिणाए चेव वेरग्गमग्गे विहरीअ। केणवि वंदिओ णमंसिओ निंदिओ तिरक्किओ वा न तुट्ठे न रुट्ठे समभावेण भावियप्पा चेव चिट्ठीअ। छक्कायपरिवालगो भगवं सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता सयसयकम्मप्पभावेण चाउरंतसंसारकंतारे परिभमंति त्ति संसारवेचित्तं विभावेमाणे विहरीअ। दव्वभावोवाहिपडिया अण्णाणिणो जीवा पावाइं कम्माइं बंधंति त्ति कट्टु भगवं पावकम्म–कलावाओ परम्मुहो आसी। बालाय भगवं दट्ठूणं लट्ठिमुट्ठीहिं हणियहणियकंदिंसु। अणारिया य भगवं दंडेहिं ताडिंसु केसग्गे करिसिय करिसिय दुक्खं उप्पाइंसु, तहवि भगवं नो दोसीअ। अगारत्थेहिं संभासिओवि भगवं तेहिं सद्धिं परिचयं

परिच्चज्ज मोणभावेण सुहज्झाणनिमग्गे चेव विहरीअ। भगवं सहिउं असक्के परिसहोवसग्गे न गणीअ नच्चगीएसु रागं न धरीअ। दंडजुद्धमुट्ठिजुद्धाइयं सोच्चा न उक्कंठीअ। कामकहासंलीणाणं इत्थीजणाणं मिहो कहासंलावे सुणिय भगवं रागदोसरहिए मज्झत्थभावेण असरणे एव विहरीअ। घोराइघोरेसु संकडेसु किंचिवि मणोभावं न विगाडिय संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरीअ। भगवं परवत्थमवि न सेवित्था गिहत्थपाए न भुंजित्था असणपाणस्स मायन्ने रसेसु अगिद्धे अपडिण्णे आसी। अच्छिंपि पमज्जीअ नोऽविय गायं कंडूईअ। विहरमाणे भगवं तिरियं पिट्ठिओ नो पहीअ। सरीरप्पमाणं पहं अग्गे विलोइअ ईरियासमिईए जयमाणे पंथपेही विहरीअ। सिसिरंमि बाहू पसारित्तु परक्कमीअ न उण बाहू कंधेसु अवलंबीअ। अण्णे मुणिणोऽवि एवमेव रीयंतु त्ति

कट्टु माहणेण अपडिन्नेण भगवया एस विहि बहुसो अणुक्कंतो ॥८१॥

शब्दार्थ—[तएणं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ णयराओ पडिनिक्खमइ] इसके बाद श्रमण भगवान् महावीरस्वामी राजगृह नगर से निकले [पडिनिक्खमित्ता कढिणकम्मक्खवणट्ठं अणारियदेसं समणुपत्ते] और निकलकर कठिन कमा का क्षय करने के लिए अनार्यदेश में पधारे [तत्थ णं नवमं चाउम्मासं चाउम्मासतवेण ठिए] वहां चौमासी तप के साथ चौमासे में स्थित हुए [तत्थ णं भगवं इरियासमिइसमिए इत्थीजणकए भोगपत्थणारूवे अनुकूलपरिसहे] वहां ईर्यासमिति से युक्त भगवान् स्त्रियों द्वारा किये गये भोग प्रार्थनारूप अनुकूल परीषहों को [मिलिच्छजणकए पडिकूल-परिसहे य सहमाणे] म्लेच्छाजनों द्वारा किये गये प्रतिकूल परीषहों को सहन करते हुए [तितिक्खेमाणे अहियासेमाणे तुसिणीए चेव वेरग्गमग्गे विहरीअ] तितिक्षण करते हुए अध्यास करते हुए मौनयुक्त हो वैराग्यभाव से मार्ग में विचरते रहे। [केणवि

वांदिओ णमंसिओ निंदिओ तिरक्किओ वा न तुट्ठे न रुट्ठे समभावेण भावियप्पा चेव चिट्ठीय] किसी ने वन्दना की नमस्कार किया तो न तुष्ट हुए। किसी ने निन्दा की या तिस्कार किया तो रुष्ट न हुए। समभाव से भावितात्मा होकर ही रहे। [छक्काय-परिवालगो भगवं 'सव्वेपाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता सयसयकम्मप्पभावेण चाउरंतसंसारकंतारे परिभमंति] षट्काय के रक्षक भगवान् सभी प्राण सभी भूत, सभी जीव और सभी सत्त्व, अपने-अपने कर्मों के प्रभाव से चारगतिरूप संसार अटवी में परिभ्रमण कर रहे हैं' ['-त्ति संसारवेचित्तं विभावेमाणे विहरीअ] इस प्रकार संसार की विचित्रता का विचार करते हुए विचरे [दव्वभावोवाहिपडिया अण्णाणिणो जीवा पावाइं कम्माइं बंधंति त्ति कट्टु भगवं पावकम्म-कलावाओ परम्मुहो आसी] द्रव्य और भाव उपाधि में पडे हुए अज्ञानी जीव पाप कर्मों का बन्ध करते हैं। ऐसा सोचकर भगवान् पाप समूह से विमुख थे। [बाला य भगवं दट्ठु णं लट्ठि-मुट्ठीहिं हणिय हणिय

कंदिंसु] अनार्य देश के बालक भगवान् को देखकर लाठी और मुट्ठी से मार-मार कर हल्ला करते थे चिल्लाते थे [अणारिया य भगवं दंडेहिं ताडिंसु] अनार्यलोग भगवान् को दंडों से मारते थे। [केसग्गे करिसिय करिसिय दुक्खं उप्पाइंसु तहवि भगवं नो दोसीअ] उनके बालों के अग्रभाग को खींच खींच कर कष्ट उत्पन्न करते थे, फिर भी भगवान् ने उनपर द्वेष नहीं किया [अगारत्थेहिं संभासिओवि भगवं तेहिं परिचयं परिच्चज्ज मोणभावेण सुहज्झाणनिमग्गे चेव विहरीअ] गृहस्थों के भाषण करने पर भी भगवान् उनके साथ परिचय का परित्याग करते हुए मौन भाव से शुभध्यान में मग्न ही रहते थे [भगवं सहिउं असक्के परीसहोवसग्गे न गणीअ] जिस परीषह को सहन करना अशक्य था उनको भी भगवान् ने कुछ नहीं गिना [नच्चगीएसु रागं न धरीअ] नृत्य और गीतों में राग धारण नहीं किया [दंडजुद्धमुट्ठिजुद्धाइयं सोच्चा न उक्कंठीअ] दण्डयुद्ध और मुष्टि युद्ध आदि की बात सुनकर उत्कण्ठा प्रगट नहीं की [काम कहा-

भगवतोऽनार्यदेश-संजातपरीषहोपसर्ग वर्णनम्

संलीणाणं इत्थी जणाणं मिहो कहासंलावे सुणिय भगवं रागदोसरहिए मज्झत्थभावेण असरणे एव विहरीअ] काम-कथा में लीन स्त्री जनों की आपस की बाते सुनकर भगवान् रागद्वेष रहित, मध्यस्थ भाव से अशरण [आश्रय रहित] ही विहार करते रहे [घोराइघोरेसु संकडेसु किंचि वि मणोभावं न विगडिय संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरीअ] घोर और अति घोर संकट आने पर भी लेश भर भी मन के भाव को विकृत न करते हुए संयम और तप से आत्मा को वासित करते हुए विचरे [भगवं परवत्थमवि न सेवित्था] भगवान् ने परवस्त्र का सेवन नहीं किया। [गिहत्थपाए न भुंजित्था] और गृहस्थ के पात्र में भोजन नहीं किया [असणपाणस्स मायण्णे रसेसु अगिद्धे अपडिन्ने आसी] वे भोजन-पाणी की मात्रा के ज्ञाता थे, रसों में अनासक्त थे, अप्रतिज्ञ-इहलोक और परलोक की कामना से रहित थे [अच्छिंपि नो पमज्जिअ, नोऽवि य गायं कंडूईय] उन्हीं ने कभी आंख तक की भी सफाई नहीं की और न काया को ही खुज-

लाया [विहरमाणे भगवं तिरियं पिट्ठओ य नो पेहीय] विहार करते समय न वे इधर उधर देखते थे, न पीछे की ओर देखते थे [सरीरप्पमाणं पहं अग्गे विलोइय इरिया-समिईए जायमाणे पंथपेही विहरीअ] सामने शरीरप्रमाणमार्ग को देखते हुए ईर्यासमिति पूर्वक यतना करते हुए चलते थे [सिसिरंमि बाहू पसारित्तु परक्कमीअ] शिशिरऋतु में दोनों भुजाएं फैलाकर संयम में पराक्रम प्रकट करते थे। [नउण बाहू कंधेसु अवलं-बीअ] भुजाओं को अपने कंधों पर नहीं रखते थे [अण्णे मुणिणोऽवि एवमेव रीयंतु त्ति कट्टु माहणेण अपडिन्नेण भगवया एस विही बहुसो अणुक्कंतो] अन्य मुनि भी इसी प्रकार विचरें, यह सोचकर अप्रतिज्ञ—कामना रहित माहन भगवान् वर्धमान ने अनेक बार इसी विधि का अनुसरण किया ॥५१॥

भावार्थ—राजगृह नगर में आठवां चातुर्मास बिताने के बाद श्रमण भगवान् महावीर ने राजगृह नगर से विहार किया। कठोर कर्मों का क्षय करने के लिए विचरते

हुए प्रभु अनार्य देश में पधारे। वहां चौमासी तप के साथ नौवां चौमासा किया। इर्यासमिति और उपलक्षण से भाषासमिति आदि सभी समितियों से सम्पन्न तथा तीन गुप्तियों से गुप्त भगवान् स्त्रीजनों द्वारा की गई भोग-प्रार्थनारूप अनुकूल परीषहों को तथा अनार्य जनों द्वारा कृत तर्जना-ताड़ना आदि रूप प्रतिकूल परीषहों को क्रोध के बिना सहते हुए, दीनता के विना तितिक्षण करते हुए, निश्चल भाव से अध्यास करते हुए मौन का अवलम्बन किये हुए ही निरतिचार चारित्र के मार्ग में तत्पर रहे। किसी मनुष्य ने उन्हें वन्दन किया और नमस्कार किया तो वन्दना करने वाले और नमस्कार करने वाले पर वे यत्किंचित् भी तुष्ट-प्रसन्न नहीं हुए, किसी ने निन्दा की-गर्हा की, अनादर किया, तो ऐसा करने पर जरा भी रूष्ट या अप्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने सभी पर समान भाव धारण किया। 'मेरे लिए न कोई द्वेष का पात्र है, न कोई राग का पात्र है' इस प्रकार की भावना से आत्मा को भावित करते रहे। षड्जीवनिकाय के

रक्षक श्री महावीर प्रभु 'सभी द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, और चतुरिन्द्रिय रूप प्राण, वनस्पतिकाय रूप भूत, पंचेन्द्रियरूप जीव, पृथ्वीकाय–अप्‌काय–तेजस्काय–वायुकायरूप सत्व, अपने–अपने कर्म के परिपाक के अनुसार चार गति रूप संसार के दुर्गम मार्ग में परिभ्रमण कर रहे हैं, अर्थात् कभी नारक, कभी तिर्यञ्च, कभी नर और कभी अमर [देव] रूप से जन्म–मरण कर रहे हैं' इस प्रकार संसार की भयावह विचित्रता का विचार करते हुए संयम–मार्ग में विचरते रहे। हिरण्य–सुवर्ण आदि द्रव्य–ऊपाधि, तथा आत्मा की दुष्परिणति रूप भाव–उपाधि–में आसक्त अज्ञानी प्राणी प्राणातिपात आदि पाप कर्मों का बन्ध करते हैं, ऐसा जानकर श्री वीर भगवान् पापों से विमुख अर्थात् निवृत्त थे। अनार्य देश के लड़के श्री वीर प्रभु को देखकर लट्ठियों मुट्ठियों से मार–मार कर बार–बार ताड़ना तर्जना करके अपना अपराध छिपाने के लिए उलटे रोने लगते थे। अनार्य–म्लेच्छ लोग भगवान् को डंडों से मारते थे, बार–बार बालों के अग्रभाग को

खींच-खींचकर सताते थे। फिर भी भगवान् ने उन अनार्यों के प्रति जरासाभी द्वेष नहीं किया और गृहस्थों द्वारा संभाषण करने पर भी भगवान् उनके साथ जाति कुल आदि संबंधी परिचय नहीं करते थे। मौन धारण किये हुए धर्म ध्यान में लीन होकर विहार करते थे। वीर भगवान् ने दुस्सह परीषहों [भूख—प्यास आदि की बाधाओं] तथा उपसर्गों [देवों, मनुष्यों तथा तिर्यचों द्वारा कृत उपद्रव] को कुछ न समझा, अर्थात्–समभाव से सहन किया। नृत्य–गीतों में राग धारण नहीं किया। कहीं दण्ड-युद्ध हो रहा हो या मुष्टिदण्ड [घूंसेबाजी] हो रहा हो तो उसका वृत्तान्त सुनकर कभी उत्कंठा नहीं उत्पन्न की। काम संबंधी बातचीत करने में प्रवृत्त स्त्रीजनों के पारस्परिक वार्तालाप को सुनकर भगवान् राग–द्वेष से रहित ही बने रहे और मध्यस्थ भाव से, आश्रय रहित होकर विचरे। भयानक और अत्यंत भयानक संकट आने पर भी भगवान् चित्तवृत्ति को तनिक भी विकारयुक्त न करके सतरह प्रकारके संयम और बारह

प्रकार के तप की आराधना से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे। भगवान् ने अत्यधिक शीत पडने पर भी, शीत निवारण के लिए पराये वस्त्र को कभी धारण नहीं किया, तथा गृहस्थ के पात्र में भोजन नहीं किया। आहार और पानी के परिमाण को जानने वाले भगवान् मधुर आदि रसों में गृद्धि से सर्वथा रहित थे। इहलोक और परलोक संबंधी प्रतिज्ञा से रहित थे; अर्थात् उन्हें न इस लोक संबंधी कोइ कामना थी, न परलोक संबंधी ही। वे सर्वथा कर्म निर्जरा की भावना से उग्र तप संयम की आराधना करने में तत्पर थे। उन्होंने नेत्रों को भी कभी जल से साफ नहीं किया। खुजली आने पर भी शरीर को नहीं खुजलाया। जनपद विहार करते हुए भगवान् ने कभी तिरछा-इधर-उधर, या पिछे की तरफ नहीं देखा। सामने की तरफ शरीर परि-मित-साढे तीन हाथ भूमि-मार्ग को देखते हुए विहार करते थे। शीत काल में अपनी दोनों भुजाएँ। फैलाकर संयम में आत्मबल का प्रयोग करते थे, कंधो पर

भुजाएँ नहीं स्थापित करते थे। भगवान् ने इस प्रकार का जो–उत्कृष्ट और अनुपम आचार पालन किया, उसका हेतु बतलाते हैं-अन्य मुनिजन भी इस प्रकार विहार करें, इस हेतु से अहिंसक और अप्रतिज्ञ [इहलोक–परलोकसंबंधी प्रतिज्ञा से रहित] भगवान् ने मूलगुणों एवं उत्तरगुणों की आराधना आचार का बार–बार उत्कर्ष के साथ पालन किया ॥५१॥

भगवओ विहारट्ठाणाणि

मूलम्—कयाइ भगवं आवेसणेसु वा सहासु वा पवासु वा, एगया कयाइ सुण्णासु पणिअसालासु पलियट्ठाणेसु पलालपुंजेसु वा, एगया आगंतुयागारे आरामागारे णगरे वा वसीअ। सुसाणे सुण्णागारे रुक्खमूले वा एगया वसीअ। एएसु ठाणेसु तहप्पगारेसु अण्णेसु ठाणेसु वा एवं वसमाणे समणे भगवं तत्थ तत्थ आहारं आहारेंति

भगवं महावीरे राइंदियं जयमाणे अप्पमत्ते समाहिए झाईअ। तत्थ तस्सुवसग्गा नीया अणेगरूवा य हविंसु, तं जहा-संसप्पगा य जे पाणा ते, अदुवा पक्खिणो भगवं उवसग्गिंसु। पहुरूवमोहियाओ इत्थियाओ य भगवं उवसग्गिंसु। सत्तिहत्थगा गामरक्खगा य किंपि अवयमाणं भगवं चोरसंकाए सत्थाभिघाएण उवसग्गिंसु। भगवंते सव्वे उवसग्गे अहियासीअ। अह य इहलोइयाइं परलोइयाइं अणेगरूवाइं पियाइं अप्पियाइं सद्दाइं, अणेगरूवाइं भीमाइरूवाइं अणेगरूवाइं सुब्भि-दुब्भिगंधाइं, विरूवरूवाइं फासाइं सया समिए रइं अरइं अभिभूय अवाई समाणे सम्मं अहियासीअ।

सुण्णागारे राओ काउसग्गे ठियं भगवं कामभोगे सेविउकामा परत्थी सहिया एगचरा समागया पुच्छंति—'कोऽसि तुमं' त्ति, तया कयावि भगवं न

किंपि वयइ तुसिणीए संचिट्ठइ, तया अवायए भगवम्मि कुद्धा रुट्ठा समाणा नाणाविहं उवसग्गं करेंति, तंपि भगवं सम्मं सहीअ। कयावि 'को एत्थ' त्ति पुच्छिए भगवं वदीअ अहमांसि भिक्खू' त्ति सोच्चा स कसाएहिं तेहिं आहच्च—अपसरेहि एत्तो'—त्ति कहिय भगवं अयमुत्तमे धम्मे त्ति कट्टु तत्तो तुसिणीए चेव निस्सरीअ जंसि हिमवाए सिसिरे पवेयए मारुए पवायत्ते अप्पगे अणगारा निवायं ठाणमेसंति अण्णे 'संघाडीओ' पविसिस्सामोत्ति वयंति एगे य इंधणाणि समादहमाणा चिट्ठंति। केइ पिहिया अइदुक्खं हिमगसंफासं सहिउं सक्खामो त्ति सोयंति, तंसि तारिसगंसि सिसिरंसि दविए भगवं अपडिण्णे समाणे वियडे ठाणे तं सीयं सम्मं अहियासीअ। एस विही 'अण्णे मुणिणो वि एवं रियंतु' त्ति कट्टु अप्पडिन्नेण मइमया भगवया बहुसो अणुक्कंतो ॥८२॥

शब्दार्थ—[कयाइ भगवं आवेसणेसु वा सहासु वा पवासु वा] कभी भगवान् शिल्पकारों की शालाओं में उतरे, कभी सभाओं में, कभी प्रपाओं में [एगया कयाइ सुण्णासु पणियसालासु पलियट्ठाणेसु पलालपुंजेसु वा] कभी सूनी दुकानों में, कभी कारखानों में, कभी पलाल के पुंजों में, [एगया आगंतुयागारे आरामागारे णगरे वा वसीअ] कभी धर्मशालाओं में, कभी आरामगृहों में कभी बगीचों में कभी घरों में कभी नगर में रहते थे तो कभी [सुसाणे सुन्नागारे रुक्खमूले वा एगया वसीअ] स्मशान में शून्य गृहों में और कभीवृक्ष के नीचे रहते थे [एएसु ठाणेसु तहप्पगारेसु अण्णेसु ठाणेसु वा वसमाणे समणे भगवं] इन स्थानों में अथवा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में रहते हुवे श्रमण भगवान् [तत्थ तत्थ कालावसरे] वहां पर आहार के योग्य समय पर [आहारं आहरेइ] आहार पाणी करते थे, गृहस्थी के घर पर नहीं एवं [भगवं महावीरे राइंदियं जयमाणे अप्पमत्ते समाहिए झाईअ] भगवान् श्रीमहावीर प्रभु रातदिन यतना करते हुए अप्रमत्त और समाधियुक्त रहे। [तत्थ तस्सुवसग्गा नीया अनेगरूवा य हविंसु तं जहा—] इन स्थानों पर भगवान् को अनेक

प्रकार के उपसर्ग हुए। वे इस प्रकार हैं–[संसप्पगा य जे पाणा ते अदुवा पक्खिणो भगवं उवसग्गिंसु] संसर्पण करनेवाले सर्प आदि जो प्राणी थे, उन्होंने तथा पक्षियों ने भगवान् को उपसर्ग किया। [पहुरूवमोहियाओ इत्थियाओ य भगवं उवसग्गिंसु] प्रभु के रूप पर मोहित होकर स्त्रियों ने प्रभु को उपसर्ग किया [सत्ति हत्थगा गामरक्खगा य किं वि अवयमाणं-भगवं चोरसंकाए सत्थाभिघाएण उवसग्गिंसु) शक्ति नामक शस्त्र हाथ में लिये हुए ग्राम-रक्षक कुछ भी नहीं बोलते हुए भगवान् को चोर समझ कर शस्त्र का आघात करके उपसर्ग देते थे [भगवं ते सव्वे उवसग्गे अहियासीअ] भगवान् ने उन सभी उपसर्गों को अच्छी तरह समभाव से सहन किया [अहय इहलोइयाइं परलोइयाइं अणेगरूवाइं-पियाइं अप्पियाइं सद्दाइं] इह लोग और परलोक संबन्धी अनेक प्रकार के प्रिय एवं अप्रिय शब्दों को [अणेगरूवाइं भीमाइरूवाइं] विविध प्रकार के भयंकर आदि रूपों को [अणेगरूवाइं सुब्भिदुब्भिगंधाइं] भांति भांति की सुगन्ध दुर्गन्ध को [विरूवरूवाइं

फासाइं सया समिए रइं अरइं अभिभूय अवाई समाणे सम्मं अहियासीअ] तथा तरह तरह के स्पर्शों को सदा समितियुक्त, तथा रति अरति का अभिभव करके, मौन रहकर सम्यग् प्रकार से सहन करते रहे।

[सुण्णागारे राओ काउसग्गे ठियं भगवं कामभोगे सेविउकामा परत्थीसहिया एगचरा समागया पुच्छंति--] कभी कभी सूने घरमें रात्रि के समय काम भोग सेवन के की कामना करनेवाले परस्त्री के साथआये हुए जार पुरुष कायोत्सर्ग में स्थित भगवान् से पूछते थे–['कोऽसि तुमं' त्ति] तू कौन है ? [तया कयावि भगवं न किंपि वयइ तुसिणीए संचिट्ठइ] तो भगवान् कभी भी कुछ भी उत्तर नहीं देते थे चुपचाप रहते थे। [तया अवायए भगवम्मि कुद्धा रुट्ठा समाणा नाणाविहं उवसग्गं करेंति] उस समय मौन रहने वाले भगवान् पर वे क्रुद्ध होकर नाना प्रकार के कष्ट उन्हें देते थे [तं पि भगवं सम्मं सहीअ] उस कष्टको भी भगवान् ने सम्यक् प्रकार सहन किया। [कया त्रि

'को एत्थ' त्ति पुच्छए भगवं वदीय–अहमंसि भिक्खू' त्ति सोच्चा सकसाएहिं तेहिं आहच्च–] यहां कौन हैं ? इस प्रकार पूछने पर कदाचित् भगवान् उत्तर देते थे–मैं भिक्षुक हूं ।' यह सुनकर वे कषाययुक्त हो जाते और मारपीट करते–[अपसरेहि एत्तो' त्ति कहिय भगवं अयमुत्तमे धम्मे' त्ति कट्टु तत्तो तुसिणीए चेव निस्सरीअ]–हठ यहां से' इस प्रकार कहे गये भगवान् यही उत्तम धर्म हैं' ऐसा सोचकर बिनाबोले ही वहां से निकल जाते थे । [जंसि हिमवाए सिसिरे पवेयए मारुए पवायंते अप्पेगे अणगारा निवायं ठाणमेसंति] जिस शीतलवायुवाली शिशिरऋतु में, कंप कँपी उत्पन्न करनेवाली हवा चलने पर कोई–कोई अनगार वायुरहित स्थान की गवेषणा करते थे [अण्णे 'संघाडीओ' पविसिस्सामोत्ति वयंति] और कोई कोई कहते थे कि 'हम संघाटी–चादर ओढेंगे' [एगेय इंधणाणि समादहमाणा चिट्ठंति] तथा कोई कोई संन्यासी आदि शीत निवारण के लिए ईधन जलाते थे [केइ पिहिया अइदुक्खं हिमगसंफासं सहिउं सक्खामो

त्ति सोयंति] कोई कोई सोचते थे कि वस्त्रओढने पर ही इस शीत के कष्ट को सहन कर सकते है [तंसि तारिसगंसि सिसिरंसि दविये भगवं अपडिण्णे समाणे] ऐसे शिशिर के समय में भी भगवान् मुक्ति के अभिलाषी और अप्रतिज्ञ रहकर [वियडे ठाणे तं सीयं सम्मं अहियासीअ] सम्यक् प्रकार से उस शीत को सहन करते थे [एस विही 'अण्णे मुणिणो वि एवं रियंतु' त्ति कट्टु अपडिन्नेण मइमया भगवया बहुसो अणुक्कंतो] 'अन्य मुनि भी इस प्रकार आचरण करें' ऐसा सोचकर अप्रतिज्ञ एवं मतिमान् भगवान् ने अनेक बार इस प्रकार के आचार का पालन किया ॥सू५२॥

भावार्थ——कभी कभी भगवान् शिल्पियों की शालाओं में कभी सभा–स्थलों में और कभी–कभी प्याउओं में उतरते थे। कभी–कभी जनशून्य दुकानों में, कभी कारखानों में कभी पलाल के पुञ्जों में, कभी धर्मशालाओं में, कभी उपवन में बने घरों में, कभी वृक्षों के नीचे उतरते थे। इन सब स्थानों में तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों

में रहते हुए भगवान् महावीर यथा समय उस उस स्थान पर गोचरीलाकर आहारपानी करते थे एवं दिन-रात यतना करते हुए, प्रमादहीन होकर और समाधि में लीन रहकर धर्मध्यान ही करते रहते थे। इन स्थलों में ठहरते समय भगवान् को देवों आदि द्वारा भांति-भांति के उपसर्ग हुए। जैसे-सर्पादि तथा द्वीन्द्रिय आदि चलने-फिरने वाले प्राणी अथवा गीध आदि पक्षी स्थाणु की तरह अचल भगवान् को उपसर्ग करते थे। कभी-कभी प्रभु के रूप पर मोहित होकर स्त्रियां प्रभु को उपसर्ग करती थीं। तथा शक्ति नामक अस्त्र हाथ में लिये ग्रामरक्षक-कोतवाल आदि कुछ भी न बोलने वाले भगवान् को चोर की आशंका करके अर्थात् चोर समझकर शस्त्रों का प्रहार करके उपसर्ग करते थे, परन्तु भगवान् इन सभी उपसर्गों को सम्यग् रीति से सहन करते थे। तथा-भगवान् इहलोक संबंधी मनुष्यादिकृत तथा परलोक संबंधी अर्थात् देवादिकृत अनेक प्रकार के अनुकूल एवं प्रतिकूल शब्दों को, विविध प्रकार के भयानक पिशाच आदि के रूपों को 'आदि' शब्द से देवांगना

आदि के मनोहर रूपों को, तरह–तरह की सुगंध और दुर्गंध को, तथा अमनोज्ञ और उपलक्ष से मनोज्ञ स्पर्शों को, सदैव समितियुक्त होकर, राग–द्वेष को त्यागकर, मौन भाव से अपने सुख–दुःख को प्रकाशित न करते हुए, निश्चलरूप से सहन करते थे। कभी–कभी ऐसा ऐसा प्रसंग आता था कि भगवान् सुने घर में रात्रि के समय कायोत्सर्ग में स्थित रहते थे, उस समय व्यभिचारी पुरुष परस्त्री के साथ कामभोग सेवन करने के लिए वहां आते और भगवान् से पूछते–कौन हैं तू? तब भगवान् कुछ उत्तर नहीं देते, मौन साधे रहते। तब कुछ भी उत्तर न देने वाले भगवान् पर वे क्रोधित होते, रूष्ट होते और भगवान् को अनेक प्रकार से लट्ठी मुट्ठी आदि से ताडना करते। उस उपसर्ग को भी भगवान् सम्यग् रूप से सह लेते थे। कभी किसी ने पूछा–'कौन हैं यहां? इस प्रश्न के उत्तरमें वीर प्रभु ने कहा–मैं भिक्षु हूं, वह शब्द सुनकर वे जार पुरुष क्रोध आदि कषायों से युक्त हो जाते और ताडना करके कहते–'दूर जा यहां से' इस प्रकार

कहने पर भगवान् सोचते–'ताडना आदि को सह लेना उत्कृष्ट धर्म है, और यह सोचकर वे चुपचाप, बिना कुछ कहे, निकल जाते थे। शीतल वायु से युक्त शिशिर ऋतु में, शीतलता के कारण मनुष्यों को कमकंपी उत्पन्न करने वाली हवा चलती थी। उस समय कितने ही साधु ऐसे स्थान खोजते फिरते थे जहां वायु का प्रवेश न हो। कोई–कोई जन शीत की भीति से कहते थे–'हम तो शीत को रोकने वाले वस्त्र में दुबक जाएँगे।' कई संन्यासी लोग आग में ईंधन जलाकर तापते थे। कोई सोचते थे–वस्त्र ओढने से ही महाकष्टकर सर्दी सहन की जा सकती है। ऐसे शीतकाल में भी मोक्ष के अभिलाषी भगवान् इहलोक–परलोक संबंधी समस्त कामनाओं से दूर रहकर सर्दी के भयवाले स्थान में वृक्ष के नीचे रहकर उस दुस्सह शीत को अचल भाव से सहन करते थे। 'मेरे सिवाय अन्य मुनि भी इस प्रकार विहार करें–संयम की साधना करें' ऐसा विचार करके भगवान् वीर स्वामी ने बारम्बार इस आचार का पालन किया ॥५२॥

मूलम्—तओ भगवं पुणोऽवि चिंतेइ—'बहुयं कम्मं मम निज्जरेयव्वं अत्थि, अओ अनारियबहुलं लाढदेसं वच्चामि, तत्थ हीलणनिंदणाईहिं बहुयं कम्मं निज्जरिस्सइ' त्ति कट्टु लाढदेसं पविसीअ। तत्थ पविसमाणस्स भगवओ मग्गे चोरा मिलिया। ते य भगवं दट्ठूणं 'अवसउणं जायं जं मुंडिओ मिलिओ, एयं अवसउणं एयस्स चेव वहाए भवउ' त्ति कट्टु भगवं लट्ठिमुट्ठिप्पहारेहिं बहुसो हणिंसु। अह दुच्चरलाढचारी भगवं तस्स देसस्स वज्जभूमिं च सम-णुपत्ते। तत्थ णं से विरूवरूवाइं तणसीयतेयफासाइं दंसमसगे य सया समिए सम्मं सहीअ। पंतं सेज्जं पंताइं असणाइं सेवीअ। तत्थ भगवओ बहवे उव-सग्गा समागया, तं जहा—लूहे भत्ते संपत्ते, जाणवया लूसिंसु, कुक्कुरा हिंसिंसु निवाडिंसु। अप्पा चेव उज्जुया जणा लूसएणं डसमाणे सुणए य निवारेंति।

बहवे उ 'समणं कुक्कुरा डसंतु' त्ति कट्टु सुणए छुछुकारेंति। तत्थ वज्ज-भूमीए बहवे फरुसभासिणो कोहसीला वसंति। तत्थ अण्णे समणा लट्ठिं नालियं च गहाय विहरिंसु, तहवि ते सुणिएहिं पिट्ठभागे संलुंचिज्जिंसु। अओ लाढेसु दुच्चरगाणि ठाणाणि संति त्ति लोए पसिद्धं, तत्थ वि अभिसमेच्च भगवं 'साहूणं दंडो अकप्पणिज्जो' त्ति कट्टु दंडरहिए वोसट्ठकाए गामकंडगाणं सुणगाणं च उवसग्गे अहियासीअ। संगामसीसे णागोव्व से महावीरे तत्थ पारए आसी। एगया तत्थ गामंतियं उवसंकममाणं अपत्तगामं भगवं अणारिया पडिनिक्खमित्ता एयाओ परं पलेहित्ति कहिय लूसिंसु। हयपुव्वोऽवि भगवं पुणो पुणो तत्थ विहरीअ। तत्थ केइ अणारिया भगवं दंडेणं केइ मुट्ठिणा केइ कुंताइफलेणं केइ लेलुणा केइ कवालेण हंता हंता कंदिंसु। एगया

ते लुंचियपुव्वाणि मंसूणि उट्टंभिय विरूवरूवाइं परिसहाइं दाऊणं कायं लुंचिंसु, अहवा पंसुणा उवाकिरिंसु उच्छालिय णिहणिंसु अदुवा आसणाओ खलइंसु, तहवि पणयासे भयवं वोसट्ठकाए अपडिन्ने दुक्खं सहीअ। एवं तत्थ से संवुडे महावीरे फरुसाइं परिसहोवसग्गाइं पडिसेवमाणे संगामसीसे सुरोव्व अयले रीइत्था। एसविही मइमया माहणेण अपडिन्नेण भगवया 'एवं सव्वेऽवि रीयंतु' त्ति कट्टु बहुसो अणुक्कंतो ॥८३॥

शब्दार्थ—[तओ भगवं पुणो अवि चिंतेइ] तत्पश्चात् भगवानने पुनः विचार किया [बहुयं कम्मं मम निज्जरेयव्वं अत्थि अओ अनारियबहुलं लाढदेसं वच्चामि] मुझे बहुत से कर्मों की निर्जरा करनी है, अतः अनार्य बहुल लाढ देश में जाना चाहिये [तत्थ हीलणनिंदणाइहिं बहुअं कम्मं निज्जरिस्सइ' त्ति कट्टु लाढदेशं पविसीअ] वहां

हीलना एवं निंदना आदि होने से बहुत कर्मों की निर्जरा होगी।' ऐसा सोचकर भगवान् ने लाढ देश में प्रवेश किया [तत्थ पविसमाणस्स भगवओ मग्गे चोरा मिलिया] लाढ देश में प्रवेश करते ही भगवान् को मार्ग में चोर मिले [ते य भगवं दट्टूणं अवसउणं जायं जं मुंडिओ मिलिओ एयं अवसउणं एयस्स चेव वहाए भवउ' त्ति कट्टु] उन्होंने भगवान् को देखकर विचार किया कि हमें यह मुंड़ा मिला अतः अपशुकन हो गया यह अपशकुन इसी मुंडे के वध के लिए हो, ऐसा सोचकर [भगवं लट्ठिमुट्ठिप्पहारेहिं बहुसो हणिंसु] चोरोंने भगवान् को लाठी और मुट्ठि से खूब मारा [अह दुच्चरलाढचारी भगवं तस्स देसस्स वज्जभूमिं सुब्भभूमिं च समणुपत्ते] भगवान् ने उसे सम्यक् प्रकार से सहन किया। तदनन्तर दुर्गम लाट देश में बिहार करने वाले भगवान् हुए क्रमशः लाट देश की वज्रभूमि तथा शुभ्रभूमि में पधारे [तत्थ णं से विरूवरूवाइं तणसीयतेयफासाइं दंसमसगे य सया समिए सम्मं सहीअ] वहां भगवान् ने

कंटक, शीत और उष्ण आदि के स्पर्शों को तथा डांस मच्छर आदि के दंखों को समाधि में लीन रहकर सम्यग् प्रकार से निरंतर सहन किया [पंतं सेज्जं पंताइं असणाइं सेवीअ] कष्ट कर निवासस्थानों का तथा निरस कष्टकर अशन आदि का सेवन किया [तत्थ भगवओ बहवे उवसग्गा समागया] वहां भगवान् पर बहुत उपसर्ग आये [तं जहा–लूहे भत्ते संपत्ते, जाणवया लूसिंसु, कुक्कुरा हिंसिंसु निवाडिंसु] जैसे–वहां लूखा भोजन मिला, वहां के लोगों ने मारपीट की, कुत्तों ने काटा और निचे गिरा दिया [अप्पा चेव उज्जुया जणा लूसएण उसमाणे सुणए य निवारेंति] कोई विरले सीधे लोग ही मारने वालों को एवं काटने वाले कुत्तों को रोकते थे [बहवे उ 'समणं कुक्कुरा डसंतु' त्ति कट्टु सुणए छुछुकारेंति] बहुत से तो यही सोचते थे कि इस श्रमण को कुत्ते काटें तो अच्छा, ऐसा सोचकर वे कुत्तों को छुछुकारते थे। [तत्थ वज्जभूमीए बहवे फरुसभासिणो कोहसीला वसंति] उस वज्रभूमि में बहुत से रूखा बोलने वाले और क्रोधशील लोग

रहते थे [तत्थ अण्णे समणा लट्ठिं नालियं च गहाय विहरिंसु, तहवि ते सुणएहिं पिट्ठिभागे संलुंचिज्जिंसु] दूसरे श्रमण वहां डंडा और लाठी लेकर विचरते थे, फिर भी कुत्ते उन्हें पीछे से नोंच लेते थे, [अओ लाढेसु दुच्चरगाणि ठाणाणि संति–त्ति लोए पसिद्धं] अत एव लोगों में यह बात फैल गइ थी कि लाट देश में ऐसे स्थान हैं जहां चलना कठिन है। [तत्थ वि अभिसमेच्च भगवं 'साहूणं दंडो अकप्पणिज्जो' त्ति कट्टु] वहां जाकर भी भगवान् ने साधुओं को डंडा रखना कल्पता नहीं ऐसा सोचकर [दंड रहिए वोसट्ठकाए गामकंटगाणं सुणगाणं च उवसग्गे अहियासीअ] दंड रहित काया की ममता का त्याग कर दुर्जनों और श्वानों के उपसर्गों को सहन किया [संगामसीसे नागोव्व से महावीरे तत्थ पारए आसी] संग्राम के बीच हाथी को भांति महावीर उन उपसर्गों को पार करने वाले हुए [एगया तत्थ गामंतियं उवसंकमाणं अपत्तगामं भगवं अणारिया पडिनिक्खमित्ता एयाओ परं पलेहित्ति कहिय लूसिंसु] एक समय भगवान् गांव के

समीप पहुंचे और गांव में पहुंच भी नहीं पाये कि अनार्य लोक बाहर निकल निकल कर 'भाग जाओ यहां से दूर' ऐसा कहकर मारने लगे [हयपुव्वोऽवि भगवं पुणो पुणो तत्थ विहरीअ] जहां पहले भगवान् को मारा गया था वहां भगवान् पुनः पुनः विचरण करते थे [तत्थ केइ अणारिया भगवं दंडेण केइ मुट्ठिणा केइ कुंताइफलेणं केइ लेलुणा केइ कवालेण हंता हंता कंदिंसु] परिणाम स्वरूप उन अनार्यों में से कंइ लोग भगवान् को डंडे से, कंइ लोग मुट्ठी से कंइ लोग भाले आदि से, कंइ मिट्टी के ढेले से और कइ ठिकरियों से मार मार कर चिल्लाते थे [एगया ते लुंचियपुव्वाणि मंसूणि उट्टुंभिय विरूवरूवाइं परिसहाइं दाऊणं कायं लुंचिंसु] कभी–कभी वे पहले नोचे हुए बालों को पकडकर नाना प्रकार के परीषह को देकर शरीर को नोंचते थे [अहवा पंसुणा उवकिरिंसु उच्छालिय णिहणिंसु] अथवा भगवान् को धूल से भर देते थे और उपर उछालकर पटक देते थे। [अदुवा आसणाओ खलइंसु तहवि पणयासे भगवं वोसट्ठकाए अपडिन्ने

दुक्खं सहीअ], अथवा आसन से धक्का देते थे फिर भी निर्जरार्थी भगवान् काया की ममता का त्याग कर तथा अप्रतिज्ञ (निरपेक्ष) होकर दुःखों को सहन कर लेते थे [एवं सत्थ से संवुडे महावीरे फरूसाइं परिसहोवसग्गाइं पडिसेवमाणे संगामसीसे सुरोव्व अयले रीइत्था] इस प्रकार भगवान् महावीरने वहां संग्राम के अग्रभाग में शूर पुरुष की तरह कठोर परीषहों और उपसर्गों को सहन करते हुए निश्चल भाव से विहार किया [एस विही मइमया माहणेण अपडिन्नेण भगवया 'एवं सव्वेऽवि रीयंतु' त्ति कट्टु बहुसो अणुक्कंतो], अन्य मुनि जन भी ऐसा ही परीषह सहन करें' इस प्रकार विचार कर माहण एवं अप्रतिज्ञ–निरपेक्ष भगवान् ने बार बार इस विधिका पालन किया ॥५३॥

भावार्थ—अनार्य देश में भांति २ के उपसर्ग सहन करने के अनन्तर भगवान् ने पुनः चिन्तन किया–मुझे अभी बहुत से कर्मों का क्षय करना है। अतएव मुझे उस लाट देश में विहार करना चाहिए, जहां अनार्य लोगों की बहुलता है। लाट देश में

अनादर होने से और गालियां खाने से तथा इसी प्रकार का अन्य अवांछित व्यवहार होने से मेरे बहुत कर्मों का क्षय हो जायगा। ऐसा सोचकर उन्होंने लाट देश में विहार किया। लाट देश में प्रवेश किया ही था कि मार्ग में चोर मिल गये। चोरों ने भगवान् को देखकर समझा कि हमें यह मुंडा मिला, अतः अपशकुन हो गया, यह अपशकुन इसी मुंडे के वध के लिए हो, ऐसा सोचकर चोरों ने श्री वीर प्रभु को वार-वार यष्टि और मुष्टि से मारा। वह सब उपसर्ग भगवान् ने सम्यक् प्रकार से सहन किये। इसके बाद दुर्गम लाट देश में विहार करने वाले भगवान् क्रमशः लाट देश की वज्रभूमि नामक प्रदेश में तथा शुभ्र भूमि नामक प्रदेश में पधारे। उस वज्रभूमि और शुभ्र भूमि में भगवान् महावीर स्वामी ने अनेक प्रकार के कांटों आदि तथा सर्दी और गर्मी के एवं दंशमशक आदि के कष्टों को समितियुक्त होकर, सम्यक् प्रकार से निरन्तर सहन किया। उस लाट देश की वज्रभूमि एवं शुभ्र भूमि में भगवान्

महावीर स्वामी को बहुत उपसर्ग आये। जैसे वहां भगवान् को रूखा सुखा आहार मिला। लाट के लोगों ने भगवान् को लट्ठी मुट्ठी आदि से ताडित किया। प्रभु वीर को कुत्तों ने काटा और नीचे पटक दिया। वहां के अधिक लोग तो, 'कुत्ते इस श्रमण को काटें,' ऐसा सोचकर कुत्तों को छुछुकारते ही थे–काटने के लिए उत्साहित ही करते थे। अधिकांश लोग उस वज्र शुभ्रभूमि में रूक्ष और कठोर बोल ही बोलते थे, और स्वभाव के क्रोधी थे। लाट देश की उस वज्र भूमि में बौद्ध आदि श्रमण कुत्तों के भय से बचने के लिए डंड़ा लेकर और यष्टि अर्थात् अपने शरीर के प्रमाण से चार अंगुली लम्बी लकडी लेकर चलते थे, फिर भी कुत्ते पीछे की तरफ से उन श्रमणों को नोच लिया करते थे। इस कारण यह बात प्रसिद्ध हो गई थी कि लाट देश में ऐसे स्थान हैं, जहां चलना बडा कठिन है। ऐसे लाट देश में भी जाकर भगवान् ने कभी डंडा नहीं लिया। उन्होंने विचार किया कि डंडा धारण करना साधुओं को कल्पता नहीं है।

भगवान् तो देह की ममता से रहित होकर दुष्टजनों और कुत्तों के किये हुए उपसर्गों को सहन करते थे। जैसे हाथी संग्राम के मोर्चे पर आगे ही बढता जाता है, उसी प्रकार भगवान् महावीर प्रभु भी आगे ही बढते गये और उपसर्गों के पारगामी हुए।

एक बार लाट देश की दुर्गम भूमि में ग्राम के समीप पहुंचे हुवे, भगवान् को देखकर म्लेच्छ लोग गांव के बाहर निकलकर इस जगह से दूर भाग जाओ—यहां से लौट जाओ' इस प्रकार कहकर भगवान् को यष्टि और मुष्टि आदि से मारने लगे। जहां पहले भगवान् पर प्रहार हुए थे, उन्हीं स्थानों में भगवान् कर्मों का क्षय करने के लिए बार—बार विचरते थे। उस लाट देश में कोई अनार्य जन डंडे से, कोई भाले आदि शस्त्रों की नौंक से, कोई मिट्टी के ढेले से और कोई पत्थर से और कोई ठीकरों से भगवान् को मारते और कोलाहल करते थे। कभी—कभी वे पहले शरीर के बालों को खींच—खींच कर भगवान् को नाना प्रकार के कष्ट देते थे। शरीर को विदारण कर देते थे।

अथवा धूलि से आच्छादित कर देते थे। अथवा धूल ऊपर उछाल कर ताडना करते थे, अथवा आसन से नीचे गिरा देते थे। इतने सब उपसर्ग होने पर भी वे उन उपसर्गों को निःस्पृह होकर सहन करते थे। इस प्रकार भगवान् ने संवर युक्त होकर कठोर शीत उष्ण आदि के परीषहों तथा मनुष्यादिकृत उपसर्गों को सहन करते हुए, संग्राम के अग्रभाग में शूर पुरुष के समान, स्थिर भाव से विहार किया। इस विधि--कल्प का मतिमान् 'माहन' अर्थात् किसी को कष्ट मत दो, इस प्रकार का उपदेश देने वाले तथा अप्रतिज्ञ भगवान् महावीर ने 'मेरे ही समान सब श्रमण परीषह सहन करके आचरण करें ऐसा विचार कर बार--बार पालन किया ॥५३॥

मूलम्--तए णं भगवं रोगेहिं अपुट्ठेऽवि ओमोयरियं सेवित्था। अहय सुणगदंसणाईहिं पुट्ठे वि, काससासाइएहिं रोगेहिं अपुट्ठे वि भाविसंकाए णो से तेइच्छं साइज्जीअ भगवं संसोहणं वमणं गायब्भंगणं सिणाणं संबाहणं

दंतपक्खालणं च कम्मबंधणं परिण्णाय नो सेवीअ। गामधम्माओ विरए अवाइमाहणे रीइत्था। सिसिरम्मि भगवं छायाए आसीणे झाईअ। गिम्हे य आयावीअ, आयावे उक्कुडुए अच्छीय। अह य भगवं ओयणं मंथुं कुम्मासं चेयाणि तिण्णि लूहाणि सीयलाणि पडिसेवीअ अट्ठमासे जाव इत्था। तओ य भगवं अद्धमासे मासं साहिए दुवेमासे छम्मासे य असणाइयं परिहाय राओवरायं अपडिन्ने विहरित्था पारणगेवि गिलाणमन्नं भुंजित्था। एगया कयावि छट्ठेण कयावि अट्ठमेणं दसमेणं दुवालसमेणं समाहिं पेहमाणे अपडिन्ने भगवं भुंजित्था। णच्चा य से महावीरे णो चेव पावगं सयमकासी अन्नेहिं वा णो कारित्था। करंतंपि णाणु जाणित्था। गामं नगरं वा पविस्स भगवं परट्ठाए कडं घासमेसित्था, सुविसुद्धं तमे-सिय आययजोगयाए सेवित्था भिक्खायरियाए भमंते भगवं वायसाइए

रसेसिणो सत्ते घासेसणाए चिट्ठंते पेहाए सयंताओ निवत्तीअ। अह य पुरओ ठियं समणं वा माहणं वा गामपिंडोलगं वा अतिहिं वा सोवागं वा पेहाए णिवट्टमाणे अप्पत्तियं परिहरंते अहिंसमाणे सया समिए मंदं मंदं परक्कमिय अन्नत्थ घासमेसित्था सूइयं वा असूइयं वा उल्लं वा सुक्कं वा सीयपिंडं पुराणकुम्मासं अदुवा वक्कसं पुलागं वा जं किंचि लद्धं तं आहरित्था. लद्धे वा अलद्धे वा पिंडे दविए समभावेण रीइत्था। उक्कुडुपाइ आसणत्थे भगवं अकुक्कए अपडिन्ने उड्ढमहो तिरियलोयसरूवं समाहिय झाणं झाइत्था। छउमत्थेवि भगवं अकसाई विगयगेही सद्दरूवाईसु अमुच्छिए विपरक्कममाणे सइंपि पमायं णो कुव्वित्था। आयसोहीए आयतजोगं सयमेव अभिसमागम्म अभिनिव्वुडे आवकहं अम्माइल्ले भगवं समिए आसी। एसो विही मइमया माहणेण अप-

डिण्णेण भगवया 'अण्णोवि मुणिणो एवं रियंतु' त्ति कट्टु बहुसो अणुक्कंतो ॥५४॥

शब्दार्थ—[तए णं भगवं रोगेहिं अपुट्ठेऽवि ओमोयरियं सेवित्था] उसके बाद भगवान् ने रोगों से अस्पृष्ट होकर भी उनोदरी तप का सेवन किया [अहय सुणगदंसणाईहिं पुट्ठे वि, काससासाइएहिं रोगेहिं अपुट्ठे वि भाविसंकाए णो से तेइच्छं साइज्जीअ] इसके अतिरिक्त श्वानदशन आदि से स्पृष्ट होकर भी और श्वास, खांसी आदि रोगों से स्पृष्ट न होकर भावी रोग की आशंका से भी भगवान् ने चिकित्सा न करवाई [भगवं संसोहणं वमणं गायब्भंगणं सिणाणं संबाहणं दंतपक्खालणं च कम्मबंधणं परिण्णाय नो सेवीअ] मलाशय का संशोधन, वमन, मालिश, स्नान मर्दन और दंतधावन को कर्मबन्धन का कारण जानकर सेवन नहीं किया [गामधम्माओ विरए अवाई माहणे रीइत्था] मैथुन से विरत और मौनधारी होकर माहन विचरे [सिसिरम्मि भगवं छायाए आसीणे झाईअ] शिशिर ऋतु में भगवान् वृक्ष की छाया में बैठकर ध्यान करते थे

भगवत आचारपरिपालनविधे वर्णनम्

[गिम्हे य आयावीअ] ग्रीष्म ऋतु में आतापना लेते थे [आयावे य उक्कुडुए अच्छीय] आतापना लेते समय उत्कुटुक आसन से बैठते थे [अहय भगवं ओयणं मंथु कुम्मासं चेयाणि तिण्णि लूहाणि सीयलाणि पडिसेविय अट्ठमासे जावइत्था] भगवान् ने ओदन मंथु [बेर का चूरा] और कुल्माष [उडद] इन तीन ठंडी और वासी वस्तुओं का सेवन करके आठ मास बिताये [तओय भगवं अद्धमासं साहिए दुवे मासे छम्मासे य असणाइयं परिहाय राओवरायं अपडिण्णे विहरित्था] भगवान् ने अर्धमास, मास ढाइ मास और छमास तक अशन आदि का परित्यागकरके, अप्रतिज्ञ (अपेक्षा रहित) होकर विहार किया [पारणगेवि गिलाणमन्नं भुंजित्था] पारणे के समय भी वासी (ठंढा) भोजन किया [एगया कयावि छट्ठेण कयावि अट्ठमेणं दसमेणं दुवालसमेणं समाहिं पेहमाणे अपडिण्णे भगवं भुंजित्था] कभी बेला कभी तेला, कभी चोला, कभी पंचोला, करके समाधि को देखते हुए अप्रतिज्ञ भगवानने विहार किया [णच्चा य से महावीरे

णो चेव पावगं सयमकासी] पाप के परिणाम को जान कर महावीरने न स्वयं पाप किया [अन्नेहिं वा णो कारित्था] न दूसरों से करवाया [करंतंपि णाणुजाणित्था] न करनेवाले का अनुमोदन ही किया [गामं णगरं वा पविस्स भगवं परट्ठाए कडं घासमेसित्था] ग्राम या नगर में प्रवेश करके भगवान् ने दूसरों के निमित्त बनाये गये आहार की एषणा की [सुविसुद्धंतमेसिय आययजोगयाए सेवित्था] एवं निर्दोष आहार की एषणा करके भगवान् ने उसका सम्यक् मन वचन काय के योग के व्यापार के साथ अर्थात् समभाव से सेवन किया [भिक्खायरियाए भमंते भगवं वायसाइए रसेसिणो सत्ते घासेसणाए चिट्ठंते पेहाए सयंताओ निवत्तीअ] भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए भगवान् रसके अभिलाषी अर्थात् रस लोलुप कौवे आदि प्राणियों को आहार की खोज करते हुए देखकर स्वयं ही उसस्थान से दूर हो जाते थे [अहय पुरओ ठियं समणं वा माहणं वा गामपिण्डोलगं वा अतिहिं वा सोवागं वा पेहाए] सामने खडे हुए श्रमणों

को, ब्राह्मणों को, भिखारीयों को अतिथि अथवा चाण्डाल को देखकर [गिवट्टमाणे] वापसलौट जाते थे [अप्पत्तियं परिहरंते] अविश्वास को उत्पन्न न करते [अहिंसमाणे] तथा हिंसा से बचते हुए [सया समिए] सदा समितियुक्त [मंदं मंदं परक्कमिय] धीरे धीरे चलकर [अन्नत्थ घासमेसित्था] दूसरी जगह आहारकी गवेषणा करते थे [सूइयं वा असूइयं उल्लं वा सुक्कं वा सीयपींडं पुराणकुम्मासं अदुवा बक्कसं पुलागं वा जं किंचि लद्धं तं आहरित्था] इसरे स्थान पर भी चाहे व्यंजन आदि से संस्कार किया हुआ आहार मिले या असंस्कारित आहार मिले, गीला मिले या भुने हुए चने आदि रूखा सूखा मिले, वासी मिले या पुराने उडद मिले, चने आदि के छिलके मिले या निस्सार अन्न मिले जो कुछ भी कल्पनीय मिले जाप उसी का आहार करते थे। [लद्धे वा अलद्धे वा पिंडे दविए समभावेण रीइत्था] भिक्षाचर्या में आहारमिला तो और न मिला तो संयमशील भगवान् मध्यस्थभाव में ही विचरते थे। [उक्कुडुयाइ आसण-

त्थे भगवं अकुक्कए अपडिण्णे उड्ढमहोतिरियलोयसरूवं समाहिय झाणं झाइत्था] उकडू आदि आसनों से स्थित भगवान् वीर प्रभु मुख आदि किसी अंग पर विकार नहीं होने देते थे। इहलोक और परलोक की प्रतिज्ञा से रहित होकर तीनों लोकों के स्वरूप का मनोयोग पूर्वक चिन्तन करके धर्मध्यान में संलग्न रहते थे [छउमत्थे वि भगवं अकसाइ विगयगेही सद्दरूवाइसु अमुच्छिए विपरक्कममाणे सइंपि पमायं णो कुव्वित्था] छद्मस्थ होकर भी भगवान् ने कषायहीन अनासक्त, शब्द एवं रूप आदि में मूर्च्छा न करते हुए विशेषरूप से पराक्रम करते हुए एकबार भी प्रमाद नहीं किया [आय-सोहीए आयतजोगं सयमेव अभिसमागम्म अभिनिव्वुडे आवकहं अम्माइल्ले भगवं समिए आसी] आत्म शोधन पूर्वक स्वतः आयतयोग–ज्ञानपूर्वक सम्यग्योग व्यापार का आश्रयलेकर यावज्जीवनिवृत्तिमय अमायी और समित रहे [एसो विही मइमया माह-णेण अपडिण्णेण भगवया 'अण्णेवि मुणिणो एवं रीयंतु' त्ति कट्टु बहुसो अणुक्कंतो]

'अन्य मुनि भी इसी प्रकार आचरण करें यह सोचकर बुद्धिवान्, माहन, अप्रतिज्ञ भगवान् ने अनेक बार इस आचारका पालन किया ॥५४॥

भावार्थ—तब भगवान् वीर प्रभु ने ज्वर आदि रोगों से अछूते होने पर भी ऊनोदर [भूख से कम खाने रूप] तप का सेवन किया। कभी कुत्ता आदि ने काट खाया तो भी तथा सांस और खांसी आदि रोगों से रहित होने पर भी आगे कहीं ये रोग न हो जायें इसलिए उनके निवारण के हेतु भगवान् ने चिकित्सा का कदापि अनुमोदन नहीं किया। भगवान् वीर मलाशय आदि की शुद्धि, वमन [उल्टी–कै] शरीर की मालीश, स्नान, शारीरिक थकावट को मिटाने के लिए मर्दन और दातौन करने को कर्म बन्धन का कारण जानकर कभी सेवन नहीं करते थे। मैथुन के त्यागी मौनी, अहिंसा परायण होकर विचरते थे। शीत ऋतु में भगवन् वृक्ष आदि की छाया में बैठकर धर्मध्यान में लीन रहते थे, और ग्रीष्म ऋतु में प्रचंड सूर्य की आतापना लेते

थे। आतापना लेते समय उकडू आसन से बैठते थे। भगवान् ने ओदन [भक्त], मंथु–बोर आदि का चूरा और उड़द, इन तीन और रूखे और बासी अन्नों का ही सेवन करके आठ महीने बिताये। भगवान् ने अर्धमास [एक पक्ष], एक मास, कुछ दिन अधिक दो मास और छह मास तक अशन पान खादिम और स्वादिम आहारों का परित्याग किया और अप्रतिज्ञ होकर निरन्तर विहार करते रहे। पारणा में वासी अन्न का सेवक किया। कभी-कभी भगवान् चित्त की स्वस्थता का विचार करके अप्रतिज्ञ भाव से बेला करके आहार करते थे, कभी तेला करके, कभी चौला करके और कभी–कभी पंचोला करके, पाप के दुष्ट फल को जानकर महावीर स्वामी ने प्राणातिपात आदि पापकर्मों का स्वयं सेवन नहीं किया, दूसरों से सेवन नहीं कराया और पापों का सेवन करनेवाले का अनुमोदन नहीं किया' ग्राम अथवा नगर में प्रवेश करके महावीर भगवान् ने दूसरे जनों के लिए बनाये हुए आहार की गवेषणा की। आधाकर्म आदि

दोषों से रहित तथा कल्पनीय आहारकी गवेषणा करके भगवान् ने उसका सम्यक् मन, वचन काय के व्यापार के साथ अर्थात् समभाव से सेवन किया । भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए भगवान् इस के अभिलाषी अर्थात् जिह्वा के विषय-रस के लोलुप, काकआदि प्राणियों को आहार की खोज में स्थित देखकर, स्वयं ही उस स्थान से निवृत्त हो जाते थे । इसके अतिरिक्त अपने पहुंचने से पहले खडे शाक्य आदि श्रमण को, ब्राह्मण को; अथवा भीख मांगकर जीवन-निर्वाह करने वाले भिखमंगे को अथवा किसी विशेष ग्राम का आश्रय लेने वाले भिक्षुक को, साधु को या चाण्डाल को देख-कर उन श्रमण आदि को भोजन-लाभ में विघ्न न हो जाए, ऐसा विचार करके उस स्थान से वापस फिर जाते थे। तथा लोगों में उक्त श्रमण आदि के अविश्वास का परि-हार करते हुए प्राणातिपात आदि पापों से बचते हुए सदैव ईर्यासमितियों से सम्पन्न होकर, धीरे-धीरे फिर कर दूसरे स्थान पर आहार की गवेषणा करते थे। दूसरे स्थान

पर भी चाहे व्यंजन आदि से संस्कार किया हुआ आहार मिले या संस्कार किया हुआ न मिले, गीला मिले या भुने चने आदि रूखा सूखा मिले, वासी मिले या पुराने उडद मिले, चने आदि के छिलके मिले या निःसार अन्न मिले, जो कुछ भी कल्पनीय मिल जाय उसी का आहार करते थे। भिक्षाचर्या में आहार मिला तो और न मिला तो संयमशील भगवान् मध्यस्थ भाव में ही विचरते थे।

उकडू आदि आसनों से स्थित भगवान् वीर प्रभु मुख आदि किसी अंग पर विकार नहीं होने देते थे। इहलोक और परलोक की प्रतिज्ञा से रहित होकर तीनों लोकों के स्वरूप का मनोयोगपूर्वक चिन्तन करके धर्मध्यान में संलग्न रहते थे। यद्यपि उस समय भगवान् केवलज्ञानी नहीं–छद्मस्थ थे, फिर भी क्रोध आदि कषायों से रहित थे, और शब्द रूप गंध रस और स्पर्श रूप पांचों इन्द्रियों के विषयों में अनासक्त थे। विशेष रूप से अपनी आत्मा का सामर्थ्य प्रकट करते हुए एक वार भी भगवान् ने

प्रमाद नहीं किया। आत्मा की शुद्धिपूर्वक, सम्यक् मन वचन काय के व्यापार को स्वयं ही आश्रित करके भगवान् जीवन-पर्यन्त निवृत्ति भाव से सम्पन्न, माया से रहित और पांच समितियों से युक्त रहे। इस विधि मेधावी, अहिंसा परायण और इहलोक-परलोक संबंधी प्रतिज्ञा से रहित भगवान् ने 'अन्य मुनि भी इसी प्रकार इस आचार का पालन करें' इस प्रकार विचार कर इस आचार का अच्छे प्रकार से पालन किया ॥५४॥

मूलम्-तए णं समणे भगवं महावीरे लाढदेसाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता जेणेव सावत्थी नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तत्थ विचित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे दसमं चाउम्मासं ठिए। तत्थ णं अट्ठमतवेणं एगराइयं भिक्खुपडिमं पडिवण्णे झाणं झियाइ। तत्थ वि दिव्वे माणुस्से तेरिच्छे नाणाविहे उवसग्गे सम्मं सहइ। एवंविहेण विहारेण विहर-

माणे भगवं एगारसं चाउम्मासं वेसालीए णयरीए ठिए, तओ पच्छा सुसुमारं णयरं समणुपत्ते, तओ णं विहरमाणे कोसंबीए णयरीए समोसरिए। तत्थ णं सयाणीए राया। मिगावइ महिसी। तीए विजया पडिहारिया। वाइणामओ धम्मपालगो। गुत्तणामा अमच्चो तस्स णंदा भज्जा, सा साविआ आसी। अमू मिगावईए रायमहिसीए सही होत्था। तत्थ णं भगवं पोससुद्धाए पडिवयाए दव्वखेत्तकालभावं समस्सिय तेरसवत्थुसमाउलं इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिग्गहीअ। तं जहा—१ दव्वओ सुप्पकोणे २ बप्फिया मासा होज्जा। खेत्तओ दाइआ कारागारे ठिया ३ तत्थ वि देहलीए ४ उवविट्ठा ५ सा पुण एगं पायं बाहिं एगं पायं अंतो किच्चा ठिया ६ भवे। कालओ तइयाए पोरिसीए अन्नभिक्खायरेहिं निव्वत्तेहिं७, भावओ दाइया कयकीया दासित्तं पत्ता

रायकण्णा ८ निगडबद्धहत्थपाया ९, मुंडियमत्थया १०, बद्धकच्छा ११ अट्ठ-मतवजुत्ता १२, अस्सूणि मुयमाणा १३ होज्जा। एयारिसेण अभिग्गहेण जइ आहारो मिलिस्सइ तो पारणगं करिस्सामि। अन्नहा छम्मासी तवं करिस्सा-मित्ति कट्टु भगवं भिक्खट्ठाए अडइ। भगवओ सो अभिग्गहो न कत्थइ परिपुण्णो हवइ ॥५५॥

शब्दार्थ—[तए णं समणे भगवं महावीरे लाढदेसाओ पडिनिक्खमइ] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर लाट देश से विहार करते हैं [पडिनिक्खमित्ता जेणेव सावत्थी णयरी तेणेव उवागच्छइ] निकलकर जहां श्रावस्ती नगरी थी वहां पधारे हैं [उवाग-च्छित्ता तत्थ विचित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे दसमं चाउम्मासं ठिए] पधार कर विचित्र प्रकार के तपो कर्म से आत्मा को भावित करते हुए दसवां चौमासा वहां

किया। [तत्थ णं अट्ठमभत्तेणं एगराइयं भिक्खुपडिमं पडिवण्णे झाणं झियाइ] वहां अष्टम भक्त के साथ एक रात्रि की भिक्षु प्रतिमा को अंगीकार करके भगवान् ने ध्यान किया [तत्थ वि दिव्वे माणुस्से तेरिच्छे नाणाविहे उवसग्गे सम्मं सहइ] वहां भी देवों सम्बन्धी मनुष्यों सम्बन्धी तथा तिर्यंचों सम्बन्धी नाना प्रकार के उपसर्गों को भलीभांति सहन किया [एवंविहेण विहारेण विहरमाणे भगवं एगारसं चाउम्मासं वेसालिए णयरीए ठिए] इसी प्रकार के विहार से विहरते हुए भगवान् ने ग्यारहवां चातुर्मास वैशाली नगरी में किया [तओ पच्छा सुसुमारं णयरं समणुपत्ते] तदनंतर शिशुमार नगर में पधारे [तओ णं विहरमाणे कोसंबीए नयरीए समोसरिए] शिशुमार नगर से विहार करके कोशाम्बी नगरी में पधारे [तत्थ णं सयाणीओ राया] वहां शतानीक नाम का राजा था [मिगावई महिसी] उसकी रानी का नाम मृगावती था [तीए विजया पड़िहारिया] उस महारानी की विजया नामकी द्वारपालिका थी [वाइणामओ धम्म-

पालगो] राजा का वादी नामक धर्माध्यक्ष था [गुत्तनामा अमच्चो] उसके गुप्त नामक अमात्य था [तस्स नंदा भज्जा] अमात्य की पत्नी का नाम नन्दा था [सा साविया आसी] वह श्राविका थी [अमू मिगावईए रायमहिसीए सही होत्था] वह राजरानी मृगावती की सखी थी [तत्थ णं भगवओ पोससुद्धाए पडिवयाए दव्वखेत्तकालभावं समस्सिय तेरसवत्थुसमाउलं इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिग्गहीअ] भगवान् ने पोष शुक्ला प्रतिपदा के दिन द्रव्यक्षेत्र काल और भाव का आश्रय लेकर तेरह बोलों का अभिग्रह धारण किया [तं जहा-१ दव्वओ सुप्पकोणे] वे तेरह बोल ये थे-द्रव्य से १ सूप के कोने में (२ बप्फियामासा होज्जा) उबाले हुए उड़द हों [खेत्तओ दाइया कारागारे ठिया] ३ क्षेत्र से देनेवाली कारागार में हों [तत्थ वि देहलीए] कारागार में भी देहली पर हों [उबविट्ठा] सो भी बैठी हो [सा पुण एगं पायं बाहिं एगं पायं अंतो किच्चा ठिया ६ भवे] वह भी एक पैर बाहर और एक पैर भीतर करके बैठी हो, [कालओ

तइयाए पोरिसीए अन्नभिक्खायरिएहिं निव्वत्तेहिं] काल से-(७) तीसरे प्रहर में अन्य भिक्षाचरों के लौट जाने पर [भावओ दाइया कयकीया दासित्तं पत्ता रायकण्णा] भाव से (८) दायिका खरीदी हुइ हो दासी बन गइ हो मगर राजकुमारी हों, [निगडबद्धहत्थपाया मुंडियमत्थया] उसे हाथों-पैरों में बेडी हो, सिरमुंड़ा हो [११ बद्धकच्छा] ११ काछ बंधी हो [अट्ठमतवजुत्ता १२] १२ तेले के तप से युक्त हो और [अस्सुणि मुयमाणा होज्जा] आंसू वहा रही हो [एयारिसेण अभिग्गहेण जइ आहारो मिलिस्सइ तो पारणगं करिस्सामि] इस प्रकार के अभिग्रह से यदि आहार मिलेगा तो पारणा करूंगा [अन्नहा छम्मासी तवं करिस्सामित्ति कट्टु भगवं भिक्खट्ठाए अडइ] अन्यथा छ मास का तप करूंगा ऐसा अभिग्रह करके भगवान् भिक्षा के लिए भ्रमण करते थे [भगवओ सो अभिग्गहो न कत्थइ परिपुण्णो हवइ] किन्तु भगवान् का वह अभिग्रह कहीं पूरा नहीं होता था ॥५५॥

भावार्थ—लाट देश में विचरण करने के अनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने लाट

देश से विहार किया। विहार करके जहां श्रावस्ती नामकी नगरी थी, वहां पधारे। और अनेक प्रकार के तपश्चरण से अपनी आत्मा को भावित करते हुए भगवान् ने दसवां चौमासा वहीं किया। वहां पर भगवान् ने अष्टमभक्त (तेले) की तपस्या के साथ एक रात में पूर्ण होनेवाली भिक्षुप्रतिमा—मुनि के विशिष्ट अभिग्रह को अंगीकार करके ध्यान किया। वहां भी भगवान् श्री महावीर ने देवकृत, मनुष्यकृत और तिर्यंचकृत तरह—तरह के उपसर्गों को विना क्रोध के सहन किये। इसी प्रकार के विहार को अंगीकार करके एक गांव से दूसरे गांव विचरते हुए भगवान् वीर प्रभुने ग्यारवां चौमासा वैशाली नगरी में किया। चौमासे की समाप्ति के पश्चात् वीर प्रभु चलते—चलते शिशुमार नगर में पधारे। तदनन्तर भगवान् कौशाम्बी नगरी में पधारे। कौशाम्बी नगरी में शतानीक नामक राजा था। मृगावती नामक उनकी रानी थी। मृगावती की द्वारपालिका का नाम विजया था। शतानीक राज्ञा का विजय नामक धर्माध्यक्ष था और

गुप्त नामक मंत्री था। गुप्त नामक मंत्री की पत्नी का नाम नन्दा था। नन्दा श्राविका थी और रानी मृगावती की सहेली थी। वीर भगवान् ने पोष मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा, तेरह बातों से युक्त इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण किया पहले द्रव्य की अपेक्षा से अभिग्रह बतलाते हैं-(१) सूप (छाजले) के कोने में, (२) उबाले हुए उडद अर्थात् बाकले हों, क्षेत्र से अभिग्रह बतलाते हैं-(३) भिक्षा देनेवाली काराग्रह में स्थित हों, (४) कारागार में देहली-दरवाजे पर हों (५) सो भी बैठी हों, (६) वह भी एक पैर देहली से बाहर निकाले हो और दूसरा पैर देहली से भीतर करके बैठी हो, काल से अभिग्रह बतलाते हैं (७) तीसरे पहर अन्य भिक्षाजीवियों के लौटकर चले जाने पर, भाव से अभिग्रह बतलाते हैं-(८) भिक्षा देनेवाली खरीदी हुई हो, दासी बनी हो मगर राजा की कन्या हो। (९) उसके हाथों पैरों में बेडिया पडी हों, (१०) मस्तक

मुंडा हुआ हो, (११) कांछ बांधी हुई हो, (१२) तेले की तपस्या से युक्त हो और (१३) आंसू बहा रही हो। इस प्रकार के अभिग्रह से अगर आहार मिलेगा तो मैं पारणा करूंगा, इन तेरह बोलों में से किसी एक की कमी होगी और अभिग्रह पूरा न होगा तो छह मासी तपस्या करूंगा। इस प्रकार मन ही मन में निश्चय करके भगवान् भिक्षा के लिए कौशम्बी के घर-घर में परिभ्रमण करते थे, परन्तु किसी भी घर में यह तेरह बोल का अभिग्रह पूर्ण नहीं होता था ॥५५॥

मूलम्-एवं पइदिणं भगवं अडमाणे पासिय लोगा अण्णमण्णं वितक्केंति, तत्थ केइ एवं वयंति-एस णं भिक्खू पइदिणं अडइ, ण उण भिक्खं गिण्हइ, एत्थ केणवि कारणेण हायव्वं'। 'केइ वयंति-उम्मत्तणेण भमइ'। अवरे वयंति-अयं कस्स वि रण्णो गुत्तयरो किंपि विसिट्ठं कज्जमुद्दिसिय अडइ। अण्णे वयंति-

चोरोऽयं चोरियमुद्दिसिय अडइ एगे वयंति—एसो चरिमो तित्थयरो अभिग्गहेण अडइ'। तओ पच्छा सव्वे जणा जाणिंसु जं एस णं तेलुक्कनाहे सव्वजग-जीवहियगरे समणे भगवं महावीरे दुक्करदुक्करेणं अभिग्गहेणं अडइ। मंदभग्गा अम्हे जं णं एरिस महापुरिसस्स अभिग्गहे पूरिउं न सक्कामो। एवं अडमा-णस्स भगवओ पंचदिवसोणा छम्मासा वीइक्कंता। तए णं बीए दिवसे लोह निगडबंधनतोडणपडिनिहित्तम्मि अणाइकालीण भवबंधनतोडणं काउं लोहयारठाणीए भगवं धनावहसेट्ठिणो गिहे चंदणबालाए अंतीए समणुपत्ते। तं दट्ठूणं सा चंदणा हट्ठतुट्ठा चित्तमाणंदिया हरिसवसविसप्प-माणहियया चिंतेइ—

'अहो पत्तं मए पत्तं किंचि पुण्णं ममत्थ वि।

जं इमो अतिही पत्तो कप्परुक्खो ममंगणे ॥

त्ति चिंतिय भगवं पत्थेइ नोचियं इमं भत्तं भदंतस्स, तहवि जइ कप्प-णिज्जं तो ममोवरि किवं काऊं गिज्झउ । तए णं से भगवं तत्थ बारसपयाणिं पडिपुण्णाणि पासइ, अस्सुरूवं तेरसमं पयं न पासइ, तओ भगवं पडिणिय-ट्टइ । पडिनियट्टमाणं भगवं दट्ठूणं चंदणा परिचिंतेइ आगओ भगवं एत्थ, पच्छा एसो नियट्टिओ । किं दुक्कमं मए चिण्णं, जास्सिमं एरिसं फलं ॥ अहं केरिसा अधण्णा अपुण्णा अकयत्था अकयपुण्णा अकयलक्खणा अकयविहवा कुलद्धूणं मए जम्मजीवीयफले, जीए इमा एयारूवा दुहपरंपरा लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया । मम अट्ठमतवपारणगे समागओ एयारिसो गहियभिग्गहो महामुनि महावीरो भगवं अपडिलाभिओ चेव पडिणियत्तो । गिहागओ कप्प-

रुक्खो हत्थाओ अवसरियो। हत्थगयं वज्जरयणं नट्ठंति कट्टु सा चंदनबालाए
रोइउ मारभीअ। तए णं भगवं तेरसमं वयं पडिपुण्णं विण्णाय पडिनियट्टिय
चंदणबालाए हत्थाओ बप्फियमासे पत्ते पडिग्गहिय तओ निवत्तीअ। तेणं
कालेणं तेणं समएणं तस्स णं धणावहसेट्ठिस्स गिहंसि देवेहिं पंचदिव्वाइं
पगडीकयाइं। तं जहा—१ वसुहारावुट्ठा २ दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाइए ३ चेलु-
क्खेवे कए४ आहयाओ दुंदुहीओ५ अंतरा वि य णं आगासंसि अहो दाणं अहो
दाणं ति घुट्ठे य देवा जयजय सद्दं पउंजमाणा चंदणबालाए महिमं करिंसु।
तेणं दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिग्गाहियसुद्धेणं तिविहे णं तिकरणसुद्धेणं संसारे
परित्तिकए। तीए निगडबंधणट्ठाणम्मि हत्थपाया वलयं णेउरसमलंकिया जाया,
केसपासो सुन्दरो समुब्भूओ। तीए सव्वं सरीरं नाणाविहवत्थालंकारविभूसियं

अभिग्रहार्थ-
मटमाणस्य
भगवत-
विपये
लोक वित-
र्कादिकम्

संजायं। सव्वत्थ हरिसपगरिसो जाओ देवदुंदुहिज्झुणिं सुणिय लोगा तत्थ आगंतूण चंदणबालं थुइंसु। धणावहसेट्ठिस्स धण्णवायं दलमाणा तब्भज्जं मूलं निंदिंसु। तं सोऊण चंदणबाला लोगे निवारेमाणा वदीअ भो लोगा! एवं मा वयंतु मम उ एसेव मूला माया अणंतोवगारिणी अत्थि, जप्पभावेण अज्ज मए एरिसे सुअवसरे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागएत्ति॥५६॥

शब्दार्थ—[एवं पइदिणं भगवं अडमाणं पासिय लोगा अण्णमण्णं वितक्केंति] इस प्रकार प्रतिदिन परिभ्रमण करते हुए भगवान् को देखकर लोग परस्पर तर्क वितर्क करते थे [तत्थ केइ एवं वयंति–एस णं भिक्खू पइदिणं अडइ] उनमें से कोई कहता यह भिक्षु प्रतिदिन परिभ्रमण करता है [ण उण भिक्खं गिण्हइ] किन्तु भिक्षा नहीं लेता [एत्थ केणवि कारणेण हायव्वं] इसमें कोई कारण होना चाहिये

[केइ वयंति–उम्मत्तणेण भमइ] कोई कहता–यह भिक्षु पागलपन के कारण घूमता है [अवरे वयंति–अयं कस्सवि रण्णो गुत्तयरो किंपि विसिट्ठं कज्जमुद्दिसिय अडइ] दूसरे कहते यह किसी राजा का गुप्तचर है, किसी विशेष कार्य को लेकर घूम रहा है [अण्णे वयंति–चोरोऽयं चोरियमुद्दिसिय अडइ] कोइ कहता–यह चोर है और चोरी करने के उद्देश से घूम रहा है। [एगे वयंति–एसो चरिमो तित्थयरो अभिग्गहेण अडइ] कोई कहता ये अन्तिम तीर्थंकर हैं अभिग्रह के कारण घूमते हैं [तओ पच्छा सव्वे जणा जाणिंसु जं एसणं तेलुक्कणाहे सव्वजगजीवहियगरे समणे भगवं महावीरे दुक्करदुक्करेणं अभिग्गहेणं अडइ] उसके बाद सभी लोगों को मालूम हो गया कि यह तीन लोक के नाथ, जगत के समस्त जीवों के हितकारी, श्रमण भगवान् महावीर है और अतीव दुष्कर अभिग्रह के कारण भ्रमण कर रहे हैं [मंदभग्गा अम्हे जं णं एरिस महापुरिसस्स अभिग्गहं पुरिउं न सक्कामो] हमलोग मंद भागी हैं कि ऐसे महापुरुष के

अभिग्रहार्थमटमाणस्य भगवतविषये लोक वितर्कादिकम्

अभिग्रह को पूरा नहीं कर सकते [एवं अडमाणस्स भगवओ पंचदिवसोणा छम्मासा वीइक्कंता] इस प्रकार भगवान् को घूमते घूमते पांच दिन कम छह माह हो गये [तए णं बीए दिवसे लोहनिगडबंधनतोडण पडिनिहित्तम्मि अणाइकालीण भवबंधनं तोडणं काउं] तब दूसरे दिन लोहे की बेडियों को तोडने के स्थानापन्न अनादिकालीन संसार बंधनों को तोडने के लिये [लोहयारट्ठाणीए भगवं धनावहसेट्ठिणो गिहे चंदणबालाए अंतीए समणुपत्ते] लोहकार के समान भगवान् धनावह सेठ के घर में चन्दनबाला के समीप पहुंचे [तं दट्ठूणं सा चंदणा हट्ठतुट्ठा चित्तमाणंदिया हरिसवसविसप्पमाणहियया चिंतेइ] भगवान् को देखकर चन्दना हृष्टतुष्ट हुइ। उसके चित्त में आनन्द हुआ। हर्ष से उसका हृदय विकसित हो गया। वह सोचती है—

[अहो पत्तं मए पत्तं] अहा, आज मुझे सुपात्र की प्राप्ति हुइ है [किंचि पुण्णं समत्थि वि जं इमो अतिही पत्तो] इस से प्रतीत होता है कि मेरा कुछ पुण्य शेष है

[कप्परुक्खो ममंगणे जं इमो अतिही पत्तो] जिस से कल्पवृक्ष के समान यह भिक्षार्थी श्रमण मेरे आंगन में आये है [त्ति चिंतिय भगवं पत्थेइ–नो चियं इमं भत्तं भदंतस्स] तहवि जइ कप्पणिज्जं तो ममोवरि किवं काउं गिज्झउ] इस प्रकार विचार कर उसने भगवान् से प्रार्थना की–यह भोजन भगवान् के योग्य नहीं है तथापि यदि कल्पनीय हो तो हे भगवन्! मुझ पर कृपा करके ग्रहण कीजिए [तए णं से भगवं तत्थ बारस पयाणि पडिपुण्णाणि पासइ] तब भगवान् ने वहां बारह बोलों का पूर्ण होना देखा [अस्सुरूवं तेरसमं पयं न पासइ] किन्तु आंसु रूप तेरहवां बोल पूर्ण होता हुआ नहीं देखा [तओ भगवं पडिनियट्टइ] तब भगवान् वापस लोटने लगे [पडिनियट्टमाणं भगवं दट्ठूणं चंदणा परिचिंतेइ] वापस लौटते हुए भगवान् को देख चन्दना सोचने लगी– [आगओ भगवं एत्थ पच्छा एसो नियट्टिओ] भगवान् वीर प्रभु यहां पधारे और आहार ग्रहण किये बिना ही लौट गये [किं दुक्कमं मए चिण्णं, जस्सिमं एरिसं

फलं] न जाने मैंने क्या पापकर्म किया है! जिसका यह अशुभ फर उदय में आया है [अहं केरिसी अधण्णा अपुण्णा अकयत्था अकयपुण्णा अकयलक्खणा अकयविहवा कुलद्धेणं मए जम्मजीवियफले] मैं कैसी अधन्य हूं, पुण्यहीन हूं, अकृतार्थ हूं, मैंने पुण्यउपार्जन नहीं किया! मैं सुलक्षणी नहीं हूं मैंने कोई वैभव नहीं पाया! मुझे जन्म का और जीवन का कैसा दुष्फल मिला है। [जीए इमा एयारूवा दुहपरम्परा लद्धापत्ता अभिसमन्नागया] जिससे कि मुझे ऐसी दुःक्खपरम्परा की उपलब्धि हुइ, प्राप्ति हुइ और दुःखपरम्परा ही मेरे सामने आइ [मम अट्ठमतव पारणगे समागओ एयारिसो गहियभिग्गहो महामुणी महावीरो भगवं अपड़िलाभिओ चेव पडिनियत्तो] मेरे तेले के पारणे के अवसर पर आये हुए ऐसे अभिग्रहधारी महावीर भगवान् आहार लिये विना ही लौट गये [गिहागओ कप्परुक्खो हत्थाओ अवसरिओ] जैसे घर में आया हुआ कल्पवृक्ष ही हाथ से चला गया [हत्थगयं वज्जरयणं

नट्ठंति कट्टु सा चंदणबाला रोइउमारभीअ] हाथ में आया वज्ररत्न नष्ट हो गया यह सोच चन्दनबाला रुदन करने लगी–उसके नेत्रों से आंसू बहने लगे [तए णं भगवं तेरसमं वयं पडिपुण्णं विण्णाय पडिणियट्टिय चंदणबालाए हत्थाओ बाप्फिय मासे पत्ते पडिग्गहिय तओ निवत्तीअ] उस समय भगवान् तेरहवां बोल पूर्ण हुआ जानकर लौटकर चन्दनबाला के हाथ से उडद के बाकले पात्र में ग्रहण करके वहां से पीछे लौट गये।

[तेणं काले णं तेणं समएणं तस्स णं धणावहसेट्ठिस्स गिहंसि देवेहिं पंचदिव्वाइं पगडीकयाइं] उस काल और उस समय उस धनावह सेठ के घर में देवों ने पांच दिव्य प्रकट किये [तं जहा–१–वसुहारावुट्ठा २ दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाइए ३ चेलुक्खेवेकए ४ आहयाओ दुदुहिओ ५ अंतरा वि य णं अगासंसि अहोदाणं अहोदाणं ति घुट्ठे य] वह इस प्रकार–१–स्वर्ण की वर्षा हुई २ पांच रंग के फूलों की वर्षा हुई

३ वस्त्रों की वर्षा हुई ४ दुंदुभियों की ध्वनि हुई ५ आकाश में अहोदान अहोदान का घोष हुआ [देवा जय जय सद्दं पउंजमाणा चंदणबालाए महिमं करिंसु] जय जयकार करके देवों ने चंदनबाला के महिमा का प्रकाश किया [तेणं दव्वसुद्धेणं] द्रव्यशुद्ध [दायगसुद्धेणं] दायकशुद्ध [पडिग्गहियसुद्धेणं] परिग्राहक शुद्ध [तिविहेणं] तीन प्रकार से [तिकरणसुद्धेणं] त्रिकरण शुद्ध होने से [संसारे परित्तीकए] उस चंदनबालाने अपना संसार को अल्प कर दिया [तीए निगडबंधणट्ठाणम्मि हत्थपाया वलयणेउरसमलंकिया जाया] बेडियों की जगह उसके हाथ पैर कडों और नूपुरों से अलंकृत हो गये [केसपासो सुंदरो समुब्भुओ] सुन्दर केशपाश उत्पन्न हो गया [तीए सव्वं सरीरं नाणाविहवत्थालंकारविभूसियं संजायं] उसका समस्त शरीर नाना प्रकार के वस्त्रों से और अलंकारों से विभूषित हो गया [सव्वत्थ हरिसपगरिसो जाओ] सर्वत्र हर्ष का उभार आ गया [देवदुंदुहिज्झुणिं सुणिय लोगा तत्थ आगंतूण चंदणबालं

अभिग्रहार्थं मटमाणस्य भगवत- विषये लोक वित- र्कादिकम्

थुइंसु] देव दुंदुभियों की ध्वनि सुनकर लोग वहां आये और चन्दनबाला की स्तुति करने लगे [धनावहसेट्ठिस्स धण्णवायं दलमाणा तब्भज्जं मूलं निंदिंसु] धनावाह सेठ को धन्यवाद देते हुए उसकी पत्नी मूला की निंदा करने लगे [तं सोऊण चंदणबाला लोगे निवारेमाणी वदीअ–] यह सुनकर चन्दनबाला ने उन्हें रोक दिया और कहा–[भो लोगा ! एवं मा वयंतु मम उ एसेव मूला माया अनंतोवगारिणी अत्थि जप्पभावेण अज्ज मए एरिसे सुअवसरे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागएत्ति] मूला माता ही मेरी महान् उपकारिणी है जिसके प्रभाव से आज मुझे यह सुअवसर प्राप्त हुआ है, लब्ध हुआ है और मेरे सामने आया है ॥५६॥

भावार्थ—इस प्रकार भगवान् श्री महावीर को प्रतिदिन भिक्षा के लिए पर्यटन करते देखकर लोग आपस में तर्क वितर्क करते थे। उन लोगों में से कितनेक लोग इस प्रकार कहते–यह भिक्षु प्रतिदिन भिक्षा के लिए घूमता है, मगर भिक्षा लेता

नहीं है, इसमें कोई न कोई कारण होना चाहिए, जो हमें मालुम नहीं पडता। कोई कहते–यह भिक्षु उन्मत्त होने के कारण चक्कर काटा करता है। दूसरे कहते–यह किसी राजा का गुप्तचर है यह अपने राजा के किसी विशेष कार्य को लेकर घूमता है। किसी ने कहा यह चोर है और चोरी के उद्देश से घूमता है। कोई–कोई कहते थे–यह भिक्षु चौवीसवें तीर्थंकर है, और अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए भ्रमण करते हैं। कुछ दिनों बाद सभी जन वीर भगवान् से परिचित हो गये। जान गये कि यह भिक्षु तीन लोक के स्वामी और संसार के प्राणी–मात्र के कल्याणकर्त्ता श्रमण भगवान् महावीर हैं, और दुष्कर–दुष्कर [अत्यंत ही कठोर] अभिग्रह के कारण भ्रमण करते हैं। जब लोगों को पता लगा तो वे इस प्रकार शोक करने लगे-आह ! हम सब अभागे हैं, जो ऐसे त्रिलोकीनाथ महापुरुष का अभिग्रह पूर्ण करने में समर्थ नहीं हैं। इस प्रकार अभिग्रह पूर्ति के निमित्त भिक्षा के लिए भ्रमण करने वाले भगवान् महावीर के

पांच दिन कम छह मास पूर्ण हो गये इतना समय बीत जाने के बाद, दूसरे दिन, लोहे की सांकलों के बंधनों को तोड देने के स्थानापन्न अनादि काल से चले आ रहे भव बंधनों को तोडने के लिए लुहार के समान भगवान् महावीर धनावह श्रेष्ठी के घर चन्दन बाला के निकट पहुंचे। भगवान् को आये देखकर चन्दनबाला हर्षित हुई और सन्तोष को प्राप्त हुई, उसका चित्त आनन्दित हुआ। हर्ष की अधिकता से उसका हृदय उछलने लगा। वह मन ही मन सोचती–अहा, आज मुझे सुपात्र की प्राप्ति हुई। इससे प्रतीत होता है कि मेरा कुछ पुण्य शेष है, जिससे कल्पवृक्ष के समान यह भिक्षार्थी श्रमण मेरे आंगन में आये हैं, इस प्रकार विचार कर चन्दनबाला भगवान् से प्रार्थना करती है,–'हे प्रभो! यद्यपि तुच्छ होने के कारण यह आहार आपके योग्य नहीं है, आप जैसे अतिथि को तो विशिष्ट आहार अर्पित करना उचित है, तथापि यह तुच्छ अन्न भी सन्तोषामृत पीने वाले तथा एषणीय आहार की एषणा करने वाले आपको कल्पनीय हो

तो मुझ पर दया करके इसे स्वीकार कर लीजिये। तब भगवान् ग्रहण किये हुए तेरह बोलों में से बारह बोलों को पूर्ति हुई देखते हैं, सिर्फ बहते आसु जो तेरहवां बोल था उसे नहीं देखते। अतएव भगवान् वीर स्वामी यहां से लौटने लगते हैं। भगवान् को लौटते देखकर चंदनबाला मन में विचार करती है-भगवान् वीर प्रभु यहां पधारे और आहार ग्रहण किये बिना ही लौट गये। न जाने क्या मैंने पाप–कर्म किया है, जिसका ऐसा अशुभ फल उदय में आया है! मैं कैसी अधन्य हूं, पुण्य हीन हूं, अकृतार्था हूं! मैंने पुण्य–उपार्जन नहीं किया! मैं सुलक्षणी नहीं हूं। मैंने कोई वैभव नहीं पाया। मुझे जन्म का और जीवन का कैसा दुष्फल मिला है! जिससे कि मुझे ऐसी दुःख–परम्परा की उपलब्धि हुई, प्राप्ति हुई और दुःखपरम्परा ही मेरे सन्मुख आई! अष्टमभक्त के पारणे के अवसर पर ऐसे अत्यंत दुष्कर अभिग्रह को धारण करने वाले महामुनि महावीर प्रभुश्री आहार लिये विना ही वापिस लौट गये, सो मैं समझती हूं कि घर

अभिग्रहार्थ-
मटमाणस्य
भगवत-
विषये
लोक वित-
र्कादिकम्

में आया कल्पवृक्ष ही हाथ से चला गया। मानों हाथ में आया हुआ सर्वोत्तम हीरा गुम हो गया।' इस प्रकार विचार करके चन्दनबाला रुदन करने लगी--उसके नेत्रों से आंसू बहने लगे। चन्दनबाला के रुदन करने पर भगवान् शेष रहे हुए एक बोल की पूर्ति हुई जानकर पुनः वापिस लौटे। लौटकर चन्दबाला के हाथ से भगवान् ने उबले हुए उडद् बाकले—पात्र में ग्रहण किये, और ग्रहण करके वहां से लौट गये।

उस काल और उस समय में अर्थात् भगवान् महावीर के भिक्षा ग्रहण करके ने अवसर पर चन्दन बाला को खरीदने वाले धनावह सेठ के घर में देवों ने पांच दिव्य वस्तुएं प्रकट कीं। वे इस प्रकार हैं–(१) देवों ने स्वर्ण मुद्राओं की वृष्टि की (२) पांच वर्ण के अचित्त फूलों की वर्षा की। (३) वस्त्रों की वर्षा की। (४) दुन्दिभियां बजाई (५) आकाश के मध्य में 'अहो दानं, अहो दानं' का उच्चस्वर से घोष किया। तत्पश्चात् देवों ने 'जय-जय' शब्द का प्रयोग करके चन्दन बाला की महिमा प्रसिद्ध की। द्रव्यशुद्ध दायकशुद्ध

अभिग्रहार्थ-
मटमाणस्य
भगवत-
विषये
लोक वित-
कोदिकम्

और प्रतिग्राहकशुद्ध तीनों प्रकार से त्रिकरणशुद्ध होने से उस चंदनबालाने अपना संसार को अल्प बनाया। चन्दनबाला की बेडियों की जगह दोनों हाथ कंकणों से और दोनों पैर नूपुरों से अलंकृत हो गये। उसके मुंडित मस्तक पर सुन्दर केशपाश उत्पन्न हो गया। सारा शरीर 'भांति-भांति के वस्त्रों और आभूषणों से सुशोभित हो गया। सब जगह खूब हर्ष ही हर्ष छा गया। देवदुन्दुभी का घोष सुना, तो सब लोग वहीं आ पहुंचे, जहां चन्दनबाला थी और उसके प्रभाव की प्रशंसा करने लगे। सबने धनावह सेठ को धन्यवाद देते हुए उनकी पत्नी मूला की निन्दा की उसे धिक्कार दिया। मूला की निन्दा सुनकर चन्दनबाला निन्दा करने वाले लोगों को रोकती हुई कहने लगी-'हे भाइओं इस प्रकार मत बोलो। मूला माता हो मेरा अनन्त उपकार करने वाली है, जिसके प्रभाव से आज मेंने-भगवान् का अभिग्रह पूर्ण करने का यह शुभ अवसर का लाभ किया है, पाया है और सन्मुख किया है। अर्थात् यह मूला माता का ही उपकार

है कि मैं भगवान् का अभिग्रह पूर्ण करके सुपात्रदान का फल पा सकी ॥५६॥

मूलम्—तए णं एसा चंदणबाला समणस्स भगवओ महावीरस्स पढमासिस्सिणी भविस्सइ' त्ति आगासंसि देवेहिं घुट्टं। का एसा चंदणबाला जीए हत्थेण भगवओ पारणगं' ति तीए चरितं संखेवओ दंसिज्जइ—एगया कोसंबी नयरीनाहो सयाणीओ णामं राया चंपानगरीणायगं दधिवाहणाभिहं निवं अवक्कमियं दुण्णीइए चंपाणयरिं लुंटिअ। दधिवाहणो राया पलाईओ तओ सयाणीयरायस्स कोवि भडो दधिवाहणरायस्स धारिणिं णामं महिसिं वसुमइं पुत्तिं च रहंमि ठाविय कोसंबिं नयइ, मग्गे सो भणइ—इमं महिसिं भज्जं करिस्सामित्ति। तओ धारिणी देवी तं वयणं सोच्चा निसम्म सीलभंगभएण सयजीहं अवकरिसिय मया। तं दट्ठूणं भीओ सो भडो इमावि एयारिसं

अकज्जं मा करिज्जं त्ति कट्टु तं वसुमइं किंचिवि न भणिय कोसम्बीए चउप्पहे विक्कीअ। विक्कायमाणिं तां एगा गणिया मुल्लं दाउं किणीअ। सा वसुमई तं गणिअं भणीअ हे अंब! कासि तं? केण अट्ठेणं अहं तए कीणिया? सा भणइ—अहं गणिया मम कज्जं परपुरिसपरिरंजणं। तीए एरिसं हियय वियारगं अणारियं वज्जपायंविव वयणं सोच्चा सा कंदिउमारभीअ। तीए अट्टणायं सोच्चा तत्थ ट्ठिओ धणावहो सेट्ठी चिंतीअ—'इमा कस्सवि रायवरस्स ईसरस्स वा कन्ना दीसइ, मा इमा आवया भायणं होउ' त्ति चिंतीअ सो तइच्छियं दव्वं सोच्चा तं कन्नं घेत्तूण नियभवणे णईअ। सेट्ठी तब्भज्जा मूला य तं णियपुत्तिंविव पालिउं पोसिउं उवक्कमीअ। एगया गिम्हकाले अण्णभिच्चाभावे सा वसुमई सेट्ठिणा वारिज्जमाणा वि गिहमागयस्स तस्स पाय-

पक्खालणं करीअ। पाए पक्खालंतीए तीए केसपासो छुटिओ 'इमाए केसपासो उल्लभूमीए मा पडउ' त्ति कट्टु तं सेट्ठी नियपाणिलट्ठीए धारिऊण बंधीअ। तया गवक्खट्ठिया सेट्ठिणा भज्जा मूला वसुमईए केसपासं बंधमाणं सेट्ठिं दट्ठूण चिंतीअ। इमं कन्नं पालिय पोसिय मए अनट्ठं कयं, जइ इमं कन्नं सेट्ठी उव्वहेज्जा तो हं अवयट्ठा चेव भविस्सामि। उपज्जमाणा चेव वाही उवसामेयव्वि' त्ति कट्टु एगया अन्नगामगयं सेट्ठिं मुणिय सा नाविएण तीए सिरं मुंडाविय सिंखलाए करे निगडेण पाए नियंतिय एगम्मि भूमिगिहे तं ठाविय तं भूमिगिहं तालएण नियंतिय सयं तस्सिं चेव गामे पिउगेहं गया। सा य वसुमई तत्थ छुहाए पीडिज्जमाणा चिंतेइ—

कत्था रायकुलं मऽत्थि, दुद्दसा केरिसी इमा।

किं मे पुराकयं कम्मं, विवागो जस्स ईरिसो ॥

एवं चिंतेमाणा 'सा कारागारमुत्तिपज्जंतं तवं करिस्सामि' त्ति कट्टु मणंमि परमेट्ठिमंतं जपिउमारभीअ। एवं तीए तिन्नि दिणा वइक्कंता। चउत्थे दिणे सेट्ठी गामंतराओ आगओ वसुमइं अदट्ठूण परियणे पुच्छीअ। मूला निवारिया ते तं न कंपि कहीअ। तओ कुद्धो सेट्ठी भणीअ—जाणमाणावि तुम्हे वसुमइं न कहेइ, अओ मज्झगिहाओ निग्गच्छह' त्ति सोऊण एगाए वुड्ढाए दासीए ममं जीविएणं सा जीविउ' त्ति कट्टु सेट्ठिणो तं सव्वं कहीयं। तं सोऊण सेट्ठी सिग्घं तत्थ गंतूण तालगभंजिअदारं उग्घाडिय वसूमइं आसासीअ तए णं से सेट्ठी गिहे न भायणं न भत्तं कत्थवि पासइ, पसुनिमित्तं निप्फाइए बप्फियमासे चेव तत्थ पासइ, तं अण्णभायणाभावे सुप्पे गहिय

तेण भत्तट्ठं वसुमईए समाधिया। सयं च निगडाइ बंधणच्छेयणट्ठं लोहयारमाकारिउं तग्गिहे गमिअ सा वसुमई य स बप्फियमासं सुप्पं हत्थेण गहीअ चिंतीअ-'इयोपुव्वं मए किंपि दाणं दाऊण मेव पारणगं कयं, अज्जउ न किंपि दाऊणं कहं पारेमि? केरिसो मे दुहविवागो उदिओ, जे णं अहं एरिसां दसां संपत्ता। जइ कस्सवि अतिहिस्स एयं भत्तं दच्चा अहं पारणगं करेमि, तो सेयं त्ति चिंतीअ गिहदेहलीए एगं पायं बाहिं एगं पायं अंतो किच्चा मुणिमग्गं पासमाणी चिट्ठइ। सा चेव वसुमई चंदणस्सेव सीयलसहावत्तणेण चंदण-बालत्ति नामेण पसिद्धिं पत्ता॥५७॥

शब्दार्थ--[तए णं 'एसा चंदणबाला समणस्स भगवओ महावीरस्स पढमा सिस्सिणी भविस्सइ' त्ति आगासंसि देवेहिं घुट्टं] तदनन्तर आकाश में देवों ने घोषणा की--यह चंदन-

बाला श्रमण भगवान् महावीर की प्रथम शिष्या होगी [का एसा चंदणबाला जीए हत्थेण भगवओ पारणगं जायं'-ति तीए चरितं संखेवओ दंसिज्जइ–] जिसके हाथ भगवान् ने पारणा के लिये आहार का दान ग्रहण किया वह चन्दबाला कौन थी ? उसका चरित्र संक्षेप में दिखलाया जाता है–[एगया कोसंबी नयरीनाहो सयाणीओ णामं राया] एक बार कौशाम्बी नगरी के राजा शतानीक ने [चंपा नयरीणायगं दधिवाहणाभिहं निवं अवक्कमिय दुण्णीईए चंपाणयरिं लुंटीअ] चंपानगरी के नायक राजा दधिवाहन पर आक्रमण कर के दुर्नीति से चंपानगरी को लूटा। [दधिवाहणो राया पलाइओ] दधिवाहन राजा भाग गया [तओ सयाणीयरायस्स को वि भडो दधिवाहणरायस्स धारिणी णामं महिसीं वसुमइं पुत्तिं च रहंमि ठाविय कोसंबिं नयइ] तब शतानीक राजाका एक योद्धा राजा दधिवाहन की धारीणी नामक रानी को और वसुमती नामक पुत्री को रथ में बिठला कर कौशाम्बी ले चला [मग्गे सो भणइ–इमं महिसिं भज्जं करिस्सामित्ति]

चंदन-
बालायाः
चरित-
वर्णनम्

मार्ग में उसने कहा–'इस रानी को मैं अपनी पत्नी बनाऊंगा [तओ धारिणी देवी तं वयणं सोच्चा निसम्म सीलभंगभएण सयजीहं अवकरिसिय मया] धारिणीदेवी ने उसके यह बचन सुनकर और समझकर शीलभंग के भय से अपनी जीभ बहार खींचली और प्राण त्याग दिये [तं दट्ठूणं भीओ सो भडो इमावि एयारिसं अकज्जं मा करिज्ज त्ति कट्टु तं वसुमइं किंचि वि न भणिय कोसम्बीए चउप्पहे विक्कीअ] धारिणी देवी को मरी हुअी देखकर वह डरगया और कहीं यह राजकुमारी भी ऐसा ही अकार्य न कर बैठे यह सोचकर उसने वसुमती से कुछ भी न कहा और कोशाम्बी के चौक में लेजाकर बेच दिया [विक्कायमाणिं तं एगा गणिया मुल्लं दाउं किणीअ] बिकती हुई वसुमती को एक वेश्या ने मूल्य देकर खरीदा [सा वसुमई तं गणियं भणीअ–हे अंब ! कासि तं ? केण अट्ठेण अहं तए कीणीया ?] वसुमती ने उस वेश्या से कहा -माता, तुम कौन हो ? किस प्रयोजन से मुझे खरीदा हैं ? [सा भणइ अहं गणिया, मम कज्जं

परपुरिसपरिरंजणं] वेश्या बोली–मैं गणिका हूं परपुरुषों का मनोरंजन करना मेरा कार्य है [तीए एरिसं हिययवियारगं अणारियं वज्जपायं विव वयणं सोच्चा सा कंदिउ मारभीअ] गणिका के इस प्रकार के हृदय विदारक अनार्य और वज्रपात के समान व्यथा जनक वचन सुनकर वह रोने लगी। [तीए अट्टनायं सोच्चा तत्थट्ठिओ धणावहो सेट्ठी चिंतीअ–] उसका आर्तनाद सुनकर वहां खडे धनावह सेठ ने विचार किया–[इमा कस्सवि रायवरस्स ईसरस्स वा कन्ना दीसइ] यह किसी उत्तम राजा की या धनिक की कन्या दीखती है [मा इमा आवयाभायणं होउ' त्ति चिंतीअ सो तइच्छियं दव्वं दच्चा तं कन्नं घेत्तूण नियभवणं नईअ] यह आपत्ति का पात्र न बने तो अच्छा, ऐसा सोचकर गणिका को इच्छित धन देकर वसुमती को अपने घर ले आया [सेट्ठी तब्भज्जा मूला य तं णियपुत्तिं विव पालिउं पोसिउं उवक्कमीअ] सेठ और उसकी पत्नी मूला, अपनी पुत्री के समान उसका पालन पोषण करने लगे [एगया गिम्हकाले अण्णभिच्चाभावे सा वसुमई सेट्ठिणा

वारिज्जमाणावि गिहमागयस्स तस्स पायपक्खालणं करीअ] एक बार ग्रीष्म के समय में अन्य सेवक के अभाव में वसुमती सेठ के द्वारा मना करने पर भी बाहर से घर आये हुए धनावह के पैर धोने लगी। [पाए पक्खालंतीए तीए केसपासो छुटिओ] पैर धोते समय उसका केशपाश छूट गया। ["इमाए केसपासो उल्लभूमीए मा पडउ" त्ति कट्टु तं सेट्ठी नियपाणिलट्ठीए धरिऊण बंधीअ] तब इसका केशपाश गीली भूमि में न पड जाय' ऐसा सोचकर सेठ ने उसे अपने हाथ रूप यष्टी में लेकर बांध दिया [तया गवक्खट्ठिया सेट्ठिणा भज्जा मूला वसुमईए केसपासं बंधमाणं सेट्ठिं दट्टूण चिंतीअ] तब गवाक्ष में स्थित सेठ की पत्नी मूला ने सेठ को वसुमती का केशपाश बांधते देखकर विचार किया ['इमं कण्णं पालिय पोसिय मए अनट्ठं कयं] इस कन्या का पालन पोषण करके मैंने अनर्थ किया [जइ इमं कण्णं सेट्ठी उव्वहेज्जा तो हं अंवयट्ठा चेव भविस्सामि] कदाचित् सेठ ने इस कन्या के साथ विवाह कर लिया तो में अपदस्थ

हो जाऊंगी [उप्पज्जमाणा चेव वाही उवसामेयव्वि' त्ति कट्टु] बिमारी को उत्पन्न होते ही शान्त कर देना चाहिये। इस प्रकार सोच कर [एगया अन्नगामगयं सेट्ठिं मुणिय सा नाविएण तीए सीरं मुंडावीय सिंखलाए करे निगडेण पाए नियंतिय] एक बार सेठ को दूसरे गांव गया जानकर उसने नाई से वसुमती का सिर मुंडवा कर हथकडियों से हाथ और बेडियों से पैर बांधकर (एगम्मि भूमिगिहे तं ठाविय तं भूमिगिहं तालएण नियंतिअ सयं तस्सिं चेव गामे पिउगेहं गया] उसे एक भूमिगृह में डाल भूमिगृह को ताले से बंध कर उसी ग्राम में वह अपने पिता के घर चली गई [सा य वसुमई तत्थ छुहाए पीडिज्जमाणा चिंतेइ--] वसुमती उस भोयरे में भूख और प्यास से पीडित होती हुई सोचती है।

[कत्थ रायकुलं मेऽत्थि] कहां तो मेरा वह राजवंश [दुद्दसा केरिसी इमा] और कहां यह मेरी इस समय की दुर्दशा [किं मे पुराकयं कम्मं विवागो जस्स ईरिसो] पूर्व-

भव में मेरे द्वारा उपार्जित अशुभ कर्म न जाने कैसा है ? जिसका फल ऐसा भोगना पड रहा है [एवं चिंतेमाणा 'सा कारागारमुत्तिपज्जंतं तवं करिस्सामि' त्ति कट्टु मणंमि परमेट्ठीमंतं जपिउ मारभीअ] इस प्रकार विचार करती हुई उसने 'मैं कारागार से मुक्त होने तक तप करूंगी' ऐसा निश्चय करके मन में परमेष्ठी मंत्र का जाप करना आरंभ कर दिया [एवं तीए तिन्नि दिणा वइक्कंता] यों उसके तीन दिन बीत गये [चउत्थे दिणे सेट्ठी गामंतराओ आगओ वसुमइं अदट्ठूण परियणे पुच्छीअ] चौथे दिन सेठ घर आये। वसुमती को न देखकर परिजनों से पूछा [मूला निवारिया ते तं न किंपि कहीअ] मूला ने उन्हें मनाकर दिया था, अतः उन्होंने कुछ भी नहीं बतलाया [तओ कुद्धो सेट्ठी भणीअ—जाणमाणावि तुम्हे वसुमइं न कहेह अओ मज्झ गिहाओ णिग्गच्छह] तब क्रुद्ध होकर सेठ ने कहा–'तुम जानते हुए वसुमती के विषय में नहीं बतलाते हो तो मेरे घर से चले जाओ [त्ति सोऊण एगाए वुड्ढाए दासीए ममं जीवि-

एण सा जीवउ' त्ति कट्टु सेट्ठिणो तं सव्वं कहियं] यह सुन कर एक बूढी दासी ने 'मेरे जीवन से भी वह जीये' अर्थात् मेरे प्राण जाते हों तो भले जाएं ऐसा सोचकर उसने समस्त वृत्तान्त धनावह श्रेष्ठी से कह दिया [तं सोऊण सेट्ठी सिग्घं तत्थ गंतूणं तालगं भंजिअ दारं उग्घाडिय वसुमइं आसासीअ] यह वृत्तान्त सुनकर सेठ शीघ्र ही भोंयरे में पहुंचा वहां जाकर उसने ताला तोडा और भोयरे में पहुंच कर वसुमती को आश्वासन दिया [तए णं से सेट्ठी गिहे न भायणं न य भत्तं कत्थवि पासइ] उसके बाद सेठ को घर में न कोई बर्तन दिखाई दिया और न भोजन ही [पसुनिमित्तं निप्फाइए बाप्फियमासे चेव तत्थ पासइ] पशुओं के लिए उबाले हुए उडद ही वहां नजर आये [ते अण्णभायणाभावे सुप्पे गहिय तेणं भत्तट्ठं वसुमईए समाधिया] दूसरा वर्तन न होने से उन्हें सूप में लेकर उसने खाने के लिए वसुमती को दिये [सयं च निगडाइ बंधणच्छेयणट्ठं लोहयारमाकारिउं तग्गिहे गमिअ] धनावह सेठ स्वयं बेडी

आदि बन्धनों को छेदने के लिये लुहार को बुलाने उसके घर चला गया [सा वसुमई य स बप्फियमासं सुप्पं हत्थेण गहिय चिंतीअ-] वसुमती उबले हुए उडदों वाले सूप को हाथ में लेकर सोचने लगी-[इयो पुव्वं मए किंपि दाणं दाऊणमेव पारणगं कयं] इससे पहले मैंने कुछ दान देकर ही पारणा किया है [अज्जउ न किंपि दाउणं कहं पारेमि ? ] आज कुछ भी दान दिये बिना कैसे पारणा करू ? [केरिसो मे दुहविवागो उदिओ, जेणं अहं एरिसं दसं संपत्ता] कैसा मेरे पाप कर्म का उदय आया है कि मैं ऐसी दुर्दशा को प्राप्त हुई [जइ कस्सवि अतिहिस्स एयं भत्तं दच्चा अहं पारणगं करेमि तो सेयं-त्ति चिंतीअ] यदि मैं किसी अतिथि विशेष को यह भोजन देकर पारणा करूं तो अच्छा है यह सोच करके [गिहदेहलीए एगं पायं बाहिं एगं पायं च अंतो किच्चा मुणिमग्गं पासमाणी चिट्ठइ] वह एक पैर देहली के बाहर और एक पैर भीतर करके मुनि की राह देखती हुई बैठी [सा चेव वसुमई चंदणस्सेव सीयलसहावत्तणेण चंदन-

बालत्ति नामेण पसिद्धिं पत्ता] वही वसुमती चन्दन के समान शीतल स्वभाववाली होने से 'चन्दनबाला' के नाम से प्रसिद्ध हुई ॥५७॥

भावार्थ—भगवान् को आहार पानी का दान देने के पश्चात् 'यही चन्दनबाला श्रमण भगवान् महावीर की सबसे पहली शिष्या होगी' इस प्रकार की घोषणा देवों ने आकाश में की कौन थी यह चन्दनबाला? जिसके हाथ से भगवान् ने पारणा के निमित्त आहार का दान ग्रहण किया? उसका परिचय क्या है? इस बात के 'जिज्ञासुओं' के लिए चन्दनबाला का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—एक समय कौशाम्बी नगरी के राजा शतानीक ने चम्पानगरी के स्वामी दधिवाहन राजा पर अपनी सेना के साथ आक्रमण किया और उसने दुर्नीति का आश्रय लेकर चम्पानगरी को लूटा। राजा दधिवाहन चम्पानगरी में लूटपाट प्रारंभ होने पर भयभीत होकर बाहर भाग गया। तब शतानीक का कोई योद्धा दधिवाहन राजा की धारिणी नामक रानी को

और वसुमती नामक पुत्री को रथ में बिठलाकर कौशाम्बी की ओर ले चला। रास्ते में उस योद्धा ने कहा–'राजा दधिवाहन की रानी धारिणी को मैं अपनी स्त्री बनाऊंगा'। योद्धा का यह कथन धारिणी ने सुना। और समझा। उसे शील के खंडित होने का भय हुआ। अतएव उसने अपनी जिह्वा बाहर खींच ली और प्राणत्याग दिये। धारिणी को मृतक अवस्था में देखकर योद्धा भयभीत हो गया। वह सोचने लगा–कहीं ऐसा न हो कि यह– वसुमती भी धारिणी की भांति कोई अवांछनीय कार्य कर बैठे–प्राण त्याग दे! यह सोच उसने अपने मन की कोई भी बात वसुमती से न कहकर कौशाम्बी के चौराहे पर ले जाकर उसे बेच दिया। बिकती हुई वसुमती को योद्धा के द्वारा निश्चित किया हुआ शुल्क देकर एक वेश्या ने खरीद लिया। तत्पश्चात् वसुमति ने उस गणिका से पूछा–माताजी, तुम कौन हो–मैं वेश्या हूं। वेश्या का काम है–पर–पुरुषों को प्रसन्न करना विलास हास आदि करके उनका मनोरंजन करना।'

हृदय को विदारण कर देने वाले, मन में खेद उत्पन्न करने वाले, आर्यजनों के लिए अनुचित तथा वज्रपात की तरह असह्य वचन सुनकर बसुमती आक्रन्दन–रूदन करने लगी। रोती हुई वसुमती की दुःखभरी वाणी सुनकर उसी चौराहे पर खडे हुए धनावह नामक एक सेठ ने विचार किया–'आकृति से प्रतीत होता है कि रोने वाली लडकी यह या तो बडे राजा की अथवा किसी धनवान् की बेटी होनी चाहिए। यह बेचारी लडकी दुःखिनी न हो तो अच्छा।' ऐसा सोचकर धनावह सेठ ने वेश्या का मुंह मांगा मोल चुकाकर राजकुमारी बसुमति को ले लिया। वह उसे अपने घर ले गये। घर ले जाने के पश्चात् धनावह सेठ और उनकी पत्नी मूलाने वसुमती का अपनी ही बेटी के समान पालन–पोषण करना प्रारंभ किया। एक वार ग्रीष्म ऋतु का समय था, सेठ धनावह दूसरे गांव से लौटकर अपने घर आये थे। जब वे घर आये, उस समय कोई नौकर उपस्थित नहीं था। अतएव वसुमती ही धनावह को

अपना पिता समझकर पैर धोने लगी। धनावह ने मना किया, पर वह नहीं मानी। जब वसुमती धनावह के चरण प्रक्षालन कर रही थी, उस समय उसका केशकलाप (जुडा) खुल गया। सेठ धनावह ने सोचा–इसके बाल कोचड वाली जमीन पर न गिर जाएं, यह सोचकर उन्होंने निर्विकारभाव से–यष्टि (लकडी) के समान अपने हाथों में लेकर उसके केशपाश को बांध दिया। उस समय धनावह सेठ की पत्नी मूला खिडकी में बैठी थी। उसने वसुमति का केशकलाप बांधते हुए धनावह को देखकर मन में विचार किया–इस लडकी का पालन पोषण करके मैंने अपना ही अनिष्ट कर डाला है। क्यों कि इस छोकरी के साथ मेरे पति ने विवाह कर लिया तो इसके साथ विवाह कर लेने पर मैं अपदस्थ हो जाऊंगी–अर्थात् मैं अधिकार से वंचिक हो जाऊंगी। अतएव मुझे कोई ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि मेरे पति इससे विवाह न कर सकें। जब विमारी उत्पन्न हो रही हो तभी उसका इलाज कर लेना ही अच्छा है। मूला ने

ऐसा विचार कर लिया। कुछ ही समय के बाद उसे अवसर मिल गया। एक बार धनावह सेठ दूसरे गांव चले गये। उन्हें बाहर गया जानकर मूला ने नाई से वसुमती का सिर मुंडवा दिया। हाथों में हथकडी और पैरों में बेडी डाल दी। तब वसुमती को एक भोंयरे में बंद करदी। भोंयरे को ताला जड़ दिया। यह सब करके वह मूला, कौशाम्बी में ही अपने मायके [पिता के घर] चल दी। हाथों-पैरों से जकडी वसुमती भोंयरे में पडी हुई मन ही मन विचार करने लगी। वह क्या विचार करने लगी सो कहते हैं।

कहां तो मेरा वह राजवंश-जिसमें मेरा जन्म हुआ था और कहां यह इस समय की मेरी दुर्दशा? दोनों में तनिक भी समानता नहीं। आह? पूर्वभव में मेरे द्वारा उपार्जित अशुभ कर्म न जाने कैसा है? जिसका फल ऐसा भोगना पड रहा है। इस दुर्दशा के रूप में जो उदय में आया है। इस प्रकार विचार करती हुई वसुमती ने

यह निश्चय कर लिया कि 'जब तक मैं इस कारागार से छुटकारा न पाऊंगी तब तक अनशन तपस्या करूंगी ।' इस प्रकार विचारकर वह वसुमती 'नमो अरिहंताणं' इत्यादि रूप पंचपरमेष्ठी मंत्र का जाप करने लगी । इस प्रकार तीन दिन बीत गये । चौथे दिन धनावह सेठ दूसरे गांव से लौटे । उन्हें वसुमती दिखलाई नहीं दी तो भृत्य आदि परिजनों से उसके विषय में पूछताछ की । इस प्रकार सेठ के द्वारा जानने की जिज्ञासा करने पर भी, मूला द्वारा मना किये हुए नोकर चाकर वसुमती के विषय में कुछ भी न बोले। तब धनावह सेठ को क्रोध आगया उन्होंने कहा—तुम लोक जानते बूझते भी नहीं कहते हो तो मेरे घर से बाहर निकल जाओ। इस प्रकार सेठ के वचन सुनकर एक वृद्ध दासी ने सोचा—मेरे जीवन से भी वसुमती जीवीत रहे, अर्थात् मेरे प्राण जाते हों तो भले जायं, मेरे प्राणों के बदले वसुमती के प्राण बच जाने चाहिए। यह सोचकर उसने समग्र वृतान्त धनावह से कह दिया। इस वृतान्त को सुनकर धना-

वह शीघ्र ही भोंयरे के द्वार के समीप गये। भोंयरे का ताला तोडा। द्वार खोला, बसुमती को धीरज बंधाने वाले वचन कहकर संतोष दिया मूला जब अपने पिता के घर गई थी तो बरतन–भांडे सब गुप्त जगह में रख गई थी अतएव सेठ को जल्दी में न कोई बरतन मिला और न भोजन ही कहीं दिखाई दिया। केवल जानवरों के लिए उबले हुए उडद, जिन्हें लोक भाषा में 'बाकुला' कहते हैं, वहीं मिले। दूसरा बरतन न होंने के कारण सूप में ही उन्हें लेकर धनावह सेठ ने वह वसुमति को दिये। सेठ स्वयं बेडी वगैरह को काटने के हेतु लुहार बुलाने के लिये लुहार के घर चले गये। बंधे हुए हाथों–पैरों वाली वसुमती उबले हुए उड़द वाले सूप को हाथ में लेकर सोचने लगी –इससे पहले मैंने साधुओं को अशनपान खादिम और स्वादिम का दान देकर ही पारणा किया है? आज विना दान दिये पारणा कैसे करूं? कैसा गर्हित कर्म मेरे उदय में आया है, जिसके दुर्विपाक के कारण मैं दासीपन आदि की इस दशा को प्राप्त हुई

हूं, अगर मैं किसी मुनि को यही भोजन-रूप में स्थित उडद् अशन–देकर पारणा करूं तो मेरा कल्याण हो जाय। इस प्रकार विचार करके वह घर की देहली से एक पैर बाहर और दूसरा पैर अन्दर करके मुनि के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी। वही राजकुमारी वसुमती श्री खंड चन्दन के समान शान्त प्रकृति वाली होने के कारण 'चन्दनबाला' इस नाम से विख्यात हुई ॥५७॥

## अंतिमो उवसग्गो

मूलम्–तए णं से समणे भगवं महावीरे कोसम्बीयाओ नयरीओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जणवयविहारं विहरइ। तओ पच्छा भगवं बारसमं चाउम्मासं चंपाए णयरीए चउम्मासतवेणं ठिए, तओ निक्खमिय छम्माणियाभिहस्स गामस्स बहिया उज्जाणम्मि काउसग्गंमि ठिए। तत्थ णं एगो

गोवालो आगंतूण भगवं दट्ठूणं एवं वयासी—भो भिक्खू! मम इमे बइल्ले रक्खउत्ति कहिअ गामंमि गओ। गामाओ आगमिय बइल्ले न पासइ, भगवं पुच्छेइ—कत्थमे बइल्ला? झाणनिमग्गो भगवं न किंचि वयइ। तओ से पुव्व-भव वेराणुबंधिकम्मुणा कुद्धो आसुरुत्तो मिसिमिसमाणो भगवओ कण्णेसु सरग-डनामस्स कढिणरुक्खस्स कीले निम्माय कुढारप्पहारेण अंतो निखणिय तेसिं उवरिभागे छेदिअ, जे णं ते न कोइ नाउं सक्किज्जा न वि य निस्सारिउं। पहुस्स इमो अट्ठारसमभवबद्धकम्मुणो उदओ समुवट्ठिओ। दुरासओ सो गोवालो तओ निक्खमिय अन्नत्थ गओ। पहू य तओ निक्खमिय मज्झिम-पावाए णयरीए भिक्खं अडमाणे सिद्धत्थसेट्ठि गिहमणुपविट्ठे। तत्थ णं खर-गाभिहो विज्जो अच्छेइ, सो य पहुं दट्ठुं जाणीअ जं एयस्स कण्णेसु केणवि

सल्लाइं निखायाइं, तेणं एस पहू अउलं वेयणं अणुभवइति। तए णं सो विज्जो सेट्ठिं कहीअ। पहू य गहिय भिक्खे उज्जाणं समणुपत्ते। सो सेट्ठि विज्जो य उज्जाणे गमिय काउसग्गट्ठियस्स पहुस्स कण्णेहिंतो महईए जुत्तीए ताइं सल्लाइं निस्सारेंति। जइ वि कीलगुद्धरणे पहुस्स दुस्सहा वेयणा संजाया। तहवि भगवं चरिमसरीरत्तणेण अनंतबलत्तणेण य तं उज्जलं तिव्वं घोरं कायरजणदुरहियासं वेयणं सम्मं सहीअ। तए णं से सेट्ठी विज्जो य तेण सुह कम्मुणा बारसमे कप्पे उववण्णा इइ गंथंतरे ॥५८॥

शब्दार्थ—[तए णं से समणे भगवं महावीरे कोसंबीयाओ णयरीओ पडिनिक्खमइ] उसके बाद श्रमण भगवान् महावीर ने कोशाम्बी नगरी से विहार किया [पडिनिक्खमित्ता जणवयं विहारं विहरइ] विहार कर जनपद में विचरने लगे [तओ पच्छा भगवं बारसमं

चाउम्मासं चंपाए नयरीए चउम्मासतवेणं ठिए] तत्पश्चात् भगवान् चौमासी तप के साथ चंपा नगरी में बारहवें चातुर्मास के लिए विराजे [तओ निक्खमिय छम्माणियाभिहस्स गामस्स बहिया उज्जाणम्मि काउसग्गे ठिए] तदनंतर वहां से विहार कर षण्मानिक नाम के ग्राम के बाहर उद्यान में कायोत्सर्ग में स्थित हुए [तत्थ णं एगो गोवालो आगंतूण भगवं दट्ठूणं एवं वयासी–] वहां एक गोवाल आया और भगवान् को देखकर इस प्रकार बोला–[भो भिक्खू! मम इमे बइल्ले रक्खउत्ति कहिय गामम्मि गओ] हे भिक्षु! मेरे इन दोनों बैलों की रखवाली करना ऐसा कहकर गांव में चला गया [गामाओ आगम्मिय बइल्ले न पासइ] गांव से लौटने पर उसे बैल दिखाई न दिये [भगवं पुच्छेइ–कत्थमे बइल्ला?] भगवान् से पूछा–कहां है मेरे बैल? [झाणनिमग्गे भगवं न किंचि वयइ] ध्यानमग्न भगवान् कुछ न बोले। [तओ से पुव्वभववेराणुबंधिकम्मुणा कुद्धो आसुरुत्तो मिसि-

मिसेमाणो भगवओ कण्णेसु सरगडनामस्स कढिणरुक्खस्स कीले निम्माय] तब उसने पूर्व भव के वैरानुबंधी कर्म के कारण क्रुद्ध होकर-लाल होकर और मिसमिसाते हुए शरकट-नामक कठिन वृक्ष की दो कीलें बनाकर [कुढारप्पहारेण अंतो निखणिय तेसिं उवरि भागे छेदीअ] भगवान् के कानों में कुठार के प्रहार से अन्दर ठोंकदी और उनके बाहरी भागों को काट डाला [जे णं ते न कोइ नाउं सक्किज्जा न वि य निस्सारिउं] जिस से किसी को मालूम न हो और कोई निकाल भी न सके [पहुस्स इमो अट्ठारसमभवबद्धकम्मुणो उदओ समुवट्ठिओ] प्रभु के यह अठारवें भव में बांधे हुए कर्म का उदय उपस्थित हुआ [दुरासओ सो गोवालो तओ निक्खमिय अन्नत्थ गओ] वह दुराशय गुवाल वहां से निकल कर अन्यत्र चला गया [पहू य तओ निक्खमिय मज्झिमपावाए णयरीए भिक्खट्ठाए अडमाणे सिद्धत्थ सेट्ठि गिहमणुपविट्ठे] भगवान् वहां से निकलकर मध्यमपावा नगरी में भिक्षा के लिए अटन करते हुए सिद्धार्थ सेठ

के घर में प्रविष्ट हुए [तत्थ णं खरगाभिहो विज्जो अच्छइ] वहां खरक नामक एक वैद्य था [सो य पहुं दट्ठुं जाणीअ जं एयस्स कण्णेसु केणवि सल्लाइं निखायाइं] उसने प्रभु को देखकर जान लिया कि इन के कानों में किसी ने कीलें ठोंक दी हैं, [तेणं एस पहू अउलं वेयणं अनुभवइ ति] इस कारण प्रभु को अतुल वेदना का अनुभव हो रहा है [तए णं सो विज्जो सेट्ठिं कहीअ] तब उस वैद्य ने सेठ से कहा [पहूय गहिय भिक्खे उज्जाणं समणुपत्ते] भगवान् भिक्षा ग्रहण करके उद्यान में आगये [सो सेट्ठी विज्जो य उज्जाणे गमिय काउस्सग्गट्ठियस्स पहुस्स कण्णेहिंतो महईए जुत्तीए ताइं सल्लाइं निस्सारेंति] सेठ ने और वैद्य ने उद्यान में जाकर कायोत्सर्ग में स्थित प्रभु के कानों में लगी हुई कीला को बडी युक्ति से निकाल दिया [जइ वि कीलगुद्धरणे पहुस्स दुस्सहा वेयणा संजाया] यद्यपि कीलों के निकालने से प्रभु को दुस्सह वेदना हुई [तहवि भगवं चरिमसरीरत्तणेण अणंतबलत्तणेण य तं उज्जलं तिव्वं घोरं कायर-

जणदुरहियासं वेयणं सम्मं सहीअ] तथापि चरम शरीर और अनन्तबली होने के कारण भगवान् ने उस जाज्वल्यमान तीव्र घोर और कायर जनों द्वारा असह्य वेदना को सम्यक् प्रकार से सह लिया [तए णं से सेट्ठी विज्जो य ओसहोवयारेण तं नीरुयं काउं सयं गिहं गमीअ] उसके बाद वह सेठ और वैद्य औषधोपचार से भगवान् को निरोग करके अपने घर गये। [तेण कुकिच्चेण गोवालो मरिअ नरयं गओ] उस कुकृत्य से गुवाल मरकर नरक में गया [सेट्ठो विज्जो य तेण सुहकम्मुणा बारसमे कप्पे उववन्ना इइ गंथंतरे] तथा सेठ और वैद्य उस शुभ कर्म के कारण से बारहवें देवलोक में उत्पन्न हुए ॥५८॥

भावार्थ—तत्पश्चात् वह श्रमण भगवान् महावीर कोशाम्बी नगरी से विहार किये और विहार कर जनपद–देश में विचरने लगे। तत्पश्चात् भगवान् वीर प्रभु बारहवें चौमासे में चम्पानगरी में विराजे और चार मास की तपस्या की। चौमासा

समाप्त हो जाने पर चम्पानगरी से विहार कर षणमानिक नामक गांव के बाहरी बगीचे में कायोत्सर्ग में स्थित हुए। वहां एक गुवाल ने आकर भगवान् वीर प्रभु को देखा और इस प्रकार कहा–'हे भिक्षु! सामने खडे मेरे इन दोनों वैलों की रखवाली करना। यह वचन कहकर वह गांव में चला गया। जब वह गुवाल गांव जाकर वापिस लौटा तो उसे वहां बैल नजर नहीं आये। तब उसने भगवान् से पूछा हे 'भिक्षु' मेरे बैल कहां चले गये ?' इस प्रकार जिज्ञासा करने पर भी ध्यान में लीन भगवान् ने कुछ उत्तर नहीं दिया। तब वह गुवाल पूर्वभव में बांधे हुए वैरानुबंधी कर्म के उदय से कुपित हो कर एकदम ही क्रोध से लाल हो गया, और क्रोध से जल उठा। उसने भगवान् के दोनों कानों में शरकट नामक कठिन वृक्ष की दो कीलें बनाकर तथा कुल्हाडे के पिछले भाग से ठोंक ठोंक गाड दीं। कानों के भीतर ठोंकी हुई कीलों के बाहर निकले हुए सिरे उसने कुल्हाडे से काट डाले, जिससे देखने वाला देख न सके

कि कानों में कीलें ठोंकी हुई है और वह कीलें निकल भी न सकें। भगवान् ने अठारहवें भव में जो कर्म बांधे थे, उनका यह फल था। उस भव में वह 'त्रिपृष्ठ वासुदेव थे। उन्होंने शय्यापालक के कानों में उकलता हुआ शिशे का रस डलवाया था। वही कर्म अब उदय में आया।

दुष्टाशय वह गुवाल उस स्थान से निकलकर दूसरी जगह चला गया। भगवान् वीर प्रभु ने षणमानिक ग्राम से निकलकर मध्यपावा नामक नगरी में भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए अनुक्रम से सिद्धार्थ नामक सेठ के घर में प्रवेश किया। सिद्धार्थ सेठ के घर खरक नामक वैद्य किसी प्रयोजन से आया था। उसने प्रभु को देखकर जान लिया कि इनके कानों के अन्दर किसी दुर्जन ने कीलें ठोंक दी हैं। कीलें ठोकने के कारण भगवान् अनुपम और दुस्सह वेदना का अनुभव कर रहें हैं। खरक वैद्यने यह बात सिद्धार्थ सेठ से कही। भगवान् भिक्षा ग्रहण करके उद्यान में चले गये।

इधर सिद्धार्थ नामक सेठ और खरक वैद्य-दोनों उद्यान में पहुंचे। भगवान् कायोत्सर्ग में स्थित थे। उन्होंने अत्यंत कुशलतापूर्ण युक्ति से भगवान् के दोनों कानों में से ठोकी हुई वह कीलें निकालीं। यद्यपि दोनों कानों में से कीलें बाहर निकालने में भगवान् को अतीव दुस्सह व्यथा हुई फिर भी चरमशरीरी अर्थात् तद्भवमोक्षगामी होने के कारण तथा अनन्त बल से संपन्न होने के कारण भगवान् ने उस उत्कृष्ट, उग्र भयानक और अधीर पुरुषों द्वारा असह्य वेदना को भली भांति सहनकर लिया। सिद्धार्थ सेठ और खरक वैद्य औषधोपचार से भगवान् महावीर को निरोग करके अपने २ घर चले गये। इस पापकर्म के कारण वह गुवाल मृत्यु के अवसर पर मर कर सातवें नरक में गया। सेठ सिद्धार्थ और खरक वैद्य दोनों यथासमय शरीरत्याग कर उस पुण्य कर्म के उदय से बारहवें अच्युत नामक देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुए ॥सू०५८॥

मूलम्—तए णं से समणे भगवं महावीरे इरियासमिए, जाव गुत्तबंभयारी,

अममे अकिंचणे, अकोहे, अमाणे, अमाए, अलोहे संते, पसंते, उवसंते, परिणिव्वुए, अणासवे अग्गंथे छिण्णग्गंथे छिण्णसोए, निरूवलेवे आयट्ठिए, आयहिए आयजोइए, आयपरक्कमे, समाहिपत्ते, कंसपायवमुक्कतोए, संख इव निरंजने, जीव इव अप्पडिहयगई अच्चकणगं विव जायरूवे आदरिसफलगमिव पागडभावे, कुम्मोव्व गुत्तिंदिए, पुक्खरपत्तंव निरूवलेवे, गगणमिव निरालंबणे, अणिलोव्व निरालए, चंदोइव सोमलेसे, सूरो इव दित्ततेए, सागरो इव गंभीरे, विहगो इव सव्वओ विप्पमुक्के मंदरो इव अकंपे सारयसलिलंव सुद्धहियए खग्गिविसाणंव एगजाए, भारंडपक्खीव अप्पमत्ते कुंजरो इव सोंडीरे, वसभो इव जायत्थामे सीहो इव दुद्धरिसे, वसुंधरेव सव्वफाससहे, सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलंते वासावासवज्जं अट्ठसु गिम्ह हेमंतिएसु मासेसु गामे गामे एग-

रायं णयरे णयरे पंचरायं वासीचंदणकप्पे समलेट्ठु कंचणे समसुहदुहे इह-लोगपरलोगअप्पडिबद्धे अपडिण्णे संसारपारगामी कम्मणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिए विहरइ, नत्थिणं तस्स भगवओ कत्थइ पडिबंधे।

एवं विहेणं विहारेण विहरमाणस्स भगवओ अणुत्तरेण णाणेण अणुत्तरेण दंसणेण अणुत्तरेण तवेण अणुत्तरेण संजमेण अणुत्तरेण उट्ठाणेण अणुत्तरेण कम्मेण अणुत्तरेण बलेण अणुत्तरेण वीरिएणं, अणुत्तरेण पुरिसकारेण अणुत्तरेण परक्कमेण अणुत्तराए खंतीए अणुत्तराए मुत्तीए अणुत्तराए लेसाए अणुत्तरेण अज्जवेण अणुत्तरेण मद्दवेण, अणुत्तरेण लाघवेण अणुत्तरेण सच्चेण अणुत्तरेण झाणेण अणुत्तरेण अज्झवसाणेण अप्पाणं भावेमाणस्स बारसवासा तेरसपक्खा वीइक्कंता। तेरसमस्स वासस्स परियाए वट्टमाणाणं जे से गिम्हाणं

दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे, तस्स णं वइसाहसुद्धस्स नवमी पक्खेण जंभियाभिहस्स गामस्स बहिया उजुवालियाए णईए उत्तरकूले सामगामाभिहस्स गाहावईस्स खित्तंमि सालरुक्खस्स मूले रत्तिं काउस्सग्गे ठिए। तत्थ णं छउमत्थावत्थाए अन्तिमराइयंमि भगवं इमे दस महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धे। तं जहा—एगं च णं महं घोरदित्तरूवधरं तालपिसायं पराजियं सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धे। एवं एगं च णं महासुक्किलपक्खगं पुंसकोइलं २, एगं च णं महं चित्तविचित्तपक्खगं पुंसकोइलं ३, एगं च णं महं दामयुगं सव्वरयणामयं ४, एगं च णं महं सेयं गोवग्गं ५, एगं च णं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं ६, एगं च णं महं सागरं उम्मिवीइसहस्स कलियं भुयाहिं तिण्णं ७, एगं च णं महं दिणयरं तेयसा जलंतं ८, एगं च

णं महं हरिवेरुलियवन्नाभेणं नियगेणं अंतेणं माणुसुत्तरं पव्वयं सव्वओ समंता आवेढियपरिवेढियं ९, एगं च णं महं मंदरे पव्वए मंदरचूलियाए उवरिं सीहा-सणवरगयं अप्पाणं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ॥८९॥

शब्दार्थ—[तए णं से समणे भगवं महावीरे इरियासमिए] उसके बाद श्रमण भगवान् महावीर ईर्या समिति सम्पन्न [जाव गुत्तबंभयारी] यावत् गुप्त ब्रह्मचारी [अममे] ममत्व रहित [अकिंचणे] अपरिग्रही [अकोहे] क्रोधरहित [अमाणे] मान रहित [अमाये] मायारहित [अलोहे] लोभरहित [संते] शान्त [पसंते] प्रशान्त [उव-सन्ते] उपशान्त [परिनिव्वुए] परिनिर्वृत्त [अणासवे] आश्रव रहित [अग्गंथे] ग्रन्थरहित [छिण्णग्गंथे] छिन्न ग्रन्थ [छिन्न सोए] शोक रहित [निरूवलेवे] लेप रहित [आयट्ठिए] आत्मस्थित [आयहिए] आत्मा का हित करने वाले [आयजोइए] आत्म ज्योतिष्क-प्रकाशक [आयपरक्कमे] आत्मवीर्यवान [समाहिपत्ते] समाधि प्राप्त [कंसपायंव मुक्क-

तोए] कांसे के पात्र के समान स्नेह रहित [संखइव निरंजणे] शंख के समान निरंजन [जीवो इव अप्पडिहय गई] जीव के समान अप्रतिबद्ध गतिवाले [जच्चकणगं विव जायरूवे] उत्तम स्वर्ण के समान देदीप्यमान [आदरिस फलगमिव पागडभावे] दर्पण के समान तत्त्वों को प्रकाशित करनेवाले [कुम्मोव्व गुत्तिंदिए] कच्छप के समान गुप्तेंन्द्रिय [पुक्खर पत्तंव निरुवलेवे] कमल पत्र के समान निर्लेप [गगणमिव निरालंबणे] आकाश के समान आलंबन रहित [अणिलोव्व निरालए] पवन के समान घर रहित [चंदोइव सोमलेस्से] चन्द्रमा के समान सौम्य लेश्यावाले [सूरोइव दित्ततेए] सूर्य के समान तेजस्वी [सागरो इव गंभीरे] समुद्र के समान गम्भीर [विहगो इव सव्वओ विप्पमुक्के] पक्षी की तरह सर्वथा बन्धन रहित [मंदरो इव अकंपे] मेरू पर्वत की तरह अकंप [सारयसलिलंव सुद्धहियए] शरद ऋतु के जल के समान शुद्ध हृदयवाले [खग्गिविसाणंव एग जाए] गैंडे के शिंगके समान अद्वि-

तीय-एक जन्म लेनेवाले [भारंडपक्खीव अप्पमत्ते] भारण्डपक्षी की तरह अप्रमत्त [कुंजरो इव सोंडीरो] हाथी के समान वीर [वसभो इव जायत्थामे] बैल की तरह वीर्यवान [सीहो इव दुद्धरिसे] सिंह के समान अजेय [वसुंधरेव सव्वफासखहे] पृथ्वी के समान समस्तस्पर्शों को सहनेवाले [सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलंते] अच्छी तरह होमी हुई अग्निके समान तेज से जाज्वल्यमान [वासावासवज्जं अट्ठसु गिम्हहेमंतिएसु मासेसु गामे गामे एग-रायं णयरे णयरे पंचरायं] वर्षाकालके शिवाय ग्रीष्म और हेमंत के आठ महिनों में ग्राम में एक रात्रि और नगर में पांच रात्रि तक रहने वाले [वासी चंदणकप्पे] वासी-चन्दन के समान [समलेट्ठुकंचणे] मिट्टी और स्वर्ण को एक दृष्टि से देखने वाले [सम सुहदुहे] सुख दुःख में समान दृष्टि वाले [इहलोग परलोग अप्पडिबद्धे] इहलोक और परलोक में अनासक्त [अपडिण्णे] कामना रहित [संसारपारगामी] संसारपारगामी [कम्म-णिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिए विहरइ] और कर्मों को नष्ट करने के लिए पराक्रम शील होकर

विचरते थे [तस्स भगवओ कत्थइ न पडिबंधे] भगवान् को कहीं भी प्रतिबंध नहीं था।

[एवं विहेण विहारेणं विहरमाणस्स भगवओ अणुत्तरेण णाणेण] इस प्रकार के विहार से विचरते हुए भगवान् को अनुत्तर ज्ञान [अणुत्तरेण दंसणेण] अणुत्तर दर्शन [अणुत्तरेण तवेण] अणुत्तर तप [अणुत्तरेण संजमेण] अणुत्तर संयम [अणुत्तरेण उट्ठाणेण] अणुत्तर उत्थान [अणुत्तरेण कम्मेण] अणुत्तर क्रिया [अणुत्तरेण बलेण] अणुत्तर बल [अणुत्तरेण वीरिएणं] अणुत्तरवीर्य [अणुत्तरेण पुरिसकारेण] अणुत्तर पुरुषाकार [अणुत्तरेण परक्कमेण] अणुत्तर पराक्रम [अणुत्तराए खंतीए] अणुत्तर क्षमा [अणुत्तराए मुत्तीए] अणुत्तर मुक्ति [अणुत्तराए लेसाए] अणुत्तर लेश्या [अणुत्तरेण अज्जवेण] अणुत्तर आर्जव [अणुत्तरेण मद्दवेण] अणुत्तर मार्दव [अणुत्तरेण लाघवेण] अणुत्तर लाघव [अणुत्तरेण सच्चेण] अणुत्तर सत्य [अणुत्तरेण झाणेण] अणुत्तर ध्यान [अणुत्तरेण अज्झवसाणेण] अणुत्तर अध्यवसाय से [अप्पाणं भावे माणस्स बारसवासा

तेरसपक्खा वीइक्कंता] आत्मा को भावित करते करते बारह वर्ष और तेरह पक्ष व्यतीत हो गये [तेरसमस्स वासस्स परियाए वट्टमाणाणं जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे] भगवान् की दीक्षा के तेरहवें वर्ष के पर्याय में वर्तमान ग्रीष्म ऋतु का जो दूसरा मास और चौथा पक्ष–वैशाख शुक्ल पक्ष था [तस्स णं वइसाहसुद्धस्स नवमी पक्खेणं जंभियाभिहस्स गामस्स बहिया उजुवालियाए णईए उत्तरकूले सामगाभिहस्स गाहावइस्स खित्तम्मि सालरुक्खस्स मूले रत्तिं काउस्सग्गे ठिए] उस वैशाख शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन भगवान् जृंभिग नामक ग्राम के बाहर, ऋजुवालिका नदी के उत्तर किनारे, सामग नामक गाथापति के खेत में, साल वृक्ष के नीचे, रात्रि में कायोत्सर्ग में स्थित हुए [तत्थ णं छउमत्थावत्थाए अंतिमराइयंसि भगवं इमे दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे] तं जहा–छद्मस्था अवस्था की उस अन्तिम रात्रि में भगवान् यह दस महास्वप्न देखकर जागे। वे स्वप्न ये हैं [एगं च णं महं

घोरदित्तरूवधरं तालपिसायं पराजियं सुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धे] एक महान् घोर दीप्त रूप धारी तालपिशाच को स्वप्न में पराजित देखकर जागे [एवं एगं च णं महासुक्किल्लपक्खगं पुंसकोइलं] इसी प्रकार एक अत्यन्त सफेद पंखों वाले पुरुष जातीय कोकिल को देखकर जाग्रत हुए। [एगं च णं महं चित्तविचित्तपक्खगं पुंस कोइलं] एक विशाल चित्र विचित्र पंखों वाले पुरुष कोकिल को देखा [एगं च णं महं दामयुगं सव्वरयणामयं] एक बडा सर्व रत्नमय माला युगल देखा [एगं च णं महं सेयं गोवग्गं] एक विशाल श्वेत गोवर्ग देखा [एगं च णं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं] सब तरफ से पुष्पित एक पद्म युक्त विशाल सरोवर देखा [एगं च णं महं सागरं उम्मिवीइसहस्सकलियं भुयाहिं तिण्णं] एक हजारों तरंगों से युक्त महान् समुद्र को अपनी भुजाओं से पार करते देखा [एगं च णं महं दिणयरं तेयसा जलंतं] एक महान् तेज से जाज्वल्यमान सूर्य को देखा [एगं च णं महं हरिवेरुलियवण्णाभेणं

नियगेणं अंतेणं माणुसुत्तरं पव्वयं सव्वओ समंता आवेढियपरिवेढियं] पिंगलवर्ण की हरि मणि और नील वर्ण के नीलम की आभा के समान कान्तिवाली अपनी आंत से महान् मानुषोत्तर पर्वत को सब ओर से वेष्ठित और परिवेष्टित [एगं च णं महं मंदरे पव्वए मंदरचूलियाए उवरिं सींहासणवरगयं अप्पाणं सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धे] मेरु पर्वत पर मंदर चूलिका के उपर अपने आपको एक श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठा देखा। स्वप्न देखकर भगवान् जाग्रत हुए ॥५९॥

भावार्थ—उस समय भगवान् महावीर ईर्यासमिति, भाषा समिति, एषणासमिति, आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणा समिति, उच्चार प्रस्त्रवणश्लेष्मशिंघाणजल्लपरिष्ठापनिकासमिति से युक्त थे, तथा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति से सम्पन्न थे, गुप्त थे, और गुप्तेन्द्रिय थे। प्राणियों की रक्षा करते हुए यतनापूर्वक चलना ईर्या समिति है। निर्दोष वचनों का प्रयोग करना भाषा समिति है। एषणा में अर्थात्—

आहार आदि की गवेषणा में उद्गम आदि ४२ [बयालीस] दोषों का वर्जन करना एषणासमिति है। भांड-पात्र तथा मात्र-वस्त्र आदि उपकरणों के ग्रहण करने और रखने में अथवा भाण्ड और वस्त्र आदि उपकरणों के तथा अमत्र अर्थात् पात्र के आदान-निक्षेप में यतना करना अर्थात् प्रतिलेखनादि पूर्वक प्रवृत्ति करना आदान-भाण्डमात्रनिपेक्षणासमिति है। उच्चार-मल, प्रस्रवण मूत्र, श्लेष्म-कफ, शिंघाण- रेंट, जल्ल-पसीने का मैल, इन सब के परिष्ठान, परठने में यतना करने को उच्चारप्रस्रवणश्लेष्मशिंधाणजल्लपरिष्टापनिकासमिति कहते हैं। भगवान् मनोगुप्ति से युक्त थे। मनोगुप्ति तीन प्रकार की है-(१) आर्तध्यान और रौद्रध्यान संबंधी कल्पनाओं का अभाव होना। (२) शास्त्र के अनुकूल परलोक को साधने वाली, धर्म ध्यान के अनुकूल मध्यस्थ भाव रूप परिणति, (३) समस्त मानसिक वृत्तियों के निरोध से, योगनिधान की अवस्था में उत्पन्न होने वाली आत्मरमणरूप प्रवृत्ति। योग

शास्त्र में कहा है।

विमुक्तकल्पनाजालं, समत्वे सुप्रतिष्ठितम् ।
आत्मारामं मनस्तज्ज्ञैर्मनोगुप्तिरुदाहृता" ॥१॥ इति ।

कल्पनाओं के जाल से सर्वथा मुक्त, समत्व में सुप्रतिष्ठित और आत्मरूपी उद्यान में रमण करने वाला मन ही मनोगुप्ति है, ऐसा गुप्ति के ज्ञाताओंने कहा है ॥१॥

भगवान् वचन गुप्ति से भी युक्त थे। वचन गुप्तिचार प्रकार की है। कहा भी है—

'सच्चा तहेव मोसा च, सच्चा मोसा तहेव य ।
चउत्थी असच्च मोसाउ, वयगुत्ती चउव्विहा" ॥१" इति ।

(१) सत्यवचनगुप्ति (२) मृषावचनगुप्ति (३) सत्यामृषावचनगुप्ति (४) चौथा असत्यामृषावचनगुप्ति, इस प्रकार वचन गुप्ति चार प्रकार की है ॥१॥

इसका अभिप्राय वह है—वचन चार प्रकार का है, जैसे जीव को 'यह जीव है'

ऐसा कहना सत्यवचन है। जीव को 'यह अजीव है' ऐसा कहना मृषावचन है। 'आज इस नगर में सौ बालक जन्मे' इस प्रकार पहले निर्णय किये विना ही कहना सत्यामृषावचन है। 'गांव आ गया' इस प्रकार का कहना न सत्य है, नमृषा [असत्य] है, इसलिए यह असत्यामृषावचन–व्यवहारभाषा है। इन चारों प्रकार के वचन योग के त्याग को वचनगुप्ति कहते हैं। अथवा–प्रशस्त वचनों का प्रयोग करना और अप्रशस्तवचनों का त्याग करना वचनगुप्ति हैं। भगवान् इस वचन गुप्ति से युक्त थे। भगवान् कायगुप्ति से युक्त थे। कायगुप्ति दो प्रकार की है (१) कायिक चेष्टओं को त्याग देना और (२) चेष्टाओं का आगम के अनुसार नियमन करना। इनमें परीषह उपसर्ग आदि उत्पन्न होने पर कायोत्सर्गक्रिया आदि के द्वारा शरीर को अचल कर लेना अथवा योग मात्र का निरोध हो जाने की अवस्था में पूर्ण रूप से कायिक चेष्टा का रूक जाना प्रथम कायगुप्ति हैं। गुरु से आज्ञा लेकर शरीर, संथारा, भूमि आदि की

प्रतिलेखना तथा प्रमार्जना आदि शास्त्रोक्त क्रियाएं करके ही शयन आसन आदि करना चाहिए। अतः शयन, आसन, निक्षेप, और आदान आदि क्रियाओं में स्वेच्छापूर्ण चेष्टाओं का परित्याग करके शास्त्रानुसार काय की चेष्टा होना दूसरी काय गुप्ति है। कहा भी है—

'उपसर्ग प्रसङ्गेऽपि, कायोत्सर्गजुषो मुनेः।
स्थिरीभावः शरीरस्य, कायगुप्तिर्निगद्यते ॥१॥
शयनासननिक्षेपाऽऽदानसंक्रमणेषु च,
स्थानेषु चेष्टानियमः, कायगुप्तिस्तु सा परा' ॥२॥

उपसर्ग का प्रसंग होने पर भी कायोत्सर्ग को सेवन करने वाले मुनि के शरीर का स्थिर होना प्रथम कायगुप्ति कहलाती है ॥१॥

भगवान् के गुरु का अभाव था, अतएव उनकी कायगुप्ति गुरू को विना पूछे ही

जान लेनी चाहिए। इस प्रकार वे दोनों प्रकार की कायगुप्ति से युक्त थे। इस प्रकार भगवान् मन, वचन और काय ये तीनों गुप्तियों से युक्त होने के कारण वे गुप्त थे। तथा गुप्तेन्द्रिय थे-विषयों में प्रवृत्त होने वाली इन्द्रियों का निरोध कर चुके थे। भगवान् गुप्त ब्रह्मचारी थे। अर्थात् यावज्जीवन मैथुन-त्याग रूप चौथे ब्रह्मचर्य महाव्रत का अनुष्ठान करने वाले थे। तथा-ममता से रहित थे। अकिंचन थे, क्रोधमान माया और लोभ से रहित थे। अन्तर्वृत्ति से शान्त थे, बाहर से प्रशान्त थे, और भीतर बाहर से उपशान्त थे। सब प्रकार के सन्ताप से रहित थे। आस्रव से रहित थे। बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थि से रहित थे। द्रव्य-भाव ग्रन्थ [परिग्रहण] के त्यागी थे। आस्रव के कारणों को नष्टकर चुके थे। द्रव्य और भावमल से वर्जित थे। आत्मनिष्ट थे। अथवा 'आयट्ठिए' की 'आत्मार्थिक' ऐसी छाया होती है। इसका अर्थ है-आत्मार्थी, आत्म कल्याण के इच्छुक, भगवान् आत्म-

हित—षड्जीवनिकाय के परिपालक थे। आयजोइए—आत्मज्योतिवाले थे अथवा आत्मयोगिक अर्थात् मन वचन काययोग को वश में करने वाले थे। आत्मबल से सम्पन्न थे। समाधि—मोक्षमार्ग में स्थित थे। कांसे के पात्र के समान स्नेह [राग] से रहित थे। शंख के समान निर्मल थे। जीव के समान अकुंठित अबाध गतिवाले थे। उत्तम स्वर्ण के समान सुन्दर रूप थे। दर्पण—फलक के समान जीव—अजीव समस्त पदार्थों को प्रकाशिक करने वाले थे। कछुवे के समान इन्द्रियों को वश करने वाले थे। कमल के पत्ते के समान स्वजन आदि की आसक्ति से रहित थे। आकाश के समान कुल, ग्राम, नगर आदि का आलंबन नहीं लेते थे। पवन के समान घर रहित थे। चन्द्रमा के समान सौम्य लेश्यावाले अर्थात् क्रोधादिजन्य सन्तापसे रहित मानसिक परिणाम के धारक थे। सूर्य के समान दीप्ततेज थे। अर्थात् द्रव्य से शारीरिक दीप्ति से और भाव से ज्ञान से देदीप्यमान थे। सागर के समान गंभीर थे। हर्ष—शोक आदि के

कारणों का संयोग होने पर भी विकार-विहीन चित्तवाले थे। पक्षी के समान सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त थे। मेरु शैल के समान परीषह और उपसर्ग रूपी पवन से चलायमान नहीं होते थे। शरदृऋतु के जल के समान निर्मल चित्त थे। गेंडा के सींग के समान ये रागादि कों की सहायता से रहित होने के कारण, एक स्वरूप थे। भारंड नामक पक्षी के समान प्रमादरहित थे। हाथी के समान पराक्रमी थे। वृषभ के समान वीर्यशाली थे। सिंह के समान अजेय थे। पृथ्वी के समान सर्व सह-शीत-उष्ण-आदि सकल स्पर्शों को सहन करने वाले थे। जिसमें घी की अहुति दी गई हो ऐसी अग्नि के समान तेजोमय थे। वर्षावास-वर्षाऋतु के चार मासों के सिवाय ग्रीष्म और हेमन्त ऋतुओं के आठ महिनों, ग्राम में एक रात और नगर में पांच रात से अधिक नहीं ठहरते थे। भगवान् वासी चन्दन कल्प थे अर्थात् वसूले के समान अर्थात् अपकारी पुरुष को भी चन्दन के समान उपकारक मानते थे। जैसे कहा है-

'यो मामपकरोत्येष, तत्त्वेनोपकरोत्यसौ ।
शिरामोक्षाद्युपायेन, कुर्वाण इव नीरुजम् ' । इति ।

जैसे शिरामोक्ष—चढी हुई नस के उतारने आदि उपायों से रोगी को निरोगी करने वाला उपकारक होता है, उसी प्रकार जो मेरा अपकार करता है, वह वास्तव में उपकार करता है । अथवा=वासी अर्थात् अपकारी वसूला के प्रति जो चन्दन के छेद (खण्ड) के समान उपकारी के रूप में वर्त्ताव करता है, अर्थात् अपकारी का भी उपकार करता है, वासी चन्दनकल्प कहलाता है । कहा भी है–

'अपकारपरेऽपि परे कुर्वन्त्युपकारमेव हि महान्तः ।
सुरभी करोति वासी; मलयजमपि तक्ष्माणमपि' ॥१॥ इति ।

महान् पुरुष, अपकार करने वाले का भी उपकार ही करते हैं । जैसे मलयज चन्दन छीला जाता हुआ भी वसूले को सुगंधित ही करता है । भगवान् ऐसे 'वासी-

चन्दनकल्प' थे। तथा-भगवान् मिट्टी एवं पाषाण के टुकडे को तथा सोने को समान दृष्टि से देखते थे। सुख-दुःख को समान दृष्टि से देखते थे। सुख दुःख को समान समझते थे। इह लोक में यश कीर्ति आदि की तथा पारलौकिक-स्वर्ग आदि के सुखों की आसक्ति से रहित थे। इहलोक परलोक संबंधी प्रतिज्ञा से रहित थे। संसाररूपी महासमुद्र के पारगामी थे। कर्मों का समूह उन्मूलन करने के लिए उद्यत होकर विचरते थे। इस प्रकार विचरते हुए भगवान् को किसी भी स्थान पर प्रतिबंध नहीं था। अनुत्तर अर्थात् लोकोत्तर तप, सतरह प्रकार के अनुत्तर उत्थान-उद्यम, अनुत्तर कर्म-क्रिया, अनुत्तरबल-शारीरिक शक्ति का उपचय, अनुत्तर वीर्य आत्मार्जित सामर्थ्य, अनुत्तर पुरुषकार-पुरुषार्थ, अनुत्तर पराक्रम शक्ति, अनुत्तर क्षमा, [सामर्थ्य होने पर भी पर के किये अपकार को सहनकर लेना], अनुत्तर मुक्ति-निर्लोभता, अनुत्तर शुक्ल लेश्या, जीव के शुभपरिणाम, अनुत्तर मृदुता, अनुत्तर लाघव। द्रव्य से अल्प उपधि

और भाव से गौरव का त्याग, अनुत्तर सत्य प्राणियों के हितार्थ यथार्थ भाषण, अनुत्तर धर्मध्यान और अनुत्तर आत्मिक परिणाम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए तथा इस प्रकार के विहार से विहरते हुए भगवान् श्री वीर प्रभु को बारह वर्ष और तेरह पक्ष व्यतीत हो गये। तेरहवां वर्ष जब चल रहा था, उस तेरहवें वर्ष का उस समय ग्रीष्म ऋतु का दूसरा मास, चौथा पक्ष–वैशाख शुद्ध पक्ष–अर्थात् वैशाख मास का शुक्ल पक्ष था, उसकी नौवी तिथि को जंभिक नामक गांव के बाहर ऋजुपालिका नदी के उत्तर तीर पर सामग नामक गाथापति के खेत में, सालवृक्ष के मूल में अर्थात् मूल के पास के प्रदेश में रात्रि में भगवान् विराजे। उस साल वृक्ष के मूल के नीचे समीपवर्ती प्रदेश में, रात्रि के समय, कायोत्सर्ग में छद्मस्थ अवस्था की रात्रि के अन्तिम प्रहर में भगवान् आगे कहे जाने वाले दश महास्वप्नों को देखकर जागृत हुए। यथा–१ प्रथम स्वप्न उन दस स्वप्नों में से पहले स्वप्न में एक विशाल तथा भयानक

भयंकर रूपवाले तालपिशाच (ताड के सदृश खूब लम्बे पिशाच) को अपने पराक्रम से पराजित हुआ देखा। २ द्वितीय स्वप्न–इसी प्रकार एक अत्यंत सफेद पंखों से युक्त पुरुष जाति के कोकिल को देखकर जागे। ३ तीसरा स्वप्न–एक विशाल चित्रविचित्र चित्रों से विचित्र होने के कारण अनेक वर्ण के पंखों वाले, अर्थात् नाना प्रकार के वर्णों से युक्त पंखवाले पुरुष कोकिल को देखकर जागे। ४ चौथा स्वप्न–एक वडे सर्व-रत्नमय मालाओं के युगल को देखकर जागे। ५ पांचवां स्वप्न सफेद रंग की गायों के एक समूह को देखकर जागे। ६ छट्ठा स्वप्न–एक विशाल पद्मसरोवर को देखा, जो सब तरफ से कमलों से छाया हुआ था। ७ सातवां स्वप्न–हजारों लहरों से युक्त एक महासागर को अपनी भुजाओं से पारकर दिया देखा। ८ आठवां स्वप्न–तेज से जाज्व-ल्यमान विशाल सूर्य को देखा। ९ नौवां स्वप्न–हरि (पिंगलवर्ण की) मणि और वैडूर्य (नीले वर्ण की) मणि के वर्ण के समान कान्तिवाली अपनी आंत–आंतरी से मानु-

षोत्तर पर्वत को चारों तरफ से सामान्य रूप से आवेष्टित और विशेष रूप से परिवेष्ठित देखा। १० दसवां स्वप्न—महान् मेरू पर्वत की चोटी पर श्रेष्ट सिंहासन पर स्थित, अपने आपको देखा। यह दस स्वप्न देखकर भगवान् जागृत हुए ॥५९॥

मूलम्—एएसि णं दसमहासुविणाणं के महालए फलवित्तिविसेसे भवइ त्ति सो कहिज्जइ—जण्णं समणेण भगवया महावीरेण सुविणे महाघोरदित्तरूवधरे-तालपिसाए पराजिए दिट्ठे तेणं भगवं मोहणिज्जं कम्मं उग्घाइस्सइ १। जं णं सुक्किल्लपक्खगे पुंसकोइले दिट्ठे, भगवं सुक्कझाणोवगए विहरिस्सइ २। जं णं चित्तविचित्तपक्खगे पुंसकोइले दिट्ठे, तेणं भगवं ससमयपरसमइयं दुवालसंगं गणिपिडगं आघविस्सइ पन्नविस्सइ परूविस्सइ दंसिस्सइ निदंसिस्सइ, उवदंसिस्सइ ३। जं णं सव्वरयणामयं दामदुगं दिट्ठं, तेणं भगवं अगारधम्मं

अणगारधम्मंति दुविहं धम्मं आघविस्सइ ४। जं णं सेयगोवग्गो दिट्ठो, तेणं चाउव्वण्णाइण्णं संघं ठाविस्सइ ५। जं णं पउमसरं दिट्ठं, तेणं भवणवइवाणमंतरजोइसिय वेमाणियत्ति चउव्विहे देवे आघविस्सइ ६। जं णं महासागरो भुयाहिं तिण्णो दिट्ठो, तेणं आणादीयं अणवदग्गं चाउरंतसंसारसागरं तरिस्सइ ७। जं णं तेयसा जलंतो दिणयरो दिट्ठो, तेणं अणंतं अणुत्तरं कसिणं पडिपुण्णं अव्वाहयं निरावरणं केवलनाणदंसणं समुप्पज्जिस्सइ ८। जं णं हरिवेरुलियवन्नाभेणं नियगेणं अंतेणं माणुसुत्तरे पव्वए सव्वओ समंता आवेढियपरिवेढियं दिट्ठं, तेणं भगवओ कित्तिवन्ने सद्दसिलोगा सदेवमणुयासुरे लोए गिज्झिस्संति ९। जं णं मंदरे पव्वए मंदरचूलियाए उवरिं सीहासणवरगओ अप्पा दिट्ठे, तेणं भगवं सदेवमणुयासुराए परिसाए मज्झगए केवलिपन्नत्तं धम्मं आघ-

विस्सइ पन्नविस्सइ परूविस्सइ दंसिस्सइ निदंसिस्सइ उवदंसिस्सइ १०॥६०॥

शब्दार्थ—[एएसि णं दस महासुविणाणं] इन दस महास्वप्नों का [के महालए फलवित्तिविसेसे भवइत्ति सो कहिज्जइ] किस प्रकार का महाफल होता है वह कहा जाता है [जण्णं समणेणं भगवया महावीरेणं सुविणे] जो श्रमण भगवान् महावीर ने स्वप्न में [महाघोरदित्तरूवधरे तालपिसाए पराजिए दिट्ठे] जो भयंकर तेजस्वी स्वरूप धारण करनेवाले तालपिशाच को पराजित किया देखा [तेणं भगवं मोहणिज्जं कम्मं उग्घाइस्सइ] इससे भगवान् मोहनीय कर्म को समूल नष्ट करेंगे १ [जं णं सुक्किल्लपक्खगे पुंसकोइले दिट्ठे] जो सफेद पांखोंवाले पुरुष कोकिल को देखा [तेणं भगवं सुक्कज्झाणोवगए विहरिस्सइ] इससे भगवान् शुक्लध्यान से युक्त होकर विचरेंगे २ [जं णं चित्तविचित्तपक्खगे पुंसकोइले दिट्ठे] जो भगवान् ने चित्रविचित्र पांखोंवाले पुरुष कोकिल को देखा [तेणं भगवं ससमयपरसमइयं दुवालसंगं गणिपिडगं आघविस्सइ पन्नविस्सइ परू-

विस्सइ दंसिस्सइ निदंसिस्सइ उवदंसिस्सइ] इससे भगवान् स्वसमय परसमय संबन्धी द्वादशांग गणिपिटकका आख्यान करेंगे, प्रज्ञापन करेंगे प्ररूपण करेंगे भेदानुभेद प्रदर्शनपूर्वक प्रदर्शित करेंगे, वारंवार निदर्शित करेंगे और प्रदर्शित करेंगे ३ [जं णं सव्वरयणामयं दामदुगं दिट्ठं] जो सर्व रत्नमय मालायुगल देखा [तेणं भगवं अगारधम्मं अणगारधम्मं त्ति दुविहं धम्मं आघविस्सइ] इसका फलस्वरूप भगवान् अगारधर्म और अनगारधर्म रूप दो धर्मों का कथन करेंगे ४ [जं णं सेयगोवग्गो दिट्ठो] जो सफेद गायो का समूह देखा [तेणं चाउव्वण्णाइण्णं संघं ठाविस्सइ] इससे भगवान् चतुर्विध–श्रमण श्रमणी, श्रावक श्राविकारूप–संघ की स्थापना करेंगे ५ [जं णं पउमसरं दिट्ठं] जो भगवान् ने पद्मसरोवर–पद्मों से युक्त सरोवर देखा [तेणं भवणवइवाणमंतरजोइसवेमाणिय त्ति चउव्विहे देवे आघविस्सइ] इससे भगवान् भवनपति वानव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक इस प्रकार चार प्रकार के देवों की प्ररूपणा करेंगे ६ [जं णं महासायरो

भुयाहिं त्तिण्णो दिट्ठो] जो भगवान् ने महासागर को भुजाओं से तैरकर पार करना देखा [तेणं अणादीयं अणवदग्गं चाउरंतसंसारसागरं तरिस्सइ] इससे भगवान् अनादि अनन्त चातुर्गतिक संसारसागर को पार करेंगे ७ [जं णं तेयसा जलंतो दिणयरो दिट्ठो] जो भगवान् ने तेजसे जाज्वल्यमान सूर्य को देखा [तेणं अणंतं अणुत्तरं कसिणं पडिपुण्णं अव्वाहयं निरावरणं केवलवरनाणदंसणं समुप्पज्जिस्सइ] इससे अनन्त अनुत्तरपरिपूर्ण अप्रतिपाती और निरावरण–आवरणवर्जित उत्तम केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त करेंगे ८ [जं णं हरिवेरुलियवन्नाभेणं नियगेणं अंतेणं माणुसुत्तरे पव्वए सव्वओ समंता अवेढिय परिवेढिए दिट्ठे] जो हरिमणि और वैडूर्यमणि की आभावाली अपनी आंत से मानुषोत्तरपर्वत को आवेष्टित परिवेष्टित देखा [तेणं भगवओ कित्तिवन्नसद्दसिलोया सदेवमणुयासुरे लोए गिज्जिस्संति] इससे भगवान् की कीर्त्ति तथा वर्ण शब्द और श्लोक देव मनुष्य असुर सहित लोक में गाये जायेंगे ९ [जं णं मंदरे पव्वए मंदरचूलियाए उवरिं

सीहासणवरगओ अप्पा दिट्ठो] जो मेरु पर्वत पर मेरु की चोटी के उपर श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे अपने आपको देखा [तेणं भगवं सदेवमणुयासुराए परिसाए मज्झगए केवलिपन्नत्तं धम्मं आघविस्सइ पन्नविस्सइ परूविस्सइ दंसिस्सइ निदंसिस्सइ उवदंसिस्सइ] इसके फलस्वरूप में भगवान् देव मनुष्य और असुरों की परीषदा–सभा के मध्य विराजमान होकर केवलिप्ररूपित धर्म का आख्यान–कथन–करेंगे प्रज्ञापना करेंगे प्ररूपणा करेंगे दर्शित करेंगे विस्तार से दर्शित करेंगे और उपदर्शित करेंगे १० ॥६०॥

भावार्थ—भगवान् द्वारा देखे गये इन पूर्वोक्त दश महास्वप्नों का क्या अतिमहान् फल होगा ? इस प्रकार की जिज्ञासा (जानने की इच्छा) होने पर उस के फल को कहते हैं। यथा १ श्रमण भगवान् महावीर ने स्वप्न में जो भयंकर और प्रचण्ड रूपवाले ताड जैसे पिशाच को पराजित किया देखा, उससे भगवान् मोहनीय कर्म को मूल से उखाडेंगे। यह पहले स्वप्न का फल है। २ भगवान् ने जो श्वेत पंखोंवाला पुरुष कोकिल

देखा, उससे भगवान् शुक्लध्यान में लीन होकर विचरेंगे। यह दूसरे महास्वप्न का फल है। ३ भगवान् ने जो चित्रविचित्र पंखोंवाला पुरुष कोकिल स्वप्न में देखा, उससे भगवान् स्वसिद्धान्त से युक्त बारह अंगों वाले गणीपिटक (आचार्यों के लिए रत्नों की पेटी के समान आचारांग आदि) का सामान्य विशेष रूप से कथन करेंगे, पर्यायवाची शब्दों से अथवा नामादि भेदों से प्रज्ञापन करेंगे, स्वप्न से प्ररूपण करेंगे, उपमान उपमेय भाव आदि दिखाकर कथन करेंगे, पर की अनुकम्पा से या भव्यजीवों के कल्याण की अपेक्षा से निश्चय पूर्वक पुनः पुनः दिखलाएँगे, तथा उपनय और निगमन के साथ अथवा सभी नयों के दृष्टिकोण से, शिष्यों की बुद्धि में निश्शंक रूप से जमाएँगे यह तीसरे स्वप्न का फल है। ४ भगवान् ने समस्त रत्नों वाले मालायुगल को देखा, उससे भगवान् गृहस्थधर्म और मुनिधर्म दो प्रकार के धर्म का सामान्य और विशेषरूप से कथन करेंगे, प्रज्ञापन करेंगे, प्ररूपण करेंगे, दर्शित करेंगे, निदर्शित करेंगे और उपदर्शित करेंगे

यह चौथे महास्वप्न का फल है। ५ भगवान् ने जो श्वेत गोवर्ग (गायों का झुंड) देखा, उससे साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकारूप चार प्रकार के संघ की स्थापना करेंगे यह पांचवे महास्वप्न का फल है। ६ पद्मों से युक्त जो सरोवर देखा, उससे भगवान् भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक और वैमानिक, इन चार प्रकार के देवों को सामान्य विशेषरूप से उपदेश करेंगे, प्रज्ञापन करेंगे, प्ररूपण करेंगे, दर्शित, निदर्शित तथा उपदर्शित करेंगे, यह छठे महास्वप्न का फल है। ७ भगवान् ने महासमुद्र को भुजाओं से तिरा देखा, उससे आदि तथा अन्त से रहित, चार गतिवाले संसाररूप समुद्र को पार करेंगे यह सातवें महास्वप्न का फल है। ८ भगवान् ने तेज से देदीप्यमान सूर्य देखा, उससे भगवान् को प्रधान, सम्पूर्ण एवं समस्त पदार्थों को जानने के कारण अविकल (कृत्स्न) प्रतिपूर्ण (सकल अंशों से युक्त) सब प्रकार की रूकावटों से रहित तथा आवरण रहित केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति होगी यह आठवें महास्वप्न का

फल है। ९ भगवान् ने जो हरिमणी और वैडूर्यमणि की कान्ति के समान अपनी आंत से मानुषोत्तर पर्वत को सब तरफ से आवेष्ठित और परिवेष्ठित देखा, उससे समस्त लोक में–देवों मनुष्यों एवं असुरों सहित सम्पूर्ण लोक में भगवान् की कीर्ति का गान होगा। वर्ण, शब्द और श्लोक का भी गान होगा। 'अहा, यह पुण्यशाली हैं' इत्यादि सभी दिशाओं में व्याप्त होनेवाले साधुवाद–प्रशंसा वचनों को कीर्ति कहते हैं। एक दिशा में व्याप्त होनेवाला साधुवाद 'वर्ण' कहा जाता है। आधी दिशा में फैलनेवाला साधुवाद शब्द कहा जाता है। और जिस स्थान पर व्यक्ति हो, वहीं उसके गुणों का बखान होना श्लोक कहलाता है। यह नौवें महास्वप्न का फल है। १० मेरु पर्वत पर मेरु पर्वत की चुलिका के ऊपर उत्तम सिंहासन पर अपने आप को बैठा देखा, उससे भगवान् वीर प्रभु देवों मनुष्यों एवं असुरों सहित सभा के मध्य में विराजित होकर सर्वज्ञ प्ररूपित धर्म का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण करेंगे, धर्म को दर्शित, निदर्शित और

उपदर्शित करेंगे। इन पदों की व्याख्या इसी सूत्र में पहले की जा चुकी है। अतः सिंहावलोकन न्याय से वहीं व्याख्या देखलेनी चाहिये। यह दसवें महास्वप्न का फल है ॥६०॥

मूलम्–तए णं तस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स तवसंजममाराहेमाणस्स बारसेहिं वासेहिं तेरसेहिं पक्खेहिं वीइक्कंतेहिं तेरसमस्स वासस्स परियाए वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे, तस्स णं वइसाहसुद्धस्स दसमीपक्खेणं सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पाईणगामिणीए छायाए वियत्ताए पोरिसीए तत्थ गोदोहियाए उक्कुडुयाए निसिज्जाए आयावणं आयावेमाणस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं उड्ढजाणु अहोसिरस्स झाणकोट्ठोवगयस्स सुक्कज्झाणंतरियाए वट्टमाणस्स निव्वाणे कसिणे पडिपुण्णे अव्वाहए निरावरणे

अणंते अणुत्तरे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे। ॥६१॥

शब्दार्थ—[तए णं] उसके बाद [तस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स] श्रमण भगवान् महावीर ने तप संयम की आराधना करते हुए [बारसेहिं वासेहिं तेरसेहिं पक्खेहिं वीइक्कंतेहिं तेरसमस्स वासस्स परियाए वट्टमाणस्स] बारह वर्ष और तेरह पक्ष व्यतीत हो चुके थे। तेरहवां वर्ष चल रहा था [जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे] ग्रीष्म ऋतु का दूसरा महिना था, चौथा पक्ष वैशाख शुद्ध पक्ष था [तस्स णं वइसाहसुद्धस्स दसमी पक्खेणं सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं] उस वैशाख शुक्ल पक्ष की दसमी तिथि थी सुव्रत दिवस, विजय मुहूर्त [हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पाईणगामिणीए छायाए वियत्ताए पोरिसीए] और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र का योग था। छाया पूर्व दिशा की ओर ढल रही थी। व्यक्त नामक पौरुषी थी अर्थात् दिन का तीसरा प्रहर था [तत्थ गोदोहियाए उक्कुडुयाए निसिज्जाए

आयावणं आयावेमाणस्स] ऐसे समय में भगवान् गोदोह नामक उकडू आसन से स्थित होकर आतापना ले रहे थे [छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं उड्ढजाणु अहोसिरस्स झाणकोट्ठोवगयस्स] चौविहार षष्ठ भक्त की तपस्या थी। प्रभुश्री ने दोनों घुटनो के ऊपर हाथ रखे थे और मस्तक नीचे की ओर झुका रखा था ध्यानरूपी कोष्ट में प्राप्त थे [सुक्कज्झाणन्तरियाए वट्टमाणस्स निव्वाणे कसिणे पडिपुण्णे अव्वाहए निरावरणे अणंते अणुत्तरे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे] शुक्लध्यान की आन्तरिका में वर्तमान थे। उस समय भगवान् को मुक्ति के हेतु भूत, अविकल प्रतिपूर्ण अव्याबाध, अनावरण, अनन्त तथा अनुत्तर केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हुआ, तीनों लोक में प्रकाश हुवा ॥६१॥

भावार्थ—दस महास्वप्न के पश्चात्, तप, संयम, की आराधना करते हुए श्रमण भगवान् वहावीर को दीक्षा अंगीकार किये, बारह वर्ष और तेरह पक्ष अर्थात् साढे बारह वर्ष और पन्द्रह दिन बीत जाने पर संयम-पर्याय का तेरहवां वर्ष चलता था, उस

समय ग्रीष्म ऋतु सम्बंधी दूसरा मास और चौथा पक्ष–वैशाख शुद्ध पक्ष था। उस वैशाख शुद्ध पक्ष की दशमी तिथि में, सुव्रत नामक दिवस में, विजय मुहूर्त में, चन्द्रमा के साथ उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र का योग होने पर, छाया जब पूर्व दिशा की ओर जाने लगी थी, व्यक्ता नाम की पौरूषी में अर्थात् दिन के तीसरे प्रहर में, सालवृक्ष के मूल के समीपवर्ती प्रदेश में, चौविहार षष्ठभक्त के तप से, गोदोह नामक उत्कुटुक आसन से आतापना लेते हुए, दोनों घुटने ऊपर और सिर नीचा किये हुए भगवान् धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान रूपी कोष्ठ में प्रविष्ट हुए थे। ध्यान के द्वारा उन्होंने इन्द्रियों के अन्तःकरण के व्यापार को रोक दिया था। शुक्ल ध्यान चार प्रकार का है–(१) पृथक्त्ववितर्क सुविचार (२) एकत्व वितर्क अविचार (३) सूक्ष्मक्रिय अप्रतिपाति (४) समुच्छिन्नक्रिय अनिवर्ति भगवान् शुक्लध्यान के पृथक्त्ववितर्क सुविचार नामक प्रथमपाये को ध्याकर एकत्व वितर्क अविचार नामक दूसरे पाये में लीन थे। उसी समय

भगवान् को निर्वाण–मोक्ष का कारण, कृत्स्न–सकल पदार्थों को जानने के कारण सम्पूर्ण या अखण्ड, प्रतिपूर्ण–समस्त अंशो से युक्त, अव्याहत–व्याघातों से रहित, आवरणहीन, अनन्त–अनन्त वस्तुओं को जानने वाला तथा अनुत्तर सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान-और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ। तीनों लोक में प्रकाश हुआ ॥६१॥

भगवतः समवसरणम्

## समोसरण अध्ययन

मूलम्–जंसि च णं समयंसि समणस्स भगवओ महावीरस्स अणुत्तरे केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने तंसि च णं समयंसि तेल्लुक्कं पयासियं बारसगुणा-चोत्तीसं अइसेसा पाउब्भवित्था बारसगुणा तं जहा–अणंतं केवलनाणं १, अणंतं केवलदंसणं २, अणंतं सोक्खं ३, खाइए समत्ते ४, अहक्खायचारित्ते५, अवेयत्तं ६, अइंदियत्तं ७, दाणाइओ पंचलद्धीओ १२. तं जहा–दाणलद्धी १

लाभलद्धी २, भोगलद्धी ३, उवभोगलद्धी ४, वीरियलद्धी ५, एए बारसगुणा पाउब्भूया। चोत्तीसं अइसेसा तं जहा–अवट्ठीए केसमंसुरोमनहे १, निरामया निरुवलेवा गायलट्ठी २, गोक्खीरं पंडुरे मंससोणिए ३, पउमुप्पलगंधिए उस्सास निस्सासे ४, पच्छन्ने आहारनीहारे आदिस्से मंसचक्खुणा ५, आगासगयं चक्कं ६, आगासगयं छत्तं ७, आगासगयाओ सेयवरचामराओ ८, आगास-सगयं फालिहामयं सपायपीढं सीहासणं ९, आगासगओ कुडभी सहस्सा परिमंडियाभिरामो इंदज्झओ पुरओ गच्छइ १०, जत्थ जत्थ वि य णं अरहंता भगवतो चिट्ठंति वा निसीयंति वा तत्थ-तत्थ वि य णं तक्खणादेव संछन्नपत्त पुप्फपल्लवसमाउलो सच्छत्तो सज्झओ सघंटो सपडागोअसोगवरपायवो अभि-संजायइ ११, ईसिं पिट्ठओ मउडठाणंमि तेयमंडलं अभिसंजायइ अंधकारे

वि य णं दस दिसाओ पभासेइ १२, बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे १३, अहोसिरा-
कंटया जायंति १४, उउ विवराया सुहफासा भवंति १५, सीयलेणं सुहफासेणं
सुरभिणा मारूएणं जोयणं परिमंडलं सव्वओ समंता संपमज्जिज्जइ १६, जुत्त
फुसिएणं मेहे ण य निहयरयरेणुय किज्जइ १७, जलय थलय भासुर पभूए णं
बिंटट्ठाइणा दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं जाणुस्सेहप्पमाणमित्ते पुप्फोवयारे किज्जइ १८,
अमणुण्णा णं सद्दफरिसरसरूवगंधाणं अवकरिसो भवइ १९, मणुण्णाणं सद्द-
फरिसरसरूवगंधाणं पाउब्भावो भवइ २०, पच्चाहरओ वि य णं हिययगम-
णीओ जोयणहारीसरो २१, भगवं च णं अद्धमागहीए धम्ममाइक्खइ २२ सा
वि य णं अद्धमागही भासाभासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं
दुप्पयचउप्पयमियपसुपक्खिसरीसिवाणं अप्पणो हिय सिव सुहयभासत्ताए

परिणमइ२३, पुव्वबद्धवेरा वि य णं देवासुरनागसुवण्णजक्खरक्खसकिंनर-किंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगा अरहओ पायमूले पसंतचित्तमाणस्सा धम्मं निसामंति२४, अण्णउत्थिय पावयणिया वि य णं आगया वंदंति २५, आगया समाणा अरहओ पायमूले निप्पडिवयणा हवंति२६, जओ जओ वि य णं अर-हंतो भगवंतो विहरंति, तओ-तओ वि य णं जोयणं पणवीसाए णं ईती न भवइ२७, मारी न भवइ२८, सचक्कं न भवइ२९, परचक्कं न भवइ३० अइवुट्ठी न भवइ३१, अणावुट्ठी न भवइ३२, दुब्भिक्खं न भवइ३३, पुव्वुप्पण्णा वि य णं उप्पाया वाहि य खिप्पामेव उवसमंति ॥१॥

शब्दार्थ—[जंसि च णं समयंसि] जिस समय में [समणस्स भगवओ महावीरस्स] श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को [अणुत्तरे] प्रधान सर्वश्रेष्ठ ऐसा [केवलनाण-

दंसणे समुप्पन्ने] केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्रगट हुए [तंसि च णं समयंसि] उस समय में [समणस्स भगवओ महावीरस्स] श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के [तेल्लुकं पयासियं] तीनों लोक में प्रकाश हुआ [बारसगुणा चोत्तीसं अतिसेसा समुप्पज्जित्था] बारह गुण और चोत्तीस अतिशय प्रगट हुए [तं जहा] वे बारह गुण इस प्रकार हैं— [अणंतं केवलनाणं] (१) अनंत केवलज्ञान१. [अणंतं केवलदंसणं](२) अनंत केवलदर्शन [अणंतं सोक्खं] (३) अनंत सौख्य (३) [खाइयसंमत्ते] क्षायिक सम्यक्त्व (४) [अहक्खायचारित्ते] यथाख्यातचारित्र (५) [अवेइत्तं] अवेदित्व (६) [अइंदियत्तं] अतीन्द्रियत्व (७) दाणाईओ पंच लद्धीओ (१२) दानादि पांचलब्धियां (१२) [तं जहा]—७ वे दानादि पांच लब्धियां इस प्रकार हैं [दाणलद्धी] दान लब्धि १ [लाभलद्धी] २ लाभ लब्धि २ [भोगलद्धी] भोगलब्धि ३ [उवभोगलद्धी] उपभोग लब्धि ४ [वीरियलद्धी] वीर्यलब्धि ५ [एए बारस गुणा पाउब्भूया] इस प्रकार के ये बारह गुण प्रगट हुए।

[चोत्तीसं अइसेसा] चौतीस अतिशय प्रगट हुए। [तं जहा] जो इस प्रकार से हैं–[आवट्ठिए केसमंसु रोमनहे] केश दाढी, रोम और नखों का नहीं बढना, १ [निरामया निरूवलेवा गायलट्ठी] रोग रहित एवं मललेपरहित शरीर का होना २ [गोक्खीर पंडुरमंससोणिए] गोक्षीर के समान श्वेत मांस और शोणित का होना ३ [पउमप्पलगंधिए उस्सासनिस्सासे] पद्म और उत्पल की गंध के समान सुगन्धवाला श्वासोच्छ्वास का होना ४ [पच्छन्ने आहार नीहारे आदिस्से मंसचक्खुणा] चर्म चक्षुओं से आहार और नीहार–मल–मूत्र –का परित्याग दिखलाइ नहीं देना ५ [आगासगयं चक्कं] आकाश गत धर्म चक्र का होना ६ [आगासगयं छत्तं] आकाश गत छत्र का होना ७ [आगासगयाओ सेयवर-चामराओ] आकाश गत सफेद सुन्दर दो चामरों का होना ८ [आगासगयं फलिहामयं सपादपीढं सीहासणं] आकाश गत स्फटिक रत्नका बना हुआ पाद पीठ सहित सिंहासन का होना ९ [आगासगओ कुडभीसहस्सपारेमंडियाभिरामो इंदज्झओ

पुरओ गच्छइ] आकाश गत हजारों छोटी छोटी पताकाओं से युक्त इन्द्र ध्वज का प्रभु के आगे–आगे चलना १० [जत्थ–जत्थ वि य णं अरहंता भगवंता चिट्ठंति वा निसीयंति वा तत्थ तत्थ वि य णं तक्खणादेव संछन्नपत्तपुप्फपल्लवसमाउलो सच्छत्तो सज्झओ सघंटो सपडागो असोगवरपायवो अभिसंजायइ] जहां जहां अर्हंत भगवंत ठहरे अथवा बैठे, वहां–वहां–नियम से उसी क्षण में सघन पत्र, पुष्प और पल्लव से युक्त छत्र, ध्वजा, घटा और पताका सहित अशोक वृक्षका होना ११ [इसिंपि ट्ठओ मउडठाणंमि तेयमंडलं अभिसंजायइ अंधयारे वि य णं दसदिसाओ पभासेइ] मस्तक के पीछे दस दिशाओं को प्रकाशित करने वाले तेजोमंडल–भामंडल का होना १२ [बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे] बहु सम–अत्यन्त समतल भूमि भाग का होना १३ [अहोसिरा कंटया जायंति] भगवान् के मार्ग में कंटकों का अधो मुख होना १४ [उऊ विवरीया सुहफासा भवंति] विपरीति ऋतुओं का भी सुख स्पर्श से युक्त

होना १५ [सीयलेणं सुहफासेणं सुरभिणा मारूएणं जोयणपरिमंडलं सव्वओ समंता संपमज्जिज्जइ] शीतल सुख स्पर्श और सुगन्धित वायु का चलना, और उससे एक योजन तक के क्षेत्र को सब ओर से अच्छी तरह कचवरादि से रहित होना १६ [जुत्त फुसिएणं मेहेण य निहयरयरेणुयं किज्जइ] छोटी-छोटी बिन्दुओं वाले अचित्त पानी की वृष्टि से एक योजन पर्यन्त जमीन की रज और धूली का बिलकुल जमजाना १७ [जल य थल य भासुर पभूए णं विंटट्ठाइणा दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं जाणुस्सेहपमाण मित्ते पुप्फोवयारे किज्जइ] जानुत्सेध प्रमाण अचित्तपांच वर्ण के सुशोभित नीचे वृन्त-वाले पुष्पोपचार-पुष्पों का ढेर होना १८ [अमणुण्णाणं सद्दफरिसरसरूवगंधाणं अवकरिसो भवइ] अमनोज्ञ प्रतिकूल शब्द, स्पर्श रस और गंध का दूर होजाना-अर्थात् नही-होना १९ [मणुण्णाइं सद्दफरिसरसरूवगंधाणं पाउब्भवो भवइ] मनोज्ञ, शब्द, स्पर्श रस और गंध का प्रादुर्भाव होना २० [पच्चाहरओ वि य णं हिय

य गमणीओ जोयणहारी सरो] उपदेश करते समय भगवान् की एक योजन गामी हृदय प्रिय वाणी का होना २१ [भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ] सुकोमल होने से आर्द्धमागधी भाषा में भगवान् का धर्मोपदेश होना २२ [सा वि य णं अद्धमागही भासा भासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं दुप्पयचउप्पय मियपसुपक्खिसरीसिवाणं अप्पणो हियसिव सुहयभासत्ताए परिणमइ] प्रभु के द्वारा उच्चरित की गई उस अर्द्धमागधी भाषा का आर्य, अनार्य, द्विपद, चतुष्पद आदि सबके लिये अपनी २ भाषा के रूप में हित, शिव, और सुखद स्वरूप से परिणमन होना २३ [पुव्वबद्ध वेरा वि य णं देवासुरनागसुवण्णजक्खरक्खसकिंनरकिंपुरिस गरुलगंधव्वमहोरगा अरहओ पायमूले पसंतचित्तमाणसा धम्मं निसामंति' देव असुर आदि प्राणियों का गंधर्व और महोरगों का एक स्थान पर बैठ कर वैरभाव का परित्याग कर प्रसन्न चित्त से प्रभुकी वाणी का सुनना २४ [अन्नउत्थिय पावणिया वि

य णं आगया वंदंति] अन्य तीर्थिक अन्य प्रावचनिकों–वादियों का भगवान् के पास आते ही प्रभु को वंदन करना २५ [आगय समाणा अरहओ पायमूले निप्पडिवयणा हवंति] उन अन्य तीर्थिक प्रावचनिकों का भगवान् के पास आते ही निरुत्तर हो जाना २६ [जओ जओ वि य णं अरहंतो भगवंतो विहरंति, तओ–तओ वि य णं जोयण पणवीसाए णं इति न भवइ] जहां जहां पर अर्हत भगवंत विहार करते हैं वहां –वहां चारों दिशाओं में पच्चीस–पच्चीस योजन परिमित क्षेत्र में ईति–उपद्रव का नहीं होना २७ [मारी न भवइ] विशूचिका आदि मारी का नहीं होना २८ [स चक्कं न भवइ] स्व चक्र कृत भय का नहीं होना २९ [परचक्कं न भवइ] पर चक्र कृत भय का नहीं होना ३० [अइवुट्ठी न भवइ] अतिवृष्टि का नहीं होना ३१ [अणावुट्ठी न भवइ] अनावृष्टि का नहीं होना ३२ [दुब्भिक्खं न भवइ] दुर्भिक्ष का नहीं होना ३३ [पुव्वुप्पण्णा विय णं उप्पाया वाहीय खिप्पामेव उवसमंति] पूर्वोत्पन्न उत्पातों की–अनिष्ट

सूचक रुधिर वृष्टयादि का और व्याधि-रोगों का शीघ्र ही उपशमन होजाना ॥१॥

भावार्थ—जिस समय श्रमण भगवान् महावीर को अनुत्तर केवल वर ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुआ उस समय तीनों लोको में प्रकश हुआ उसी समय भगवान् के बारह गुण और चोतीस अतिशय प्रगट हुए। वे बारह गुण इस प्रकार है-अनन्त केवलज्ञान १, अनन्त केवल दर्शन २, अनन्त सौख्य ३, क्षायिकसम्यक्त्व ४, यथाख्यात चारित्र ५, अवेदित्व ६, अतीन्द्रियत्व ७, और दानादि पांच लब्धियां १२। वे दानादि पांच लब्धियां इस प्रकार हैं-दानलब्धि१, लाभलब्धि २, भोगलब्धि ३, उपभोगलब्धि४, वीर्य लब्धि ५, ये पूर्वोक्त बारह गुण प्रगट हुए। चोतीस अतिशय इस प्रकार १. मस्तक के केश, श्मश्रु मूछ, शरीर के रोम व नख अवस्थित रहते हैं [मर्यादा से अधिक नहीं वढते हैं] २. उनका शरीर निरोगी रहता है और मल वगैरह अशुचि का लेप नहीं लगता है ३. मांस रुधिर गाय के दूध जैसा उज्ज्वल रहता है ४. पद्म कमल की गंध

जैसा श्वासोच्छ्वास रहता है ५. उनका आहार नीहार चर्मचक्षुवाले नहीं देख सकते हैं [इन पांच में से पहिला छोडकर अन्य चार अतिशय जन्म से ही होते हैं ६. जिनका धर्मचक्र आकाश में चलता रहे ७. आकाश में छत्र रहे ८. श्वेत चामर आकाश में रहे । ९. आकाश समान निर्मल स्फटिकरत्न मय पादपीठिका सहित सिंहासन रहता है १०. अन्य हजारों लघु पताकाओं से परिमंडित अत्यंत ऊंची आकाश–ध्वजा तीर्थंकर की आगे चलती है ११. जहां जहां भगवंत खडे रहे अथवा बैठे वहां २ पत्र से आकीर्ण व पुष्प फल से व्याप्त, ध्वजा पताका व घंटा सहित अशोक वृक्ष छाया कर रहते हैं १२. पृष्ट भाग में थोडासा दूर मुकुट के स्थान तेजमंडल [प्रभा-मंडल] होता है जो दशों दिशाओं में अंधकार का नाश करता है १३ जहां २ तीर्थंकर भगवंत विहार करते हैं वहां २ बहुत रमणिय भूमिभाग होता, है १४. जिस जिस मार्ग में तीर्थंकर विहार करते हैं उस मार्ग में पडे हुवे कंटक ऊर्ध्व मस्तक हो वह अधोमुख हो जाते

हैं १५ ऋतुविपरीत सुखस्पर्श वाली होवे अर्थात् ऊष्ण काल में शीतलता व शीतकाल में ऊष्णता होवे १६. सुख स्पर्शवाला सुगंधी वायु से एक योजन मंडलाकार सब दिशाकी भूमि स्वच्छ होवे १७ जिस मार्ग में तीर्थंकर विहार करते हैं उस मार्ग में सूक्ष्म २ बिन्दुयुक्त वर्षा से आकाश की व जमीन की रजरेणु दूर करे १८ बहुत सुगंधित व तेजवंत जल में उत्पन्न होने वाले कमलादि व स्थल में उत्पन्न होने वाले ऊर्ध्व मुख होकर जमीन पर रचना होना अठारवां अतिशय हुआ। १९ अमनोज शब्द, स्पर्श, रस रूप गंध का अभाव होवे। २० मनोज्ञ शब्द वर्ण गंध रस व रूप प्रगट होवे २१ उपदेश देते भगवंत की वाणी हृदयंगम, मनोज्ञ व योजन तक सुन सके ऐसी होती है २२ भगवंत छः भाषा में धर्मोपदेश करते हैं २३ वहीं अर्धमागधि भाषा सर्व आर्य, अनार्य देशवाले मनुष्य, और चतुष्पद सो–गवादि मृगादि खेचर भुजपरिसर्प वगैरह सब मोक्ष रूप सुख व आनंद प्राप्त करे व इस तरह परिणयति वाली है २४ भवान्तर सो अनादि

काल का अथवा जातिक हेतुक बद्ध निकाचित वेरबंध हुवा होवे जैसे वैमानिक देव असुरकुमार, नागकुमार, भवनपति, ज्योतिषी यक्ष, राक्षस वगैरह वाणव्यंतर, गरुड गंधर्व महोरगव्यंतर विशेष वे सब वैर भाव का त्याग करके अरिहंत के चरण कमल में प्रसन्न चित्त से धर्म श्रवण करे २५ अन्य तीर्थिक कपिलादिक भी आये हुवे भगवंत को नमस्कार करे २६ वे आये हुवे अन्यशास्त्र के वादी प्रतिवादी भगवंत के चरण-कमल में उत्तर देने को समर्थ होवे नहीं २७ जिस तरफ भगवंत विहार करे उस तरफ पच्चीस २ योजन तक धान्य को उपद्रव करने वाले मूषकादि होवे नहीं २८ मार मरकी वगैरह किसी प्रकार की रोगों की उत्पत्ति होवे नहीं २९ स्वदेश के कटक का उपसर्ग होवे नहीं ३० परचक्री पर राजा की सेना का उपद्रव होवे नही ३१ अधिक वृष्टि होवे नहीं ३२ अनावृष्टि होवे नहीं ३३ अभिक्ष दुष्काल पडे नहीं ३४ जहां मार मरकी, स्वचक्री, परचक्री अतिवृष्टि, अनावृष्टि दुष्काल पहिले हुवा होवे और वहां भगवंत का

पधारना होवे तो सब प्रकार की अशान्ति शान्त हो जावे ॥२॥

## पणतीस—सच्चवयणाइसेस

मूलम्—सक्कारत्ता१, उदात्तया२, उवसारोपेयत्त३, गंभीरज्झुणित्त४, अणुणाइया५, दक्खिणत्त६, उवणीयरागत्त७, महत्थत्त८, अव्वाहयपुव्वापज्जत्त९, सिट्ठत्त१०, असंदिधत्त११, अवहय अन्नोन्नत्तरत्त१२, हिययगाहित्त१३, देसकालवइयत्त१४, तत्ताणुरूवत्त१५, अवकिन्नप्पसीयत्त१६, अन्नोन्नपगाहियत्त१७, अहिज्जायत्त१८, अइसिनीधमहुरत्त१९, अवरमम्मवेहित्त२०, अत्थधम्मभासाअनवेयत्त२१, उयारत्त२२, परनिंदासातमोकसिणविप्पजुत्तत्त२३, उवगयसिलाधत्त२४, अवणीयत्त२५, उप्पाइयाच्छन्नकोउहलत्त२६, अद्दुयत्त२७, अनइविलंवियत्त२८, विब्भमविक्खेवरोसावेसाइ राहिच्च२९, विचित्तत्त३०,

अहियविसेसत्त३१, सायारत्त३२, सत्तपरिग्गहियत्त३३, अपरिखेइयत्त३४, अव्वोच्छेइयत्त३५॥२॥

शब्दार्थ—१—सक्कारत्ता—वाणी का संस्कारयुक्त होना—व्याकरणादि की दृष्टि से निर्दोष होना। २—उदात्तया—स्वर का उदात्त—ऊंचा होना। ३—उवसारोपेयत्त—भाषा में ग्रामीणता न होना। ४—गंभीरज्झुणित्त—मेघ के शब्द के समान गंभीर ध्वनि होना ५—अणुणाइया—प्रतिध्वनियुक्त ध्वनि होना। ६—दक्खिणत्त—भाषा में सरलता होना। ७—उवणीयरागत्त—श्रोताओं के मन में बहुमान उत्पन्न करनेवाली स्वर की विशेषता होना। ८—महत्थत्त—वाच्य अर्थ में महत्ता होना थोडे से शब्दों में बहुत अर्थ भरा हुआ होना। ९—अव्वाहयपुव्वापज्जत्त—वचनों में पूर्वापर विरोध न आना। १०—सिट्ठत्त—अपने इष्ट सिद्धान्त का निरूपण करना, अथवा वक्ता की शिष्टता सूचित करने वाला अर्थ कहना। ११—असंदिधत्त—ऐसी स्पष्टता के साथ तत्त्व का निरूपण करना कि

श्रोता के मन में तनिक भी सन्देह न रह जाय। १२-अवहय अन्नोन्नत्तरत्त-वचन का निर्दोष होना जिससे श्रोताओं को शंका-समाधान न करना पडे। १३-हिययगाहित्त -कठिन विषय को भी सरल ढंग से कहना, श्रोताओं के चित्त को आकर्षित कर लेना। १४-देसकालवइयत्त-देशकाल के अनुसार कथन करना। १५-तत्ताणुरूवत्त-वस्तु के वास्तविक स्वरूप के अनुरूप कथन करना। १६-अवकिन्नप्पसीयत्त-प्रकृत वस्तु का यथोचित विस्तार के साथ व्याख्यान करना, अप्रकृति का कथन नहीं करना, प्रकृत का भी अत्यधिक अनुचित विस्तार नहीं करना। १७-अन्नोन्नपगहियत्त-पदों और वाक्यों का परस्पर संबद्ध होना। १८-अहिज्जायत्त-भूमिका के अनुसार विषय का निरूपण करना। १९-अइ सिनीधमहुरत्त-स्निग्धता और मधुरता से युक्त होना। २०-अवर-मम्मवेहित्त-दूसरे के मर्म-रहस्य का प्रकाश न करना २१ अत्थ धम्मभासा अनवेयत्त -मोक्ष रूप अर्थ तथा श्रुतचारित्र धर्म से युक्त होना। २२-उयारत्त-प्रतिपाद्य विषय

का उदार होना, शब्द एवं अर्थ की विशिष्ट रचना होना । २३–पर निंदासातमोक-सिणविप्पजुत्तत्त–दूसरे की निन्दा और अपनी प्रशंसा से रहित वचन होना । २४–उवगयसिलाघत्त–वचनों में पूर्वोक्त गुण होने से उसका प्रसंसनीय होना । २५–अवणीयत्त–काल, कारक, वचन, लिंग आदि का विपर्यासरूप भाषासंबंधी दोषों का न होना । २६–उप्पाइयाच्छन्नकोउहलत्त–श्रोताओं के मन में वक्ता के प्रति कुतूहल [उत्कंठा] बना रहना । २७–अद्दुयत्त–बहुत जल्दी न बोलना । २८–अनइविलंबियत्त–बीच बीच में रुककर–अटककर न बोलना, धाराप्रवाह वाणी का होना । २९–विब्भमविक्खेवरोसावेसाइ राहिच्च–वक्ता के मन में भ्रान्ति न होना, उसका चित्त अन्यत्र न होना, रोष तथा आवेश न होना अर्थात् अभ्रान्त भाव से उपयोग लगा कर शांति के साथ भाषा बोलना । ३०–विचित्तत्त–वाणी में विचित्रता होना । ३१–आहियविसेसत्त–अन्य पुरुषों की अपेक्षा वचनों में विशेषता होने के कारण श्रोताओं को विशिष्ट बुद्धि प्राप्त

होना। ३२—सायारत्त—वर्णों, पदों और वाक्यों का पृथक्-पृथक् होना। ३३—सत्तपरिगहियत्त—प्रभावशाली एवं ओजस्वी वचन होना। ३४—अपरिखेइयत्त—ऊपदेश देने में थकावट न होना। ३५—अव्वोछेइयत्त—जब तक प्रतिपाद्य विषय की भलीभांति सिद्धि न हो तब तक लगातार उसकी प्ररूपणा करते जाना, अधूरा न छोडना ॥२॥

भावार्थ—भगवान् की सत्य वाणी के ३५ गुण १ संस्कारवत्व—वाणी का संस्कार युक्त होना—व्याकरणादि की दृष्टि से निर्दोष होना। २ स्वर का उदात्त— ऊंचा होता। ३ भाषा में ग्रामीणता न होना। ४ मेघ के शब्द के समानगंभीर ध्वनि होना। (५) प्रतिध्वनि युक्त ध्वनि होना ६ भाषा मे सरलता होना। ७ श्रोताओं के मन में बहुमान उत्पन्न करने वाली स्वर की विशेषता होना। ८ वाच्य अर्थ में महत्ता होना, थोडे से शब्दों मे बहुत अर्थ भरा हुआ होना। ९ वचनों में पूर्वापर विरोध न आना। १० अपने इष्ट सिद्धान्त का निरूपण करना। अथवा—वक्ता की शिष्टता सूचित करने

वाला अर्थ कहना ११ ऐसी स्पष्टता के साथ तत्व का निरूपण करना कि श्रोता के मन में तनिक भी सन्देह न रह जाय १२ वचन का निर्दोष होना जिससे श्रोताओं को शंका—समाधान न करना पडे। १३ कठिन विषय को भी सरल ढंग से कहना, श्रोताओं के चित्त को आकर्षित कर लेना। १४ देश काल के अनुसार कथन करना। १५ वस्तु के वास्तविक स्वरूप के अनुरूप कथन करना। १६ प्रकृत वस्तु का यथोचित विस्तार के साथ व्याख्यान करना, अप्राकृत का कथन नहीं करना। प्रकृत का भी अत्यधिक अनुचित विस्तार नहीं करना। १७ पदों और वाक्यों का परस्पर संबद्ध होना। १८ भूमिका के अनुसार विषय का निरूपण करना १९ स्निग्धता और मधुरता से युक्त होना। २० दूसरे के मर्म रहस्य का प्रकाश न करना। २१ मोक्ष रूप अर्थ तथा श्रुत—चारित्र धर्म से युक्त होना। २२ प्रतिपाद्य विषय का उदार होना। शब्द एवं अर्थ की विशिष्ट रचना होना। २३ दूसरे की निन्दा और अपनी प्रशंसा से रहित वचन होना २४

वचनों में पूर्वोक्त गुण होने से उनका प्रशंसनीय होना। २५ काल, कारक, वचन, लिंग आदी का विषर्यासरूप भाषा संबंधी दोषों का न होना। २६ श्रोताओं के मन में वक्ता के प्रति कूतूहल [उत्कंठा] बना रहना। २७ बहुत जल्दी न बोलना। २८ बीच बीच मे रुककर--अटक कर न बोलना, धारा प्रवाह वाणी का होना। २९ वक्ता के मन में भ्रान्ति न होना, उसका चित्त अन्यत्र न होना, रोष तथा आवेश न होना, अर्थात् अभ्रान्त भाव से उपयोग लगाकर शांति के साथ भाषा बोलना। ३० वाणी में विचित्रता होना। ३१ अन्य पुरुषों की अपेक्षा वचनों में विशेषता होने के कारण श्रोताओं को विशिष्ट बुद्धि प्राप्त होना। ३२ वर्णोपदों और वाक्यो का पृथक्-पृथक् होना। ३३ प्रभावशाली एवं ओजस्वी वचन होना। ३४ उपदेश देने मे थकावट न होना। ३५ जब तक प्रतिपाद्य विषय की भली भांति सिद्धि न हो तब तक लगातार उस की प्ररूपणा करते जाना। अधूरा न छोडना ॥२॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए चोसट्ठ देविंदा पाउब्भवित्था, बत्तीसं भवणवइ जोइसिय विमाणवासि देवाणं इंदा पण्णत्ता, तं जहा—चमरिंदे १, बलिंदे २, धरणिंदे ३, भूयाणंदे ४, वेणुदेविंदे ५, वेणुदालिंदे ६, हरिंदे ७, हरिस्सहेंदे ८, अग्गीसिहेंदे ९, अग्गिमाणविंदे १०, पुन्निंदे ११, वसिट्ठिंदे १२, जलकंतिंदे १३, जलप्पभिंदे १४, अमियगयेंदे १५, अमियवाहनिंदे १६, वेलंबदे १७, पहंजणिंदे १८, घोसिंदे १९, महाघोसिंदे २०, चंदिंदे २१, सूरिंदे २२, सक्किंदे २३, ईसाणिंदे २४, सणंकुमारिंदे २५, माहिंदे २६, बंभिंदे २७, लंतयिंदे २८, सुक्किंदे २९, सहस्सारिंदे ३०, पाणयिंदे ३१, अच्चुयिंदे ३२ ॥३॥

भावार्थ—उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के पास अनेक देवेन्द्र प्रकटित हुए—उसमें भवनपति, ज्योतिषी और विमानवासी देवों के बत्तीस

इन्द्रों कहे हैं वे ये हैं—चमरेन्द्र १, बलिन्द्र २, धरणेन्द्र ३, भूतानन्द ४, वेणुदेविन्द्र ५, वेणुदालीन्द्र ६, हरिन्द्र ७, हरिसहेन्द्र ८, अग्निसिहेन्द्र ९, अग्निमानवेन्द्र १०, पुन्निन्द्र ११, वशिष्ठ इन्द्र १२ जलकांत इन्द्र १३, जलप्रभ इन्द्र १४, अमृतगति इन्द्र १५ अमृतवाहन-इन्द्र १६, वेलंबइन्द्र १७, प्रभंजन इन्द्र १८ घोषेन्द्र १९, महाघोषेन्द्र २०, चन्द्र इन्द्र २१, सूर्यइन्द्र २२, शक्रेन्द्र २३, ईशानेन्द्र २४, सनत्कुमारेन्द्र २५, महेन्द्र २६, ब्रह्मेन्द्र २७, लंतकेन्द्र २८, महाशुक्रेन्द्र २९, सहस्रारेन्द्र ३०, प्राणतेन्द्र ३१ अच्युतेन्द्र ३२ ॥३॥

मूलम्—बत्तीसं वाणमंतरदेवाणं इंदा पण्णत्ता, तं जहा—काले१ महाकाले२ सुरूवे३ पडिरूवे४ पुण्णभद्दे५ माणिभद्दे६ भीमे७ महाभीमे८ किन्नरे९ किंपुरिसे१० सप्पुरिसे११ महापुरूसे१२ अईकाये१३ महाकाये१४ गीयरई१५ गीयजसे१६ संनिहिए१७ समाणे१८ धाए१९ विधाए२० इसी२१ ईसीवाले२२ ईसरे२३

महाईसरे२४ सुवन्ने२५ विसाले२६ हासे २७ हासरई२८ सेये२९ महा-सेये३० पयए३१ पयगवई३२ से तं॥४॥

भावार्थ—वाणव्यन्तर देवों के बत्तीस इन्द्र कहे हैं उनके नाम ये हैं—काल १, महाकाल २, सुरूपेन्द्र ३, प्रतिरूपेन्द्र ४, पूर्णेन्द्र ५, मणिभद्र ६, भीम ७, महाभीम ८, किन्नर ९, किंपुरुष १० सत्पुरुष ११, महापुरुष १२, अतिकाय, १३, महाकाय १४, गीतरति १५, गीतजस १६, संनिहित १७, समान १८, धाई १९, विधाई २०, इसी २१, इसीवाले २२, इश्वर २३, महेश्वर २४, सुवन्न २५, विशाल २६, हास्य २७, हास्यरति २८, श्वेत २९, महाश्वेत ३०, पतंग ३१, पतंगपति ३२, ऐसे ये कुल चौसठ इन्द्र हो जाते हैं ॥४॥

ये चौसठ इन्द्र कैसे होते हैं? और क्या करते हैं? इस विचार में कहते हैं—

मूलम्—तं सव्वे वि इंदा दिव्वेणं तएणं दिव्वाए लेसाए दसदिसाओ

उज्जोएमाणा पभासेमाणा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं आगम्मागम्म रत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंति करित्ता वंदंति नमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता साइं साइं नामगोयाइं सावेंति णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणा नमंसमाणा अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासंति ॥५॥

भावार्थ—ये सभी इन्द्र अपने अपने दिव्य तेजसे अपनी दिव्य लेश्यासे दसों दिशाएं उद्योतित करते प्रकाशित करते श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीपवर्ति होकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की आद-क्षिण प्रदक्षिणा करके उनको वंदना की नमस्कार किया वंदना नमस्कार करके अपने अपने नाम गोत्र का उच्चार किया तदनंतर भगवान् से अधिक दूर नहीं एवं अधिक समीपभी नहीं इस प्रकार बैठकर पर्युपासना करते हुए, नमस्कार करते हुए भगवान् कीसन्मुख हाथ जोडकर पर्युपासना करनेलगे ॥५॥

मूलम्—तए णं से भगवं अरहा जिणे जाए केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी सदेवमणुयासुरस्स लोयस्स आगइं गइं ठिइं चवणं उववायं भुत्तं पीयं कडं पडिसेवियं आवीकम्मं रहो कम्मं लवियं कहियं माणसियंति सव्वे पज्जाए जाणइ पासइ। सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाणमाणे पासमाणे विहरइ। तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स केवलवरणाणदंसणुप्पत्तिसमए सव्वेहिं भवणवइवाणमंतरजोइसिय विमणवासी चोसट्ठि इंदा देवेहि य देवीहि य उवयंतेहि य उप्पयंतेहि य एगे मह दिव्वे देवुज्जोए देवसण्णिवाए देवकहक्कहे उप्पिंजलगभूए या वि होत्था ॥६॥

शब्दार्थ—[तएणं से भगवं अरहा जिणे जाए केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी सदेवमणुयासुरस्स लोयस्स] तब भगवान् अर्हन् और जिन हो गये। केवली सर्वज्ञ और

सर्वदर्शी हो गये। देवों मनुष्यों असुरों सहित लोक की [आगइं गइं ठिइं चवणं उववायं भुत्तं पीयं कडं पडिसेवियं] आगति, गति, च्यवन, तथा उपपात को तथा खाये, पीये किये, सेवन किये को [आवीकम्मं, रहो कम्मं, लवियं, कहियं माणसियंति सव्वे पज्जाए जाणइ पासइ] प्रकट अप्रकट कर्म को, पारस्परिक भाषण को कथित, मानसिक आदि भावों को इस प्रकार सभी पर्यायों को जानने और देखने लगे [सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाणमाणे पासमाणे विहरइ] समस्त लोक में सब जीवों के सभी भावों को जानते हुए तथा देखते हुए विचरने लगे [तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स केवलवरणाणदंसणुप्पत्तिसमए] तब श्रमण भगवान् महावीर के केवलज्ञान और केवलदर्शन की उत्पत्ति के समय में [सव्वेहिं भवणवइ वाणमंतरजोइसिय विमाणवासीहि चोसट्ठि इंदा देवेहि य देवीहिय] सब भवनपति, वान-व्यंतर, जोतिष्क तथा विमानवासी चौसठ इन्द्र देवों और देवियों के [उवयंतेहिय उप्प-

यंतेहि एगे महं दिव्वे देवुज्जोए देवसण्णिवाये देव कहकहे उप्पिजलगभूए यावि होत्था]
आने-जाने से एक महान् दिव्य देव प्रकाश हुआ, देवों का संगम हुआ, कल-कल
नाद हुआ और देवों की बहुत बडी भीड हुई ॥६॥

भावार्थ—तब वह भगवान् अर्हन् और जिन हो गये केवली, सर्वज्ञ और सर्व दर्शी हो गये देवो मनुष्यो और आसुरो सहित लोककी आगति गति स्थिति च्यवन तथा उपपात को और खाये, पिये, किये सेवन किये, प्रकट कर्म को पारस्परिकभाषण-को कथन को, मनोगतभावको, इस प्रकार सब पर्यायो को जानने और देखने लगे समस्त लोकमे, सब जीवों के सभी भावों को जानते हुए तथा देखते हुए विचरने लगे तब श्रमण भगवान् महावीर केवलज्ञान और केवलदर्शन की उत्पत्ति के समय में, सब:भवनपति वानव्यन्तर, ज्यौतिषिक तथा विमानवासी देवों का संगम हुआ, कल-कल नाद हुआ और देवों की बहुत बडी भीड हुई ॥६॥

मूलम्—तए णं से समणे भगवं महावीरे उप्पण्णणाणदंसणधरे अप्पाणं च लोगं च अभिसमिक्ख जोयणवित्थारणीए सयसयभासापरिणामिणीए वाणीए देवाणं धम्ममाइक्खइ। तत्थ भगवओ सा धम्मदेसणा तित्थयर कप्प-परिपालणाए जाया, न केणवि तत्थ विरई पडिवण्णा। नो णं एयं कस्सवि तित्थयरस्स भूयपुव्वं अओ एयं चउत्थं अच्छेरयं जायं। तए णं से समणे भगवं महावीरे तओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जणवयविहारं विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं पावापुरी णामं णयरी होत्था-रिद्धित्थिमिय समिद्धा। तत्थ णं पावापुरीए सीहसेणो णाम राया होत्था, महया हिमवंतमहंतमलय मंदरमहिंदसारे। तस्स णं सीहसेणस्स रण्णो सीलसेणा णामं देवी, हत्थि-वालो णामं पुत्तो जुवराया होत्था। तीए णं पावाए पुरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे

दिसीभाए सव्वोउय पुप्फफलसमिद्धे रम्मे नंदणवणप्पगासे महासेणं णामं उज्जाणे होत्था। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे महासेणे उज्जाणे समोसढे ॥७॥

शब्दार्थ—[तए णं से समणे भगवं महावीरे उप्पण्णणाणदंसणधरे अप्पाणं च लोगं च अभिसमिक्ख] उसके बाद उन उत्पन्न ज्ञान दर्शन को धारण करने वाले श्रमण भगवान् महावीरने आत्मा को और लोक को परिपूर्ण और यथार्थ रूप से जानकर [जोयणवित्थारणीए सयसयभासा परिणामिणीए वाणीए पुव्वं देवाणं पच्छा मणुस्साणं धम्ममाइक्खइ] एकयोजन तक फैलनेवाली और श्रोताओं की अपनी अपनी भाषाओं में परिणत हो जानेवाली वाणी से, देवों को धर्म का उपदेश दिया [तत्थ भगवओ सा धम्मदेसणा तित्थयरकप्पपरिपालणाए जाया] वहां भगवान् की वह देशना तीर्थंकरों के कल्प का पालन करने के लिए ही हुई [न केणवि तत्थ विरई पडिवण्णा] वहां किसी

ने व्रत अंगीकार नहीं किये [नो णं एयं कस्सवि तित्थयरस्स भूयपुव्वं अओ एयं चउत्थं अच्छेरयं जायं] ऐसा किसी भी तीर्थंकरके विषय में नहीं हुआ था अतः यह चौथा आश्चर्य हुआ।

[तए णं समणे भगवं महावीरे तओ पडिनिक्खमइ. पडिनिक्खमित्ता जणवयविहारं विहरइ] तत् पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर वहां से विहार करके जनपद में विचरने लगे। [तेणं कालेणं तेणं समएणं पावापुरीणामं णयरी होत्था–रिद्धित्थिमिय समिद्धा] उस काल और उस समय में पावापुरी नामकी नगरी थी। वह उंचे उंचे भवनों से युक्त, स्वपर चक्र के भय से युक्त और धन धान्य से समृद्धथी [तत्थ णं पावाए पुरीए सीहसेणो नाम राया होत्था] उस पावापुरी नगरी में सिंहसेन नामका राजा राज्य करता था [महया हिमवंतमहंतमलयमंदरमहिंदसारे] वह महाहिमवान्, महामलय, मेरु और महेन्द्र पर्वत के समान श्रेष्ठ था [तस्स णं सीहसेणस्स रण्णो सील-

सेणा णामं देवी] उससिंहसेन राजा की शीलसेना नामकी रानी थी। [हत्थिवालो णामं पुत्तो जुवराया होत्था] हस्तिपाल नामक पुत्र युवराज था [तीए णं पावाए पुरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सव्वोउय पुप्फफलसमिद्धे रम्मे नंदणवणप्पगासे महासेणं नामं उज्जाणे होत्था] उस पावापुरी के बाहर उत्तर–पूर्व दिशा में सब ऋतुओं के पुष्पों तथा फलों से समृद्ध रमणीय नन्दनवन के समान प्रकाशवाला महासेन नामक उद्यान था [तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे महासेणे उज्जाणे समोसढे] उसकाल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर महासेन उद्यान में पधारे ॥७॥

भावार्थ—उस समय उत्पन्न हुए ज्ञान दर्शन के धारक श्रमण भगवान् महावीर ने आतमा के अपने और पंचास्तिकायरूप लोक के स्वरूपको यथावत् जान कर के एक योजन प्रमाण प्रदेश तक व्याप्त हो जाने वाली वाणी से धर्म का उपदेश दिया।

सुरो असुरो को उस परिषद्मे भगवान् की जो धर्म देशना हुई, वह धर्म देशना केवलतीर्थकरों के कल्प मर्यादा का पालन करने के लिए ही हुई उस धर्म देशना के होने पर किसी भी जीवने विरति सावद्य व्यापार के परित्याग रूप विरति अंगीकार नहीं की तीर्थकर की धर्मदेशना हो और कोइ भी जीव विरति अंगीकार न करे, यह घटना श्रीमहावीर स्वामी के सिवाय किसी तीर्थंकर की परिषद् में कभी घटित नहीं हुई थी अर्थात् तीर्थकरों की देशना अमोघ होती हैं उसे श्रवण कर कोइ न कोइ भव्यजीव अवश्य ही संयम अंगीकार करता है। परन्तु महावीर स्वामी की यह देशना इस स्वरूपमे खाली गई। यह अभूत पूर्व घटना थी क्योंकी वहां मनुष्य नहीं थे अतएव दस अच्छेरों में यह चौथा अच्छेरा हैं दस अच्छेरे ये है १ उपसर्ग होना २ गर्भका संहरण होना ३ स्त्री का तीर्थकर होना ४ अभावितपरिषद् होना ५ कृष्ण का अपरकंका नामक धातकी खंडवर्ती राजधानी मे जाना ६ चन्द्र और सूर्य का असली रूपमे समवसरण मे आना। ७ हरिवंशकुल

की उत्पत्ति ८ चमर का उत्पात ९ एक सौ आठ जीवों का एक ही समयमे सिद्ध होना और १० असंयतो की पूजा होना इन दस अच्छेरों में अभावित परिषद् रूप चौथा अच्छेरा हुआ। धर्मदेशना के बाद वह श्रमण भगवान् महावीर सालवृक्ष के मूल के निकटवर्ती प्रदेश से निकले और निकल कर जनपद–विहार करने लगे–देश मे विचरने लगे उस काल उस समय मे पापापुरी नामक नगरी थी पाप से रक्षा करने वाली होने से पापा कहलाती है। आज कल वह 'पावा पुरी' है वह नगरी कैसीथी सो कहते है वह ऋद्धा आकाश को स्पर्श करने वाले बहुत से प्रासादों से युक्त थी और जनों की बहुलता से व्याप्त थी, तथा स्तिमिता स्व–परचक्र के भय से रहित थी और समृद्धा धन धान्य आदि से भरी पूरी थी उस पावापुरी नगरी में सिंहसेन नामक राजा था। महा हिमवान् महामलय, मेरू और महेन्द्र पर्वतों के सार के समान सारवाली था लोकमर्यादा की स्थापना करने वाला होने के कारण महाहिमवान पर्वत के

भगवतो-
धर्मदेशना
आश्चर्य-
प्रकटनं च

समान था। उसकी यशकीर्ति सर्वत्र फैलीहुई थी, अतः महामलय पर्वत के समान था। दृढप्रतिज्ञ होने तथा कर्तव्यरूपी दिशाओं का दर्शक होने के कारण मेरू और महेन्द्र के समान था। सिंहसेन राजा की शीलसेना नामकी रानी थी हस्तिपाल नामक उसका पुत्र युवराज था। उस पावापुरी की उत्तरपूर्व दिशाके अन्तराल में, ईशान कोणमे वसन्त आदि छहो ऋतुओ संबंधी फुलो और फलो से सम्पन्न रमणीक एवं नन्दन-वन के समान महासेन नामक उद्यान था। उसकाल उसमय मे, अर्थात् सिंहसेन राजाके शासन काल के अवसर पर श्रमण भगवान् महावीर क्रमशः विहार करते हुए महासेन उद्यान में पधारे।७॥

मूलम्—अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ताणं असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टगंसि पुरत्थाभिमुहे पलियंकनिसन्ने अरहा जिणे केवली संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं वणमाली जेणेव सीहसेणो राया

सिंहसेन-
राज्ञः
सपरिवार-
प्रभुसमीपा-
गमनम्

तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता एवं वयासी। जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं कंखंति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं पीहंति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं पत्थंति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं अभिलसंति, जस्स णं देवाणुप्पिया नामगोयस्सवि सवणयाए हट्ठतुट्ठ जाव हियया भवंति, से णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे पावापुरी णयरीए उवागए पावापुरीं णयरीं महासेण उज्जाणे समोसरिउकामे। तं एवं देवाणुप्पियाणं पियट्ठयाए पियं णिवेदेमि, पियं तं भवउ। तए णं सीहसेणो राया हट्ठतुट्ठे पवित्तिवाउयस्स अद्धत्तेरस–सयसहस्साइं पीइदाणं दलयइ, दलइत्ता सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जइ। तए णं से सीहसेण राया बलवाउयं आमं- ॥४५४॥

तेइ, आमंतित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेहि, हय—गय—रह—पवर—जोहकलियं च चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेहि सीलसेणा पमुहाण य देवाणं बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए पाडियक्कपाडियक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं उवट्ठवेहि, आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूढस्स समाणस्स पावापुरीए नयरीए मंज्झ मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव महासेणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्ताईए तित्थयराइसेसे पासइ, पासित्ता आभिसेक्कं हत्थिरयणं ठवेइ ठवित्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता अवहट्टु पंच रायक उदाइं, तं जहा—खग्गं छत्तं उप्फेसं वाहणाओ वालवीयणं, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं

सिंहसेनराज्ञः सपरिवारप्रभुसमीपागमनम्

भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ, तं जहा—१ सच्चित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए, २ अचित्ताणं दव्वाणं अविओसरणयाए, ३ एगसाडियं उत्तरासंगकरणेणं, ४ चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेणं, ५ मणसो एगत्तभावकरणेणं, समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तिविहाए पज्जुवासणयाए पज्जुवासइ, तं जहा—काइयाए वाइयाए माणसियाए। काइयाए—ताव संकुइयग्गहत्थणाए सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ। वाइयाए-जं जं भगवं वागरेइ, एवमेयं भंते! तहमेयं भंते! अवितहमेयं भंते! असंदिद्धमेयं भंते! इच्छियमेयं भंते! पडिच्छियमेयं भंते! इच्छियपडिच्छियमेयं भंते! से जहेव तुब्भे वदह—अपडिकूलमाणे पज्जुवासइ। माणसियाए—महया संवेगं

सिंहसेनराज्ञः सपरिवारप्रभुसमीपागमनम्

अभिलाषा धारण किये रहते हैं कि कब मैं प्रभु के चरणों में उपस्थित होकर उनकी उपासना करूंगा, हे देवानुप्रिय ! जिनका नाम तथा गोत्र-वंश सुन कर भी आपका हृदय हृष्ट तुष्ट हुआ करता है, वे श्रमण भगवान्-परमैश्वर्यसम्पन्न. गुणनिष्पन्न नाम-वाले महावीर पूर्वानुपूर्वीरूप से विहार करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विचरते हुए आज पावापुरी नगरी के समीप महासेन उद्यान में पधारे हुए हैं, इसलिये हे देवानुप्रिय ! मैं आपको यह प्रिय आत्म हितकारी समाचार आप के हित के लिये सविनय निवेदन करता हूं। आपका कल्याण हो । उसके बाद सिंहसेन राजा हृष्ट तुष्ट हो उस संदेशवाहक के लिये साढे बारह लाख चांदी की मुद्राओं का प्रीतिदान-पारितोषिक प्रदान किया, प्रीतिदान देकर उन्होंने उसका सत्कार किया, मधुर वचनों से सन्मान किया । इस प्रकार सत्कार एवं सन्मान करके उन्होंने उसे बिदा किया । इसके अनन्तर सिंहसेन राजा ने अपने बलव्यापृत-सेनापति को बुलाया, बुलाकर इस

थे, वहां पहुंचा वहां पहुंचते ही सर्वप्रथम उसने दोनों हाथ जोडकर और अंजलिरूप में परिणत उन्हें मस्तक के दायें-बायें घुमाकर पश्चात् उन्हें मस्तक पर लगाकर अर्थात् नमस्कार कर 'जय हो महाराज की, विजय हो महाराज की'-इस प्रकार जय विजय शब्दों द्वारा राजा को बधाया, बधाने के बाद फिर वह इस प्रकार बोला-हे देवानुप्रिय ! जिनके सदा आप दर्शनों की इच्छा किया करते है जिनके आप देवानुप्रिय दर्शन करने की सदा स्पृहा रखा करते हैं-कब मुझे भगवान् के दर्शन होंगे इस प्रकार की उत्कंठा निरंतर किया करते हैं देवानुप्रिय जिनके दर्शनों की याचना किया करते हैं, अर्थात्-हे भगवान् ! आप के दर्शन से ही मेरा जन्म सफल होगा, इसलिये आप कृपा करके अपने चरण कमल का दर्शन दीजिये, इस प्रकार एकान्त में आप बार २ प्रार्थना किया करते हैं, अथवा हमारे जैसे लोगों से आप प्रार्थना करते हैं कि-मुझे भगवान् का दर्शन कराओ। हे देवानुप्रिय ! आप जिनके दर्शनों की चित्त में सदा-

सिंहसेन-
राज्ञः
सपरिवार-
प्रभुसमीपा-
गमनम्

उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छंति, तं जहा—१ सचित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए २ अचित्ताणं दव्वाणं अविओसरणयाए, ३ विणओणयाए गायलट्ठीए, ४ चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेणं, ५ मणसो एगत्तीभावकरणेणं समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपायाहिणं करेंति, करित्ता वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता सीहसेणरायं पुरओ चेव सपरिवाराओ अभिमुहाओ विणएणं पंजलिउडाओ पज्जुवासंति॥८॥

भावार्थ—वे प्रभु साधु सामाचारी के अनुसार वनमाली की आज्ञा लेकर अशोक वृक्ष के नीचे पृथिवी शिलापट्टक पर पूर्व की ओर मुखकर पर्यङ्क आसन से 'पलथी मार कर' विराजमान हुए। वे अरहा केवली जिन महावीर प्रभु तप एवं संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। उसके बाद वनमाली जहां सिंहसेन राजा

जणइत्ता तिव्वधम्माणुरागरत्तं पज्जुवासइ।

तए णं ताओ सीलसेणाओ देवीओ अंतो अंतेउरंसि ण्हायाओ जाव पायच्छित्ताओ सव्वालंकारविभूसियाओ बहूहिं खुज्जाहिं अंतेउराओ णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता जेणेव पाडियक्कजाणाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पाडियंक्क पाडियक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं दुरूहंति दुरुहित्ता णियगपरियालसद्धिं संपरिवुडाओ पावापुरीए णयरीए मज्झं मज्झेणं णिग्गछंति, णिग्गच्छित्ता जेणेव महासेणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्तादीए तित्थयराइसेसे पासंति, पासित्ता पाडियक्कपाडियक्काइं जाणाइं ठवेंति, ठवित्ता जाणेहिंतो पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता बहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ताओ जेणेव समणं भगवं महावीरे तेणेव

सिंहसेनराज्ञः सपरिवारप्रभुसमीपागमनम्

प्रकार कहा–हे देवानुप्रिय ! शीघ्र ही तुम पट्टहस्तिरत्न को सज्जित करो, साथ में घोडों हाथियों, रथों एवं उत्तम योधाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना को भी सज्जित करना तथा शीलसेना देवियों के लिये भी बाहिर उपस्थानशाला में अलग २ रूप में चलने में अच्छे एवं अच्छे बैलों वाले धार्मिक रथों को सज्जित करके ले आओ। आभिषेक्य हस्तिरत्न के ऊपर सवार होकर पावापुरी नगरी के बीचमार्ग से होकर निकले निकल कर जहां महासेन उद्यान था वहां आये, आकर उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर के न अति समीप और न अति दूर–किन्तु कुछ ही दूर पर तीर्थंकरों के अतिशय स्वरूप छत्रादिकों को देखा, देखते ही उन्होंने अपने हाथी को खडा करवाया, हाथी के खडे होते वे उस हाथी से नीचे उतरे, नीचे उतरते ही उन्होंने इन पांच राजचिह्नों का परित्याग किया, वे पांच राजचिह्न ये हैं–खड्ग, तलवार, छत्र, मुकुट उपानत्–पगरखे, एवं बालव्यजनी–चामर। फिर वे जहां श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे वहां

पर आये जाते ही वे पांच प्रकार के अभिगमन–सत्कारविशेष से युक्त होकर प्रभु के सन्मुख पहुंचे। वे पांच प्रकार के सत्कारविशेष इस प्रकार हैं–हरित फल फूल आदि सचित्त द्रव्यों का परित्याग करना, वस्त्र आभरण आदि अचित्त द्रव्यों का परित्याग नहीं करना, भाषा की यतना के लिये अखण्ड अर्थात् जो सीया हुआ न हो ऐसे वस्त्र का उत्तरासङ्ग करना, जब से भगवान् दिखायी दें, तभी से दोनों हाथों को जोडना, और मन को एकाग्र करके भगवान् में लगाना। इस प्रकार इन पांच अभिगमों से युक्त होकर राजाने भगवान् महावीर प्रभु को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण–अञ्जलि पुट को दाहिने कान से लेकर शिर पर घुमाते हुए बायें कान तक लेजा कर फिर उसे घुमाते हुए दाहिने कान पर ले जाना और बाद में उसे अपने ललाट पर स्थापन करना –रूप आदक्षिण प्रदक्षिण किया, आदक्षिण–प्रदक्षिण कर के वन्दना और नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार कर के त्रिविध पर्युपासना से उनकी उपासना की।

सिंहसेन-
राज्ञः
सपरिवार-
प्रभुसमीपा-
गमनम्

वह त्रिविध उपासना इस प्रकार है–काय से उपासना करना, वचन से उपासना करना एवं मन से उपासना करना। कायिक उपासना इस प्रकार से उसने की–प्रभु के समीप वे हाथ पावों को संकुचित करके आसन से बैठे। उनसे धर्म सुनने की इच्छा करने लगे, उन्हें बारं बार नमस्कार करने लगे, पुनः नम्र होकर प्रभु के सम्मुख दोनों हाथों को जोडते हुए प्रभु की सेवा करने लगे। वचन से उपासना उन्होंने इस प्रकार की–जो जो भगवान् कहते थे, उस पर राजा इस प्रकार कहते थे, हे भगवन् ! आप जैसा कहते हैं, हे भगवन् ! यह ऐसा ही है , हे भगवन् यह वैसा ही है, हे भगवन् ! आप ने जो कहा सो सत्य है, हे भगवन् ! यह देश शंका और सर्व शंका से सर्वथा रहित है, हे भगवन् ! आपका यह वचन हम लोगों के लिये सर्वदा वांछनीय है, हे भगवन् ! यह आपका वचन हम लोगों के लिये सर्वथा वांछनीय है, हे भगवन् ! यह आपका वचन हम लोगों के लिये सर्वदा और सर्वथा वांछनीय है। इस प्रकार राजा

सिंहसेनराज्ञः सपरिवार-प्रभुसमीपागमनम्

भगवान् के साथ अनुकूल आचरण करते हुए उनकी उपासना करने लगे। राजाने भगवान् की मानसिक उपासना इस प्रकार की–प्रभु के मुख से धर्म का उपदेश सुन कर राजा के हृदय में परम वैराग्य उत्पन्न हुआ और धर्मानुराग से प्रेरित होकर वे प्रभु की उपासना करने लगे।

इसके बाद वे शीलसेना प्रमुख देवियां भी अंतःपुरस्थ स्त्रीभवन के मध्यवर्ती स्नानागार में स्नान करके कौतुक तथा बलिकर्म से निवृत्त होकर, एवं समस्त अलंकारों को धारण कर अनेक कुबडी दासियों से घिरी हुई होकर अंतःपुर से निकलीं, निकल कर जहां अपने २ योग्य अलग २ यान (रथ) रखे हुए थे, वहां पर पहुंची, पहुंच कर उन पृथक् २ यानों (रथो) पर, जो भगवान् के दर्शन के लिये जाने के निमित्त पहिले से सज्जित कर रखे हुए एवं बलिवर्द आदिकों से युक्त थे, उसके ऊपर सवार हुईं। सवार होकर अपने २ परिवारों के साथ परिवेष्टित होती हुई वे सब देवियां पावापुरी

सिंहसेन-राज्ञः सपरिवार-प्रभुसमीपागमनम्

के ठीक बीचों बीच के मार्ग से होकर निकलीं निकल कर जिस ओर महासेन उद्यान था, उस ओर आयीं, उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर से कुछ दूर पर रहे हुए तीर्थंकरों के अतिशय स्वरूप छत्रादिकों को देखा, देख कर उन सबों ने अपने २ [पृथक् २] यानों [रथों] को रुकवा दिया और वे उन यानों से नीचे उतरीं, उतर कर उन अनेक कुब्जादिक दासियों से परिवृत होती हुई वे जहां श्रमण भगवान् महावीर थे वहां पर आयीं, आकर उन्होंने प्रभु के समीप जाने के लिये पांच प्रकार के अभिगमों को अच्छी तरह धारण किया। वे पांच प्रकार के अभिगम ये हैं–सचित्त द्रव्यों का परि त्याग करना–प्रभु के दर्शन करने के लिये जाते समय अपने पास सचित्त वस्तुओं को नहीं रखना, अचित्त वस्त्रादिकों का त्याग नहीं करना, विनय से अवनत गात्र–शरीर होना, विनय भार से नम्रीभूत होना, प्रभु के देखते ही दोनों हाथों को जोडना, एवं प्रभु की भक्ति में मन को एकाग्र करना। इन पांच अभिगमों से युक्त सपरिवार उन

सिंहसेन-
राज्ञः
सपरिवार-
प्रभुसमीपा-
गमनम्

रानियों ने श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण किया, पश्चात् वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार कर चुकने के बाद फिर वे, सिंहसेन राजा को आगे करके खडी खडी विनय पूर्वक हाथ जोडकर भगवान् की सेवा करने लगीं। अर्थात् भगवान् की वाणी सुनने की इच्छा करने लगे ॥८॥

मूलम्--तेणं कालेणं तेणं समएणं तीए पावाए पुरीए एगस्स सोमिलाभिहस्स बंभणस्स जन्नवाडे जन्नकम्मम्मि समागया रिउजजु सामाथव्वाणं चउण्हं वेयाणं इतिहासपंचमाणं निघंटु छट्ठाणं संगोवगाणं सरहस्साहं सारया वारया धारया, सडंगवी सट्ठितंतविसारया संखाणे सिक्खाणे सिक्खाकप्पे वागरणे छंदे निरुत्ते जोइसमयणे अन्नेसु य बहुसु बंभण्णएसु परिव्वायएसु नएसु सुपरिणिट्ठिया सव्वविहबुद्धिनिउणा जन्नकम्मनिउणा इंदभूइपभिइणो

एगारसमाहणा सयसयसिस्सपरिवारेण परिवुडा जन्नकम्मनिउणा तत्थ जण्णं कुणंति। तहा अण्णे वि तत्थ बहवे उवज्झाया गग्गहारिय कोसियपेल संडिल्ल पारासज्ज भरद्दाजवस्सिय सावण्णिय मेत्तेज्जांगिरस कासव कच्चायण दक्खायण सारव्वयायण सोणगायण नाडायण जातायणास्सायण दब्भायण-चारायण कावियबोहियोवमन्नवा तेज्जपभिइओ मिलिया होज्जा॥९॥

सोमिलाभिध ब्रह्मणस्य यज्ञवाटके समागतानेक ब्राह्मणनामानि

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं तेणं समएणं तीए पावाए पुरीए] उस काल और उस समय में पावापुरी में [एगस्स सोमिलाभिहस्स बंभणस्स जन्नवाडे जन्नकम्मंमि समागया] एक सोमिल नामक ब्राह्मण के यज्ञ के पाडे–महोल्ले में यज्ञ कर्म में आये हुए [रिउ-जजुसामाथव्वाणं चउण्हं वेयाणं इतिहासपंचमाणं] यज्ञ–कर्म में आये हुए अंगों पांग सहित रहस्य सहित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, इन चार वेदों के

पाचवें इतिहास के [निघंटु छट्ठाणं संगोवंगाणं सरहस्साइं सारया वारया धारया] और छठे निघंटु के स्मारक [दूसरों को याद कराने वाले] वारक [अशुद्ध पाठ को रोकने वाले] और धारक [अर्थ के ज्ञाता] [सडंगवी सट्ठितंत विसारया] छहों अंगों के ज्ञाता, षष्ठी तंत्र [सांख्य शास्त्र] में विशारद [संखाणे सिक्खाणे सिक्खाकप्पे] गणित में, शिक्षण में शिक्षा कल्प में [वागरणे छंदे निरुत्ते जोइसामयणे] व्याकरण में छंद में निरुक्त में ज्योतिष में [अन्नेसु य बहुसु बंभण्णएसु परिव्वायएसु नएसु सुपरिनिट्ठिया सव्वविह बुद्धि निउणा] तथा अन्य बहुत से ब्राह्मणों के शास्त्रों में तथा परिव्राजकों के आचार शास्त्र में कुशल, सब प्रकार की बुद्धियों से सम्पन्न [जण्णकम्मनिउणा इंदभूइपभिइणो एगारस माहणा सय सयसिस्सपरिवारेण परिवुडा जण्णकम्मनिउणा तत्थ जण्णं कुणंति] यज्ञ कर्म में निपुण इन्द्रभूति आदि ग्यारह ब्राह्मण अपने अपने शिष्य परिवार सहित यज्ञ कर रहे थे [तहा अण्णे वि तत्थ बहवे उवज्झाया] इनके अतिरिक्त

सोमिलाभिध ब्रह्मणस्य यज्ञवाटके समागतानेक ब्राह्मणनामानि

और भी बहुत से उपाध्याय वहां इकट्ठे हुए थे। यथा [गग्ग] गार्ग्य [हारिय] हारित [कोसिय] कौशिक [पेल] पैल [संडिल्ल] शाण्डिल्य [पारासज्ज] पाराशर्य [भरद्दाज] भारद्वाज [वास्सिय] वात्स्य [सावण्णिय] सावर्ण्य [मित्तिय] मैत्रेय [अंगिरस] आंगिरस [कासव] काश्यप [कच्चायण] कात्यायन [दक्खायण] दाक्षायण [सारुव्वयायण] शारद्वतायण [सोनगायण] शौनकायन [नाडायण] नाणायण [जातायण] जातायण [अस्सायण] अश्वायण [दब्भायण] दर्भायण [चारायण] चारायण [काविय] काप्य [बोहिय] बौध्य [उवमन्नवा] औपमन्यव [तेज्जप्पभिइओ मिलिया होज्जा] आत्रेय आदि इकट्ठे हुवे थे ॥९॥

भावार्थ—उस काल और उस समयमें उस पावापुरी मे एकसोमिल नामक ब्राह्मण के यज्ञ स्थल में यज्ञ क्रिया के लिए आये हुए इन्द्रभूति आदि ग्यारह ब्राह्मण अपने-अपने शिष्य परिवार युक्त होकर यज्ञ कर रहे थे वे ब्राह्मण ऋक्यजुसाम और अथर्व

सोमिलाभिध ब्रह्मणस्य यज्ञवाटके समागतानेक ब्राह्मणनामानि

सोमिलाभिध ब्रह्मणस्य यज्ञवाटके समागतानेक ब्राह्मणनामानि

इन चार वेदों में, पांचमे इतिहास में और छठे निघंटु [वैदिककोष] में कुशल थे वे छन्द कल्प ज्योतिष व्याकरण निरूक्त तथा शिक्षा इन छहो अंगो सहित तथा रहस्य–सारांश-सहित वेदों के स्मारक थे, अर्थात् अन्य लोगों को याद कराने वाले थे, वारक थे अर्थात् अशुद्ध उच्चारण करने वालों को रोकते थे और धारक थे अर्थात् इनके अभिधेय अर्थ को धारण करने–समझने वाले थे छन्द आदि छहों अंगो के ज्ञाता थे सांख्य शास्त्र में निष्णात थे गणितमे, शिक्षण [अध्यापन] में शिक्षा में, कल्प में, व्याकरण शास्त्र-में छन्दशास्त्र में निरूक्त नामक वेद के अंग रूप शास्त्र में, ज्योतिष शास्त्र में तथा इनके अतिरिक्त दूसरे बहुत से ब्राह्मणों के शास्त्रों में और परिव्राजकों संबंधी आचार शास्त्र में अति निपुण थे। सब प्रकार की बुद्धियों में निपुण थे तात्कालिक बात को जानने वाली बुद्धि भविष्यत् की वातको समझने वाली मति और नयी नयी बात को खोज निकालने वाली सूझरूप प्रज्ञा इस तीन प्रकार की बुद्धि में उन्हे कुशलता प्राप्त

॥४७४॥

थी वे यज्ञ के अनुष्ठान में कुशल थे इन्द्रभूति आदि ग्यारह ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्यान्य उपाध्याय भी उस यज्ञमे सम्मिलितहुए थे उनमें से कुछ यह है गार्ग्य, हारीत, कौशिक, पैल, शाण्डिल्य पाराशर्य भारद्वाज, वात्स्य सावर्ण्य, मैत्रेय अंगीरस, काश्यप, कात्यायन, दाक्षायण, शारद्वतायन, शौनकायन, नाडायन, जातायन, आश्वायन, दार्भायन, चारायण, काप्य, वौध्य, औपमन्यव, आत्रेय, आदि ॥९॥

सोमिलाभिध ब्रह्मणस्य यज्ञवाटके समागतानेक ब्राह्मणनामानि

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स दंसणट्ठं धम्मदेसणा सवणट्ठं चउसट्ठिं इंदा भवणवइ वाणमंतरजोइसिय विमाणवासिणो देवा य देवीओ य नियनियपरिवारपरिवुडा सव्विड्ढीए सव्वजुईए पभाए छायाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दसदिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा समावयंति। ते दट्ठूणं जन्नवाडट्ठिया जन्नजाइणो सव्वे माहणा

परोप्परं एवमाइक्खंति एवं भासंति एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति--भो भो लोया! पासंतु जन्नप्पभावं, जे णं इमे देवा य देवीओ य जन्नदंसणट्ठं हविस्स गहणट्ठं च निय निय विमाणेहिं निय निय इड्ढीसाइहिं सक्खं समावजंति। तत्थट्ठिया लोया अच्छेरयमणुभविय एवं वइंसु जं इमे माहणा धण्णा कयकिच्चा कयपुण्णा कयलक्खणा य जेसिं जन्नवाडे देवा य देवीओ य सक्खं समावजंति॥१०॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स दंसणट्ठं च] उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के दर्शन के लिये तथा धर्म देशना श्रवण करने के लिए [चउसट्ठिं इंदा] चौसठ इन्द्र तथा [भवणवइ वाणमंतर जोइसिय विमाणवासिणो देवा य देवीओ य निय निय परिवारपरिवुडा] भवनपति, वानव्यंतर, ज्योतिष्क और विमानवासी देव और देवियाँ अपने अपने परिवार से परिवृत्त होकर

सोमिलाभिध ब्राह्मणस्य यज्ञवाटके-देवागमन कल्पनम्

[सव्विड्ढीए सव्वजुईए पभाए छायाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए] समस्त ऋद्धि से सर्व द्युति से प्रभा से शोभाओं से, शरीर पर धारण किये हुए सब प्रकार के आभूषणों के तेज की ज्वालाओं से शरीर सम्बन्धी दिव्य प्रभाओं से दिव्य शरीर की कन्तियों से [दसदिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा समावयंति] दशोंदिशाओं को उद्योतित करते हुए विशेष रूप से प्रकाशयुक्त होकर आते हैं [ते दट्ठूणं जन्नवाडट्ठिया जन्नजाइणा सव्वे माहणा परोप्परं एवमाइक्खंति एवं भासंति एवं पण्णवेंति एवं परूविंति–] उन्हें देखकर यज्ञ स्थल में स्थित यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले सभी ब्राह्मण आपस में इस प्रकार कहने लगे, इस प्रकार भाषण करने लगे, इस प्रकार प्रज्ञापन करने लगे और इस प्रकार परूपणाकरने लगे–[भो भो लोया! पासन्तु जन्नप्पभावं जेणं इमे देवा य देवीओ य जन्नदंसणट्ठं हविगहणट्ठं च निय निय विमाणेहिं] हे महानुभावो! देखो यज्ञ के प्रभाव को, यह देव और देवियां यज्ञ को देखने के लिये और हविष्य को

ग्रहण करने के लिये अपने अपने विमानों [निय निय इड्ढीमाइहिं सक्खं समावयंति] और अपनी अपनी ऋद्धि के साथ साक्षात् आरहे हैं। [तत्थट्ठिया लोया अच्छेरयमणुभविय एवं वइंसु–] वहां जो लोग उपस्थित थे, वे यह आश्चर्य देखकर बोले–[जं इमे माहणा धण्णा कयकिच्चा कयपुण्णा कयलक्खणा य जेसिं जन्नवाडे देवा य देवीओ य सक्खं समावजंति] ये ब्राह्मण धन्य हैं, पुण्यवान् हैं और सुलक्षण हैं जिनके इस यज्ञपाटक में साक्षात् देव और देवियों का आगमन हो रहा है ॥१०॥

भावार्थ––विराजमान भगवान् के दर्शन के लिए तथा धर्मदेशना श्रवण करने के लिए भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिषिक और विमानवासी देव और देवियों के झुंड के झुंड अपने अपने परिवार के साथ समस्त ऋद्धि से सर्वद्युति से सब प्रकार के विमानो की दसियां से दिव्य शोभाओं से शरीर पर धारण किये हुए सर्व प्रकार के आभूषणों के तेज की ज्वालाओं से शरीर सम्बधि दिव्य प्रभाओं से दिव्य शरीर की कांतीयों से

दशों दिशाओं को उद्योतित करते हुवे विशेषरूप से प्रकाश युक्त होकर आते है। उन्हे देख कर यज्ञ स्थलमें स्थित यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले सभी ब्राह्मण आपसमे इस प्रकार कहने लगे इस प्रकार भाषण करने लगे इस प्रकार प्रज्ञापना करने लगे और इस प्रकार प्ररूपण करने लगे—हे महानुभावो ! देखो यज्ञ के प्रभाव को यह देव और देवियां यज्ञको देखने के लिए और हविष्य को ग्रहण करने के लिए अपने अपने विमानो और अपनी-अपनी ऋद्धि के साथ साक्षात् आ रहे है वहां जो लोग उपस्थित थे वे यह आश्चर्य देखकर बोले यह ब्राह्मण धन्य है पुण्यवान् है और सुलक्षण हैं जिनके यह स्थान में साक्षात् देवो और देवियों का आगमन हो रहा है ॥१०॥

मूलम्—एवं परोप्परं कहमाणेसु समाणेसु एत्थंतरे ते देवा जन्नवाडयं चइय अग्गेपट्ठिया। तं दट्ठूणं ते जन्नजाइणो माहणा निक्कंपा नित्तेया ओमं-

थिय वयणनयणकमला दीणविवण्णवयणा संजाया एत्थंतरे अंतरा आगासंसि देवेहि घुट्ठं, तं जहा—

भो भो पमायमवहूय भएह एणं।
आगच्च निव्वइपुरिं पइ सत्थवाहं॥
जो णं जगत्तयहिओ सिरिवद्धमाणो।
लोगोवयारकरणे गवओ जिणिंदा॥१॥

एवं सोच्चा खणमित्तं ऊसासिय पुव्वं ताव गोयमगोत्तो इंदभूईणामं माहणो रुट्ठो कुद्धो आसुरुत्तो मिसिमिसेमाणो एवं वयासी—अम्हंमि विज्जमाणे अन्नो को इमो पासंडो समासियवियंडो, जो अप्पाणं सव्वणुं सव्वदरिसिं कहेइ, न लज्जइ सो? दीसइ, इमो कोवि धुत्तो कवडजालियो इंदजालिओ।

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्य च देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यः आकाशवाणिश्च

अणेण सव्वण्णुत्तस्स आडंबरं दरिसिय इंदजालप्पओगेण देवा वि वंचिया, जं इमे देवा जन्नवाडं संगोवंगवेयण्णुं मं च परिहाय तत्थ गच्छंति। एएसिं बुद्धिविपज्जासो जाओ, जे णं इमे तित्थजलं चइय गोप्पयजलमभिलसमाणा वायसाविव जलं चइय थलमभिलसमाणा मंडूगाविव, चंदणं चइय दुग्गंधमभिलसमाणामक्खियाविव, सहयारं चइय बब्बूरमभिलसमाणा उट्टाविव, सुज्जपगासं चइय अंधयारमभिलसमाणा उलूगाविव जन्नवाडं चइय धुत्तमवगच्छंति। सच्चं जारिसो देवो तारिसा चेव तस्स सेवगा। नो णं इमे देवा, देवाभासा एव। भमा सहयारमंजरीए गुंजंति, वायसा निंबतरुम्मि। अत्थु, तह वि अहं तस्स सव्वणुत्तगव्वं चूरिस्सामि। हरिणो सीहेण, तिमिरं भक्खरेण सलभो वण्हिणा, पिवीलिया समुद्देणं, नागो गरुडेण पव्वओ वज्जेणं मेसो कुंजरेण

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

सद्धिं जुंज्झिउं किं सक्केइ ? एवं चेव एसो इंदजालिओ ममंतिए खणंपि चिट्ठिउं नो सक्केइ। अहुणेव अहं तयंतिए गमियं तं धुत्तं पराजिनेमि। सुज्जं-तिए खज्जोअस्स वरागस्स का गणणा। अहं नो कस्सवि साहज्जं पडिक्खि-स्सामि किं अंधयारप्पणासे सुज्जो पडिक्खइ ? अओ सिग्घमेव गच्छामि एवं परिचिंतिय पोत्थयहत्थो कमंडलु दब्भासणपाणीहिं पीयंबरेहिं जण्णोवणीय-विभूसिय कंधरोह—हे सरस्सई कंठाभरण ! हे वाइविजयलच्छीकेयण ! हे वाइ-मुहकवाडयंतणतालग ! हे वाइवारण विआरण पंचाणण ! वाइस्सरिय सिंधु चुलुगीगरागत्थी ! वाइसीहाट्ठावय ! वाइविजयविसारय ! वाइविंदभूवाल ! वाइ-सिरकरालकाल ! वाइकयलीकांडखंडणकिवाण ! वाइतमत्थोम निरसणपचंड-मत्तंड ! वाइगोहूमपेसणपासाणचक्का ! वाइयामघडमुग्गर ! वाइउलूगदिनमणी !

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

वाइवच्छुन्मूलणवारण वाइदइच्च देववई ! वाइसासणनरेस ! वाइकंसकंसारी ! वाइहरिणमिगारि ! वाइज्जरजरंकुरण ! वाइजूइमल्लमणी ! वाइहिययसल्लवर ! वाइसलहपज्जलंतदीवग ! वाइचक्कचूडामणि ! पंडियसिरोमणी ! विजियाणेगवाइ-वाय ! लद्धसरस्सइसुप्पसाय ! दूरिकयावरगव्वुमेस ! इच्चाइजसं गायंतेहिं पंच-सयसीसेहिं परिवुडो जयजय सद्देहिं साहिज्जमाणो पहुसमीवे समणुपत्तो तत्थ गंतूण सो समोसरणसमिद्धिं पहुतेयं च विलोइय किमेयंति चगियचित्तो संजाओ ॥११॥

शब्दार्थ—[एवं परोप्परं कहमाणेसु समाणेसु एत्थंतरे ते देवा जन्नवाडयं चइय अग्गेपट्ठिया] वे परस्पर इस प्रकार कह ही रहे थे कि इस बीच वे देव यज्ञस्थान को छोड कर आगे चले गये [तं दट्ठूणं ते जन्नजाइणो माहणा निक्कंपा नित्तेया ओमंथिय-वयणनयणकमला] यह देखकर याज्ञिक ब्राह्मण स्तब्ध रह गये, निस्तेज रह गये,

यज्ञवाटकं परित्यज्या-न्यत्र देवगमनात् तत्रस्थिता-नामाश्चर्या-दिक-वर्णनम्

उनके नेत्र और मुखरूपी कमल मुरझा गये, [दीणविवण्णवयणा संजाया] मुख पर दैन्य और फीकापन आगया। [एत्थंतरे अंतरा आगासंसि देवेहिं घुट्ठं, तं जहा–] इसी समय आकाश में देवों ने घोषणा की–[भो भो पमायमवहूय] हे भव्य जीवो! तुम प्रमाद का त्याग करके [निव्वुइपुरिं पइ सत्थवाहं एणं आगच्च भएह] मोक्ष रूपी नगरी के लिए सार्थवाह के समान श्रीवर्धमान भगवान् को आकर भजो, इनकी सेवा करो [जो णं जगत्तयहिओ सिरि वद्धमाणो] ये श्रीवर्द्धमान स्वामी त्रिलोक के कल्याणकारी हैं। [लोगोवयारकरणे गवओ जिणिंदो] मनुष्यों के उद्धार के मार्ग का उपदेश देनेरूप उपकार करना ही इनका प्रधान नियम है। ये रागद्वेष जीतनेवाले सामान्य केवलियों के स्वामी हैं।

[एवं सोच्चा खणमित्तं ऊससिय] यह सुनकर क्षणमात्र ठंडी श्वास लेकर [पुव्वंताव गोयमगोत्तो इंदभूईनामं माहणो रुट्ठो आसुरत्तो मिसिमिसेमाणो एवं वयासी–]

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिकवर्णनम्

सबसे पहले गौतम गोत्रीय इन्द्रभूतिनामक ब्राह्मण रुष्ट हुए, क्रुद्ध हुए, लाल हो उठे और मिसमिसाते हुए इस प्रकार बोले–[अम्हंमि विज्जमाणे अन्नो को इमो पासंडो समासियवियंडो]–मेरे मौजुद रहते, दूसरा कौन है यह पाखण्डी और वितंडावादी [जो अप्पाणं सव्वण्णुं सव्वदरिसिं कहेइ,] जो अपने आपको सर्वज्ञ और सर्वदर्शी कहता है ? [न लज्जेइ सो ?] लोगों के सामने ऐसा कहते उसे लज्जा नहीं आती ? [दीसइ, इमो को वि धुत्तो कवडजालियो इंदजालिओ] प्रतीत होता है, यह कोई धूर्त कपट जाल रचनेवाला इन्द्रजालिक है। [अणेण सव्वणुत्तस्स आडंबरं दरिसिय इंदजालप्पओगेण देवा वि वंचिया] इसने सर्वज्ञता का आडम्बर दिखाकर, इन्द्रजाल का प्रयोग करके, देवों को भी ठग लिया है [जं इमे देवा जण्णवाडं संगोवंगवेयण्णुं मं च परिहाय तत्थ गच्छंति] इसीसे ये देव यज्ञपाडे को और सांगोपांग वेदों के वेत्ता मुझ को छोडकर वहां जा रहे हैं। [एएसिं बुद्धि विपज्जासो जाओ] निश्चय ही इन देवों की मति विप-

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

रीत हो गई है [जे णं इमे तित्थजलं चइय गोप्पयजलमभिलसमाणा वायसा विव] ये देव तीर्थजल को छोडकर तुच्छ गड्ढे के पानी की इच्छा करनेवाले कौओं की तरह [जलं चइय थलमभिलसमाणा मंडूगाविव] जल को छोडकर स्थल की अभिलाषा करनेवाले मेढकों की तरह [चंदणं चइय दुग्गंधमभिलसमाणा मक्खियाविव] चन्दन को त्याग कर दुर्गन्ध की अभिलाषा रखनेवाली मक्खियों की तरह [सहयारं चइय बब्बूरमभिलसमाणा उट्टाविव] आम को त्याग कर बबूल की अभिलाषा करनेवाले ऊंटों की तरह [सुज्जपगासं चइय अंधयारमभिलसमाणा उल्लूगाविव] सूर्य के प्रकाश को छोडकर अंधकार की इच्छा करनेवाले उल्लूओं की तरह [जन्नवाडं चइय धुत्तमुवगच्छंति] यज्ञस्थान को त्याग कर धूर्त के पास जा रहे हैं। [सच्चं जारिसो देवो तारिसा चेव तस्स सेवगा] सच है जैसा देव वैसे ही उसके सेवक होते हैं [णो णं इमे देवा देवाभासा एव] निस्संदेह ये देव नहीं किन्तु देवाभास है [भमरा सहयारमंजरीए

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

गुंजंति वायसा निंबतरुम्मि] भ्रमर आम्र की मंजरी पर गुणगुनाते हैं परंतु कौए नीम के पेड को ही पसन्द करते हैं [अत्थु, तहवि अहं तस्स सव्वण्णुत्तगव्वं चूरिस्सामि] अस्तु, फिर भी मैं उसके सर्वज्ञता के अहंकार को चूर–चूर करूंगा। [हरिणो सीहेण] तिमिरं भक्खरेण, सलभो वण्हिणा, पिवीलिया समुद्देणं, नागो गरुडेणं पव्वओ वज्जेणं मेसो कुंजरेण सद्धिं जुज्झिउं किं सक्केइ] क्या हिरण सिंह के साथ, अंधकार सूर्य के साथ, पतंग आग के साथ, चींटी समुद्र के साथ, सर्प गरुड के साथ, पर्वत वज्र के साथ और मेढा हाथी के साथ युद्ध कर सकता है? कभी नहीं कर सकता [एवं चेव एसो इंद-जालियो ममंतिए खणंपि चिट्ठिउं नो सक्केइ] इसी प्रकार वह इन्द्रजालिक मेरे सामने एक क्षणभर भी नहीं ठहर सकता [अहुणेव अहं तयंतिए गमिय तं धुत्तं पराजिनेमि] अभी इसी समय मैं उसके पास जाकर उस धूर्त को पराजित करता हूं। [सुज्जंतिए खज्जोअस्स वरागस्स का गणणा] सूर्य के समक्ष बेचारे जूगनू की क्या गिनती!

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

[अहं णो कस्सवि साहज्जं पडिक्खिस्सामि] मैं किसी की सहायता की प्रतीक्षा नहीं करूंगा। [किं अंधयारपगासे सुज्जो अण्णं पडिक्खइ?] अंधकार का नाश करने में सूर्य को क्या किसी की प्रतीक्षा करनी होती है? [अओ सिग्घमेव गच्छामि] अतएव मैं शीघ्र ही जाता हूं [एवं परिचिंतिय पोत्थयहत्थो कमंडलु दब्भासण पाणीहिं पीयंबरेहिं जण्णोववीय विभूसिय कंधरोह] इस प्रकार कहकर और पुस्तक हाथ में लेकर पांचसौ शिष्यों के साथ प्रभु के निकट जाने को रवाना हुए। उनके शिष्य कमंडलु और दर्भ का आसन हाथ में लिए हुए थे। पिताम्बर पहने हुए थे। उनका बाया कंधा यज्ञोपवीत से सुशोभित हो रहा था। वे अपने गुरु इन्द्रभूति का इस प्रकार यशोगान कर रहे थे। [हे सरस्सई कंठाभरण] हे सरस्वतीरूपी कंठाभरणवाले! [हे वाइविजयलच्छीकेयण!] हे वादीविजय की लक्ष्मी के ध्वज! [हे वाइमुहकबाडयंतणतालग!] हे वादियों के मुख रूपी द्वार को बंध करदेनेवाले ताले! [हे वाइवारणविआरण पंचानन!] हे वादी

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

रूपी हस्ती को विदारण करनेवाले पंचानन (सिंह) [वाइस्सरिय सिंधु चुलुगीगरागत्थी !] हे वादियों के ऐश्वर्य रूपी सागर को चूल्लू में पी जानेवाले अगस्ति! [वाइसीहाट्ठावय !] हे वादि सिंहों के लिए अष्टापद [वाइविजयविसारय !] हे वादिविजय विशारद ! [वाइविंदभूवाल !] हे वादिवृन्द भूपाल ! [वाइसिरकरालकाल !] हे वादियों के सिर के विकरालकाल ! [वाइकयलीकांडखंडणकिवाण] हे वादीरूपी कदलियों को काटनेवाले कृपाण ! [वाइतमत्थोमनिरसणपचंडमत्तंड !] हे वादी रूप अंधकार के समूह को नाश करनेवाले प्रचण्ड सूर्य ! [वाइगोहूमपेसणपासाणचक्का !] हे वादी रूपी गेहूओं को पिसने के लिए पाषाण चक्र ! [वाइयामघडमुग्गर !] हे वादी रूपी कच्चे घडों के लिए मुद्गर ! [वाइउलूगदिनमणी !] हे वादी रूपी उलूकों के लिए सूर्य ! [वाइवच्छुम्मूलणवारण !] हे वादि–वृक्षों को उखाड फैंकनेवाले गजराज [वाइदइच्चदेववई !] हे वादी रूपी दैत्यों के लिए देवेन्द्र ! [वाइसासणनरेस !] हे वादी–शासक नरेश ! [वाइकंसकंसारि !] हे

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिकवर्णनम्

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

वादि कंस कृष्ण! [वाइहरिणमिगारि!] हे वादी रूपी हरिणों के सिंह! [वाइज्जरजरंकुरण!] हे वादी रूपी ज्वर के लिए ज्वरांकुश! [वाइजूइमल्लमणी!] हे वादिसमूह को पराजित करनेवाले श्रेष्ठ मल्ल! [वाइहियसल्लवर!] हे वादियों के हृदय में चुभनेवाले तीखे शल्य! [वाइसलहपज्जलंतदीवग!] हे वादी रूपी पतंगों के लिए जलते दीपक [वाइचक्कचूडामणि!] वादिचक्र चूडामणि! [पंडियसिरोमणी!] हे पण्डित शिरोमणि! [विजियाणेगवाइवाय!] हे अनेकवादियों के वाद को विजय करनेवाले! [लद्धसरस्सइसुप्पसाय!] हे सरस्वती का सुप्रसाद पानेवाले [दूरीकयावरगव्वुमेस!] हे अन्य विद्वानों के गर्व की वृद्धि को दूर कर देनेवाले [इच्चाइजसं गायंतेहिं पंच सयसीसेहिं परिवुडो जयजयसद्देहिं संदिज्जमाणो पहुसमीवे समणुपत्तो] इस प्रकार पांचसौ शिष्यों द्वारा किये जाते यशोगान और जयजयकार के साथ इन्द्रभूति भगवान् के पास पहुंचे। [तत्थ गंतूण सो समोसरणसमिद्धिं पहुतेयं च विलोइय

किमेयंति चगियचित्तो संजाओ] वहां पहुंच कर लोकोत्तर विभूति को और प्रभु के तेज को देखकर चकित रह गये। सोचने लगे—यह क्या ? ॥११॥

भावार्थ—जब वे पूर्वोक्त वचन आपस में कह रहे थे, उसी समय बीच सपरिवार और विमानों पर आरूढ वे आते हुए देव यज्ञभूमि को लांघकर आगे चले गये। यह देखकर वे यज्ञकर्त्ता ब्राह्मण स्तब्ध सन्न रह गये, तेजोहीन हो गये। उनके मुख और नेत्र कुम्हला गए। उनके चहेरे पर दीनता झलकने लगी। मुख फीका पड गया। जब ब्राह्मण इस प्रकार खेद खिन्न हो रहे थे, उसी समय आकाश के मध्य में देवोंने उच्च स्वर से घोषणा की। वह घोषणा क्या थी, सो कहते हैं—'भो भव्य जीवो! तुम प्रमाद का परित्याग करके, मोक्ष रूपी नगरी के लिए सार्थवाह के समान श्री वर्द्धमान भगवान् को आकर भजो, इनकी सेवा करो। यह श्री वर्धमानस्वामी त्रिलोक के कल्याणकारी हैं, मनुष्यों के उद्धार के मार्ग का उपदेश देने रूप उपकार करना ही इनका

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

प्रधान व्रत नियम है। यह जिनों–राग–द्वेष को जीतनेवाले सामान्य केवलियों के स्वामी हैं।' देवों की इस प्रकार की घोषणा को सुनकर, क्षणभर ऊंची श्वास लेकर, सब से पहले गौतमगोत्र में उत्पन्न इन्द्रभूति नामक ब्राह्मण के मनमें क्रोध उत्पन्न हुआ। होठ फडकने लगे अतः क्रोध प्रगट हो गया। उनके नेत्र क्रोध से लाल हो गये। वह मिसमिसाने लगे–क्रोध से जलने लगे और इस प्रकार वचन बोले मेरे विद्यमान रहते, यह दूसरा कौन पाखंडी और वितंडावादी है जो आप को सर्वज्ञ सब पदार्थों का ज्ञाता और सर्वदर्शी–सब पदार्थों को साक्षात्कार करनेवाला–कहलाता है? लोगों के सामने ऐसा कहते उसे लज्जा नहीं आती? जान पडता है, यह कोई कपटजाल रचनेवाला मायावी है। इस पाखंडीने सर्वज्ञता को प्रकट करनेवाला प्रपंच रचकर, इन्द्रजाल को फैलाकर देवों को भी छल लिया है–देव भी इसके चक्कर में आगये हैं। इसी कारण तो वे देव यज्ञ की (पावन) भूमि को और अंगोपांगो सहित वेदों के ज्ञाता मुझको

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

त्याग कर उस पाखण्डी के पास जा रहे हैं। निश्चय ही इन देवों की मति भी विपरीत हो गई है। ये देव गंगा आदि तीर्थों के जल को त्याग कर तुच्छ खड्डे के पानी की कामना करनेवाले काकों के समान यज्ञभूमि को छोड उस धूर्त के पास जा रहे हैं। और ये देव जलकी उपेक्षा करके स्थल की इच्छा करनेवाले मेढकों के समान, श्रीखंड आदि चन्दन की अवहेलना करके दुर्गंध को पसंद करनेवाली मक्खी के समान, तथा आम्रवृक्ष को छोडकर बबुल की अभिलाषा करनेवाले, ऊंटों के समान तथा दिवाकर के आलोक की अवहेलना करनेवाले उल्लुओं के समान मालूम होते हैं, जो इस यज्ञ-स्थान को छोडकर इस मायावी के पास जा रहे हैं। सच है जैसा देव वैसे ही उसके पूजारी होते हैं। निस्सन्देह ये देव नहीं, देवाभास हैं–देव जैसे प्रतीत होनेवाले कोई और ही हैं। भ्रमर आम्र की मंझरी पर गुनगुनाते है, परन्तु काक नीम के पेड को ही पसंद करते हैं। खैर, देवों को उस छलियों के पास जाने दो, पर मैं उस छलिया के

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

सर्वज्ञत्व के घमंड को खंड कर दूंगा। हिरण की क्या शक्ति जो वह सिंह के साथ युद्ध करे? इसी प्रकार अंधकार, सूय के साथ, पतंग अग्नि के साथ, चिउंटी सागर के साथ, सांप गरुड के साथ, पर्वत वज्र के साथ और मेढा हाथी के साथ क्या युद्ध कर सकता है? नहीं, कदापि नहीं। इसी प्रकार वह धूर्त इन्द्रजालियों मेरे समक्ष क्षणभर भी नहीं टिक सकता। मैं अभी उस धूत के पास जाकर देवादिकों को भी छलनेवाले मायावी को परास्त करता हूं। सूर्य के सामने बेचारा जुगनू--आग्या क्या चीज है। कुछ भी तो नहीं। मुझे किसी दूसरे विद्वान् की सहायता की आवश्यकता नहीं। मैं अकेला ही उस धूर्त के छक्के छुडाने के लिए समथ हूं। अन्धकार का निवारण करने के लिए सूर्य क्या चन्द्रमा आदि की सहायता चाहता है? नहीं। अतएव मैं अभी, इसी समय जाता हूं।' इस प्रकार कहकर होनेवाले शास्त्राथ म प्रमाण दिखलाने क लिए इन्द्रभूतिन अपने हाथ में पुस्तकें ली। कमण्डलु तथा कुशासन हाथ म लिए हुए, पीत

यज्ञ... कं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

वस्त्र धारण किए हुए, यज्ञोपवीत से शोभित बायें कंधेवाले और यशोगान करनेवाले अपने पांचसौ शिष्यों के साथ वह इन्द्रभूति भगवान् के समीप चले। उस समय उनके शिष्य उनको जय-जयकार कर रहे थे। शिष्य इस प्रकार यशोगान कर रहे थे-'हे सरस्वती रूपी आभूषण कंठ में धारण करनेवाले! हे प्रतिवादियों पर प्राप्त की जानेवाली विजय रूपी लक्ष्मी की पताका के समान। अर्थात् प्रतिवादियों का पराभव करने में अग्रगण्य। हे वादियों के मुख रूपी कपाट को बंद कर देनेवाले ताले। अर्थात् वादियों की बोलती बंद कर देनेवाले। हे प्रतिवादी रूपी मदोन्मत्त हाथियों के कुंभस्थलों को विदारण करनेवाले सिंह। हे प्रतिवादियों के ऐश्वर्य-विद्वानों में अग्रगण्यता रूपी सागर को एक ही चुल्लू में सोख जानेवाले अगस्ति अर्थात् दुर्दान्त वादियों को अनायास ही-चुटकियों में जीतनेवाले। हे वादियों रूपी सिंहों के पराक्रम को नष्ट करनेवाले अष्टापद। वादियों को परास्त करदेने में दक्ष। हे वादी रूपी लुंटेरों का दमन

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

करने के लिये प्रचण्ड तर्क रूपी दंड धारण करनेवाले। हे वादियों के सिरके विकराल काल। हे वादी रूपी कदलियों के खण्डखण्ड कर देने के लिए कृपाण। अर्थात् अनायास ही वादियों का मानमर्दन करनेवाले। हे वादी रूपी सघन अंधकार का निवारण करने के लिए प्रखर सूर्य। हे प्रतिवादी रूपी गेहूं को पिस डालने के लिए चक्की के समान। हे प्रतिवादी रूपी कच्चे घडों के लिए मुद्गर के समान वादीयों की विद्वत्ता को चुर-चुर करदेने वाले। हे वादी रूपी उलूकों के लिए सूर्य अर्थात् प्रतिवादियों की तर्क-दृष्टि को नष्ट कर देनेवाले। हे वादीरूपी वृक्षों को उखाड गिरानेवाले गजराज। अर्थात् वादियों का मानमर्दन करनेवाले। हे वादी रूपी दानवों का पराभव करनेवाले देवेन्द्र। हे प्रतिवादियों को अधिन करनेवाले नरेश। हे वादी रूपी कंस के लिए कृष्ण समान। हे अपने सिंहनाद से समस्त वादीरूप मृगों को भयभीत करदेने वाले सिंह। हे वादी रूपी ज्वर का निवारण करने के लिए ज्वरांकुश नामक औषध। हे वादियों के

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

समूह को पराजित करनेवाले महान् मल्ल। हे अपने प्रकाण्ड पांडित्य के प्रभाव से प्रतिवादियों के अन्तःकरण में सदैव खटकनेवाले कांटे। हे प्रतिवादी रूपी पतंगों को भस्म करनेवाले जलते दीपक, अर्थात् प्रतिवादियों के यश रूपी शरीर का विनाश करनेवाले। हे वादिचक्रचूडामणि—सकलशास्त्रों में अर्थों और कलाओं में कुशलजनों में अग्रगण्य। हे विद्वज्जन—शिरोमणी। हे सकलवादियों के वाद को जीतने वाले। हे विद्या की अधिष्ठात्री देवता के कृपाभाजन। हे अन्य विद्वानों के गर्व की वृद्धि को विनष्ट करनेवाले। अर्थात् सब पण्डितों की पण्डिताई के गर्व को खर्च करनेवाले। इस प्रकार पांचसौ शिष्यों द्वारा किये जाते यशोगान और जय—जयकार के साथ इन्द्रभूति भगवान् के पास पहूंचे। वहां पहूंच कर लोकोत्तर विभूति को और प्रभु के तेज को देखकर चकित रह गये। सोचने लगे—यह क्या ? ॥११॥

मूलम्—तए णं समणे भगवं महावीरे सीहसेणो राया सीलसेणा णामं

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

देवी बहवे भवणवइवाणमंतरा जोइसिया वेमाणिय देवा य देवीओ य इंदभूइ पामोक्खाणं माहणा य तीसे य महइमहालियाए परिसाए धम्मकहा कहिया से बेमि जे य अइया, जे य पडुप्पन्ना, जे य आगमिस्सा, अरहंता भगवंतो, ते सव्वेवि, एवमाइक्खंति, एवं भासंति, एवं पण्णवंति, एवं परूवेंति—सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता, ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा१, ण परिघेत्तव्वा२, ण परितावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा३। एस धम्मे, सुद्धे, णिइए, सासए, समेच्च लोयं खेयन्नेहिं पवेइए, तं जहा—उट्ठिएसु वा, अणुट्ठिएसु वा, उवरयदंडेसु वा, अणुवरयदंडेसु वा, सोवहिएसु वा, अणोवहिएसु वा, संजोगरएसु वा, असंजोगरएसु वा। तच्चं चेयं तहा चेयं अस्सिं चेयं पवुच्चइ ॥१२॥

शब्दार्थ—[तए णं] तदनन्तर [समणे भगवं महावीरे] श्रमण भगवान् महावीर

स्वामीने [सीहसेण राया] सिंहसेन राजा एवं [सीलसेणा णामं देवी] सीलसेना नाम की रानी और [बहवे] अनेक [भवणवइवाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया य] भवनपति वानव्यन्तर ज्योतिषिक एवं वैमानिक [देवा य देवीओ य] देव और देवियां [इंदभूई पामोक्खाणं] इन्द्रभूति आदि [माहणा य] ब्राह्मण से युक्त [तीसे य महइ महालयाए परिसाए] वह महान् विशाल परिषदा में [धम्मकहा] धर्मकथा कही—[से बेमि] जिस सम्यक्त्व का तीर्थंकरादिकोने उपदेश किया है वही मैं कहता हूं। [जे य अईया] अतीतकाल में जितने तीर्थंकर हुए हैं, [जे य पडुप्पन्ना] वर्तमान काल में जो तीर्थंकर विद्यमान हैं [जे य आगमिस्सा अरिहंता भगवंतो] और जो आगामिकाल में होनेवाले तीर्थंकर भगवान् हैं [ते सव्वे वि] सभी वे [एवमाइक्खंति] इस प्रकार कहते हैं [एवं भासंति] इस प्रकार भाषण करते हैं, [एवं पण्णवंति] इस प्रकार की प्रज्ञापना करते हैं [एवं परूवेंति] इस प्रकार की प्ररूपणा करते हैं—[सव्वे पाणा] सभी प्राणी—पृथिव्यादि स्थावर एवं

द्वीन्द्रियादि पञ्चेन्द्रियपर्यन्त के जीवमात्र [सव्वेभूया] सभी भूत होनेवाले, हो गये एवं वर्तमान में हुवे [सव्वे जीवा] जी गये, जीते हुवे, जीनेवाले [सव्वे सत्ता] स्वकृत कर्मबल से होने वाले सुखदुःखकी सत्तावाले को [न हंतव्वा] दंडे आदि से न हणे [ण अज्जाएयव्वा] इन को मारने के लिए आज्ञा न दें [न परिघेत्तव्वा] ये भृत्यादि मेरे अधीन हैं, ऐसा समझ कर उन्हें दास न बनावे [न परितावेयव्वा] अन्नादि की रुकावट कर पीडा न पहुंचावे [न उवद्दवेयव्वा] इनका विष शस्त्रादि से प्राणवियोग न करे करावे [एस धम्मे] सभी जीवों के घात का निषेधात्मक यही धर्म [सुद्धे] पापानुबंध से रहित होने से शुद्ध माने निर्मल हैं, [णिइए] अविनाशी है शाश्वत गतिवाला है [लोयं समिच्च] समस्त जीवों को दुःखो के जान कर दुःखानल से तप्त लोकों को केवलज्ञान से प्रत्यक्ष कर [खेयन्नेहिं पवेइए] कहा है [तं जहा] वह इस प्रकार है–[उट्ठिएसु वा] धर्माचरण के लिये उद्यमशील हो ऐसे के लिये [अणुट्ठिएसु वा] उद्यमशील न

हो ऐसे के लिए [उवरयदंडेसु वा] मुनियों के लिए एवं [अनुवरयदंडेसु वा] गृहस्थों के लिए [सोवहिएसु वा] हिरण्य सुवर्णादि अगर रागद्वेषादि उवधिवाले के लिए [अणोवहिएसु वा] उपधि से रहितों के लिए [संजोगरएसु वा] पुत्रकलत्रादि में रत हुवे के लिए [असंजोगरएसु वा] संयम में रत हुवे के लिए [तच्चं चेयं] यही तथ्य है [तथा चेयं] जैसे मैने प्ररूपित किया है वैसा ही हैं [अस्सिं चेयं पवुच्चइ] इसी धर्म में कोई विसंवाद नहीं है ॥१२॥

भावार्थ—तदनन्तर महावीर स्वामीने सिंहसेन राजा एवं सीलसेना नामक रानी और अनेक प्रकार के भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क, एवं वैमानिक देवों और उनकी देवियां एवं इन्द्रभूति आदि ब्राह्मणवृंद आदि से भरी महति परिषदा में धर्मकथा कही जो इस प्रकार है–जिस सम्यक्त्वका तीर्थंकरादिकोंने उपदेश किया है वही में कहता हूं–अतीत काल में जितने तीर्थंकर हुए हैं, वर्तमान काल में जो तीर्थंकर

विद्यमान है और जो भविष्य काल में होनेवाले तीर्थंकर भगवान् है वे सभी इस प्रकार कहते हैं, इस प्रकार भाषण करते है, इस प्रकार की प्रज्ञापना करते हैं और इस प्रकार की प्ररूपणा करते हैं–सभी प्राणी पृथिव्यादि स्थावर एवं द्वीन्द्रियादि पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त के सभी प्राणी को सर्वभुत–हो गये, होनेवाले एवं वर्तमान में विद्यमान सभी भूतों को तथा सर्वजीव–जी गये, जीनेवाले एवं जीते हुए जीव मात्र को सर्व सत्व स्वकृत कर्म बल से होनेवाले सुखदुःख के अधिन सत्व को दंडा आदि से न हणे, उनको मारने के लिए आज्ञा न दें ये भृत्यादि मेरे तावे में है ऐसा समझकर उन्हें दास न बनावे.अन्नादि की रुकावट कर उन्हें पीडा न पहुंचावे इनका विष शस्त्रादि से प्राण-वियोग न करें न करावे । सभी जीवों के घात न करने रूप यही धर्म पापानुबंध रहित होने से शुद्ध है। अविनाशी है। शाश्वत गतिवाला हैं। समस्त जीवों के दुःखों को जानने वाले श्री तीर्थंकरोंने दुःखानल से संतप्त लोगों को केवलज्ञान से प्रत्यक्षकर

उनके दुःख की निवृत्ति के लिए कहा है, वह इस प्रकार है–धर्माचरण के लिए उद्यम वाले के लिए, विना उद्यम वाले के लिए, मुनियों के लिए, एवं गृहस्थों के लिए, हिरण्य–सुवर्णादि अथवा रागद्वेषादि उपधिवाले के लिए तथा विना उपधिवालों के लिए पुत्रकलत्रादि परिवार में रत हुवे के लिए, एवं संयम में रत हुवे के लिए, यही धर्म तथ्य है यह जैसा तीर्थंकरोंने प्ररूपित किया है वैसा ही है–इसी धर्म में कोई विसंवाद नहीं है ॥१२॥

मूलम्–तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तं इंदभूइं–भो गोयमगोत्ता इंदभूइत्ति संबोहिय हियाए सुहाए महुराए वाणीए भासीअ। भगवओ वयणं सोच्चा सो पुणो अईव चगियचित्तो जाओ अहो। अणेण मम णामं कहं णायं? एवं वियारियं मणंसि तेण समाहिय किमेत्थ अच्छेरगं–जं

जगपसिद्धस्स तिजगगुरुस्स मज्झ नामं को न जाणइ ? मज्झ मणंसि जो संसओ वट्टइ–तं जइ कहेइ छिंदइ य, ताहे अच्छेरं गणिज्जइ। एवं वियारेमाणं तं भगवं कहीअ–गोयमा ! तुज्झमणंसि एयारिसो संसओ वट्टइ, जं जीवो अत्थि णो वा ? जओ वेएसु–'विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय पुनस्तान्येवानुविनश्यति–न प्रेत्य संज्ञाऽस्ति' त्ति कहियमत्थि। अस्स विसए कहेमि तुमं वेयपयाणं अत्थं सम्मं न जाणासि–जीवो अत्थि, जो चित्तचेयण्ण विण्णाण सन्नाइ लक्खणेहि जाणिज्जइ। जइ जीवो न सिया ताहे पुण्ण पावाणं कत्ता को भवे ? तुज्झ जन्नदाणाइ कज्जकरणस्स निमित्तं को होज्जा ? तवसत्थे वि वुत्तं–'स वै अयमात्मा ज्ञानमयः' अओ सिद्धं जीवो अत्थि त्ति। इच्चाइ पहुवयणं सोच्चा तस्स मिच्छत्तं जले लवणमिव सुज्जोदये तिमिर-

म्मिव चिंतामणिम्मि दारिद्दमिव गलियं ।

एवं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म, हट्ठ-तुट्ठे जाव हियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ । करित्ता एवं वयासी—सद्दहामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं । पत्तियामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं रोएमि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं । अब्भुट्ठेमि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं । एवमेअं भंते ! तहमेअं भंते ! अवितह-मेअं भंते ! असंदिद्धमेयं भंते ! इच्छियमेअं भंते ! पडिच्छियमेअं भंते ! इच्छिय-पडिच्छियमेअं भंते ! से जहेयं तुब्भे वदह त्ति कट्टु समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभायं अवक्कमइ अवक्कमित्ता । पोत्थयं कमण्डलु दब्भासणं पीयंवराहिं जण्णोववीयं च एगंते एडेइ । तए णं

से इंदभूई पमुहा माहणा पंचमुट्ठिलोयं करेंति तए णं सग्गाहिवे देविंदे देवराया पावरण चोलपट्ट सदोरमुहपत्तिं रयहरणं गोच्छगं पडिग्गहं वत्थं च पडिच्छिइ। तए णं से इंदभूई पभिया माहणा मुहपत्तिं मुहे बंधीय चोलपट्टं च परिहिय पावरणं धरीय रयहरणगोच्छग पडिग्गहं धरीय साहुवेसं गिण्हइ। तेण सुभेणं परिणामेणं पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं तदावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ओहिनाणे ओहिदंसणे समुप्पन्ने। तए णं से जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव गच्छइ, गच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहीण पयाहीणं करेइ। करित्ता अलित्तेणं भंते! लोए पलित्तेणं भंते! लोए अलित्तपलित्तेणं भंते! लोए जराए मरणेण य परिसहोवसग्गा फुसंतु तिकट्टु एस मे नित्था-रिए समाणे परलोयस्स हियाए, सुहाए, खेमाए, निस्सेयसाए, अणुगामियत्ताए

भविस्सइ। तं इच्छमि णं देवाणुप्पिया! सयमेव पव्वाविअं, त्ति पत्थेमि। भदन्त! रुक्खस्स उच्चत्तमाविउं वामणजणो विव अहं मइमंदो तुम्हं परिक्खिउं समागओ, सामी। जो तए मम पडिबोहो दत्तो तेणं संसाराओ विरत्तोम्हि। अओ मं पव्वाविय दुक्खपरंपराउलाओ भवसायराओ तारेह।

तए णं समणे भगवं महावीरे इमो मे पढमो गणहरो भविस्सइ' त्ति कट्टु तं पंचसयसिस्ससहियं निय हत्थेण पव्वावेईय। इंदभूई अणगारे मणपज्जवनाणे समुप्पण्णे, छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं गोयमगोत्ते इंदभूई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी जाए इरियासमिए भासासमिए एसणासमिए आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए उच्चारपासवण-

खेलजल्लसिंघाणपरिट्ठावणियासमिए मणसमिए वयसमिए कायसमिए मण-
गुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी चाईवणेलज्जू तवस्सी खंति-
खमे जिइंदिए सोही अणियाणे अप्पुस्सुए अवहिल्ले सामण्णरए इणमेव
निग्गंथं पावयणं पुरओ कट्टु विहरइ। से णं इंदभूई नामं अणगारे गोयम-
गोत्ते सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसहनारायणसंघयणे कणगपुलग-
निघसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे उराले घोरे घोरगुणे घोर-
तवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्तविउलतेउलेस्से चउद्दस पुव्वी चउ-
णाणोवगए सव्वक्खरसण्णिवाई समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढ-
जाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥१२॥

शब्दार्थ-[तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे] उस काल और उस

समय में श्रमण भगवान महावीरने [तं इंदभूइं–भो गोयमगोत्ता इंद भूइत्ति संबोहिय हियाए सुहाए महुराए वाणीए भासीअ] उन इन्द्रभूति से 'हे गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति! इस प्रकार सम्बोधन करके हितरूप, सुखरूप, और मधुरवाणी से भाषण किया। [भगवओ वयणं सोच्चा सो पुणो अईव चगियचित्तो जाओ] भगवान का कथन सुनकर इन्द्रभूति और अधिक आश्चर्य चकित हो गये [अहो! अणेण मम णामं कहं णायं ?] सोचने लगे–' आश्चर्य है कि इन्हों ने मेरा नाम कैसे जान लिया? [एवं वियारिय मणंसि तेण समाहियं किमेत्थ अच्छेरगं–जं जगपसिद्धस्स तिजगगुरुस्स मज्झ नामं को न जाणइ ?] फिर मनही मन समाधान कर लिया–इस में विस्मय की बात ही कौन–सी हैं ? मैं जगत् में प्रसिद्ध और तीनों जगत् का गुरु हूं। अतः मेरा नाम कोन नहीं जानता ? [मज्झ मणंसि जो संसओ वट्टइ–तं जइ कहेइ छिंदइय, ताहे अच्छेरं गणिज्जइ] हां यदि मेरे मन में जो संशय विद्यमान है, उसे बतलादें और उसका निवारण करदें तो मैं

इन्द्रभूतेः शङ्का-निवारणम् प्रतिबोधश्च

आश्चर्य मानुं। [एवं वियारेमाणं तं भगवं कहीअ गोयमा! तुज्झ मणंसि एयारिसो संसओ वट्टइ-] इस प्रकार विचार करते हुए इन्द्रभूति से भगवान ने कहा—गौतम! तुम्हारे मन में ऐसा संशय है कि—[जं जीवो अत्थि णो वा? अओ वेएसु—विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय पुनस्तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्यसंज्ञाऽस्ति' त्ति कहियमत्थि] जीव है या नहीं है? क्योंकि वेदों में ऐसा कहा गया है कि विज्ञान घन ही भूतों से उत्पन्न होकर फिर उन्हीं में लीन हो जाता है। परलोक संज्ञा नहीं हैं [अस्स विसए कहेमि—तुमं वेयवयाणं अत्थं सम्मं ण जाणासि] इस विषय में मैं ऐसा कहता हूं कि तुम वेदों के पदों का सही अर्थ नहीं जानते [जीवो अत्थि, जो चित्त चेयण्ण विण्णाण सन्नाइ लक्खणेहिं जाणिज्जइ] जीवका आस्तित्व है जो चित्त, चैतन्य, विज्ञान तथा संज्ञा लक्षणों से जाना जाता है [जइ जीवो न सिया ताहे पुण्णपावाणं कत्ता को भवे?] यदि जीव न हो तो पुण्य पाप का कर्त्ता कौन है? [तुज्झ जन्नदाणाइ कज्जकरणस्स निमित्तं को

होज्जा] तुम्हारे यज्ञ दान आदिका कार्य करने का निमित्त कोन है ? [तव सत्थे वि वुत्तं–स वै अयमात्मा ज्ञानमयः] तुम्हारे शास्त्रों में भी कहा है–वह आत्मा निश्चय ही ज्ञानमयहै [अओ सिद्धं जीवो अत्थित्ति] अतः सिद्ध हुआ कि जीव है [इच्चाइ पहुवयणं सोच्चा तस्स मिच्छत्तं जले लवणमिव सुज्जोदये तिमिरमिव चिंतामणिम्मि दारिद्दमिव गलियं] इत्यादि प्रभु के वचन सुनकर इंन्द्रभूति का मिथ्यात्व जल में नमक की भांति सूर्योदय में अंधकार तथा चिन्तामणि रत्न की प्राप्ति होने पर दरिद्रता की तरह गल गया।

[समणस्स भगवओ महावीरस्स] श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की [अंतीए] समीप से [धम्मं सोच्चा] धर्म का श्रवण करके [णिसम्म] हृदयमें धारण कर के [हट्ठतुट्ठ जाव हियए] हृष्ट तुष्ट यावत् हृदयवाला होकर के [अट्ठाए उट्ठेइ । उत्थान शक्ति, से ऊठा [उट्ठित्ता] ऊठकरके [समणं भगवं महावीरं] श्रमण भगवान् महावीर को [तिक्खुत्तो]

इन्द्रभूतेः शङ्का-निवारणम् प्रतिबोधश्च

तीनबार [आयाहिणं पयाहिणं करेइ] आदक्षिण प्रदक्षिणा करता है [करित्ता] आदक्षिणा प्रदक्षिणा करके [एवं वयासी] इस प्रकार बोला [सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं] हे भगवन् मैं निर्ग्रन्थ प्रवचनों पर श्रद्धा करता हूं [पत्तियामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं] हे भगवन निर्ग्रन्थ के प्रवचनों पर प्रतीती रखता हूं [रोएमि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं] हे भगवन् निग्रन्थ के प्रवचनों पर रुचि करता हूं [अब्भुट्ठेमि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं] हे भगवान् में निर्ग्रन्थ प्रवचनों को स्वीकार करता हूं [एवमेअं भंते !] हे भगवन् यह निर्ग्रन्थ प्रवचन इसी प्रकार है [तहमेअं भंते!] हे भगवन् यह यथावत् ही हैं [अवितहमेअं भंते] हे भगवन् यह प्रवचन सत्य है [असंदिद्धमेयं भंते !] हे भगवन यह प्रवचन संदेह रहित है [इच्छियमेअं भंते !] हे भगवन् यह प्रवचन इष्ट कारी है [पडिच्छियमेअं भंते !] हे भगवन् यह प्रतिष्ठ है [इच्छियपडिच्छियमेअं भंते !] हे भगवन् ! यह पतिष्ठित है [से जहेअं तुब्भे वदह] वह ऐसा ही है जैसे आप कहते हो [ति कट्टु]

इस प्रकार कह कर [समणं भगवं महावीरं] श्रमण भगवन् महावीरको [वंदइ नमंसइ] वंदना नमस्कार किया [वंदित्ता नमंसित्ता] वंदना नमस्कार करके [उत्तरपुरत्थिमं दिसीभायं] उत्तर पूर्व दिशा माने ईशानकोन में [अवक्कमइ] गया [अवक्कमित्ता] जाकर के पोत्थयकमंडलुं] पोथी एवं कमंडलु तथा [दब्भासणपियंवरा] दर्भासन एवं पीतांबर [जण्णोववीयं च] और यज्ञोपवीत को [एगंते एडेह] एकबाजु पर रखदिये [तए णं इंदभूई पमुहा माहणा] इन्द्रभूति आदि ब्राह्मणों ने [पंचमुट्ठिलोयं करेंति] पंचमुष्टिक लोच किया [तएणं] तत्पश्चात् [सग्गाहिवे देविंदे देवराया] स्वर्ग के अधिपति देवेन्द्र देवराजने [पावयणं चोलपट्टसदोरयमुहपत्तिं] चद्दर चोलपट्ट-वस्त्र एवं सदोरक मुखवस्त्रिका [रयहरणं गोच्छगं] रजोहरण गोच्छक [पाडिग्गहं वत्थं च] पात्री एवं वस्त्र [पडिच्छिय] अर्पित किये [तए णं से इंदभूई पमुहा माहणा] तदनन्तर इन्द्रभूति आदि ब्राह्मणोने [मुहपत्तिं मुहे बंधिय] सदोरक मुंहपत्तिको मुखपर बांधी [चोलपट्टं च

इन्द्रभूतेः शङ्का-निवारणम् प्रतिबोधश्च

परिहिय] और चोल पट्टको पहिरकर एवं [रयहरण गोच्छग पडिग्गहं धरीय] रजोहरण गोच्छक एवं पात्रा को धारण करके [साहुवेसं गिण्हइ] साधुवेश को ग्रहण किया [तेण सुभेण परिणामेणं] यह शुभ परिणाम से [पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं] प्रशस्त अध्यवसाय से [लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं] विशुद्धयमान लेश्या से [तदावरणिज्जाणं कम्माणं] तदावरण कर्म के [खओवसमेणं] क्षयोपशम से [ओहिनाणे ओहिदंसणे समुप्पन्ने] इंद्रभूति को अवधिज्ञान एवं अवधिदर्शन की उत्पत्ती हुई]

[तएणं से] तत्पश्चात् वे [जेणेव समणे भगवं महावीरे] जहां पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे [तेणेव गच्छइ] वहां पर गया [गच्छित्ता] जा कर के [तिक्खुत्तो] तीन बार [आयाहिण पयाहीणं करेइ] आदक्षिणा प्रदक्षिणा की [करित्ता] आदक्षिण प्रदक्षिणा करके [अलित्ते णं भंते ! लोए] यह लोक दुःखो से जल रहा है अर्थात् कषाय रूपी अग्नि से जल रहा है [पलित्तेणं भंते ! लोए] हे भगवन् यह लोक प्रदीप्त

हो रहा है [अलित्तपलित्तेणं भंते लोए] यहलोक आदीप्त प्रदीप्त हो रहा है [जराए-मरणेण य] जरा एवं मरण के दुःखो से [परिसहोवसग्गा फुसंतु] परीषहों एवं उपसर्ग से हानि न हो [ति कट्टु] ऐसा विचार कर के [एस मे नित्थारिए समाणे] यदि में उसको बचालूं तो मेरी आत्मा [परलोयस्स] परलोकमें [हियाए सुहाए] हितरूप, सुखरूप, [खेमाए] कुशलरूप [निस्सेयसाए] परंपरा से कल्याणरूप होगा [अणुगामियत्ताए] परलोकमें साथ रहनेवाला [भविस्सइ] होगा [तं इच्छामिणं देवाणुप्पिया] तो हे देवानुप्रिय मैं चाहता हूं [सयमेव पव्वाविउं पत्थेमि] आपके द्वारा प्रव्राजित करनेकी प्रार्थना करता हूं।

[तएणं समणे भगवं महावीरे 'इमो मे पढमो गणहरो भविस्सइ' त्तिकट्टु तं पंचसयसिस्ससहियं निय हत्थेण पव्वावेईअ] तब श्रमण भगवान महावीर ने (यह मेरा प्रथम गणधर होगा) इस प्रकार कहकर पांचसों शिष्यों के सहित इन्द्रभूति को अपने

हाथ से दीक्षा दी [इंदभूई अणगारे मणवज्जवनाणे समुप्पणे] इन्द्रभूति अनागार को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हो गया [छट्ठछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेभाणे विहरइ] बेले बेले निरन्तर यावज्जीव तपः कर्म से, संयम से और अनशनादि बारह प्रकार की तपस्या से आत्माको भावित करते हुए विचरते थे। [तेणं कालेणं तेणं समएणं गोयमगोत्ते इंदभूई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासीजाए] उस काल और उस समय गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अंतेवासी अनगार हुए [इरियासमिए भासासमिए आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघाणपरिट्ठावणिया समिए] ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति आदान भाण्डमात्र निक्षेपणा समिति उच्चार प्रस्रवण श्लेष्म शिंघाण जल्लपरिष्ठापना समिति [मणसमिए वयसमिए कायसमिए मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते गुत्ते गुत्तिदिए गुत्तबंभयारी] मनःसमिति वचनसमिति, कायसमिति, मनगुप्ति

वचनगुप्ति और कायगुप्ति से गुप्त, गुप्तेन्द्रिय गुप्त ब्रह्मचारी [चाई वणेलज्जू तवस्सी खंति खमें जिइंदिए सोही आणियाणे अप्पस्सुए अवहिल्ले सामण्णरए इणमेव निग्गंथं पावयणं पुरओ कट्टु विहरइ] त्यागी, वनकी लज्जावंती वनस्पति के समान पाप से लज्जित होने वाले, तपस्वी क्षमा करने में समर्थ जितेन्द्रिय, चित्त शोधक, निदान रहित अत्वरित स्थीर समीचीन संयम में लीन! इसी निर्ग्रन्थ प्रवचन को आगे करके विचरने लगे [से णं इंदभूई णामं अणगारे गोयमगोत्ते सत्तुस्सेहे] वह गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामक अणगार सात हाथ उंचे [समचउरंससंठाणसंठिए] समचतुरस्रसंस्थानवाले [वज्जरिसहनारायणसंघयणे] तथा वज्ज ऋषभ नाराचसंहनन से युक्त [कणग पुलग निघसपम्हगोरे] एवं सुवर्ण के टुकडे की कसोटी पर घिसी हुइ रेखा के समान तथा कमल की केसर के समान गौर वर्ण के थे [उग्गतवे] उग्र तपस्वी [दित्ततवे] दीप्त तपस्वी [तत्ततवे] तप्ततपस्वी [महातवे] महातपस्वी [उराले] उदार [घोरे] घोर [घोरगुणे]

घोर गुणी [घोरतवस्सी] घोर तपस्वी [घोरबंभचेरवासी] घोर ब्रह्मचारी [उच्छूढसरिरे] देह की ममता से रहित [संखित्तविउलतेउलेसे] विशाल तेजोलेश्या को संक्षिप्त करके रहनेवाले [चउद्दसपुव्वी] चौदह पूर्वो के ज्ञाता [चउणाणोवगए] चार ज्ञानों से संपन्न [सव्वक्खरसण्णिवाइ] और समस्त अक्षरों के ज्ञाता थे [समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते] श्रमण भगवान् महावीर से न अधिक दूर और न अधिक नजदीक [उड्ढजाणू अहोसिरे] उपर घूटने और नीचा सिर किये [झाणकोट्ठोवगए] ध्यान रूपी कोष्ठ में प्राप्त होकर [संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ] संयम और तपसे अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ॥१३॥

भावार्थ—उस कालमें और उस समय में अर्थात् जब इन्द्रभूति अपने शिष्य परिवार के साथ, गर्व सहित, भगवान् महावीर के समीप पहूंचे तब, भगवान् 'हे गौतम गोत्र में उत्पन्न इन्द्रभूति! इस पद से संबोधित करके कल्याणकारिणी

सुखकारिणी और मधुरवाणी से बोले। भगवान के द्वारा किया गया अपने नाम और गोत्रका उच्चारण सुनकर इन्द्रभूति के मन में अत्यन्त आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगे कि महावीरने मुझ अपरिचित का नाम गोत्र कैसे जाना? ऐसा सोचकर फिर इन्द्रभूतिने अपने मनमें समाधान कर लिया कि मेरा नाम गोत्र जान लेने में आश्चर्य क्या है? मैं, जगत् में विख्यात हूं, और तीनों लोकों का गुरू हूं। कौन लालका युवक और वृद्ध है जो मेरा नाम न जानता हो?, आश्चर्य तो तब गिनूगा जब यह मेरे मनमें जो संशय है, उसको कह दें औरें उसका निवारण भी कर दें। गौतम इन्द्रभूति यह सोच ही रहे थे कि भगवान्ने उनसे कहा हे गौतम इन्द्रभूति! तुम्हारे मन में यह संदेह है कि जीव (आत्मा) का अस्तित्व है या नहीं हैं? क्यों कि वेदों में भूतों से उत्पन्न हो कर उन्हीं में लीन हो जाता है, परलोक संज्ञा नहीं है' ऐसा कहा है। मैं इस विषय में कहता हूं तुम वेद के पदों का वास्तविक अर्थ नहीं जानते।

इन्द्रभूतेः
शङ्का-
निवारणम्
प्रतिबोधश्च

उक्त वेदवाक्य का तुम्हारा जाना हुआ अर्थ यह है–'घने आनन्द' आदि स्वरूप होने के कारण विज्ञान ही विज्ञान घन कहलाता है। वह विज्ञान घन ही प्रत्यक्ष से प्रतीत होनेवाले पृथ्वी आदि भूतों से उत्पन्न हो कर भूतों में ही अव्यक्त रूप से लीन हो जाता है। मृत्यु के बाद फिर जन्म लेना प्रेत्य कहलाता है। ऐसी प्रेत्य संज्ञा अर्थात् परलोक संज्ञा नहीं है।' इससे तुम मानते हो कि जीव नहीं है। इस वाक्य का वास्तविक अर्थ यह है, ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग रूप विज्ञान विज्ञानघन कहलाता है। विज्ञान से अभिन्न होने के कारण आत्मा विज्ञानघन है। अथवा आत्मा का एक प्रदेश अनन्त विज्ञान पर्यायों का समूह रूप है, इस कारण आत्मा विज्ञान घन ही है। यह आत्मा अर्थात् विज्ञानघन भूतों से उत्पन्न होता हैं क्योंकि घट के कारण आत्मा घट विज्ञान रूप परिणति से युक्त होता है क्यों कि घट विज्ञान के क्षयोपशमका अर्थात् घट विज्ञान के आवरण के क्षयोपशम का वहां आक्षेप होता

है: अन्यथा निर्विषय होने के कारण उसमें मिथ्यापन का प्रसंग हो जायगा। अतएव पृथ्वी आदि भूतों से कथंचित् उत्पन्न हो कर, बाद में आत्मा भी उन भूतों के नष्ट हो जाने पर, उस भूत विज्ञान घनरूप पर्याय से नष्ट हो जाता है। अथवा भूतों के अलग हो जाने पर सामान्य चैतन्य के रूप में स्थिर रहता है, अतः उसकी प्रेत्य संज्ञा नहीं है, अर्थात् प्राकृतिक घटादि विज्ञान की संज्ञा उसमें नहीं रहती है। इस से जीव है, यही मत सिद्ध होता है अन्तःकरण को चित कहते हैं चेतन के भाव को चैतन्य कहते हैं, अर्थात् संज्ञान का जो कर्त्ता हो वह चैतन्य है। विशिष्ट ज्ञान विज्ञान कहलाता है। चेष्टा संज्ञा कहलाती है। इन चित्त, चतन्य, बिज्ञान और संज्ञा आदि लक्षणों से जीव का ज्ञान होता है,। इससे जीव की सिद्धि होती है। जीवकी सिद्धि का दूसरा उपाय बतलाते हैं अगर जीव न हो तो पुण्य और पापका कर्ता जीव के अतिरिक्त दूसरा कौन होगा?

अर्थात् कोई भी नहीं हो सकता। जीव के बिना पुण्य पाप को उत्पन्न करनेवाला व्यापार संभव नहीं है। इसलिये पुण्य पाप का कर्ता होने से जीव का अस्तित्व सिद्ध होता है। जीव है, इसमत को फ़िर पुष्ट करते हैं—तुम्हारे माने हुए यज्ञदान आदि कार्यों के करने का निमित्त जीव के अभाव में कौन होगा? जीव ही उन कार्यों के करने का निमित्त हो सकता है, क्योंकि व्यापार जीव के अधीन है। इस से भी जीव है, यह सिद्ध होता है। इस प्रकार जीव का अस्तित्व सिद्ध कर के अब वेद के प्रमाण से उसे सिद्ध करने के लिये कहते हैं तुम्हारे शास्त्र में भी कहा है—'सर्वे अयमात्मा ज्ञानमयः'—चित्त आदि लक्षणों से प्रतीत होने वाला यह आत्मा ज्ञानघन रूप है। अतः जीव ह, यह मत सिद्ध हुआ। इत्यादि प्रभु के वचनों को सुनकर इन्द्रभूति का मिथ्यात्व उसी प्रकार गल गया, जसे जल में लवण गल जाता है सूर्य का उदय होंने पर अंधकार नष्ट हो जाता है और चिन्तामणी

की प्राप्ति होजाने पर दरिद्रता का नाश हो जाता है।

श्रमण भगवन् महावीरस्वामी से धर्म का श्रवण करके और उसे हृदय में धारण करके हृष्टतुष्ट यावत् हृदयवाला होकर के अपनी उत्थान शक्ति से ऊठा ऊठ करके श्रमण भगवान् महावीर को तीनवार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की आदक्षिणा प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले हे भगवन् मैं निर्ग्रन्थ प्रवचनों पर श्रद्धा करता हूं, हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ के प्रवचनों पर प्रतीती रखता हूं, हे भगवन्! मैं निग्रन्थ के प्रवचनों पर रुचि करता हूं, हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचनों को स्वीकार करता हूं, हे भगवन्! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन इसी प्रकार है, हे भगवन् यह यथावत् ही हैं, हे भगवन्! यह प्रवचन सत्य है, हे भगवन्! यह प्रवचन संदेह रहित है। हे भगवन्! यह प्रवचन इष्ट कारी है। हे भगवन्! यह प्रवचन प्रतिष्ठ है। हे भगवन्! यह प्रवचन प्रतिष्ठित है। वह ऐसा ही है जैसे आप कहते हो। इस

प्रकार कह कर श्रमण भगवान् महावीरस्वामी को वंदना की नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके उत्तर पूर्व दिशा– ईशानकोन में गया। वहां जाकर पोथी एवं कमंडलु तथा दर्भासन और पीतांबर एवं यज्ञोपवीत को एकबाजु पर रखदिये तत्पश्चात् इन्द्रभूति आदि ब्राह्मणों ने पंचमुष्टिक लोच किया। तदनन्तर स्वर्ग के अधिपति देवेन्द्र देवराजने चद्दर चोलपट्ट–वस्त्र, पात्र एवं सदोरक मुखवस्त्रिका, रजोहरण गोच्छक पात्री एवं वस्त्र उनको दिये। तदनन्तर इन्द्रभूति आदि ब्राह्मणोंने सदोरकमुहपत्तिको मुखपर बांधी एवं चोलपट्टको पहिना तथा चद्दर ओढी एवं रजोहरण गोच्छक एवं पात्रा को धारण करके साधुवेश ग्रहण किया, यह शुभ परिणाम से एवं प्रशस्त अध्यवसाय से विशु-द्ध्यमान लेश्या से तदावरण कर्म के क्षयोपशम से इंद्रभूति को अवधिज्ञान एवं अव-धिदर्शन उत्पन्न हुवा।

तदनन्तर वे जहां पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे वहां पर गये, वहां जा करके

भगवान की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, आदक्षिणा प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार प्रभु से उन्होंने कहा हे भदन्त ! यह लोक दुःखो से जल रहा है, अर्थात् कषायाग्नि से यह लोक प्रदीप्त हो रहा है, यह लोक आदीप्त प्रदीप्त हो रहा है, जरा एवं मरण के दुःखो से परीषहों एवं उपसर्ग से हानि न हो ऐसा विचार कर के यदि में उसको बचालूं तो मेरी आत्मा परलोकमें हितरूप, सुखरूप, कुशलरूप परंपरा से कल्याणरूप होगा। परलोक में साथ रहनेवाला होगा। तो हे देवानुप्रिय मैं चाहता हूं की आप मुझे प्रव्राजित करें ऐसी मेरी प्रार्थना है। तब श्रमण भगवान् महावीरने 'यह इन्द्रभूति मेरा प्रथम गणधर होगा' इस–प्रकार ज्ञान से देखकर पांचसो शिष्यो सहित इन्द्रभूति को अपने हाथसे दीक्षा प्रदान की उसके बाद इन्द्रभूति अनगार को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हो गया, बेले–बेले निरन्तर यावजीव तपः कर्म से संयम से और अनशनादि बारह प्रकार की तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए विचरने

लगे। उसकाल और उस समय में गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ सबसे प्रथम--शिष्य हुए। वह कैसे थे सो कहते हैं वह ईर्यासमित थे अर्थात् ईर्यासमिति से युक्त थे इसी प्रकार भाषा समिति, एषणा समिति, आदान-भाण्डमात्रनिक्षेपणा समिति थे, उच्चारप्रस्रवण श्लेष्मशिङ्घाणजल्ल परिष्ठापनिका समिति थे, मनःसमिति थे, वचन समिति थे, मनोगुप्त अर्थात् मनोगुप्ति से युक्त थे, इसी प्रकार वचनगुप्त थे, कायगुप्त थे, गुप्त थे गुप्तेन्द्रिय थे गुप्तब्रह्मचारी थे। इर्यासमिति से लेकर गुप्तब्रह्मचारी तक के पदों का अर्थ १७४ वे सूत्रकी टीका के हिन्दी भाषानुवाद से जान लेना चाहिये। वह त्यागी--त्यागशील थे वन में जो लाजवंती नामक वनस्पति होती है, उसके समान पापमय व्यापारों से लज्जाशील संकोचशील थे। बेला तेला आदि की भी तपश्चर्या से युक्त थे। क्षमाशील होने के कारण दूसरों के द्वारा कृत अपकारों को सह लेते थे। इन्द्रियों को वश में कर चूके थे। अन्तःकरण के शोधक थे।

निदान (नियाणा) अर्थात् आगामी काल संबंधी विषयों की तृष्णा से रहित थे। स्थिर थे। और समीचीन साधु आचार में तत्पर थे इसी निर्ग्रन्थ को आगे करके विचरते थे। वह इन्द्रभूति–अनगार गौतम गोत्रीय साथ हाथ के ऊंचे शरीरवाले थे। हाथ, पैर, ऊपर नीचे के चारो भाग जिसके सम–समान हो उसको समचतुरस्र कहते हें। ऐसे आकार विशेष को समचतुरस्र संस्थान कहते है। उनका वज्रऋषभ–नाराच संहनन था। कीली के आकार की हड्डी से मर्कट बंधको नाराच कहते हैं। अतः दोनों तरफ से मर्कट बंध से बंधी हुई और पट्ट की आकृति की तीसरी वेष्टित की हुई दोनों हड्डीयों के ऊपर, उन तीनों को फिर भी अधिक दृढ करने के लिये जहां कीलीके आकार की वज्र नामक, अस्थि लगी हुई हो वह वज्रऋषभ नाराच कहलाता हैं। जिस के द्वारा शरीर के पुद्गल दृढ किये जाऐं, उस अस्थि निचय हड्डियों के रचना विशेष को संहनन कहते । ऐसा वज्रऋषभनाराच संहनन इन्द्रभूति अनगार को प्राप्त था। उनका शरीर ऐसा

इन्द्रभूतेः शङ्का-निवारणम् प्रतिबोधश्च

गौर वर्णथा जैसे स्वर्ण के खंड की कसोटी पर घिसने से सुनहरी और चमकती हुई रेखा होती है, अथवा जैसे कमलका किंजल्लक होता है। अभिप्राय यह कि उनका शरीर कसोटी पर घिसे स्वर्णकी रेखा और कमल के केसर के समान चमकीला एवं गौर वर्णका था। अथवा कसोटी पर घिसे स्वर्ण की अनेक रेखाओं के समान गोरे शरीरवाले थे। बढते हुए परिणामों के कारण तथा पारणादि में विचित्र प्रकार के अभिग्रह करने के कारण उनका अनशन आदि बारह प्रकार का तप उत्कृष्ट था, अतः वे उग्रतपस्वी थे। बढी हुई तपस्यावान् होने से दीप्त तपस्वी थे अधिक तपस्या करने के कारण महातपस्वी थे! प्राणीमात्र के प्रति मैत्री भाव रखने के कारण उदार थे। परीषह, उपसर्ग एवं कषाय रूपी शत्रुओं को नष्ट करने में भयानक होने से घोर थे। वह घोर (कायरों द्वारा दुष्कर) मूल गुणों से युक्त होने से घोर गुणवान् थे:दुश्चर तपश्चरण के धारक थे। कायर जनों द्वारा आचरण न किये जा सकने योग्य

ब्रह्मचर्य का पालन करते थे उन्हों ने देहाध्यास का त्याग कर दिया था, अथवा वे शरीर के संस्कार (श्रृंगार) से रहित थे। विशिष्ट तपस्या से प्राप्त हुई विशाल तेजोलेश्या नामकलब्धि उन्होंने शरीर में :ही लीन (छीपा) कर रक्खी थी। चौदह पूर्वों के धारक थे। मति–श्रुत अवधि–मनःपर्यवज्ञान से युक्त थे। उनकी बुद्धि समस्त अक्षरों में प्रवेश करने वाली थी। यह भगवान् से न अधिक दूर रहते और न अत्यन्त समीप ही रहते थे। उचित स्थान पर रहते थे। वहां घुटने ऊपर करके तथा मस्तक नमाकर ध्यान रूपी कोष्ट को प्राप्त थे। किसी भी एक वस्तु में एकाग्रता पूर्वक चित्त का स्थिर होना ध्यान कहलाता ह। वे उसी ध्यान रूपी कोष्ठ (कोठी में) स्थित थे। अर्थात् जैसे कोठी में रहा हुआ धान इधर–उधर बिखरता नहीं है, उसी प्रकार ध्यान करने से इन्द्रियों की तथा मन की वृत्तिबाहर नहीं जाती है आशय यह है कि इन्द्रभूति अनगार ने अपने चित्त की वृत्ति को नियंत्रित कर लिया था। सतरह प्रकार के संयम और

द्वादश प्रकार के तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ॥१३॥

मूलम्–तए णं अग्गिभूई माहणो सव्वविज्जापारगो इंदभूइव्व चिंतेइ सच्चं सो महं इंदजालिओ दीसइ। अणेण मम भाया इंदभूइ वंचिओ। अहुणा अहं गच्छामि असव्वण्णुं अप्पाणं सव्वण्णुं मण्णमाणं तं धुत्तं पराजिणिय मायाए वंचियं मज्झभायरं पडिणियट्टमित्ति वियारिय पंचसयसिस्सेहिं परिवुडो सगव्वं पहुसमीवे पत्तो। तं भयवं नाम संसयनिद्देसपुव्वं संबोहिय एवं वयासी-भो अग्गिभूई! तुज्झमणंसि कम्मविसए संसओ वट्टइ–जं कम्मं अत्थि वा नत्थि? 'पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं' इच्चाइं वेयवयणाओ सव्वं अप्पा चेव न कम्मं। जई कम्मं भवे ताहे पच्चक्खाइप्पमाणेणं तं लब्भं सिया तं नत्थि! जइ कम्मं मन्निज्जइ ताहे तेण मुत्तेण कम्मुणा सह अमुत्तस्स

जीवस्स कहं संबन्धो हवेज्जा ? अमुत्तस्स जीवस्स मुत्ताओ कम्माओ उवघा-याणुग्गहा कहं होउं सक्किज्जा ? जहा आगासो खग्गाइणा न छिज्जइ, चंदणेण नोवलिविज्जइ त्ति, मिच्छा अइसयणाणिणा कम्मं पच्चक्खत्तणेण पासंति छउमत्थाओ जीवाणं वेचित्त पासियं तं अणुमाणेण जाणंति। कम्मस्स विचि-त्तयाए चेव पाणीणं सुहदुहाइ भावा संपज्जंते, जओ कोई जीवो राया हवइ, कोइ आसो गओ वा तस्स वाहणो हवइ कोवि पयाई, कोई छत्तधारगो हवइ। एवं कोवि खुयखामो भिक्खागो होइ, जो अहोरत्तं अडमाणो वि भिक्खं न लहइ। जमगसमगं ववहरमाणाणं पोयवणियाणं मज्झे एगो तरइ, एगो समुद्दंमि बुडइ। एयारिसाणं कज्जाणं कारणं कम्मं चेव, नो णं कारणेणं विणा किं पि कज्जं संपज्जए। अह य जहा मुत्तस्स घडस्स अमुत्तेण आगासेण सह

संबंधो तहा, कम्मणो जीवेण सह। जहा य मुत्तेहि नाणाविहेहि मज्जेहि, ओसहेहि य अमुत्तस्स जीवस्स उवघाओ अणुग्गहो य हवंतो लोए दीसइ, तहेव अमुत्तस्स जीवस्स मुत्तेण कम्मुणा उवघाओ अणुग्गहो य मुणेयव्वो। अह य वेयपएसु वि न कत्थइ कम्मुणो निसेहो, तेण कम्मं अत्थि त्ति सिद्धं। एवं पहुवयणेण संसयम्मि छिन्नम्मि समाणे हट्ठतुट्ठो अग्गिभूई वि पंचसय-सिस्ससहिओ पव्वइओ ॥१४॥

अग्निभूतेः शङ्का-निवारणम् प्रव्रजनं च

शब्दार्थ–[तए णं अग्गिभूईमाहणो सव्वविज्जापारगो] इसके बाद समस्त विद्याओं में पारंगत अग्निभूति ब्राह्मणने [इंदभूइव्व चिंतेइ सच्चं सो महं इंदजालिओ दीसइ) इन्द्रभूति की ही तरह विचार किया सचमुच वह तो बडा भारी इन्द्रजालिक दिखता है [अणेण मम भाया इन्द्रभूइ वंचिओ] इसने मेरे भाई इन्द्रभूति को ठग लिया है

[अहुणा अहं गच्छामि] अब मैं जाता हूं [असवण्णुं अप्पाणं सव्वण्णुं मण्णमाणं तं धुत्तं पराजिणिय] और असर्वज्ञ किन्तु अपने आपको सर्वज्ञ माननेवाले उस धूर्त को पराजित कर वे [मायाए वंचियं मज्झभायरं पडिणियट्टे] माया से ठगे हुए अपने भाई इन्द्रभूति को वापिस लाता हूं। [मित्तिवियारिय पंचसयसिस्सेहिं परिवुडो सगव्वं पहु-समीवे पत्तो] इस प्रकार विचार करके वह अपने पांचसो शिष्यों के साथ गर्व सहित प्रभु के पास पहुंचा [तं भगवं नामसंसयनिद्देसपुव्वं संबोहिय एवं वयासी—] भगवानने उनके नाम और संशय का उल्लेख कर के संबोधन करते हुए कहा [भो अग्गिभूई! तुज्झ मणंसि कम्मविसए संसओ वट्टइ] हे अग्निभूति! तुम्हारे मन में कर्म के विषय में संशय है (जं कम्मं अत्थि वा णत्थि] कि कर्म है या नहीं है? ('पुरुष-एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्चभाव्यं' इच्चाइ वेयवयणाओ सव्वं अप्पाचेव न कम्मं) यह सब पुरुष ही है जो है, हो चुका है और जो होनेवाला है। इस वेद वचन से सब कुछ

आत्मा ही है, कर्म नहीं। [जइ कम्मं भवे ताहे पच्चक्खाइप्पमाणेण तं लब्भं सिया] यदि कर्म होता तो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से उसकी उपलब्धि होती [तं नत्थि ? जइ कम्मं मण्णिज्जइ ताहे तेण मुत्तेण कम्मुणा सह अमुत्तस्स जीवस्स कहं संबंधो हवेज्जा ?] परन्तु उपलब्धि नहीं होती अतः कर्म नहीं है यदि कर्म माना जाय तो मूर्त कर्म के साथ अमूर्त जीव का संबंध कैसे हो ? [अमुत्तस्स जीवस्स मुत्ताओ कम्माओ उवघायाणुग्गहा कहं होउं सक्किज्जा ?] मूर्त कर्म से अमूर्त जीव का उपघात और अनुग्रह कैसे हो सकता है ? [जहा आगासो खग्गाइणा न छिज्जइ] जैसे आकाश खड्ग आदि से नहीं काटा जा सकता [चंदणेण नोवलिविज्जइ त्ति] और चन्दन आदि से लिप्त नहीं किया जा सकता [तं मिच्छा] किन्तु इस प्रकार सोचना मिथ्या हैं [अइसयणाणिणो कम्मं पच्चक्खत्तणेण पासंति] अतिशय ज्ञानी प्रत्यक्ष प्रमाण से कर्मों को देखते हैं [छउमत्थाउ जीवाणं वेचित्तं पासिय तं अणुमाणेण जाणंति] और असर्वज्ञ

जीवों की विचित्रता देखकर अनुमान से कर्म को जानते हैं [कम्मस्स विचित्तयाए चेव पाणीणं सुहदुहाइ भावा संपज्जंते] कर्म की विचित्रता से ही प्राणियों में सुखदुःख की अवस्था उत्पन्न होती है [जओ कोई जीवो राया हवइ] कोई जीव राजा होता ह [कोई आसा गओ वा तस्स वाहणो हवइ को वि पयाई, कोई छत्तधारगो हवइ] कोई हाथी अथवा कोई घोडा होकर उसका वाहन बनता है कोई पैदल चलता है कोई छत्र धारण करता है [एवं कोई खुयखामो भिक्खागो होइ जो अहोरत्तं अडमाणो वि भिक्खं न लहइ] इसी प्रकार कोई भूख से दुर्बल होता हैं और दिनरात भटकता हुआ भी भीख नहीं पाता [जमगसमगं ववहरमाणाणं पोयवणियाणं मज्झे एगो तरइ एगो समुद्दंमि बुडइ] तथा एक ही समय में व्यापार करनेवाले नौका व्यापारियों में से एक सकुशल समुद्रपार हो जाता है और दूसरा समुद्र में ही डूब जाता है। [एयारिसाणं कज्जाणं कारणं कम्मं चेव,] इन सब विचित्रकार्यों का कारण कर्म ही है; [नो णं

कारणेणं विणा किंपि कज्जं संपज्जए] कर्म के शिवाय और कुछ भी प्रतीत नहीं होता।

[अह य जहा मुत्तस्य घडस्स अमुत्तेणं आगासेण सह संबंधो तहा कम्मणो जीवेण सह] और जैसे मूर्त घट का अमूर्त आकाश के साथ सम्बंध होता है, उसी प्रकार कर्म का जीव के साथ सम्बन्ध होता है [जहा य मुत्तेहि नाणाविहेहि मज्जेहि, ओसहेहि य अमुत्तस्स जीवस्स उवघाओ अणुग्गहो य हवंतो दिसइ] जसे नाना प्रकार के मूर्त मद्यों से और मूर्त औषधों से जीव का उपघात और अनुग्रह होता हुआ लोक में देखा जाता है [तहेव अमुत्तस्स जीवस्स मुत्तेण कम्मुणा उवघाओ अणुग्गहो य मुणेयव्वो] उसी प्रकार अमूर्त जीव का मूर्त कर्म के द्वारा उपघात और अनुग्रह जानना चाहिये। [अह य वेयपएसु वि न कत्थई कम्मुणो निसेहो तेण कम्मं अत्थि त्ति सिद्धं] इसके अतिरिक्त वेद पदों में भी कहीं भी कर्म का निषेध नहीं किया गया है, अतः कर्म है, यह सिद्ध हुआ। [एवं पहुवयणेण संसयम्मि छिन्नम्मि समाणे हट्ठतुट्ठो अग्गिभूई वि

पंचसयसिस्ससहिओ पव्वइओ] इस प्रकार प्रभु के कथन से संशय दूर हो जाने पर हर्षित और संतुष्ट हुए अग्निभूति भी अपने पांचसो शिष्यों के साथ भगवान् के पास दीक्षित हो गये ॥१४॥



भावार्थ—इन्द्रभूति की दीक्षा के पश्चात् सब विद्याओं में निपुण अग्निभूति ब्राह्मणने इन्द्रभूति के समान विचार किया सच है, यह महावीर महा इन्द्रजालिया दिखाई देता है। उसने मेरे भाई इन्द्रभूति को भी छल लिया। अब में जाता हूं और असर्वज्ञ होने पर भी अपने को सर्वज्ञ समझनेवाले उस मायावी को परास्त करके माया से ठगे हुए अपने बन्धु इन्द्रभूति को वापिस लाता हूं। इस प्रकार विचार कर वह अग्निभूति अपने पांचसौ शिष्यों के साथ, अभिमान सहित, भगवान् के समीप गये। भगवानने अग्निभूति का नाम लेकर तथा उनके हृदय में स्थित सन्देह को सूचित करते हुए, संबोधन किया और इस प्रकार कहा—'हे अग्निभूति! तुम्हारे मन में कर्म के विषय में

सन्देह रहता है कि कर्म है अथवा नहीं है?' वेद का वचन है कि-'पुरुषएवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्'। इस वाक्य का आशय है कि यह जो वर्त्तमान है, जो भूत है और जो भावी है, वह सभी वस्तु पुरुष (आत्मा) ही है। यहां 'पुरुष' शब्द के पश्चात् प्रयुक्त हुआ 'एव' (ही) कर्म आदि वस्तुओं का निषेध करने के लिये है, तो अभिप्राय यह निकला कि पुरुष के अतिरिक्त कोई भी वस्तु नहीं है। इत्यादि वेद वचन के अनुसार जो हुआ, जो है और जो होगा, वह सब वस्तु आत्मा ही है। आत्मा से भिन्न अन्य कोई पदार्थ नहीं है, अतएव कर्म का भी अस्तित्व नहीं है। कर्म होता तो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से उसकी प्रतीति होती, किन्तु प्रत्यक्ष आदि किसी भी प्रमाण से कर्म की प्रतीति नहीं होती। फ़िर भी कदाचित् कर्म का अस्तित्व मान लिया जाय तो मूर्त कर्म के साथ अमूर्त जीव का संबंध किस प्रकार हो सकता है? मूर्त और अमूर्त का आपस में संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त अमूर्त आत्मा का मूर्त कर्म से

अग्निभूतेः शङ्का-निवारणम् प्रव्रजनं च

उपघात नरक निगोद आदि गतियों में ले जाकर पीडा पहूंचाना और अनुग्रह स्वर्ग आदि गति में पहूंचा कर सुख का उपभोग करना—कैसे हो सकता है? यहां संभव नहीं कि मूर्त और अमूर्त में से एक उपघात्य हो और दूसरा उसका उपघातक हो, तथा एक अनुग्राह्य हो और दूसरा अनुग्राहक हो। इस विषय में दृष्टान्त देते हैं। यथा आकाश तलवार, आदि के द्वारा काटा नहीं जासकता और चन्दनादि के लेप से लेपा नहीं जासकता। इस प्रकार अग्निभूति के मनोगत संशय का समर्थन करके उसका निराकरण करने के लिये कहते हैं—हे अग्निभूति, तुम्हारा यह मत मिथ्या है। क्योंकि सर्वज्ञ कर्म को प्रत्यक्ष से देखते हैं जैसे घट पट आदि को अथवा हथेली पर रक्खे आंबले को देखते हैं। अल्पज्ञ पुरुष जीवों की गति आदि की—विलक्षणता को देखकर अनुमान प्रमाण से कर्म को जानते हैं। अनुमान का प्रयोग इस प्रकार है—जीव कर्म से युक्त हैं क्योंकि उनकी गति में विचित्रता देखी जाती है। तथा कर्म की विचित्रता—भिन्नता के

कारण ही, विचित्र कर्मवाले प्राणियों के सुखदुःख आदि विचित्र भाव उत्पन्न होते हैं, क्योंकि कोई जीव राजा होता है, कोई घोडा होता है और कोई हाथी होता है। घोडा या हाथी होकर राजा का वाहन बनता है। कोई जीव उस राजा का प्यादा होता है और कोई उसका छत्रधारक–उस पर छत्र तानने वाला होता है। इसी प्रकार कोई जीव भूख से पीडीत होता है, जो अपने कर्म की विचित्रता के कारण दिन और रात भीख के लिये भटकता फिरता है, फिर भी भीख नहीं पाता। तथा–एक ही समय में व्यापार करनेवाले नौका–व्यापारियों में से एक सकुशल समुद्र से पार हो जाता है और दूसरा समुद्र में ही डूब जाता है। इन सब विचित्र कार्यों का कारण कर्म ही है, कर्म के सिवाय और कुछ भी प्रतीत नहीं होता।

शंका–पूर्वोक्त विचित्र कार्य स्वभाव से ही होते हैं अतएव कर्म को उनका कारण मानना व्यर्थ है। समाधान–तुम स्वभाव को विचित्र कार्यों का कारण कहते हो तो बताओ कि

स्वभाव क्या है ? वह कोई वस्तु है या अवस्तु ? अगर अवस्तु है तो उससे कार्यों की उत्पत्ति नहीं हो सकती। वस्तु है तो मूर्त है या अमूर्त ? अगर अमूर्त है तो तुम्हारे मतानुसार वह मूर्त कार्यों को उत्पन्न नहीं कर सकता। अगर मूर्त है तो फिर वह कर्म हो। इसी बात को मनमें लेकर कहते हैं-'नो खलु' इत्यादि। घटपट आदि कोई भी कार्य कारण के विना उत्पन्न नहीं हो सकता। कारण से ही कोई कार्य उत्पन्न होता है। अतः जीवों के राजा होने आदि विचित्र कार्यों का कारण कर्म स्वीकार करना चाहिये। इस प्रकार कर्म की सत्ता सिद्ध करके अब मूर्त कर्म और अमूर्त जीव का संबंध युक्ति से सिद्ध करते हैं-'अहय' इत्यादि। जैसे मूर्त घटका अमूर्त आकाश के साथ सम्बन्ध होता है, उसी प्रकार मूर्त कर्म का अमूर्त जीव के साथ संवंध समझ लेना चाहिये। अथवा जैसे नाना प्रकार के मूर्त मद्यों के द्वारा जीव उपघात (विरूपता आदि दोषों की उत्पत्ति होने से हानि) होती है कहा भी है-

'वैरुप्यं व्याधिपिण्डः स्वजनपरिभवः कार्यकालातिपातो,
विद्वेषो ज्ञाननाशः स्मृतिमतिहरणं विप्रयोगश्च सद्भिः ।
पारुष्यं नीचसेवा कुलबलतुलना धर्मकामार्थहानि;,
कष्टं भोः ! षोडशैते निरुपचयकरा मद्यपानस्य दोषाः'

अर्थात्—मदिरापान से हानिकर सोलह दोष उत्पन्न होते हैं–विरूपता१, नाना प्रकार की व्याधियों२, स्वजनों के द्वारा तिरस्कार३, कार्य–काल की बर्बादि४, विद्वेष५, ज्ञान का नाश६, स्मरण–शक्ति और बुद्धि की हानि७, सज्जनों से अलगाव८, रुखापन९, नीचों की सेवा१०, कुल११, बल १२, तुलना १३, धर्म १४, काम १५, और अर्थ १६, की हानि'। और भी कहा है—

"श्रूयते च ऋषिर्मद्यात्, प्राप्तज्योतिर्महातपाः ।
स्वर्गाङ्गनाभिराक्षिप्तो मूर्खवन्निधनं गतः ॥ १ ॥

किं चेह बहुनोक्तेन, प्रत्यक्षेणैव दृश्यते ।
दोषोकस्य वर्तमानेऽपि तथा भण्डन लक्षणः" ॥ २ ॥

अर्थात्—सुना जाता है कि ज्ञान–ज्योतिप्राप्त और महातपस्वी ऋषि भी मदिरा पान के कारण अप्सराओं से अभिभूत होकर मूर्ख मनुष्य की तरह मौत के ग्रास बने ॥ १ ॥ इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ ? मद्यपान की बुराई तो वर्तमान में भी प्रत्यक्ष देखी जाती है। शराबी सर्वत्र भांडा जाता है । २ ॥ इस विषय में विशेष जिज्ञासुओं को मेरे गुरु पूज्य आचार्य श्रीघासीलालजी महाराज की बनी हुई–आचार-मणि मंजूषा नामक टीकावाले दशवैकालिक सूत्र के पांचवें अध्ययन के दूसरे उद्देशककी 'सुरं वा मेरगं वा वि' इत्यादि छत्तीसवीं आदि गाथाओं की व्याख्या देख लेनी चाहिए। तथा–जिस प्रकार नाना प्रकार की मूर्त औषधों से अमूर्त जीव का अनुग्रह होता है– रोग का नाश होता है, बल पुष्टि आदि की उत्पत्ति होकर उपकार होता है, उसी प्रकार

अमूर्त जीवका मूर्त कर्म से भी उपघात और अनुग्रह जान लेना चाहिये। इस प्रकार के दृष्टान्तों से कर्म का अस्तित्व दिखला कर अग्निभूति के परममान्य प्रमाण को प्रदर्शित करने के लिये कहते हैं —इसके सिवाय तुम्हारे अतिशय मान्य वेदों में भी, किसी भी स्थान पर कर्म का निषेध नहीं है। वेदों में कर्म का निषेध न होने से भी 'कर्म है' यह सिद्ध होता है। इस प्रकार प्रभु के कथन से कर्म के अस्तित्व संबंधी संशय के दूर हो जाने पर हृष्ट तुष्ट हुए अग्निभूति ने भी, इन्द्रभूति के समान, पांचसो शिष्यों सहित श्रीमहावीर प्रभु के हाथ से दीक्षा ग्रहण करली ॥१४॥

मूलम्—तए णं वायुभूई विप्पो 'दुवेवि भायरा पव्वईय' त्ति जाणिउण चिंतेइ—सच्चमेसो सव्वण्णू दीसइ, जप्पभावेण मम दोवि भायरा तयंतिए पव्वइया। अओ अहमवि तत्थ गमिय सयमणोगयं तज्जीव तच्छरीरविसयं संसयं अवाकरेमित्ति कट्टु सो वि पंचसयसिस्सपरिवुडो पहुसमीवे समणुपत्तो

पहू तं नामसंसयनिद्देसपुव्वं वयइ—भो वाउभूई ! तुज्झ मणंसि संदेहो वट्टइ—जं सरीरं तं चेव जीवो। नो अन्नो तव्वइरित्तो को वि जीवो पच्चक्खाइ पमाणेणं तं उवलंभाभावा। जलबुब्बुओ विव सो सरीराओ उपज्जए सरीरे चेव विलिज्जइ। अओ नत्थि अन्नो को वि पयत्थो जो परलोए गच्छेज्जा। 'विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः' इच्चाइ वेयवयणंपि अतत्थे माणं। एत्थ वुच्चइ सव्वपाणिणं देसओ जीवो पच्चक्खो अत्थि चेव, जओ सो मइआइ गुणाणं पच्चक्खत्तणेणं संविऊ अत्थि। सो जीवो देहिंदियेहिंतो पुहं अत्थि। जओ जया इंदियाइ नस्संति तया सो तं तं इंदियत्थं सरइ, जहा एसो सद्दो मए पुव्वं आसाइओ, एसो मिउकक्खडाइफासो मए पुव्वं पुट्ठो आसी। एवं पयारो जो अणुहवो हवइ, सो जीवं विना कस्स होज्जा ? तुज्झ सत्थे वि वुत्तं—

वायुभूतेः शङ्का-निवारणम् प्रव्रजनं च

'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मया हि शुद्धीयं पश्यंति धीरा यतयः संयतात्मानः' इति। जइ सरीराओ अन्नो को वि जीवो न हवेज्जा, तो 'सत्येन तपसा ब्रह्मचर्येण एष लभ्यः' इइ कहं संगच्छेज्जा। अओ सिद्धं सरिराओ भिन्नो अन्नो जीवो अत्थि त्ति। एवं पहुकयगुणेणं छिन्नसंसओ पडिबुद्धो वाउभूई वि पंचसयसिस्सेहिं पव्वइओ ॥१५॥

शब्दार्थ--[तए णं वाउभूई विप्पो' दुवे वि भायरा पव्वइय' त्ति जाणिऊण चिंतेइ] तब वायुभूति ब्राह्मण ने' मेरे दोनों भाई दीक्षित हो गये, यह जान कर विचार किया-[सच्चमेसो सव्वण्णू दीसइ] सचमुच ही वह सर्वज्ञ प्रतीत होता है। [जप्पभावेण ममं दो वि भायरा तयंतिए पव्वइया] जिस सर्वज्ञता के प्रभाव से मेरे दोनों भाई उनके पास दीक्षित हुए है [अओ अहमवि तत्थ गमिय सयमणोगयं तज्जीव तच्छरीर विसयं

संसयं अवाकरेमित्ति कट्टु] अतएव मैं भी वहां जाकर अपने मन में रहे हुए 'तज्जीव तच्छरीर' अर्थात् वही जीव और वही शरीर है भिन्न नहीं इस विषय के संशय का निवारण करूँ। [सो वि पंचसयसिस्सपरिवुडो पहुसमीवे समणुपत्तो] ऐसा विचार कर वह भी पांचसौ शिष्यों के साथ प्रभु के पास पहुँचे [पहू तं नामसंसयनिदेसपुव्वं वयइ–] प्रभु ने उसके नाम और संशयका उल्लेख करके कहा [–भो वाउभूई-! तुज्झ मणंसि संदेहो वट्टइ–जं सरीरं तं चेव जीवो] हे वायुभूति ! तुम्हारे मन में संदेह है कि जो शरीर है वही जीव है [नो अन्नो तव्वइरित्तो कोवि जीवो पच्चक्खाइपमाणेण तं उवलंभा भावा] शरीर से भिन्न कोई जीव नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से उसका उपलंभ नहीं होता [जलबुब्बुओ विव सो सरिराओ उपज्जए सरिरे चेव विलिज्जइ] जल के बुलबुले के समान जीव शरीर से उत्पन्न होता है और शरीर में ही विलीन हो जाता है [अओ नत्थि कोई अन्नो को वि पयत्थो जो परलोए गच्छेज्जा] अतएव उससे

भिन्न कोई पदार्थ नहीं जो परलोक में जाता हो [विज्ञान घनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः' इच्चाइ वेयवयणं वि अतत्थेमाणं] विज्ञान घनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः इत्यादि [पूर्वोल्लिखित] वेद वचन भी इस विषय में प्रमाण है। अर्थात् पांचभूतों से यह आत्मा उत्पन्न होता है और पांचभूतों में ही मिल जाता है [एत्थ वुच्चइ सव्वपाणिणं देसओ जीवो पच्चक्खो अत्थि चेव] इसका समाधान यह है—सभी प्राणियों को देश से—अंशतः जीव का प्रत्यक्ष होता ही है [जओ सोमइआइगुणाणं पच्चक्खत्तणेणं संविऊ अत्थि] वह जीव स्मृति आदि गुणों का साक्षात् ज्ञाता है [सो जीवो देहिंदियेहिंतो पुह अत्थि] वह जीव शरीर तथा इन्द्रियों से भिन्न है, [जओ जया इंदियाइ नस्संति तया सो तं तं इंदियत्थं सरइ] क्योंकि जीव, इन्द्रियों के नष्ट हो जाने पर भी इंद्रियो द्वारा जाने हुए विषयों का स्मरण करता है। [जहा एसो सद्दो मए पुव्वं सुणिओ] जैसे—वह शब्द मैंने पहले सुना था [एयं वत्थुजायं मए पुव्वं दिट्ठं] वें वस्तुएं मैंने

पहले देखी थी [एसो गंधो मए पुव्वं अग्घाओ] वह गंध मैंने पहले सूंघी थी, [एसो-महुरतित्ताइरसो मए पुव्वं आसाइओ] वह मधुर और तिक्त रस मैंने पहले चखा था [एसो मिउकक्खडाइ फासो मए पुव्वं पुट्ठो आसी] वह कोमल या कठोर आदि स्पर्श मैंने पहले छुआ था [एवं पयारो जो अणुहवो हवइ, सो जीवं विना कस्स होज्जा] इस प्रकार का जो स्मरण होता है वह जीव के सिवाय किस को होगा [तुज्झ सत्थेवि वृत्तं] तुम्हारे शास्त्र में भी कहा है—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो हि शुद्धो यं पश्यन्ति धीरा-यतयः संयतात्मानः] अर्थात् 'यह नित्य ज्योति स्वरूप और निर्मल आत्मा, सत्य तप और ब्रह्मचर्य के द्वारा उपलब्ध होता है। जिसे धीर तथा संयतात्मा यति ही देखते हैं। [जइ सरीराओ अन्नो को वि जीवो न हवेज्जा ताहे सत्येन इइ कहं संगच्छेज्जा] यदि जीव पृथक् न हो तो यह कथन कैसे संगत होगा? [अओ सिद्धं सरीराओ भिन्नो अन्नो

जीवो अत्थित्ति] इससे सिद्ध है कि जीव शरीरसे भिन्न और स्वतंत्र है [एवं वहुकयगुणेणं छिन्नसंसओ पडिबुद्धो वाउभूई वि पंचसयसिस्सेहिं पव्वइओ] प्रभु के इस प्रकार के कथन से वायुभूति का संशय छिन्न हो गया। वह प्रतिबुद्ध होकर पांचसौ शिष्यों के साथ भगवान के पास प्रव्रजित हो गया ॥१५॥

वायुभूतेः शङ्का-निवारणम् प्रव्रजनं च

भावार्थ—'मेरे दोनों भाई महावीर स्वामी के समीप दीक्षित हो गये, ऐसा जान कर वायुभूति ब्राह्मण मन ही मन विचार करते हैं–सच है, श्रीमहावीर स्वामी सर्वज्ञ मालूम होते है। यह उनकी सर्वज्ञता का ही प्रभाव है–कि मेरे दोनों भाई उनके समीप दीक्षित हो गये है। अतएव मैं भी उनके पास जाकर अपने मनके 'वही जीव वही शरीर, अर्थात् जीव और शरीर विषयक एकता संबंधी संशयका समाधान प्राप्त करूं। इस प्रकार विचार कर वायुभूति भी अपने पांचसौ शिष्यों को साथ लेकर भगवान् के समीप आये। भगवान् ने वायुभूति के नाम और संशयका उल्लेख करते हुए कहा–हे

वायुभूति। तुम्हारे मन में यह सन्देह बैठा हुआ है कि–'जो शरीर है वही जीव हैं। शरीर से भिन्न जीव अलग नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष आदि किसी भी प्रमाण से जीव की--प्रतीति नहीं होती। जैसे जलका बुद्बुद जलसे ही उत्पन्न होता ह और जलमें लीन हो जाता है, जल से अलग उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, इसी प्रकार जीव भी शरीर से उत्पन्न होता है और शरीर में ही वीलिन हो जाता है। अतः शरीर से भिन्न कोई जीव पदार्थ नहीं है जो मृत्यू के पश्चात् परलोक में जाय। विज्ञानघन ही इन पृथ्वी आदि भूतों से उत्पन्न होकर उन्हीं में लीन हो जाता है, यह वेद्–वाक्य भी जीव और शरीर की एकता के विषय में प्रमाण है। तुम्हारे इस सन्देह का समाधान इस प्रकार है–सब जीवों को अंशतः जीव प्रत्यक्ष होता ही है, क्योंकि जीव स्मृति आदि अर्थात् स्मृति, जिज्ञासा, चिकीर्षा, जिगमिषा, आशंसा आदि गुणोंका प्रत्यक्षरूप से ज्ञाता है। व जीव देह से और इन्द्रियों से भिन्न है, क्योंकि जब व्याधि या शस्त्र

आदि के आघात वगैरह किसी कारण से इन्द्रियों नष्ट हो जाती है, तब इन्द्रियों के उपघात की स्थिति में भी आत्मा पहले अनुभव किये गये शब्द आदि विषयों का स्मरण करता हैं। इसी कथन का स्पष्टीकरण करते हैं–जैसे 'वह शब्द मैंने पहले (श्रोत्र इन्द्रिय का उपघात होने से पूर्व) सुना था। वह वन भवन वसन (वस्त्र) आदि वस्तु समूह मैंने पहले देखा था। वह सुगंध या दुर्गंध मैंने पहले सूंघी थी। वह मीठा या तिक्त रस मैंने पहले आस्वादन किया था। वह कोमल या कठोर स्पर्श मैंने पहले छुआ था।' इस प्रकार का जो स्मरण होता है, वह स्मरण जीव के सिवाय और किसे होगा? जीव के सिवाय और किसी को नहीं हो सकता, क्योंकि अनुभव का कर्त्ता जीव ही है। और भी कहते हैं–तुम्हारे शास्त्र में भी कहा है कि–'यह नित्य, ज्योतिर्मय और निर्मल आत्मा सत्य से, तप से तथा ब्रह्मचर्य से उपलब्ध होता है, जिसको धैर्यवान्–जितेन्द्रिय तथा संयतात्मा की तरह इन्द्रियों के विषयों से मनको निगृहीत करनेवाले-

मुनि ही साक्षात् कर सकते हैं। यदि शरीर से पृथक् जीव न हो तो वेद का यह वाक्य किस प्रकार संगत होगा ? इससे सिद्ध कि शरीर से भिन्न जीव की सत्ता है। इस प्रकार प्रभु के कथन से वायुभूति का संशय हट गया। वह अपने पांचसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गया ॥१५॥

मूलम्—तए णं वियत्ताभिहो माहणो वि विमरिसइ जे इमे वेयत्तयीसरूवा महापंडिया तओ वि भायरा छिन्न णिय णिय संसया पव्वइया, अओ इमो कोवि अलोइओ महापुरिसो पडिभासइ, तयंतिए अहमावि गच्छामि, जइ सो ममं संसयं छेइस्सइ, ताहे अहमावि पव्वइस्सामित्ति, कट्टु सो वि पंचसय-सिस्सपरिवारपरिवुडो पहुसमीवे समागच्छइ। पहू य तं नामसंसयनिद्देस-पुव्वं आभासेइ भो वियत्ता ! तुज्झ मणंसि 'पुढवी आइ पंचभूया न संति,

तेसिं जा इमा पडीइ जायइ सा जलचंदोव्व मिच्छा एयं सव्वं जगं सुण्णं वट्टइ 'स्वप्नोपमं वै सकलं' इच्चाइ वेयवयणाओ त्ति संसओ वट्टइ सो मिच्छा। जइ एवं ताहे भुवणपसिद्धा सुमिणा–सुमिण–पयत्था कहं दिसंतु ?। वेएसु वि वुत्तं–पृथिवी देवता आपो देवता' इच्चाइ, अओ पुढवी आइ पंचभूयाइ संति त्ति सिद्धं। एवं सोच्चा निसम्म छिन्नसंसओ वियत्तो वि पंचसयसीसेहिं पहुसमीवे पव्वइओ ॥१६॥

शब्दार्थ–[तए णं वियत्ताभिहो माहणो वि विमरिसइ] इसके वाद व्यक्त नामक ब्राह्मण ने विचार किया [जं इमे वेयत्तयीसरूवा महापंडिया तओ वि भायरा छिन्न णिय णिय संसया पव्वइआ] यह वेदत्रयी के समान महापण्डित तीनों भाई अपने अपने संशयका निवारण करके दीक्षित हो गये हैं [अओ इमे को वि अलोइओ महा-

पुरिसो पडिभासइ] मालूम होता है, वह कोई अलौकिक महापुरुष हैं। [तयंतिए अहमवि गच्छामि] मैं भी उन महापुरुष के पास जाऊं [जइ सो ममं संसयं छेइस्सइ ताहे अहमवि पव्वइस्सामित्ति कट्टु] अगर उन्होंने मेरे संशय को दूर कर दिया तो में भी उनके पास प्रव्रजित हो जाऊंगा ऐसा विचार करके [सो वि पंचसयसिस्सपरिवार परिवुडो पहुसमीवे समागच्छइ] वह भी अपने पांचसौ शिष्यपरिवार के साथ भगवान के समीप पहुंचा। [पहू य तं नामसंसयनिद्देसपुव्वं आभासेइ–] प्रभुने उन्हें नाम और संशय का उल्लेख करके कहा–[भो वियत्ता! तुज्झमणंसि–पुढवी आइपंचभूया न संति, तेसिं जा इमा पडिई जायइ सा जलचंदोव्व मिच्छा] हे व्यक्त! तुम्हारे मनमें यह संशय है कि पृथ्वी आदि पांच भूत नहीं हैं, उनकी जो प्रतीति होती है सो जल चन्द्र के समान मिथ्या है [एयं सव्व जगं सुण्णं वट्टइ स्वप्नोपमं वै सकलं' इच्चाइ वेयवयणाओ त्ति–संसओ वट्टइ सो मिच्छा] यह समस्त जगत् शून्य रूप है वेद में भी कहा है–'स्वप्नोपमं

व्यक्तस्य
शङ्का-
निवारणम्
प्रव्रजनं च

व सकलं' इत्यादि अर्थात् सब कुछ स्वप्न के समान है। तुम्हारा यह विचार मिथ्या है [जइ एवं ताहे भुवनपसिद्धा सुमिणासुमिण–पयत्था कहं दीसन्तु ?] अगर ऐसा हो तो तीनलोकमें प्रसिद्ध स्वप्न–अस्वप्न गंधर्वनगर आदि पदार्थ क्यों दिखाई देते हैं? [वेएसु वि वुत्तं-'पृथिवी देवता–आपो देवता' इच्चाइ, अओ पुढवी आइ पंच भूयाइ संति त्ति सिद्धं] वेदों में भी कहा है–'पृथिवी देवता आपो देवता' अर्थात् पृथिवी देवता है, जल देवता है इत्यादि । अतः पृथिवी आदि पांच भूत हैं यह सिद्ध हुआ। [एवं सोच्चा निसम्म छिन्नसंसओ वियत्तो वि पंच सयसीसेहिं पहुसमीवे पव्वइओ] ऐसा सुनकर और हृदय में धारण करके जिनका संशय निवृत्त हो गया है, ऐसे वह व्यक्त भी अपने पांचसौ शिष्यों के साथ प्रभु के समीप प्रव्रजित हो गये ॥१६॥

व्यक्तस्य शङ्का-निवारणम् प्रव्रजनं च

भावार्थः—वायुभूति के दीक्षित हो जाने के पश्चात् व्यक्त नामक ब्राह्मण ने विचार किया इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति, यह तीनों महापंडित तीन वेद ऋग्वेद,

यजुर्वेद, और सामवेद स्वरूप थे। यह तीनों भाई अपने अपने मनोगत संदेहों को दूर करके दीक्षित हो गये। इस कारण यह महावीर कोई लोकोत्तर महापुरुष प्रतीत होते हैं। मैं भी उनके निकट जाऊं। यदि उन्होंने मेरी शंका का निवारण कर दिया तो मैं भी दीक्षा अंगीकार कर लूंगा। इस प्रकार विचार कर व्यक्त पण्डित भी अपने पांच-सौ अन्तेवासियों को साथ लेकर भगवान् के निकट पहूंचे। भगवान् ने व्यक्तका नामोच्चारण करते हुए तथा उनके मनका संशय प्रकाशित करते हुए इस प्रकार संबोधन किया-हे व्यक्त! तुम्हारे अन्तःकरणमें ऐसा संशय है कि-पृथिवी आदि पांच भूतों की सत्ता नहीं है। इन पांचोंभूतों की जो प्रतीति होती हैं, वह जल में प्रतिबिम्बित होने वाले चन्द्रमा की प्रतीति की तरह भ्रान्ति मात्र है। यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् शून्य है। इस विषय में प्रमाण देते है-'स्वप्नोपमं वै सकलम्' अर्थात्-'निश्चय ही सभी कुछ स्वप्न के सदृश है। जैसे स्वप्न में विविध प्रकार के पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु

उनकी पारमार्थिक सत्ता नहीं है, उसी प्रकार जगत् में दिखाई देनेवाले विविध पदार्थों की भी वास्तविक सत्ता नहीं है। वेद के उक्त वाक्य से इसी मत की सिद्धि होती है। तुम्हारा यह संशय मिथ्या है। अगर पांचोंभूतों का अभाव हो और यह जगत् शून्य–रूप हो तो लोकमें प्रसिद्ध स्वप्न अस्वप्न के अर्थात्–स्वप्न के गजतुरगादि, अस्वप्न के गन्धर्व नगरादि पदार्थ क्यों अनुभव में आवे? आशय यह है कि तुम कहते हो कि यह सब जल–चन्द्र के समान भ्रान्त हैं, किन्तु कहीं न कहीं पारमार्थिक होने पर ही दूसरी जगह उसकी भ्रान्ति होती है। आकाश में वास्तविक चन्द्र न होता तो जल में चन्द्रमा का भ्रम भी न होता। जगत् के पदार्थों को स्वप्न दृष्ट पदार्थों के समान कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि जागृत अवस्था में वास्तविक रूपसे पदार्थों का दर्शन न होता तो स्वप्न में वह कैसे दिखाई देते? जिस वस्तुका सर्वथा अभाव है, वह स्वप्न में भी नहीं दीखती। इसके अतिरिक्त स्वप्नदृष्ट पदार्थों में अर्थक्रिया नहीं होती, अतएव उन्हें कथं-

चित् असत् मान भी लिया जाय तो भी जाग्रत अवस्था में दिखाई देनेवाले जिन पदार्थों में अर्थक्रिया होती है, उन्हें किस प्रकार मिथ्या–असत् माना जा सकता है? इस के अतिरिक्त तुम्हारे प्रमाणभूत माने हुए वेद में भी तो पांच भूतों का अस्तित्व कहा है। यथा–पृथिवी देवता है, इत्यादि। जब वेदों में भी पांचों भूतों का अस्तित्व प्रतिपादन किया गया है तो यह सिद्ध हुआ कि पांचभूत है। यह कथन सामान्य रूपसे श्रवण करके और इहापोह द्वारा विशेष रूपसे हृदय में निश्चित करके व्यक्त भी संशय निवृत होने पर पांचसौ शिष्यों के साथ भगवान् के समीप प्रव्रजित हो गये ॥१६॥

मूलम्—चउरो वि पंडिया पहुसमीवे पव्वइयत्ति सुणिय उवज्झाओ सुहम्माभिहो पंडिओ वि नियसंसयछेयणट्ठं पंचसयासिस्सपरिवुडो पहुस्स अंतिए समागओ। पहुय तं कहेइ–भो सुहम्मा तुज्झमणंसि एयारिसो संसओ वट्टइ जो इह भवे जारिसो होइ सो परभवेवि तारिसा चेव होउं उप्पज्जइ, जहा

सालिववणेणं साली चेव उप्पजंति, नो जवाइयं। 'पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वं' इच्चाइ वेयवयणाओत्ति। तं मिच्छा जो मद्दवाइ गुणजुत्तो मणुस्साउं बंधइ सो पुणो मणुसत्तणेण उप्पज्जइ। जो उ माया मिच्छाइ गुणजुत्तो होइ सो मणुसत्तणेण नो उप्पज्जइ तिरियत्तणेण उप्पज्जइ। जं कहिज्जइ कारणाणुसारं चेव कज्जं हवइ' तं सच्चं किंतु अणेण एवं न सिज्जइ जं जहा रूवो वट्टमाणभवो अत्थि इमो पंचओ भमभरिओ, वट्टमाणभवे जस्स जीवस्स जारिसा अज्झवसाया हवंति तयज्झवसायरूवकारणाणुसारमेव जीवाणं अणागयभवस्स आऊ बंधइ तं बद्धाउ रूवकारणमणुसरीय चेव अणागयभवो भवइ।

जइ कारणाणुसारमेव कज्जं होज्जा तया गोमयाइओ विंछियाईणं उप्पत्ती नो संभवेज्जा, इइ कहणंपि न संगयं, जओ गोमयाइयं विंछियाईणं जीवुप्प-

सुहम्माभिध पंडितस्य शङ्कानिवारणम् प्रव्रजनं च

त्तीए कारणं नत्थि तं तु केवलं तेसिं सरीरुप्पत्तीए चेव कारणं। गोमयाइरूव-कारणस्स विंछियाइ सरीररूवकज्जस्स य अणुरूवया अत्थि चेव, जओ गोम-इए रूवस्साइ पुग्गलाणं जे गुणा होंति तं चेव गुणा विंछियाइ सरीरे वि उव-लब्भंति। एवं कज्जकारणाणं अणुरूवया सीगारे, वि एयं न सिज्झइ जं–जहा पुव्वभवो तहेव उत्तरभवो वि होइ। वेएसु वि वुत्तं–श्रृगालो वै एष जायते यः सपुरीषो दह्यते' इच्चाइ। अओ भवंतरे वेसारिस्सं भवइ जीवस्सत्ति सिद्धं। एवं सोऊणं नट्ठ संदेहो सोवि पंचसयसिस्सेहिं पहुसमीवे पव्वइओ ॥१७॥

शब्दार्थः–[चउरो वि पंडिया पहुसमीवे पव्वइयत्ति सुणिय] इन्द्रभूति अग्निभूति वायुभूति, और व्यक्त चारों ही पण्डित दीक्षित हो गये, यह सुनकर [उवज्झाओ सुह-म्माभिहो पंडिओ वि नियसंसयछेयण्ठं पंचसयसिस्सपरिवुडो पहुस्स अंतिए समागओ]

उपाध्याय सुधर्मा नामक पण्डित भी अपने संशय को दूर करने के लिये पांचसौ शिष्यों के साथ प्रभु के पास पहुंचे। [पहूय तं कहेइ–भो सुहम्मा !] प्रभु ने कहा–हे सुधर्मन्! [तुज्झमणंसि एयारिसो संसओ वट्टइ] तुम्हारे मन में ऐसा संशय हैं कि [जो इह भवे जारिसो होइ सो पर भवे वि तारिसो चेव होउं उप्पज्जइ] जो जीव इस भव में जैसा होता है, परभव में भी वैसा ही होकर उत्पन्न होता है, [जहा सालिववणेण साली चेव उप्पज्जंति नो जवाइयं] जैसे शालि बोने से शालि ही उगते हैं जो आदि नहीं ['पुरुषो वै पुरुत्वमश्नुते पशव पशुत्वम्'] इच्चाइ वेयवयणाओत्ति] वेद वचन भी ऐसा है कि–पुरुष पुरुषत्व को प्राप्त होता है। [तं मिच्छा] तुम्हारा यह विचार मिथ्या है [मद्दवाइ गुणजुत्तो मणुस्साउं बंधइ सो पुणो मणुस्सत्तणेण उप्पज्जइ] जो मृदुता आदि गुणों से युक्त जीव मनुष्यायुका बन्ध करता है वह मनुष्य रूपसे उत्पन्न होता है। [जो उ मायामिच्छाइ गुणजुत्तो होइ सो मणुसत्तणेण नो उप्पज्जइ, तिरियत्तणेण उप्पज्जइ] जो

सुहम्माभिध पंडितस्य शङ्कानिवारणम् प्रव्रजनं च

तीव्रतर माया मिथ्यात्व आदि गुणों से युक्त होता है, वह मनुष्य रूपसे उत्पन्न नहीं होता किन्तु तिर्यंच रूपसे उत्पन्न होता है। [जं कहिज्जइ-कारणाणुसारं चेव कज्जं हवइ, तं सच्चं] यह जो कहा जाता है कि कारण के अनुरूप ही कार्य होता है सो ठीक है [किंतु अणेण एवं न सिज्झइ जं जहा रूवो वट्टमाणभवो तहारूवो चेव आगामी भवो भविस्सइ] किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि जैसा वर्तमान भव है वैसा आगामी भव होगा [जओ वट्टमाणागयभवाणं परोप्परं कज्जकारणभावो नत्थि] क्योंकि वर्तमान भव में परस्पर कार्य कारण भाव नहीं है। [अओ अणागयभवस्स कारणं वट्टमाणभवो अत्थि इमो पंचआ भमभारिओ] अतः आगामी भवका कारण वर्तमान भव है, यह समझना भ्रम पूर्ण है [वट्टमाण भवे जस्स जीवस्स जारिसा अज्झवसायाहवंति तयज्झवसायरूवकारणाणुसारमेव जीवाणं अणागयभवस्स आऊ बंधइ] वर्तमान भव में जीस जीव के परिणाम—अध्यवसाय जैसे होते है उन्हीं अध्यवसाय

सुहम्माभिध पंडितस्य शङ्कानिवारणम् प्रव्रजनं च

रूप कारण के अनुसार आगामी भव की आयु बंधती है [तं बद्धाउरूवकारणमणुसरीय चेव अणागयभवो भवइ] और बद्ध आयु रूप कारण के अनुसार ही आगामी भव होता है। [जइ कारणाणुसारमेव कज्जं होज्जा तया गोमयाइओ विंछियाईणं उप्पत्ती नो संभवेज्जा] यदि कारण के अनुसार ही कार्य होता तो गोबर आदि से वृश्चिक आदि की उत्पत्ति संभव न होती। [इय कहणंपि न संगयं] यह कथन भी संगत नहीं है [जओ गोमयाइयं विंछियाईणं जीवुप्पत्तीए कारणं नत्थि तं तु केवलं तेसिं सरीरुप्पत्तीए चेव कारणं] क्योंकि गोबर आदि वृश्चिक आदि के जीव की उत्पत्ति में कारण नहीं है मात्र वृश्चिक आदि के शरीर के उत्पत्ति में ही कारण होते हैं। [गोमयाइरूवकारण विंछियाइसरीररूव कज्जस्स य अणुरूवया अत्थि चेव] और गोबर आदि रूप कारण तथा वृश्चिक आदि शरीररूप कार्य में अनुरूपता है ही [जओ गोमइए रूवस्साइ पुग्गलाणं जे गुणा होंति ते चेव गुणा विंछियाइसरीरे वि उवलब्भंति] गोबर

आदि में रूप, रस आदि पुद्गल के जो गुण होते हैं वही गुण वृश्चिक आदि के शरीर में भी पाये जाते हैं। [एवं कज्जकारणाणं अणुरूवयासीगारे, वि एयं न सिज्झइ जं—जहा पुव्वभवो तहेव उत्तरभवो वि होइ] इस प्रकार कार्य कारण की अनुरूपता स्वीकार कर लेने पर भी यह सिद्ध नहीं होता कि जैसा पूर्वभव है वैसा ही उत्तर भव होता है [वेएसु वि वुत्तं—'शृगालो व एष जायते यः सपुरिषो दह्यते' इत्यादि वेदों में भी कहा है कि—'जो मनुष्य मल सहित जलाया जाता है वह निश्चय ही शृगाल के रूप में उत्पन्न होता हैं,' इत्यादि [अओ भवंतरे वेसारिस्सं भवइ जीवस्स त्ति सिद्धं] इससे भी सिद्ध है कि भवांतर में भी जीव विसदृश रूप से भी उत्पन्न होता है [एवं सोऊण नट्ठ संदेहो सो वि पंचसयसिस्सेहिं पहुसमीवे पव्वइओ] यह कथन सुनकर सुधर्मा उपाध्याय का संशय नष्ट हो गया वह पांचसौ शिष्यों के साथ प्रव्रजित हो गये ॥१७॥

भावार्थ—इन्द्रभूति आदि चारों पण्डित प्रभु के समीप प्रव्रजित हो गये, यह

सुनकर उपाध्याय सुधर्मा नामक विद्वान् भी अपने संशय को दूर करने के लिये पांचसौ शिष्यों को साथ लेकर भगवान् के निकट गये। भगवान् ने अपने समीप आये सुधर्मा पण्डित से कहा—हे सुधर्मन्! तुम्हारे चित्त में ऐसा संशय है कि—जो जीव इस भव में जिस योनि को प्राप्त हुवा है, वह जीव आगामि भव में भी उसी योनि में उत्पन्न होता है। जैसे शालि नामक धान्य बोने से शालिही उगते हैं, उसके अतिरिक्त जों आदि नहीं उगते। तुम्हें यह संशय वेद के इस वाक्य के कारण है कि—पुरुषो व पुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वम्' निश्चय ही पुरुष पुरुषपन को ही प्राप्त करता है—और पशु पशुपन को ही प्राप्त होते हैं।' तुम्हारा यह मत मिथ्या है, क्योंकि जो जीव मार्दव (नम्रता) आदि गुणों से युक्त होता है, वह मनुष्य योनि के योग्य आयुको बांधता है और मनुष्यायु बांधनेवाला मनुष्य रूप में उत्पन्न होता है, किन्तु जो जीव माया—आदि गुणों से युक्त होता है, वह मनुष्य रूप से उत्पन्न नहीं होता, किन्तु तिर्यंच रूप से उत्पन्न होता है।

जो कहा जाता है कि कारण के अनुरूप ही कार्य होता है वह सत्य है, परन्तु इतने से वर्त्तमान भव का सादृश्य भविष्यत्कालिक भव में सिद्ध नहीं होता है। वर्तमान भव भविष्यत् भव का कारण होता है–यह जो मत है वह भ्रान्तिपूर्ण ही है। वर्त्तमान भव भविष्यद् भव का कारण नहीं होता है, परन्तु वर्तमान भव में जिस प्रकार के अध्यवसाय होते हैं, उस प्रकार के अध्यवसायरूप कारण के अनुसार ही जीव भविष्यत्कालिक भव सम्बन्धी आयु बांधते हैं और तदनुसार ही जीवों को भविष्यत्कालिक भव होता है। तथा कारण के अनुरूप कार्य स्वीकार करने पर गोमय (गोबर) आदि से वृश्चिक आदि की उत्पत्ति की संभावना नहीं है, यह जो कहा जाता है, सो भी असंगत ह, क्योंकि गोबर आदि वृश्चिकादि के जीव की उत्पति में कारण नहीं है, किन्तु उनके शरीर की उत्पत्ति में ही कारण । गोमयादिरूप कारण और वृश्चिकादि के शरीर रूप कार्य में सादृश्य है ही, क्योंकि गोबर आदि में रूप रसादि पुद्गलों के जो

गुण है वे ही गुण वृश्चिकादि शरीर में भी उपलब्ध होते है। इस प्रकार कार्य करण में सादृश्य स्वीकार करने पर भी 'जैसा पूर्व भव होता है वैसा ही उत्तर भव भी होता है, यह सिद्ध नहीं होता। यह केवल मेरा ही अभिमत नहीं है, किन्तु वेद में भी कहा है—'शृगालो वै एष जायते यः सपुरीषो दह्यते' इति। जो मनुष्य विष्टा सहित जलाया जाता है वह निश्चय ही शृगाल रूप में उत्पन्न होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि भवान्तर में विसदृशता भी होती है। इस प्रकार के श्रीमहावीर के वचन सुनकर सुधर्मा भी छिन्न संशय हो गये। वह भी अपने पांचसौ शिष्यों के साथ प्रभु के समीप दीक्षित हो गये ॥१८॥

मूलम्—तए णं उवज्झायं सुहम्मं पव्वइयं सोऊण मंडिओवि अद्धुट्ठसयसीसेहिं परिवुडो पहुसमीवे समणुपत्तो। पहूय तं कहेइ—भो मंडिया! तुज्झ मणंसि बंधमोक्ख विसओ संसओ वट्टइ—जं जीवस्स बंधो मोक्खो य हवइ न

वा। स एष विगुणो विभु न वध्यते संसरति वा मुच्यते मोचयति वा' इच्चाइ वेयवयणाओ जीवस्स न बंधो न मोक्खो। जइ बंधो मन्निज्जइ ताहे सो अणागइओ वा, पच्छाजाओ वा, जइ अणागइओ ताहे सो न छुट्टिज्जइ–जो अणाइओ सो अनंताओ हवइ त्ति वयणा। जइ पच्छाजाओ ताहे कया जाओ ? कहं छुट्टिज्जइ ? त्ति। तं मिच्छालोए जीवा असुह कम्म-बंधेण दुहं, सुहकम्मबंधेणं सुहं पत्ता दीसंति, सयलकम्मछेएण जीवा मोक्खं पावइत्ति लोए पसिद्धं । अणाइ बंधो न छुट्टिज्जइ' त्ति जं तए कहियं तंपि मिच्छा, जओ लोए सुवण्णस्स मट्टियाए य जो अणाइ संबंधो सो छुट्टिज्जइ चेव तव सत्थेसु वि' वुत्तं–'ममेति बध्यते जंतुर्निर्ममेति प्रमुच्यते' इच्चाइ। पुणोवि

मन एवं मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासक्तं, मुक्त्यै निर्विषयं मनः ॥

इच्चाइ । अओ सिद्धं जीवस्स बंधो मोक्खो य हवइ ति। एवं सोच्चा विम्हिओ छिन्नसंसओ पडिबुद्धो मंडिओ वि अद्धुट्ठ सयसीसेहिं पव्वइओ।

मंडिय-मौर्यपुत्रयोः शङ्का-निवारणम् प्रव्रजनं च

मंडियं पव्वज्जियं सोच्चा मोरियपुत्तो वि नियसंसयछेयणट्ठं अद्धुट्ठ सयसीसेहिं परिवुडो पहुसमीवे पत्तो। तं वि पहू एवं चेव कहेइ—भो मोरियपुत्ता! तुज्झमणंसि एयारिसो संसओ वट्टइ—जं देवा न संति 'को जानाति मायोपमान् गीर्वाणान् इन्द्र यम वरुण कुबेरादीन्' इइ वेयणाओ तं मिच्छा वेएवि—'स एष यज्ञायुधी यजमानोऽञ्जसा स्वर्गलोकं गच्छति' इइ वयणं विज्जइ। जइ देवा न भवेज्जा ताहे देवलोगोपि न भवेज्जा, एवं सइ 'स्वर्ग-

लोकं गच्छंति' इदं वयणं कहं संगच्छेज्जा। एएणं वक्केणं देवाणं सत्ता सिज्जइ। अच्छउ ताव सत्थवयणं, पस्सउ इमाए परिसाए ठिए इंदादि देवे। पच्चक्खं एए देवा दीसंति। एवं पहुस्स वयणं सोच्चा निसम्म मोरियपुत्तो छिन्न संसओ अद्धुट्ठसयसीसेहिं पव्वइओ ॥१८॥

शब्दार्थ—[तए णं उवज्झायं सुहम्मं पव्वइयं सोऊण मंडिओवि अद्धुट्ठ सयसीसेहिं परिवुडो पहुसमीवे समणुपत्तो] उसके बाद उपाध्याय सुधर्मा को दीक्षित हुआ सुनकर मण्डिक भी साढे तीनसौ शिष्यों के साथ भगवान के पास गये [पहूय तं कहेइ-भो मंडिया! तुज्झ मणंसि बंधमोक्खविसओ संसओ वट्टइ–] भगवान ने मण्डिक से कहा–हे मण्डिक! तुम्हारे मन में बन्ध और मोक्ष के विषय में संशय है कि–[जं जीवस्स बंधो मोक्खो य हवइ न वा] जीव को बंध और मोक्ष होता है या नहीं? [स

एष बिगुणो विभु र्न बध्यते संसरति वा मुच्यते मोचयति वा] अर्थात् यह निर्गुण और व्यापक आत्मा न बद्ध होता है न संसरण करता है न मुक्त होता है न किसी को मुक्त करता है। [इच्चाइ वेयवयणाओ जीवस्स न बंधो न मोक्खो] इत्यादि वेद वाक्यों से न जीव का बंध होता है न मोक्ष होता है [जइ बंधो मन्निज्जइ ताहे सो अणाइयो वा? पच्छाजाओ वा?] यदि बन्ध माना जाय तो वह अनादि है अथवा पीछे से उत्पन्न हुआ है [जइ अणाइओ ताहे सो न छुट्टिज्जइ ? त्ति। यदि अनादि है तो वह कभी छूटना नहीं चाहिये, [जो अणाइओ सो अनंताओ हवइ ति वयणा] क्योंकि यह कहा गया है कि 'जो अनादि होता है, वह अनंत होता है [जइ पच्छाजाओ ताहे कया जाओ?] यदि बाद में उत्पन्न हुआ है तो कब उत्पन्न हुआ? [कहं छुट्टिज्जइ?] और कैसे छूटता है? [तं मिच्छा] यह मत मिथ्या है, [लोए जीवा असुहकम्मबंधेण दुहं, सुहकम्मबंधेण सुहं पत्ता दिसंति] क्योंकि लोक में जीव अशुभ कर्म–बंध से दुःख को

और शुभ कर्म बन्ध से सुख को प्राप्त करते देखे जाते हैं [सयलकम्मछेएण जीवो मोक्खं पावइत्ति लोए पसिद्धं] यह भी प्रसिद्ध है कि समस्त कर्मों का नाश होने से जीव मोक्ष को प्राप्त करता है। [अणाइबंधो न छुट्टिज्जइ' त्ति जं तए कहियं तं पि मिच्छा] अनादि बंध छूटता नहीं है ऐसा तुमने कहा सो भी मिथ्या है; [जओ लोए सुवण्णस्स मट्टियाए य जो अणाइ संबंधो सो छुट्टिज्जइ चेव] क्योंकि लोक में स्वर्ण और मृत्तिका का जो अनादि संबन्ध है, वह छूटता ही है [तव सत्थेसु वि वुत्तं–'ममेति वध्यते जन्तु निर्ममेति;प्रमुच्यते' इच्चाइ। पुणो वि–] तुम्हारे शास्त्र में भी कहा है कि–'ममत्व के कारण जीव को बन्धन होता है और ममता से रहित जीव मोक्ष को पाता है। इत्यादि। और भी कहा है [मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः] मन ही मनुष्यों के बन्ध और मोक्ष का कारण है [बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मनः] विषयों में निवृत्त मन मुक्ति का कारण होता है' [अओ सिद्धं जीवस्स बंधो मोक्खो य

हवइ त्ति] इससे बन्ध और मोक्ष होता है, यह सिद्ध हुआ [एवं सोच्चा विम्हितो छिन्न संसओ पडिबुद्धो मंडिओ वि अद्धुट्ठसयसीसेहिं पव्वइओ] इस प्रकार सुनकर मण्डिक विस्मित हुए। उनका संशय दूर हो गया। वह प्रतिबोध प्राप्त करके अपने साढे तीनसौ शिष्यों के साथ प्रव्रजित हो गया।

[मण्डियं पव्वजियं सोच्चा मोरियपुत्तो वि निय संसयछेयणट्ठं] मण्डिक को दीक्षित हुआ सुनकर मौर्यपुत्र भी अपना संशय निवारण करने के लिये [अद्धुट्ठ सयसीसेहिं परिवुडो पहुसमीवे पत्तो] साढे तीनसौ शिष्यों के परिवार सहित प्रभु के पास आया। [तं पि पहू एवं चेव कहेइ–] प्रभुने उन से भी ऐसा कहा–[भो मोरियपुत्ता ! तुज्झ मणंसि एयारिसो संसओ वट्टइ–] हे मौर्यपुत्र ! तुम्हारे मन में ऐसा संशय है कि [जं देवा न संति 'को जानाति मायोपमान् गीर्वाणान् इन्द्र यम वरुण कुबेरादीन्' इइ वयणाओ] देव नहीं है क्योंकि–'माया के समान इन्द्र, यम वरुण और कुबेर आदि देवों

को कौन जानता है ? ऐसा कहा है' [तं मिच्छा] तुम्हारा यह विचार मिथ्या है [वेएवि स एष यज्ञायुधी यजमानोऽञ्जसा स्वर्गलोकं गच्छति इइ वयणं विज्जइ] वेदों में भी यह वाक्य है–'यज्ञरूप आयुध (शस्त्र) वाला यज्ञ कर्ता शीघ्र ही स्वर्गलोक में जाता है [जइ देवा न भवेज्जा ताहे देवलोगो पि न भवेज्जा] यदि देव न होते तो देवलोक भी नहीं होता [एवं सइ 'स्वर्गलोकं गच्छति' इइ वयणं कहं संगच्छेज्जा] ऐसी अवस्था में स्वर्गलोक में जाता है' यह कथन कैसे संगत हो सकता है ? [एएणं वक्केणं देवाणं सत्ता सिज्झइ] इस वाक्य से देवों की सत्ता सिद्ध होती है। [अच्छउ ताव सत्थवयणं पस्सउ इमाए परिसाए ठिए इंदाइ देवे] परन्तु शास्त्र के वाक्यों को रहने दो, इसी परिषदा में स्थित इन्द्र आदि देवों को देख लो [एवं पच्चक्खं एए देवा दीसंति] ये देव प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहे हैं [एवं पहुस्स वयणं सोच्चा निसम्म मोरियपुत्तो छिन्नसंसओ अद्धुट्ठ सयसीसेहिं पव्वइओ] प्रभु के इस प्रकार के वचन सुनकर और समझ कर मौर्यपुत्र भी

मंडित-
मौर्यपुत्रयोः
शङ्का-
निवारणम्
प्रव्रजनं च

छिन्न संशय होकर साढे तीनसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये ॥१८॥

भावार्थ—तत्पश्चात् उपाध्याय सुधर्मा को प्रव्रजित हुआ सुनकर मण्डिक भी साढे तीनसौ शिष्यों के परिवार के साथ भगवान् के समीप पहूंचे। भगवान् ने मण्डिक से कहा–हे मण्डिक! तुम्हारे मन में बन्ध–मोक्ष–विषयक संशय है। उस संशय का स्वरूप बतलाते हैं–जीव का बंध और मोक्ष होता है या नहीं? तुम्हारे इस संशय का कारण वेद का यह वचन है–'यह निर्गुण और सर्वव्यापी आत्मा न तो बंधन को प्राप्त होता है, न उत्पन्न होता है, न मुक्त होता है और न दूसरे को मुक्त करता है। इसी वेद वचन से तुम मानते हो कि जीव को न बंध होता है और न मोक्ष होता है। इस विषय में तुम्हारी युक्ति यह है–अगर जीव का बंध माना जाय तो वह बंध अनादि है या सादि-बाद में उत्पन्न हुआ है? अगर नित्य माना जाय तो वह छूट नहीं सकता, क्योंकि जो पदार्थ आदि–रहित होता है, वह अन्तरहित भी होता है। इस प्रकार जो नित्य होता

है वह सदैव बना रहता है, अतएव अनादि कालीन जीव का बंध नष्ट नहीं होना चाहिये। अब दूसरे विकल्प का खंडन करने के लिये कहते है—अगर जीव का बंध पश्चात् उत्पन्न हुआ है तो वह किस समय हुआ? और किस प्रकार छूटता है? इस प्रश्न का कोई समाधान नहीं है। अतएव सिद्ध हुआ कि जीव को बंध और मोक्ष नहीं होता। यह जो तुम्हारा मत है सो मिथ्या है, क्योंकि लोक में प्रसिद्ध है कि जीव अशुभ कर्म—बंधन के कारण, उस कर्म जनित दुःख के भागी देखे जाते हैं, और शुभ कर्म बंध के कारण जीव सुख के भागी देखे जाते हैं। तथा ध्यान रूपी अग्नि से समस्त कर्म समूह को भस्म कर देने के कारण, जीव सुख और दुःख के कारण भूत शुभ एवं अशुभ कर्मो से होनेवाले बंध का अभाव होने से मोक्ष प्राप्त करते हैं। तुमने कहा कि—अनादि बंध छुटता नहीं है, सो भी मिथ्या है। लोक में सोने और मिट्टी का परस्पर जो प्रवाह की अपेक्षा से अनादि कालीन संबध है वह छूट ही जाता है। इसी प्रकार जीव का

भी कर्मों के साथ का अनादि सम्बन्ध अवश्यमेव छूट जाता है। इस विषय में तुम्हारे शास्त्र में भी कहा है–जब जीव 'यह पुत्रकलत्र आदि मेरे हैं, ऐसा मानते हैं तो ममता की रस्सी से बंधता है और जब जीव यह समझ लेता है कि 'पुत्रकलत्र आदि मेरे नहीं है' तो ममत्व से रहित होकर मुक्त होता है। इसके अतिरिक्त भी बंध मोक्ष का समर्थन करनेवाले बहुत से वचन तुम्हारे शास्त्र में विद्यमान है। कहा भी हैं– मनुष्यों के बंध और मोक्ष का कारण मन ही है, मन के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है। विषयो में आसक्त मन चार गति रूप संसार भ्रमण का कारण होता है। तथा इन्द्रिय–विषयों की आसक्ति से रहित मन जीव के मोक्ष–भव भ्रमण के अन्त का कारण होता है। इससे सिद्ध हुआ कि जीव को बंध और मोक्ष होता है। इस प्रकार सुनकर मण्डिक विस्मित हुए। उनका संशय दूर हो गया। वह प्रतिबोध प्राप्त करके अपने साढे तीनसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये।

शंका—अग्निभूति द्वारा किये गये कर्म—विषयक संशय से इस संशय में क्या अन्तर है? समाधान—अग्निभूति को कर्म के अस्तित्व में ही सन्देह था। पर मण्डिक कर्म का अस्तित्व तो मानते थे। किन्तु जीव और कर्म के संयोग के संबंध में शंकित थे। यही दोनों में अन्तर है। मण्डिक को दीक्षित हुआ सुनकर मौर्यपुत्र भी अपने संशय का निवारण करने के लिये अपने तीनसौ पचास शिष्यों के साथ भगवान् के समीप पहुंचे। उन्हें भी भगवान् ने आगे कहे वचन कहे—हे मौर्यपुत्र! तुम्हारे मन में ऐसा संशय है कि देव नहीं है। इस विषय में प्रमाणरूप से प्रयुक्त वचन प्रकट करते हैं—'माया के समान मिथ्या इन्द्र, यम, वरुण और कुबेर आदि देवों को कौन देखता है?' इस कथन से देव नहीं है, ऐसा सिद्ध होता है। किन्तु तुम्हारा देवों को स्वीकार न करना मिथ्या है, क्योंकि वेद में ऐसा कहा है कि—'यह यज्ञ रूपी शस्त्रवाला यजमान—यज्ञकर्त्ता शीघ्र ही स्वर्गलोक में जाता है।' अगर देव

न होते तो देवलोक भी न होता। ऐसी स्थिति में 'स्वर्गलोक में जाता है' यह वाक्य कैसे ठीक बैठ सकता है? इस वाक्य को स्वीकार करने पर देवलोक और देवलोक में रहनेवाले देवों की भी सिद्धि हो गई। इस प्रकार आगम प्रमाण से देवों की सत्ता का साधन करके अब प्रत्यक्ष प्रमाण से साधन करते हैं कि 'शास्त्रवचनों को जाने दो, तुम इस परिषदा में बैठे हुए इन्द्र आदि देवों को प्रत्यक्ष देख लो'। इस प्रकार प्रभु के वचन सुनकर तथा उहापोह करके विशेष रूप से हृदय में निश्चित करके मौर्यपुत्र सन्देह रहित होकर साढे तीनसौ शिष्यों सहित दीक्षित हो गये ॥१८॥

मंडित-मौर्यपुत्रयो शङ्का-निवारणम् प्रव्रजनं च

मूलम्—मोरियपुत्तं पव्वइयं सुणिउं अकंपिओ चिंतेइ—जो जो तस्स समीवे गओ सो सो पुणो न निव्वत्तो। सव्वेसिं संसओ तेण छिन्नो। सव्वे वि य पव्वइया। अओ अहंपि गच्छामि संसयं छेदेमित्ति कट्टु तीसयसीससहिओ

पहुसमीवे संपत्तो। तं दट्ठुं भगवं वएइ—भो अकंपिया! तुज्झमणंसि इमो संसओ अत्थि। जं नेरइया न संति 'न ह वै प्रेत्य नरके नारकाः संति' इच्चाइ वयणाओ त्ति तं मिच्छा। नारया संति चेव न उण तं एत्थ आगच्छंति, नो णं मणुस्सा तत्थ गमिउं सक्कंति। अइसयणाणिणो तं पच्चक्खत्तेण पासंति तव सत्थंमि वि—'नारका वै एष जायते यः शूद्रान्नमश्नाति' एयारिसं वक्कं लब्भइ जइ नारगा न भविज्जा ताहे 'सुद्दन्नभक्खगो नारगो होइ' त्ति वक्कं कहं संगच्छिज्जा ?। अणेण सिद्धं णारगा संति त्ति। एवं सोच्चा अकंपिओ वि तिसयसीसेहिं पव्वइओ।

अकंपिओ वि पव्वइओ त्ति जाणिय पुण्णपावसंदेहजुओ 'अयल—भाया' इअ नामगो पंडिओ वि तिसयसीसेहिं परिवुडो पहु समीवे समागओ। तं

दट्ठूणं भगवं एवं वयासी—भो अयलभाया ! तव हिययंसि इमो संसओ वट्टइ—जं पुण्णमेव पकिट्ठं संतं पकिट्ठ सुहस्स हेऊ ? तमेव य अवचीय माणच्चंत थोवावत्थं संतं दुहस्स हेऊं ? उय तय इरित्तं पावं किं पि वत्थु अत्थि ? अहवा एगमेव उभयरूवं ? उभयंपि संतं तं वा अत्थि ? उय पुरिसाइरित्तं अन्नं किंपि नत्थि ? जओ वेएसु कहियं—'पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं' इच्चाइ त्ति तं मिच्छा। इहलोए पुण्णपावफलं पच्चक्खं लक्खिज्जइ, एवं ववहारओ वि पत्तिज्जइ—जं पुण्णस्स फलं दीहाउय लच्छी रूवारोग्ग—सुकुल-जम्माइ, पावस्स य तव्विवरीयं अप्पाउयाइ फलं, इय पुण्णं पावं च संतं तं वियाणाहि' पुरुष एवेदं इच्चेयम्मि विसए अग्गिभूइपण्हे जं मए कहियं तं चेव मुणेयव्वं तव सिद्धंते वि पुण्णं पावं च सतंतत्तणेण गाहियं, तं जहा—

'पुण्यः पुण्येण कर्मणा, पापः पापेन कर्मणा' इच्चाइ। अणेण सिद्धं पुण्णं पावं च उभयमवि संतं तं वत्थु विज्जइ इय सुणिय छिन्न संसओ अयलभाया वि तिसयसीसेहिं पव्वइओ ॥१९॥

शब्दार्थ—[मोरियपुत्तं पव्वइयं सुणिउं अकंपिओ चिंतेइ] मोर्यपुत्र को प्रव्रजित हुआ सुनकर अकम्पित ने सोचा–[जो जो तस्स समीवे गओ सो सो पुणो न निव्वत्तो] जो जो उनके पास गया सो वापिस न लौटा। [सव्वेसिं संसओ तेण छिन्नो] उन्होंने सभी का संशय दूर कर दिया [सव्वे वि य पव्वइया] सभी दीक्षित हो गये [अओ अहमवि गच्छामि संसयं छेदेमित्ति कट्टु तिसयसीससहिओ पहुसमीवे संपत्तो] अतः मैं भी जाऊं और अपने संशय का निवारण करुं। इस प्रकार विचार कर तीनसौ शिष्यों के साथ वह महावीर प्रभु के समीप पहुंचा [तं दट्टुं भगवं वएइ भो अकंपिया ! तुज्झ-मणंसि इमो संसओ अत्थि] अकम्पित को देखकर भगवान ने कहा–हे अकम्पित !

तुम्हारे मन में यह संशय है कि–[जं नेरइया न संति 'न ह वै प्रेत्य नरके नारकाः संति' इच्चाइ वयणाओ त्ति तं मिच्छा] नारक जीव नहीं है–क्योंकि शास्त्र में कहा है–'परभव में नरक में नारक नहीं है' तुम्हारा यह मत मिथ्या है। [नारया संति चेव] नारक तो है ही [न उण ते एत्थ आगच्छंति] किन्तु वे यहां आते नहीं है [ना णं मणुस्सा तत्थ गमिउं सक्कंति] और न मनुष्य ही वहां जा सकते हैं। [अइसयणाणिणो ते पच्च-क्खत्तेण पासंति] अतिशयज्ञानी ही उन्हें प्रत्यक्ष में देखते है [तव सत्थंमि वि–'नारको वै एष जायते यः शूद्रान्नमश्नाति' एयारिसं वक्कं लब्भइ] तुम्हारे शास्त्र में भी ऐसा वाक्य देखा है कि 'जो शूद्र का अन्न खाता है, वह नारक रूप में उत्पन्न होता है [जइ नारगा न भविज्जा ताहे सुद्दन्न भक्खगो नारगो होइ' त्ति वक्कं कहं संगच्छिज्जा ?] यदि नारक न होते तो 'शूद्र का अन्न खानेवाला नारक होता है यह कथन कैसे संगत होता। [अनेण सिद्धं णारगा संति त्ति] इससे नारकों का अस्तित्व सिद्ध होता है।

अकम्पितादीनां शङ्कानिवारणम् प्रव्रजनं च

[एवं सोच्चा अकंपिओ वि तिसयसीसेहिं पव्वइओ] इस प्रकार सुनकर अकम्पित भी तीनसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये ['अकंपिओ वि पव्वइओ' ति जाणिय पुण्ण पावसंदेहजुत्तो अयलभाया इय नामगो पंडिओ वि तिसयसीसेहिं परिवुडो पहु समीवे समागओ] अकंपित भी दीक्षित हो गये, यह जानकर पुण्यपाप के विषय में सन्देह रखनेवाले अचलभ्राता नामक पण्डित तीन सौ शिष्यों के साथ प्रभु के समीप गये [तं दट्ठूणं भगवं एवं वयासी] उन्हें देखकर भगवान ने ऐसा कहा–[भो अयलभाया ! तव हिययंसि इमो संसओ वट्टइ] हे अचलभ्राता ! तुम्हारे हृदय में ऐसा सन्देह है कि [जं पुण्णमेव पकिट्ठं संतं पकिट्ठ सुहस्स हेउ ?] पुण्य ही जब प्रकर्ष को प्राप्त होता है तो प्रकृष्ट सुख का हेतु हो जाता है [तमेव य अवचीयमाणमच्चंत थोवावत्थं संतं दुहस्स हेऊ ? उय तय इरित्तं पावं किं पि वत्थु अत्थि] और जब वही पुण्य घट जाता है और अल्प रहता है तब दुःख का कारण बन जाता है ? [अहवा एगमेव उभयरूवं ?

उभयंपि संतं तं वा अत्थि ? उय पुरिसा इरित्तं अन्नं किंपि नत्थि ?] अथवा पाप पुण्य से भिन्न कुछ स्वतंत्र वस्तु है ? अथवा पुण्य और पाप का कोई एक ही स्वरूप है ? या दोनो परस्पर निरपेक्ष है स्वतंत्र हैं ? अथ च आत्मा के अतिरिक्त पुण्यपाप कोई वस्तु नहीं है ? [जओ वेएसु कहियं 'पुरुष एवेद सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् इच्चाइत्ति] क्योंकि वेद में यह कहा गया है कि—जो वर्तमान है जो अतीत में था और भविष्यत् में होगा वह सब पुरुष [आत्मा] ही है। आत्मा से भिन्न पुण्य पाप आदि कोई पदार्थ नहीं है। [तं मिच्छा] तुम्हारे मन में ऐसा संशय है, किन्तु यह मिथ्या है। [इहलोए पुण्ण पावफलं पच्चक्खं लक्खिज्जइ] इस लोक में पुण्य और पाप का फल प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है [एवं ववहारओ वि पत्तिज्जइ—जं पुण्णस्स फलं दीहाउय लच्छीरूवा-रोग्ग सुकुलजम्माइ] इसके अतिरिक्त व्यवहार से भी प्रतीत होता है कि दीर्घ आयु लक्ष्मी, सुन्दररूप, आरोग्य, सुकुल में जन्म आदि पुण्य का फ़ल है [पावस्स य तव्वि-

अकम्पितादीनां शङ्कानिवारणम् प्रव्रजनं च

वरीयं अप्पाउयाइ, इय पुण्णं पावं संतं तं वियाणाहि] और पाप का फल इससे विपरीत अल्पायु आदि है अतः पुण्य और पाप को स्वतंत्र समझो [पुरुष एवेदं इच्चेयम्मि विसए अग्गिभूइपण्हे जं मए कहियं तं चेव मुणेयव्वं] यह सब पुरुष ही है इस विषय में अग्निभूति के प्रश्न के उत्तर में मैंने जो कहा है वही यहां समझ लेना चाहिये। [तव सिद्धंते वि पुण्णं पावं च सतंतत्तणेण गहियं] तुम्हारे सिद्धान्त में भी पुण्य और पाप को स्वतंत्र रूप से ही ग्रहण किया है [तं जहा-'पुण्यः पुण्येन कर्मणा, पापः पापेन कर्मणा' इच्चाइ] जैसे पुण्य कर्म से पुण्यवान् होता है और पाप कर्म से पापी होता है इत्यादि [अणेण सिद्धं पुण्णं पावं च उभयमवि सतंतं वत्थु विज्जइ] इससे सिद्ध है कि पुण्य और पाप दोनों स्वतंत्र वस्तु है [इय सुणिय छिन्नसंसओ अयलभाया वि तिसयसीसेहिं पव्वइयो] यह सुनकर अचलभ्राता का संशय दूर हो गया। वह तीनसौ शिष्यों के साथ भगवान के समीप दीक्षित हो गये ॥१९॥

भावार्थ—मौर्य पुत्र को दीक्षित हुआ सुनकर अकम्पित नामक पण्डित विचार करने लगे—जो जो भी महावीर के पास गया। वह लौटकर वापिस नहीं आया। उन्होंने सभी के संशय का निवारण कर दिया और सभी उनके समीप दीक्षित हो गये। तो मैं भी क्यों न जाऊं और अपने संशय का निवारण करूं ? इस तरह विचार कर अकम्पित पंडित भगवान् के पास अपने तीनसौ शिष्यों के परिवार को साथ लेकर पहुंचे। उन्हें देखकर भगवान् ने कहा—हे अकंपित ! 'परभवमें, नरक में नारक—नरक जीव नहीं हैं। इस वेदवाक्य से तुम्हारे मन में यह संशय है कि नारक नहीं है। लेकिन तुम्हारा मत मिथ्या है। नारक तो हैं, पर वे इस लोक में आते नहीं हैं और मनुष्य नरक में (इस शरीर से) नहीं जा सकते। हां अतिशय ज्ञानी नरकके जीवों—नारकों को केवलज्ञान से प्रत्यक्ष देखते हैं। तुम्हारे शास्त्र में भी ऐसा वाक्य मिलता है कि—'नारको वै एष जायते यः शूद्रान्नमश्नाति' जो ब्राह्मण शूद्र का अन्न

खाता है, वह नरकमें नारकके रूप में उत्पन्न होता ही है। अगर नारक न होते तो 'शूद्रान्न-भोजी नारक होता है, यह वाक्य कैसे संगत होता ? इससे सिद्ध है कि नारक जीवों की सत्ता है। ऐसा सुनकर अकम्पित भी तीनसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये। मण्डित भी अपने तीनसौ अन्तेवासियों सहित भगवान के पास पहूंचे। उन्हें देखकर भगवानने इस प्रकार कहा-हे अचलभ्राता! तुम्हारे अन्तःकरण में यह सन्देह है कि पुण्य ही जब प्रकृष्ट [उच्चकोटिका] होता है तो वह सुखका कारण होता है, और जब वही पुण्य घट जाता है, और अल्प रहता है तब दुःखका कारण बन जाता हैं ? अथवा पाप, पुण्य से भिन्न कुछ स्वतंत्र वस्तु है? अथवा पुण्य अथवा पापका कोई एक ही स्वरूप है? या दोनों परस्पर निरपेक्ष स्वतंत्र है ? अथ च आत्मा के अतिरिक्त पुण्य-पाप कोई वस्तु नहीं है? क्योंकि वेद में यह कहा गया है कि-'जो वर्तमान है, जो अतीत में था, और भविष्यत् में होगा वह सब पुरुष [आत्मा] ही है, आत्मा से भिन्न पुण्य-

अकम्पितादीनां शङ्कानिवारणम् प्रव्रजनं च

पाप आदि कोई पदार्थ नहीं है। तुम्हारे मनमें ऐसा संशय है, किन्तु यह मिथ्या है। इस संसार में पुण्य और पापका फल प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। व्यवहार से भी प्रतीत होता है कि पुण्य का फल दीर्घ जीवन, लक्ष्मी, रमणीय स्वरूप, नीरोगता और सत्कुल में जन्म आदि है, और पापका फल इनसे उलटा–अल्पायु, दरिद्रता, कुरूपता, रुग्णता और असत्कुल में जन्म आदि है। इस प्रकार पुण्य और पाप पर्याय की अपेक्षा स्वतंत्र परस्पर निरपेक्ष, पृथक् पृथक् है। यही मानना चाहिये। तथा कारण में भेद न हो तो कार्य में भेद नहीं हो सकता। सुख और दुःख परस्पर विरुद्ध दो कार्य हैं, अतः उनका कारण भी परस्पर विरुद्ध और अलग अलग होना चाहिये। पुण्य-पापको अभिन्न मानोगे तो उससे सुख–दुःख रूप दो कार्य नहीं होंगे, अथवा सुख-दुःख को भी अभिन्न ही मानना पडेगा। किन्तु सुख और दुःख को अभिन्न मानना प्रतीत से बाधित है। जैसे दीपक की मन्दता अन्धेरे को उत्पन्न नहीं करती उसी प्रकार पुण्यकी

मन्दता दुःख को उत्पन्न नहीं कर सकती। 'यह सब पुरुष ही है, इत्यादि वाक्यके विषयमें जो तुम्हें सन्देह है, उसका समाधान अग्निभूति के प्रश्न में जो समाधान मैंने किया है, वही यहां भी समझ लेना। इसके अतिरिक्त तुम्हारे आगम में भी पुण्य और पाप दोनोंको स्वतंत्र स्वीकार किया गया है कहा है--'पुण्यः पुण्येन कर्मणा पापः, पापेन कर्मणा' अर्थात्--जीव शुभ कर्म से पुण्यवान् होता है और अशुभ कर्मसे पापवान् होता है। ऐसा मानने पर इस वाक्य का अर्थ यह होगा--'शुभ कर्म से पुण्य और अशुभ कर्मसे पाप होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि पुण्य और पाप दोनों स्वतंत्र वस्तुएं है। आशय यह है कि आर्हत मत में कोई भी दो पदार्थ सर्वथा भिन्न या सर्वथा अभिन्न नहीं होते, तथापि अचल भ्राता के माने हुए सर्वथा अभेदपक्षका निरास करने के लिये यहां केवल भेद--पक्षका समर्थन किया गया है। द्रव्यकी अपेक्षा दोनों में अभेद भी है, अनेकान्तवाद के ज्ञाताओं को यह समझना कठिक नहीं। भगवान्

के यह वचन सुनकर अचलभ्राता का संशय छिन्न हो गया। वह भी अपने तीनसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये॥२०॥

मूलम्—मेयज्जो वि नियसंसयछेयणट्ठं तिसयसीसेहिं परिवुडो पहुसमीवे समागओ। भगवं तं वएइ—भो मेयज्जा तव मणंसि इमो संसओ वट्टइ—परलोगो नत्थि। जओ वेएसु कहियं—'विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय पुनस्तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञाऽस्ति' इच्चाइ। तं मिच्छा। परलोगो अत्थि चेव अन्नहा जायमेत्तस्स बालस्स माउथणदुद्धपाणे सन्ना कहं भवे? तव सिद्धंते वि वुत्तं—'यं यं वाऽपि स्मरन् भावं, त्यजत्यन्ते कलेवरम्। तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥' इच्चाइ। अओ सिद्धं परलोगो अत्थि त्ति। एवं सोच्चा निसम्म छिन्न संसओ मेयज्जोवि तिसयसीसेहिं पव्वइओ'

तं पव्वइयं सोच्चा एगारसमो पंडिओ पभासाभिहोवि तिसयसीससहिओ नियसंसयावणयणत्थं पहुसमीवे समणुपत्तो। पहुणा य सो आभट्ठो—भो पभासा! तव मणंसि इमो संसओ वट्टइ जं निव्वाणं अत्थि नत्थि वा? जइ अत्थि किं संसाराभावो चेव निव्वाणं? अहं वा दीवसिहाए विव जीवस्स नासो निव्वाणं? जइ संसाराभावो निव्वाणं मन्निज्जइ, ताहे तं वेयविरुद्धं भवइ, वेएसु कहियं- 'जरामयं वै तत्सर्वं यदग्निहोत्रम्' इति। अणेण जीवस्स संसाराभावो न भवइत्ति। जइ दीवसिहाए विव जीवस्स नासो निव्वाणं मन्निज्जइ, ताहे जीवाभावो पसज्जइत्ति। तं मिच्छा। निव्वाणं ति मोक्खो त्ति वा एगट्ठा! मोक्खो उवद्धस्सेव हवइ। जीवो हि कम्मेहिं बद्धो अओ तस्स पययणविसेसाओ मोक्खो भवइ चेव। अस्स विसए मंडिय पण्हे सव्वं कहियं। तं धारेयव्वं तव सत्थे वि वुत्तं-

मेतार्य-प्रभासयोः शङ्का-निवारणम् प्रव्रजनं च

'द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च। तत्र परं 'सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्मे' ति'। अणेण मोक्खस्स सत्ता सिज्झइ। अओ सिद्धं मोक्खो अत्थि त्ति। एवं सोच्चा छिन्नसंसओ पभासो वि तिसयसीसेहिं पव्वइओ ॥

मेतार्य–प्रभासयोः शङ्का-निवारणम् प्रव्रजनं च

एत्थ संगहणी गाहा दुगं

जीवे य कम्मविसये, तज्जीवयतच्छीरे[3] भूए[4] य।
तारिसय जम्मजोणी परे भवे बंधमुक्खे य ॥१॥
देव नेरइये पुण्णे, परलोए तह य होइ निव्वाणे।
एगारसावि संसय छेए पत्ता गणहरत्तं ॥इइ।

को गणहरो कइ संखेहिं सीसेहिं पव्वइओत्ति–पडिवाइया संगहणी गाहा–पंचसयो पंचण्हं दोण्हं चिय होइ सद्धातिसयो य सेसाणं च चउण्हं, तिसओ

तिसओ हवइ गच्छे एवं पहुसमीवे सव्वं चोयालसयादिया पव्वइया ॥२१॥

'इइ गणहरवाओ'

शब्दार्थ—[मेयज्जो वि नियसंसयछेयणट्ठं तिसयसीसेहिं परिवुडो पहुसमीवे समागओ] मेतार्य भी अपने संशय को दूर करने के लिए तीनसौ शिष्यों के साथ प्रभु के समीप पहुंचा। [भगवं तं वएह] भगवान ने मेतार्य से कहा—[भो मेयज्जा! तव मणंसि इमो संसओ वट्टइ—] हे मेतार्य! तुम्हारे मनमें यह संशय है कि [परलोगो नत्थि] परलोक नहीं है। [जओ वेएसु कहियं—'विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय पुनस्तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञाऽस्ति' इच्चाइ] क्योंकि वेदों में ऐसा कहा है 'विज्ञानघन आत्मा इन भूतों से उत्पन्न होकर फिर उन्हीं में लीन हो जाता हैं। परलोक नामकी कोई संज्ञा नहीं है। इत्यादि; [तं मिच्छा] तुम्हारा यह संशय मिथ्या है [परलोगो अत्थिचेव अन्नहा जायमेत्तस्स बालस्स माउथणदुद्धपाणे सन्ना

कहं भवे ?] परलोक–पुनर्जन्म है ही अन्यथा तत्काल उत्पन्न बालकका माता के स्तन का दूध पीनेकी इच्छा [या बुद्धि] कैसे होती ? [तव सिद्धंते वि वुत्तं–यं यं वाऽपि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।] तुम्हारे सिद्धान्त में भी कहा है कि–'हे अर्जुन ! जीव अन्तिम समय में जिन जिन भावोंका स्मरण–चिंतन करता हुआ शरीर छोडता है [तं तमेवति कौन्तेय, सदा तद्भावभावितः] उन उन भावों से भावित वह जीव उसी उसी भाव को प्राप्त होता है । [अओ सिद्धं परलोगो अत्थित्ति] अतः सिद्ध है कि परलोक संज्ञा हैं [एवं सोच्चा निसम्म छिन्नसंसओ मेयज्जोवि तिसयसीसेहिं पव्वइओ] इस कथन को सुनकर और उसे हृदय में धारण कर और संशय रहित हो वह अपने तीनसो शिष्यों के साथ भगवान के समीप प्रव्रजित हो गया ।

[तं पव्वइयं सोच्चा एगारसमो पंडिओ पभासाभिहो वि तिसयसीससहिओ नियसंसयावणयणत्थं पहुसमीवे समणुपत्तो] मेतार्य को दीक्षित हुआ सुनकर ग्यारहवें

पण्डित प्रभास भी तीनसौ शिष्यों के साथ अपना संशय दूर करने के लिए प्रभु के पास पहुंचे [पहुणा य सो आभट्ठो–] प्रभुने उससे कहा–[भो पभासा! तव मणंसि इमो संसओ वट्टइ–] हे प्रभास! तेरे मन में यह संशय है कि [जं निव्वाणं अत्थि न त्थि वा ?] निर्वाण है या नहीं ? [जइ अत्थि किं संसाराभावो चेव निव्वाणं ? अहवा दीवसिहाए विव जीवस्स नासो निव्वाणं ?] यदि है तो क्या संसार का अभाव ही निर्वाण है ? अथवा दीपक की शिखा के समान जीवका नाश हो जाना निर्वाण है ? [जइ संसाराभावो निव्वाणं मन्निज्जइ ताहे तं वेयविरुद्धं भवइ] यदि संसार के अभाव को निर्वाण माना जाय तो यह मान्यता वेद विरुद्ध है। [वेएसु कहियं–'जरामर्यं वै तत्सर्वं यदाग्निहोत्रम् इति' अणेण जीवस्स संसाराभावो न भवइत्ति] वेदों में कहा है 'यह जो अग्निहोत्र है सो सब जरा मरण के लिये है। इससे प्रतीत होता है कि जीव के संसारका अभाव नहीं होता। [जइ दीवसिहाए विव जीवस्स नासो निव्वाणं मन्निज्जइ, ताहे जीवा-

भावो पसज्जइत्ति] यदि दीपक की लौ के समान जीवका नाश होना निर्वाण माना जाय तो जीव के अभावका प्रसंग आता है। [तं मिच्छा] हे प्रभास ! तुम्हारी यह मान्यता मिथ्या है [निव्वाणंति मोक्खो त्ति वा एगट्ठा ! मोक्खो उ बद्धस्सेव हवइ] निर्वाण और मोक्ष दोनों एक ही अर्थ को बतलानेवाले शब्द है। बद्ध जीव काही मोक्ष होता है [जीवो हि कम्मेहिं बद्धो अओ तस्स पययणविसेसाओ मोक्खो भवइ चेव] जीव कर्मो से बद्ध है, अतः प्रयत्न विशेष से उसका मोक्ष होता ही है [अस्स विसये मंडियपण्हे सव्वं कहियं तं धारेयव्वं] मोक्ष के विषय में मण्डिक के प्रश्न में कहा है वह सब समझ लेना चाहिये [तव सत्थेवि वुत्तं–'द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च। तत्र परं 'सत्यं ज्ञान मनंतं ब्रह्म' ति] तुम्हारे शास्त्र में भी कहा है-'दो प्रकार के ब्रह्म सत्य; ज्ञान और अनंत स्वरूप है। [अणेण मोक्खस्स सत्ता सिज्झइ] इससे मोक्षकी सत्ता सिद्ध होती है। [अओ सिद्धं मोक्खो अत्थि त्ति] अतः मोक्षका सद्भाव सिद्ध हुआ [एवं सोच्चा

छिन्नसंसओ पभासोवि तिसयसीसेहिं पव्वइओ] इस प्रकार सुनकर प्रभास भी संशय निवृत्त होकर तीनसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये।

[एत्थ संगहणी गाथा दुगं–] किस गणधरका कौन संशय था ? इस विषयमें यहां दो संग्रहणी गाथाएँ है–[जीवे] इन्द्रभूति को जीवके विषय में सन्देह था [कम्मविसये] अग्निभूतिको कर्म के विषय में संदेह था [तज्जीवक तच्छरीरे] वायुभूति को तज्जीव–तच्छरीर [वही जीव वही शरीर] के विषय में सन्देह था [भूते य] व्यक्त को पृथ्वी आदि पंचभूत के विषय में सन्देह था [तारिसय जम्मजोणी परे भवे] सुधर्मा को पूर्व भव के समान उत्तर भवके विषय में संदेह था [बंधमुक्खे य] मण्डिक को बन्ध मोक्षके विषयक सन्देह था [देवे] मौर्यपुत्र को देवों के विषयमें संदेह था [नेरइये] अकंपितको नारक के विषयमें संदेह था [पुण्णे] अचलभ्राता को पुण्य पाप के विषय में सन्देह था

[परलोए] मेतार्यको परलोक के विषयमें और [तह य होइ निव्वाणे] प्रभास को मोक्षके विषय मे संशय था [एगारसावि संशयच्छेए पत्ता गणहरतं] इइ' संशय के दूर होने पर ग्यारहों गणधर—पद्को प्राप्त हुए [को गणहरो कइसंखेहिं पव्वइओ त्ति पडिवाइया संगहणी गाहा–] कौन गणधर कितने शिष्यों के साथ दीक्षित हुए यह प्रतिपादन करनेवाली संग्रहणी गाथा यह है–[पंचसंयो पंचण्हं इन्द्रभूति से सुधर्मा तक के पांच गणधर पांचसौ शिष्यों के साथ प्रव्रजित हुए [दोण्हं चिय होइ सद्ध तिसयो य] मण्डिक और मौर्यपुत्र साढे तीनसौ शिष्यों के साथ प्रव्रजित हुए [सेसाणं च चउण्हं तिसय तिसओ हवइ गच्छो] शेषचार अकंपित, अचल भ्राता, मेतार्य और प्रभास तीनसौ शिष्यों के साथ प्रव्रजित हुए। [एवं पहुसमीवे सव्वे चोयालसया दिया पव्वइया] इस प्रकार चवालीससो ग्यारह की संख्या मे प्रभु के समीप दीक्षित हुए, जिस तरह इन्द्रभूतिने दीक्षा ग्रहण की उसी प्रकार सभी गणधरोने अपने अपने परिवारके साथ दीक्षा ग्रहण की ॥२१॥

मेतार्य–प्रभासयोः शङ्का-निवारणम् प्रव्रजनं च

भावार्थ—मेतार्य भी अपना संशय छेदन करने के लिये अपने तीनसौ शिष्यों के साथ प्रभु के समीप आये। भगवान्ने उनसे कहा–हे मेतार्य ! तुम्हारे मनमें यह संशय विद्यमान है कि परलोक नहीं है, क्योंकि वेदों में कहा है कि विज्ञानघन आत्मा ही इन भूतों से उत्पन्न होकर फिर उन्हीं भूतों में लीन हो जाता है, अतः परलोक नहीं है, इत्यादि [इस वाक्य का विवरण इन्द्रभूति के प्रकरण में किया जा चूका है, वहीं से जान लेना चाहिये] हे मेतार्य ! ऐसा तुम मानते हो सो मिथ्या है। परलोक का अवश्य अस्तित्व है। अगर परलोक न होता तो तत्काल जन्मे हुए बालकों को माता के स्तन का दूध पीने की बुद्धि कैसे होती ? परलोक स्वीकार करने पर तो पूर्वभव के दुग्धपान का संस्कार से माताका स्तनपान करने की चेष्टा संगत हो जाती है। तुम्हारे सिद्धान्त में भी कहा है–हे अर्जुन ! जीव मरणकाल में जिन–जिन भावों का स्मरण चिन्तन करता हुआ शरीरका परित्याग करता है, वह अन्तिम समयमें चिन्तन किये

हुए उन्हीं भावों से भावित–वासित होकर उसी–उसी भावको प्राप्त करता है। इत्यादि अत एव परलोकको स्वीकार करना चाहिये। इस प्रकार सुनकर और विशेष रूपसे अन्तःकरणमें धारण करके मेतार्य भी छिन्न संशय होकर तीनसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये। मेतार्य को दीक्षित हुआ सुनकर ग्यारहवें प्रभास नामक पंडित भी तीनसौ अन्तेवासियों सहित अपने संशय को दूर करने के लिये श्रीमहावीर स्वामीके समीप पहूंचे। भगवान् प्रभास से बोले–हे प्रभास! तुम्हारे मनमें यह संशय है कि निर्वाण है अथवा नहीं? अगर निर्वाण है तो क्या वह संसार का अभाव ही है, अर्थात् चार गतियों में भ्रमण रूप संसारका रुक जाना शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थित हो जाना ही है? अथवा दीपक की शिखा के नाश के समान जीव का सर्वथा अभाव हो जाना ही निर्वाण है? इन दोनों पक्षोंमें से यदि संसारका अभाव निर्वाण है, यह पहला पक्ष माना जाय तो वह वेद से विरुद्ध है, क्योंकि वेदों में कहा है कि–'यह जो नाना प्रकार

का अग्निहोत्र है, वह सभी जरा और मरणका कारण है। इस वेदवाक्य से तो यही निष्कर्ष निकलता है कि जीव के संसारका अभाव हो ही नहीं सकता। अगर दीपशिखा के नष्ट हो जाने के समान निर्वाण मोक्ष माना जाय तो जीवके सर्वथा अभाव की अनिष्टापत्ति होती है। निर्वाण के विषयमें तुम्हें यह संशय है। यह संशय मिथ्याज्ञान से उत्पन्न हुआ है। क्योंकि निर्वाण और मोक्ष, दोनों एकार्थवाचक शब्द है। मोक्ष बद्ध का ही होता है। जीव अनादि कालसे ज्ञानावरणीय आदि कर्मो से बद्ध है, अतः विशेष प्रयत्न करने से उसका मोक्ष होता ही है। इस विषय में मण्डिकके प्रश्न में जो कहा है, वह सब यहां भी समझ लेना चाहिये। अभिप्राय यह है कि ज्ञानावरणीय आदि कर्मो से जब आत्मा मुक्त हो जाता है तो उसमें औपाधिक भाव कर्म जनित विकार भी नहीं रहते। उस समय आत्मा अपने वास्तविक शुद्ध चैतन्यस्वरूप को प्राप्त कर लेता है। जरा और मरण से सर्वथा रहित हो जाता है। यही मोक्षका-

स्वरूप है। 'अग्निहोत्र जरा मरण का कारण है, इस कथन से यह सिद्ध नहीं होता कि जीव के जरा–मरण का अभाव हो ही नहीं सकता। इस वाक्य में तो यह प्रतिपादित किया गया है कि अग्निहोत्र जरा मरण के अन्तका कारण नहीं, प्रत्युत जरा–मरण का कारण है। इसमें ध्यान, अध्ययन, तपश्चरण आदि कारणों से होने वाले जरा-मरण के अभाव रूप मोक्षका निषेध नहीं किया गया है। अग्निहोत्र आरंभ–समारंभ एवं हिंसा जनित तथा स्वर्ग और वैभव आदि की कामना से प्रेरित अनुष्ठान है, अत एव उसे जरा–मरण का जो कारण कहा है सो उचित ही है। मोक्ष सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चरित्र से होता है, उसका निषेध उक्त वाक्य में नहीं है। मैं ही ऐसा कहता हूं, सो नहीं, तुम्हारे शास्त्र में भी कहा है–ब्रह्म के दो भेद हैं–पर और अपर। इन दोनों में से जो ब्रह्म है, वह सत्य, ज्ञान एव अनन्त स्वरूप है। वेद में भी कहा है–सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। अगर जीव को मोक्ष न होता तो उसे सत्य, ज्ञान एवं अनन्त स्वरूप की प्राप्ति

कैसे होती ? ऐसी स्थिति में प्रमाण माने हुए तुम्हारे वेदोंका कथन किस प्रकार संगत होगा ? वेद के इस वाक्य से तो मोक्ष की सत्ता ही होती है। अतः मोक्ष है, यह निस्सन्देह सिद्ध है। प्रभु के इस प्रकार के वचन सुनकर प्रभास भी छिन्नसंशय होकर अपने तीनसो शिष्यों के साथ प्रभु के पास प्रव्रजित हो गये इन ग्यारह गणधरों के संशय के विषय में दो संग्रहणी गाथाएं हैं (१) इन्द्रभूति को जीव के विषय में संशय था। (२) अग्निभूति को कर्म के विषय में संशय था। (३) वायुभूति को वही जीव है और वही शरीर है, ऐसा संशय था। (४) व्यक्त को पांचभूतों के विषयमें संशय था। (५) सुधर्मा को यह संशय था कि जो जीव इस भवमें जैसा है, परभव में भी वैसा ही जन्मता है। (६) मण्डिक को बन्ध और मोक्ष के विषय में संशय था। (७) मौर्यपुत्रको देवोंके अस्तित्व के विषयमें संशय था। (८) अकम्पित के नारकों के विषयमें संशय था। (९) अचलभ्राता को पुण्य पाप संबन्धि संशय था। (१०) मेतार्य को परलोक में संशय था

और (११) प्रभास को मोक्षके अस्तित्व में संशय था। इन्द्रभूतिसे लेकर प्रभास तक यह ग्यारहों गणधर अपना अपना संशय दूर होने पर गणधरता–गणधरपद्वी की प्राप्त हुए। कौन गणधर कितने शिष्यों के साथ दीक्षित हुए, यह बतलाने वाली संग्रहणी गाथाएं है–इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त और सुधर्मा इन पांच गणधरोंका प्रत्येकके पांच–पांचसौ शिष्यों का गण था। इनके बाद दो–मण्डिक और मौर्यपुत्र का प्रत्येक के साढे तीनसौ शिष्यों का गण था। शेष चार अकम्पित, अचलभ्राता, मेतार्य और प्रभास का तीन तीनसौ शिष्योंका समूह था। इस प्रकार प्रभु के पास सब मिलकर चौवालीससौ ग्यारह द्विज गणधरों के शिष्य भी दीक्षित हुए थे ॥२१॥

### पाप परिहार और धर्म स्वीकार, तथा गणधरों का उद्गार

मूलम्–नमो चउवीसाए तित्थयराणं उसभाई महावीर पज्जवसाणाणं। इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुन्नं नेयाउयं संसुद्धं

सल्लगत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं अवितहमविसंदिद्धं सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं। इत्थं ठिआ जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करांति। तं धम्मं सद्दहामि पत्तियामि रोएमि फासेमि पालेमि अणुपालेमि। तं धम्मं सद्दहंतो पत्तियंतो रोअंतो फासंतो पालंतो अणुपालंतो तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए, असंजमं परियाणामि, संजमं उवसंपज्जामि, अबंभं परियाणामि बंभं उवसंपज्जामि। अकप्पं परियाणामि, कप्पं उवसंपज्जामि। अन्नाणं परियाणामि, नाणं उवसंपज्जामि। अकिरियं परियाणामि, किरियं उवसंपज्जामि। मिच्छत्तं परियाणामि, सम्मत्तं उवसंपज्जामि। अबोहिं परियाणामि, बोहिं उवसंपज्जामि। अमग्गं परियाणामि, मग्गं उवसंपज्जामि। जं संभरामि जं

पापपरिहारपूर्वक धर्मस्वीकारः

च न संभरामि, जं पडिक्कमामि जं च न पडिक्कमामि तस्स सव्वदेवसियस्स अइयारस्स पडिक्कमामि। समणोहं संजयाविरय पडिहयपच्चक्खायपावकम्मो अनियाणो दिट्ठि-संपन्नो मायामोसविवज्जिओ अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्न-रससु कम्मभूमीसु जावंति केइ साहू रयहरणमुहपत्तियगोच्छगपडिग्गहधारा पंचमहव्वयधारा अट्ठारससहस्स सीलांगरहधारा अक्खआयारचरित्ता ते सव्वे-सिरसे मणसा मत्थएणं वंदामि खामेमि, सव्वजीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे मित्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झं न केणइ? एवमहं आलोइय निंदिय गरहिय दुगंछिय सम्मं, तिविहेणं पडिक्कंतो। वंदामि जिणे चउवीसं ॥२२॥

शब्दार्थ—णमो [नमस्कार] चउवीसाए [चौविश] [तीत्थयराणं] तीर्थकरोने [उसभाई] महावीर [पज्जवसाणाणं] रुषभ छे प्रथम ने महावीर छे छेल्ला जेमां एवा

पापपरि-हारपूर्वक धर्म-स्वीकारः

पापपरि-
हारपूर्वक
धर्म-
स्वीकारः

[इणमेव, निग्गथं, पावयणं] आज निग्रंथ संबधी प्रावचन (शास्त्र) [सच्चं]—सत्य [अणुत्तरं] प्रधान [केवलियं] केवलज्ञानी कथित [पडिपुण्णं] संपूर्ण [नेयाउयं] न्याय-युक्त [संसुद्धं] अत्यंत शुद्ध [सल्लगत्तणं] मायादि शल्यने कापनार [सिद्धिमग्गं] सिद्धिनो मार्ग [मुत्तिमग्गं] अष्ट कर्मथी मुक्त थवानो मार्ग [निज्जाणमग्गं] दोषरहित थवानो मार्ग [अवितह] यथातथ्य बराबर [मविसंदिद्धं] संदेह रहित [सव्वदुःख-पहीणमग्गं] सर्व दुःखनो क्षय करनार मार्ग [इत्थं, ठिआ, जीवा] आने विषे रहेता थका जीवो । [सिज्झंति] ज्ञानादि सिद्धिने पामे छे.—[वुज्झंति] समग्र तत्वज्ञ थाय छे [मुच्चंति] भवग्राहक कर्मथी मूकाय छे [परिनिव्वायंति] समस्त प्रकारे निवृत्त थाय छे [सव्वदुःखाणमंतं करंति] सर्व शारीरिक मानसिक दुःखनो अंत करे छे [तं धम्मं] (ते माटे) ते धर्मने [सद्दहामि] सर्दहुं छुं [पत्तियामि] प्रतीत आणु छुं [रोएमि] रूचि करुं छुं [फासेमि] स्पर्शु छुं सेवु छुं [पालेमि] पालुं छु रक्षा करुं छुं [अणुपालेमि] वीतरागनी

आज्ञा प्रमाणे विशेषे करी पालु छुं [तं धम्मं] ते धर्मने [सद्दहतो] सर्दहतो थको [रोअंतो] रोचवतो थको [फासंतो] स्पर्शतो थको [पालंतो] पालतो थको [अणुपालंतो] विशेष करी पालतो थको [तस्स धम्मस्स] ते वीतरागना धर्मनी, [केवली पन्नत्तस्स] केवली प्रज्ञप्त [प्ररूपेल] [अब्भुट्ठिओमि] एवा उद्यमवंत–तत्पर [आराहणाए] आराधनाने विषे [विरओमि] निवर्त्तित एवो छुं [विराहणाए] विराधनाने विषे [असंजमं] प्राणातिपातादिरूप असंयमने [परियाणामि] जाणुं छुं [संजमं] संयमने [उवसंपज्जामि] अंगीकार करूं छुं [अबंभं] अब्रह्मचर्य ने [परियाणामि] ज्ञप्रज्ञाए जाणी पचखु छुं, [कप्पं] पिंडादिक चार कलपनिकने [उवसंपज्जामि] अंगीकार करूं छुं [अकप्पं] अकलपनिक आहार स्थानक वस्त्रपात्रादिने [परियाणामि] ज्ञप्रज्ञाए जाणी पचखु छुं [कप्पं] पिंडादिक चार कलपनिकने [उवसंपज्जामि] अंगीकार करूं छुं [अन्नाणं] अज्ञान [अन्य प्ररूपित] भावने [परिआणामि] ज्ञप्रज्ञाए जाणी पचखु छुं [नाणं उवसंपज्जामि] विशिष्ट ज्ञानने

पापपरिहारपूर्वक धर्मस्वीकारः

(इश्वर प्ररूपित भावने) अंगीकार करुं छुं [अकिरियं] मिथ्याक्रियाने [परियाणामि] ज्ञँप्रज्ञाए जाणी पचखुं छुं; [मग्गं] ज्ञान, दर्शन, चरित्र तप छे जेमां एवा सम्यक् मार्गने [उवसंपज्जामि] अंगीकार करूं छुं [जं संभरामि] जे दोषने संभारूं छुं (याद करुं छुं) ते [जं च न संभरामि] वळी जे दोष सांभरता (याद आवता) नथी ते [जं पडिक्कमामि] जे दोषने आलोचुं [जं च न पडिक्कमामि] जे दोष नथी आलोचतो याद नहीं आववाथी [तस्स सव्वस्स] ते सर्व [देवसियस्स] दिवस संबन्धी [अईयारस्स] अतिचारने [पडिक्क मामि] निवारूं छुं [समणोहं] श्रमण (तपस्वी) हुं [संजय] संयत (समस्त प्रकार प्राप्त थयेल छुं [विरय] संसारथी विराम पामेल छुं [पडिहय] समीप आवतां हण्यां छे [पच्चक्खाय] प्रत्याख्याने करी [पावकम्मे] पापकर्मने एवो छुं [अनिआणो] निदानरहित छुं, [दिट्ठी संपन्नो] सम्यक् दृष्टि संपन्न छुं, [माया मोस विवज्जिओ] माया मृषा तेथी रहित छुं; [अड्ढाईसु] अढी [दीव समुद्देसु] द्विप समुद्रने विषे [पन्नरससु कम्मभूमिसु]

पापपरिहारपूर्वक धर्म-स्वीकारः

पापपरिहारपूर्वक धर्म-स्वीकारः

पन्नर एवी कर्मभूमि विषे [जावंति केई साहु] जेटला कोईक साधु छे [रयहरण गुच्छ] रजोहरण गुच्छग [पडिग्गहधारा] पात्र विगेरेना धारणहार [पंच महव्वयधारा] पांच महाव्रतना धारणहार [अट्ठारस सहस्स] अढार सहस्र (हजार) [सीलांगरहधारा] शीलांग रूपी रथना धरणहार [अक्खय आयारचरित्ता] अखंडित आचाररूप चारित्र तेना धारणहार [ते सव्वे, सिरसा] ते सर्वने उत्तमांगे करी [मणसा, मथ्थएण वंदामि] अंतः करणे करी मस्तके करीने वांदु छुं [खामेमी सव्वजीवे] खमावुं छुं सर्व जीवोने [सव्वे जीवा खमंतुमे] सर्व जीवो खमो मुझने (मारा अपराधने) [मित्ती मे सव्वभूएसु] मैत्री–भाव छे मारे भूतने विषे [वेरं मज्झं न केणई] वैरभाव मारे कोई पण साथे नथी [एव महं अलोइय] ए प्रकारे हुं अलोचित्त (आलोचनायुक्त) [निंदिय] निंदित [गरहिय] गर्हित [दुगंछिय] दुगंच्छना युक्त एवो [सम्मं, तिविहेणं] साचा दिलथी त्रिविधिये [पडिक्कतो, वंदामि जीणे चउविसं] वंदु छुं (स्तवुं छुं) चतुर्विंश (चौवीश) जिनोने ॥२२॥

भावार्थ—श्रीऋषभदेव स्वामी से लेकर महावीर स्वामी पर्यन्त चौवीसों तीर्थङ्कर भगवान को मेरा नमस्कार हो। इस प्रकार नमस्कार करके तीर्थङ्कर प्रणीत प्रवचन की स्तुति करते हैं—यही निर्ग्रन्थ—अर्थात् स्वर्ण रजत आदि द्रव्यरूप और मिथ्यात्व आधि भावरूप ग्रन्थ (गांठ) से रहित मुनिसम्बन्धी सामायिक आदि प्रत्याख्यान—पर्यन्त द्वादशाङ्ग गणिपिटकस्वरूप तीर्थङ्करों से उपदिष्ट प्रवचन, सत्य, सर्वोतम, अद्वितीय, समस्त गुणोंसे परिपूर्ण, मोक्षमार्ग, प्रदर्शक अग्नि में तपाये हुए सोने के समान निर्मल [कषाय मल से रहित] मायादि शल्यका नाशक, अविचल सुख का साधनमार्ग कर्मनाशका मार्ग, आत्मा से कर्म को दूर करनेका मार्ग, शीतलीभूत होनेका मार्ग, अवितथ अर्थात् तीनों काल में भी अविनाशी, महाविदेह क्षेत्रकी अपेक्षा सदा और भरतक्षेत्र आदि की अपेक्षा इक्कीस हजार वर्ष रहनेवाला और सब दुःखोंका नाश करनेवाला मार्ग है। इस मार्ग में रहे हुए प्राणी—सिद्धगति से, अथवा अणिमा आदि आठ सिद्धियों से

पापपरिहारपूर्वक धर्मस्वीकारः

युक्त होते हैं, केवलपदको प्राप्त होते है, कर्मबन्ध से मुक्त होते है, सर्व सुखको प्राप्त होते है, और शारीरिक मानसिक सर्व दुःखों से निवृत होते हैं। उस धर्म की मैं श्रद्धा करता हूं अर्थात् एक यही संसार समुद्र से तारनेवाला है ऐसी भावना करता हूं, अन्तः-करण: से प्रतीति करता हूं, उत्साहपूर्वक आसेवन करता हूं, आसेवना द्वारा स्पर्श करता हूं और प्रवृद्ध परिणाम [उच्चभाव] से पालता हूं और सर्वथा निरन्तर आराधना करता हूं। उस धर्म में श्रद्धा करता हुआ, प्रतीति करता हुआ, रुचि रखता हुआ, स्पर्श करता हुआ पालन करता हुआ और सम्यक् पालन करता हुआ उस केवलि प्ररूपित धर्म की आराधना के लिये मैं उद्यत हुआ हूं। तथा सब प्रकार की विराधना से निवृत्त हुआ हूं। अतएव असंयम [प्राणातिपात आदि अकुशल अनुष्ठान] को ज्ञपरिज्ञा से जानकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से परित्याग कर सावद्य अनुष्ठान निवृत्तरूप संयम को स्वीकार करता हूं। मैथूनरूप अकृत्य को छोडकर ब्रह्मचर्यरूप शुभ अनुष्ठान को स्वीकार करता हूं। अकल्पनीय को छोडकर

पापपरि-
हारपूर्वक
धर्म-
स्वीकारः

करण चरण रूप कल्प को स्वीकार करता हूं। आत्मा के मिथ्यात्व को त्यागकर सम्यक्त्व को स्वीकार करता हू, अज्ञान को त्यागकर ज्ञानको अङ्गीकार करता हूं, नास्तिक वादरूप अक्रियाको छोडकर आस्तिकवाद रूप क्रिया को ग्रहण करता हूं, आत्मा के मिथ्यात्व परिणाम रूप अबोधि को छोडकर सकल दुःखनाशक जिनधर्म प्राप्ति रूप बोधि को ग्रहण करता हूं और जिनमत से विरुद्ध पार्श्वस्थ निह्नव तथा कुतीर्थि-सेवित अमार्ग को छोडकर ज्ञानादि रत्नत्रय रूप मार्ग को स्वीकार करता हूं। उसी प्रकार जो अतिचार स्मरण में आता है या छद्मस्थ अवस्था के कारण स्मरण में नहीं आता है तथा जिसका प्रतिक्रमण किया हो या अनजानवश जिसका प्रतिक्रमण नहीं किया हो उन सब दैवसिक अतिचारों से निवृत्त होता हूं। इस प्रकार प्रतिक्रमण करके संयत विरतादिरूप निज आत्मा का स्मरण करता हुआ सब साधुओं को वन्दना करता है। संयत [वर्त्तमान में सकल सावद्य व्यापारों से निवृत] विरत [पहले किये हुए पापों की निन्दा और भविष्यकालके

लिये; संवर करके सकल पापों से रहित, अतएव अतीत अनागत वर्त्तमान कालीन सब पापों से मुक्त, अनिदान–नियाणा रहित; सम्यग्दर्शन सहित तथा माया मृषाका त्यागी ऐसा मैं श्रमण, अढार द्वीप, पन्द्रह क्षेत्र (कर्मभूमियों) में विचरनेवाले, रजोहरण पूंजनी पात्र को धारण करनेवाले और डोरासहित मुखवस्त्रिका को मुख पर बांधनेवाले, पांच महाव्रत के पालनहार और अठारह हजार शीलाङ्गरथ के धारक तथा आधाकर्म आदि ४२ दोषों को टालकर आहार लेनेवाले ४७ दोष टालकर आहार भोगने वाले, अखण्ड आचार चारित्र को पालने वाले ऐसे स्थविरकल्पी, जिनकल्पी मुनिराजों को 'तिक्खुत्तो' के पाठ से वन्दना करता हूं ॥२२॥

मूलम्–पव्वावणायरिए भंते केवामेव पव्वावेइ ? गोयमा! सोभणंसि तिहिकरण दिवस नक्खत्तमुहुत्तजोगंसि पव्वावणायरिए पव्वावेइ। पव्वज्जाए

पुण विहिं उवदंसेमि समणाउसो पव्वजाए समएणं जाव पढमं तिक्खुत्तो सद्धिं सव्वे निग्गंथे वंदेइ नमंसेइ तओ पच्छा चोलपट्टगं धारेइ। एवं उरोबंधणं (चद्दर) धारे तओ पच्छा गोयमा ! सलिंगं मुहपत्तिं मुहेण सद्धिं बंधे मुहपत्तीणं भंते किं पमाणे ! गोयमा ! मुह पमाणा मुहपत्ति मुहपत्तीणं भंते ! केण वत्थेण किज्जइ ? गोयमा ! एगस्स वि सेय वत्थस्स णं अट्ठ पुडलं मुहपत्ति करेज्जा। कस्स ट्ठेणं मुहपत्तीणं अट्ठ पुडला ? गोयमा ! अट्ठ कम्म-दहणट्ठयाए एग कण्णाओ दुच्च कण्णप्पमाणेणं दोरेण सद्धिं मुहे बंधेज्जा से केणट्ठेणं भंते मुहपत्ति त्ति पवुच्चइ ? गोयमा ! जण्णं मुहे अंते सइवट्टति से तेणट्ठेणं मुहपत्ति त्ति पवुच्चइ ? कस्सट्ठे भंते ! मुहपत्तिं दोरेण सद्धिं बंधइ ? गोयमा ! सलिंग वाउ जीवरक्खणट्ठाए मुहपत्तिं बंधेइ। जइ णं भंते ! मुहपत्ती

वाउ जीवरक्खणट्ठाए किं सुहुम वाउकायजीव रक्खणट्ठाए वा बायरवाउकाय-जीव रक्खणट्ठाए? गोयमा! णो णं सुहुमवाउकायजीवरक्खणट्ठाए बायर-वाउ जीव रक्खणट्ठाए तेणं छक्काय जीव रक्खणं भवइ एवं ते सव्वे वि अरिहंता पवुच्चंति ॥२३॥

शब्दार्थ—[भंते] हे भगवन्! [पव्वावणायरिए] प्रव्राजनाचार्य [सोभणंसि] शुभ [तिहि करण–दिवस नक्खत्त–मुहुत्त] तिथि करण दिवस नक्षत्र मुहूर्त [जोगंसि] और योग में [पव्वावणायरिए] प्रव्राजनाचार्य [पव्वावेइ] प्रव्रज्या अर्थात् दीक्षा देते हैं। [गोयमा] हे गौतम! [पव्वज्जाए पुण] दीक्षा की [विहिं] विधि [उवदंसेमि] कहता हूं [समणाउसो] हे आयुष्मंत श्रमणो! [पव्वज्जाए] दीक्षाके [समएणं] समय [जीवो] जीव दीक्षा लेनेवाला [पढमं] प्रथम [तिक्खुत्तो सद्धिं] तिक्खुत्तो के पाठ के साथ [सव्वे] सर्व [निग्गंथे] निर्ग्रंथोंको [वंदेइ] वंदना और [नमंसेइ] नमस्कार करे [तओ पच्छा]

तदनन्तर [एगं] एक [चोलपट्टगं] चोलपट्टक [धारेइ] धारण करे। [एगं] एक [उरोबंधणं] ऊरुबन्धन अर्थात् छाती और शरीर ढांकनेका वस्त्र [चद्दर] [धारे] धारण करे [तओ पच्छा] उसके पीछे [गोयमा] हे गौतम! [सलिंगं] स्वलिंग–मुनिवेष के चिह्न स्वरूप [मुहपत्तिं] मुखवस्त्रिका को [मुहेण सद्धिं] मुख के साथ बांधे। गौतम स्वामी पूछते हैं [भंते] हे भगवन् [मुहपत्तीणं] मुखवस्त्रिका का [किं पमाणे] क्या प्रमाण है? [गोयमा] हे गौतम! [मुह पमाणा] मुखके प्रमाण की मुहपत्ती, मुख वस्त्रिका होती है फिर गौतम स्वामी पूछते हैं [भंते] हे भगवन् [मुहपत्तीणं] मुखवस्त्रिका [केण वत्थेणं] किस वस्त्र से [किज्जइ] की जाती है [गोयमा] हे गौतम! [एगस्स वि] एक ही [सेयवत्थस्स णं] श्वेतवस्त्र की [अट्ठपडलं] आठपुटवाली [मुहपत्तिं] मुखवस्त्रिका [करेज्जा] बनानी चाहिए फिर गौतम स्वामी पूछते हैं [कस्सट्ठेणं] किस कारण से [भंते] हे भगवन् [मुहपत्तीणं] मुखवस्त्रिका [अट्ठपुडला] आठपुटवाली कही है? [गोयमा!] हे

गौतम! [अट्ठकम्मदहणट्ठयाए] आठ कर्म दहन करने के लिये आठ पुटवाली मुखवस्त्रिका कही गई है उसके [एग्गकण्णओ] एक कान से [दुच्चकण्णप्पमाणेणं] दूसरे कान तक के प्रमाण युक्त [दोरेण सद्धिं] दोरे के साथ [मुहे] मुह के ऊपर [बंधेज्जा] बांधे फिर श्रीगौतम स्वामी पूछते हैं [से केणट्ठेणं] किसकारण से [भंते] हे भगवन् [मुहपत्ति त्ति] मुख वस्त्रिका इस नामसे [पवुच्चइ] कही जाती है–हे गौतम! [जण्णं] जो [मुह] मुख के [अंते] पास [सइ] सदा [वट्टति] रहती है [से तेणट्ठेणं] उस कारण से [मुहपत्ति त्ति] मुखवस्त्रिका इस नामसे [पवुच्चइ] कही जाती है फिर गौतम स्वामी पूछते है [कस्सट्ठे] किस कारण से [भंते] हे भगवन् [मुहपत्तिं] मुखवस्त्रिका [दोरेण सद्धिं] दोरेके साथ [बंधइ] बान्धी जाय? भगवान् कहते हैं हे गौतम! [सलिंग] अरिहंत के अनुयायियोंके लिंग [चिह्न] मुनिवेषके कारण और [वाउजीवरक्खणट्ठाए] वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिये मुख वस्त्रिका मुह पर बांधनी चाहिये। [जइ णं] जो [भंते] हे भगवन्

[मुहपत्ती] मुहवस्त्रिका [वाउजीवरक्खणट्ठाए] वायुकाय के जीव के रक्षण के लिए [ते] वे [किं] क्या [सुहुमवाउकायरक्खणट्ठाए] सूक्ष्मवायुकायके जीवों के रक्षण के लिए है [व] अथवा [बायरवाउकायजीवरक्खणट्ठाए] बादरवायुकाय के जीवों की रक्षा के लिये है ? [गोयमा !] हे गौतम ! [णो णं सुहुमवाउकाय-जीव-रक्खणट्ठाए] सूक्ष्मवायुकायके जीवों की रक्षा के लिये नहीं परन्तु [बायरवाउकायजीवरक्खणट्ठाए] बादरवायुकाय जीवों की रक्षा के लिये है [तेणं] ऐसा करने से [छक्कायजीवरक्खणं भवइ] षट्काय के जीवोंका रक्षण होता है [एवं] इस प्रकार [ते] वे [सव्व] सभी [अरिहंता] अर्हन्त भगवन्त [पवुच्चंति] कहते हैं।

भावार्थ—हे भगवन् प्रव्राजनाचार्य किस प्रकारसे प्रव्रजित करते हैं ? [दीक्षा देते हैं ?] हे गौतम! शोभनीय तिथि करण दिवस नक्षत्र मूहूर्तके योग में प्रव्राजनाचार्य प्रव्रजित करते हैं। अर्थात् दीक्षा देते हैं। अब में दीक्षा देनेकी विधि कहता हूं

हे श्रमण आयुष्मन् प्रव्रज्या लेनेवाला प्रव्रज्या लेते समय प्रथम तिक्खुत्तोके पाठ के साथ सब निर्ग्रथोंको मुनियों को वंदना करे, नमस्कार करे तदनन्तर एक चोलपट्ट पहेरे उरो बंध [चद्दर] को ओढे एवं हे गौतम ! तत्पश्चात् साधुचिह्न मुहपत्तिको मुखके साथ बांधे। हे भगवन् मुहपत्तीका क्या प्रमाण है ? मुखके बराबर मुहपत्ती होनी चाहिए ? हे गौतम ! एक श्वेतवस्त्रकी आठ पुटवाली मुहपत्ती करनी चाहिए हे भगवन् मुहपत्ती आठ पडवाली होने का क्या कारण है ? हे गौतम ! आठ कर्मका नाश करने के लिए आठपुटवाली मुहपत्ती बनाई जाती है, उसे एक कानसे दूसरा कान पर्यन्त के प्रमाण युक्त दोरा के साथ मुख पर बांधे। हे भगवान् किस कारण से मुहपत्ती इस प्रकार कही जाती है ? हे गौतम ! जो कायम मुख के ऊपर रहती है अतः उसको मुहपत्ती कहते हैं। हे भगवन् मुहपत्तीको दोरे के साथ क्यों बांधी जाती है ? साधुचिह्न होने से एवं वायुकाय जीव की रक्षा के लिए मुहपत्ती बांधनी चाहिए।

हे भगवन् यदि मुहपत्ती वायुकायके जीवों की रक्षा के लिये है, तो सूक्ष्मवायुकाय के रक्षणार्थ है ? अथवा बादरवायुकाय के रक्षा के लिए है हे गौतम ! सूक्ष्मवायुकाय के लिए नहीं बादरवायुकायकी रक्षा के लिये हैं जिससे छहों कायके जीवों की रक्षा हो जाती है इस प्रकार सब अरिहंत भगवन्त कहते हैं ॥२३॥

मूलम्—से केणट्ठेणं भंते बायरवाउजीवकायाणं सुहुमंति नामधिज्जा गोयमा ! अदिस्संति मंस चक्खुणा तेणट्ठेणं गोयमा ! सुहुमंति नामधेज्जा सलिंगस्स णं मुहपत्तिं माइयाइं नामधिज्जाइं मुहपत्तिं मुहे बंधइ वाउजीवस्स रक्खणट्ठं तस्सट्ठं मुहपत्ति अरिहंता सलिंगं भासंति मुहपत्तिं सलिंग विणयमूलधम्मं एवं सद्धिं बंधित्ता तओ पच्छा रयहरण पायकेसरियं कक्खेणं दलेइ दलइत्ता करमज्झे पायबंधणं गिण्हेइ जं वत्थं ते पायइं ठवित्ता पायाइं बंधेइ तं पाय-

बादरवायु-
कायानां
'सूक्ष्म'
नाम-
कारणम्

बंधणं वत्थ पवुच्चइ एवं पावठवणं वि एवं सव्वोवही वि णायव्वा। तओ पच्छा आयरियाणं वंदइ नमंसइ पुरत्थाभिमुहे गुरुणो अभिमुहे वा पंजली उडे चिट्ठइ पुणो एवं वएज्जा भंते! मम सामाइयं चरित्तं पडिवज्जावेह? से आयरिए एवं वएज्जा देवाणुप्पिया! एवं नम्मोक्कारमंतं भणेह तओ पच्छा ईरियावहिया अवरनामो गमणागमणो आलोयण सुत्तं भणेइ। तओ पच्छा तस्सुत्तरीकरणेणं जाव अप्पाणं वोसिरामि जहा गुरु भणावेइ तहा सीसे भणेज्जा तओ पच्छा आयारिए एवं वएज्जा देवाणुप्पिया! चउवीस उक्कीत्तणत्थ वंज्झाणओ काउसग्ग करेइ चउविसत्थएणं। तओ पच्छा सीसे काउसग्गं णमोक्कारेणं पारित्ता चउवीसत्थयं भणिज्जा तओ पच्छा सेहे एवं वदे भंते! सामाइयं चरित्तं पडिज्जावेह? आयरिए भणेज्जा हंता पडिवज्जावेमि ॥२४॥

शब्दार्थ——[से] तो [केणट्ठेणं] किस कारण से [भंते] हे भगवन् [बायरवाउजीवकायाणं] बादरवायुकाय के जीवों का [सुहुमं णामधिज्जा] सूक्ष्म ऐसा नाम कहा है ? [गोयमा !] हे गौतम ! [अदिस्सति मंसचक्खुणा] चर्मचक्षु से दृश्यमान नहीं होते हैं ? [तेणट्ठेणं] इस कारण से [गोयमा] हे गौतम ! [सुहुमंति] सूक्ष्म ऐसा [णामधेज्जा] नाम कहा है [सलिंगस्स णं] मुनिवेष के लिए [मुहपत्तिमाइयाइं] मुखवस्त्रिका आदि [नामधिज्जाइं] नाम कहा है। [मुहपत्तिं] मुखवस्त्रिका [मुहे बंधेइ] मुख पर बांधते हैं [वाउजीवस्स] वाउकाय के जीवों की [रक्खणट्ठं] रक्षा के लिये [तस्सट्ठं] इस कारण से [मुहपत्तिं] मुहपत्ती को [अरिहंता] अरिहंतोने [सलिंग] स्वलिंग साधु–चिह्न [भासंति] कहा है। [मुहपत्ति] मुखवस्त्रिका [सलिंग] स्वलिंग और [विणयमूलधम्म] विनय मूलधर्म रूप है [एवं] इसलिए [मुहेण सद्धिं] मुख के साथ [बंधित्ता] बांधकर [तओ पच्छा] तदनन्तर [रयहरणं] रजोहरण [पायकेसरियं] पादकेसरिका–गुच्छे को [कक्खेणं] कांख

बादरवायुकायानां 'सूक्ष्म' नामकारणम्

बादरवायुकायानां 'सूक्ष्म' नामकारणम्

में [दलेइ] लेवे [दलइत्ता] रजोहरण और पादकेसरिका–गोच्छे को कांख में लेकर [करमज्झे] हाथ में [पायबंधणं गिण्हइ] पात्रबंधन–पात्र को बांधने के वस्त्र को [जं वत्थंते] जिस वस्त्र में [पायाइं] पात्रों को [ठवित्ता] रखकर [पायाइं बंधेइ] पात्रों को बांधते हैं इसलिए [तं] उसको [पायबंधणं वत्थं] पात्र बंधन वस्त्र–पात्रों को बांधने का वस्त्र [पवुच्चइ] कहते हैं [एवं] इसी प्रकार से [पायठवणं वि] पात्र स्थापनक–जिस वस्त्र पर पात्र रखे जाते हैं वह [एवं] इसी प्रकार से [मध्वोवही वि] और भी सभी उपधी को [णायव्वा] जान लेना चाहिये। [तओ पच्छा] इसके बाद अर्थात् रजोहरण पात्र बन्धन पात्राच्छादन वस्त्रादि ग्रहण करने के बाद [पुणो] फिर [आयरियाणं] आचार्य को [वंदइ] वंदना करे [नमंसइ] नमस्कार करे वंदना नमस्कार करके [पुरत्थाभिमुहे] पूर्व दिशा की ओर मुख रख कर के अथवा [गुरुणो अभिमुहे वा] गुरु के सन्मुख मुख रख कर [पंजलीउडे] दोनों हाथ जोडकर [चिट्ठेइ] खडा रहे [पुणो एवं वएज्जा]

तत्पश्चात् फिर इस प्रकार गुरुको कहे [भंते] हे भगवन् आप [मम] मुझ को [सामाइयं चरित्तं] सामायिक चारित्र [पडिवज्जावेह] अंगीकार करावे [से आयरिए] फिर वह आचार्य [एवं वएज्जा] इस प्रकार कहे [देवाणुप्पिया] हे देवानुप्रिय ! [एगं] एक [नमोक्कारमंतं नवकार मंत्र [भणेह] पढो [तओ पच्छा] इसके पीछे [इरियावहियाए] इरियावही [अवरनामे] जिसका दूसरा नाम [गमणागमणे] गमनागमन है इस [आलोयणा सुत्तं] आलोचना सूत्रको [भणेह] बोलो । [तओ पच्छा] उसके बाद [तस्सुत्तरीकरणेणं] तस्योत्तरीकरण [जाव] यावत् [अप्पाणं वोसिरामि] आत्मा को वोसराता हूं यहां तकका पूरा पाठ [जहा गुरु भणावे] जैसा गुर भणावे [तहा] उस प्रकार [सीसे भणेज्जा] शिष्य भणे [तओ पच्छा] उसके पीछे [आयरिए] आचार्य [एवं वएज्जा] इस प्रकार कहे [देवाणुप्पिया] हे देवानुप्रिय ! [चउवीसत्थएणं] चोईस लोगस्तव [झाणाओ] ध्यान में–मन में [भाणियव्वं] बोलना चाहिये [चउविसत्थएण] लोगस्तव के पाठ से

[काउसग्गं] कायोत्सर्ग [करेइ] करे ।

[तओ पच्छा] तत्पश्चात् [सीसे] शिष्य [काउसग्गं] कायोत्सर्ग [णमोक्कारेण] नवकार मंत्र से [परित्ता] पालकर [एगं] एक [चउवीसत्थयं] लोगस्स का पाठ [भणिज्जा] बोले [तओ पच्छा] उसके पीछे [सेहे] शिष्य [एवं वएज्जा] इस प्रकार कहे [भंते] हे भगवन्! आप मुझे [सामाइयचरित्तं] सामायिक चारित्र [पडिवज्जावेह] अंगीकार करावे फिर [आयरिए भणेज्जा] आचार्य कहे [हंता] हां [पडिवज्जावेमि] अंगीकार कराता हूं ॥२४॥

भावार्थ—हे भगवन् किस कारण से बादरवायुकायके जीवों का सूक्ष्म ऐसा नाम कहा है ? हे गौतम ! वे चर्मचक्षुवालों से देखे नही जाते है इस कारण से हे गौतम ! सूक्ष्म ऐसा नाम कहा है। मुनिवेष के लिये मुखवस्त्रिका आदि नाम कहा है। मुख-वस्त्रिका मुखपर बांधते हैं । वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिये मुहपत्ती को अरिहंतोने स्वलिग—साधु चिह्न कहा है। मुखवस्त्रिका स्वलिंग और विनयमूल धर्मरूप है, इसलिए

बादरवायु-
कायानां
'सूक्ष्म'
नाम-
कारणम्

उसको मुख के साथ बांध कर तद्नन्तर रजोहरण पादकेसरिका—गुच्छे को कांख में लेकर हाथ में पात्रे को बांधने के वस्त्र लेवें जिस वस्त्र में पात्रों को रखकर पात्रों को बांधते है, उसको पात्र बन्धन वस्त्र कहते हैं। इसी प्रकार से पात्रस्थापक—जिस वस्त्र पर पात्र रखे जाते हैं वह एवं इसी प्रकार से अन्य सभी उपधि को जान लेना चाहिये। रजोहरण पात्रबन्धन पात्राच्छादन वस्त्रादि ग्रहण करने के बाद आचार्य को वंदना करे नमस्कार करे वंदना नमस्कार करके पूर्व दिशा की ओर मुख रख के अथवा गुरुके सन्मुख मुख रख कर दोनों हाथ जोडकर खडा रहे फिर इस प्रकार गुरु को कहे—हे भगवन् आप मुझ को सामायिक चारित्र अंगीकार करावे। फिर वह आचार्य इस प्रकार कहे—हे देवानुप्रिय! एक नवकार मंत्र पढो इसके पीछे इरियावही जिसका दूसरा नाम गमनागमन है इस आलोचना सूत्र को बोलो। उसके बाद तस्योत्तरीकरण यावत् आत्मा को वोसराता हूं यहां तक का पूरा पाठ जैसा गुरु भणावे उस प्रकार शिष्य भणे।

बादरवायु-
कायानां
'सूक्ष्म'
नाम-
कारणम्

उसके पीछे आचार्य इस प्रकार कहे–हे देवानुप्रिय ! चोईस लोगस्तव ध्यान में–मनमें बोलना चाहिये लोगस्स के पाठ से कायोत्सर्ग करे। तत्पश्चात् शिष्य कायोत्सर्ग नवकार मंत्र से पालकर एक लोगस्स बोले उसके पीछे शिष्य इस प्रकार कहे–हे भगवन् आप मुझे सामायिकचारित्र अंगीकार करावे फिर आचार्य कहे–हां अंगीकार करवाता हूं ॥२४॥

मूलम्–तओ पच्छा आयरिए एवामेव सामाइयं चरित्तं पडिवज्जावेह तए णं सेहे ससद्दे आयरियवयणानुसारं एवं वएज्जा करेमि भंते सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जाव जीवाए तिविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणेमि मणसा वयसा कायसा तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। तओ पच्छा सेहे थय थुइ मंगलं अवरनामं दू नमोत्थुणं भणेज्जा तएणं आयरिए सेहं सिक्खावेइ णो

कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा मुहे मुहपत्तिं अबंधित्तए एयाइं कज्जाइं करित्तए चिट्ठित्तए वा निसीत्तए वा तुयट्टित्तए वा निद्दाइत्तए वा पयलाइत्तए वा धम्मकहं कहित्तए वा सव्वं आहारं एसित्तए वा वत्थं वा पडिलेहइत्तए वा गामाणुगामं दूइज्जित्तए वा सज्झायं वा करित्तए वा झाणं वा झाइत्तए वा काउसग्गं वा ठाणं वा ठाइत्तए वा ? कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा मुहें मुहपत्तिं बंधइत्ता एयाइं कज्जाइं करेत्तए चिट्ठित्तए वा जाव काउसग्गं ठाणं ठाइत्तए वा ॥२५॥

शब्दार्थ—[तओ पच्छा] उसके पीछे [आयरिए] आचार्य [एवामेव] इसी प्रकार [सामाइयचरित्तं] सामायिक चारित्र [पडिवज्जावेह] अंगीकार करावे [तएणं] उसके पीछे [सेहे] शिष्य [ससद्धे] श्रद्धायुक्त होकर [आयरियवयणानुसारं] आचार्य के वच-

नानुसार [एवं] इस प्रकार से [वएज्जा] कहे [करेमि भंते सामाइयं] हे भगवन् मैं सामाइक करता हूं [सव्वं सावज्जं जोगं] सब सावद्य जोग का [पच्चक्खामि] प्रत्याख्यान करता हूं [जाव जीवाए] जीवन पर्यन्त [तिविहं तिविहेणं] तीन करण और तीन जोगों से [न करेमि] नहीं करूंगा [न करावेमि] अन्य के द्वारा नहीं कराऊंगा [करंतं] करते हुए [अन्नं] दूसरे को [न समणुजाणेमि] अनुमोदन नहीं करूंगा [मनसा] मनसे [वयसा] वचन से [कायसा] काय से [तस्स] उसका [भंते] हे भगवन् [पडिक्कमामि] प्रतिक्रमण करता हूं [निंदामि] निंदा करता हूं। [गरिहामि] गर्हा करता हूं। [अप्पाणं] सावद्यकारी आत्मा का [वोसिरामि] त्याग करता हूं। [तओ पच्छा] उसके पीछे [सेहे] शिष्य [थयथुइमंगल] स्तवस्तुति मंगलस्वरूप [दू नमोत्थुणं] दो नमोत्थुणं का पाठ [भणेज्जा] भणे [तएणं] तदनन्तर [आयरिए] आचार्य [सेहं] शिष्य को [सिक्खावेइ] शिक्षा देवे [णो कप्पइ] नहीं कल्पता है [निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों

स्थानमें स्थिति रूप कायोत्सर्ग करना ॥२५॥

मूलम्—णो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा अण्णलिंगे वा गिहिलिंगे वा कुलिंगे वा होइत्तए, कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा सलिंगे वा सया-वट्टित्तए, साहुवेसेणं करमाणे भंते! जाव किं जणयइ ? गोयमा! लाघवं जण-यई, अहवा भावेणं णाणं जाव तवं जणयइ, एवामेव भंते! जे अईया, जे पडुपन्ना जे आगामिस्सा अरिहंता भगवंता किं ते सया सलिंगे वट्टइस्संति ? हंता, गोयमा! सव्वे वि अरिहंता एवं सलिंगे पवट्टिस्संति ॥२६॥

शब्दार्थ—[णो कप्पइ] नहीं कल्पता है [निग्गंथाणं वा] निर्ग्रन्थों को [निग्गंथीणं वा] निर्ग्रन्थियों को [अण्णलिंगे वा] अन्यवेष [गिहिलिंगे वा] गृहस्थ वेष [कुलिंगे वा] कुवेष [होइत्तए] होना [कप्पइ] कल्पता है [निग्गंथाणं वा] निर्ग्रन्थों को [निग्गंथीणं वा]

करता हूं। निंदा करता हूं। गर्हा करता हूं सावद्यकारी त्याग करता हूं। उसके पीछे शिष्य स्तव स्तुति मंगलरूप (नमोत्थुणं) का पाठ भणे। तदनन्तर आचार्य शिष्य को शिक्षा देवें निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थियों को मुखपर मुहपत्ति विना बांधे ये आगे कहे जानेवाले कार्यों को करना कल्पता नहीं है। इसका नाम निर्देश पूर्वक सूत्रकार कहते हैं—खडा रहना, बैठना अथवा त्वग् वर्तन करना—पसवाडा बदलना निद्रा लेना, उच्चार प्रश्रवण, कफ, नासिका का मल, इनको परठवना नहीं कल्पता है। धर्मकथा कहना तथा सर्व प्रकारके आहार का ग्रहण करना तथा भांडोपकरणकी प्रतिलेखना करना तथा एक ग्राम से दूसरे गाम विहार करना तथा स्वाध्याय करना तथा ध्यान करता एक स्थान में स्थितिरूप कायोत्सर्ग करना ये सब कार्य मुख पर मुखवस्त्रिका वांधे विना करना नहीं कल्पता है। निर्ग्रन्थ एवं निर्ग्रन्थियोंको मुखपर मुहपत्तीको बांधकर ये नीचे बताये कार्यों का करना कल्पता है वे कार्य ये हैं—खडा रहना यावत् पूर्वोक्त सब कार्य तथा एक

सग्गं वा ठाणं ठाइत्तए] एक स्थान में स्थित रूप कायोत्सर्ग करना ये सब पूर्वोक्त कार्य मुख पर मुखवस्त्रिका बांधे विना करना नहीं कल्पता है। [कप्पइ] कल्पता है [निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] निर्ग्रंथों को और निर्ग्रंथियों को [मुहे] मुख पर [मुहपत्तिं] मुखपत्ती को [बंधइत्ता] बांधकर [एयाइ] ये सब [कज्जाइ] कार्यों का [करेत्तए] करना कल्पता है वे कार्य ये हैं-[चिट्ठित्तए वा] खडा रहना [जाव] यावत् पूर्वोक्त सब कार्य तथा [काउसग्गं ठाणं ठाइत्तए वा] एक स्थान में स्थितिरूप कायोत्सर्ग करना ॥२५॥

भावार्थ—उसके पीछे आचार्य इसी प्रकार सामायिक चारित्र अंगीकार करावे उसके पीछे शिष्य श्रद्धायुक्त होकर आचार्य के वचनानुसार इस प्रकार से कहे हे भग-वन् मैं सामायिक करता हूं सब सावद्य योगका प्रत्याख्यान करता हूं जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन जोगों से नहीं करूंगा अन्य के द्वारा नहीं कराऊंगा। और करते हुए दूसरे को अनुमोदन नहीं करूंगा हे भगवन् मन वचन काय से उसका प्रतिक्रमण

को [निग्गंथीणं वा] अथवा निर्ग्रंथियों को [मुहे] मुखपर [मुहपत्तिं] मुहपत्ती को [अबंधित्ता] विना बांधे [एयाइं] ये आगे कहे जानेवाले [कज्जाइं] कार्योंका [करित्तए] करना कल्पता नहीं है। इसका नाम निर्देश पूर्वक सूत्रकार कहते हैं। [चिट्ठित्तए वा] खडा रहना अथवा [निसीत्तए वा] बैठना अथवा [तुयट्टित्तए वा] त्वग्वर्तन करना–पसवाडा बदलना [निद्दाइत्तए वा] निद्रा लेना [पयलाइत्तए वा] प्रचला अर्धनिद्रा लेना [उच्चारं] उच्चार [पासवणं वा] प्रश्रवण [खेलं वा] कफ [सिंघाणं वा] नासिका का मल इनको [परिट्ठवित्तए वा] परठवना नहीं कल्पता है तथा [धम्मकहं कहित्तए वा] धर्मकथा का कहना तथा [सव्वं] सर्व प्रकार के [आहारं] आहार का [एसित्तए वा] ग्रहण करना तथा [भंडोवगरणाइ] भांडोपकरण की [पडिलेहइत्तए वा] प्रतिलेखना करना तथा [गामाणुगामं] एक ग्राम से दूसरे ग्राम [दूइज्जित्तए वा] विहार करना तथा [सज्झायं वा करित्तए] स्वाध्याय करना तथा [झाणं वा झाइत्तए] ध्यान करना [काउ-

निर्ग्रन्थियों को [सलिंगे] स्वलिङ्ग से [सया] सर्वदा [वट्टित्तए] रहना, [साहुवेसेणं करमाणे भंते ! जीवे किं जणयइ] साधुवेष में रहता हुआ हे भदन्त ! जीव क्या उत्पन्न करता है [गोयमा !] हे गौतम ! [लाघवं जणयइ] निरहंकारपना को उत्पन्न करता है [अहवा] अथवा [भावेवं णाणं जाव तवं जणयइ] भाव से ज्ञान यावत् तप को उत्पन्न करता है [एवामेव] इस रीति से भी [भंते !] हे भदन्त ! [जे अईया] जो भूतकाल के [जे पडुपन्ना] जो वर्तमानकाल के [जे आगमिस्सा] जो भविष्यत् काल के [अरिहंता भगवंता] अरिहंत भगवन्त [किं ते सया सलिंगे वट्टइस्संति ?] क्या वह सर्वदा स्वलिङ्ग–साधुवेष में रहेंगे ? [हंता गोयमा !] हां गौतम [सव्वे वि अरिहंता एवं सलिंगे पवट्टिस्संति] सब अरिहंत इसी प्रकार स्वलिंग से रहते हैं ॥२६॥

भावार्थ—निर्ग्रन्थ और निर्गन्थियों को अन्य वेष में अथवा गृहस्थ वेष में अथवा कुवेष में रहना नहीं कल्पता है, निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को स्वलिंग साधुवेष में सदा

रहना कल्पता है, साधु वेष में रहता हुआ हे भदन्त ! जीव क्या उत्पन्न करता है ? हे गौतम ! निरभिमानपना उत्पन्न करता है, अथवा भाव से ज्ञान यावत् तप को उत्पन्न करता है, इसी प्रकार से हे भदन्त ! जो भूतकाल के, जो वर्तमानकाल के, जो भविष्यत् काल के अरिहंत भगवन्त हैं क्या वे सर्वदा स्वलिङ्ग–साधु वेष में रहते हैं, हां गौतम सब अरिहंत इसी प्रकार स्वलिङ्ग से रहते हैं ॥२६॥

मूलम्–रयहरणं निसीहिया सहियं धरंति, सदोरकमुहपत्तिं मुहोवरिबंधणं, गोच्छगं, पडिग्गहं पडिधरंति, पाउहरणं सरीररक्खणट्ठं, चोलपट्टगं पडिधारणं, नाणदंसणं–चरित्तआराहगा सलिंगीणो हवंति। गिहत्था, पडिमाधारगा, निसीहिया वज्जियं रयोहरणधारगा गिहिलिंगिणो हवंति। बोहधम्मिणो तहा बाबा जोगिणो तहा पंचग्गी तावगा अण्णलिंगिणो हवंति, अद्धसरीरं वत्थेण आव-

रियं, अद्धसरीरं अनावरीयं, मुहपत्ती रहियं लघुदंडक रयोहरण धारगा, हत्थे दंड धारगा अहवा नग्गसरीरा, मयूरपिच्छी धारगा, कमंडलधारगा एए कुलिंगिणो हवंति ॥२७॥

भावार्थ—स्वलिंग–रजोहरण निशीथिका सहित रखे, डोरासहित मुखवस्त्रिका मुह पर बांधे, गोच्छक और पात्र तथा चद्दर ओढे, चोलपट्टक पहिरे, ज्ञान–दर्शन–चारित्र के आराधना करनेवाले स्वलिङ्गी होते हैं। गिहिलिंगी–गृहस्थ के वेश में रहनेवाले श्रावक आदि, पडिमाधारी श्रावक रजोहरण के ऊपर निशीथिया नहीं बांधनेवाले, । अन्यलिंगी–वौद्धधर्मी तथा अन्य बाबा योगी आदि हैं, कुलिंग–आधाशरीर पर कपडा ओढकर और आधा शरीर उघाडा रखना, मुहपत्ती नहीं बांधना, नानी दांडी का रजोहरण रखना, हाथ में दण्डा रखना अथवा नग्न शरीर रहना, मोरपिंछी रखना, कमण्डलु विगेरे रखना ये कुलिंगी कहे जाते हैं। लम्बी मुहपत्ती बांधने वाले, दया, दान को उत्थापने वाले,

स्वलिङ्गीनामन्यलिङ्गीनां च साधुवेषधारण प्रकारः

माता और गणिका को समान समझने वाले आधाकर्मिक और अभिहडे आहार लेने वाले, कच्चा पानी में राख-नाखा होय ऐसे पानी काम में लेनेवाले ये सब कुलिंगी कहे जाते हैं ॥२७॥

## मुखवस्त्रिका रखनेकी आवश्यकता

मूलम्-मुखवस्त्रिका विना कथं मुख मशकादि संपातिम जीवोदक बिन्दु प्रवेशरक्षा ? कथं च क्षुत् कासित जृम्भितादिषु देशनादिषु चोष्ण मुख मरुतविराध्यमान बाह्य वायुकायिक रक्षा ? कथं च रजोरेणु प्रवेशरक्षा ? परं प्रति निष्ठ्यूतलवस्पर्शरक्षा च विधातुं शक्या ? ॥२८॥

भावार्थ--विना मुहपत्ती मुख में प्रवेश करते मच्छर, मक्खी, या अन्य सूक्ष्मजीव कि जो ऊडते रहते हैं एवं जलबिन्दुओं को कैसे रोक सके ? एवं छींक, खांसी, बगासा

आदि एवं देशना–बोलते समय मुख में से नीकलते उष्ण वायु द्वारा मरते (बादर) वायुकायिक जीवों की रक्षा कैसे होसके ? एवं अन्य मनुष्य के ऊपर उडते थूकके बिंदुओं का स्पर्श की रूकावट कैसे होसकती रजोहरण एवं गोच्छा के विना मकान एवं पात्रा कैसे पुंजसके ? अतः रजोहरण एवं मुखवस्त्रिका अवश्य रखने चाहिए ॥२८॥

मूलम्–एवामेव भंते ! पवयणकुसला, सयमेव वि पवज्जा गिण्हेज्जा ? हंता गोयमा ! ॥२९॥

शब्दार्थ––[एवामेव भंते] इस प्रकार हे भगवन् ! [पवयणकुसला] प्रवचन में कुशल [सयमेव वि] स्वयमेव भी [पवज्जा गिण्हेज्जा] दीक्षा ग्रहण कर सकता है ? [हंता गोयमा !] हां गौतम ! कर सकता है ॥२९॥

भावार्थ––इस प्रकार प्रवचन में कुशल जैन तत्त्व के निपुण खुद भी दीक्षा ग्रहण कर सकता है ? हां गौतम ! कर सकता है ॥२९॥

मूलम्—सलिंगोवगरण उवही भंडमत्ताइं केवामेव भवंति ? गोयमा ! गामंसि वा णगरंसि वा जाव रायहाणिंसि वा सयमेव वि करेह अन्नेण वि करावेह जं भवइ गहणं अडवियंसि वा तस्स णं गाढागाढे कारणेहिं देवा वि दलयंति, अणाई कालेणं जीयाच्चार निच्चमेवं भवइ, देवाणं अयं भावणा वि भवइ सलिंगो कारण भंडमाइयाइं उवहि वि दलयंति दढभावेणं जं भवंति जीवा तस्स णं देवा दलयंति, णो अन्नं दलयंति, गोयमा ! केवलीणं सव्वठाणे देवा दलयंति, जहा भरहे राया से त्तं, साहू पवज्जा सामग्गियं ॥३०॥

शब्दार्थ—[सलिंग] स्वलिंग [उवगरण] उपकरण [उवही] उपधी [भंडमत्ताइं] वस्त्र पात्रादि [केवामेव भवंति] किसी प्रकार प्राप्त करे [गोयमा] हे गौतम ! [गामंसि वा] गांव से [णगरंसि वा] नगर से [जाव] यावत् [रायहाणिंसि वा] राजधानी से

[सयमेवं वि करेह] खुद भी ले आवे और [अन्नेण वि करावेह] दूसरों के द्वारा लाया हुआ ग्रहण करे, [जं भवइ] जिस प्रकार योग्य हो वैसा करे, [गहण] गहन [अडवियंसि वा] अटवी में [तस्स णं] उसको [गाढागाढे कारणेहिं देवा वि दलयंति] गाढागाढ कारण से देव भी लाकर देते हैं [अणाईकालेणं] अनादि काल से [जीयाच्चार] जीताचार [निच्चमेवं भवइ] सदा इस प्रकार होता रहा है [देवाणं] देवों की [अयंभावणा वि भवइ] इस प्रकार की भावना होती है [सलिंगोकारण] स्वलिंग का कारण [भंडमाइयाइं] वस्त्र पात्रादिक [उवहि वि] उपधी भी [दलयंति] देते हैं [दढभावेणं जं भवंति जीवा] दृढ भावना वाले जो जीव होते हैं [तस्स णं देवा दलयंति] उसको देवता भी देते हैं [णो अन्नं दलयंति] दूसरे को नहीं देते हैं [गोयमा] हे गौतम ! [केवलीणं सव्वठाणे देवा दलयंति] केवली को सर्वस्थान में देवता ही लाकर देते हैं [जहा भरहे राया सेत्तं] जैसे भरत राजा को उसी प्रकार [साहू] साधु की [पवज्जा सामग्गियं] दीक्षा सामग्री ॥३०॥

भावार्थ—अरिहंत के अनुयायिओं को उपकरण, उपधी वस्त्र, पात्रादि किस प्रकार से प्राप्त करना चाहिये-हे गौतम ! गाम, नगर राजधानी से खुद भी उपकरण, उपधि वस्त्र, पात्रादि ले आवे, दूसरों के द्वारा भी प्राप्त करे, जिस प्रकार योग्य लगे वैसा करे। गहन अटवी-वन में उसको खास कारणसर देवता भी उपकरणादि देते हैं, अनादिकाल से सदा के लिये ऐसा ही चला आता है, देवता की भावना भी इस प्रकार होती है कि अरिहंत के अनुयायिओं को उपकरण वस्त्रादिक पात्र जिन की दृढ भावना होती है उनको देवता आकर देते हैं, दूसरे को नहीं, हे गौतम ! केवली भगवान् को सर्व जगह देवता ही देते हैं, जिस प्रकार भरत राजा को दिया था, इस प्रकार उपरोक्त साधु की दीक्षा सामग्री कही है ॥३०॥

मूलम्—जंपि वत्थं व पायं वा, कंबलं पायपुंछणं, तंपि संजमं लज्जट्ठा, धारंति परिहरंति य ॥३१॥

शब्दार्थ—[जं पि] जो साधु [वत्थं] वस्त्र [व] अथवा [पायं] पात्र [वा] अथवा [कंवलं] कम्बल [पायपुंछणं] पैर पूंछने वाला वस्त्र विशेष तथा रजोहरण रखते हैं। [तंपि] तथापि वह [संजमलज्जट्ठा] संयम की लज्जा की रक्षा के लिये ही [धारंति] धारण करते हैं [य] और [परिहरंति] अपने काम में लाते हैं ॥३१॥

भावार्थ—मुनिराज, जो कल्पनीय डोरासहित मुखवस्त्रिका, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पैर पूंछनेवाला कपडा तथा रजोहरण आदि जरूरी वस्तुएँ रखते हैं वह संयम की और लज्जा की रक्षा के वास्ते ही वर्तते हैं ॥३१॥

मूलम्—सव्वत्थु बहिणा बुद्धा, संरक्खणपरिग्गहे । अवि अप्पणो विदेहंमि, नायरंति ममाइयं ॥३२॥

शब्दार्थ—[बुद्धा] तत्त्व के जानकार [सव्वत्थु] सब प्रकार की उपधि, वस्त्र, पात्र, रजोहरण, मुखवस्त्रिका द्वारा [संरक्खणपरिग्गहे] जीव रक्षा के वास्ते जो उपकरण

लिया हुआ है उसमें [अवि] तथा [अप्पणो वि] अपनी [देहंमि] देहमें भी [ममाइयं] ममता भाव [नायरंति] अंगीकार नहीं करते ॥३२॥

भावार्थ—धर्मशास्त्र के ज्ञाता मुनिजन, जीवरक्षा के वास्ते ली हुई उपधि पात्र, रजोहरण, मुखवस्त्रिका (सामान) में तथा अपने शरीर में किसी प्रकार की ममता नहीं करते ॥३२॥

मूलम्—तुम्हाणं भंते ! सासणे कया हायमाणे भविस्संति कया उदिए भविस्संति केवइयं कालं सासणे ठिइए भविस्सइ ? गोयमा ! एगवीसं वास-सहस्सेहिं मम सासणे ठिए भविस्सइ अंतराय दो वासं सहस्सेहिं मम सासणे हायमाणे भविस्सइ । से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ ? गोयमा ! मम जम्मनक्खत्ते भासरासी नामे महग्गहे संकंते तस्स पहावेणं दो वाससहस्सेहिं साहूणं वा

साहूणीणं वा सावयाणं वा सावियाणं वा नो उदए पूया भविस्सइ गोयमा ! बहवे मुणी सच्छंदचारी भविस्संति।

सयमेव संजमिया भविस्संति बहवे मुणी मम सलिंगं मुहे मुहपत्तिबंधणं वज्जइत्ता दव्वलिंगधारी समइए णं भविस्संति बहवेणं कुलिंगधारी भविस्संति बहवे णिण्हवा भविस्संति बहवे मुणिणामधारी सेयं वत्थ रयहरण मुहपत्ति मादियं उवहिणं सलिंगं ण मन्निस्संति केइ मुणिणो मुहपत्तिबंधणं कालपमाणं करिस्संति ते सव्वे मुणी अविहिमग्गेणं उवएसं करिस्संति बहवे मुणिणो जिणपडिमं कराविस्संति बहवे मुणिणो जिणपडिमाणं पइट्ठं कराविस्संति बहवे मुणिणो जिणपडिमाणं ठावया भविस्संति जाव सव्वे वि अविहिमग्गे पडिस्संति ते सव्वे पव्वुत्ताइं कज्जाइं संछंदेणं करिस्संति गोयमा ! जया

भासग्गहे णिवट्टिए भविस्सइ पुणो मम सासणेणं उदय पूया भविस्सइ साहुणीणं वि सावयाणं वि सावियाणं उदय पूया भविस्सइ ॥३३॥

शब्दार्थ—अब गौतमस्वामी पूछते हैं–[भंते] हे भगवन् [तुम्हाणं] आपका [सासणे] शासन [कया] कब [हायमाणे] हीयमान [भविस्संति] होगा [कया] कब फिर [उदिए] उदित [भविस्सति] होगा ? [केवइयं कालं] कितने काल तक [सासणे] शासक [ठिइए] स्थित–स्थिर [भविस्सति] होगा ? [गोयमा] हे गौतम ! [एगवीसं वाससहस्सेहिं] एकवीस हजार वर्ष पर्यन्त [मम] मेरा [सासणे] शासन [ठिए] स्थिर [भविस्सइ] रहेगा [अंतराय] उस बीच में [दो वाससहस्सेहिं] दो हजार वर्ष पर्यन्त [मम सासणे] मेरा शासन [हायमाणे] हीयमान [भविस्सति] होगा ।

[से केणट्ठेणं] वह किस कारण से [भंते] हे भगवन् [एवं] इस प्रकार से [वुच्चइ] आप कहते हैं–[गोयमा !] हे गौतम ! [मम] मेरे [जम्मनक्खत्ते] जन्म नक्षत्र के उपर

[भासरासी] भस्मराशी नाम का [महग्गहे] महाग्रह [संकंते] संक्रमण करता है [तस्स] उसके [पभावेणं] प्रभाव से [दो वाससहस्सेहिं] दो हजार वर्ष पर्यन्त [साहूणं] साधुओंका [वा] अथवा [साहुणीणं] साध्वियों का अथवा [सावयाणं वा सावियाणं वा] श्रावक और श्राविकाओं का [उदए] उदय और [पूया] पूजा–सत्कार [णो भविस्सइ] नहीं होगा [बहवे मुणी] बहुत से मुनि [सच्छंदयारी] स्वच्छन्द आचार पालनेवाले [भविस्संति] होंगे [सयमेव] अपने आप [संजमिया] संयमी [भविस्संति] होंगे [बहवे मुणी] अनेक मुनि [मम] मेरा [सलिंग] स्वलिंग साधुलिंग [मुहे] मुख के ऊपर [मुहपत्ति बंधणं] मुखवस्त्रिका का [वज्जिस्संति] त्याग करेगा । [बहवे मुणी] बहुत से मुनि [दव्वलिंगधारी] द्रव्यलिंग को धारण करनेवाले [स मइए] अपनी ही मति से [भविस्संति] होंगे [बहवे] अनेक [कुलिंगधारी] कुलिंग को धारण करनेवाले [भविस्संति] होंगे [बहवे] अनेक [णिण्हवा] निह्नव अर्थात् सच्चे अर्थ को छिपानेवाले [भविस्संति] होंगे।

[से केणट्ठेणं] किस कारण से [भंते] हे भगवन् ऐसा आप कहते हैं? [गोयमा] हे गौतम [बहवे] अनेक [मुणिणामधारी] मुनि के नाम को धारण करनेवाले अर्थात् नाम मात्र से मुनि कहलाने वाले [सेयं वत्थं] श्वेत वस्त्र को [रयहरण] रजोहरण [मुहपत्तिमादियं] मुहपत्ति आदि [उवहिं] उपधि को [ण सलिंगं मन्निस्संति] स्वलिंग नहीं मानेंगे [केइ मुणिणो] कितनेक मुनि [मुहपत्तिबंधणं] मुहपत्ति बंधण को [कालपमाणं] समय प्रमाण अर्थात् अमुक समय में बांधने का उपदेश [करिस्संति] करेंगे। [ते सव्वे मुणी] वे सब मुनि [अविहिमग्गेणं] अविधि मार्ग से [उवएसं] उपदेश [करिस्संति] करेंगे [बहवे मुणिणो] अनेक मुनिगण [जिणपडिमं कराविस्संति] जिनप्रतिमा को करावेंगे [बहवे मुणिणो] बहुत से मुनि [जिण पडिमाणं] जिन मूर्तियों की [पइट्ठं] प्रतिष्ठा [कराविस्संति] करावेंगे [बहवे मुणिणो] बहुत से मुनि [जिणपडिमाणं] जिन प्रतिमा की [ठावया] स्थापना करनेवाले [भविस्संति] होंगे [जाव] यावत् यहां तक [सव्वे वि] ये

सभी [अविहिपंथे] अविधि मार्ग में [पडिस्संति] पड जायेंगे [ते सव्वे] वे सभी [पुव्वुत्ताइं] पहले कहे गये [कज्जाइं] कार्यों का [सछंदेणं] स्वच्छंदपने से [करिस्संति] करेंगे [गोयमा ?] हे गौतम ! [जयाणं] जब [भासग्गहे] भस्मग्रह [णिवट्टिए भविस्सइ] निवर्तित होगा तब [पुणो] फिर से [मम] मेरे [सासणेणं] शासन में [उदए] उदय [पूया] पूजा-सत्कार [भविस्संति] होंगे [साहूणं] साधुओं का तथा [साहुणीणं वि] साध्वियों का तथा [सावयाणं वि] श्रावकों का [सावियाणं वि] श्राविकाओं का भी [उदय पूया भविस्संति] उदय और पूजा सत्कार होगा ॥३३॥

भावार्थ—गौतमस्वामी श्री महावीर प्रभु को प्रश्न करते हैं कि—हे भगवन् आपका शासन कब होयमान होगा ? कब पुनः उदित होगा ? और कितने काल पर्यन्त शासन स्थिर होगा ? इन प्रश्नों के उत्तर में प्रभुश्री गौतमस्वामि से कहते हैं—हे गौतम ! एक-वीस हजार वर्ष पर्यन्त मेरा शासन स्थिर रहेगा उसके बीच में दो हजार वर्ष पर्यन्त

मेरा शासन हीयमान होगा।

फिर से श्री गौतमस्वामी पूछते हैं कि–हे भगवन् आप किस कारण से इस प्रकार से कहते हैं? उत्तर में प्रभुश्री कहते हैं हे गौतम! मेरे जन्म नक्षत्र के उपर भस्मराशी नामका महाग्रह संक्रमण करता है, उसके प्रभाव से दो हजार वर्ष पर्यन्त साधुओं का अथवा साध्वियों का अथवा श्रावक और श्राविकाओं का उदय और पूजा सत्कार नहीं होगा। बहुत से मुनि स्वच्छन्द आचार पालनेवाले होंगे। अपने आप संयमी होंगे। अनेक मुनि मेरा स्वलिंग रूप मुख के ऊपर मुखवस्त्रिका का त्याग करेगा। बहुत से मुनि द्रव्यलिंग को धारण करनेवाले होंगे अनेक निह्नव अर्थात् सच्चे अर्थ को छिपानेवाले होंगे। हे भगवन् किस कारण से आप ऐसा कहते हैं? हे गौतम! अनेक मुनि के नामको धारण करनेवाले अर्थात् नाम मात्र से मुनि कहलानेवाले श्वेत वस्त्रको रजोहरण मुहपत्ति आदि उपधि को स्वलिंग नहीं मानेंगे, कितनेक मुनि मुहपत्ति

वंधन को समय प्रमाण अर्थात् अमुक समय में बांधने का उपदेश करेंगे। वे सब मुनि अविधि मार्गसे उपदेश करेंगे। अनेक मुनिगण जिन की प्रतिमा करावेंगे। बहुत से मुनि जिन मूर्तियों की प्रतिष्ठा करावेंगे। बहुत से मुनि जिनप्रतिमा की स्थापना करनेवाले होंगे। यावत् यहां तक ये सभी अविधिमार्ग में पड जायेंगे। वे सभी पहले कहे गये कार्यों को स्वच्छंद पने से करेंगे। हे गौतम! जब भस्मग्रह निवर्तित होगा तब फिरसे मेरे शासन में उदय पूजा सत्कार होंगे। साधुओं का तथा साध्वीयों की तथा श्रावकों का और श्राविकाओं का भी उदय और पूजा सत्कार होगा ॥३३॥

मूलम्—जइ णं भंते अमुगे जीवे मिच्छा मोहणिय उदएण बालजीवा देवाणुप्पियेण पडिमं करावेइ पडिमाणं वा पइट्ठं करावेंति तेणं जीवा किं जणयंति? गोयमा! ते बालजीवा एगंतेणं पावाइं कम्माइं जणयंति से केण-

ट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ? गोयमा ! ते बाल जीवा मिच्छाभावे पडिवन्ने अजीवं जीवभावं मन्निस्सइ छण्हं जीवणिकायाणं वहं करिस्सइ मम मग्गस्स णं हीलणं कराविस्सइ मम सासणस्स उदयं णो करिस्सइ मए अत्थित्तं अत्थिवुत्तं नत्थित्तं नत्थिवुत्तं से जीवे अत्थित्तं नत्थि वदिस्संति नत्थित्तं अत्थि वदिस्संति से तेणट्ठेणं गोयमा! से जीवे एगंतेणं पावाइं कम्माइं जणयइ मिच्छामोहणिज्जं कम्मं निबंधइ ॥३४॥

शब्दार्थ—[जइ णं] यदि [भंते] हे भगवन् [अमुगे जीवे] अमुक जीव [मिच्छामोहणिय उदएण बालजीवा] मिथ्यामोहनीय के उदय से बाल जीव [देवाणुप्पियाणं] देवानुप्रिय की [पडिमं] प्रतिमा [करावेइ] करावे [पडिमाणं वा पइट्ठं करावेइ] अथवा प्रतिमा की प्रतिष्ठा करावे [तेणं जीवे] वह जीव [किं जणयइ] क्या—किस प्रकार के

कर्म का उपार्जन—बंध करता है? [गोयमा] हे गौतम! [से जीवे] वह जीव [एगंतेणं पावाइं कम्माइं] एकान्त रूप से पाप कर्मों का [जणयइ] उपार्जन करता है। [से केणट्ठेणं] वह किस कारण से [भंते] हे भगवन् [एवं वुच्चइ] इस प्रकार से आप कहते हैं- [गोयमा!] हे गौतम! [से जीवे] वह जीव [मिच्छाभावपडिवन्ने] मिथ्यात्व भाव को प्राप्त करके [अजीवं] अजीव को [जीवभावे] जीवभाव से [मन्निस्सइ] मानेगा [छण्हं जीवणिकायाणं] छ जीवनिकायों का [वहं] वध [करिस्सइ] करेगा [मम मग्गस्स णं] मेरे मार्ग की [हीलणं] अवहेलना [कराविस्सइ] करावेगा [मम सासणस्स] मेरे शासन का [उदयं] उदय [णो करिस्सइ] नहीं करेगा [मए] मैंने [अत्थित्तं] अस्तित्व को [अत्थिवुत्तं] अस्ति ऐसा कहा है [नत्थित्तं] नास्तित्व को [नत्थिवुत्तं] नास्ति ऐसा कहा है [से जीवे] वह जीव [अत्थित्तं] अस्तित्व को [नत्थि वदिस्संति] नहीं है ऐसा कहेगा [नत्थित्तं] नास्ति भाव को [अत्थि वदिस्संति] अस्तिभाव से कहेगा [से तेण-

ट्ठेणं] इस कारण से [गोयमा] हे गौतम! [से जीवे] वह जीव [पावाइं कम्माइं] पाप कर्म का [जयणइ] उपार्जन करता है और [मिच्छा मोहणिज्जं कम्मं निबंधइ] मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का बंध करते हैं ॥३४॥

भावार्थ—हे भगवन् अमुक बाल जीव मिथ्या मोहनीय के उदय से देवानुप्रिय की प्रतिमा करावे अथवा प्रतिमा की प्रतिष्ठा करावे वह जीव किस प्रकार के कर्म का उपार्जन–बंध करता है? हे गौतम! वह जीव एकान्त रूप से पाप कर्मों का उपार्जन करता है। गौतमस्वामी पूछते हैं–हे भगवन्! किस कारण से इस प्रकार से आप कह रहे हैं? भगवान् गौतमस्वामी से कहते हैं–हे गौतम! वह जीव मिथ्यात्व भाव को प्राप्त करके अजीव को जीव भाव से मानेगा छह जीवनिकायों का वध करेगा, मेरे मार्ग की अवहेलना करावेगा। मेरे शासन का उदय नहीं करेगा मैंने अस्तित्व को (अस्ति) ऐसा कहा है। नास्तित्व को (नास्ति) ऐसा कहा है। वह जीव अस्तित्व को

नहीं है ऐसा कहेगा नास्ति भाव को अस्ति भाव से कहेगा इस कारण से हे गौतम! वह जीव पाप कर्म का उपार्जन करता है, और मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का बंध करते हैं॥३४।

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं भंते दूसमे काले केरिसए आयारभाव-पडोयारे भविस्सइ ? गोयमा! पुणो पुणो दुब्भिक्खा पडिस्संति रायाणो बहवे भविस्संति पयाणं अहियं कारया उस्सुक्का अइसया भविस्संति वाहीरोगमारीय पुणो-पुणो भविस्संति जाव पायकाले चउदिसि हाहाकारा भविस्संति बहवे जणा मयपक्खगहिया असच्चभासिणो भविस्संति। केवइयाणं भंते लिंग पण्णत्ता ? गोयमा! पंचलिंगपण्णत्ता तं जहा—गिहिलिंगे १, अण्णलिंगे २, कुलिंगे ३, दव्वलिंगे ४, सलिंगे ५। कइ विहेणं भंते सलिंगे पण्णत्ते ? गोयमा! सलिंगे पंचविहे पण्णत्ते तं जहा—अरिहंते १, आयरिया २, उवज्झाया ३,

साहूणो ४, साहूणी णं ५ ॥३५॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं] उस काल [तेणं समएणं] उस समय [भंते] हे भगवन् [दूसमे काले] दूषम काल में [केरिसए] किस प्रकार का [आयारभावपडोयारे] आचार भाव [भविस्सइ] होगा [गोयमा] हे गौतम ! [पुणो पुणो] वारंवार [दुब्भिक्खा पडिस्संति] दुर्भिक्ष अर्थात् दुष्काल पडेगा [रायाणो] राजा [बहवे भविस्संति] बहुत से होंगे [पयाणं] प्रजा का [अहियकारया] अहित करने में [उस्सुका] उत्साहवाले [अइराया-भविस्संति] बहुत से राजा होंगे [वाहि] व्याधि [रोगे] रोग [मारीय] महामारी [पुणो पुणो] वारबार [भविस्संति] होंगी [जाव] यावत् यहां तक कि [पायकाले] प्रातः काल होते ही [चउद्दिसिं] चारों–दिशाओं में [हाहाकारा] हाहाकार शब्द [भविस्सइ] होंगे। [बहवे जणा] अनेक मनुष्य [मयपक्खगहिया] अपने मत का पक्ष ग्रहण करके [असच्च भासिणो] असत्य भाषी–असत्य बोलने वाले [भविस्संति] होंगे। [बहवे वाममग्गा

भविस्संति] बहुत से हिंसादि में धर्म माननेवाले होंगे। फिर गौतमस्वामी पूछते हैं–[भंते] हे भगवन् [केवइयाणं लिंगा पण्णत्ता] लिंग कितने प्रकार के कहे गये हैं–उत्तर में प्रभु फरमाते हैं–[गोयमा] हे गौतम! [पंचलिंगा पण्णत्ता] लिंग पांच प्रकार के होते हैं [तं जहा] वह इस प्रकार [गिहिलिंगे] गृहस्थलिंग १, [अण्णलिंगे] अन्यलिंग २, [कुलिंगे] कुलिंग ३, [दव्वलिंगे] द्रव्यलिंग ४ और पांचवां [सलिंगे] स्वलिंग ५। गौतम पूछते हैं–[भंते] हे भगवन् [कइविहेणं] कितने प्रकार के [सलिंगे पण्णत्ते?] स्वलिंग कहे गये हैं [गोयमा] हे गौतम! [सलिंगे पंचविहे पण्णत्ते] स्वलिङ्ग पांच प्रकार के कहे गये हैं [तं जहा] वे इस प्रकार–[अरिहंते] अर्हन्त भगवन्त १, [आयरिए] आचार्य २, [उवज्झाए] उपाध्याय ३, [साहूणो] साधु ४ [साहुणीओ] साध्वियां ५ ॥३५॥

भावार्थ––हे भगवन् उस काल और समय में–दूषम काल में किस प्रकार का आचारभाव होगा? हे गौतम! वारंवार दुर्भिक्ष अर्थात् दुष्काल पडेगा एवं

प्रजाका अहित करने में उत्साह वाले बहुत से राजा होंगे। व्याधि, रोग, महामारी बार बार होंगी, यावत् यहां तक कि प्रातःकाल होते ही चारों दिशाओं में हाहाकार शब्द होंगे। अनेक मनुष्य अपने मत का पक्ष लेकर असत्य बोलने वाले होंगे। बहुत से हिंसादि में धर्म माननेवाले होंगे। फिर से गौतमस्वामी पूछते हैं—हे भगवन् लिङ्ग कितने प्रकार के कहे गये हैं? उत्तर में प्रभु फरमाते हैं—हे गौतम! लिंग पांच प्रकार के होते हैं, वह इस प्रकार से है—गृहस्थलिंग १, अन्यलिंग २, कुलिंग ३, द्रव्य-लिंग ४ और स्वलिंग ५। गौतमस्वामी प्रभु से पूछते हैं—हे भगवन् कितने प्रकार के स्वलिंग कहे गये है? उत्तर में प्रभुश्री कहते हैं—हे गौतम! स्वलिंग पांच प्रकार के कहे गये हैं अर्हंत भगवन्त १, आचार्य २, उपाध्याय ३, साधु ४ एवं साध्वियां ५ ॥३५॥

मूलम्—कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पंचवत्थाइं धरित्तए वा परिहरित्तए वा तं जहा—जंगिए १, भंगिए २, साणए ३, पोत्तिए ४, तिरिड-

पट्टए ५, णामं पंचमए। कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पंचरयहरणाइं धारित्तए वा परिहरित्तए वा तं जहा—उग्गिहे १, उदिए २, साणए ३, पच्चापिच्चयए ४ मुंजापिच्चए ५ नामं पंचमए ॥३६॥

शब्दार्थ—[कप्पइ] कल्पता है [णिग्गंथाण वा] साधुओं को [णिग्गंथीण वा] साध्वीओं को [पंचवत्थाइं] पांच प्रकार के वस्त्र [धरित्तए वा] धारण करने योग्य [परिहरित्तए वा] पहनने के लिये [तं जहा] जैसे [जंगिए] ऊनके वस्त्र [भंगिए] पाट (रेशम) का बना हुआ कपडा [साणए] सनका बना हुआ कपडा [पोत्तिए] सूत का कपडा [तिरीडपट्टए णामं पंचमए] वृक्ष—विशेष की छाल का बना हुआ कपडा। [कप्पइ] कल्पता है [निग्गंथाण वा] साधुओं को [निग्गंथीण वा] साध्वीओं को [पंच रयहरणाइं] पांच प्रकार के रजोहरण [धरित्तए वा] धारण करने योग्य [परिहरित्तए वा] व्यवहार में

रखने योग्य [तं जहा] जैसे-[उग्गिहे] ऊनका [उट्टिए] ऊंट की जटा का [साणए] सनका [पच्चापिच्चयए] डाभ का [मुंजापिच्चए] मुंज का बना हुआ रजोहरण कल्पता है ॥३६॥

भावार्थ--साधुओं को अथवा साध्वीओं को पांच प्रकार के वस्त्र धारण करने योग्य पहनने को कल्पता है-वे इस प्रकार हैं--ऊनके वस्त्र १ पाट (रेशम) का बना हुवा वस्त्र२, शनका बना हुवा वस्त्र३, सूतका कपडा ४, वृक्षविशेष की छाल का बना हुवा कपडा ५ इसी प्रकार के रजोहरण धारण करने योग्य एवं व्यवहार में रखने योग्य हैं, जो इस प्रकार हैं-ऊनका १, ऊंट की जटा का २, सन का ३, डाभ का ४, और मुंजका ५, बना हुआ रजोहरण कल्पता है ॥३६॥

मूलम्-दोण्हं पुरिमपच्छिमअरिहंताणं सलिंगे वा भंडोवगरणोवही णियमेणं एगं सेयं वण्णओ प० ॥३७॥

भावार्थ—प्रथम एवं अंतिम इन दो अरिहंतों के साधु साध्वीओं को भंडोपकरण वस्त्र पात्र उपधी नियम से श्वेत वर्ण सफेद रंग की कल्पता है ॥३७॥

मूलम्—तीहिं ठाणेहिं वत्थे धरेज्जा, तं जहा—हिंरिवत्तियं, दुगंछावत्तियं, परिसहवत्तियं ॥३८॥

शब्दार्थ—[तीहिं ठाणेहिं वत्थे धरेज्जा] तीन कारणों से वस्त्र धारण करना मुनिराजों को कल्पता है—[तं जहा] जैसे—[हिरिवत्तियं] संयम के आराधना के लिये १, [दुगंछा वत्तियं] लोकनिन्दा के निवारण के लिये [परिसहवत्तियं] परीषह जीतने के लिये अथवा परिषह रोकने के लिये वस्त्र रखना कल्पता है ॥३८॥

भावार्थ—तीन कारणों से वस्त्र धारण करना मुनिराजों को कल्पता है वे इस प्रकार हैं—संयम के आराधना के लिये १, लोकनिन्दा के निवारण के लिये २, परीषह जीतने के

लिये अथवा परीषह रोकने के लिये२, वस्त्र रखना कल्पता है ॥३८॥

मूलम्--कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ पायाइं धरित्तए वा परिहरित्तए वा, तं जहा-लाउयपाए वा दारुपाए वा मिट्टियापाए वा ॥३९॥

शब्दार्थ--[कप्पइ] कल्पता है [णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा] निर्ग्रंथों को अथवा निर्ग्रंथियों को [तओ] तीन प्रकार के [पायाइं] पात्रा को [धरित्तए वा] धारण करने को अथवा [परिहरित्तए वा] उपभोग करने का कल्पता है, वे इस प्रकार है--[लाउयपाए वा] तुंबे का पात्र १ [दारुपाए वा]२ लकडी का बना पात्र अथवा [मट्टियापाए वा] मृत्तिका के पात्र ॥३९॥

भावार्थ--निर्ग्रन्थों को एवं निर्ग्रन्थीयों को तुंबे के पात्र १ लकडी का बनापात्र २, अथवा मिट्टि का बना पात्र ये तीन प्रकार के पात्रों को धारण करना या उपभोग में लेने को कल्पता है ॥३९॥

## सामाचारी का वर्णन

मूलम्—सामायारिं पवक्खामि, सव्वदुक्खविमोक्खणिं ।
जं चरित्ता ण निग्गंथा, तिण्णा संसारसागरं ॥१॥

भावार्थ—श्रीसुधर्मा स्वामी जंबूस्वामी से कहते हैं कि हे जम्बू ! समस्त शारीरिक एवं मानसिक दुःखो से छुटकारा दिलानेवाली साधुजनों के कर्तव्य रूप सामाचारी को मैं कहूंगा। जिस सामाचारी का सेवन करके निर्ग्रन्थ साधु नियमतः संसाररूप दुस्तर समुद्र को पार होते हैं, हुए हैं और आगे भी होंगे ॥१॥

मूलम्—पढमा आवस्सिया नाम, बिइया य निसीहिया ।
आपुच्छणा य तइया, चउत्थी पडिपुच्छणा ॥२॥
पंचमा छंदणा नामं, इच्छाकारो य छट्ठओ ।
सत्तमो मिच्छाकाराउ, तहक्कारो य अट्ठमो ॥३॥

अब्भुट्ठाणं नवमा, दसमा उवसंपया ।
एसा दसंगा साहूणं, सामायारी पवेइया ॥४॥

भावार्थ–अब सूत्रकार उस समाचारी के दस प्रकारों को कहते है। आवश्यकी सामाचारी–बिना किसी प्रमाद् के आवश्यक कर्तव्य करने को कहते हैं, यह प्रथम सामाचारी है (२) 'नैषेधिकी' सामाचारी–गुरुमहाराजने जो कार्य करने को कहा उतना ही करना चाहिये अन्य नहीं। कथित कार्य को करके उपाश्रय में आता है तो नैषेधिकी कहता है। यह दूसरी सामाचारी है। (३) 'आप्रच्छना' सामाचारी–शिष्य गुरुदेव से विनय के साथ सब कार्य पूछता है यह तीसरी सामाचारी है। (४) 'प्रतिप्रच्छना' सामाचारी–कार्य की आज्ञा होने पर भी फिर गुरू से पुनः पूछना। यह चौथी सामाचारी है। (५) 'छन्दना' सामाचारी–अपने आहार आदि के लिये अन्य साधुओं को यथा क्रम निमंत्रित करना। यह पांचवी सामाचारी है। (६) 'इच्छाकार' सामाचारी–बिना प्रेरणा के साधर्मी का

कार्य करना। यह छठी सामाचारी है। (७) 'मिथ्याकार' सामाचारी–किसी भी प्रकार के अतिचार की संभावना होने पर मिच्छामि दुक्कडं का देना, वह सातमी सामाचारी है। (८) 'तथाकार' सामाचारी–गुरु के आदेश को 'तथेति' कहकर शिष्य को स्वीकार करना वह आठवी सामाचारी है। (९) 'अभ्युत्थान' सामाचारी–आचार्य या बडे साधुजन के आने पर खडे हो जाना उनकी सेवा के लिये तत्पर रहना। वह नवमी सामाचारी है। (१०) 'उपसम्पत्' सामाचारी–ज्ञानादिक गुणों की प्राप्ति के लिये दूसरे स्थान में जाना। वह दसवीं सामाचारी है।

इन दस सामाचारीओं का पालन मुनिजन करते हैं।

मूलम्–गमणे आवस्सियं कुज्जा, ठाणे कुज्जा णिसीहियं।
आपुच्छणा सयंकरणे परकरणे पडिपुच्छणा ॥५॥

भावार्थ–किसी कारण से साधु को उपाश्रय से बाहिर जाना पडे तो साधु को

आवश्यकी सामाचारी करनी चाहिये। जब उपाश्रय में प्रवेश करे तब नैषेधिकी सामाचारी करे। जो काम स्वयं करने का है उसमें (यह मैं करूं या नहीं) इस प्रकार पूछने रूप आप्रच्छना सामाचारी करे। जब गुरु शिष्य के पूछने पर कार्य करने की आज्ञा दे देवें तो शिष्य जब वह उस कार्य का आरंभ करे पुनः आज्ञा लेवे इसका नाम प्रतिप्रच्छना सामाचारी है ॥५॥

मूलम्—छन्दणा दव्वजायणं, इच्छाकारो य सारणे।
मिच्छाकारो य निंदाए, तहक्कारो पडिस्सुए ॥६॥

भावार्थ—पूर्वगृहीत अशनादि सामग्री द्वारा शेष मुनिजनों को आमंत्रित करना यह छंदना है। अपने या दूसरे के कार्य में प्रवर्तन होने में इच्छा करना इच्छाकार है। अतिचार हो जाने पर 'मिच्छामिदुक्कडं' देना (मिथ्याकार) है। गुरुजनों के वाचना आदि देते समय (ऐसा ही है) कहकर अंगीकार करना तथाकार है ॥६॥

मूलम्—अब्भुट्ठाणं गुरुपूया, अच्छणे उवसंपया ।
एवं दुपंचसंजुत्ता, सामाचारी पवेइया ॥७॥

भावार्थ—गुरुजनों के आचार्य आदि पर्याय ज्येष्ठों के निमित्त आसन छोडकर खडे होना और बाल साधुओं की सेवा में उद्यमशील रहना, अभ्युत्थान है। ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की प्राप्ति के निमित्त आचार्य अन्यगणों के पास रहना उपसम्पत् सामाचारी है ।७।

मूलम्—पुव्विल्लंमि चउब्भागे, आइच्चम्मि समुट्ठिए ।
भंडगं पडिलेहित्ता, वंदित्ता य तओ गुरुं ॥८॥
पुच्छिज्जा पंजलीउडो, किं कायव्वं मए इह ।
इच्छं निओइउं भंते ! वेयावच्चे व सज्झाए ॥९॥

भावार्थ—सूर्य के उदित होने पर प्रथम पौरूषी में पात्र, वस्त्रादिकों की मुखव-

स्त्रिका सहित प्रतिलेखना करके, आचार्यादिक बडों को वंदना करके दोनों हाथ जोड करके इस समय क्या करना चाहिये ऐसा पूछे। वैयावृत्य एवं स्वाध्याय करने की आज्ञा मांगे ॥८-९॥

मूलम्-वेयावच्चे निउत्तेणं कायव्वं आगलायओ।
संज्झाये वा निउत्तेण, सव्वदुक्खविमोक्खणे ॥१०॥

भावार्थ-चतुर्गतिक संसार के दुःखो के निवारक ऐसे साधु को शारीरिक परिश्रम का ख्याल न करके वैयावृत्य अच्छी प्रकार करना चाहिए, बिना किसी ग्लानभाव के स्वाध्याय करना चाहिये ॥१०॥

मूलम्-दिवसस्स चउरो भाए, कुज्जा भिक्खू वियक्खणे।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा, दिणभागेसु चउसु वि ॥११॥

भावार्थ-मेधावी साधु दिवस के चार भाग कर लेवे और इन चारों ही भागों में वह स्वाध्याय आदि करने रूप उत्तर गुणों का पालन करता रहे ॥११॥

मूलम्-पढमं पोरिसि सज्झायं, बीयं झाणं झियायइ ।
तइयाए भिक्खायरियं, पुणो चउत्थीइ सज्झायं ॥१२॥

भावार्थ-दिवस के प्रथम प्रहर में, वाचनादिकरूप स्वाध्याय करना, द्वितीय प्रहर में सूत्रार्थ चिन्तन रूप ध्यान करे, तृतीय प्रहर में भिक्षावृत्ति करे और चतुर्थ प्रहर में प्रतिलेखका आदि करे ॥१२॥

मूलम्-आसाढे मासे दुपया, पोसे मासे चउप्पया ।
चित्तासोएसु मासेसु, तिपया हवइ पोरिसि ॥१३॥

भावार्थ-आषाढ मास में द्विपदा पौरूषी होती है। पौष मास में चतुष्पदा पौरुषी

होती है। चैत्र एवं आश्विन मास में त्रिपदा पौरूषी होती है ॥१३॥

मूलम्–अंगुलं सत्तरत्तेणं, पक्खेणं तु दुअंगुलं।
वड्ढए हायए वावि, मासेणं चउरंगुलं ॥१४॥

भावार्थ–साढे सात ७॥ दिनरात के काल में एक अंगुल पौरूषी बढती है। एक पक्ष में दो अंगुल पौरूषी बढती है। एक मास में चार अंगुल बढती है। तथा उत्तरायण में इसी क्रम से घटती है। ये प्रत्याख्यान आदि में अपेक्षित होती है ॥१४॥

मूलम्–आसाढ बहुलपक्खे, भद्दवए कत्तिए य पोसे य।
फग्गुण वइसाहेसु य, जायव्वा ओमरत्ताओ ॥१५॥

भावार्थ–१४ दिनों का पक्ष, आषाढ कृष्णपक्ष में, भाद्र कृष्णपक्ष में कार्तिक कृष्ण पक्ष में, पौष कृष्णपक्ष में, फाल्गुन वैशाख कृष्णपक्ष में १४–१४ दिन के पक्ष होते हैं ॥१५॥

मूलम्—जेट्ठा मूले आसाढ—सावणे, छहिं अंगुलेहिं पडिलेहा।
अट्ठहिं बिइतियम्मि, तइए दस अट्ठहिं चउत्थे ॥१६॥

भावार्थ—जेष्ठ महिने में, आषाढ सावन में पहिले लिखे हुये पौरुषी प्रमाणमें छह अंगुलों के प्रक्षिप्त करने से निरीक्षण रूप प्रतिलेखना करनी चाहिये। इससे पादोन पौरुषी का ज्ञान होता है। भाद्र, आश्विन, कार्तिक महीनों में आठ अंगुलों को प्रक्षिप्त करके, मगसिर, पौष एवं माघ मास में दश अंगुलों को प्रक्षिप्त करके फाल्गुन, चैत्र एवं वैसाख मास में आठ अंगुलों को प्रक्षिप्त करके प्रतिलेखना करनी चाहिये ॥१६।

मूलम्—रत्तिंपि चउरो भाए, भिक्खू कुज्जा वियक्खणो।
तओ उत्तरगुणे, कुज्जा, राईभागेसु चउसु वि ॥१७॥

भावार्थ—बुद्धिशाली मुनि रात्री के भी चार भाग कर लेवे और उन रात्रि के चार भागों में भी वह स्वध्याय आदिरूप उत्तर गुणों की आराधना करे ॥१७॥

मूलम्-पढमं पोरिसि सज्झाय, बीयं झाणं झियायइ ।
तइयाए निद्दमोक्खं तु, चउत्थी भुज्जो वि सज्झायं ॥१८॥

भावार्थ-साधु रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे, दूसरे प्रहर मे चिन्तवन करे, तीसरे प्रहर में निद्रा लेवे, चतुर्थ प्रहर में स्वाध्याय करे ॥१८॥

मूलम्-जं नेइ जया रत्तिं, नक्खत्तं तम्मि नहचउब्भाए ।
संपत्ते विरमेज्जा, सज्झाय पओसिकालम्मि ॥१९॥

भावार्थ-मुनिको रात्रि के चार प्रहररूप चारों भागों के उपाय जानने का मार्ग दिखाते हैं। जिस नक्षत्रके उदित होने पर रात्रिका प्रारम्भ होता है और उसीके अस्त होने पर रात्रिका अन्त होता है। ऐसा वह नक्षत्र जब आकाशके पहिले चतुर्थ भागमें प्राप्त हो तो रात्रि के प्रथम प्रहर में की हुई स्वाध्यायका परित्याग करे। इस प्रकार मुनि के समस्त रात्रि कर्तव्यको बताया है ॥१९॥

मूलम्—तम्मेव य नक्खत्ते, गयणचउब्भाय सावसेसम्मि ।
वेरत्तियं पि कालं, पडिलेहित्ता मुणी कुज्जा ॥२०॥

भावार्थ—फिर वही नक्षत्र जब तृतीय भाग के अंतिम भागयुक्त चौथे भागरूप आकाशमें आवे तब मुनि तृतीय प्रहरकी चारों दिशाओ में आकाशकी प्रतिलेखना करके स्वाध्याय करे ॥२०॥

मूलम्—पुव्विलम्मि चउब्भागे, पडिलेहित्ताण भंडगं ।
गुरुं वंदित्तु सज्झायं, कुज्जा दुःखविमोक्खणं ॥२१॥

भावार्थ—दिवसके सूर्योदय के प्रथम प्रहर में मुनि सविनय सवन्दन गुरुके आदेश को प्राप्त करके वर्षाकल्प आदिके योग्य वस्त्र एवं पात्रादिकोंकी प्रतिलेखना करके गुरुको वन्दना करे और पश्चात् शारीरिक एवं मानसिक समस्त दुःखोके नाशक स्वाध्याय करे ॥२१॥

मूलम्–पोरसीए चउब्भागे, वंदित्ताणं तओ गुरुं ।
अपडिक्कमित्ता कालस्स, भायणं पडिलेहए ॥२२॥

भावार्थ–पौरुषीके अवशिष्ट चतुर्थभागमें गुरु महाराज को वंदना करके, बादमें काल प्रतिक्रमण नहीं करके उपकरण मात्र की प्रतिलेखना करे स्वाध्याय के बाद काल प्रतिक्रमण करना चाहिये। चतुर्थ पौरुषीमेंभी स्वाध्याय करनेका विधान है। ॥२२॥

मूलम्–मुहपोत्तियं पडिलेहित्ता, पडिलेहिज्ज गोच्छगं ।
गोच्छगलइयंगुलिओ, वत्थाइं पडिलेहए ॥२३॥

भावार्थ–प्रतिलेखनाकी विधिका वर्णन कहते हैं कि मुनि आठ पुटवाली सदोरकमुखवस्त्रिकाकी सर्व प्रथम प्रतिलेखना करे। इसके बाद प्रमार्जिकाकी, रजोहरणकी, और वस्त्रों की प्रतिलेखना करे ॥२३॥

मूलम्—उट्टं थिरं अतुरियं, पुव्वं ता वत्थमेव पडिलेहे ।
तो बिइयं पप्फोडे, तइयं च पुणो पमज्जिज्ज ॥२४॥

भावार्थ—उत्कुटुक आसन से बैठकर मुनि वस्त्रको तिरछा फैलाकर स्थिरता से वस्त्रों की प्रतिलेखना करे । यदि जीव जंतु उसपर चलता, फिरता तथा बैठा नजर आवे तो उसको यतनापूर्वक सुरक्षित स्थान पर पूंजणी से पूंजे और रख देवें, झटकारे नहीं ॥२४॥

मूलम्—अणच्चावियं अवलियं, अणाणुबंधि अमोसलिं चेव ।
छप्पुरिमा नवखोडा, पाणीपाणी विसोहणं ॥२५॥

भावार्थ—प्रतिलेखन करते समय वस्त्रको नचावे नहीं, मोडे नहीं, वस्त्रका विभाग स्पष्ट दिखाई दे, भीत आदिका संघाटा न होवे इस प्रकार प्रतिलेखन करें । यतना-पूर्वक छ बार वस्त्रका प्रतिलेखन करे प्रस्फोटन करे और नौ बार प्रमार्जना करे । उसके

बाद दोनों हाथोंका प्रतिलेखनारूप विशोधन करें, हाथ पर जीवजंतु हो तो उसका एकान्त स्थान पर परिष्ठान करें ॥२५॥

मूलम्—आरभडा सम्मद्दा, वज्जेयव्वा य मोसली तइआ।
पप्फोडणा चउत्थी, विक्खित्ता वेइया छट्ठा ॥२६॥

भावार्थ—मुनिको आरभटा दोष प्रतिलेखना में छोडना चाहिये। इसका दोष समग्र वस्त्रकी प्रतिलेखना नहीं करके, बीच में अन्य वस्त्रों को शीघ्रतासे लेना इसको आरभटा दोष कहा है। दूसरा दोष संमर्द है,—वस्त्र के कोनों का मोडना, तीसरा दोष है, मौशली-ऊंचा, नीचा, तीरछा संघटन होना। चौथा दोष है प्रस्फोटना—धूलि से युक्त वस्त्रको फटकारना। पांचवा दोष विक्षिप्त है—प्रतिलेखना किया हुआ वस्त्र अप्रतिलेखित के साथ मिला देना। वेदिका छठा दोष है। इन छ दोषों को साधुको प्रतिलेखना में त्यागना चाहिये ॥२६॥

मूलम्—पसिढिल–पलंब–लोला, एगा मोसा अणेगरूवधुणा ।
कुणइ पमाणि पमायं, संकिए गणणोवगं कुज्जा ॥२७॥

भावार्थ—जो साधु प्रतिलेख्यमान् वस्त्रको ढीला पकडता है, कोनों को लटकाये रखता है, भूमिमें अथवा हाथों में उसे हलाता रहता है, बीचमें घसीटते हुये खेंचता है और प्रमाद्वश हाथोंकी अंगुलियों की रेखाको स्पर्श करके गिनती करता है। यह प्रतिलेखना में दोष माने गये हैं उनका त्याग बतलाया गया है ॥२७॥

मूलम्—अणूणाइरित्त पडिलेहा, अविवच्चासा तहेव य ।
पढमं पयं पसत्थं, सेसाणि उ अप्पसत्थाणि ॥२८॥

भावार्थ—प्रतिलेखना निर्दिष्ट प्रमाणके अनुसार ही साधुको करनी चाहिये। न न्यून करनी चाहिये। और न अधिक करनी चाहिये। इसी प्रकार पुरुष विपर्यास, उपधि विपर्यासका भी परित्याग करना चाहिये। प्रथम पद के सिवाय शेष ७ भंग सदोष हैं ॥२८॥

मूलम्—पडिलेहणं कुणंतो, मिहो कहं कुणइ जणवयवहं वा ।
देइ व पच्चक्खाणं, वाएइ सयं पडिच्छइ वा ॥२९॥
पुढवि आउक्काए, तेउवाऊवणस्सइतसाणं ।
पडिलेहणापमत्तो, छण्हंपि विराहओ होइ ॥३०॥

भावार्थ—प्रतिलेखना करता हुआ जो मुनि कथा करता है अथवा जनपद कथा स्त्री आदि की कथा करता है, अथवा दूसरों को प्रत्याख्यान देता है, वाचना देता है, या ग्रहण करता है, वह असावधान मुनि पृथ्वीकाय अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय एवं त्रसकाय इन छहकाय के जीवोंका विराधक होता है ॥२९–३०॥

मूलम्—पुढवी—आउक्काए, तेऊ—वाऊ—वणस्सइत्तसाणं ।
पडिलेहणा आउत्तो, छण्हंपि आराहओ होई ॥३१॥

भावार्थ–प्रतिलेखना में सावधान मुनि पृथ्विकाय, अप्काय, 'पुढवी' तेजस्काय वायु-काय' वनस्पतिकाय एवं त्रसकाय इन छह जीवनिकायोंका आराधक माना जाता है ॥३२॥

मूलम्–तइयाए पोरिसीए, भत्तपाणं गवेसए।
छण्हमन्नयरागम्मि, कारणम्मि समुट्ठिए ॥३२॥

भावार्थ––मुनि छह कारणों में से किसी एक कारण के उपस्थित होने पर तृतीय पौरूषी में भक्तपानकी गवेषणा करे ॥३२॥

मूलम्–वेयण वेयावच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए।
तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मचिंताए ॥३३॥

भावार्थ––मुनि इन छह कारणों से (१) क्षुधा अथवा पिपासाकी वेदनाकी शान्ति के लिये (२) गुरु आदि मुनिजनों की सेवारूप वैयावृत्ति करने के लिये (३) ईर्यासमिति की आराधना करने के लिये (४) संयम पालन करने के लिये (५) तथा प्राणोंकी

रक्षा के लिये (६) धर्मध्यानकी चिंता के लिये भक्तपान की गवेषणा करे ॥३३॥

मूलम्—निग्गंथो धिइमंतो, निग्गंथी वि न करिज्ज छहिं च वे ।
ठाणेहिं तु इमेहिं अणातिक्कमणा य से होई ॥३४॥

भावार्थ—धर्माचरण के प्रति धैर्यशाली निर्ग्रन्थ साधु अथवा साध्वी ये दोनों भी इस वक्ष्यमाण छह स्थानों के उपस्थित होने पर भक्तपानकी गवेषणा न करे, ऐसा करने से उनके संयम योगोंका उल्लंघन होता है ॥३४॥

मूलम्—आयंके उवसग्गे, तितिक्खया बंभचेरगुत्तीसु ।
पाणिदया तवहेउं, सरीरवोच्छेयणट्ठाए ॥३५॥

भावार्थ—(१) ज्वरादिक रोग के होने पर (२) देव मनुष्य एवं तिर्यञ्चकृत उपसर्ग होने पर (३) ब्रह्मचर्य रक्षण के लिये (५) चतुर्थ भक्तादिरूप तपस्या करने के लिये (६) तथा उचित समय में अनशन कनेके लिये भक्तपानकी गवेषणा नहीं करना चाहिये ॥३५॥

मूलम्–अवसेसं भंडगं गिज्झा, चक्खुसा पडिलेहए ।
परमद्धजोयणाओ, विहारं विहरए मुणी ॥३६॥

भावार्थ––मुनि समस्त वस्त्रपात्ररूप उपकरणों की पहिले नेत्रोंसे प्रतिलेखना करे ताकि कोई जीवजन्तु उसपर न हो। बाद में उन्हें लेकर ज्यादा से ज्यादा आधे योजन तक आहार पानी की गवेषणा निमित पर्यटन करे। क्योंकि दो कोसके ऊपरका अशन-पानादिक साधुको अकल्पनीय कहा गया है ॥३६॥

मूलम्–चउत्थीए पोरिसीए, निक्खवित्ताण भायणं ।
सज्झायं च तओ कुज्जा, सव्वभाव विभावणं ॥३७॥

भावार्थ—मुनि आहारपानी करके चौथी पौरूषी में पात्रोंको वस्त्रमें बांध कर रक्खे, पश्चात् जीवादिक समस्त तत्त्वों के निरूपक स्वाध्यायको करे ॥३७॥

मूलम्—पोरसीए चउब्भागे, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
पडिक्कमित्ता कालस्स, सिज्जं तु पडिलेहए ॥३८॥

भावार्थ—मुनि दिनकी चौथी पौरूषीके चतुर्थ भागमें स्वाध्यायको समाप्तकर गुरु महाराजको और बडोंको वन्दना करें। उसके बाद काल प्रतिक्रमण करके अपनी शय्याकी प्रतिलेखना करे ॥३८॥

मूलम्—पासवणुच्चारभूमिं च, पडिलेहिज्ज जयं जई ।
काउसग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥३९॥

भावार्थ—यतवान् मुनि दिनकी अन्तिम पौरूषीके चौथे भाग उच्चार प्रस्रवण के स्थंडिल के २४ मंडलोंकी प्रतिलेखना करें प्रस्रवणादि भूमिकी प्रतिलेखना करलेने के बाद मुनि शारीरिक एवं मानसिक तापका निवारक कायोत्सर्ग करे ॥३९॥

मूलम्—देवसियं अईयारं, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो ।
नाणे य दंसणे चेव, चरितम्मि तहेव य ॥४०॥

भावार्थ—मुनि दिवस संबंधी अतिचारों का प्रभात समयकी प्रतिलेखनासे लगाकर संपूर्ण दिन के अतिचारोंका क्रमशः विचार करना यही कायोत्सर्ग है। ज्ञानके विषयमें दर्शन के विषयमें तथा चरित्रके विषयमें जो अतिचार लगे हो उनका विचार करे ॥४०॥

मूलम्—पारिय काउस्सग्गो, वंदित्ताणं तओ गुरुं ।
देवसियं तु अईयारं, आलोइज्ज जहक्कमं ॥४१॥

भावार्थ—अतिचारोंकी आलोचना करने के बाद मुनि कायोत्सर्ग को पारे—समाप्त करे। इसके पश्चात् गुरुवंदन कर दिवस संबंधी अतिविचार गुरुके समीप प्रकाशित करे।४१।

मूलम्—पडिक्कमित्तु निस्सल्लो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥४२॥

भावार्थ—अतिचारोंकी आलोचनाके बाद प्रतिक्रमण भावशुद्धिरूप मनसे, सूत्र-पाठरूप वचन से, मस्तकके झुकानेरूप काय से करके, मायादि शल्य रहित होकर गुरुवंदनकर मुनिसमस्त दुःखोंका नाश करनेवाला कायोत्सर्ग–ज्ञान, दर्शन चारित्रकी शुद्धिके निमित्त व्युत्सर्ग तप करे ॥४२॥

मूलम्—पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ताणं तओ गुरुं ।
थुईमंगलं च काउं, कालं, संपडिलेहए ॥४३॥

भावार्थ—कायोत्सर्ग पालनकर मुनि गुरुको वंदना करे। वंदना करके पश्चात् नमोत्थुणं लक्षणरूप स्तुतिद्वयको पढे। पढनेके बाद प्रदोषकाल संबंधी कालकी प्रतिलेखना करे ॥४३॥

मूलम्—पढमं पोरिसि सज्झायं, बीयं झाणं झियायई ।
तइयाए निद्दमोक्खं तु, सज्झायं तु चउत्थीए ॥४४॥

भावार्थ—रात्रिकी प्रथम पौरूषी में स्वाध्याय करे दूसरी पौरूषी में ध्यान करे,

तीसरी पौरुषी में निद्रालेवे और चौथी पौरुषी में फिर स्वाध्याय करे ॥४४॥

मूलम्—पोरिसीए चउत्थीए, कालं तु पडिलेहए ।
सज्झायं तु तओ कुज्जा, अबोहिंतो असंजए ॥४५॥

भावार्थ—रात्रिकी चतुर्थ पौरुषी मेंमुनि वैरात्रिक कालकी प्रतिलेखना करके गृहस्थ-जन जग न जावें इस रूपसे अर्थात् मंद स्वरसे स्वाध्याय करे ॥४५॥

मूलम्—पोरिसीए चउब्भागे, वंदित्ताणं तओ गुरुं ।
पडिक्कमित्ता कालस्स, कालं तु पडिलेहए ॥४६॥

भावार्थ—स्वाध्याय करनेके बाद चतुर्थ पौरुषीका चतुर्थभाग बाकी रहे तब गुरुको वंदन करके 'अकाल' आ गया है, ऐसा समझकर प्रभातिक कालकी प्रतिलेखना करे अर्थात् राइसी प्रतिक्रमण करे ॥४६॥

मूलम्—आगए कायवुस्सग्गे, सव्वदुक्खविमोक्खणे ।
काउसग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥४७॥

भावार्थ—सर्व दुःखोका निवारक कायोत्सर्गका समय जब आजावे तब मुनि सर्व दुःख निवारक कायोत्सर्ग करे ॥४७॥

मूलम्—राइयं च अईयारं, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो ।
नाणम्मि दंसणम्मि, चरित्तम्मि तवम्मि य ॥४८॥

भावार्थ—मुनि ज्ञान के विषयमें दर्शन के विषय में चारित्र के विषय में तप के विषय में एवं वीर्यके विषय में रात्रिमें जो भी अतिचार लगेहों उनका चिंतवन करे ॥४८॥

मूलम्—पारिकाउस्सगो, वंदित्ताणं तओ गुरुं ।
राइयं च अईयारं, आलोएज्ज जहक्कमं ॥४९॥

भावार्थ--कायोत्सर्गको पारकर गुरुको वंदना करके रात्रि संबंधी अतिचारोंकी यथा क्रम अनुक्रमसे आलोचना करे ॥४९॥

मूलम्–पडिक्कमितु निस्सल्लो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
काउसग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥५०॥

भावार्थ–प्रतिक्रमण करके माया, मिथ्या, निदान शल्यों से रहित बना हुआ मुनि गुरु महाराजको वंदना करे चतुर्थ आवश्यकके अन्तमें वंदना करके पंचम आवश्यक का प्रारंभ करे । इसके बाद सर्व दुःखविनाशक कायोत्सर्ग करे ॥५०॥

मूलम्–किं तवं पडिवज्जामि, एवं तत्थ विचिंतए ।
काउसग्गं तु पारित्ता, वंदइ उ तओ गुरुं ॥५१॥

भावार्थ–कायोत्सर्ग में मुनि विचार करे मैं नमस्कार सहित नोकारसी आदि किस तपको धारण करूं । पश्चात् कायोत्सर्ग पार कर गुरु महाराजको वंदना करे ॥५१॥

मूलम्—पारिय काउसग्गो, वंदित्ताणं तओ गुरुं ।
तवं संपडिवज्जित्ता, करिज्ज सिद्धाणं संथवं ॥५२॥

भावार्थ—कायोत्सर्ग के पश्चात् मुनि गुरु महराजको वंदन करे और यथाशक्ति चिन्तित तपको स्वीकारकर 'नमोत्थुणं' के पाठ को दो बार पढें ॥५२॥

मूलम्—एसा सामायारी, समासेण वियाहिया ।
जं चरिता बहू जीवा, तिण्णा संसारसागरं तिबेमि ॥५३॥

भावार्थ—अनन्तरोक्त यह दस प्रकारकी समाचारी मैंने संक्षेपसे कही है, जिस सामाचारी को पालन करके अनेक मुनि जीव इस संसार सागरसे पार हुए हैं। सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं हे जंबू ! भगवान के समीप जैसा मैंने सुना है वैसा ही कहता हूं। ॥५३॥

'सामाचारी' अध्ययन समाप्त ।

चन्दन-
बालादि
राज-
कन्यकानां
दीक्षा-
ग्रहणादिकं

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदणबाला भगवओ केवलुप्पत्तिं विण्णाय पव्वज्जं गहिउं उक्कंठिया समाणी पहुसमीपे संपत्ता। सा य पहुं आदक्खिणं पदक्खिणं करेइ। करित्ता वंदइ णमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-इच्छामि णं भंते! संसार भउव्विग्गाहं देवाणुप्पियाणं अंतिए पव्वइसुं तएणं समणे भगवं महावीरे तं चंदणबालं एवं वयासी—अहा सुहं देवाणुप्पिया मा पडिबंधं करेह तए णं सा चंदणबाला उग्गभोगरायण्णामच्चप्पभिईणं रायकण्णगाणं सह उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ अवक्कमित्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेह। तए णं सीलसेणा देवी ताओ सदोरगमुहपत्ती रयहरणाणि अदंडिय गोच्छगाणि पडिग्गहाणि वत्थाणिय पडिच्छइ सव्वे वि णिग्गंथिवेसं धारेह तएणं चंदणबालं अग्गे काउं सव्वा वि जेणेव समणे भगवं महावीरे

तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—अलित्तेणं भंते लोए जाव धम्ममाइक्खह तए णं समणे भगवं महावीरे चंदणबालं अग्गे काउं तासं रायकण्णयाणं सयमेव पव्वावेइ तए णं सा चंदणबाला पामोक्खा अज्जाओ संजमइ जाव गुत्तबंभचारिणी जाया। पुणो य बहवे उग्गभोगाइं कुलप्पसूया नरा नारीओ य पंचाणुव्वइयं सत्त-सिक्खावइयं एवं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिय समणोवासया जाया।

तए से समणे भगवं महावीरे तित्थयरनामगोयकम्मक्खवणट्ठं समण समणी सावयसावियारूवं चउव्विहं संघं ठाविय इंदभूइ पभिईणं गणहराणं—'उप्पन्ने वा विगमे वा धुवे वा' इय तिवइं दलइ। एयाए तिवईए गणहरा दुवालसंगं गणिपिडगं विरइयंति। एवं एगारसण्हं गणहराणं नव गणा जाया।

चन्दन-बालादि राज-कन्यकानां दीक्षा-ग्रहणादिकं

तं जहा—सतण्हं गणहराणं परोप्परभिन्न वायणाए सत्तगणा जाया। अकंपिया-यलभायाणं दुण्हंपि परोप्परं समाणवायणाए एगो गणो जाओ। एवं मेयज्ज-पभासाणं दुण्हंपि एगवायणाए एगो गणो जाओ। एवं नव गणा संभूया। तए णं से समणे भगवं महावीरे मज्झिमपावापुरीओ पडिनिक्खमइ। पडि-निक्खमित्ता अणेगे भविए पडिबोहमाणे जणवयं विहारं विहरइ। एवं अणेगेसु देसेसु विहरमाणे भगवं जणाणं अण्णाणदिण्णमवणीय ते णाणाइ संपत्ति जुए करीअ। जहा अंबरम्मि पगासमाणो भाणू अंधयारमवणीय जगं हरिसेइ तहा जगभाणू भगवं मिच्छत्तांधयारमवणीय णाणप्पगासेण जगं हरिसीअ। भवकूव-पडिए भविए णाणरज्जुणा बाहिं उद्धरीअ भगवं जलधरो व अमोहधम्मदेस-णा मियधाराए पुहविं सिंचीअ। एवं विहारं विहरमाणस्स भगवओ एगचत्ता-

चन्दन-
बालादि
राज-
कन्यकानां
दीक्षा-
ग्रहणादिकं

लीसं चाउम्मासा पडिपुण्णा। तं जहा—एगो पढमो चाउम्मासो अत्थियगामे १, एगो चंपानयरीए २, दुवे पिट्ठिचंपानयरीए ४, बारस वेसालीनयरी वाणियग्गाम-निस्साए १६। चउद्दस रायगिहनगरनालंदाणाम य पुरसाहानिस्साए ३०। छ मिहिलाए ३६। दुवे भद्दिलपुरे ३८। एगो आलंभियाए नयरीए ३९। एगो सावत्थीए नयरीए ४०। एगो वज्जभूमि नामगे अणारिय देसे जाओ ४१। एवं एग चत्तालिसा चाउम्मासा भगवओ पडिपुण्णा ४१। तए णं जणवयविहारं विहरमाणे भगवं अपच्छिमं बायालीसइमं चाउम्मासं पावापुरीए हत्थिपाल-रण्णो रज्जुगसालाए जुण्णाए ठिए ॥४०॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदणबाला भगवओ केवलुप्पत्तिं विण्णाय पव्वज्जं गहीउं उक्कंठिया समाणी पहुसमीवे संपत्ता] उसकाल और उस समय में चंदन-

चन्दन-बालादि राज-कन्यकानां दीक्षा-ग्रहणादिकं

चन्दन-
बालादि
राज-
कन्यकानां
दीक्षा-
ग्रहणादिकं

बाला भगवान महावीर प्रभु को केवली हुए जानकर दीक्षा ग्रहण करने के लिए उत्कंठित हुई प्रभु के पास पहुंची। [सा य पहु आदक्खिणं पदक्खिणं करेइ] उसने प्रभुको आदक्षिण प्रदक्षिणापूर्वक [वंदइ नमंसइ,] वन्दन—नमस्कार किया [वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-] वन्दना—नमस्कार कर ऐसा कहा—[इच्छामि णं भंते 'संसार भउव्विग्गाहं देवाणुप्पियाणं अंतिए पव्वइउं] हे भगवन्! संसार के भयसे उद्विग्न होकर मैं देवानुप्रिय के समीप प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूं। [तए णं समणे भगवं महावीरे] तब श्रमण भगवान् महावीरने [तं चंदणबालं एवं वयासी] उस चन्दनबालाको इस प्रकार कहा—[अहासुहं देवाणुप्पिया मा पडिबंधं करेह] भो देवानुप्रिये तुमको सुख उपजे वैसा करो उसमें विलम्ब मत करो [तए णं सा चंदनबाला] तदन्तर उस चन्दनबालाने [उग्गभोगरायण्णामच्चप्पभिईणं रायकण्णगाणं सह] उग्रकुल भोगकुल राजकुल की एवं अमात्यादि राजकन्याओं के साथ [उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ] उत्तर पूर्वदिशा—ईशान-

कोण की ओग गये [अवक्काभित्ता] जाकरके [सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेह] अपने आप पंचमुष्ठिक लोच किया [तए णं] तत्पश्चात् [सीलसेणा देवी] शीलसेना देवीने [ताओ] उन सबको [सदोरह मुहपत्ती] सदोरक मुखवस्त्रिका [रयहरणाणि] रजोहरण [अदंडिय गोच्छगाणि] विना दंडके गोच्छ के [पडिगाहाणि] पात्रा [वत्थाणिय] एवं वस्त्र [पडिच्छइ] उन सबको दिये, [सव्वे वि निग्गंथिवेसं धारेह] उन सभीने निर्ग्रन्थिके वेशधारण किये। [तएणं चंदणबालं अग्गेकाउं] तत्पश्चात् चन्दनबालाको आगे करके [सव्वा वि] वे सभी [जेणेव समणे भगवं महावीरे] जहां पर श्रमण भगवान् महावीर प्रभु विराजमान थे [तेणेव उवागच्छइ] वहां पर गये [उवागच्छित्ता] वहां जाकरके [समणं भगवं महावीरं] श्रमण भगवान् महावीरको [वंदइ णमंसइ] वंदना की नमस्कार किया [वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी] वंदना नमस्कार कर इस प्रकार कहा—[आलित्तेणं भंते लोए] हे भगवन् यह लोक चारों तरफ से जलता हैं [जाव धम्ममाईक्खह] यावत्

चन्दन-
बालादि
राज-
कन्यकानां
दीक्षा-
ग्रहणादिकं

भगवानने धर्मोपदेश दिया [तएणं समणे भगवं महावीरे] तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीरने [चंदणबालं अग्गेकाउं] चन्दनबाला को प्रधान करके [तासं रायकण्णगाणं] वे सभी राजकन्याओं को [सयमेव पव्वावेइ] अपने हाथ से दीक्षा दी, [तएणं चंदणबाला पामोक्खा अज्जाओ] तदनन्तर चंदनबाला आदिआर्यायें [संजमइ] संयमवती बनी [जाव गुत्तबंभयारिणीजाया] यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी हुई [पुणो य बहवे उग्ग भोगाइ कुलप्पसूया नरानारीओ य पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं एवं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिय समणोवासया जाया] फिर बहुत से उग्रकुल भोगकुल आदि में जन्मे हुए स्त्री पुरुषोंने पांच अणुव्रत एवं सात शिक्षाव्रतवाले–बारह प्रकारके गृहस्थ धर्म को स्वीकार किया और श्रमणोपासक बने। [तए णं से समणे भगवं महावीरे तित्थयरनामगोयकम्मक्खवणट्ठं] उसके बाद श्रमण भगवान् महावीरने तीर्थंकर नाम गोत्रका क्षय करने के लिये [समणसमणी सावयसावियारूवं चउव्विहं संघं-

चन्दन-
बालादि
राज-
कन्यकानां
दीक्षा-
ग्रहणादिकं

ठाविय] साधु साध्वी श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघकी स्थापना करके [इंद्भूइप्पभिईणं गणहराणं–'उप्पन्ने वा विगमे वा धुवे वा' इय तिवइं दलइ] इन्द्रभूति आदि गणधरों को उत्पाद व्यय औ ध्रौव्य इस प्रकारकी त्रिपदा प्रदान की। [एयाए तिवईए गणहरा दुवालसंगं गणिपिडगं विरइयंति] इस त्रिपदी के आधार से गणधरोंने द्वादशांग गणिपिटक की रचना की। [एवं एगारसण्हं गणहराणं नव गणा जाया] इस प्रकार ग्यारह गणधरोंके नौ गण हुए [तं जहा–सत्तण्हं गणहराणं परोप्परभिन्न वायणाए सत्त गणा जाया] वे इस प्रकार–सात गणधरों की भिन्न भिन्न वाचनाएँ होने से सात गण हुए। [अकंपियायलभायाणं दुण्हंपि परोप्परं समाणवायणयाए एगो गणो जाओ] अकम्पित और अचलभ्राता दोनों की परस्पर समान वाचना होनेसे एक गण हुआ [एवं मेयज्जपभासाणं दुण्हंपि एगवायणयाए एगो गणो जाओ] इस प्रकार मेतार्य और प्रभास दोनों की भी एक सी वाचना होने से एक गण हुआ।

चन्दनबालादि राजकन्यकानां दीक्षाग्रहणादिकं

[एवं नव गणा संभूया] इस प्रकार नौ गण हुए।

[तए णं से समणे भगवं महावीरे मज्झिमपावापुरीओ पडिनिक्खमइ] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीरने मध्यम पावापुरी से विहार कर दिया [पडिनिक्खमित्ता अणेगे भविए पडिबोहमाणे जणवयविहारं विहरइ] विहार करके अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हुए जनपद में विचरने लगे [एवं अणेगेसु देसेसु विहरमाणे भगवं जणाणं अण्णाणदिण्णमवणीय ते णाणाइसंपत्तिजुए करीअ] इस प्रकार अनेक देशों में विहार करते हुए भगवान ने लोगों की अज्ञान रूपी दरिद्रता को दूर करके उन्हें ज्ञानादि संपत्ति युक्त किया [जहा अंबरम्मि पगासमाणो भाणू अंधयारमवणीय जगं हरिसेइ] जैसे आकाश में प्रकाशमान होता हुआ सूर्य अंधकारको दूर करके जगतको हर्षित करता है [तह जगभाणू भगवं मिच्छत्तांधयारमवणीय णाणप्पगासेण जगं हरिसीअ] उसी प्रकार जगद् भानु भगवानने मिथ्यात्व रूपी अन्धकारका निवारण करके ज्ञानके

चन्दन-
बालादि
राज-
कन्यकानां
दीक्षा-
ग्रहणादिकं

आलोक से लोकको आल्हादित किया [भवकूवपडिए भविए णाणरज्जुणा बाहिं उद्धरीअ] भवरूपी कूप में पडे हुए भव्यों को ज्ञानरूपी डोरे से बाहर निकाला [भगवं जलधरोइव अमोहधम्मदेसणामियधाराए पुढविं सिंचीअ] भगवान् ने मेघ की भांति अमोघ धर्मोपदेश की अमृतमयी धारा से पृथ्वी को सिंचन किया [एवं विहारं विहरमाणस्स भगवओ एगचत्तालीसं चाउम्मासा पडिपुण्णा] इस प्रकार विहार करते हुए भगवान के इकतालीस चातुर्मास पूर्ण हुए। [तं जहा–] वे इस प्रकार–[एगो पढमो चाउम्मासो अत्थियगामे] प्रथम चातुर्मास अस्थिक ग्राम में [एगो चंपाए नयरीए] एक चंपानगरी में [दुवे पिट्ठचंपाए नयरीए] दो चातुर्मास पृष्ठ चंपा में [बारस वेसाली णयरी वाणियग्गामनिस्साए] बारह वैशाली नगरी में और वाणिज्य ग्राम में [चउद्दस रायगिह णगर नालंदा णाम य पुरसाहा निस्साए] चौदह राजगृह नगरके अन्तर्गत नालंदा पाडे में [छ मिहिलाए] छह मिथिलामें [३६] [दुवे भद्दिलपुरे] दो भद्दिलपुरमें [३८] [एगो आलं-

भियाए नयरीए] एक आलंभिका नगरीमें [३९] [एगो सावत्थीए नयरीए] एक श्रावस्ति नगरी में [४०] [एगो वज्जभूमिनामगे अणारियदेसे जाओ] और एक वज्रभूमि नामक अनार्य देशमे [४१] हुआ [एवं एगचत्तालिसा चाउम्मासा भगवओ पडिपुण्णा] इस प्रकार भगवान के इकतालीस चातुर्मास व्यतीत हुए। [तए णं जणवयविहारं विहरमाणे भगवं अपच्छिमं बायालीसइमं चाउम्मासं पावापुरीए हत्थिपालरण्णो रज्जुगसालाए जुण्णाए ठिए] उसके बाद जनपद विहार करते हुए भगवान अन्तिम बयालीसवां चौमासा करने के लिए पावापुरीमे हस्तिपाल राजा के पुराने राजभवनमे स्थित हुए ॥४०॥

भावार्थ--'तेणं कालेणं' इत्यादि। उस काल और उस समय में चन्दनवाला भगवान महावीर प्रभु को केवली हुए जानकर दीक्षा ग्रहण करने के लिये उत्कंठित होकर प्रभु के समीप पहुंची। उसने प्रभुको आदक्षिणप्रदक्षिणपूर्वक वन्दन—नमस्कार करके इस

प्रकार निवेद किया 'भगवन्' संसार के भयसे उद्विग्न होकर मैं देवानुप्रिय के समीप प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूं। तब श्रमण भगवान् महावीरने उस चंदनबाला को इस प्रकार कहा–हे देवानुप्रिये तुमको सुख उपजे वैसा करो. उस में विलम्ब मत करो तत्पश्चात् उस चंदनबालाने उग्रकुल, भोगकुल, राजकुल एवं अमात्य आदि की राजकन्याओं के साथ ईशानकोने की ओर गये–वहां जाकर अपने हाथों से स्वयमेव पंचमुष्ठिक लोच किया तदनन्तर शीलसेना देवीने उन सभी को सदोरक मुखवस्त्रिका, रजोहरण, विना दंडे के गोछा, पात्रा एवं वस्त्र दिये, वे सभी कन्याओने निर्ग्रन्थि के वेश को धारण किया, तत्पश्चात् चंदनबाला को आगे करके वे सभी जहां पर श्रमण भगवान् महावीर प्रभु विराजमान थे वहां पर गये। वहां जाकर के श्रमण भगवान् महावीर प्रभु को वंदना की नमस्कार किया, वंदणा नमस्कार करके इस प्रकार कहा–हे भगवन् यह लोक चारों ओर से जल रहा हैं यावत् भगवानने धर्मदेशना दी

चन्दन-
बालादि
राज-
कन्यकानां
दीक्षा-
ग्रहणादिकं

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीरने चंदनबाला को आगे करके वे सभी राजकन्याओं को अपने हाथ से दीक्षा प्रदान की, तदनन्तर चंदनबाला आदि आर्यायें संयमवति हुई यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी बनी। फिर बहुत से उग्रकुल, भोगकुल आदि में जन्मे हुए नरों तथा नारियोंने पांच अणुव्रत एवं सात शिक्षाव्रतवाले बारह प्रकार के गृहस्थधर्म को स्वीकार किया, और उन्होंने श्रावक–श्राविका का पद पाया। तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीरने तीर्थंकर नाम गोत्रका क्षय करने के लिये साधु, साध्वी श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघकी स्थापना करके इन्द्रभूति आदि गणधरों को 'उत्पाद' व्यय और ध्रौव्य, इस प्रकार की त्रिपदी प्रदान की। इस त्रिपदी के आधारसे गणधरों ने द्वादशांग गणिपिटक की रचना की। ग्यारह गणधरों के नौ गण हुए। वे इस प्रकार— सात गणधरोंकी भिन्न भिन्न वाचनाएं होने से सात गण हुए। अकम्पित और अचल भ्राता दोनों की परस्पर समान वाचना होने से एक गण हुआ। इसी प्रकार मेतार्य

चन्दनबालादि राज-कन्यकानां दीक्षा-ग्रहणादिकं

और प्रभास की भी एकसी वाचना होने से एक गण हुआ। इस प्रकार नौ गण हुए। तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर मध्यम पावापुरी से विहार कर अनेक भव्य जीवोंको प्रतिबोध देते हुए जनपद विहार विचरने लगे। इस प्रकार अनेक देशों में विहार करते हुए भगवान् ने लोगों की अज्ञान रूपी दरिद्रता को दूर करके उन्हें ज्ञानादि की सम्पत्तिसे युक्त किया। जैसे आकाश में प्रकाशमान होता हुआ भानु अन्धकार को दूर करके जगत को हर्षित करता है, उसी प्रकार जगद्भानु भगवान् ने मिथ्यात्वरूपी अन्धकार का निवारण करके ज्ञान के आलोकसे लोकको आह्लादित किया। भवरूपी कूप में पडे हुए भव्यों को ज्ञानरूपी डोरे से बाहर निकाला। भगवान् ने मेघ की भांति अमोघ धर्मोपदेश की अमृतमयी धारा से पृथ्वी को सिंचन किया। इस प्रकार विहार करते हुए भगवान् के इकतालीस चातुर्मास पूर्ण हुए। वे इस प्रकार पहला चातुर्मास अस्थिक ग्राम में (१) एक चम्पानगरी में (२) दो चातुर्मास पृष्ठ चम्पा में (४) वारह

वैशालीनगरी और वाणिज्य ग्राम में (१६) चौदह राजगृह नगर में--नालंदा नामक पाडे में (३०) छह मिथिला में (३६) दो भद्दिलपुर में (३८) एक आलंभिका नगरी में (३९) एक श्रावस्ती नगरी में (४०) और एक वज्रभूमि नामक अनार्य देश में (४१) हुआ। इस प्रकार भगवान् के इकतालीस चौमासे व्यतीत हुए। तत्पश्चात् जनपद विहार करते हुए भगवान् अन्तिम बयालीसवां चौमासा करने के लिये पावापुरि में हस्तिपाल राजा के पुराने चुंगीघर (जकातस्थान) में स्थित हुए ॥४०॥

मूलम्--तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया जेणेव पावापुरी नयरी जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० एवं वयासी--पभो निव्वाणसमयं संनिकिट्ठं जाणिऊण सांजलिपुटं निवेययामो गब्भ, जम्म, दक्खा, केवलणाण

समए हत्थोत्तरा नक्खत्तं आसी—अहुणा भासरासी महग्गहो संकंतो हवइ, दो सहस्स वरिसपज्जंतं उदिए पूया सक्कारेइ पवत्तति। घटिका दुयं आउस्सं अभिविड्ढिं कुरू। दुट्ठग्गहो भासरासी महग्गहो सांतो भविस्सइ। भगवं-आह—सक्का मेरूं अंगुलिणा उट्ठाविउं समत्थोह्मि किंतु निरुपम आउसं खण-मवि नूणाहियं करणे न समत्थोह्मि। रत्तीए दिवसं करिउं सक्केमि, दिवसस्स रत्तीं करिउं सक्कोह्मि किंतु निरुवम आउसं खणमवि नूणाहियं करणे न समत्थोह्मि।

कइविहेणं भंते उग्गहे पण्णत्ते, सक्का पंचविहे उग्गहे पण्णत्ते, तं जहा—देविंदोग्गहे रायग्गहे गाहावइ उग्गहे सागारिय उग्गहेसाहम्मिय उग्गहे। जे इमे भंते अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति, एएसि णं अहं उग्गहे अणु-जाणामी तिकट्टु समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता,

आयुषः अल्पत्वदी-र्घत्वकरणे असमर्थत्वम्

तमेव दिव्वं जाणविमाणं दुरूहइ दुरूहित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए। भंते त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—सक्केणं भंते देविंदे देवराया किं सावज्जं भासं भासइ अणवज्जं भासं भासइ, गोयमा! सावज्जंपि भासं भासइ, अणवज्जंपि भासं भासइ, से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ सावज्जंपि जाव अणवज्जंपि भासं भासइ, गोयमा! जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं अणिज्जूहित्ता णं भासं भासइ, ताहे णं सक्के देविंदे देवराया सावज्जं भासं भासइ, जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं निज्जूहित्ताणं भासं भासइ ताहे णं सक्के देविंदे देवराया अणवज्जं भासं भासइ ॥४१॥

भावार्थ—उसकाल और उससमय देवेन्द्र देवराज शक्र जहां पर पावापुरी नगरी थी एवं

जहां पर श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे वहां गया वहां जाकरके श्रमण भगवान् महावीरको वंदनाकी नमस्कार किया वंदना नमस्कार करके श्रमण भगवान् महावीर प्रभुसे धर्मका श्रवण कर उसे हृदयमें धारण करके हृष्ट तुष्ट होकर प्रभुको इस प्रकार कहा हे प्रभो निर्वाणका समय समीपवर्त्ति जानकर हाथ जोडकर प्रार्थना करता हूं गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान उत्पत्ति के समय हस्तोत्तरा नक्षत्र था, अब भासराशी नाम का महाग्रह संक्रांत हुवा है दो हजार वर्ष पर्यन्त आपके साधु साध्वीयोंका पूजा सत्कार प्रवर्तेगा दो घटि की आयुष्यकी वृद्धि कीजिए क्यों की तब तक भस्मराशी महाग्रह शांत हो जायगा भगवान ने कहा—हे शक्र! मैं मेरु पर्वतको एक अंगुलीसे उठाने में शक्तिमान् हूं, परंतु निरुपम आयुष्य एकक्षण भी न्यून अथवा अधिक करनेमें समर्थ नहीं हूं, रात्रि मे दिवस करनेको समर्थ हूं, और दिवस में रात्री बनाने में समर्थ हूं परंतु निरुपम आयुष्य एकक्षण भरका भी न्यूनाधिक करने में समर्थ नहीं हूं।

आयुषः अल्पत्वदीर्घत्वकरणे असमर्थत्वम्

हे भगवन् उपग्रह कितने प्रकार का है? हे शक्र! उपग्रह पांच प्रकार का कहा गया है जैसे देवेन्द्र उपग्रह, राजग्रह गाथापति उपग्रह सागारिक उपग्रह साधर्मि उपग्रह ये जो श्रमण निर्ग्रन्थ विचरते हैं उनको हम उपग्रह–आज्ञा, देता हूं ऐसा कह कर श्रमण भगवान् महावीरको वंदना की नमस्कार किया वंदना नमस्कार करके वही दिव्य यानविमान में बैठकर जिस दिशासे आये थे वहीं पर चले गये तत्पश्चात् हे भदन्त! इस प्रकार संबोधन करके भगवान् गौतम स्वामीने भगवान्‌को वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा–हे भगवान् देवेन्द्र देवराज सावद्य भाषा बोलते हैं अथवा निरवद्य भाषा बोलते हैं? हे गौतम! सावद्य भाषा भी बोलते हैं निरवद्य भाषा भी बोलते हैं हे भगवन् आप ऐसा किस हेतु से कहते है कि सावद्य और निरवद्य दोनों प्रकारकी भाषा देवेन्द्र बोलते हैं? हे गौतम! जब देवेन्द्र देवराज शक्र मुहपत्ति न बांधकर सूक्ष्मकाय जीव की हिंसा हो इस प्रकार से बोलते हैं तब शक्र सावद्य भाषा बोलते हैं और

जब देवेन्द्र देवराज शक्र मुहपत्ती अथवा उत्तरासंग रखकर सूक्ष्मकाय की रक्षा हो इस प्रकार से बोलते हैं तब देवेन्द्र देवराज निरवद्य भाषा बोलते हैं ॥४१॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आसन्नं निय निव्वाणतिहिं अणुहविय मज्झ पेमाणुरागरत्तस्स अस्स मम निव्वाणं दट्ठूण केवलनाणुप्पत्ति पडिबंधो मा भवउ त्ति कट्टु गोयमसामिं देवसम्ममाहण पडिवोहणट्ठं आसन्न गामंसि दिवसे पेसीअ। तेणं समणं भगवं महावीरे तीसं वासाइं आगारवासमज्झे वसिअ साइरेगाइं दुवालसवासाइं छउमत्थ-परियाए, देसूणाइं तीसं वासाइं केवलिपरियाए एवं बायालीसं वासाइं सामण्ण परियाए वसिय, बावत्तरिवासाइं सव्वाउयं पालइत्ता खीणे वेयणिज्जाउय-नामगुत्तकम्मे इमीसे ओसप्पिणीए दूसमसुसमाए समाए बहुवीइक्कंताए तीहिं

बासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहि सेसेहि पावाए णयरीए हत्थिवालस्स रण्णो रज्जुगसालाए जुण्णाए तस्स दुचत्तालीस इमस्स वासावासस्स जे से चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे कत्तियबहुले, तस्स णं कत्तियबहुलस्स पन्नरसी पक्खेणं जा सा चरमा रयणी, तीए अद्धरत्तीए एगे अबीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणए णं संपलियंकनिसण्णे दस अज्झयणाइं पावफलविवागाइं, दस अज्झयणाइं पुण्णफलविवागाइं कहित्ता, छत्तीसं च अपुट्ठवागरणाइं वागरित्ता एवं छप्पण्णं अज्झयणाइं कहित्ता पहाणं नाम मरुदेवज्झयणं विभावेमाणे अंतोमुहुत्ताउसेसे जोगे निरुंभमाणे लोउज्जोए सिया पहू सेलेसिं पडिवज्जइ, तया कम्मं खवित्ताणं सिद्धिगइं गच्छइ नीरओ, सिद्धिं गमित्ता लोगमत्थयत्थो हवइ सासओ। एवं कालगए विइक्कंते समुज्जाए। छिन्नजाइ जरामरणबंधणे सिद्धे

बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खपहीणे जाए। तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदे नामं दोच्चे संवच्छरे पीइवद्धणे मासे नंदिवद्धणे पक्खे। अग्गिवेस्से उवसमित्ति अवरे नामे दिवसे, देवाणंदा निरतित्ति अवरणामा रयणी। अच्चे लवे, मुहुत्ते पाणू, सिद्धे थोवे, नागे करणे, सव्वट्ठसिद्धे मुहुत्ते साइनक्खत्ते चंदेण सद्धिं जोगमुवागए यावि होत्था।

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए तं रयणिं च णं बहूहिं देवेहि देवीहि य ओवयमाणेहि य उप्पयमाणेहि य देवुज्जोए देवसण्णिवाए देवकहकहे उप्पिंजलगभूए यावि होत्था ॥४२॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आसन्नं नियनिव्वाणतिहिं अणुहविय] उस काल और उस समयमें श्रमण भगवान महावीरने अपने

निर्वाण का दिन समीप जानकर [मज्झ पेमाणुरागरेत्तस्स अस्स 'मम निव्वाणं दट्ठूण केवलणाणुप्पत्तिपडिबंधो मा भवउ' त्ति] मेरे प्रेम में अनुरक्त इन्द्रभूति को मेरा निर्वाण देखकर केवलज्ञान की उत्पत्ति में विघ्न न हो, ऐसा विचार कर [गोयमसामिं देवसम्म माहणपडिवोहणट्ठं आसन्नगामम्मि दिवसे पेसीअ] गौतमस्वामि को देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए पास के एक ग्राम में दिन में भेज दिया। [तेणं समणे भगवं महावीरे तीसंवासाइं अगारवासमज्झे वसिय] वे श्रमण भगवान महावीर तीस वर्ष गृहवास में रहें [साइरेगाइं दुवालसवासाइं छउमत्थपरियाए] कुछ समय अधिक बारह वर्ष तक छद्मस्थ पर्याय में रहे। [देसूणाइं तीसं केवलिपरियाए] तथा कुछ कम तीस वर्ष केवली पर्याय विचरे [एवं बायालिसं वासाइं सामण्णपरियाए वसिय] इस प्रकार बयालीस वर्ष श्रमण पर्याय में रहकर [बावत्तरिवासाइं सव्वाउयं पालयित्ता] एवं बहत्तर वर्ष की समग्र आयुको भोगकर [खीणे वेयणिज्जाउयनामगुत्तकम्मे] तथा

भगवतो निर्वाण-समय-चरित्रम्

वेदनीय आयुष्क नाम और गोत्र कर्म के क्षीण होने पर [इमीसे ओसप्पिणीए दूसमसुसमाए समाए बहुवीइक्कंताए तीहिं वासेहिं अद्धनवमेहिं य मासेहि सेसेहि] इस अवसर्पिणी काल के दुष्षम सुषम आरे का अधिक भाग बीत जाने पर, तीन वर्ष और साढे आठ मास शेष रहने पर [पावाए णयरीए हत्थिवालस्स रण्णो रज्जुगसालाए जुण्णाए] पावापुरी में राजा हस्तिपाल के जीर्ण चुंगीघर में [तस्स दुचत्तालीसइमस्स वासा वासस्स जे से चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे कत्तियबहुले तस्स णं कत्तियबहुलस्स पण्ण-रसी पक्खेणं जा सा चरमा रयणी] बयालीसवें चौमासे के चौथे मास और सातवें पक्ष में कार्तिक मास के कृष्णपक्ष में और कार्तिक कृष्णपक्ष की अमावस्या के दिन [ताए अद्धरत्तीए एगे अबीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं संपलियंकणिसण्णे] अन्तिम रात्रि के अर्द्धभाग में अकेले निर्जल षष्ठ भक्त की तपस्या करके पद्मासन से विराजमान हुए। [दस अज्झयणाइं पावफलविवागाइं] उस समय दुःख विपाक के दस अध्ययन पाप

फल—विपाक के और [दस अज्झयणाइं पुण्णफलविवागाइं कहित्ता] और सुखविपाक के दस अध्ययन—पुण्य के फल—विपाक के कहकर [छत्तीसं च अपुट्ठवागरणाइं वागरित्ता एवं छप्पण्णं अज्झयणाइं कहित्ता] तथा उत्तराध्ययन के छत्तीस अध्ययन विना पूछे प्रश्नों का उत्तर देकर—इस प्रकार छप्पन अध्ययन फरमाकर [पहाणं नाम मरुदेवज्झयणं विभावेमाणे अंतोमुहुत्तायुसेसे] प्रधान नामक मरुदेव के अध्ययन का प्ररूपण करते हुए अन्तर्मुहूर्त्त आयुशेष रहने पर [जोगे निरुंभमाणे] मन वचन एवं कायके योग का निरोध करने पर [लोउज्जोए सिया] तीनों लोक में प्रकाश हुवा, [पहू सेलेसिं पडिवज्जइ] प्रभुने शैलेशी अवस्था प्राप्त की [तया कम्मं खवित्ता सिद्धिगइं गच्छइ] तब आठों कर्म को खपा करके कर्मरजरहित सब कर्मों से मुक्त होकर मोक्षगति को प्राप्त की [सिद्धिगइं गमित्ता] सिद्धिगति को प्राप्त करके [लोगमत्थयत्थो] लोक के अग्रभाग पर स्थित रहते हुए [सिद्धो हवइ सासओ] शाश्वत नित्यपने से सिद्ध

हो कर रहते हैं [कालगए विइक्कंते समुज्जाए] कालधर्म को प्राप्त हुए [छिन्न जाइ जरा-मरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे जाए] संसार से निवृत्त हुए, पुनरागमन–रहित उर्ध्वगति–कर गये, जन्म जरा और मरण के बन्धन से रहित हो गये। सिद्ध हुए, बुद्ध हुए, मुक्त हुए, परमशांति को प्राप्त हुए, और समस्त दुःखों से रहित हुए।

[तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदे नामं दोच्चे संवच्छरे] उस काल और उस समय में चन्द्रनामक द्वितीय संवत्सर था [पीइवद्धणे मासे नंदिवद्धणे पक्खे] प्रीतिवर्द्धन मास था, नन्दिवर्द्धन पक्ष था [अग्गिवेस्से उवसमित्ति अवरनामे दिवसे] अग्निवेश्य–जिसका दूसरा नाम उपशम है दिन था [देवानंदा निरतित्ति अवरनामा रयणी] देवानन्दा, अपरनाम निरति नामक रात्रिथी [अच्चे लवे] अर्द्ध नामक लव था [मुहुत्ते पाणू] मुहूर्त नामक प्राण था [सिद्धे थोवे] सिद्ध नामक स्तोक था [नागे करणे] नाग नामक करण था

[सव्वट्ठसिद्धे मुहुत्ते] सर्वार्थसिद्ध नामक मुहूर्त्त था [साई नक्खत्ते चंदेण सद्धिं जोगमुवागए यावि होत्था] और स्वाती नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग था [जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए] जिस रात्रि में श्रमण भगवान महावीर का निर्वाण हुआ [तं रयणिं च णं बहुहिं देवेहि देवीहि य ओवयमाणेहि य उप्पयमाणेहि य देवुज्जोए देवसण्णिवाए देवकहकहे उप्पिंजलगभूए यावि होत्था] उस रात्रि में बहुत से देवों और देवियों के नीचे आने और ऊपर जाने के कारण देव-प्रकाश हुआ, देवों का कल कल हुआ। देवों की बहुत बडी भीड लगी ॥४२॥

भावार्थ—उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीरने अपने निर्वाण के दिन समीप जानकर 'मेरे उपर स्नेह रखनेवाले गौतम को मेरा निर्वाण देखकर केवलज्ञान की प्राप्ति में विघ्न न हो' इस प्रकार विचार कर गौतमस्वामी को देवशर्मा नामक ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिये पावापुरी के समीपवर्ती किसी ग्राम में दिनके

पीछले समय भेज दिया। श्रमण भगवान् महावीर तीस वर्ष तक गृहवास में रहे कुछ समय अधिक बारह वर्ष पर्यन्त छद्मस्थावस्था में रहे। और कुछ समय कम तीस वर्ष केवली पर्याय में रहे। इस प्रकार बयालीस वर्षों तक चारित्र पर्याय में रहे। जन्मकाल से आरंभ करके समग्र आयु बहत्तर वर्ष की भोगी। तत्पश्चात् वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र नामक चार अघातिक कर्मों का क्षय हो जाने पर इसी अवसर्पिणी काल के दुष्षम–सुषम नामक चौथे आरे का अधिक भाग बीत जाने पर और सीर्फ तीन वर्ष तथा साढे आठ महीने शेष रहने पर पावापुरी में हस्तिपाल राजा की पुरानी शुल्क-शाला में बयालीसवें चौमासे के चौथे मास और सातवें पक्ष में कार्तिक मासके कृष्ण-पक्ष में और कार्तिक कृष्णपक्ष की अमावस्या तिथि में, अन्तिम रात्रि के अर्ध भाग में अर्थात् आधी रात के समय में अकेले–दूसरे मोक्षगामी जीव के साथ के विना ही जलपान रहित बेले की तपस्या के साथ पद्मासन से विराजमान हुए। उस

समय विपाक सूत्र के प्रथम स्कन्ध नाम से प्रसिद्ध, पाप का फल विपाक दर्शानेवाले दस दुःख विपाक नामक अध्ययनों को तथा विपाकसूत्र के द्वितीय अध्ययन के नाम से प्रसिद्ध पुण्य का फल बतलानेवाले दस सुख विपाक नामक अध्ययनों को कह कर और उत्तराध्ययन के नाम से प्रसिद्ध छत्तीस अध्ययन रूप अपृष्ट व्याकरणों को अर्थात् पूछे विना ही किये गये व्याकरणों को कहकर और इस प्रकार सब छप्पन अध्ययन फरमाकर प्रधान नामक मरुदेव अध्ययन का प्ररूपण करते हुए अन्तर्मुहूर्त्त आयु शेष रहने पर भगवान् ने मन वचन एवं काय के योग का निरोध करने पर तीनों लोगो में प्रकाश हुवा। प्रभुने शैलेशी अवस्था प्राप्त की तव आठों कर्मों को खपाकर कर्म रजरहित—सब कर्मों से मुक्त होकर मोक्षगति को प्राप्त की सिद्धि गति को प्राप्त करके लोकके अग्रभाग पर स्थित रहते हुए शाश्वत—नित्यरूप से सिद्ध होकर रहते हैं। कालधर्म को प्राप्त हुए, अर्थात् कायस्थिति और भवस्थिति से

मुक्त हुए पुनरागमन रहित गति को प्राप्त हुए। जन्म और मरण के बन्धन से मुक्त हुए, परमार्थ को साधकर सिद्ध हुए, तत्वार्थ को जानकर बुद्ध हुए और समस्त कर्मों के समूह से मुक्त हुए, उनके समस्त दुःख दूर हो गये। किसी भी प्रकार का संताप न रहने से परम शांति को–निर्वाण को प्राप्त हुए, और इस कारण समस्त शारीरिक और मानसिक दुःखों से रहित हो गये। उस काल और उस समय में अर्थात् भगवान् के निर्वाण के अवसर पर चन्द्र नामक द्वितीय संवत्सर था। प्रीतिवर्धन नामक मास, नन्दिवर्धक नामक पक्ष, उपशम जिस का दूसरा नाम है ऐसा अग्निवेश्य नामक दिवस था। देवानन्दा, जिसका दूसरा नाम निरति है, रात्रि थी। अर्ध नामक भव, मुहूर्त्त नामक प्राण, सिद्ध नामक स्तोक, नाग नामक करण, सर्वार्थसिद्ध नामक मुहूर्त्त था और स्वाती नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का संबंध को प्राप्त था। जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ उस रात्रि में बहुत से देवों और देवियों के नीचे आने और ऊपर जाने से देवप्रकाश

हुआ, देवों का संगम हुआ, देवों का कलकल नाद हुआ और देवों की बहुत बडी भीड भी हुई ॥४२॥

मूलम्—तए णं से गोयमसामी समणस्स भगवओ महावीरस्स निव्वाणं सुणिय वज्जाहए विव खणं मोणमोलंबिय थद्धो जाओ। तओ पच्छा मोह-वसंगओ सो विलवइ—भो! भो! भदंत महावीर! हा! हा! वीर! एयं किं कयं भगवया, जं चरणपज्जुवासगं मं दूरे पेसिय मोक्खं गए। किमहं तुम्हं हत्थेण गहियं अचिट्ठिस्सं, किं देवाणुप्पियाणं निव्वाणविभागं अपत्थिस्सं, जे णं मं दूरे पेसीअ। जइ दीणसेवगं मं सएणं सद्धिं अनइस्सं तो किं मोक्ख-णयरं संकिण्णं अभविस्सं? महापुरिसा उ सेवगं विणा खणंपि न चिट्ठंति, भदंतेण सा नीइ कहं विसरिया। इमा पवित्ती विपरिया जाया। सह णयणं

ताव दूरे चिट्ठउ परं अंतसमए ममं दिट्ठिओऽवि दूरे पक्खिवीअ। को अवराहो मए कओ जं एवं कयं। अहुणा को ममं गोयमगोयमेत्ति कहिय संबोहिस्सइ, कमहं पण्हं पुच्छिस्सामि, को मे हिययगयं पण्हं समाहिस्सइ। लोए मिच्छंधयारो पसरिस्सइ। तं को णं अवाकरिस्सइ। एवं विलवमाणे गोयमसामी मनंसि चिंतीअ सच्चं जं वीयरागा रागरहिया चेव हवंति। जस्स नामं चेव वीयरागो से कंसि रागं करेज्जा! एवं मुणिय ओहिं पउंजइ। ओहिणा भवकूवपाडिणं मोहकलियं वीयरागोबालंभरूवं नियावराहं जाणिय तं खामिय पच्छायावं करेइ अणुचिंतेइ य को मम? अहं कस्स? एगो एव अप्पा आगच्छइ गच्छइ, य न को वि तेणं सद्धिं आगच्छइ गच्छइ य।

'एगो हं नत्थि मे कोइ नाहमन्नस्स कस्स वि।
एवमप्पाणमणसा, अदीणमणुसासए ॥

वयणेण एगत्तभावणा भावियस्स गोयमसामिस्स कत्तियसुक्कपाडिवयाए दिणयरोदयसमयंसि चेव लोयालोयालोयणसमत्थं निव्वाणं कसिणं पडिपुण्णं अव्वावाहयं निरावरणं अणंतं अणुत्तरकेवलवरणाणदंसणं समुप्पण्णं। तया भवणवइवाणमंतरजोइसियविमाणवासीहि देवदेवीविंदेहिं सय सय इड्ढी समिद्धीहि आगंतूण केवलमहिमा कया। तेलुक्कम्मि अमंदाणंदो संजाओ। महापुरिसाणं सव्वावि चेट्ठा हियहरा हवंति। तहाहि—अहंकारो वि बोहस्स, रागो वि गुरुभत्तिओ। विसाओ केवलस्सासी, चित्तं गोयमसामिणो

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए, सा रयणी देवेहिं उज्जे-

गौतम-
स्वामिनः
विलापः
केवलज्ञान-
प्राप्तिश्च

विया। तप्पभियं सा रयणी लोए दीवालियत्ति पसिद्धा जाया। नवमल्लई नवलेच्छइ कासी कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो संसारपारकरं पोसहोववासदुगं करिंसु। बीए दिवसे कत्तियसुद्धपडिवयाए गोयमसामिस्स केवलमहिमा देवेहिं कया, तेणं तं दिवसं नूयणवरिसारंभदिवसत्तणेण पसिद्धं जायं। भगवओ जेट्ठभाउणा नंदिवद्धणेण भगवं मोक्खगयं सोच्चा सोगसायरे निमज्जिएण चउत्थं कयं। सुदंसणाए भइणीए तं आसासिय नियगिहे आणाविय चतुत्थस्स पारणगं कारियं तेण सा कत्तियसुद्धविइया भाउबीयत्ति पसिद्धिं पत्ता ॥४३॥

शब्दार्थ—[तए णं से गोयमसामी समणस्स भगवओ महावीरस्स निव्वाणं सुणिय] उसके बाद गौतमस्वामीने श्रमण भगवान महावीर का निर्वाण हुआ सुनकर [वज्जाहए विव खणं मोणमवलंबिय थद्धो जाओ] क्षणभर मौन रहकर वज्राहत की तरह सुन्न हो

गये [तओ पच्छा मोहवसंगओ सो विलवइ] उसके बाद मोह के वशीभूत होकर वे विलाप करने लगे [भो ! भो ! भदंत महावीर ! हा ! हा ! वीर ! एयं किं कयं भगवया जं चरणपज्जुवासगं मं दूरे पेसिय मोक्खं गए] हे भगवन् ! महावीर ! हा ! हा ! वीर ! यह आपने क्या किया ? मुझ चरण सेवक को दूर भेज कर आप मोक्ष चले गये ! [किमहं हत्थेण गहिय अच्चिट्ठिस्सं] मैं क्या आपका हाथ पकड कर बैठ जाता ? [किं देवाणुप्पियाणं निव्वाणविभागं अपत्थिस्सं] क्या देवानुप्रिय के मोक्ष में हिस्सा बटाने की मांग करता [जे णं मं दूरे पेसीअ] जिससे मुझे दूर भेज दिया [जइ दीणसेवगं मं सएण सद्धिं अनइस्सं तो किं मोक्खणयरं संकिण्णं अभविस्सं ?] यदि इस दीन सेवक को भी साथ लेते जाते तो मोक्ष नगर संकडा हो जाता—वहां जगह नहीं मिलती ? [महापुरिसाउ सेवगं विणा खणंपि न चिट्ठंति] महापुरुष सेवक के बिना क्षणभर भी नहीं रहते। [भदंतेण सा नीई कहं विसरिया] आपने यह नीति कैसे भूला दी [इमा

गौतम-स्वामिनः विलापः केवलज्ञान-प्राप्तिश्च

पवित्ती विपरिया जाया] यह तो विपरीत ही बात हुइ ! [सह णयणं ताव दूरे चिट्ठउ परं अंतसमए ममं दिट्ठीओऽवि दूरे पक्खित्तीअ] अरे साथ लेजाना तो दूर रहा किन्तु अन्तिम समय में मुझे नजरों से भी ओझल फैंक दिया [को अवराहो मए कओ जं एवं कयं] मैंने ऐसा क्या अपराध किया था जो आपने ऐसा किया [अहुणा को ममं गोयमगोयमेत्ति कहिय संबोहिस्सइ] अब गौतम ! गौतम कह कर कौन मुझे संबोधन करेगा ? [कमहं पण्हं पुच्छिस्सामि] अब मैं किससे प्रश्न पूछूंगा [को मे हिययगयं पण्हं समाहिस्सइ] कौन मेरे हृदयगत प्रश्न का समाधान करेगा ? [लोए मिच्छंधयारो पसरिस्सइ तं कोणं अवाकरिस्सइ] लोक में मिथ्यात्व का जो अंधकार फैलेगा, उसे कौन दूर करेगा ? [एवं विलवमाणे गोयमसामी मणंसि चिंतीअ] इस प्रकार विलाप करते करते गौतमस्वामीने मन में विचार किया [सच्चं जं वीयरागा रागरहिया चेव हवंति] सच है वीतराग, रागरहित ही होते हैं [जस्स नामं चेव वीयरागो से कंसि रागं करेज्जा ?]

गौतम-स्वामिनः विलापः केवलज्ञान-प्राप्तिश्च

जिसका नाम ही वीतराग है वह किस पर राग करेगा ? [एवं मुणिय ओहिं पउंजइ] यह जानकर गौतमस्वामीने अवधिज्ञान का प्रयोग किया [ओहिणा भवकूवपाडिणं मोहकलियं वीयरागोवालंभरूपं नियावराहं जाणिय तं खामिय पच्छातावं करेइ] अवधिज्ञान से भवकूप में गिरानेवाला, मोहयुक्त और वीतराग को उपालंभ देने रूप अपने अपराध को जानकर और खमाकर पश्चात्ताप किया और विचार किया [को मम ?] मेरा कौन है ? [अहं कस्स ?] मैं किसका ? [एगो एव अप्पा आगच्छइ गच्छइ य] अकेला ही आत्मा आता है और अकेला ही जाता है [न कोवि तेण सद्धिं आगच्छइ गच्छइ य] न कोइ उसके साथ आता है और न जाता है। कहा भी है [एगो हं नत्थि मे कोइ, नाहमन्नस्स कस्स वि] मैं अकेला हूं, मेरा कोई नही है और न मैं ही किसी अन्य का हूं [एवमप्पाणमणसा अदीणमणुसासए] इस प्रकार मन से अपने दैन्य रहित–उदार आत्मा का अनुशासन करें। [वयणेण एगत्तभावना भावियस्स गोयमसामिस्स] इत्यादि

वचन से एकत्वभावना से भावित गौतमस्वामी को [कत्तियसुक्कपडिवयाए दिणयरोदय-समयंमि चेव लोयालोयणसमत्थं निव्वाणं कसिणं पडिपुण्णं अव्वावाहयं निरावरणं अणंतं अणुत्तरकेवलवरणाणदंसणं समुप्पण्णं] कार्तिक शुक्ला प्रतिपद के दिन सूर्योदय के समय लोक और अलोक को देखने में समर्थ, निर्वाण का कारण सब पदार्थों को साक्षात्कार करनेवाला प्रतिपूर्ण अव्याहत, निरावरण, अनंत और अनुत्तर श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हो गया। [तया भवणवइ वाण-मंतरजोइसिय विमाणवासीही देवदेवीविंदेहि सयसयइड्ढीसमिद्धेहि आगंतूण केवल-महिमा कया] उस समय भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क और विमानवासी देवों और देवियों के समूहने अपनी ऋद्धि और समृद्धि के साथ आकर केवलज्ञान की महिमा की [तेलुक्कम्मि अमंदाणंदो संजाओ] तीनों लोक में अमन्द आनंद हो गया [महापुरि-साणं सव्वावि चेट्ठा हियकरा एव हवंति] महापुरुषों की सभी चेष्टाएं हितकर ही होती

गौतम-स्वामिनः विकापः केवलज्ञान-प्राप्तिश्च

है [तहा हि] कहा भी है–[अहंकारो वि बोहस्स रागो वि गुरुभत्तिओ] आश्चर्य है कि गौतमस्वामी का अहंकार बोध प्राप्ति का कारण बन गया राग गुरुभक्ति का कारण बना [विसाओ केवलस्सासी चित्तं गोयमसामिणो] और शोक केवलज्ञान का कारण बन गया।

गौतम-स्वामिनः विलापः केवलज्ञान-प्राप्तिश्च

[जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए] जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर मोक्ष पधारे [सा रयणी देवेहिं उज्जोविया] उस रात्रि में देवों ने खूब प्रकाश किया [तप्पभिइं सा रयणी लोए दीवालियत्ति पसिद्धा जाया] तभी से वह रात्रि लोक में दीपावली के नाम से प्रसिद्ध हुई। [नवमल्लइ नवलेच्छइ कासीकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो संसारपारकरं पोसहोववासदुगं करिंसु] काशी देश के नौ मल्लकी और कोशल देश के नौ लेच्छकी इस प्रकार अठारहों गणराजाओं ने संसार से पार करनेवाले दो दो पौषधोपवास किये। [बीए दिवसे कत्तियसुद्धपडिवयाए गोयमसामिस्स केवल

महिमा देवेहिं कयं] दूसरे दिन कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को देवों ने गौतमस्वामी के केवलज्ञान की महिमा की [तेणं तं दिवसं नूयणवरिसारंभदिवसत्तणेण पसिद्धं जायं] इस कारण वह दिन नूतन वर्षारंभ का दिन प्रसिद्ध हुआ [भगवओ जेट्ठ भाऊणा नंदिवद्धणेण भगवं मोक्खगयं सोच्चा सोगसागरे निमज्जिएण चउत्थं कयं] भगवान को मोक्ष गया सुनकर शोक सागर में डूबे हुए भगवान के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन ने उपवास किया। [सुदंसणाए भइणीए तं आसासिय नियगिहे आणाविय चउत्थस्स पारणगं कारियं तेण सा कत्तियसुद्धबिइया भाउबीयत्ति पसिद्धिं पत्ता] सुदर्शना बहन ने उनको सान्त्वना देकर और अपने घर पर लाकर उपवास का पारणा करवाया। इस कारण कार्तिक शुक्ला द्वितीया (भाइदूज) के नाम से प्रसिद्ध हुइ ॥४३॥

भावार्थ—तब गौतमस्वामी श्रमण भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ सुनकर, मानो वज्र से आहत हुए हों, इस प्रकार क्षणभर मौन रह कर सुन्न हो गये। तत्पश्चात्

गौतमस्वामिनः विलापः केवलज्ञानप्राप्तिश्च

मोह के वश होकर वह विलाप करने लगे, हे भगवन् ! महावीर ! हा ! हा ! वीर आपने यह क्या किया ? मुझ चरण सेवक को दूर भेज दिया और आप स्वयं मोक्ष चल दिये। क्या मैं आप को हाथ पकड कर बैठ जाता ? क्या आपके मोक्ष में हिस्सा मांग लेता ? फिर क्यों मुझे दूर भेज दिया ? अगर मुझ गरीब सेवक को आप साथ लेते जाते तो क्या मोक्षनगर में जगह न मिलती ? महापुरुष सेवक के बिना क्षण भर भी नहीं रहते, भदन्त ने यह परिपाटी कैसे भुला दी ? यह तो उल्टी ही बात हो गई। खेर, साथ ले जाना तो दूर रहा, मुझे आंखों से भी ओझल फेंक दिया। क्या अपराध किया था मैंने, जिससे आपने ऐसा किया ? अब आप देवानुप्रिय के अभाव में कौन 'गोयमा, गोयमा' कह कर मुझे संबोधन करेगा ? किससे मैं प्रश्न पूछूंगा ? कौन मेरे मनके प्रश्न का समाधान करेगा ? लोक में मिथ्यात्व का अंधकार फैल जायगा, अब कौन उसे दूर करेगा ? इस प्रकार विलाप करते हुए गौतमस्वामी ने मनमें विचार किया—सत्य है,

गौतम-
स्वामिनः
विलापः
केवलज्ञान-
प्राप्तिश्च

वीतराग, राग से वर्जित होते हैं। जिसका नाम ही वीतराग हो वह किस पर राग रक्खेगा? किसी पर भी नहीं। ऐसा जानकर गौतमस्वामीने अवधिज्ञान का उपयोग लगाया अवधिज्ञान का उपयोग से उन्हें मालूम हुआ कि यह भगवान् को उपालंभ देना मेरा अपराध है। यह अपराधभवरूपी कूप में गिरानेवाला और मोहजनित है। यह जानकर उन्होंने अपने अपराध के लिये पश्चात्ताप किया और विचार कियाकि संसार में मेरा कौन है? और मैं किसका हूं। क्योंकि यह आत्मा न किसी दूसरे आत्मा के साथ आता है, न साथ जाता है। कहा भी है–'मैं अकेला हूं–अद्वितीय हूं। मेरा कोई नहीं है और मैं किसी का नहीं हूं। इस प्रकार मनसे अपने दैन्य रहित उदार आत्मा का अनुशासन करे।' इस प्रकार एकत्व भावना से प्रभावित हुए गौतमस्वामी को कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को, ठीक सूर्योदय के समय ही लोक और अलोक को जानने देखने में समर्थ, मोक्ष के कारणभूत, समस्त पदार्थों कों प्रत्यक्ष करनेवाले, अविकल–

गौतम-
स्वामिनः
विलापः
केवलज्ञान-
प्राप्तिश्च

सम्पूर्ण, सब प्रकारकी रुकावटों से रहित, सब प्रकारके आवरणों से रहित, सब प्रकार की द्रव्य क्षेत्र काल भाव संबन्धी परिधियों से रहित तथा शाश्वतस्थायी और सर्वोत्तम केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हो गया। भगवान् गौतम सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो गये। उस समय भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक और विमानवासी चारों निकायों के देवों और देवियों ने अपनी–अपनी ऋद्धि–समृद्धि के साथ गौतम स्वामी के पास आकर केवल ज्ञानका महोत्सव मनाया। उस समय तीनों लोकों में खूब आनन्द ही आनन्द हो गया। महापुरुषों की सभी क्रियाएं हितकारिणी ही होती हैं। देखिए न, गौतमस्वामी को अपनी विद्याका अहंकार हुआ तो उससे उन्हें सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई। अर्थात् अहंकार से प्रेरित होकर वे भगवान् को पराजित करने चले तो सम्यक्त्व प्राप्त हुआ। इसी प्रकार उनका राग भाव गुरुभक्ति का कारण बना। भगवान् के वियोग से उत्पन्न हुआ खेद केवलज्ञान की प्राप्तिका कारण हो गया। इस प्रकार

गौतम-
स्वामिनः
विलापः
केवलज्ञान-
प्राप्तिश्च

गौतम स्वामीका समग्र चरित्र आश्चर्यजनक है—अनोखा है। जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालधर्मको प्राप्त हुए, वह रात्रि देवोंने दिव्य प्रकाशमय बनादी थी, तभी से वह रात्रि 'दीपावलिका' इस नाम से प्रसिद्ध हुई। मल्लकी—जाति के काशी-देशके नौ गणराज्यों ने तथा लेच्छकी जातिके कोशलदेशके नौ गणराजाओंने, इस प्रकार अढारहों गणराजाओं ने संसार जन्ममरणका अन्त करने वाले दो–दो पोषधोपवास किये। पोष अर्थात् धर्मकी पुष्टि करने वाला उपवास पोषधोपवास कहलाता है। अथवा धर्मका पोषण करनेवाला, अष्टमी आदि पर्व–दिनों में किया जानेवाला, आहार आदिका त्याग करके जो धर्मध्यानपूर्वक निवास किया जाता है, वह पोषधोपवास कहलाता है। दूसरे दिन अर्थात् कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदा को देवोंने गौतमस्वामी के केवलज्ञान प्राप्ति का महोत्सव मनाया था। इस कारण वह दिन—कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपद् नवीन वर्षके आरंभका दिन कहलाया। भगवान् महावीरके ज्येष्ट भ्राता नन्दिवर्धनने, भगवान् को

गौतम-
स्वामिनः
विलापः
केवलज्ञान-
प्राप्तिश्च

मोक्ष प्राप्त हुआ सुनकर, शोकके सागर में निमग्न होकर उपवास किया था, तब नन्दिवर्धनकी बहिन सुदर्शनाने उन्हें सान्त्वना देकर और अपने घरमें लाकर उपवास का पारणा करवाया, इस कारण–कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया 'भाई-दुजा' के नामसे विख्यात हो गई ॥४३॥

गौतम-स्वामिनः विलापः केवलज्ञान-प्राप्तिश्च

## भगवओ परिवारवण्णणं

मूलम्–तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स इंद-भूईप्पभिईणं (१४००) चउद्दस सहस्ससाहूणं उक्किट्ठा साहूसंपया होत्था। चंदणबालापभिईणं (३६०००) छत्तीस समणीसाहस्सीणं उक्किट्ठा समणी-संपया। संखपोक्खलिप्पभिइणं (१५९०००) एगूणसट्ठिसहस्सऽभहियाणं एग-सयसहस्स समणोवासगाणं उक्किट्ठा समणोवासगसंपया। सुलसा रेवईपभिईणं

(३१८०००) अट्ठारस सहस्सब्भहियाणं तिसयसहस्स समणोवासियाणं उक्किट्ठा समणोवासियसंपया। अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसन्निवाईणं जिणस्सेव अवितहं वागरमाणाणं तिसयाणं चउद्दसपुव्वीणं उक्किट्ठा चउद्दसपुव्वि संपया। अइसयपत्ताणं तेरससयाणं ओहिनाणीणं उक्किट्ठा ओहिनाणि संपया। उप्पण्णवरणाणदंसणधराणं सत्तसयाणं केवलनाणीणं उक्किट्ठा केवलनाणिसंपया। अदेवाणं देविड्ढिपत्ताणं सत्तसयाणं वेउव्वीणं उक्किट्ठा वेउव्वियसंपया। अड्ढाइज्जेसु दीवेसु दोसु य समुद्देसु पज्जत्तगाणं सन्नि पंचिंदियाणं मणोगए-भावे जाणमाणाणं पंचसयाणं विउलमईणं उक्किट्ठा वाइसंपया होत्था। सिद्धाणं जाव सव्वदुक्खप्पहीणाणं सत्तसयाणं अंतेवासीणं उक्किट्ठा संपया। एवं चेव चउद्दससयाणं अज्जियासिद्धाणं उक्किट्ठा संपया। एवं सव्वा एगवीसइसया

सिद्धसंपयाणं अट्ठसया अणुत्तरोववाइयाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयसंपया होत्था। दुविहा य अंतगडभूमी होत्था। तं जहा—जुगंतगडभूमी य परियायंतगडभूमी य ॥४४॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स इंदभूइपमिईणं (१४०००) चउद्दससहस्ससाहूणं उक्किट्ठा साहुसंपया होत्था] उस काल और उस समयमें श्रमण भगवान् महावीरकी इन्द्रभूति आदि चौदह हजार साधुओंकी उत्कृष्ट साधु संपदा थी [चंदनबाला पभिईणं (३६०००) छत्तीस समणी साहस्सीणं उक्किट्ठा समणीसंपया] चन्दनबाला आदि छत्तीस हजार साध्वियोंकी उत्कृष्ट साध्वी संपदा थी (संखपोक्खलिप्पभिईणं (१५९०००) एगूणसट्ठिसहस्सब्भहियाणं एगसय सहस्स समणोवासियाणं उक्किट्ठा समणोवासिय संपया] शंख पुष्कलि आदि एकलाख उनसठ हजार श्रावकों की उत्कृष्ट श्रावक सम्पदा थी [सुलसा रेवइपभिईणं (३१८०००)

अट्ठारससहस्सब्भहियाणं तिसयसहस्ससमणोवासियाणं उक्किट्ठा [समणोवासियसंपया] सुलसा रेवती आदि तीन लाख अठार हजार श्राविकाओं की उत्कृष्ट श्राविका संपदा थी [अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसन्निवाईणं जिंनस्सेव अवितहं वागरमाणाणं] जिन नहीं परन्तु जिन के समान सर्वाक्षर सन्निपाती और जिन की भांति ही सत्यप्ररूपणा करने वाले [तिसयाणं चउद्दसपुव्वीणं उक्किट्ठा चउद्दस पुव्विसंपया] चौदह पूर्वधरकों की उत्कृष्ट तीनसौ चउदह पूर्वधरों की सम्पदा थी। [अइसयपत्ताणं तेरस सयाणं ओहिनाणीणं उक्किट्ठा ओहिनाणिसंपया] अतिशयको प्राप्त तेरहसौ अवधि ज्ञानियों की उत्कृष्ट अवधिज्ञानी संपदा थी [उप्पन्न वरणाणदंसणधराणं सत्तसयाणं केवलनाणीणं उक्किट्ठा केवलनाणिसंपया] सातसौ उत्पन्नवर ज्ञानदर्शनको धारण करने वाले केवलियों की उत्कृष्ट केवली संपदा थी [अदेवाणं देविड्ढिपत्ताणं सत्तसयाणं वेउव्वीणं उक्किट्ठा वेउव्वियसंपदा] देव न होने पर भी देव ऋद्धि

को प्राप्त सातसौ वैक्रियलब्धि के धारकों की उत्कृष्ट वैक्रियिक सम्पदा थी। (अड्ढाइज्जेसु दीवेसु दोसु य समुद्देसु पज्जत्तगाणं सन्निपंचिंदियाणं मणोगए भावे जाणमाणाणं पंचसयाणं विउलमईणं उक्किट्ठा विउलमइसंपया] ढाई द्वीपों और दो समुद्रों के पर्याप्त संज्ञीपंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को जाननेवाले पांचसौ विपुलमति ज्ञानियोंकी विपुलमति–सम्पदा थी [सदेवमणुयासुराए परिसाए वाए अपराजियाणं चउसयाणं वाईणं उक्किट्ठा वाइसंपया होत्था] देवों मनुष्यों और असुरों सहित परिषद् में वाद विवाद में पराजित न होनेवाले चारसौ वादियोंकी उत्कृष्ट वादी सम्पदा थी [सिद्धाणं जाव सव्वदुक्खप्पहीणाणं सत्तसयाणं अंतेवासीणं उक्किट्ठा संपया] सिद्धो यावत् समस्त दुःखों से रहित सातसौ सिद्धोंकी उत्कृष्ट सिद्ध सम्पदा थी [एवं चेव चउद्दससयाणं अज्जियासिद्धाणं उक्किट्ठा संपया] इसी प्रकार चौदह सो आर्यिका सिद्धों की उत्कृष्ट सम्पदा थी [एवं सव्वा एगवीसइसया सिद्धसंपयाणं] इस प्रकार दोनों को

मिलाकर इक्कीससौ सिद्धोंकी सम्पदा थी [अट्ठसया अणुत्तरोववाइयाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयाणं संपया होत्था] गति-कल्याण स्थिति कल्याण भावीभद्र आठसौ अनुत्तरोपपातिकों की उत्कृष्ट अनुत्तरोपपातिक सम्पदा थी। [दुविहा य अंतरागडभूमी होत्था—तं जहा—] दो प्रकार की अन्तकृत भूमि थी जैसे—[जुगंतगडभूमी य परियंतगडभूमि य] युगांतकृत भूमि[1] और पर्यायान्तकृतभूमि[2]

---

१—कालकी एक प्रकारकी अवधिको युग कहते हैं। युगक्रम से होते हैं। इस समानता के कारण गुरु, शिष्य, प्रशिष्य आदि के क्रम से होनेवाले पुरुष भी युग कहलाते हैं। उन युगों से प्रमित मोक्ष गामियों के काल को युगांतकृत् भूमि कहते हैं। भगवान महावीर तीर्थ में भगवान महावीर के निर्वाण से आरंभ करके जम्बूस्वा[illegible] निर्वाण पर्यन्तका काल युगांतकृत् भूमि है। इसके बाद मोक्ष गमनका विच्छे[illegible]

भावार्थ—उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर की इन्द्रभूति आदि चौदह हजार साधुओं की उत्कृष्ट साधु—सम्पदाथी, अर्थात् भगवान् के चौदह हजार साधु थे। चन्दनवाला आदि छत्तीसहजार साध्वियों की उत्कृष्ट साध्वी—संपदा थी, अर्थात् छत्तीस हजार साध्वियां थी। शंख, शतक—अपरनाम वाले तथा पुष्कलि वगैरह एकलाख उनसठ हजार [१५९०००] आदि तीन लाख अठारह हजार श्राविकाओंकी उत्कृष्ट श्राविका सम्पदा थी। जिन अर्थात् सर्वज्ञ न होने पर भी सर्वज्ञ और सर्वाक्षर—सन्निपाती अर्थात् सम्पूर्ण

---

२—मुक्ति मार्ग की भूमि पर्यायान्तकृत् भूमि कहलाती है। भगवान् की केवली-पर्याय को यहां 'पर्याय' कहा है। वह पर्याय होने पर जिन्होंने भवका अन्त किया—मोक्ष पाया, उनकी भूमि पर्यायान्तकृत्भूमि कहलाती है। भगवान् महावीर को केवली—पर्याय उत्पन्न होने के अनन्तर चार वर्ष के वाद प्रारंभ हुई मोक्ष मार्गकी भूमि पर्यायान्तकृत्भूमि है। यह दो भूमियां थी ॥४४॥

श्रुतके ज्ञाता तथा यथार्थ अर्थात् सर्वज्ञ जैसा उत्तर देने वाले चौदह पूर्वधारियों की तीनसौ उत्कृष्ट चतुर्दशपूर्वधारी सम्पदा थी। अवधिज्ञान को धारण करनेवाले प्रभावशाली तेरह सौ मुनियों की उत्कृष्ट अवधिज्ञानी सम्पदा थी। उत्पन्न हुए ज्ञान और दर्शनको धारण करनेवाले सातसौ केवलज्ञानियों की उत्कृष्ट केवली–सम्पदा थी। देव न होने पर भी देव–ऋद्धि अर्थात् वैक्रिय लब्धि को धारण करनेवाले सातसौ मुनियों की उत्कृष्ट–सम्पदा थी। जम्बूद्वीप, धातकी खण्डद्वीप और पुष्करार्धद्वीप=इस तरह अढाई द्वीपोंके तथा लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र–इन दो समुद्रों के पर्याप्त संज्ञीपंचेन्द्रिय जीवों मनके भावों पर्यायों को जानने वाले पांचसौ विपुलमति–मनःपर्ययज्ञान के धारक विपुलमतियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी। देवों, मनुष्यों और असुरोंसे सहित सभामें शास्त्रार्थ के विचार में पराजित न होनेवाले चारसौ वादियों की उत्कृष्ट वादी–सम्पदा थी। सिद्ध और 'यावत्'–पदसे–बुद्ध, मुक्त परिनिर्वृत तथा सब दुःखोंका अन्त करनेवाले

सातसौ सिद्धों की उत्कृष्ट संपदा थी। इसी प्रकार चौदहसौ सिद्धि के धारक साध्वियों की उत्कृष्ट संपदा थी। इस प्रकार सब मिलाकर इक्कीससौ सिद्धोंकी उत्कृष्ट सिद्ध–सम्पदा थी। अगले अनन्तर भवमें मुक्ति पानेवाले; देवलोक में तेतीस सागरोपम की स्थिति प्राप्त करनेवाले तथा जो अगले भवमें मनुष्य होकर मोक्षरूप भद्रको प्राप्त करेंगे, ऐसे आठसौ अनुत्तरोपपातिकों [अनुत्तरविमान में जानेवालों] की उत्कृष्ट अनुत्तरोपपातिक सम्पदा थी। तथा–दो प्रकारकी अन्तकृत् भूमि थी–(१) युगाकृत्भूमि और २ पर्यायान्तकृत्भूमि। कालकी एक प्रकारकी अवधिको युग कहते हैं। युग–क्रम से होते हैं इस समानता के कारण गुरु, शिष्य, प्रशिष्य आदि के कर्म से होनेवाले पुरुष भी युग कहलाते हैं। उन युगों से प्रमित मोक्षगामियों के कालको युगान्तकृत्भूमि कहते हैं। आशय यह है कि भगवान्–महावीर के तीर्थ में, भगवान् महावीर के निर्वाणसे आरंभ करके जम्बूस्वामी के निर्वाण पर्यन्तका काल युगान्तकृत्-

भूमि है। इसके पश्चात् मोक्षगमनका विच्छेद हो गया। मुक्तिमार्ग की भूमि पर्यायान्तकृत्भूमि कहलाती है। भगवान् के केवली–पर्यायको यहां 'पर्याय' कहा है। वह पर्याय होने पर जिन्होंने भवका अन्त किया–मोक्ष पाया, उनकी भूमि पर्यायान्तकृत्भूमि कहलाती है। तात्पर्य यह है कि भगवान् महावीर की केवली–पर्याय उत्पन्न होनेके अनन्तर, चार वर्ष बाद प्रारंभ हुई मोक्ष–मार्गकी भूमि पर्यायान्तकृत्भूमि है। यह दो भूमियां थी ॥४४॥

मूलम्–तेणं कालेणं तेणं समएणं, समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्ज सुहम्मे णामं थेरे–जाइसंपन्ने, कुलसंपन्ने, बाल-रूव-विणयणाण-दंसणचरित्तलाघवसंपन्ने, ओयंसी, तेयंसी, वच्चंसी, जसंसी, जियकोहे जियमाणे, जियमाए, जियलोहे, जिइंदिए, जियनिद्दे, जियपरिसहे, जीवियासामरण

भयविप्पमुक्के, तवप्पहाणे, गुणप्पहाणे, एवं-करण-चरण-णिग्गह-णिच्छय-अज्जव-मद्दव-लाघव-खंति-गुत्ती-मुत्ती-विज्जामंत-बंभचेर-वेय-णिय-णियम -सच्च-सोय-णाणदंसण-चरित्तप्पहाणे ओराले घोरे, घोरवए, घोर तवस्सी, घोर बंभचेर-वासी, उच्छूढ सरीरे, संखित्ते विउलतेउलेसे, चोद्दस पुव्वी चउणाणोवगए ॥४५॥

भावार्थ–उस काल और उस समय में श्रमण भगवंत श्री महावीर स्वामीजी के ज्येष्ठ अंतेवासी–शिष्य आर्य सुधर्मास्वामी स्थविर कैसे थे सो कहते हैं–जाति संपन्न–मातृपक्ष निर्मल था, कुल संपन्न–पितृपक्ष निर्मल था, बल संपन्न–वज्रऋषभनाराच संघयनवाले थे, रूपक–सर्वांगसुन्दर अर्थात् समचतुस्त्र संस्थान के धारक, विनय नम्र सम्पन्न कोमल स्वभाववाले ज्ञान–मति श्रुत अवधि व मनःपर्यव चार ज्ञानके धारक, दर्शन–क्षायिक सम्यक्त्व के धारक, चारित्र–सामायिकादि उत्तम चारित्र के धारक, लघुता–

द्रव्य से उपधिकर और भाव से कषाय व तीनों गर्व से रहित हलकें ओजस्वी–मन के चढते परिणाम वाले, तेजस्वी शरीर की अच्छी प्रभावाले, यशस्वी–सौभाग्यादि गुण सहित उत्तम यशवंत, क्रोध, मान, माया, लोभ, इन्द्रिय, निद्रा, परिषह इनको जीतने–वाले, निज जीविताश व मृत्यु के भय से मुक्त अनशनादि तप, संयमादिगुण पिंडविशुद्धादिक चरणसितरी, दशविध यति धर्मादि करण सितरी के गुणयुक्त रागादि शत्रु का निग्रह करता करणि के फल में निश्चय करनेवाले में प्रधान, ऋजुता, मृदुता, क्षमा, गुप्ति, मुक्ति. विद्या, मंत्र, ब्रह्मचर्य, वेद लोकिक, लोकोत्तर शास्त्र, नैगमादिनय, अभिग्रहादि निगम, वचनादि सत्यता, मनादि शौचता, ज्ञान, दर्शन व चारित्र में उदार, इन गुणों में प्रधान, घोर करणी करने वाले घोर व्रत पालने वाले, घोर तपस्वी, घोर ब्रह्मचर्य पालने वाले, शरीर की शुश्रूषा रहित संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्यावाले चउदह पूर्व के पाठी और चार ज्ञानयुक्त थे ॥४५॥

मूलम्–तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स पट्टम्मि सिरि सुहम्मसामि अहेसि ॥४६॥

शब्दार्थ–[तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स] उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के [पट्टम्मि सिरि सुहम्म सामी अहेसि] पाट पर सुधर्मा स्वामी थे ॥४६॥

भावार्थ–उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के पाट पर श्री सुधर्मा स्वामी थे। श्री गौतम स्वामी केवली हो चुके थे, अतः पाट पर नहीं बैठे; इस कारण सुधर्मा स्वामी पाट पर प्रतिष्ठित किये। इसका कारण यह है–आगम में 'हे आयुष्मन्। मैंने सुना है, उन भगवान ने ऐसा कहा है, ऐसा उल्लेख है। अगर पाट पर केवली की स्थापना होती तो केवली सर्वदर्शी–सर्वज्ञ होते हैं, उन्हें किसी से कुछ सुनने की आवश्यकता नहीं होती, तो फिर वह ऐसा न कहते कि–भगवान् ने

ऐसा कहा है, मैंने सुना है। अतएव केवली पाट पर प्रतिष्ठित नहीं किये जाते ॥४६॥

## सुहम्मसामि परिचओ

मूलम्–कोल्लागसन्निवेसे धम्मिल्लविप्पस्स भद्दिलाभज्जाए जाओ सुहम्मसामी चउद्दसविज्जापारगो पण्णासवरिसंते पव्वइओ। तीसं वासाइं सिरि वद्धमाणसामिस्स अंतिए निवसिय भगवओ निव्वाणाणंतरं बारसवरिसाइं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता जम्मओ बाणउइवरिसंते गोयमसामि निव्वाणाणंतरं केवलणाणं पाविय अट्ठवरिसाइं केवलिपरियागे ठिच्चा एगसयवरिसाइं सव्वाउयं पालइत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स निव्वाणाणंतरं वीसइवरिसेसु वीइक्कंतेसु जंबूसामिणं नियपट्टे ठाविय सिवं गए ॥४७॥

शब्दार्थ–[कोल्लागसन्निवेसे धम्मिल्लविप्पस्स भद्दिलाभज्जाए जाओ सुहम्म-

सामी चउद्दस विज्जापारगो पण्णासवरिसंते पव्वइओ] कोल्लागसन्निवेश के निवासी धम्मिल ब्राह्मण की पत्नी भद्दिला से उत्पन्न चउदह विद्याओं के पारगामी सुधर्मास्वामी पचास वर्ष की आयु में भगवान महावीर के पास प्रव्रजित हुए [तीसं वासाइं सिरिवद्धमाणसामिस्स अंतिए निवसिय] तीस वर्ष तक श्रीवर्धमान स्वामी के समीप रहकर [भगवओ निव्वाणाणंतरं बारसवरिसाइं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता जम्मओ बाणउइवरिसंते] भगवान् के निर्वाण के बाद बारह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में रहकर जन्म से लेकर बानवें वर्ष के अंत में [गोयमसामिनिव्वाणाणंतरं केवलणाणं पाविय] गौतमस्वामी के निर्वाण के अनन्तर केवलज्ञान प्राप्त करके [अट्ठवरिसाइं केवलपरियागे ठिच्चा एगसयवरिसाइं सव्वाउयं पालइत्ता] आठ वर्ष तक केवली अवस्था में रहकर, एक सौ वर्ष की समग्र आयु भोगकर [समणस्स भगवओ महावीरस्स निव्वाणाणंतरं] श्रमण भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् [वीसइवरिसेसु वीइक्कंतेसु जंबूसामिणं नियपट्टे ठाविय

सुधर्म-
स्वामि
परिचयः

सिवं गए] वीस वर्ष बीत जाने पर जम्बूस्वामी को अपने पाट पर स्थापित करके मोक्ष गये ॥४७॥

भवार्थ–कोल्लाक नामक ग्राम में, धम्मिल नामक ब्राह्मण था। उसकी पत्नि भद्दिला थी। सुधर्मास्वामी उसी के उदर से उत्पन्न हुए। वह ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द इन छह वेदांगों में तथा मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण इन सब चोदह विद्याओं में पारंगत थे। पचासवें वर्ष के अन्त में उन्होंने दीक्षा अंगीकार की। उसके बाद तीस वर्ष तक श्री वर्धमान स्वामी के समीप निवास करके, भगवान् महावीर स्वामी के पश्चात् बारह वर्ष तक छद्मस्थ-पर्याय में रहकर, जन्म से बानवें (९२) वर्ष के अन्त में, गौतमस्वामी के मोक्ष जाने के बाद केवलज्ञान प्राप्त करके, आठ वर्ष तक केवली–पर्याय में स्थिर रहकर एक सौ वर्ष की समस्त आयु भोगकर, श्रमण भगवान् महावीर के मोक्षगमन के

पश्चात् वीस वर्ष व्यतीत होने पर जम्बूस्वामीको अपने पाट पर स्थापित करके मोक्ष पधारे ॥४७॥

## जंबूसामि परिचओ

मूलम्—रायगिहे नयरे उसभदत्तस्स सेट्ठिणो धारणीए अंगजाओ पंचम देवलोगाओ चुओ जंबूनाम पुत्तो होत्था सो य सोलसवरिसाओ सिरि सुहम्म-सामि समीवे धम्मं सोच्चा पडिबुद्धो पडिवण्ण सीलसम्मत्तो अम्मापिऊणं दढा-गहेण अट्ठ कण्णाओ परिणीअ। विवाहरत्तीए सो ससिणेहाहि—ताहि पेम-संभियवाणीहिं न वा मोहिओ। सो य परोप्परं कहापडिकहाहिं ता अट्ठ वि इत्थीओ पडिबोहीअ। तीए रत्तीए चोरियट्ठं गिहे पविट्ठं नवनवइ अब्भहिएहिं चउहिं चोरसएहिं परिवुडं पभवाभिहं चोरंपि पडिबोहिअ। तओ

पच्छा उइयम्मि दिणयरे पंचसयचोरभज्जट्ठग—तज्जणगजणणीहि सद्धिं सयं पंचसयसत्तवीसइइमो होऊणं णवणवईओ कणगकोडीओ परिच्चज्ज सुहम्मसामि समीवे पव्वइओ। से णं सिरिजंबूसामी सोलसवरिसाइं गिहत्थत्ते, वीसं वासाइं छउमत्थे, चोयालीसं वासाइं केवलिपज्जाए, एवमसीइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता पभवं अणगारं नियपट्टे ठाविय सिरि वीरनिव्वाणाओ चउसट्ठितमे वरिसे सिद्धिं गए।

सिरि जंबूसामी जाव मोक्खं गओ नासी ताव एवं भरहेवासे दसठाणा भविंसु, तं जहा—मणपज्जवणाणं १ परमोहिणाणं २ पुलागलद्धी ३ आहारगसरीरं ४ खवगसेणी ५ उवसमसेणी ६ जिणकप्पो ७ संजमत्तिगं ८ केवलणाणं ९ सिज्झणा १० य त्ति। मोक्खं गए उ तस्सिं एया ठाणा वुच्छिण्णा भवंति।

एत्थ दुवे संगहणी गाहाओ–

बारसवरिसेहि गोयमु, सिद्धो वीराउ वीसहि सुहम्मो ।
चउसट्ठीए जंबू, वुच्छिन्ना तत्थ दस ठाणा ।

मण १ परमोहि २ पुलाए ३ आहारग ४ खवग ५ उवसमे ६ कप्पे ७ संजमतिग ८ केवल ९ सिज्झणा १० य जंबुम्मि वुच्छिन्ना ॥२॥ ॥४८॥

शब्दार्थ–[रायगिहे नयरे उसभदत्तस्स सेट्ठिणो धारणीए अंगजाओ पंचमदेवलोगाओ चुओ जंबूनाम पुत्तो होत्था] राजगृह नगर में ऋषभदत्त श्रेष्ठी की धारिणी नामक भार्या की कूंख से उत्पन्न पंचम देवलोक से आये हुए जंबू नामक पुत्र थे [सो य सोलसवरिसाओ सिरि सुहम्मसामि समीवे धम्मं सोच्चा पडिबुद्धो] सोलह वर्ष की उम्र में सुधर्मा स्वामी के समीप धर्म को सुनकर प्रतिबोध पाया [पडिवण्ण सील

सम्मत्तो अम्मापिउणं दढागहेण अट्ठकण्णाओ परिणीअ] शीलव्रत और सम्यक्त्व धारण किया। माता पिता के प्रबल आग्रह से आठ कन्याओं के साथ विवाह किया [विवाहरत्तीए सो ससिणेहाइ ताहि वाणीहिं न वामोहिओ] सुहागरात में वह स्नेहवती पत्नियों की प्रेम पूर्ण वाणी से मोहित न हुए [सो य परोप्परं कहापडिकहाहिं ता अट्ठवि इत्थीओ पडिबोहीअ] उन्होंने परस्पर कथाओं के उत्तर में कथाएं कहकर आठों पत्नियों को प्रतिबोधित किया। [तीए रत्तीए चोरियट्ठं गिहे पविट्ठं नवनवइ अब्भहिएहिं चउहिं चोरसएहिं परिवुडं पभवाभिहं चोरंपि पडिबोहिअ] उसी रात्रि में चोरी करने के लिये घर में घुसे चारसौ निन्यानवे (४९९) चोरों सहित प्रभव नामक चोर को भी प्रतिबोधित किया [तओ पच्छा उइयम्मि दिणयरे पंचसयचोरभज्जट्ठग तज्जणगजणणीहि सिद्धिं] उसके बाद दिन उगने पर पांचसौ चोरों आठों पत्नियों के माता पिता एवं अपने माता पिता के साथ [सयं पंचसयसत्तवीसइइमो होउणं णवणवईओ कणगकोडीओ

परिच्चज्ज सुहम्मासामिसमीवे पव्वइओ] स्वयं पांचसौ सत्ताईसवें होकर निन्यानवें क्रोड सौनैया का त्याग करके सुधर्मा स्वामी के समीप संयम धारण किया। [सेणं सिरि जंबू सामी सोलसवरिसाइं गिहत्थत्ते] वे सोलह वर्ष गृहस्थावस्था में [वीसं वासाइं छउमत्थे] वीस वर्ष छद्मस्थ अवस्था में [चोयालीसं वासाइं केवलिपज्जाए] चवालीस वर्ष केवली अवस्था में [एवमसीइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता पभवं अणगारं नियपट्टे ठाविय सिरि वीरनिव्वाणाओ चउसट्ठितमे वरिसे सिद्धिं गए] इस प्रकार कुल अस्सी वर्ष की आयु पालकर प्रभव अणगार को अपने पाट पर स्थापित करके श्रीवीर निर्वाण से चौसठवें वर्ष में सिद्धि को प्राप्त हुए।

[सिरि जंबू सामी जाव मोक्खं गओ आसी ताव एव भरहेवासे दस ठाणा विच्छिंसु] श्रीजम्बूस्वामी जब मोक्ष गये तब इस भरत क्षेत्र में दस बातों का विच्छेद हो गया [तं जहा] वह इस प्रकार है—[मणपज्जवणाण] मनःपर्यवज्ञान [परमोही-

णाणं] परमावधिज्ञान [पुलागलद्धी] पुलाकलब्धि [आहारगसरीरं] आहारक शरीर [खवगसेणी] क्षपक श्रेणी [उवसमसेणी] उपशम श्रेणी [जिणकप्पो] जिनकल्प [संजमत्तिगं] तीन संयम–परिहार विशुद्धि सूक्ष्म सांपराय, यथाख्यात [केवलणाणं] केवलज्ञान [सिज्झाणा] मोक्ष। [मोक्खंगए उ तस्सिं एया ठाणा वुच्छिण्णा] जंबू स्वामी के मोक्ष पधारने पर यह दस बाते बिच्छिन्न हो गई। [भवंति एत्थ दुवे संगहणी गाहाओ] यहां दो संग्रहणी गाथाएं है-[बारस बरिसेहि गोयमु सिद्धो वीराउ वीसइ सुहम्मो] श्रीवीर निर्वाण से बारह वर्ष बीतने पर श्रीगौतमस्वामी का वीस वर्ष बीतने पर सुधर्मास्वामी का [चउसट्ठीए जंबू वुच्छिन्ना तत्थ दस ठाणा] तथा चौसठ वर्ष के बीतने पर जंबू स्वामी का निर्वाण हुआ। उसके बाद दस स्थानों का विच्छेद हो गया। वे दस स्थान ये हैं–[१ मण २ परमोहि ३ पुलाए ४ आहारग ५ खवग ६ उवसमे ७ कप्पे ८ संजमतिग ९ केवल १० सिज्झगा] मनःपर्यवज्ञान, परमावधिज्ञान, पुलाक लब्धि

आहारक शरीर क्षपकश्रेणी, उपशमश्रेणी जिनकल्प तीन संयम, केवलज्ञान, और मुक्ति ।४८।

भावार्थ—राजगृह नगर में ऋषभदत्त सेठ की धारिणी नामक पत्नि के उदर=अङ्ग-जात ब्रह्म नामक पांचवें देवलोक से च्यवकर आये हुए जंबू नामक पुत्र थे। सोलह वर्ष की उम्र में उन्होंने सुधर्मा स्वामी से धर्म का उपदेश सुना और प्रतिबोध प्राप्त किया। प्रतिबोध पाकर शील और सम्यक्त्व अंगीकार किया। माता–पिता के तीव्र अनुरोध से आठ कन्याओं के साथ विवाह किया। मगर विवाह की रात्रि–सुहागरात में वह जंबूकुमार अनुरागवती उन आठों कन्याओं की प्रणय–परिपूर्ण वाणी से मोहित न हुए। उनके साथ जंबूकुमार की आपस में कथाएं–प्रतिकथाएं हुई। आठों रमणियोंने जंबूकुमार को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए अनेक कथाएं कहीं। उनके उत्तर में जंबूकुमार ने भी कथा कही। इस प्रकार उत्तर–प्रत्युत्तर होने पर आठों नवविवाहिता–पत्नियों को भी प्रतिबोध प्राप्त हुआ। उसी–विवाह की रात्रि में चारसौ निन्यानवें

चोरों को साथ लेकर प्रभव नामक प्रसिद्ध चोर चोरी करने के लिये जंबूकुमार के घर में घुसे। उन्हें भी उन्होंने प्रतिबोधित किया। तत्पश्चात् सूर्योदय होने पर पांचसौ चोरों के साथ आठों पत्नीयों के साथ, पत्नीयों के माता–पिता के साथ और अपने माता–पिता के साथ; आप स्वयं पांचसौ सत्ताईसवें होकर दहेज की निन्न्यानवें कोटि स्वर्ण-मुद्राओं को तथा अपने घरकी अखूट संपत्ति को त्याग कर सुधर्मास्वामी के पास प्रव्रजित हो गये। जंबूस्वामी सोलह वर्ष तक गृहवास में रहे, वीस वर्ष तक छद्मस्थ पर्याय में रहे, चवालीस वर्ष तक केवली–पर्याय में रहे। इस प्रकार अस्सी वर्ष समस्त आयु भोग कर प्रभव अनगार को अपने पाटपर प्रतिष्ठित करके श्री महावीर भगवान् के निर्वाणकाल से चौसठवें वर्ष में मोक्ष गये। जब तक जंबूस्वामी मोक्ष नहीं गये थे तब तक भरतक्षेत्र में आगे कहे दस स्थान थे। यथा–(१) मनःपर्यवज्ञान, (२) परमाववधिज्ञान, (३) पुलाकलब्धि (४) आहारकशरीर (५) क्षपकश्रेणी (६) उपशमश्रेणी (७)

जिनकल्प (८) तीन चारित्र–परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात (९) केवलज्ञान और १० मोक्ष। जंबूस्वामी के मुक्त होने पर यह दस स्थान विच्छिन्न हुए ॥४८॥

मूलम्–सिरि जंबूसामिम्मि मोक्खं गए तप्पट्टे सिरि पभवसामी उवाविसीय। तउप्पत्ती चेवम्–विंझायल समीवे जयपुराभिहाणं नयरं आसि। तत्थ विंझो णाम णरवइ होत्था। तस्स पुत्तदुगं आसि एगो जेट्ठ पभवाभिहाणो, अवरो कणिट्ठ पभवाभिहाणो। तत्थ जेट्ठपभवो केणवि कारणेणं कुद्धो जयपुरनयराओ निस्सरिय विंझायलस्स विसमत्थले अभिणवं गामं वासित्ता तत्थ निवसीअ। सो य चोरिय लुंटणाइगरिहवित्तिं ओलंबीअ। एगया तेण आकण्णियं जं रायगिहे नयरे जंबू नामगो उसभदत्तसेट्ठिपुत्तो अट्ठ सेट्ठि कण्णाओ परिणीअ। दाये तेणं ससुरेहिंतो णवणवइ कोडि परिमियाओ सुवण्णमुद्दाओ लद्धाओ त्ति।

एवं सोच्चा सो पभवो चोरो णवणवइ अहिएहिं चउहिं चोरसएहिं परिवुडो रायगिहे नयरे जंबुकुमारस्स गिहे चोरियटुं पविट्ठो। तत्थ सो ओसावणीए विज्जाए सव्वे जणे निद्दिए करीअ भावसंजयम्मि जंबुकुमारम्मि सा विज्जा निप्फला जाया। सो जागरमाणो चेव चिट्ठीअ। तप्पभावेण तस्स अट्ठवि भज्जा जागरमाणीओ चेव ठिया। तओ सो पभवो चोरो चोरेहिं सद्धिं ताओ सुवण्णमुद्दाओ गहिय चलिउ मारद्धो। तया जंबुकुमारो नमुक्कारमंतप्पभावेण तेसिं गइं थंभीअ। नियगइं थंभियं दट्ठूण पभवो विम्हिओ किं कायव्व विमूढो य जाओ। तस्स एरिसिं ठिइं दट्ठूण जंबूकुमारो हसीअ तस्स हासं सोच्चा पभवो तं कहीअ महाभागा ! जं मम इयं ओसावणी विज्जा अमोहा अत्थि। सा वि तुमंम्मि णिप्फला जाया। तए पुण अम्हाणं गई चावि थंभिया

अओ तुवं को वि विसिट्ठो पुरिसो पडिभासि तुमं ममोवरि किवं किच्चा थंभणिं विज्जं मम देहि। अहं च तुब्भं ओसावणिं विज्जं दलामि। तस्स इमं वयणं सोच्चा जंबूकुमारो कहीअ इमाओ लोइयविज्जाओ दुग्गइकारणाओ संति। तुज्झं विज्झाए मज्झम्मि पभावो न जाओ। तुब्भाणं गई जं मए थंभिया, एत्थ न का वि विज्जाकारणं। अयं पहावो नमुक्कारमंतस्स अत्थि। एवं कहिय जंबूकुमारो तस्स चारित्तधम्मं उवादिसीअ। तं सोच्चा पभवाईणं चोराणं मणंसि वेरग्गं संजायं। तओ बीए दिवसे सपरिवारो जंबूकुमारो तेहिं पभवाईएहिं चोरेहिं सद्धिं सुहम्मसामिसमीवे पव्वइओ।

जंबू सामिम्मि मोक्खं गए तप्पट्टे पभवसामी उवाविसीअ। सो उ जंगम कप्परुक्खोव्व भव्वजीवाणं मणोरहं पूरेमाणो सुयणाणसहस्सकिरणकिरणेहिं

मिच्छत्ततिमिरपडलं विणासेंतो भव्वहियकमलाइं वियासेंतो सुहम्मसामि परिपोसियं चउव्विहसंघवाडियं देसणामिएणं अहिसिंचिय उवसम-विवेग वेरमणाइ पुप्फेहिं पुप्फियं अत्तकल्लाणफलेहिं फलियं च कुव्वंतो विहरइ। एवं विहरमाणो सो कालमासे कालंकिच्चा सग्गं गओ। तओ चुओ सो महाविदेहे खित्ते समुप्पज्जिअ सासओ सिद्धो भविस्सइ ॥४९॥

शब्दार्थ—[सिरि जंबूसामिम्मि मोक्खं गए तप्पट्टे सिरि पभवसामी उवाविसीअ] जंबूस्वामी के मोक्ष पधारने पर श्री प्रभवस्वामी उनके पाट पर बैठे [तउप्पत्ती चेवम्] उनकी उत्पत्ति इस प्रकार है [विंझायलसमीवे जयपुराभिहाणं नयरं आसि] विन्ध्याचल पर्वत के समीप जयपुर नामका नगर था [तत्थ विंझो णाम णरवई होत्था] वहां विन्ध्य नामका राजा था [तस्स पुत्तदुगं आसि] उसके दो पुत्र थे [एगो जेट्ठपभवाभिहाणो,

अवरो कणिट्ठपभवाभिहाणो] एक ज्येष्ट प्रभव कहलाता था और दूसरा कनिष्ट (छोटा) प्रभव कहलाता था [तत्थ जेट्ठपभवो केणवि कारणेणं कुद्धो जयपुरनयराओ निस्सरिय विंझायलस्स विसमत्थले अभिणवं गामं वासित्ता तत्थ निवसिय] उनमें से ज्येष्ठ प्रभव किसी कारण से क्रोधित होकर जयपुर नगर से निकलकर विन्ध्याचल के एक विषम स्थान में एक नया गांव बसाकर वहीं रहने लगे [सो य चोरिय–लुंटणाइगरिहियवित्तिं ओलंबीअ] उन्होंने चोरी एवं लूटपाट आदि निन्दित आजीविका का अवलंबन किया [एगया तेण आकण्णियं जं रायगिहे नयरे जंबू नामगो उसभदत्त सेट्ठिपुत्तो अट्ठसेट्ठि कण्णाओ परिणीअ] एक वार उसने सुना कि राजगृह नगर में जंबू नामक ऋषभदत्त सेठ के पुत्र का आठ श्रेष्ठी कन्याओं के साथ विवाह हुआ है। [दाये तेण ससुरेहिंतो णवणवइ कोडी परिमियाओ सुवण्णमुद्दाओ लद्धाओत्ति] उन्हें अपने श्वसूरों से निन्न्यानवें करोड स्वर्णमुद्राएं दहेज में मिली हैं [एवं सोच्चा सो पभवो चोरो णवणवइ

अहिएहिं चउहिं चोरसएहिं परिवुडो रायगिहे णयरे जंबूकुमारस्स गिहे चोरियट्ठं पविट्ठो] यह सुनकर प्रभव चोर अपने साथी ४९९ चोरों के साथ राजगृह नगर में आकर चोरी करने के लिए जंबूकुमार के घर में घुसे [तत्थ सो ओसावणीए विज्जाए सव्वे जणे निद्दिए करीअ] उन्होंने अवस्वापिनी विद्या से वहां के सब लोगों को निद्राधीन कर दिया [भावसंजयम्मि जंबूकुमारम्मि सा विज्जा निप्फला जाया] किन्तु जंबूकुमारतो भाव साधु हो चुके थे। अतः उनपर अवस्वापिनी विद्या का असर नहीं हुआ [सो जागरमाणो चेव चिट्ठीअ] वे जगते ही रहें [तप्पभावेण तस्स अट्ठ वि भज्जा जागरमाणीओ चेव ठिया] उनके प्रभाव से उनकी आठों पत्नियां भी जागती ही रहीं [तओ सो पभवो चोरो चोरेहिं सद्धिं ताओ सुवण्णमुद्दाओ गहिय चलिउ मारद्धो] उसके पीछे प्रभव चोर अपने साथी चोरों के साथ उन सब सुवर्णमुद्राओं को बटोर कर चलने को उद्यत हुए [तया जंबूकुमारो नमुक्कारमंतप्पभावेण तेसिं गइं थंभीअ] तब जंबू-

कुमारने नमस्कार मंत्र के प्रभाव से उनकी गति स्तंभित कर दी [नियगइं थंभियं दट्ठूण पभवो विम्हिओ किं कायव्वविमूढो य जाओ] अपनी गति स्तंभित हुइ देख प्रभव चकित रह गया और उन्हें सूझ न पडा कि अब क्या करना चाहिए [तस्स एरिसिं ठिइं दट्ठूण जंबुकुमारो हसीअ] उनकी यह स्थिति देखकर जंबूकुमार को हंसी आगइ। [तस्स हासं सोच्चा पभवो तं कहीअ] उनकी हंसी सुनकर प्रभवने उनसे कहा— [महाभाग ! जं मम इयं ओसावणी विज्जा अमोहा अत्थि सा वि तुमंमि निप्फला जाया] महाभाग ! मेरी यह अवस्वापिनी विद्या अमोघ है कभी निष्फल नहीं जाती किन्तु उसका भी आप पर असर नहीं हुआ [तए पुण अम्हाणं गई चावि थंभिया] आपने हमारी गति भी स्तंभित कर दी हैं [अओ तुवं को वि विसिट्ठो पुरिसो पडिभासि] इस से मालूम होता है कि आप कोई विशिष्ट पुरुष है [तुमं ममोवरि किवं किच्चा थंभणिं विज्जं मम देहि] आप कृपा करके स्तंभनी विद्या मुझे दीजिए [अहं च तुब्भं

ओसावणिं विज्जं दलामि] ओर मैं आपको अवस्वापिनी विद्या सिखा देता हूं। [तस्स इमं वयणं सोच्चा जंबुकुमारो कहीअ] उसके यह वचन सुनकर जंबूकुमारने कहा–[इमाओ लोइयविज्जाओ दुग्गइकारणाओ संति] यह लौकिक विद्याएं अधोगति का कारण हैं [तुज्झ विज्जाए मज्झम्मि पभावो न जाओ] तुम्हारी विद्या का मुझ पर प्रभाव नहीं पडा [तुब्भाणं गई जं मए थंभिया, एत्थ न कावि विज्जा कारणं] और मैंने जो तुम्हारी गति स्तंभित कर दी इस में कोई विद्या का कारण नहीं है। [अयं पहाओ नमुक्कारमंतस्स अत्थि] यह तो नमस्कार मंत्र का प्रभाव है [एवं कहिय जंबुकुमारो तस्स चारित्तधम्मं उवादिसीअ] इस प्रकार कहकर जंबूकुमारने प्रभव को चारित्र-धर्म का उपदेश दिया [तं सोच्चा पभवाईणं चोराणं मणांसि वेरग्गं संजायं] वह उपदेश सुनकर प्रभव आदि सभी चोरों के मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया [तओ बीए दिवसे सपरिवारो जंबूकुमारो तेहिं पभवाइएहिं चोरेहिं सद्धिं सुहम्मसामि समीवे पव्वइओ]

उसके बाद दूसरे दिन जंबूकुमार उन प्रभव आदि चोरों के साथ सुधर्मास्वामी के समीप दीक्षित हुए।

[जंबूसामिम्मि मोक्खं गए तप्पट्टे पभवसामी उवाविसीअ] जंबूस्वामी के मोक्ष पधारने पर प्रभवस्वामी उनके पट्ट पर बैठे [सो उ जंगम कप्परुक्खोव्व भव्वजीवाणं मनोरहं पूरेमाणो] वे चलते फिरते कल्पवृक्ष के समान भव्य जीवों के मनोरथों को पूर्ण करते हुए [सुयणाण सहस्सकिरणकिरणेहिं मिच्छत्ततिमिरपडलं विणासेंतो] श्रुतज्ञान रूपी सूर्य की किरणों से मिथ्यात्व रूपी अन्धकारके पटल का विनाश करते हुए [भव्व हिययकमलाइं वियासेंतो] भव्य जीवों के हृदयकमल को विकसित करते हुए [सुहम्मसामि परिपोसियं चउव्विहसंघवाडियं देसणामिएणं अहिसिंचिय] सुधर्मास्वामी द्वारा पोषित चतुर्विध संघरूपी वाटिका को अपने उपदेशामृत से सींचते हुए [उवसमविवेगवेरमणाइ पुप्फेहिं पुप्फियं अत्त कल्लाणफलेहिं फलियं च कुव्वंतो विहरइ] उपशम और

विरमण आदि पुष्पों से पुष्पित करते हुए और आत्मकल्याण रूप फलों से फलवान् बनाते हुए विचरने लगे। [एवं विहरमाणो सो कालमासे कालं किच्चा सग्गं गओ] इस प्रकार विचरते हुए प्रभवस्वामी कालमास में काल करके–अर्थात् यथा समय देहत्याग कर देवलोक में गये। [तओ चुओ सो महाविदेहे खित्ते समुप्पज्जिय सासओ सिद्धो भविस्सइ] देवलोक से चवकर वे महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध पद प्राप्त करेंगे ॥४९॥

## उवसंहार

नयसार भवो भूमी आलवालं च भावणा ।
समत्तं बीय मक्खायं जलं निस्संकिया इयं ॥१॥
अंकुरो नंद जम्मं च वुत्ती ठाणग वीसइ ।
रुक्खो वीरभवो जस्स साहाओ गणहारिणो ॥२॥

चउस्संघो पसाहाओ, सामायारी दलानि य ।
पुप्फावलि य तिवई बारसंगी सुगंधओ ॥३॥
फलं मोक्खो निराबाहा णंताक्खयि सुहं रसो ।
वीरस्स भवरुक्खोऽमू, कप्पसुत्तस्स रूवगो ॥४॥
भव्व संकप्प कप्पहु–कप्पो चिंतिय दायगो ।
सेवियो विणया णिच्चं देइ सिद्धिमणुत्तरम् ॥५॥ ॥५०॥

॥ इय कप्पसुत्तं संपूण्णं ॥

## उपसंहार

अब सूत्रकार इस कल्पसूत्र को कल्पवृक्ष के समान निरूपित करते हुए और फल बतलाते हुए उपसंहार करते हैं–[वीरस्स भवरूक्खोऽमू] भगवान महावीर का कल्पसूत्र

रूप यह भववृक्ष है। [नयसार भवो भूमि] नयसार का भव इसकी भूमि है [आलवालं च भावणा] भावनाएं इसकी क्यारी है [समत्तं बीयमक्खायं] सम्यक्त्व बीज है [जलं निस्संकिया इयं] निःशंकित आदि जल है [अंकुरो नंदजम्मं च] नन्द का जन्म अंकुर है [वुत्ती टाणग वीसइ] वीस स्थानक वाड है [रुक्खो वीरभवो] वीर का भव वृक्ष है [जस्स साहाओ गणहारिणो] जिसकी शाखाएं गणधर है [चउस्संघो पसाहाओ] चतुर्विध संघ इसकी प्रशाखाएं है [सामायारि दलाणिय] सामाचारी इसके पत्ते हैं [पुप्फावलि य तिवइ] त्रिपदी फूल है [बारसंगी सुगंधओ] बारह अंग इसका सौरभ है—सुगंध है [फलं मोक्खो] मोक्ष इसका फल है [निराबाहाणंताक्खयि सुहं रसो] अव्याबाध अनन्त असीम और अक्षय सुख इसका रस है [वीरस्स भवरुक्खोऽमू कप्पसुत्तस्स रूवगो] इस प्रकार यह कल्पसूत्र वीर भगवान का भववृक्ष—रूप है [भव्वसंकप्प कप्पद्दु—कंप्पो चिंतिय दायगो] यह कल्पसूत्र भव्य जीवों का मनोरथ सफल करने के लिये कल्पवृक्ष के

समान है। अभीष्ट प्रदान करनेवाला है [सेवियो विनया निच्चं देइ सिद्धि मणुत्तरम्] विनयपूर्वक नित्य सेवन किया हुआ यह सूत्र सर्वोत्कृष्ट सिद्धि प्रदान करता है।

सिरि महावीरसामिकयतवकोट्ठगं—

| | तवाण नामाणि | संखा | तवदिवसा | पारणा दिवसो |
|---|---|---|---|---|
| १ | छम्मासियं | १ | १८० | १ |
| २ | पंचदिवसूणं छम्मासियं | १ | १७५ | १ |
| ३ | चउमासियं | ९ | १०८० | ९ |
| ४ | तिमासियं | २ | १८० | २ |
| ५ | अड्ढत्तिमासियं | २ | १५० | २ |
| ६ | दुमासियं | ६ | ३६० | ६ |
| ७ | अद्धेगमासियं | २ | ९० | २ |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ८ | एगमासियं | १२ | ३६० | १२ |
| ९ | अड्ढमासियं | ७२ | १०८० | ७२ |
| १० | अड्ढभतं | १२ | ३६ | १२ |
| ११ | छट्ठभत्तं | २२९ | ४५८ | २२९ |
| १२ | भद्दपडिमा | १ | २ | १ |
| १३ | महाभद्दपडिमा | १ | ४ | १ |
| १४ | सव्वओभद्दपडिमा | १० | १० | १ |
| | योगफलम् | ३१५ | ४१६५ | ३५१ |

ग्यारह वर्ष छ मास पचीस दिन की तपस्या हुई, और ग्यारह मास इक्कीस दिन पारणा के हुए।

## उपसंहार

भावार्थ—अब सूत्रकार इस कल्पसूत्र को कल्पवृक्ष के समान निरुपित करते हुए और

फल बतलाते हुए उपसंहार करते हैं–भगवान् महावीर का कल्पसूत्र रूप यह भव–वृक्ष है। नयसार का भव इस की भूमि है। भावनाएं इसकी क्यारी हैं। समकित बीज है। निःशंकित आदि जल है ॥१॥ नन्द का जन्म अंकुर है। वीस स्थानक बाड है। महावीर का भव वृक्ष है, जिसकी शाखाएं गणधर है ॥२॥ चतुर्विध संघ प्रशाखाएं (टहनियां) है। सामाचारियां पत्ते हैं। त्रिपदी फूल हैं। बारह अंग सौरभ–सुगंध है ॥३॥ मोक्ष इसका फल है। अव्याबाध, अनन्त, अक्षय सुख इसका रस है। इस प्रकार यह कल्पसूत्र वीर भगवान् का भववृक्ष रूप है ॥४॥ यह कल्पसूत्र भव्य जीवों का मनोरथ सफ़ल करने के लिये कल्पवृक्ष के समान है। अभीष्ट प्रदान करनेवाला है विनयपूर्वक नित्यसेवन किया हुआ यह सूत्र सर्वोत्कृष्ट सिद्धिप्रदान करता है।

सब से पहले वृक्ष की उत्पत्ति के योग्य अच्छी भूमि देखभाल कर क्यारी बनाकर, आम्र आदि रसदार फलों के बीज वहां बोये जाते हैं। फिर उन्हें जल

से सींचे जाते हैं। तत्पश्चात् वे बीज अंकूररूप से उगते हैं। उनकी रक्षा के लिये वाड लगाई जाती है। इस प्रकार के प्रयत्न से वे बीज पत्तों, शाखाओं, प्रशाखाओं (टहनियां) से युक्त वृक्षों के रूप में परिणत हो जाते हैं। उन वृक्षों में सरस और सुगंधित पुष्प और फल लगते हैं। इसी प्रकार यह कल्पसूत्र भगवान् के भव-वृक्ष के समान है। इसकी भूमि-उत्पत्ति स्थान नयसार का भव है। अनित्य, अशरण आदि बारह भावनाएं इसकी क्यारी है। इसका बीज समकित कहा गया है। निःशंकित आदि सम्यक्त्व के आठ आचार इसे सींचने के लिये जल के समान हैं। वीस स्थानक इसकी वाड है। ऐसा यह वीर-भव वृक्ष के समान है। गौतम आदि गणधर इस वृक्ष की शाखाएं हैं। चतुर्विध संघ प्रशाखाएं-शाखाओं की शाखाएं है। आवश्य आदि-साधु-आचार रूप दस प्रकार की सामाचारियां इसके पत्ते हैं। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप त्रिपदी इसकी पुष्पावली है। द्वादशांगी इसका सौरभ है। मोक्ष इसका

फल है। अव्याबाध, अनन्त असीम और अक्षय सुख इसका रस है। कल्पसूत्र वीरका यह भववृक्ष है ऐसा समझना चाहिए। यह कल्पसूत्र मुमुक्षु जीवों की अभिलाषा पूर्ण करने में कल्पवृक्ष के समान है; अतएव सभी अभिष्ट पदार्थों का दाता है। विनयपूर्वक इसका नित्य पठन-पाठन श्रवण श्रावण मनन आदिरूप आराधना करने से यह सर्वोत्कृष्ट सिद्धि प्रदान करता है ॥१-५॥ प्रियव्याख्यानी संस्कृत-प्राकृतवेत्ता, जैनागम-निष्णात पूज्यश्री घासीलालजी महाराज के प्रधान शिष्य पण्डित मुनिश्री कन्हैयालालजी महाराज द्वारा रचित श्री कल्पसूत्र की कल्पमंजरी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥

इतिश्री विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापक-
प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक वादिमानमर्दक-श्री शाहूछत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त
'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु बालब्रह्मचारी-जैनाचार्य-जैनधर्म-
दिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालव्रतिविरचितं-श्रीकल्पसूत्रम् सम्पूर्णम् ॥

मज्झजंबूदीवे भारहे वासे भूतकालस्स चउव्वीसइ तित्थयराणां नामाणि

मूलम्–सिरि मज्झजंबूदीवे भारहे वासे भूतकालस्स चउवीसाए तित्थयराणां नामाइं तेसु पढमो केवलनाणी१, निव्वाणी२, सायर३, महाजसो४, विमलप्पभू५, सव्वाणुभूई६, सिरिधरो ७, दत्त ८, दामोयरो ९, सुतेजो १०, सामिनाउ ११, मुणिसुव्वओ१२, समिइजिणो १३, सिवगई १४, अत्थंगो १५, नमीसरो १६, अणिलनाहो १७, जसोहरो १८, कयत्थाओ १९. जिणेसरो २०, सुद्धमई २१, सिवसंवरो२२, सियानंदनाहो२३, संपाओ२४।

भावार्थ—जंबूद्वीप में भरतक्षेत्र के भूतकाल के २४ तीर्थंकरों के नाम=श्री केवलज्ञानजी१ श्री निर्वाणजी२, श्री सागरजी३, श्री महायशजी४, श्री विमलप्रभुजी५, श्री सर्वानुभूतिजी६, श्री श्रीधरजी७, श्री दत्तजी८, श्री दामोदरजी९, श्री सुतेजजी१०,

श्री स्वामिनाथजी११, श्री मुनिसुव्रतजी१२, श्री समितिजिनजी१३, श्री शिवगतिजी१४, श्री अस्तांगजी१५, श्री नमीश्वरजी१६, श्री अनिलनाथजी१७, श्री यशोधरजी१८, श्री कृतार्थजी१९, श्री जिनेश्वरजी२०, श्री शुद्धमतीजी२१, श्री शिवशंकरजी२२, श्री स्यान्दन नाथजी२३, श्री सम्प्रातजी२४ ।

अट्ठारसकोडाकोडीसागरोवमं पच्छा उसभजिणो हवइ ।

## उसभदेवपहुस्स चरित्तं–

मूलम्–मज्झ जंबूदीवे पुव्वविदेह ठिए पुक्कलावईविजए लवणसमुद्दसमीवे पुंडरिगिणी णयरी आसी। तत्थ वज्जसेणो नाम राया। तस्स धारिणी नामा राणी। तस्स पुत्तो वज्जनाभो आसी। पुत्ते रज्जे ठवित्ता वज्जसेनसमीवे पव्वज्जा गहिया। तत्थ उक्किट्ठतवसंजमं आराहणं किच्चा तित्थगरनाम

गोयं कम्मं निबंधिइ । तओ आउयं पुण्णं किच्चा तेत्तीसं सागरोवमं उक्किट्ठं आउयं सव्वट्ठसिद्धे विमाणे देवो उववण्णो ।

सव्वट्ठसिद्धविमाणाओ चइऊण कोसलदेसे विणीया णयरीए नाभिराया मरुदेवीए मायाए आसाढकिण्ह चउत्थदिणे गब्भम्मि बीउक्कंते । चेइय किण्हा अट्ठमीए जम्मो जाओ बीसलक्खपुव्वं कुमारपए, तिसट्ठिलक्खपुव्वं रज्जलच्छी अणुहविय, सुदंसणा सिविया, चेइय किण्हा नवमीए चत्तारिसहस्स परिवारेहिं सद्धिं दिक्खिओ जाओ, पढमभिक्खादाणे सेज्जंसकुमारो, पढमभिक्खाए इक्खु-रसो लभीअ, छउमत्थो एगसहस्सवरिसो, चेइयरुक्खो णाम नग्गोहतले, फग्गुणवई एक्कारसे केवलणाणं, निव्वाणकल्लाणयमाह किण्हा तेरसीए, देहपमाणं पंचसय धणुप्पमाणं, कंचणवण्णो, उसभलक्खणो, उसभसेणो गण-

हरो, मुखसाहूणी वंभी, एगलक्खपुव्व पव्वज्जाकालो उसभस्स, चउरासीइं गणहरा, चउरासीइसहस्सा साहूसंखा, साहुणीसंखा तिण्णिलक्ख पंचसहस्सा, सावयाणं संखा तिण्णिलक्खो पंचसहस्सा, सावियाणं संखा पंचलक्ख चउव्वन्न-सहस्सा, वाससहस्स केवलिसाहुणो, चत्तालीससहस्सा केवलिसाहुणीणं संखा, ओहिणाणिणं णवसहस्सा, मणपज्जवनाणिणो दुवालससहस्सा छ सया पन्नासा, चउद्दसपुव्विणं चत्तारिसहस्सा सत्तसया पन्नासा, वीससहस्स छ सया वेउ-व्वियलद्धिधराण संखा, बारससहस्सा छ सया पन्नासा बाईणं संखा, बावीस-सहस्सा नव य सया अणुत्तरोववाईयाणं, पन्नासलक्खकोडिसागरोवमं सासण-कालो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो गोमुहो, सासणदेवीओ चक्केसरीअ हवीअ ॥

## ऋषभदेव भगवान् का पूर्वभव–

भावार्थ—जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह स्थित पुष्कलावती विजय में लवणसमुद्र के समीप पुण्डरिकिणी नामकी नगरी थीं। वहां बज्रसेन नाम के राजा थे। उनकी रानी का नाम धारिणी था। उनके पुत्र का नाम वज्रनाभ था। वज्रनाभ ने अपना राज्य अपने पुत्र को सौंपकर भगवान् बज्रसेन के समीप प्रव्रज्या ग्रहण की। वहां पर उत्कृष्ट आराधना करके तीर्थंकर गोत्र को उपार्जन किया। वे वहां से आयुष्य पूर्ण करके तैंतीस सागरोपम की उत्कृष्ट आयुवाले सर्वार्थसिद्ध विमान में देव हुए।

सर्वार्थसिद्ध विमान से चवकर कौशल देश में (विनीता नगरी) नाभिराजा और मरु देवी माता के अषाढकृष्ण चोथ के दिन गर्भ में आये। चैत्र कृष्ण अष्टमी जन्म लिया। बीसलाखपूर्व कुंवरपद, त्रैसठ लाख पूर्व राज्यगादी समय, सुदर्शना शिविका, चैत्र कृष्ण नवमी चार हजार के सहित दीक्षा और पहली भिक्षा देनेवाले श्रेयांसकुमार,

पहली भिक्षा में शेरडी का रस, छद्मस्थ एक हजार वर्ष, चैत्यवृक्ष के नाम न्यग्रोध (वड) केवलकल्याणक फाल्गुन कृष्ण एकादशी, निर्वाण कल्याणक माघकृष्ण त्रयोदशी, देह-प्रमाण पांचसौ धनुष्य, वर्ण कांचन, लक्षण वृषभ मुख्य गणधर ऋषभसेन, मुख्य (प्रथम) साध्वी ब्राह्मी, प्रव्रज्या काल एकलाख पूर्व, गणधर चौरासी, उत्कृष्ट साधु संख्या चौरासीहजार, उत्कृष्ट साध्वी संख्या तीन लाख पांच हजार, श्रावक संख्या तीन लाख पांच हजार, श्राविका संख्या पांच चौपन हजार, साधु केवली बीस हजार, साध्वी केवली चालीस हजार, अवधिज्ञानी नव हजार, मनःपर्यवज्ञानी बार हजार छहसौ पचास, चतुर्दश पूर्वधर चार हजार सात सौ पचास, वैक्रियलब्धिवाले बीस हजार छसौ, वादी १२६५० बारह हजार छसौ पचास और अणुत्तरविमानवासी बावीसहजार नवसो मुनि थे। शासनकाल पचासलाख क्रोड सागरोपम। असंख्याता पाट मोक्ष में गया। शासन देव गोमुख, शासनदेवी चक्रेश्वरी।

## अजियनाह पहुस्सचरित्तं—

मूलम्—अह बीओ अजियनाहो वच्छदेसे—सुसीमा णामं णयरी होत्था। विमलवाहणो णाम राया, अरिंदम मुणि समीवे पवज्जा गहीअ, तत्थ वीस ठाणाइं आराहिऊण तित्थगर नाम गोय कम्मं उवाजिऊं। तओ कालमासे कालं किच्चा विजय नामं अणुत्तरविमाणे तेत्तीस सागरोवमाठिईओ देवो उववण्णो।

तओ पच्छा आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अयोज्झा नयरीए जयसत्तु-रायस्स, विजया नाम देवीए कुक्खंमि वेसाह सुक्क तेरसीए दिवसे पुत्तत्ताए उव-वण्णो, माहकिण्हा अट्ठमी दिवसे जम्म गहीअ, अट्ठारसलक्खपुव्वं कुमारपए, तेवण्णलक्खपुव्वं रज्जपए आरूढो हवइ, तओ पच्छा सहस्स परिवारेण सद्धिं वेसाह सुक्कनवमीए दिवसे सुप्पभानाम सिवियाए उववेसिऊण दिक्खिओ

जाओ, पढमभिक्खादायारो बंभदत्तो आहेसि। पढमभिक्खाए खीरं लद्धं, दुवालसवरिसं छउमत्थं पालिउं सत्तवण्ण नाम चेइयरुक्खतले पोससुक्क एक्कारस दिवसे केवलणाणं, केवलदंसणं समुप्पण्णं बीयस्स अजियनाह पहुस्स चेइयसुक्किले पंचमी दिणे निव्वाणं पाविअ। अजियपहू देहपमाणं पन्नासोत्तर चत्तारिसय धणूपमाणं, कंचणवण्णो, लक्खणं गयस्स, गणहरो गणनायगो सीहसेणो, मुहा साहुणी फग्गुणी, तस्स पव्वज्जाकालो एगलक्खपुव्वं, गणहराणां संखा णवइ, साहुसंखा एगलक्खं, साहुणीणं संखा तीससहस्सोत्तरतिलक्खा, सावगाणं संखा अट्ठाणउइ सहस्सोत्तर दोलक्खा, सावियाणं चउवण्णसहस्सोत्तर पंचलक्खा, केवली साहूणं संखा बीससहस्सा, केवलीसाहुणीणं संखा चत्तालीससहस्सा, ओहिनाणीणं संखा चत्तारि सयोत्तर नवसहस्सा, मणपज्ज-

वनाणीणं संखा पंचसय पन्नासोत्तर दुवालससहस्सा, चउद्दसपुव्विणं संखा सत्तसय बीसोत्तर तिसहस्सा, वेउव्वियलद्धिधारिणं संखा चत्तारि सयोत्तर-बीससहस्सा, वाईणं संखा चत्तारि सयोत्तर बीससहस्सा, सासणकालो तीस कोडि सागरोवमा, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो महाजक्खो, सासणदेवी अजिया आसी।

अजितनाथ भगवान् के पूर्वभव—

वत्स नामक देश में सुसीमा नाम की नगरी थी। विमलवाहन नामका राजा था। उन्होंने अरिंदम मुनि के पास दीक्षा ली। वहां पर बीस स्थानक की आराधना करके तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। वहां से मरकर विजय नामक अनुत्तर विमान में तैंतीस सागरोपम की आयुवाला देव हुआ।

अयोध्या नगरी में पिता का नाम जयशत्रु था। माता का नाम विजया था। विजय विमान में तेतीस सागरोपम का आयुपूर्ण करके उनकी कुक्षि में वैशाख शुद त्रयोदशी के दिन आये, माघ कृष्ण अष्टमी के दिन जन्म हुआ। अठारह लाख पूर्व कुंवरपद और त्रैपनलाख पूर्व राज्यगादी पर आरुढ थे। सुप्रभा नामकी शिबिका में बैठकर वैशाख सुदि नवमी के दिन एक हजार परिवार सहित दीक्षा ग्रहण की। पहेली भिक्षा देने-वाले का नाम ब्रह्मदत्त था। पहेली भिक्षा में क्या मिला ? खीर मिला, छद्मस्थ अवस्था के बारह वर्ष, चैत्यवृक्ष का नाम सतवर्ण, पोषशुक्ल एकादशी के दिन केवल कल्याणक, चैत्र शुक्ल पंचमी के दिन निर्वाण कल्याणक हुआ। उनका देहप्रमाण चारसौ पचास धनुष्य, वर्णकांचन, लक्षण गज, नायक गणधर सिंहसेन, अग्रणी साध्वी फाल्गुणी, प्रव्रज्या समय एक लाख पूर्व, गणधर संख्या नव्वे, साधु संख्या एक लाख, साध्वी संख्या तीन लाख तीस हजार, श्रावक संख्या दो लाख अट्ठानवे हजार, श्राविका संख्या

पांच लाख चौपन हजार, केवली साधु बीस हजार, केवली साध्वी की संख्या चालीस हजार, अवधिज्ञानी की संख्या नौ हजार चारसौ, मनःपर्यवज्ञानी की संख्या बारह हजार पांच सौ पचास, चतुर्दशपूर्वी की संख्या तीन हजार सातसौबीस वैक्रियलब्धिधारी की संख्या बीस हजार चारसौ, वादी की संख्या बीस हजार चारसौ, शासनकाल तीस क्रोड सागरोपम, असंख्याता पाट मोक्ष में गया, शासनदेव महायक्ष, और शासनदेवी अजिता थी।

### ३ संभवनाहपहुस्स चरित्तं—

मूलम्—धायइसंडे दीवे एरवए खेत्तम्मि 'खेमपुरी' णामा नयरी होत्था, तत्थ विउलवाहणो नाम राया, तस्स रज्जं अप्पणो पुत्ते विमलकीत्तिं दच्चा सयंपभाचारसमीवे दीक्खिओ जाओ। तत्थ बीस ठाणाइं आराहिउण तित्थ-गर नाम गोयं कम्मं उव्वजिउं तत्थ आउसं पालयित्ता नवमे उवरिल्ले गेवे-

यगे समुप्पन्ने।

तओ देवलोगाओ चइऊण सावत्थी णयरीए जितारि णामं राया, तस्स सेणादेवीए कुक्खे फग्गुणी सुक्किले अट्ठमी दिवसे गब्भम्मि उववण्णे। मिग्गसिर सुक्किल्ल चउदसीए जम्मकल्लाणं जायं, कुमारपए पंचदसलक्खपुव्वं, रज्जे-चत्तालीसलक्खपुव्वं पालिऊण, एगसहस्सपरिवारेण सद्धिं सिद्धत्था सिवियारूढो मिग्गसिर सुक्कपुण्णिमाए दीक्खिओ जाओ, पढम भिक्खादायारो सुरिंददत्तो, पढमे भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्था वत्थाकालो चउद्दससहस्सवरिसो, कत्तिय किण्ह पंचमीए साल नाम चेइयरुक्खतले केवलणाणं, चेइय सुक्किल्ल पंचमी निव्वाणं, देहपमाणं चउस्सय धणुपमाणं, कंचणवण्णो, हयलक्खणो, गणहरो गणणायगो चारुजिओ, सोमाणामं अग्गणी साहुणी, पवज्जाकालो

लक्खपुव्वो, गणहरसंखा दुआहियं सयं, साहूणं संखा दोलक्खा, साहूणीणं संखा छत्तीससहस्सोत्तर तिलक्खा, सावयाणं संखा तेणउइ सहस्सोत्तर दो-लक्खा, सावियाणं संखा छत्तीस सहस्सोत्तर छलक्खा, केवली साहूणं संखा पन्नरससहस्सा, केवलीसाहूणी संखा तीससहस्सा, ओहिणाणीणं संखा छसयो-त्तर छसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा एगसय पन्नासोत्तर दुवालससहस्सा, चउद्दसपुव्वाणं संखा एगसयपन्नासोत्तर दो सहस्सा, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा अट्ठसयोत्तर सोलससहस्सा, वाईणं संखा दुवालससहस्सा, सासणकालो दसलक्ख कोडिसागरोवमो, पट्टाणुपट्टं असंखेज्जा मोक्खं गया, सासणदेवो तिरक्खो, सासणदेवी दुरितारि ॥

३—संभवनाथ भगवान् के पूर्वभव—

धातकीखण्ड द्वीप के ऐरवत क्षेत्र में 'क्षेमपुरी' नामकी एक प्रसिद्ध नगरी थी। वहां पर 'विपुलवाहन' नाम का राजा था। उन्होंने अपना राज्य अपने पुत्र 'विमल-कीर्ति' को सौंपकर स्वयं 'स्वयंप्रभाचार्य' के समीप दीक्षित हो गया। वहां पर आराधना करने से तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। वहां पर अपना आयुष्य पूर्ण करके नौ वें ग्रैवेयक में उत्पन्न हुए।

देवलोक का आयु पूर्ण करके 'श्रावस्ती' नगरी के 'जितारी' नाम के राजा की 'सेनादेवी' रानी की कुक्षि में फाल्गुन शुक्ल अष्टमी के दिन गर्भ में आये। जन्म कल्याणक मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी, कुंवरपद १५ लाख पूर्व, राज्यगादी चौवालीस लाखपूर्व, शिबिका सिद्धार्था, दीक्षा कल्याणक एक हजार के साथ मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा, पहेली भिक्षा के देनेवाले का नाम सुरेन्द्रदत्त, पहली भिक्षा में क्या मिला ?

खीर, छद्मस्थ अवस्था के चौदह हजार वर्ष, चैत्य वृक्ष के नाम शाल, केवल कल्याणक कार्तिक कृष्ण पंचमी, चैत्र शुक्ल पञ्चमी निर्वाण कल्याणक, देहप्रमाण चारसौ धनुष्य प्रमाण, वर्ण कंचन, लक्षण, तुरी, नायक गणधर चारुजी, अग्रणी साध्वी सोमा, प्रव्रज्या एकलाख पूर्व, गणधर संख्या एक सौ दो, साधु संख्या दो लाख, साध्वी संख्या तीन लाख छत्तीस हजार, श्रावक संख्या दो लाख तीरान्नवे हजार, श्राविका संख्या छलाख छत्तीस हजार, केवली साधु संख्या पन्द्रह हजार, केवली साध्वी संख्या तीस हजार, अवधिज्ञानी छ हजार छसौ, मनःपर्यायी बारह हजार एकसौ पचास, चतुर्दश पूर्वी दो हजार एकसौ पचास, वक्रिय लब्धिधारी सोल हजार आठसौ, वादी संख्या बारहहजार शासनकाल दस लाख क्रोड सागरोपम, कितने पाट मोक्ष में गया असंख्याता, शासनदेव–तिरुक्ख और शासनदेवी दुरितारी ॥

## ४—अभिनंदणपहुस्स चरित्तं—

मूलम्—जंबूदीवे पुव्वविदेहे मंगलावई विजए रयणसंचया नयरी होत्था, तत्थ महाबलो नामं राया। संसारासारं जाणिऊण विरत्तो जाओ, विमलारिए समीवे दीक्खिओ जाओ, तत्थ तित्थगर नाम गोयं कम्मं उव्वाजियं अणसण-पुव्वं देहं चइऊण जयंत नामग चउत्थ अणुत्तरविमाणे महड्ढिओ देवो जाओ।

जंबूदीवे भारहेवासे विणीयाए नयरीए होत्था, तत्थ इक्खुवंसतिलगो संवरो राया होत्था, तस्स सिद्धत्था नामं देवी आसी। जयंत विमाणाओ चइत्ता वेसाहे सुक्क चउत्थी दिणे सिद्धत्थाए देवीए कुच्छिसि उववण्णो। माह सुक्क बीईयाए दिवसे जम्मकल्लाणगं हवीअ, अद्धदुवालसलक्खपुव्वं कुमारपए, अद्ध-सहियं छत्तीसलक्खपुव्वं रज्जं पालिउं, सहस्सपरिवारेण सद्धिं सुप्पसिज्झा सिबियाए

दूसहिय माह सुक्कचउद्दसीए दीक्खिओ जाओ, पढम भिक्खा दायगो इंददत्तो आसी, भिक्खाए खीरं लद्धं, अट्ठारससहस्सवरिसं छउमत्था वत्थायां, पोससुक्क चउद्दसीए पियंगु णाम चेइय रुक्खतले केवलकल्लाणं हवीअ, वेसाह सुक्क अट्ठमीए दिवसे निव्वाणकल्लाणगं, अद्धसहियं तिसयधणूपमाणं, वण्णो कंचणं, लक्खणं कवी, वज्जणामो गणहरो अंतराणी णाम अग्गणी साहुणी, पव्वज्जा समयो एग-लक्खपमाणो, साहुसंखा तिलक्खा, साहुणीसंखा तीस सहस्सोत्तर छलक्खा, सावगाणं संखा अट्ठ सहस्सोत्तर दो लक्खा, सावियाणं संखा सत्तावीससह-स्सोत्तर पंचलक्खा, केवली साहुसंखा चउद्दससहस्सा, केवली साहुणीणं संखा चउद्दससहस्सा, ओहिनाणीणं संखा अट्ठसया, मणपज्जवनाणीणं संखा छसय पन्नासोत्तर एक्कारससहस्सा, चउद्दसपुव्विणं पंचसयोत्तर एगसहस्सा, वेउव्विय

लद्धिधारिणं संखा सोलससहस्सा, वाईणं संखा एक्कारससहस्सा, सासणकालो नवलक्खकोडिसागरोवमो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया। सासणदेवो ईसरो, सासण देवी काली णाम ॥

४–श्री अभिनंदन स्वामी का पूर्वभव–

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में मङ्गलावती नामक विजय में 'रत्नसंचया' नाम की नगरी थी। वहां 'महाबल' नाम का राजा था। उन्होंने संसार से विरक्त होकर विमल आचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की। वहां पर तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। वह अन्त में अनशन पूर्वक देह त्याग कर जयन्त नामक अनुत्तर विमान में महर्द्धिक देव बना।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में 'अयोध्या' नामकी नगरी थी। वहां इक्ष्वाकुवंश तिलक 'संवर' नामके राजा थे। उस संवर राजा के 'सिद्धार्था' नामकी रानी थी। जयन्त विमान से चवकर वैशाख शुक्ला चतुर्थी के दिन महारानी 'सिद्धार्था' की कुक्षि में

उत्पन्न हुआ। माघ शुक्ल द्वितीया के दिन जन्म कल्याणक, साढे बारह लाख पूर्व कुंवरपद साढे छत्तीस लाख पूर्व राज्यगादी समय, सुप्रसिद्धा नामकी शिविका माघ शुक्ल चतुर्दशी को दीक्षा एक हजार के साथ, पहली भिक्षा देनेवाले का नाम इन्द्रदत्त, पहली भिक्षा में क्या मिला ? खीर। अठारह हजार वर्ष छद्मस्थ अवस्था, चैत्य वृक्ष का नाम प्रियक, पोष शुक्ल चतुर्दशी के दिन केवल कल्याणक, वेशाख सुदी अष्टमी के दिन निर्वाण कल्याणक, देहप्रमाण ३५० धनुष्य, वर्ण कंचन, लक्षण कपि, नायक गणधर वज्रनाभ, अग्रणी साध्वी अन्तरानी, प्रव्रज्या समय १ एक लाख पूर्व, साधु संख्या तीन लाख, साध्वी संख्या छ लाख तीस हजार, श्रावक संख्या दो लाख अठारह हजार, श्राविका संख्या ५ लाख सत्ताबीस हजार, केववली साधुओं की संख्या चौदह हजार केवली वाध्वी की संख्या चौदह हजार, अवधिज्ञानी की संख्या आठ सौ, मनःपर्यायज्ञानी की संख्या ग्यारह हजार छ सौ पचास, चतुर्दश पूर्वी एक हजार पांच

सौ, वैक्रिय लब्धिधारी की संख्या सोलह हजार, वादी संख्या ग्यारह हजार, शासन काल नौ लाख क्रोड सागरोपम कितनेक पाट मोक्ष में गये असंख्याता; शासनदेव ईश्वर शासन देवी काली थी।

## सुमईनाहपहुस्स चरित्तं—

मूलम्—धायइसंडे पुव्वविदेहे पुक्कलावईविजए संखपुर नाम णयरी होत्था, तत्थ जयसेणो नाम राया। तस्स सुदंसणा नाम देवी आसी, तस्स पुत्तो पुरिससीहो, सो विजयनंदण आयरियसमीवे दिक्खिओ जाओ। तत्थ वीस ठाणाइं समाराहुण तित्थगरनामगोयं कम्मं उवाजियं। तओ आउं पुण्णं किच्चा जयंतनामगे अणुत्तरविमाणे उववण्णो।

तओ चइऊण मज्झ जंबूदीवे भारहे वासे विणेया नयरी आसी। तत्थ

मेहरहो नाम राया, तस्स देवी मंगला नामासी, तओ चइऊण सावणसुक्क बीइए दिवसे मंगलादेवीए गब्भंमि पुत्तत्ताए उववण्णो, वेसाहसुक्क अट्ठमी दिणे जम्मकल्लाणगं हवीअ, चत्तालीसलक्खपुव्वं आउ, दसलक्खपुव्वं कुमारपए, एगतीसलक्खपुव्वं रज्जं पालिय विजया नाम सिविया रूढो वेसाहसुक्क नवमीए दीक्खिओ जाओ एगसहस्स परिवारेण सद्धिं, पढमभिक्खादायगो पउमनामा, पढमे भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्था वीसं वरिसाइं पियंगु चेइय रुक्खतले केवलणाणं चेइय सुक्क एक्कारस दिवसे निव्वाणकल्लाणगं, तिसयधणूंसि देहप्पमाणं, कंचणवण्णो, कौंचपक्खीलक्खणं, चमर णामो मुक्ख गणहरो, अग्गणी साहुणी कस्सपी, पव्वज्जासमयो एगलक्खपुव्वं एगसयं गणहराणं संख, तिलक्ख वीससहस्साइं साहूसंखा, पंचलक्ख तीससहस्साइं साहुणीणं

संखा एगासीइसहस्सोत्तर दोलक्खा सावयाणं संखा, सोलससहस्सोत्तर पंच-लक्खा सावियाणं संखा, तेरससहस्सा, केवलीसाहु संखा, छब्बिससहस्सा केवलिसाहुणीणं संखा, एक्कारससहस्सा ओहिणाणिणं संखा, दससहस्सा, मणपज्जवनाणिणं संखा, छसया पन्नासोत्तर दससहस्सा बाईणं संखा, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा, चत्तारिसयोत्तर अट्ठारससहस्सा णवइकोडीसहस्सा सागरोवमो सासणकालो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो तुंवरु सासणदेवी महाकाली।

(५)–श्री सुमतिनाथ स्वामीका पूर्वभव–

धातकी खण्ड के पूर्वविदेह में पुष्कलावती विजय में 'शंखपुर' नामका नगर था। वहां 'जयसेन' नामका राजा था। उसकी 'सुदर्शना' नामकी रानी थी। उसके पुत्रका नाम 'पुरुषसिंह' था। उन्होंने 'विजयनन्दन' नामक आचार्य के समीप दीक्षा ग्रहण

किया। वहां पर तीर्थकर नाम कर्म उपार्जन किया। वहां आयु पूर्ण करके अनुत्तर नामक 'जयन्त' विमान में उत्पन्न हुआ।

वहां से च्यव करके जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में 'अयोध्या' नामंकी नगरी थी। वहां मेघरथ नाम के राजा थे। उनकी रानी का नाम 'मंगला देवी' था। देवलोक का आयु पूर्णकर श्रावण शुक्ला द्वितीया के दिन 'मंगला देवी' रानी की कुक्षि में गर्भपने उत्पन्न हुए। चालीस लाख पूर्वका आयु था। वैशाख शुक्ल अष्टमी के दिन जन्म कल्याणक, दसलाख पूर्व कुंवरपद पर, उनतीस लाख पूर्व राज्यगादी पर आरूढ हुए। विजया नामकी शिबिका वैशाख शुक्ल नवमी दीक्षा कल्याणक एक हजार के साथ, पहली गोचरी के दाता का नाम पद्म, पहली गोचरी में क्या मिला ? खीर। छद्मस्थ अवस्था का वरस २० बीस वर्ष, चैत्य वृक्ष का नाम प्रियंगु, केवल कल्याणक, चैत्र शुक्ल एकादशी, निर्वाण कल्याणक चैत्र शुक्ल नवमी, देह प्रमाण तीन सौ धनुष, वर्ण कंचन, लक्षण क्रौंच पक्षी,

नायक गणधर चमरजी, अग्रणी साध्वी काश्यपी, प्रव्रज्या समय एक लाख पूर्व गणधर संख्या एक सौ साधु संख्या तीन लाख बीस हजार, साध्वी संख्या ५ लाख तीस हजार, श्रावक संख्या दो लाख ८१ एकासी हजार, श्राविका संख्या ५ पांच लाख १६ सोलह हजार, साधु केवली १३ तेरह हजार, साध्वी केवली २६ छवीस हजार अवधि ज्ञानी ११ ग्यारह हजार, मनःपर्यायी १० दस हजार वैक्रियलब्धिधारीकी संख्या १८४०० अठारह हजार चारसौ, वादी संख्या १०६५०. शासनकाल ९० नव्वे हजार करोड सागरोपम. कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता. शासनदेव तुंबरू शासन देवी महाकाली ॥५॥

## पउमप्पह तित्थयरस्स चरित्तं

मूलम्—धायइसंडे पुव्वविदेहे वच्छ विजयम्मि सुसीमा नाम णयरी होत्था, तत्थ अपराजिओ नाम सूरो वीरो राया रज्जं कासी। सव्वा पजा सुह-

पुव्वगं आसी। एगया तत्थ णयरीए अरिहंतो भगवंतो समवसारिअ। अपराजिओ राया अरिहंत भगवं तस्स दंसणट्ठं आगओ। भगवंतस्स देसणं सोच्चा वेरग्गं जाओ, नीजपुत्ते रज्जं ठवित्ता भगवंत समीवे दीक्खिओ जाओ। उक्किट्ठं तवसंजमं आराहिऊण तित्थगरनामगोयं कम्मं उवाजियं अंतसमए संलेखणा पुव्वगं देहं चइऊण उवरिम गेवेयगस्स महड्ढिओ देवो जाओ।

एगतीस सागरोवमं ठिइं पालित्ता तओ पच्छा आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कौसांबी नयरी सिरीधर राया सुसमादेवी गब्भंमि पुत्तत्ताए माहकिण्हछट्ठदिणे, जम्मकल्लाणगं कत्तिय किण्ह बारसे दिवसे हविय, अद्धसहियं सत्तलक्खपुव्वं कुमारपए, अद्धसहियं एक्कीसलक्ख-

पुव्वं रज्जं पालिय, एगसहस्स परिवारेण सद्धिं वेजयंत सिवियंआरोहिय-कत्तिय किण्हा तेरसे दीक्खिओ जाओ। पडम भिक्खादायारो सोमदेवो, भिक्खाए खीर लद्धं, छउमत्थावत्था कालो छम्मासा, छत्ताभचेइय रुक्खतले केवलणाणं, चेइय सुक्कपुण्णिमाए निन्नावं, अड्ढाइज्जसयधणूदेहपमाणं, वण्णो रत्तो, लक्खणं पउमकमलं, गणनायको गणहरो सुव्वयो, अग्गी साहुणी रयणा, पवज्जाकालो एकलक्खपुव्वो, सत्त अहियं सया गणहराणं संखा, तीससहस्सोत्तर तिलक्खा साहुसं ख, बारससहस्सोत्तर चत्तारि लक्खा साहुणी संखा, छावत्तरिसहस्सोत्तर दोलक्खा सावगाणं संखा, पंचसहस्सोत्तर पंचलक्खा सावियाणं संखा, केवली साहुसंखा बारस सहस्सा, केवलीसाहूणी संखा चउव्वीससहस्सा, ओहिणाणीणं संखा दससहस्सा, मणपज्जवनाणीणं तिसयोत्तर दससहस्सा,

चउद्दसपुव्वी संखा तिसयोत्तर दोसहस्सा, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा अट्ठसयोत्तर सोलससहस्सा, वाईणं संखा छण्णउइ सया, सासणकालो नवकोडिसागरोवमो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो कुसुमो, सासणदेवी अच्चुया नामा॥

६—पद्मप्रभस्वामी का पूर्वभव

धातकी खण्डद्वीप के पूर्व विदेहक्षेत्र के वत्स विजय में सुसीमा नामकी नगरी थी। वहां 'अपराजित' नामके शूरवीर राजा राज्य करते थे। उनके राज्य में सारी प्रजा सुख पूर्वक निवास करती थी।

एक बार अरिहंत भगवान् का नगरी में आगमन हुआ। राजा भगवान् के दर्शन करने गया और उनकी वाणी सुनने लगा। भगवान् की वाणी सुनकर उसे वैराग्य हो गया। उसने अपने पुत्र को राजगद्दी पर विठला कर उत्सव पूर्वक भगवान् के समीप

दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा ग्रहण के बाद उत्कृष्ट तप संयम की आराधना करते हुए उसने 'तीर्थङ्कर' नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्तिम समय में संलेखना पूर्वक देह का त्याग कर वह सर्वोच्च ग्रैवेयक में महान ऋद्धि सम्पन्नदेव बना। वहां से च्यवकर ग्रैवेयक देवलोक की स्थिति ३१ एकत्तीस सागरोपम जन्मनगरी कौशाम्बी, पिता का नाम श्रीधर राजा, माता का नाम सुषमा, आयुष्य ३० तीसलाख पूर्व, गर्भ कल्याणक माघ कृष्ण छट्ठ, जन्म कल्याणक कार्तिक कृष्ण १२ द्वादशी, कुंवरपद साढे सातलाख पूर्व, राज्य गादी समय २१॥ साढे एकीसलाख पूर्व, शिबिका वैजयन्त, दीक्षा कल्याणक कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी, एकहजार के साथ, पहली गोचरी देनेवाला का नाम सोमदेव पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थावस्था का काल छ महीना, चैत्यवृक्ष का नाम छत्राभ, केवली कल्याणक चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, निर्वाण कल्याणक मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशी, देहप्रमाण २५० धनुष, वर्ण लाल, लक्षण पद्मकमल, नायक गणधर सुव्रतजी,

अग्रणी साध्वीजी रत्ना, प्रव्रज्या समय एकलाख पूर्व, गणधर संख्या १०७ एकसौ सात साधु संख्या तीनलाख तीस हजार, साध्वी संख्या चार लाख बारह हजार, श्रावक संख्या दो लाख ७६ छिहतर हजार, श्राविका संख्या पांच लाख ५ पांच हजार, साधु केवली बारह हजार साध्वी केवली २४ चौबीस हजार, अवधिज्ञानी १० दस हजार, मनःपर्यायी १० हजार तीनसौ, चतुर्दशपूर्वी दो हजार तीनसौ वैकुर्विक सोलह हजार एकसौ आठ वादी संख्या ९६०० छियानवे सौ । शासन काल नव हजार करोड सागरोपम, कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता, शासनदेव कुसुम, शासन देवी अच्युता ॥६॥

## सत्तमं सुपासनाह चरित्तं—

मूलम्—धायइसंडे दीवे पुव्वविदेहम्मि खेमपुरी' णाम रमणिज्ज णयरी होत्था, तत्थ णंदीसेणो नाम पतावी राया होत्था, स धम्मिओ आसी, धम्मेण चेव वित्तिं कप्पेमाणा संसारमसारं जाणिऊण विरत्तिभावो हविअ। सो अरि-

मद्दण थेर आयरिय समीवे दीक्खिओ जाओ। वीस ठाणाइं आराहिऊण तित्थगर नाम गोयं कम्मं उवाजियं अंतसमए संलेहणं संथारगं किच्चा समाहिमरणं किच्चा गेवेज्जविमाणे देवत्ताए उववण्णो।

छट्ठ गेवेज्जग देवलोगस्स अट्ठाइस सागरोवमं ठिइं पालिऊण तओ चविय वाणारसीए नयरीए जम्मकल्लाणं हवीअ, तस्स पिया नाम पतिट्ठसेणो, माया नाम पुढवी आसी, आऊ वीसलक्खपुव्वं आसी, गब्भकल्लाणग भद्दवयकिण्ह अट्ठमीदिणे, जम्मकल्लाणगं जेट्ठ सुक्कबारस दिवसे, पंचलक्खपुव्वं कुमारपए, चउद्दसलक्खपुव्वं रज्जं किच्चा, एगसहस्स परिवारेण सह जयंती नाम सिवियारूढो जेट्ठसुक्कतेरसे दिवसे दीक्खिओ जाओ। पढम भिक्खादायारो माहिंद नामा, पढमे भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्था नवमासा, सिरीस नाम चेइयरुक्खतले

फग्गुणकिण्ह छट्ठादिवसे केवलणाणं सुपासपहुस्स समुप्पण्णं। फग्गुण किण्हा सत्तमी दिवसे निव्वाणं, द्विसयधणुप्पमाण देहमाणं, कंचणवण्णो देहो, सोवत्थियलक्खणं, गणणायग गणहरो विदब्भो, अग्गणी साहुणी सोमा, पव्वज्जाकालो एकलक्खपुव्वो, चत्तारिसयोत्तर अट्ठसहस्सा वाईणं संखा, पंचाणउइगणहराणां संखा, तिलक्खा साहूसंखा, तीससहस्सोत्तरा चउलक्खा, साहूणीणं संखा, सत्तावण्णसहस्सोत्तर दो लक्खा सावगाणं संखा तेणउइ सहस्सोत्तर चउलक्खा सावियाणं संखा, एक्कारससहस्सा केवली साहूसंखा, बावीस सहस्सा, केवलीसाहूणीणं संखा, ओहिणाणीणं संखा नवसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा एगसय पन्नासोत्तर नवसहस्सा, चउद्दसपुव्वी संखा तिसयपन्नासोत्तर दो सहस्सा, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा तिसयोत्तरपन्नरससहस्सा,

सासणकालो नवसयकोडिसागरोवमो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो मायंगो, सासणदेवी संता आसी ।

### ७—श्रीसुपार्श्वनाथजी का पूर्वभव

धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वविदेह में 'क्षेमपुरी' नामकी रमणीय नगरी थी। वहां 'नन्दिषेण' नामका प्रतापी राजा राज्य करते थे। वे धर्मात्मा थे। धर्ममय जीवन व्यतीत करने के कारण उन्हें संसार के प्रति विरक्ति हो गई। उन्होंने 'अरिमर्दन' नामक स्थविर आचार्य के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। उत्कृष्ट भावना से तप और संयम की साधना करते हुए 'नंदिषेण' मुनिने तीर्थङ्कर नामकर्मका उपार्जन किया। अन्तिम समय में संलेखना संथारा करके समाधि पूर्वक देह का त्याग किया और काल धर्म पाकर ग्रैवेयक विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए।

वहां से च्यवकर छट्ठा ग्रैवेयक देवलोक का स्थिति २८ अठाईस सागरोपम, जन्म

नगरी वाणारसी, पिता का नाम प्रतिष्ठसेन, माता का नाम पृथ्वी आयुष्य वीसलाख पुर्व, गर्भकल्याणक भाद्रपद कृष्णअष्टमी जन्मकल्यणक ज्येष्ठशुक्ल द्वादशी, कुंवरपद ५ लाख पूर्व, राज्यगादी समय १४ चौदहलाख पूर्व, शिबिका जयन्ती, दीक्षा कल्याणक ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी १ एक हजार के साथ, पहली गोचरी देनेवाले का नाम महेन्द्र पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का ९ मास चैत्यवृक्ष का नाम शिरिष, केवल कल्याणक फाल्गुन कृष्ण छट्ठ, निर्वाण कल्याणक फाल्गुन कृष्ण सप्तमी, देह प्रमाण दो सौ धनुष, वर्ण कंचन, लक्षण स्वस्तिक- नायक गणधर विदर्भजी, अग्रणी साध्वी सोमा, प्रव्रज्या समय १ एकलाख पूर्व, वादी संख्या ८४०० चौरासी सौ, गणधर संख्या ९५, साधु संख्या तीन लाख, साध्वी संख्या चारलाख तीसहजार, श्रावक संख्या दो लाख ५७ हजार, श्राविका संख्या ४ लाख ९३ वें हजार, साधु केवली ११ ग्यारह हजार, साध्वी केवली २२ बावीस हजार अवधिज्ञानी ९ नौ हजार, मनःपर्यायी नव हजार एक

सौ ५० पचास, चतुर्दश पूर्वी दो हजार तीनसौ पंचास, वैकुर्विक १५ पन्द्रह हजार तीन सौ, शासन काल ९ नौ सौ करोड सागरोपम, कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता शासनदेव मातंग शासन देवी शान्ता ॥७॥

## अट्ठम चंदप्पभसामिचरित्तं—

मूलम्—धायइसंडे दीवे पुव्वविदेहे मंगलावई विजए रयणसंचया नाम णयरी होत्था, तत्थ पउम नाम वीर राया होत्था, सो संसारे वसंतो वि विरतो आसी, किमवि कारणं पाविऊण संसाराओ विरत्तो जाओ, सो जुगंधर आयरिय समीवे दिक्खिओ जाओ, चिरकालं उक्किट्ठ तवसंजमं पालिऊण तित्थगर नाम गोयं कम्मं उवाजिऊं, आउपुण्णं किच्चा पउमनाभ मुणी वेजयंत नामगविमाणे इड्ढिसंपण्णो देवो जाओ।

तेंतीस सागरोवमं ठिइं पुण्णं किच्चा तओ चविय चंदपुरी णयरीए तस्स जम्मं हविअ। तस्स पिया महासेणो, माया नाम लच्छी, आउ दसलक्खपुव्वं, गब्भकल्लाणगं चेइय किण्हपक्ख पंचमीए, पोस किण्हबारसाहे दिवसे जम्म-कल्लाणं हविअ, कुमारपए अद्ध तइयलक्खपुव्वं, अद्धसत्तलक्खपुव्वं रज्जं पालिय, तओ पच्छा सहस्स परिवारेण सद्धिं अपराजिया सिविया रूढोपोस-किण्हा तेरसे दिवसे दिक्खिओ जाओ, पढम भिक्खादायारो सोमदत्तो, पढम भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्था छमासा, फग्गुणी किण्ह सत्तमीए नाग-रुक्ख चेइय रुक्खतले केवलणाणं, भद्दवकिण्ह अट्ठमीदिणे निव्वाणं, एगसय पन्नासं धणूंसि देहपमाणं, गोरवण्णं, चंदलक्खणं, णायग गणहरो दीन कण्णो, अग्गणी साहूणी सोमाणी, एगलक्खपुव्व पव्वज्जाकालो, गणहराणं संखा

तिणउवइ, साहु संखा दुलक्खा पन्नाससहस्सा, साहुणी संखा तिलक्ख असीइं सहस्सा, सावगसंखा पंचसहस्सोत्तर दोलक्खा, सावियाणं संखा एगणवइसहस्सोत्तर चत्तारिलक्खा, केवली साहूणं संखा दससहस्सा, केवली-साहुणीणं संखा बीससहस्सा, ओहिनाणीणं संखा अट्ठसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा अट्ठसहस्सा, चउद्दसपुव्विणं संखा दोसहस्सा, वेउव्वियलद्धिणं संखा चउद्दससहस्सा, वाईणं संखा छावत्तरिसया, सासणकालो णउइकोडिसागरो-वमो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो विजयो, सासणदेवीअ जाला।

## ८—चन्द्रप्रभस्वामी का पूर्वभव

धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में मंगलावती विजय में 'रत्न संचया' नाम की नगरी थी। वहां 'पद्म' नाम के वीर राजा राज्य करते थे। वे संसार में रहते हुए

भी जल कमलवत् निरासक्त थे। कोई कारण पाकर उन्हें संसार से विरक्ति हो गई और उन्होंने युगन्धर नाम के आचार्य के समीप दीक्षा ग्रहण कर ली। चिरकाल तक संयम का उत्कृष्ट भाव से पालन करते हुए उन्होंने तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया। आयु पूर्ण होने पर पद्मनाभमुनि वैजयन्त नामक विमान में ऋद्धि सम्पन्न देव हुए।

वहां से च्यवकर वजयन्त विमान की स्थिति तेंतीस सागरोपम जन्म नगरी चन्द्रपुरी पिता का नाम महासेन माता का नाम लक्ष्मी आयुष्य १० लाख पूर्व गर्भ कल्याणक चैत्र कृष्णपक्ष पंचमी जन्म कल्याणक पौष कृष्ण द्वादशी. कुंवरपद अढाई लाख पूर्व राज्यगादी समय साढे छ लाख पूर्व, शिविका अपराजिता. दीक्षा पौषकृष्ण त्रयोदशी एक हजार के साथ, पहेली गोचरी देनेवाले का नाम सोमदत्त, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था छमास, चैत्य वृक्ष का नाम नाग क्ष. केवल कल्याणक फाल्गुन कृष्ण सप्तमी निर्वाणकल्याक भाद्रपद कृष्ण अष्टमी, देह प्रमाण एक सौ ५०

पचास धनुष वर्ण श्वेत, लक्षण चन्द्र, नायक गणधर दीन कर्ण; अग्रणी साध्वी सोमाणी, प्रव्रज्या समय एक लाख पूर्व, गणधर संख्या ९३ तेरानवे, साधु संख्या दो लाख पचास हजार, साध्वी संख्या तीन लाख अस्सी हजार, श्रावक संख्या दो लाख ५ पांच हजार, श्राविका संख्या ४ चार लाख ९१ वे हजार, साधु केवली १० दशहजार, साध्वी केवली २० बीस हजार अवधिज्ञानी आठ हजार, मनः पर्यायी आठ हजार चतुर्दश पूर्वी दो-हजार वैकुर्बिक १४ चौदह हजार, वादी ७६०० छिहोत्तर सौ, शासनकाल ९० नव्वेकरोड सागरोपम, कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता, शासनदेव विजय शासन देवीज्वाला ॥८॥

## नवमं सुविहिनाहचरित्तं–

मूलम्–पुक्खरवरदीवड्ढे पुव्वविदेहम्मि पुक्खलावई विजयो होत्था। तस्स णयरी पुंडरिगिणी आसी। तत्थ महापउमो राया आसी। सो महा-धम्मसीलो पजावच्छलो आसी। सो संसाराओ विरत्तो जाओ, स जगण्णद्

नाम थेरसमीवे दिक्खिओ जाओ, एगावलि पभिइओ घोर तवं किच्चा महापउम मुणीना तित्थगरनामं गोयं कम्मं उवाजियं। अंते सुभज्झवसाएण कालावसरे कालं किच्चा आणय देवविमाणे महड्ढिओ देवो जाओ।

एगूणवीसं सागरोवमं ठिइं पुण्णं किच्चा तओ चइऊण कार्कदिए नयरीए, सुग्गीवो नाम राया, रामा देवी गब्भंमि आगच्छिय, फग्गुण किण्ह नवमीए गब्भकल्लाणगं, मिग्गसिर किण्हपंचमीए जम्मकल्लाणग, आउदुलक्खपुव्वं, कुमारपए पन्नाससहस्सपुव्वं, एकलक्खपुव्वं रज्जं पालिऊण अरुणपभासिवियारूढो सहस्सपरिवारेण सद्धिं मिग्गासिरकिण्हछट्ठीए दिवसे दिक्खीओ जाओ, पढमभिक्खादायारो पुस्सो, पढमे भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्था कालो चत्तारि सहस्स वरिसा, भावी नाम चेइय रुक्खतले कत्तिय

सुक्कतइयदिवसे केवलणाणं, भद्दव सुक्कनवमीए निव्वाणं, एगसयधणुपमाणं देहमाणं, गोरवण्णो, मच्छलक्खणं, वराह नाम नायग गणहरो, अग्गणी साहुणी वारुणी, पव्वज्जाकालो पन्नास सहस्सपुव्वो, गणहराणं संखा अट्ठासीइ, साहुणं संखा दोलक्खा, साहुणीणं संखा, तिलक्खबीससहस्सा, सावगाणं दोलक्खएगूणतीससहस्सा, सावियाणं संखा, चत्तारिलक्ख एगसत्ततिसहस्सा, केवलीसाहूणं संखा, पंचसयोत्तर सत्तसहस्सा, केवलिसाहुणीणं संखा, पण्णरससहस्सा, ओहिणाणिणं संखा, चउरासीइसया, मणपज्जवनाणिणं संखा, पन्नत्तरिसया, चउदसपुव्वी पण्णरससया, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा तेरससहस्सा, वाईणं संखा छसहस्सा, सासणकालो नवकोडी सागरोवमो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो अजियो नामा, सासणदेवी सुयारा ॥

## ९—श्रीसुविधिनाथ का पूर्वभव

पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्व विदेह में पुष्कलावती विजय है। उसकी नगरी 'पुंडरीकिनी' थी। महापद्म वहां का राजा था। वह बडा ही धर्मात्मा तथा प्रजावत्सल था। वह संसार से विरक्त हो गया और उसने जगन्नद नामक स्थविर मुनि के पास दीक्षा ग्रहण की। एकावली जैसी कठोर तपश्चर्या करते हुए महापद्म मुनि ने तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में वे शुभ अध्यवसाय से मर कर आणत नामक देव विमान में महर्द्धिकदेव रूप में उत्पन्न हुए।

वहां से च्यवकर ९ देवलोक की स्थिति १९ सागरोपम, जन्मनगरी कांकदी, पिता के नाम सुग्रीव, माता का नाम रामा आयुष्य २ लाख पूर्व गर्भ कल्याणक फल्गुन कृष्ण नवमी जन्म कल्याणक मार्गशीर्ष कृष्ण ५ पञ्चमी, कुंवरपद ५० पचास हजार पूर्व, राजगादी समय एकलाख पूर्व, शिबिका अरुण प्रभा, दीक्षा कल्याणक मिगसरवद छट्ठ ९

एक हजार के साथ, पहली गोचरी के दाता पुष्य, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का काल ४ हजार वर्ष, चैत्यवृक्ष का नाम मावी, केवल कल्याणक कार्तिक शुक्लतृतीया, निर्वाण कल्याणक भाद्रपद शुक्लनवमी, देह प्रमाण १ एक सौ धनुष वर्ण श्वेत, लक्षण मच्छ, नायक गणधर वराह, अग्रणी साध्वी वारुनी, प्रव्रज्या ५० पचास हजार पूर्व, गणधर संख्या ८८, साधु संख्या दोलाख, साध्वी संख्या तीन लाख वीस हजार, श्रावक संख्या दो लाख २९ हजार, श्राविका संख्या चार लाख ७१ हजार, साधु केवली ७ हजार पांच सौ साध्वी केवली १५ पन्द्रह हजार, अवधिज्ञानी ८४००, मनःपर्यायी ७५००, चतुर्दश पूर्वी १५ सौ, वैकुर्विक १३ तेरह हजार, वादी संख्या छ हजार, शासन काल ९ करोड सागरोपम, कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता, शासन देव अजीत, शासनदेवी सुतारा ॥९॥

## १० सीयलनाह पहुस्स चरित्तं—

मूलम्—पुक्खरद्धदीवस्स वज्जनाभविजए सुसीमा नाम णयरी होत्था, तत्थ पउमोत्तरराया रज्जं करीअ सो संसारं असारं जानिअ वेरग्गं जायं तस्स, सो अत्थग्घ आयरियसमीवे दीक्खिओ जाओ, उग्गं तवं किच्चा तित्थयर नाम गोयं कम्मं निबद्धं, अंतसमए संलेखणं संथारगं किच्चा आणयविमाणे देवत्ताए उववन्नो। बीससागरोवमं ठिइं पुण्णं किच्चा तओ दसम देवलोगाओ चविय भद्दिलपुरे दढरहो राया णंदा देवी कुक्खे पुत्तत्ताए उववण्णो। तओ पच्छा वेसाहकिण्ह छट्ठ दिवसे जम्मं हविय, आऊ एकलक्खपुव्वं, कुमारपए पणवीससहस्सपुव्वं, रज्जं पन्नाससहस्सपुव्वं, चंदप्पभा सिवियारूढो एगसहस्सपरिवारेण सद्धिं माहकिण्हा दुवालसदिवसे दिक्खिओ

जाओ । पढमभिक्खादायारो पुणव्वसु नाम, भिक्खायं खीरं लद्धं, छउमत्थावत्था तिमासा, पिलंगु नामा चेइयरुक्खतले पोसकिण्हा चउद्दसीए केवलणाणं, वेसाहकिण्हबीइयाए निव्वाणं, णउइधणूपमाणं देहमाणं, कंचणवण्णो, सिरिवच्छलक्खणं, नायक गणहरो आणंदो, अग्गणी साहुणी सुलसा, पव्वज्जा कालो पणवीससहस्सो, गणहराणं संखा एगासीइ, साहुसंखा एगलक्खा, साहुणीणं संखा छसहस्सोत्तर एगलक्खा, सावगसंखा एगूणणवइसहस्सोत्तर दोलक्खा, सावियाणं संखा अट्ठावण्णसहस्सोत्तर चउलक्खा, केवलिसाहुणं संखा सत्तसहस्सा, केवलिसाहुणीणं संखा चउदससहस्सा, ओहिनाणीणं संखा दुसयोत्तर सत्तसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा पंचसयोत्तर सत्तसहस्सा, चउद्दसपुव्वाणं संखा चत्तारि सयोत्तर एगसहस्सा, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा

दुवालससहस्सा, वाईणं संखा अट्ठावण्णसयाइं, सासणकालो एगसयछावट्ठि-लक्ख छव्वीससहस्सवरिसं ऊनं एगकोडिसागरोवमं, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया। सासणदेवो बंभणो, सासणदेवी असोगा ॥१०॥

१०-श्रीशीतलनाथ प्रभु का चरित्र-

पुष्करार्द्ध द्वीप के वज्र नामक विजय में 'सुसीमा' नामकी नगरी थी। वहां 'पद्मोत्तर' नामके राजा राज्य करते थे। उन्हें संसार की असारता का विचार करतु हुए वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने अस्ताघ नाम के आचार्य के समीप दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेकर वे कठोर तप करने लगे। तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन के बीस स्थानों में से कंई स्थानों का आराधनकर उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त समय में संथारा कर वे प्राणत नामक देव विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए।

वहां से च्यवकर १० दसवें देवलोक, देवलोक की स्थिति २० बीस सागरोपम, जन्म नगरी भद्दीलपुर, पिता का नाम दृढरथ, माता का नाम नंदा, आयुष्य १ एकलाख पूर्व, गर्भ कल्याणक वैशाख कृष्ण षष्ठी' जन्म कल्याणक माघ कृष्ण द्वादशी, कुंवरपद पचीस हजार पूर्व, राज्यगादी समय ५० हजार पूर्व, शिबिका चन्द्रप्रभा, दीक्षा कल्याणक माघ कृष्ण द्वादशी, एकहजार के साथ, पहली गोचरी दाता का नाम पूनर्वसु पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थावस्था का तीन मास, चैत्य वृक्ष पिलंगु वृक्ष, केवल कल्याणक पोष कृष्ण १४ चतुर्दशी, निर्वाण कल्याणक वैशाख कृष्ण द्वितीया, प्रमाण ९० धनुष, वर्ण कंचन, लक्षण श्रीवत्स, नायक गणधर आनन्द, अग्रणी साध्वी-सुलसा, प्रव्रज्या समय २५ हजार वर्ष, गणधर संख्या ८१, साधु संख्या १ लाख, साध्वी संख्या १ एक लाख छ हजार, श्रावक संख्या दो लाख ८९ नवासी हजार, श्राविका संख्या ४ लाख ५८ हजार, साधु केवली सात हजार, साध्वी केवली १४ हजार, अव-

धिज्ञानी ७ सात हजार दो सौ, मनः पर्यायी ७ सात हजार पांच सौ, चतुर्दश पूर्वी १ एक हजार चार सौ, वैकुर्विक १२ हजार वादी संख्या ५८०० अठावनसौ, शासन काल १ करोड सागरोपम में से १६६ लाख २६ हजार वर्ष कम, कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता; शासन देव ब्रह्मा, शासन देवी अशोका ॥१०॥

## ११ सेज्जंसनाहपहुस्स चरित्तं–

मूलम्–पुक्खरड्ढदीवस्स पुव्वंमि कच्छविजयस्स खेमा नाम णयरी होत्था, तत्थ णलिणीगुम्म नाम तेयंसी राजा होत्था, धारिणी देवी, कयाचि अणिच्चभावणापरायणो नलिनीगुम्ममहारायस्स हियए वेरग्गं पाविअ, वज्जदत्त आयरियसमीवे दिक्खिओ जाओ, उक्किट्ठ तवसंजमं पालिऊण तित्थगर नाम गोयं कम्मं निबंधइ, बहूणि वरिसाणि तवसंजमं आराहिय

आऊ पुण्णं किच्चा पाणय देवलोए महड्ढिअ देवत्ताए उववण्णो। वाईस सागरोवमं ठिइं पुण्णं किच्चा तओ देवलोगाओ चविऊण सीहपुरीए नयरीए विण्हूसेणो राया, विण्हादेवी कुक्खंमि गब्भत्ताए उववण्णो आउ चउरासीइ लक्खवरिसं, जेट्ठ किण्हा छट्ठी दिणे गब्भंमि आगओ, जम्मकल्लाणगं फग्गुण किण्हा दुवालसदिणे, कुमारपए इक्कीसलक्खवरिसाणि, दुचत्तालीसलक्खवरिसं रज्जं पालिअ, छसय परिवारेण सद्धिं सुरप्पभासिवियारूढो फग्गुणकिण्हतेरसे दिवसे दिक्खिओ जाओ, पढम भिक्खादायारो पुण्णाणंदो, भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाकालो दोमासा, माहकिण्ह अमावस्साए तिंदुरुचेइयरुक्खतले केवलणाणं, सावण किण्हा बितीयाए निव्वाणं, असीइ धणूप्पमाणं देहमाणं, कंचणवण्णो, खग्गलक्खणं, गणनायगो गणहरो कोत्थुभो, अग्गणी साहुणी

धरणी, पव्वज्जाकालो इक्कीसलक्खवरिसो, गणहराणं संखा छावत्तरि, साहु-संखा चउरासीइसहस्सा, साहुणीणं संखा तिसहस्सोत्तर एगलक्खा, सावगाणं संखा उन्नासीइसहस्सोत्तर दोलक्खा, सावियाणं संखा अडयालीससहस्सोत्तर चत्तारि लक्खा, साहु केवलीणं संखा पंचसयोत्तर छसहस्सा, केवली साहुणीणं संखा तेरससहस्सा, ओहिनाणीणं संखा छसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा छसहस्सा, चउद्दसपुव्वीणं संखा तिसयोत्तर एगसहस्सा, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा एक्कारससहस्सा, वाईणं संखा पंचसहस्सा, सासणकालो चउवण्णं सागरोवमो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो मनुजो, सासणदेवी सिरिवच्छा।११।

११–श्रीश्रेयांसनाथ प्रभु का चरित्र–

पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व में कच्छ विजय के अन्दर 'क्षेमा' नामकी नगरी थी वहां

'नलिनीगुल्म' नामका तेजस्वी एवं पराक्रमी राजा था ।

एक बार अनित्य भावनाओं में लीन हुए महाराजा नलिनीगुल्म के हृदय में वैराग्य बस गया-उन्होंने वज्रदत्त मुनि के पास प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। साधना में उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए उन्होंने तीर्थकर नामकर्म का बंध किया। वे बहुत वर्षों तक तप संयम का पालत करते हुए आयु पूर्ण करके बारहवें देवलोक में महार्द्धिकदेव रूप से उत्पन्न हुए ।

वहां से च्यवकर स्थिति बाईस सागरोपम, जन्म नगरी सिंहपुरी, पिता के नाम विष्णु-सेन, माता का नाम विष्ना, आयुष्य ८४ लाख वर्ष, गर्भ कल्याणक ज्येष्ठ कृष्णा षष्ठी, जन्मकल्याणक फाल्गुन कृष्ण द्वादशी, कुंवरपद २१ लाख वर्ष, राज्यगादी समय ४२ लाख वर्ष, शिबिका सूरप्रभा, दीक्षा कल्याणक फाल्गुण कृष्ण त्रयोदशी. छ सौ के साथ पहली गोचरी के दाता का नाम पूर्णानंद, पहली गोचरी में क्या मिला खीर 'छद्मस्थ

अवस्था का समय दो मास. चैत्र वृक्ष का नाम तिंदुरु. केवल कल्यणक माघ कृष्ण अमावास्या. निर्वाण कल्याणक श्रावण कृष्ण द्वितीया. देहप्रमाण अस्सी धनुष. वर्ण कंचन. लक्षण खड्ग नायक गणधर कौस्तुभ. अग्रणी साध्वी धरणी. प्रव्रज्या समय २१ लाख वर्ष. गणधर संख्या ७६, साधु संख्या ८४ हजार, साध्वी संख्या १ एक लाख तीन हजार. श्रावक संख्या २ लाख ७९ उन्नासी हजार. श्राविका संख्या ४ चार लाख ४८ अडतालीस हजार. साधु केवली ६ हजार ५ पांचसौ. साध्वी केवली १३ हजार, अवधि-ज्ञानी छहजार मनःपर्यायी ६ हजार. चतुर्दश पूर्वी १ हजार तीन सौ वैकुर्विक ११ ग्यारह हजार. वादी संख्या ५ पांच हजार, शासनकाल ५४ सागर, कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता, शासनदेव मनुज, शासन देवी श्रीवत्सा ॥११॥

## १२ वासुपुज्जपहुचरित्तं–

मूलम्–पुक्खरदीवड्ढे पुव्वविदेहे मंगलावई विजए रयणसंचया नाम

णयरी होत्था, तत्थ पउमोत्तर नाम राया आसी, धम्मिट्ठो नाई पजापालगो परक्कमी आसी, सो संसारं चइऊण वेरग्गभावेण वज्जनाभ मुणीरायसमीवे दिक्खिओ जाओ। उग्ग तव संजम पभावेन तित्थगर नाम गोयं कम्मं निबंधइ, तत्थ आउ पुण्णं किच्चा पाणए दुवालसदेवलोए महड्ढिओ देवो जाओ।

तओ पच्छा चविऊण दसमे देवलोगे देवलोगस्स वीससागरोवमं ठिइं पुण्णं किच्चा तओ चविऊण चंपानयरीए जम्म, पिया वसुराया, माउस्स नाम जया आसी, दुसत्तरिलक्खवरिसं आऊ, जेट्ठसुक्क नवमीए गब्भम्मि आगओ, फग्गुणकिण्हा दुवालसदिवसे जम्मकल्लाणगं, कुमारपए अट्ठारसलक्खवरिसं, रज्जं करीअ, एगसहस्स परिवारेण सद्धिं फग्गुणकिण्हा तइआ दिवसे अग्गि-सप्पभा सिबियारूढो दिक्खिओ जाओ। पढम भिक्खादायारो सुणंदो नाम,

पढमे भिक्खाए खीरं लद्धं । छउमत्थावत्था एगो मासो, पाडल नामग चेइय-रुक्खतले माहसुक्क वीइयाए केवलणाणं, आसाढ सुक्क चउद्दसी दिवसे निव्वाणं, देहमानं सत्तरिधणुप्पमाणं, रत्तवण्णो, महीखलक्खणो, णायगगणहरो सुहमो (सुधर्म), अग्गणी साहुणी धारिणी, पव्वज्जाकालो चउव्वन्नलक्खवरिसो, गण-हराणं संखा छासट्ठ, साहुसंखा दुसत्तरिसहस्सा, साहूणी संखा, एगलक्खा सावगाणं संखा पण्णरससहस्सोत्तर दो लक्खा, सावियाणं संखा छत्तीससहस्सो-त्तर चत्तारिलक्खा साहू केवली छसहस्सा, साहूणीकेवलीणं संखा, दुवालस सहस्सा, ओहिणाणीणं संखा चत्तारिसयोत्तरपंचसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा छसहस्सा, चउद्दसपुव्वी दोसोत्तरं एगसहस्सं वेउव्वियलद्धिधराणं संखा दस सहस्सा, वाईणं संखा सत्तसयोत्तरचत्तारिसहस्सा, सासणकालो

तीससागरोवमो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया। सासणदेवो सुकुमारो सासण-देवी पवरा आसी ॥१२॥

१२–श्रीवासुपूज्यभगवान् का चरित्र–

पुष्कर द्वीपार्ध के पूर्व विदेह क्षेत्र के मंगलावती विजय में रत्न संचया नाम की नगरी थी। वहां के शासकका नाम पद्मोत्तर था, वह धर्मात्मा न्यायी प्रजापालक और पराक्रमी था। उसने संसार का त्याग करके 'वज्रनाभ' मुनिराज के पास दीक्षा धारण की। संयम की कठोर साधना करते हुए उसने तीर्थंकर गोत्र का बंध किया और आयुष्य पूर्ण करके प्राणत कल्प में महर्द्धिक देव बना।

वहां से च्यवकर १० वें देवलोक, देवलोक की स्थिति २० सागरोपम, जन्म नगरी चंपानगरी, पिता का नाम वसुराजा, माता का नाम जया, आयुष्य ७२ लाख वर्ष, गर्भ कल्याणक ज्येष्ठ शुक्ल नवमी, जन्म कल्याणक फाल्गुन कृष्ण द्वादशी, कुंवर पद १८

लाख वर्ष, राज्यगादी समय, राज नहीं किया। शिविका अग्नि सप्रभा, दीक्षा फाल्गुन कृष्ण तृतीया, एक हजार के साथ, पहली गोचरी दाता का नाम सुनंदा पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का है एकमास, चैत्यवृक्ष का नाम पाटल, केवल कल्याणक माघ शुक्ल द्वितीया, निर्वाण कल्याणक अषाढ शुक्ल चतुर्दशी, देह प्रमाण ७० धनुष वर्ण लाल, लक्षण महीष, नायक गणधर सुधर्म, अग्रणी साध्वी धारिणी, प्रव्रज्या समय ५४ लाख वर्ष, गणधर संख्या ६६ साधु संख्या ७२ हजार, साध्वी संख्या दो लाख पन्द्रह हजार, श्राविका संख्या ४ लाख छत्तीस हजार, साधु केवली ६०००, साध्वी केवली १२ हजार, अवधिज्ञानी ५ हजार चार सौ, मनःपर्यायी छ हजार, चतुर्दश पूर्वी १ हजार दो सौ, वैकुर्विक १० हजार, वादी संख्या ४७०० सेंतालीस सौ, शासन काल ३० सागरोपम, कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता; शासनदेव सुकुमार, शासनदेवी प्रवरा ॥१२॥

## १३ विमलनाहपहुस्स चरित्तं–

मूलम्–धायइसंडदीवे पुव्वविदेहंमि भरहनामगविजए महापुरी नाम नयरी होत्था। तत्थ पउमसेणो नाम राया आसी। स धम्मिट्ठो नायसिलो आसी। सो सव्वगुत्त आयरियसमीवे दिक्खिओ जाओ, वीस ठाणाइं आराहित्ता तित्थगरनामगोयं कम्मं उवाजियं। अंतसमए संलेखणं संथारगं किच्चा आउं पुण्णं किच्चा सहस्सारे देवलोगे देवो जाओ।

अट्ठमे देवलोगस्स ठिइं अट्ठारस सागरोवमं पुण्णं किच्चा तओ चविऊण कंपिलपुरे जम्म, पियस्स नाम कित्तीभाणु, माउस्स नाम सामा, आउ सट्ठि लक्खवरिसं, गब्भकल्लाणगवेसाहसुक्कदुवालसदिणे, जम्मकल्लाणग माहसुक्कतइआ, कुमारपए पण्णरसलक्खवरिसं तीसलक्खवरिसं रज्जं करीअ, एग-

सहस्सपरिवारेण सद्धिं माहसुक्कचउत्थीए विमला सिवियारूढो दिक्खिओ जाओ, पढम भिक्खादायारो जयनामा, भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थाकालो दो मासा, पोससुक्क छट्ठदिणे जंबूनाम चेइय रुक्खतले केवलणाणं, आसोइसुक्क सत्तमीए निव्वाणं, सट्ठि धणुप्पमाणं देहपमाणं, कंचणवण्णो, सुरलक्खणो, णायग गणहरो मंदिर, अग्गणी साहूणी धरणीहरा, पव्वज्जाकालो पण्णरस-लक्खवरिसं, गणहराणं संखा सत्तवण्ण (सप्तपञ्चाशत् ५७) साहु संखा अट्ठा-सट्ठिसहस्सा, साहुणी संखा अट्ठासयोत्तर एगलक्खा, सावगाणं संखा अट्ठ-सहस्सोत्तरं दोलक्खा, सावियाणं संखा चौवीससहस्सोत्तरं चत्तारिलक्खा, केवली साहूणं संखा पंचसयोत्तरं पंचसहस्सा, केवलीसाहुणीणं संखा एक्कारस-सहस्सा, ओहिनाणीणं संखा अट्ठसयोत्तर चत्तारि सहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा

पंचसयोत्तरपंचसहस्सा, चउद्दसपुव्विणं संखा एगसयोत्तर एगसहस्सा, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा छसहस्सा, वाईणं संखा छत्तीससयाइं, सासणकालो नव सागरोवमो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो छमुहो, सासणदेवी विजया।

१३–विमलनाथ प्रभु का चरित्र–

धातकी खण्डद्वीप के प्राग्विदेह क्षेत्र में भरतनामक विजय में महापुरी नामकी नगरी थी। वहां पद्मसेन नाम के राजा राज्य करते थे। वे धर्मात्मा एवं न्याय प्रिय थे। उन्होंने सर्वगुप्त नाम के आचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की और साधना के सोपान पर चढते हुए तीर्थंकर नाम कर्मका उपार्जन किया। कालान्तर में आयुष्य पूर्ण करके सहस्रार देवलोक में उत्पन्न हुए।

वहां से च्यवकर आठवें देवलोक में, देवलोक की स्थिति १८ सागरोपम, जन्म नगरी कंपीलपुर, पिता का नाम कीर्तिभानु, माता का नाम श्यामा, आयुष्य ६० साठ

लाख वर्ष, गर्भ कल्याणक वैशाख शुक्ल द्वादशी, जन्म कल्याणक माघ शुक्लतृतीया. कुंवरपद १५ पन्द्रह लाख वर्ष, राज्यगादी समय ३० तीस लाख वर्ष. शिबिका विमला. दीक्षा कल्याणक माघ शुक्ल चौथ १ एक हजार के साथ. पहली गोचरी दाता का नाम जय. पहली गोचरी में क्या मिला खीर. छद्मस्थ अवस्था काल दो मास चैत्यवृक्षका नाम जम्बू. केवल कल्याणक पौषशुक्ल षष्ठी, निर्वाण कल्याणक आश्विन कृष्ण सातम, देह प्रमाण ६० धनुष वर्ण कंचन. लक्षणासूर नायक गणधर मन्दिर, अग्रणी साध्वी धरणीधरा. प्रव्रज्या समय १५ पन्द्रह लाख वर्ष गणधर ५७, साधु संख्या ६८ हजार. साध्वी संख्या १ एक लाख आठ सौ, श्रावक संख्या दो लाख आठ हजार, श्राविका संख्या ४ लाख २४ हजार, साधु केवली ५ पांच हजार पांच सौ, साध्वी केवली, ११ हजार अवधिज्ञानी ४ हजार ८ आठसौ, मनःपर्यायी ५ पांच हजार पांच सौ, चतुर्दश पूर्वी १ हजार एक सौ, वैकुर्वीक छह हजार, वादी संख्या ३६ छत्तीस सौ, शासन काल ९ नव सागरोपम

कितने पाट मोक्ष में गया असंख्याता, शासनदेव षण्मुख, शासन देवी विजया ॥

## १४ अनंतनाहपहुस्स चरित्तं–

मूलम्–धायइसंडे दीवे पुव्वविदेहखेत्ते एरावयविजए अरिट्ठ नाम णयरी होत्था, तत्थ पउमरहो नाम राया, सो चित्तरक्खो आयरियसमीवे दिक्खिओ जाओ। बीस ठाणाइं आराहिय तित्थयर नामगोयं कम्मं निबंधं, कालंतरे आउपुण्णं किच्चा पाणए देवलोए बीस सागरोवमठिईओ देवो जाओ, तओ पच्छा दसमाओ देवलोगाओ चविय विणेयाए नयरीए सीहसेणो राया, सुजसा देवीए गब्भंमि पुत्तत्ताए उववण्णो, आउतीसलक्खवरिसं, सावणकिण्हसत्तमीए गब्भकल्लाणगं, जम्मकल्लाणगं, वेसाहकिण्हा तेरसदिवसे, कुमारपए अद्धसहियं सत्तलक्खवरिसं, पण्णरसलक्खबरिसं रज्जं करेइ, एगसहस्सपरिवारेण

सद्धिं वेसाहकिण्हा चउद्दसी दिवसे पंचवण्णा सिवियारूढो दिक्खिओ जाओ। पढमाभिक्खादायारो नाम विजयो, पढमे भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाए तिण्णिवरिसा, चेतकिण्हा चउत्थदिणे अस्सत्थचेइयरुक्खतले केवलणाणं, चेत्तसुक्क पंचमीदिणे निव्वाणं, पन्नासधणुप्पमाणं देहमाणं, कंचणवण्णो, सीह-लक्खणो, नायक गणहरो, जसो हरो, अग्गणी साहुणी पउमावई, पव्वज्जाकालो अट्ठुत्तर सत्तलक्खवरिसो, गणहराणं संखा पन्नासा, साहुणं संखा छावट्ठि-सहस्सा, साहुणीणं संखा विसट्ठिसहस्सा, सावयाणं संखा छसहस्सोत्तर-दोलक्खा, साावियाणं संखा चउद्दससहस्सोत्तर चत्तारि लक्खा, साहु केवलीणं संखा पंचसहस्सा, साहुणी केवलीदससहस्सा, ओहिणाणीणं संखा, तिण्णि सयोत्तर चत्तारि सहस्सा मणपज्जवनाणीणं संखा, पंचसहस्सा, चउद्दसपुव्वीणं

संखा एगसहस्सा, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा अट्ठसहस्सा, वाईणं संखा बत्तीस सयाइं, सासणकालो चत्तारि सागरोवमो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासण-देवो पायालो, सासणदेवी अगुसा ॥

## १४ श्रीअनन्तनाथ प्रभु का चरित्र

भावार्थ—धातकीखण्ड द्वीप के प्राग्विदेहक्षेत्र में ऐरावत नामक विजय में अरिष्ट नाम की नगरी थी। वहां पद्मरथ नाम के राजा राज्य करते थे। वे धर्मात्मा एवं न्याय-प्रिय थे। उन्होंने चित्ररक्ष नाम के आचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की और साधना के सोपान पर चढते हुए तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया। कालान्तर में वे आयुष्य पूर्ण करके प्राणत देवलोक में उत्पन्न हुए।

वहां से च्यवकर दसवें देवलोक, देवलोक की स्थिति २० सागरोपम, जन्म नगरी

अयोध्या, पिता का नाम सिंहसेन, माता का नाम सुयशा, आयुष्य ३० लाख वर्ष, गर्भकल्याणक श्रावण कृष्ण सप्तमी, जन्म कल्याणक वैशाख कृष्ण त्रयोदशी, कुंवरपद ७॥ साढे सात लाख वर्ष, राज्यगादी समय १५ लाख वर्ष, शिविका पञ्चवर्णा, दीक्षा कल्याणक वैशाख कृष्ण चौदस एक हजार के साथ, पहली गोचरी दाता का नाम विजय, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का तीन वर्ष, चैत्यवृक्ष का नाम अश्वत्थ केवल कल्याणक चैत्रकृष्ण चौथ निर्वाण कल्याणक चैत्र शुक्ला पंचमी, देह-प्रमाण ५० धनुष, वर्ण कंचन, लक्षण सिंह, नायक गणधर यशोधर, अग्रणी साध्वी पद्मावती, प्रव्रज्या समय साढे सात ७॥ लाख वर्ष, गणधर संख्या ५०, साधु संख्या ६६ हजार, साध्वी संख्या ६२ हजार, श्रावक संख्या दोलाख छह हजार, श्राविका संख्या चार लाख १४ हजार, साधु केवली पांच हजार, अवधिज्ञानी ४ चार हजार तीनसौ, मनःपर्यायी ५ पांच हजार, चतुर्दशपूर्वी एक हजार, वैकुर्विक आठ हजार, वादी संख्या

३२०० बत्तीस सौ, शासनकाल ४ सागरोपम, कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता, शासनदेव पाताल, शासनदेवी अकुशा ॥१४॥

१५ धम्मनाह पहुस्स चरित्तं—

मूलम्—धायइसंडे दीवे पुव्वविदेहम्मि भरहनामविजए भद्दिलपुर नाम णयरी होत्था। तत्थ दढरहो नाम राया, विमलवाहण आयरियसमीवे दीक्खिओ जाओ। वीस ठाणाइं आराहिऊण तित्थगर नामगोयं कम्मं उवाजियं। अंतसमए संलेखणं संथारगं किच्चा आलोय पडिकंतिए कालं किच्चा वेजयंतविमाणे महड्ढिओ देवो जाओ।

बत्तीससागरोवमं ठिइं पुण्णं किच्चा रयणपुरी णयरीए जम्म। तत्थ भाणुसेणो नाम राया, सुवत्तादेवी कुक्खंमि पुत्तत्ताए उववण्णो। आऊ दस-

लक्खवरिसं, गब्भकल्लाणगं वेसाहसुक्कसत्तमीए, माहसुक्कतइयाए जम्मकल्लाणगं, कुमारपए अड्ढतइयलक्खवरिसं, पंचलक्खवरिसं रज्जं करीअ, एगसहस्स-परिवारेण सद्धिं सागरदत्ता सिवियारूढो माहसुक्कतेरसे दिवसे दिक्खिओ जाओ। पढमभिक्खादायारो धम्मसीहो, भिक्खाए खीरं लद्धं,। छउमत्थावत्था कालो दो वरिसा, दहिवण्ण चेइयरुक्खतले पोससुक्कपुण्णिमाए केवलणाणं, जेट्ठसुक्कपंचमीए निव्वाणं, देहप्पमाणं, पणयालीसधणुपडिमाणं, कंचणवण्णो, वज्जपक्खीलक्खणं, णायगगणहरो अरिट्ठनामा, अग्गणी साहुणी सिवा, पव्वज्जाकालो अड्ढतइयलक्खवरिसो, गणहराणं तिचत्तालीससंखा, साहुणं चउसट्ठिसहस्स संखा, साहुणीणं संखा चउसयोत्तर दिसट्ठिसहस्सा, सावगाणं चत्तारिसहस्सोत्तर दोलक्ख संखा, सावियाणं तेरससहस्सोत्तरचत्तारिलक्ख-

संखा, साहुकेवलीणं पंचसयोत्तर चत्तारिसहस्स संखा, केवलिसाहुणीणं नव सहस्स संखा, छ सयोत्तर तिण्णिसहस्स ओहिनाणीणं संखा पंचसयोत्तर चत्तारि सहस्स, मणपज्जवनाणीणं संखा, चउद्दसपुव्वीणं नवसया संखा, वेउव्वियलद्धिधराणं सत्तसहस्ससंखा, वाईणं अट्ठाइससया संखा, सासणकालो तिण्णिपल्लोवमो णूणं तिण्णिसागरोवमं, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया। सासणदेवो किन्नरो, सासणदेवी पण्णगा ॥

१५ श्रीधर्मनाथ प्रभु का चरित्र

भावार्थ—धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वविदेह में भरतनामक विजय में भद्दिलपुर नाम का नगर था। वहां दृढरथ नाम का राजा राज्य करता था। उसने विमलबाहन मुनि के समीप दीक्षा ली और कठोर साधना कर तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्तिम

समय में संथारा लिया और काल कर वैजयन्त विमान में महर्द्धिक देव बना ।

वहां से च्यवकर देवलोक की स्थिति ३२ सागर, जन्म नगरी रत्नपुरी, पिता का नाम भानुसेन, माता का नाम सुवृत्ता, आयुष्य १० लाख वर्ष, गर्भ कल्याणक वैशाख शुक्ल सप्तमी, जन्मकल्याणक माघ शुक्ल तृतीया, कुंवरपद अढाई लाख वर्ष, राज्यगादी समय ५ लाख वर्ष, शिबिका सागरदत्ता. दीक्षा कल्याणक माघ शुक्ल त्रयोदशी, एक हजार के साथ, पहली गोचरी दाता का नाम धर्मसिंह, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का समय दो वर्ष, चैत्यवृक्ष का नाम दधिपर्ण, केवल कल्याणक पौष शुक्ल पूर्णिमा, निर्वाण कल्याणक ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी देहप्रमाण ४५ धनुष, वर्णकंचन लक्षण वज्रपक्षी, नायक गणधर अरिष्ट, अग्रणी साध्वी शिवाजी, प्रव्रज्या समय अढाई लाख वर्ष, गणधर संख्या ४३ तेंतालीस, साधु संख्या ६४ हजार, साध्वी संख्या ६२ हजार चारसौ, श्रावक संख्या दोलाख चार हजार, श्राविका संख्या ४ लाख १३ तेरह

हजार, साधु केवली चार हजार पांचसौ, साध्वी केवली ९ नौ हजार, अवधिज्ञानी ३ तीन हजार ६ सौ। मनःपर्यायी ४ हजार पांचसौ, चतुर्दशपूर्वी ९ नौ सौ, वैकुर्विक सात हजार, वादी संख्या २८०० अठावीस सौ, शासनकाल ३ तीन सागरोपम ०॥ पल कम, कितना पाट मोक्ष में गया, असंख्याता, शासनदेव किन्नर शासन देवी पन्नगा ॥१५॥

## १६ सांतिनाहपहुस्स चरित्तं–

मूलम्–जंबुदीवे भारहे वासे पुंडरिगिणी णयरी होत्था, तत्थ मेहरहो राया रज्जं करेइ। मेहरहो राया सत्तसया पुत्तै सद्धिं चत्तारिसहस्स रायभि सद्धिं निज लहुभायरो दढरह सद्धिं धनरहतित्थगरसमीवे दिक्खिओ जाओ। एगलक्खपुव्वं विसुज्झ तवसंजमं आराहिऊण तित्थगर नाम गोयं कम्मं उवाजियं, अणसणपुव्वगं कालधम्मं किच्चा सव्वत्थसिद्धविमाणे तेत्तीस सागरो-

वमं ठिइओ देवो जाओ। तओ पच्छा ताओ देवलोगाओ चविऊण हत्थिणाउरे जम्मं गहीय पिऊ नाम विस्ससेणो, माउस्स नाम अइरा। आउ एगलक्खवरिसं, गब्भकल्लाणं भद्दवण किण्हसत्तमी, जम्मकल्लाणग जेट्ठकिण्हा तेरसे दिवसे, कुमारपए पणवीससहस्सवरिसं, पन्नाससहस्सवरिसं रज्जं कुणेअ, एगसहस्स परिवारेण सद्धिं नागदत्त सिबियारूढो जेट्ठकिण्हा चउद्दसी दिवसे दिक्खिओ जाओ। पढम भिक्खादायारो सुमित्त नामा, भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाकालो एगवरिसा, णंदिरुक्ख चेइयरुक्खतले पोससुक्क नवमी दिणे केवलणाणं, जेट्ठ किण्हा बारसे दिवसे निव्वाणं, चत्तालीस धणूप्पमाणं देहमाणं, कंचणवण्णो, मिगलक्खणं, नायकगणहरो चक्काउहो, अग्गणी साहुणी सूइ, पव्वज्जाकालो पणवीससहस्सो, गणहराणं संखा छत्तीसा, साहुणं

संखा दिसट्ठिसहस्सा साहुणीणं संखा छसयोत्तर एगसट्ठिसहस्सा, सावगाणं संखा दोलक्ख णवईसहस्सा, सावियाणं संखा तिलक्ख, ति नवईसहस्सा, साहु केवलीणं संखा तिसयोत्तर चत्तारि सहस्सा साहुणी केवलीणं संखा छसयोत्तर अट्ठसहस्सा, ओहिनाणीणं संखा तिसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा चत्तारि सहस्सा, चउद्दसपुव्वीणं संखा छसयातीसा वेउव्वियलद्धिधराणं छसहस्सा, वाईणं संखा चउव्वीससया, सासणकालो अद्धपल्लोवमं, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो गरुडो, सासणदेवी निप्पण्णा ॥

१६ श्रीशान्तिनाथप्रभु का चरित्र–

भावार्थ—जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में पुण्डरीकिणीनगर में मेघरथ राजा राज्य करते थे। मेघरथ राजाने अपने सात सौ पुत्रों, चार हजार राजाओं एवं अपने लघु भ्राता

दृढरथ के साथ धनरथ तीर्थंकर के समीप दीक्षा ग्रहण की। एक लाख पूर्व तक विशुद्ध तप संयम का पालन कर और तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन कर अनशन पूर्वक काल-धर्म पाकर सर्वार्थ सिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए।

वहां से च्यवकर सर्वार्थसिद्धविमान देवलोक की स्थिति ३३ सागरोपम, जन्म नगरी हस्तिनापुर पिता का नाम विश्वसेन, माता का नाम अचिरा, आयुष्य एकलाख वर्ष, गर्भकल्याणक भाद्रपद सप्तमी, जन्मकल्याणक ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशी, कुंवरपद २५ हजार वर्ष, राज्यगादी ५० हजार वर्ष, शिविका नागदत्त दीक्षा ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी, एकहजार के साथ, पहली गोचरी दाता का नाम सुमित्र, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थावस्था का समय १ एक वर्ष, चैत्यवृक्ष का नाम नन्दिवृक्ष, केवल कल्याणक पौष शुक्ल नवमी, निर्वाण कल्याणक ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी, देहप्रमाण ४० धनुष, वर्ण कंचन, लक्षण मृग, नायक गणधर चक्रायुद्ध, अग्रणी साध्वी सुई, प्रव्रज्या समय २५ हजार वर्ष,

गणधर संख्या ३६, साधु संख्या ६२ हजार, साध्वी संख्या ६१ हजार छसौ, श्रावक संख्या दो लाख ९० हजार, श्राविका संख्या तीन लाख ९३ हजार, साधु केवली ४ हजार तीन सौ, साध्वी केवली आठ हजार छसौ, अवधिज्ञानी तीन हजार, मनःपर्यायी ४ हजार, चतुर्दशपूर्वी छसौ तीस, वैकुर्विक छ हजार, वादी संख्या २४०० चौवीससौ, शासनकाल आधापल्योपम, कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता, शासनदेव गरुड, शासनदेवी निपर्णा ॥१६॥

## १७ कुंथुनाहपहुस्स चरित्तं–

मूलम्–जंबूदीवे पुव्वविदेहे आवत्त नामक देसो आसी। तत्थ खग्गी नाम णयरी होत्था, तत्थ सीहावह नाम राया आसी। निज पुत्ते रज्जं दच्चा संवरायरियसमीवे दिक्खिओ जाओ। उग्गतवसंजमं आराहिय साहु वेया-

वच्चं किच्चा तित्थगर नाम गोयं कम्मं उवाजियं। सव्वट्ठसिद्धविमाणे अहमिंदो देवो जाओ। सव्वट्ठसिद्धविमाणस्स तेंतीससागरोवमं आउपुण्णं किच्चा तओ चविऊण गजपुरे जम्मं, पिउस्स नाम सुरसेणो, माउस्स नाम सिरीदेवी, आउ पंचनउईसहस्सवरिसं, सावणकिण्हा नवमी दिवसे गब्भकल्लाणगं, विसाहकिण्ह चउद्दसी दिवसे जम्मकल्लाणगं, कुमारपए तेवीससहस्स पन्नासोत्तरं सत्तसया वीसा, सत्तचत्तालीस सहस्सवरिसं रज्जं करीअ, एगसहस्सपरिवारेण सद्धिं अभयकरा सिवियारूढो वेसाहकिण्हा पंचमीए दिक्खिओ जाओ। पढम भिक्खादायारो नाम वग्घसीहो, पढमे भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्था सोडसवरिसा, तिलगनाम चेइयरुक्खतले चेत्त सुक्कतइया केवलणाणं, वेसाहकिण्हा पडिवया निव्वाणं, पणतीसधणुप्पमाणं देहमाणं, कंचण-

वण्णो, अयलक्खणो, गणणायग गणहरो संभु, अग्गणी साहुणी अज्जू, पव्वज्जाकालो तेवीससहस्स पन्नासोत्तरं सत्तसयावरिसा, गणहराणं संखा पणतीसा, साहु संखा सट्ठिसहस्सा, साहुणी संखा छसयोत्तर सट्ठिसहस्सा, सावगाणं संखा एगलक्ख एगोन असीइसहस्सा, सावियाणं संखा तिलक्ख एकासीइसहस्सा, साहुकेवली दोसयोत्तर तिंण्णिसहस्सा, साहुणि केवलि चत्तारि सयोत्तर छसहस्सा, ओहिणाणीणं संखा एगसयोत्तर छसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा एगसयोत्तर अट्ठसहस्सा, चउद्दसपुव्वीणं संखा छसया चत्तारि, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा एगसयोत्तर पंचसहस्सा, वाईणं संखा दो सहस्सा, पल्लोवमस्स चउत्थे भागे एगसहस्स कोडिवरिसं नूण सासणकालो, पंचअहिओ पणवीससया पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो गंधव्वो, सासणदेवी अच्चुया ॥

### श्रीकुन्थुनाथप्रभु का चरित्र–

भावार्थ–जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में आवर्तनामक देश है। उस में खड्गी नाम की नगरी थी। वहां सिंहावह नाम का राजा राज्य करता था। संवराचार्य के आगमन पर वह उनके दर्शन के लिये गये। उनका उपदेश सुनकर उसे संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो गया ओर उसने अपने पुत्र को राज्यगद्दी पर स्थापित कर दीक्षा ग्रहण की वे दीक्षा लेने के बाद उच्च कोटि का तप और मुनियों की सेवा करने लगे, जिससे उन्होंने तीर्थकर नामकर्म का उपार्जन कर अन्तिम समय में समाधिपूर्वक काल पाकर सर्वार्थसिद्ध विमान में अहमिन्द्र देव बने।

वहां से च्यवकर सर्वार्थसिद्ध देवलोक की स्थिति ३३ सागरोपम, जन्मनगरी गजपूर, पिता का नाम सूरसेन, माता का नाम श्रीदेवी, आयुष्य ९५ हजार वर्ष, गर्भ-श्रावण कृष्ण नवमी, जन्मकल्याणक वैशाख कृष्ण चतुर्दशी, कुंवरपद २३७५०

तेईस हजार सातसो पचास वर्ष, राजगादी समय ४७ सैंतालीस हजार वर्ष, शिविका अभयकरा. दीक्षा कल्याणक वैशाख कृष्ण पंचमी, एक हजार के साथ पहली गोचरी दाता का नाम व्याघ्रसिंह, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थावस्था का समय १६ वर्ष, चैत्र वृक्ष का नाम तिलकवृक्ष, केवल कल्याणक चैत्र शुक्ल तृतीया, निर्वाण-कल्याणक वैशाख कृष्ण प्रतिपदा, देहप्रमाण ३५ धनुष, वर्ण कंचन. लक्षण अज, नायक गणधर शंभूजी, अग्रणी साध्वी अंजू, प्रव्रज्या समय २३७५० वर्ष, गणधर संख्या ३५, साधु संख्या साठ हजार, साध्वी संख्या ६० हजार छसो, श्रावक संख्या १ लाख ७९ उन्नासी हजार. श्राविका संख्या तीन लाख ८१ हजार. साधु केवली ३ तीन हजार दोसौ, साध्वी केवली चारसौ. अवधिज्ञानी छहजार एकसौ, मनःपर्यायी आठ हजार एकसौ चतुर्दश पूर्वी छसौ सत्तर, वैकुर्विक ५ पांच हजार १ एकसौ. वादी संख्या दो हजार, शासनकाल पाव पल्योपम में १ हजार करोड वर्ष कम. कितना पाट मोक्ष में

गया २५००५, शासनदेव गन्धर्व शासन देवी अच्युता ॥१७॥

१८ अरहनाहपहु चरित्तं—

मूलम्—जंबुद्दीवे पुव्वविदेहे सुसीमा नाम णयरी होत्था। तत्थ धणवई-राया आसी। रज्जं कुणंतो वि जिनधम्मरागं रंजिअ संवरनामा आयरियस्स उवएसं सोच्चा वेरागं जायं। तओ पच्छा नियपुत्तं रज्जं ठाविऊण संवरारिय समीवे दिक्खिओ जाओ, बीसं ठाणाइं आराहिऊण तित्थगरनामगोयं कम्मं निबंधिइ, अणसणं किच्चा समाहिपुव्वगं मरणं कुणिअ सव्वट्ठसिद्धविमाणे तेत्तीसं सागरोवम ठिईओ देवो जाओ। तओ चविऊण हत्थिणाउरे जम्मं हविअ। तत्थ राया सुदंसणा, माउस्स नाम देवो, आउ चोरासीइ सहस्स-वरिसं, फग्गुण सुक्क चउत्थ दिणे गब्भकल्लाणगं, मिग्गसिर सुक्कएकारस

दिवसे जम्मकल्लाणगं, कुमारपए इक्कीससहस्सवरिसं, बायालीस सहस्सवरिसं रज्जं कूणिअ, एगसहस्स परिवारेण सद्धिं निव्वित्तिकरा सिवियारूढो मिग्गसिर सुक्कएक्कारस दिवसे दिक्खिओ जाओ। पढमभिक्खादायारो अपराजिओ भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाकालो नवमासोत्तर तओ वरिसा, अंब-नामकचेइयरुक्खतले कत्तिय सुक्कबारसदिणे केवलणाणं, मिग्गसिर सुक्कदसमीए दिणे निव्वाणं, देहप्पमाणं तीसधणूसमाणं, कंचणवण्णो, नंदावत्तलक्खणं, णायग गणहरो कुंभो, अग्गणी साहुणी रक्खिया पव्वज्जाकालो इक्कीस सहस्स वरिसं, गणहराणं संखा तेत्तीसा, साहु संखा पन्नाससहस्सा, साहुणी संखा सट्ठिसहस्सा, सावयाणं संखा एगलक्खचोरासीइसहस्सा, सावियाणं संखा तिलक्खबावत्तरिसहस्सा, साहु केवली अट्ठसयोत्तर दो सहस्सा, साहुणी केवली-

संखा छसयोत्तर पंचसहस्सा, ओहिणाणीणं संखा, छसयोत्तर दो सहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा, दोसहस्स पंचसया एक्कावन्नं, चउद्दसपुव्वीणं संखा दसोत्तर छसया, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा तओ सयोत्तर सत्तसहस्सा, वाईणं संखा सोलससया, सासणकालो एकसहस्स, कोडिवरिसं, तेवीससहस्स, सत्त सया पन्नासा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो जक्खिंदो, सासणदेवी धारणी ॥

१८ श्रीअरहनाथप्रभु का चरित्र–

भावार्थ—जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में सुसीमा नाम की नगरी थी। वहां धनपति राजा रहते थे। वे राज्य का संचालन करते हुए भी जिनधर्म का हृदय से पालन करते थे। संवर नाम के आचार्य का उपदेश सुनकर उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने अपने पुत्र को राज्यगद्दी पर स्थापित कर संवराचार्य के समीप दीक्षा धारण कर ली।

प्रव्रजित होकर कठोर तप करने लगे। बीस स्थान की शुद्ध भावना से आराधना करते हुए उन्होंने तीथकर नामकर्म का उपार्जन किया। संयम की आराधना कर अन्तिम समय में अनशन किया और समाधिपूर्वक कालधर्म पाकर सर्वार्थसिद्ध विमान में अहमिन्द्र पद प्राप्त किया।

वहां से च्यवकर सर्वार्थसिद्ध देवलोक की स्थिति ३३ सागरोपम, जन्म नगरी हस्तिनापुर, पिता का नाम सुदर्शन माता का नाम देवी, आयुष्य ८४ हजार वर्ष, गर्भकल्याणक फाल्गुनशुक्ल चौथ, जन्मकल्याणक मार्गशीर्ष शुक्लएकादशी, कुंवरपद २१ हजार वर्ष, राज्यगादी ४२ हजार वर्ष शिबिका निवृत्तिकरा दीक्षा कल्याणक मार्गशीर्ष शुक्लएकादशी एक हजार के साथ, पहली गोचरी के दाता का नाम अपराजित, पहली गोचरीमें क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का समय ३ तीन वर्ष, ९ नौ मास, चैत्यवृक्ष का नाम आमवृक्ष, केवल कल्याणक कार्तिक शुक्ल द्वादशी निर्वाण कल्याणक मार्गशीर्ष शुक्ल दशमी देहप्रमाण

३० धनुष, वर्ण कंचन, लक्षण नन्दावर्त, नायक गणधर कुंभ, अग्रणी साध्वी रखिया, प्रव्रज्या समय २१ हजार वर्ष गणधर संख्या ३३, साधु संख्या ५० हजार, साध्वी संख्या ६० हजार, श्रावक संख्या एकलाख ८४ हजार, श्राविका संख्या तीन लाख ७२ हजार, साधु केवली दो हजार, ८ आठसौ, साध्वी केवली ५ हजार, ६ सौ, अवधिज्ञानी दो हजार, छसौ, मनःपर्यायी दो हजार पांचसौ ५१ एकावन, चतुर्दशपूर्वी छसौ दस, वैकुर्विक सात हजार, तीन सौ, वादी संख्या १६०० सोलह सौ, शासनकाल १ एक हजार करोड वर्ष, कितना पाट मोक्ष में गया २३७५०, शासनदेव यक्षेन्द्र, शासनदेवी धारणि ॥१८॥

## १९ मल्लीनाहपहुस्स चरित्तं–

मूलम्–जंबुद्दीवे महाविदेहे सलिलावई विजय होत्था। तत्थ रायहाणी वीईसोगा आसी, तत्थ महब्बलो नाम राया, तत्थ णयरीए धम्मघोस नामा

आयरिय समोसरिओ, धम्मघोसस्स देसणं सोच्चा महब्बलो राया संसाराओ विरत्तो जाओ, धम्मघोससमीवे दिक्खिओ जाओ, उग्गतवसंजमं आराहिऊण तित्थगर नाम गोयं कम्मं उवाजिउं, बत्तीससागरोवमं ठिईओ जयंत विमाणे महड्ढिओ देवो जाओ, तओ चविऊण मिहिला णयरीए जम्मं गहीय, पिउस्स नाम कुंभसेणो, माउस्स नाम पभावई, आउ पणपन्नं सहस्सवरिसं, फग्गुण सुक्क चउत्थदिणे गब्भकल्लाणगं, मिग्गसिर सुक्कएक्कारस दिवसे जम्मकल्लाणगं, कुमारपए सयवरिसं, रज्जं ण कुणिअ, तिण्णि सहस्सपरिवारेण सद्धिं मनोरमा सिबियारूढो मिग्गसिर सुक्कएक्कारसे दिणे दिक्खिओ जाओ। पढम भिक्खा-दायारो विस्ससेणो, भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाकालो एगपहरो, असोग नामक चेइयरुक्खतले पोस सुक्कएक्कारस दिणे केवलणाणं, चेइय सुक्कचउत्थ-

दिणे निव्वाणं, देहप्पमाणं पणवीसं धणूइंमाणं, नीलोवण्णो, कुंभलंछणं, णायगगणहरो भिप्फनामा, अग्गणी साहुणी बधूमई, पव्वज्जाकालो नवसयोत्तर चउवन्नसहस्सो, गणहराणं संखा अट्ठावीसं, साहुणं संखा चत्तालीससहस्सा, साहुणीणं संखा पणपन्नसहस्सा, सावयाणं संखा एगलक्ख चउरासीइसहस्सा; सावियाणं संखा तिलक्खपणसट्ठिसहस्सा, साहु केवली दो सयोत्तर तिण्णिसहस्सा, साहुणी केवली चत्तारिसयोत्तर छसहस्सा, ओहिणाणीणं संखा दो सहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा अट्ठसया, चउद्दसपुव्विणं संखा अडसट्ठुत्तर छसया, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा पणतीससया, वाईणं संखा चउद्दससया, सासणकालो चउवन्नलक्खवरिसो, सासणदेवो कुबेर, सासणदेवी वेरट्टा ॥

### १९–श्रीमल्लीनाथप्रभु का चरित्र–

भावार्थ—प्राचीन काल में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में सलिलावती विजय था। इस विजय की राजधानी का नाम वीतशोका था। वहां महाबल नाम का राजा राज्य करते थे। कुछ समय के बाद धर्मघोष मुनि का इस नगरी में आगमन हुआ। उनका उपदेश सुनकर महाराजा महाबल के मन में संसार के प्रति विरक्ति हो गई और दीक्षा धारण कर ली। दीक्षा धारणकर महाबल मुनिने उत्कृष्ट भावना से अनेक प्रकार की कठोर तपस्या प्रारंभ कर दी जिस के फल स्वरूप उन्होने तीर्थंकर नाम कर्म का बंध किया।

देवलोक से च्यवन जयंत विमान देवलोक की स्थिति ३२ सागरोपम, जन्मनगरी मिथिला पिता का नाम कुंभसेन, माता का नाम प्रभावती, आयुष्य ५५ हजार वर्ष, गर्भ कल्याणक फाल्गुन शुक्ल चौथ, जन्म कल्याणक मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी,

कुंवरपद् १०० वर्ष, राज्यगादी समय राज्य नहीं किया। शिबिका मनोरमा दीक्षा कल्याणक मिग्गसिर शुक्ल एकादशी तीन हजार के साथ, पहली गोचरी दाता का नाम विश्वसेन, पहली गोचरी में क्या मिला खीर. छद्मस्थ अवस्था का समय एक प्रहर, चैत्यवृक्ष का नाम अशोक, केवल कल्याणक मिग्गसिर शुक्ल चौथ, देह प्रमाण २५ धनुष, वर्ण नील, लक्षण कुम्भ नायक गणधर भिषम, अग्रणी साध्वी बन्धुमती, प्रव्रज्या समय ५४९०० चौपन हजार नौ सौ वर्ष, गणधर संख्या २८ साधु संख्या ४० हजार, साध्वी संख्या ५५ हजार, श्रावक संख्या एक लाख ८४ हजार, श्राविका संख्या तीन लाख ६५ पैंसठ हजार, साधु केवली तीन हजार दो सौ, साध्वी केवली छ हजार चार सौ, अवधिज्ञानी दो हजार, मनःपर्यायी आठ सौ, चतुर्दशपूर्वी छसौ, ६८ अडसठ, वैकुर्वीक ३५०० पेंतीस सौ, वादी संख्या १४०० चौदह सौ, शासनकाल ५४ लाख वर्ष, शासनदेव कुबेर, शासनदेवी वैराटय ॥१९॥

## २० मुणीसुव्वयपहुस्स चरित्तं—

मूलम्—जंबुदीवे अवरविदेहे भरहनाम विजयम्मि चंपा नाम णयरी होत्था। तत्थ सूरसेट्ठि नामग राया आसी, सो नंदमुणि समीवे दिक्खिओ जाओ। बीस ठाणाइं आराहिऊण तित्थगर नाम गोयं कम्मं निबंधिय अंतसमए संलेखणं संथारगं किच्चा अपराजियविमाणे बत्तीससागरोवमं ठिईओ महड्ढिओ देवो जाओ। तओ पच्छा ताओ देवलोगाओ चविऊण रायगिहे णयरीए जम्मं, पिउस्स नाम सुमित्तसेणो, माउस्स नाम पउमावई, आउ तीस सहस्स वरिसं, सावणसुक्क पुण्णिमाए गब्भकल्लाणगं, जेट्ठ किण्णा अट्ठमीए जम्मकल्लाणगं, कुमारपए अद्धसहियं सत्तसहस्सवरिसं, पन्नरससहस्सवरिसं रज्जं करीय, एगसहस्सपरिवारेण सद्धिं मणोहरा सिवियारूढो फग्गुण किण्हबारसे दिणे

दिक्खिओ जाओ। पढम भिक्खादायारो पभवसेणो, भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाकालो एकारसमासा, चंपग नाम चेइयरुक्खतले फग्गुण किण्ह बारसे दिणे केवलणाणं, पोस किण्हा नवमीए दिणे निव्वाणं, देहमाणं वीस धणूपमाणं, सामवण्णो, कुम्मलक्खणं, णायगगणहरो इंदकुंभो, अग्गणी साहुणी पुप्फवई, पव्वज्जाकालो अद्धसहियं सत्तसहस्सवरिसो, गणहराणं संखा अट्ठारस, साहु संखा तीससहस्सा, साहुणी संखा पन्नाससहस्सा, साव-गाणं संखा एगलक्ख बावत्तरिसहस्सा, सावियाणं संखा तिण्णिलक्ख पन्नाससहस्सा, साहुकेवली संखा अट्ठसयोत्तर एगसहस्सा, साहुणी केवली छ सयोत्तर तिण्णिसहस्सा, ओहिनाणीणं संखा अट्ठसयोत्तर एगसहस्सा, मण-पज्जवनाणीणं संखा पंचसयोत्तर एगसहस्सा, चउद्दसपुव्वीणं संखा, पंचसया,

वेउव्वियलद्धिधराणं संखा, दो सयोत्तर दो सहस्सा, वाईणं संखा, बारससया सासणकालो छलक्खवरिसो, संखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो वरुणो सासणदेवी अवखुत्ता ॥

## २०–श्रीमुनिसुव्रतप्रभु का चरित्र–

भावार्थ–जम्बूद्वीप के अपरविदेह में भरत नामक विजय में चंपानाम की नगरी थी। वहां सुर श्रेष्ठ नाम का राजा राज्य करता था। उसने नन्दनमुनि के पास दीक्षा ग्रहण की और तपस्या कर तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया। अन्तसमय में संथारा कर वह अपराजित देवलोक में अहमिन्द्र देव हुआ।

वहां से चवकर अपराजित देवलोक की स्थिति ३२ सागरोपम, जन्म नगरी राजगृह, पिता का नाम सुमित्रसेन, माता का नाम पद्मावती, आयुष्य तीस हजार वर्ष, गर्भकल्याणक श्रावण शुक्ल पूर्णिमा, जन्मकल्याणक ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी, कुंवरपद साढे

सात हजार वर्ष, राज्य गादी समय १५ हजार वर्ष, शिविका मनोहरा, दीक्षा कल्याणक फाल्गुन शुक्ल द्वादशी एक हजार के साथ, पहली गोचरी देनेवाले का नाम प्रभवसेन, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का समय ११ ग्यारह मास चैत्यवृक्ष का नाम चंपक, केवल कल्याणक फाल्गुन कृष्ण द्वादशी, निर्वाण कल्याणक पौष कृष्ण-नवमी, देह प्रमाण २० बीस धनुष, वर्ण श्याम, लक्षण कूर्म, नायक गणधर इन्द्रकुंभ; अग्रणी साध्वी पुष्पवती, प्रव्रज्या समय साढे सात हजार वर्ष, गणधर संख्या तीस हजार, साध्वी संख्या पचास हजार, श्रावक संख्या एकलाख ७२ बहत्तर हजार, श्राविका संख्या तीन लाख ५० पचास हजार, साधु केवली एक हजार आठसौ, साध्वी केवली तीन हजार छसौ, अवधिज्ञानी एक हजार ८ आठसौ, मनःपर्यायी एक हजार पांचसौ, चतुर्दशपूर्वी ५सौ, वैकुर्विक दो हजार दोसौ, वादी संख्या १२०० बारहसौ, शासन काल छ लाख वर्ष. कितना पाट मोक्ष में गया संख्याता, शासन देव वरुण, शासन देवी अच्छुसा।२०।

## २१ नेमिनाहपहुस्स चरित्तं–

मूलम्–जंबुद्दीवे पच्चत्थिमविदेहे भरहनाम विजयम्मि कोसंबी नाम णयरी होत्था। तत्थ सिद्धत्थ नाम राया, सो संसाराओ विरत्तो जाओ, सुदसणं नामग मुणि समीवे दिक्खिओ जाओ, उग्गतवसंजमं आराहिऊण तित्थगर नामगोयं कम्मं निबंधिय, अणसणं किच्चा पाणए देवलोगे बीससागरोवमो ठिईओ महड्ढिओ देवो जाओ, देवलोगाओ चविऊण मिहिलाए णगरीए विजयसेण राया, माउस्स नाम विप्पा, आउ दससहस्सवरिसं, आसाढ सुक्कपुण्णिमाए गब्भकल्लाणगं, सावणकिण्ह अट्ठमीए जम्मकल्लाणगं, अद्धतइयसहस्सवरिसं कुमारपए, पंचसहस्सवरिसं रज्जं करीअ, एगसहस्सपरिवारेण सद्धिं आसोअ किण्ह नवमीए देवकुरु सिवियारूढो दिक्खिओ जाओ, पढम भिक्खादायारो

दत्त नामा, भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाकालो नव मासा, बकुल नाम चेइयरुक्खतले मिग्गसिर सुक्कएक्कारसदिवसे केवलणाणं, वेसाह सुक्कदसमी दिणे निव्वाणं, देहप्पमाणं पन्नरसधणूमाणं, कंचणवण्णो, नीलुप्पललक्खणं, णायगगणहरो कुंभो, अग्गणी साहुणी अणिला, पव्वज्जाकालो अद्धतइय-सहस्सवरिसं, गणहराणं संखा सत्तरस, साहु संखा बीससहस्सा, साहुणी संखा एकचत्तालीससहस्सा, सावगाणं संखा एगसत्तरिसहस्सउत्तरं एगलक्खा सावि-याणं संखा चउरासीइसहस्सउत्तरं तिण्णिलक्खा, साहु केवली संखा छसयोत्तर एगसहस्सा, साहुणी केवली संखा दो सयोत्तर तिण्णिसहस्सा, ओहिनाणीणं संखा छसयोत्तर तिण्णिसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा दो सया पन्नासोत्तर एगसहस्सा, चउद्दसपुव्वीणं संखा चत्तारिसया पन्नासा, वेउव्वियलद्धिधराणं

संखा पंचसहस्सा, वाईणं संखा एगसहस्सा, सासणकालो पंचलक्खवरिसो संखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो भिउडिनामा, सासणदेवी गंधारी ॥

२१ श्रीनेमीनाथप्रभु का चरित्र–

भावार्थ—जम्बूद्वीप के पश्चिमविदेह में भरत नामक विजय में कौशांबी नामकी नगरी थी। वहां सिद्धार्थ नाम का राजा राज्य करता था. उसने संसार से विरक्त होकर सुदर्शन नामक मुनि के समीप दीक्षा ग्रहण की। राजर्षि सिद्धार्थने कठोर तप करते हुए तीर्थंकर नामकर्म के बीस स्थानों की सम्यक् आराधना कर तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया। अन्तिम समय में अनशन कर वे प्राणत नामक विमान में देवरूपसे उत्पन्न हुए।

देवलोक से च्यवन १०वें देवलोककी स्थिति २० बीस सागरोपम, जन्मनगरी मिथिला, पिताका नाम विजयसेन, माताका नाम विप्रा; आयुष्य १० हजार वर्ष, गर्भ कल्याणक आषाढ शुक्ल पूर्णिमा. जन्म कल्याणक श्रावण कृष्ण अष्टमी, कुवरपद अढाई २॥ हजार

वर्ष, राज्यगादी समय ५ हजार वर्ष शिविका देवकुरा, दीक्षा कल्याणक अश्विन कृष्ण नवमी एक हजार के साथ, पहली गोचरी के दाता का नाम दत्त, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का समय ९ नौ मास, चैत्य वृक्ष का नाम बकुल, केवलकल्याणक मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी,निर्वाण कल्याणक वैशाख शुक्ल दशमी, देह प्रमाण १५ धनुष वर्णकंचन, लक्षण नीलोत्पल कमलनायक, गणधर कुंभ, अग्रणी साध्वी अनिला, प्रव्रज्या समय अढाई हजार वर्ष गणधर संख्या १६, साधु संख्या बीस हजार, साध्वी संख्या ४१ हजार, श्रावक संख्या एक लाख ७१ हजार, श्राविका संख्या तीन लाख ८४ हजार, साधु केवली एक हजार छहसौ साध्वी केवली तीन हजार दोसौ, अवधिज्ञनी तीन हजार छहसौ, मनःपर्यायी एक हजार दोसौ पचास, चतुर्दशपूर्वी चारसौ पचास, वैक्रिविक ५ पांच हजार, वादी संख्या १ एक हजार, शासनकाल ५ लाख वर्ष, कितना पाट मोक्ष में गया संख्याता शासनदेव भृकुटि, शासन देवी गान्धारी ॥२१॥

## २२ अरिट्ठनेमिपहुस्स चरित्तं—

मूलम्—जबुदीवे भरहखेत्ते अचलपुर नामणयरे होत्था। तत्थ विक्कमधणो नाम पतावी राया रज्जं करीअ, संखस्स पुव्वजम्मबंधु सूरो सोमोवि आरणदेवलोगाओ चविय सिरिसेण गिहे जसोहरो गुणहरो य नामो पुत्तो जाओ। संख राया दिक्खिओ जाओ, संखो राया बीसठाणाइं आराहिऊण तित्थगर नामं गोयं कम्मं निबंधिअ, तओ पच्छा अपराजिय देवलोग बत्तीस सागरोवमो ठिईओ महड्ढिओ देवो जाओ, तओ चविऊण सोरीपुरे जम्मं, पिउस्स नाम समुद्दविजओ, माउस्स नाम सिवा देवी, आउ एगसहस्सवरिसं, कत्तिय किण्हा बारसे दिणे गब्भकल्लाणगं, सावण सुक्कपंचमी दिणे जम्मकल्लाणगं, कुमारपए तिण्णिसयावरिसा, एगसहस्सपरिवारेण सद्धिं उत्तर नाम सिबियारूढो सावण-

सुक्क छट्ठिए दिक्खिओ जाओ, पढम भिक्खादायारो नाम वरदत्तो, भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाकालो चउवन्नं दिवसा, वेतसरुक्ख नाम चेइयरुक्खतले आसिण किण्हा अमावसा दिणे केवलणाणं, आसाढसुक्क अट्ठमी दिणे निव्वाणं, दसधणूप्पमाणं देहमाणं, सामवण्णो, संखलक्खणो, णायग गणहरो वरदत्त नामा, अग्गणी साहुणी जक्खणी, पव्वज्जाकालो सत्तसयावरिसा, गणहराणं संखा अट्ठारस साहु संखा अट्ठारससहस्सा, साहुणी संखा चत्तालीससहस्सा, सावगाणं संखा एगलक्ख एगूणसत्तरिसहस्सा, सावियाणं संखा तिण्णिलक्ख छत्तीससहस्सा, साहुकेवलीणं संखा पंचसयोत्तर एगसहस्सा, साहुणी केवलिणं संखा तिण्णिसहस्सा, ओहिणाणीणं संखा पंचसयोत्तर एगसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा एगसहस्सा, चउद्दसपुव्वीणं संखा चत्तारिसया, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा पंच-

सयोत्तर एगसहस्सा, वाईणं संखा अट्ठसया, सासणकालो, पाउण चउरासीइ सहस्सवरिसा, संखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो गोमेधो, सासणदेवी अम्बा ॥

२२ अरिष्टनेमि प्रभु का चरित्र—

भावार्थ—जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में अचलपुर नामके नगर में विक्रमधन नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे। शंख के पूर्व जन्म के बन्धु सूर और सोम भी आरण देवलोक से च्यवकर श्रीषेण के घर यशोधर और गुणधर नाम से पुत्र हुए। शंख राजा ने दीक्षा ग्रहण की। शंख ने बीस स्थानों की आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्मका उपार्जन किया।

वहां से चवकर अपराजित देवलोक की स्थिति ३२ सागरोपम, जन्म नगरी सोरीपुर, पिताका नाम समुद्रविजय, माताका नाम शिवादेवी, आयुष्य एक हजार वर्ष, गर्भकल्याणक कार्तिक कृष्ण द्वादशी जन्म कल्याणक श्रावण शुक्ल पंचमी, कुंवरपद

तीनसौ ३०० वर्ष, राजगादी समय, नहीं। शिविका उत्तर, दीक्षा कल्याणक श्रावण शुक्ल षष्ठी. एक हजार के साथ, पहली गोचरी के दाता का नाम वरदत्त, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का काल ५४ दिन, चैत्यवृक्ष, का नाम वेतस वृक्ष, केवल कल्याणक अश्विन कृष्ण अमावास्या, निर्वाण कल्याणक आषाढ शुक्ल अष्टमी, देहप्रमाण १० धनुष, वर्ण श्याम, लक्षण शंख, नायक गणधर वरदत्त. अग्रणी साध्वी यक्षणी, प्रव्रज्या का समय ७०० सातसौ वर्ष, गणधर संख्या १८, साधु संख्या १८हजार, साध्वी संख्या चालीस हजार, श्रावक संख्या एकलाख ६९हजार, श्राविका संख्या तीनलाख ३६ हजार, साधु केवली एक हजार पांचसौ, साध्वी केवली तीन हजार, अवधिज्ञानी एक हजार पांचसौ मनःपर्यायी एक हजार, चतुर्दशपूर्वी चारसौ वैकुर्विक एकहजार पांचसौ, वादी संख्या ८०० आठसौ, शासन काल ४३॥। पौने चौरासी हजार वर्ष, कितना पाट मोक्ष में गया संख्याता। शासनदेव गोमेध, शासनदेवी अम्बा ॥ २२ ॥

## २३ पासनाहपहुस्स चरित्तं–

मूलम्–जंबुद्दीवे पुव्वविदेहे पुराणपुरे णयरे होत्था, तत्थ वज्जबाहु नाम राया, एगया जगन्नाह तित्थयरो पुराणपुरे णयरे समवसरिओ, वज्जबाहू परिवारसहिओ तस्स दंसणट्टं गओ, देसणं सोच्चा राया विरत्तो जाओ। पुत्ते रज्जं ठवित्ता जगन्नाह तित्थयर समीवे दिक्खिओ जाओ, उग्गतव संजमं आराहिऊण तित्थगर नाम गोयं कम्मं निबंधिइ, दसमदेवलोगस्स बीस सागरोवमो ठिईओ देवो जाओ। तओ चविऊण वाणारसीए जम्मं, पिउस्स नाम अस्ससेणो, माउस्स नाम वामादेवी, आउ सयवरिसो, चेइय किण्ह चउत्थ दिणे गब्भकल्लाणगं, पोसकिण्ह दसमीए जम्मकल्लाणगं कुमारपए तीसं वरिसा, तिण्णिसयपरिवारेण सद्धिं विसाला नाम सिवियारूढो पोसकिण्ह एक्कारसे दिवसे दिक्खिओ जाओ। पढम

भिक्खादायारो नाम धन्न, भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाकालो अद्ध-सहियं तेसीइदिणं, धायइरुक्खतले चेइय किण्ह चउत्थ दिणे केवलणाणं, सावण सुक्क अट्ठमीए निव्वाणं, देहप्पमाणं नव रयणो नीलो वण्णो, सप्पलक्खणो, णायगगणहरो अज्जदत्तो, अग्गणी साहुणी पुप्फचूला, पव्वज्जाकालो सत्तरि-वरिसो, गणहराणं संखा अट्ठ अहवा दस, साहुणं संखा सोलससहस्सा, साहुणी संखा अट्ठतीसं सहस्सा, सावगाणं संखा एगलक्ख चउसट्ठिसहस्सा, सावियाणं संखा तिण्णिलक्ख सत्तावीसं सहस्सा, साहुकेवलीणं एगसहसा, साहुणी केव-लीणं संखा दो सहस्सा, ओहिनाणीणं संखा चत्तारिसयोत्तर एगसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा सत्तसया पन्नासा, चउद्दसपुव्वीणं संखा, तिण्णिसया पन्नासा, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा, एगसयोत्तर एगसहस्सा, वाईणं संखा

छसया, सासणकालो अद्धतइयवरिसो, संखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो वामण नामा, सासणदेवी पउमावई ॥

२३–श्री पार्श्वनाथप्रभु का चरित्र–

भावार्थ–जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुराणपुर नाम का नगर था। उसमें व्रज्रबाहु नाम का प्रतापी राजा राज्य करता था। एक बार जगन्नाथ तीर्थंकर का पुराणपुर में आगमन हुआ। वज्रबाहु परिवार सहित उनके दर्शन करने गया। उपदेश सुनकर वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने अपने पुत्रको राज्य भार दे दिया और जगन्नाथ तीथकर के समीप दीक्षा ग्रहण करली। वहां कठोर तप करके उन्होंने तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया।

वहां से चवन दशमें देवलोक की स्थिति बीस सागरोपम, जन्म नगरी वाराणसी, पिता का नाम अश्वसेन, माता का नाम वामादेवी, आयुष्य सो वर्ष, गर्भ कल्याणक चैत्र कृष्ण चौथ, जन्म कल्याणक पौष कृष्ण दशमी, कुंवरपद ३० वर्ष, राज गादी समय

राज्य नहीं किया। शिबीका विशाला, दीक्षा कल्याणक पौष कृष्ण एकादशी तीनसौ के साथ, पहली गोचरी के दाता का नाम धन, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का समय साढे तियासी दिन, चैत्यवृक्ष का नाम धातकीवृक्ष, केवल कल्याणक चैत्र कृष्ण चौथ, निर्वाणकल्याणक श्रावण शुक्ल अष्टमी, देह प्रमाण ९ हाथ, वर्ण नील, लक्षण सर्प, नायक गणधर आर्यदत्त, अग्रणी साध्वी पुष्पचूला, प्रव्रज्या समय ७० वर्ष गणधर संख्या आठ अथवा १० दस, साधु संख्या १६ हजार, साध्वी संख्या ३८ हजार, श्रावक संख्या एक लाख ६४ चौसठ हजार, श्राविका संख्या तीन लाख २७ हजार, साधु केवली एक हजार, साध्वीकेवली दो हजार, अवधिज्ञानी एक हजार चारसौ, मनःपर्यायी सातसौ पचास, चतुर्दश पूर्वी तीनसौ पचास, वैकुर्विक एक हजार एकसौ, वादी संख्या ६०० छसौ, शासन काल अढाईसौ वर्ष, कितना पाट मोक्ष में गया संख्याता, शासन देव वामन, शासन देवी पद्मावती ॥२३॥

## २४ महावीरपहुस्स चरित्तं—

मूलम्—दसम देवलोगस्स बीससागरोवमं ठिइं भुज्जा तओ चविउण खत्तियकुंडगामे नयरे आगमिअ, पिऊस्स नाम सिद्धत्थो, माउस्स नाम तिसला आसी, आऊ बावत्तरि वरिसं, आसाढसुक्कछट्ठीए गब्भकल्लाणगं, चेइय सुक्क तेरसदिणे जम्मकल्लाणगं, कुमारपए अट्ठावीसवरिसं, दिनमेकरज्जं करीअ, चंदपभा सिबियारूढो मिग्गसिर किण्हदसमीए दिक्खिओ जाओ। पढम भिक्खादायारो बहुलबंभणो, भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाकालो दुवालसवरिसा अद्धसहियं छम्मासा, चेइयरुक्खतले वेसाह सुक्कदसमीए केवलणाणं, कत्तिय किण्ह अमावासदिणे अद्धरत्तिए निव्वाणं, सत्तरयणी देहप्पमाणं, कंचणवण्णो, सीललक्खणो, णायगगणहरो इंदभूई, अग्गणी साहुणी चंदणबाला, पव्वज्जाकालो

बायालीसं वरिसं, गणहराणं संखा एक्कारस, साहुणं संखा चउद्दससहस्सा, साहुणीणं संखा छत्तीससहस्सा, सावगाणं संखा एगूणसट्ठिसहस्सोत्तरं एग-लक्खा, सावियाणं संखा तिण्णिलक्खा, साहु केवली संखा सत्तसया, साहुणी केवली चत्तारि सयोत्तर एगसहस्सा, ओहिणाणीणं संखा, तिण्णि सयोत्तर एग-सहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा, पंचसया, चउद्दसपुव्वीणं संखा तिण्णिसया वेउव्वियलद्धिधराणं संखा सत्तसया, वाईणं संखा चत्तारिसया, सासणकालो एक्कवीस सहस्सवरिसो, दो पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो मत्तंगो, सासण-देवी सिद्धा ॥

२४–श्री महावीर स्वामी चरित्र–

भावार्थ–श्रीमहावीर प्रभु का देवलोक से च्यवन १० दशवें देवलोक की स्थिति २० वीस

सागरोपम, जन्म नगरी क्षत्रियकुंड, पिता का नाम सिद्धार्थ, माता का नाम त्रिशला, आयुष्य ७२वर्ष, गर्भकल्याणक अषाढ शुक्ल षष्ठी, जन्म कल्याणक चैत्र शुक्ल त्रयोदशी, कुंवर पद २८ वर्ष, राज्य गादी एक दिन शिबिका चन्द्रप्रभा दीक्षा कल्याणक मार्ग–शीर्ष कृष्ण दशमी, अकेले, पहली गोचरी देने वाले का नाम बहुल, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का समय १२ वर्ष ६॥ मास, चैत्यवृक्ष, का नाम साल वृक्ष केवल कल्याणक वैशाख शुद दशमी निर्वाण कल्याणक कार्तिक कृष्ण अमावास्या, देह प्रमाण ७ सात हाथ, वर्णकंचन, लक्षण सिंह, नायक गणधर इन्द्रभूति, अग्रणी साध्वी चन्दनबाला, प्रव्रज्या का समय ४२वर्ष, गणधर संख्या ११ ग्यारह, साधु संख्या १४ हजार, साध्वी संख्या ३६ हजार, श्रावक संख्या १ लाख ५९ हजार, श्राविका संख्या तीन लाख १८ हजार, साधु केवली ७०० सातसौ, साध्वी केवली १ एक हजार चारसौ अवधिज्ञानी १ एक हजार तीनसौ, मनःपर्यायी पांचसौ, चतुर्दशपूर्वी तीनसौ, वैकुर्विक सातसौ,

वादी संख्या चारसौ, शासन काल २१हजार वर्ष, कितना पाट मोक्ष में गया दो पाट, शासनदेव मतंग, शासनदेवी सिद्धा, पूर्वभव संबन्धी नाम नन्दन ॥

मूलम्—वंदे उसभ अजियं, संभव मभिणंदणं सुमइ, सुप्पभ—सुपासं सासि, पुप्फदंत सीयलं सिज्जंसं वासुपुज्जं च ॥२०॥ विमल मणंतयधम्मं, संति कुंथुं अरं च मल्लिं च ॥ मुणिसुव्वय नमिरिट्ठनेमि, पासं तहा वद्धमाणं च ॥२१॥

भावार्थ—अब चौवीस तीर्थकरों के गुणानुवाद करते हैं—(१) चौदह स्वप्न में से प्रथम वृषभ स्वप्न देखा इसलिये तथा वृषभ का लंछन देखकर ऋषभदेवजी नाम दिया, २ चोपट पासे के खेल में गर्भ के प्रभावकर हरवक्त राजा से रानी की जीत होती देख अजितनाथ नाम दिया, ३ देश में धान्य का बहुत समूह उत्पन्न हुआ देखकर संभव-नाम दिया, ४ इन्द्रो ने आकर माता पिता का बारम्बार अभिस्तव किया जिससे अभिनन्दन नाम दिया, ५ माता की सुमति हुई देख सुमतिनाथ नाम दिया, ६ पद्म

कमल की शैय्या पर शयन करने के दोहद से तथा पद्म कमल समान शरीर की शोभा देखकर पद्मप्रभु नाम दिया ७ माता के कर के स्पर्श से राजा की पांसुलियां सीधी हो गई इसलिए सुपार्श्वनाथ नाम दिया ८ चन्द्रमा पीने के दोहदसे तथा चंद्र समान शरीर की प्रभा देख चन्द्रप्रभ नाम दिया, ९ माता की सुबुद्धि होने से सुविधीनाथ और पुष्प समान दांत देख पुष्पदंत नाम दिया (नवत्रे तीर्थंकर के दो नाम है) १० माता के हाथ के स्पर्श से राजा का दाह ज्वर का रोग जाने से शीतलनाथ नाम दिया। ११ बहुत लोगें का श्रेय करने से तथा देवाधिष्ठित शैय्या पर शयन करने से श्रेयांसनाथ नाम दिया. १२ वासु इन्द्र ने वसु—द्रव्य की वृष्टि की जिससे वासुपूज्य नाम दिया १३ गर्भ में आने से माता का शरीर निर्मल रोग रहित होने से विमलनाथ नाम दिया। १४ अनन्त माता का स्वप्न देखने से अनन्त नाथ नाम दिया। १५ माता पिता की धर्म पर द्रढ प्रीति देख धर्मनाथ नाम दिया १६ देश में मारी का रोग का उपद्रव दूर

करने से शांतिनाथ नाम दिया, १७ वैंरीयों का कुंथुवे के समान सूक्ष्म हुये जान कुंथुनाथ नाम दिया, १४ माता ने स्वप्न में रत्नमय आरा देखा जिससे अरनाथ नाम दिया १९ षड्ऋतु के फुलों की माला का स्वप्न देखा जिससे मल्लिनाथ नाम दिया २० बहुत बोली माताने मौन और व्रताचरण किये जान मुनिसुव्रत नाम दिया २१ सर्व वैरीयों को नमे जान नमीनाथ नाम दिया, २२ अरिष्ट रत्न की नेमी (मणि का चक्र की) स्वप्न में देख रिष्टनेमि नाम दिया, २३ अन्धकार में सर्प के पासे के पास से जाता देख पार्श्वनाथ नाम दिया और २४ राज्य में धान्यादि की वृद्धि हुई देख मान वर्धमान नाम दिया यह २४ तीर्थंकरों के गुण निष्पन्न नाम की स्थापना की सो कहा ॥२१॥

मूलम्—पढमित्थ इंदभूई, बीओ पुणहोइ अग्गिभूईत्ति ॥ तइओय वाउभूई तओ वियत्ते सुहम्मेय ॥ मंडिय मोरियपुत्ते, अकंपिए चेव अयलभाया य॥

मेयज्जेय पभासे, गणहरा हुंति वीरस्स । निव्वुइ पहुसासणयं, जयइ सया सव्व भाव देसणयं ॥ कुसमयमयनासणयं, जिणंदवर वीरसासणयं ॥२४॥

भावार्थः—अब अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी के इग्यारे गणधर हुवे उनके नाम १ इन्द्रभूति, २ अग्निभूति, ३ वायुभूति, ४ विगतभूति, ५ सौधर्मस्वामी, ६ मंडितपुत्र, ७ ८ अकम्पित मौर्यपुत्र, ९ अचलभ्रात १० मेतार्य और ११ प्रभास इनका विशेष स्वरूप यन्त्र में देखो इन इग्यारे ही गणधरों में पहिले और पाचवें तो महावीर स्वामी मोक्ष गये बाद और नवगणधर महावीर स्वामी के सन्मुख राजगृही नगरी में एक महीने की संलेहना कर मोक्ष पधारे है पूर्वोक्त ग्यारों ही गणधर सदैव मोक्ष पंथ के साधक, तथा शिक्षक जो सर्वदा सर्वभाव के दर्शक उपदेशक कुशास्त्र की दुर्मति का नाशक, कुत्सित शास्त्रके मद के गालने वाले, जिनेश्वर के संघ में प्रधान मुखी २ जिन शासन के नायक सदैव जयवंत होवो ॥ २४ ॥

गणधराणां नामानि

| संख्या | गणधर नाम | गाम | माताका नाम | पिताका नाम | गोत्र | गृहवास | छद्मस्थ | केवल-पर्याय | सर्वायु | परिवार | शंका |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | इन्द्रभूति | गुव्वर | पृथ्वी | वसुभूति | गौतम | ५० | ३० | १२ | ९२ | ५०० | जीवकी |
| २ | अग्निभूति | गुव्वर | ,, | ,, | ,, | ४६ | १२ | १६ | ७४ | ५०० | कर्मकी |
| ३ | वायुभूति | गुव्वर | ,, | ,, | ,, | ४२ | १० | १८ | ७० | ५०० | तज्जीवकी |
| ४ | विगतभूति | कोलाकसन्निवेश | वारुणी | धनमित्र | भद्राइन | ५० | १२ | १८ | ८० | ५०० | भूतकी |
| ५ | सौधर्मस्वामि | कोलाकसन्निवेश | भद्दिला | धम्मिल | अग्निवेश | ५० | ४२ | ८ | १०० | ३५० | तदर्थकी |
| ६ | मंडितपुत्र | मौरिकसन्निवेश | विजया | धनदेव | वासिष्ट | ५३ | १४ | १६ | ९३ | ३५० | बंधकी |
| ७ | मोर्यपुत्र | मौरिकसन्निवेश | जयंति | मौर्य | कासव | ६५ | २ | १६ | ९३ | ३०० | देवताकी |
| ८ | अक्रम्पित | कोलाकसन्निवेश | नंदी | देवर | गौतम | ४८ | ९ | २१ | ७८ | ३०० | निर्याकी |
| ९ | अचलभ्रात | तुंगिया | वारुणी | वासु | हारीम | ४६ | १२ | १४ | ७२ | ३०० | पुण्यकी |
| १० | मेतार्य | वच्छभूमि | देवी | दत्त | कौंडिल | ३६ | ५० | १६ | ६२ | ३०० | परलोककी |
| ११ | प्रभास | राजगृही | अतिभद्रा | बल | ,, | १६ | ८ | १६ | ४० | ३०० | निर्वाणकी |

मूलम्–सुहम्मं अग्गिवेसाणं, जंबू नामं च कासवं पभवं कच्चायणं वंदे, वंच्छं सिज्जं भवं तहा ॥२५॥

भावार्थ—अब अनुपम शुद्धाचार के पालक जिन शासन के प्रवर्तक सतावीस पाटों के नाम गोत्रादि कहते हैं–१ श्री सुधर्मास्वामी अग्निवेसायन गोत्री, २ जम्बूस्वामी काश्यप गोत्री, ३ प्रभव स्वामी कात्यायन गोत्री, ४, सिज्जंभव स्वामी वच्छ गोत्री ॥२५॥

मूलम्–जस भद्दंतुगीयं वंदे, संभुयं चेव माढरं॥ भद्दबाहुं च पाइन्नं, थुलभद्दं च गोयमा ॥२६॥

भावार्थः—५ यशोभद्र स्वामी तुंगीय गोत्री, ६ संभूति स्वामी माढर गोत्री; ७ भद्रवाहु स्वामी प्राचीन गोत्री ८ स्थुलभद्र स्वामी गौतम गोत्री ॥२६॥

मूलम्–एलावच्च सगोतं, वंदामि महागिरि सुहत्थिं च, ततो कोसिय-

गोत्तं, बहुलस्स बलिस्सहं वंदे ॥२७॥

भावार्थः—९ महावीर स्वामी सुहस्ति स्वामी यह दोनों वच्छगोत्री, १०, बहुल स्वामी कोसिय गोत्री ॥२७॥

मूलम्—हारियगोत्तं सायं च, वंदे मोहारियं च सामज्जं । वंदामि कोसिय-गोत्तं, संडिल्लं अज्जज्जीय धरं ॥२८॥

भावार्थ—११ साइण स्वामी हारिव्य गोत्री, १३ स्यामाचार्य मोहरी गोत्री १३ संडिलाचार्य कौशिक गोत्री शुद्धाचारी ॥२८॥

मूलम्—तिसमुद्दक्खाय किर्त्तिं, दीवसमुद्दे सुगहियपेयालं ॥ वंदे अज्जसमुद्दं, अक्खोभिय समुद्दगंभीरं ॥२९॥

भावार्थ—१४ जिन की तीनों दिशा में समुद्र पर्यंत उत्तर में वैताढय पर्वत पर्यंत

कीर्ति का विस्तार पाया था, द्वीप समूह जैसे ऐसे आर्य समुद्र स्वामी को वंदना करता हूं ॥२९॥

**मूलम्—मणग करगं चरगं, पभावगं णाणदंसणगुणाणं ॥ वंदामि अज्ज मंगु, सुयसागर पारगंभीरं ॥३०॥**

भावार्थ—१५ उपसर्गादि उत्पन्न होने से जो कदापि क्षोभित नहीं होवे, समुद्र की तरह गंभीर बुद्धिवंत, शास्त्र के ज्ञाता, क्रिया कल्पके करने वाले, चारित्रवंत, धैर्य-वंत जिनशासन के दीपक, ध्यानी ज्ञानदर्शन चारित्र गुन के धारक, सूत्र समुद्र के पारगामी, ऐसे आर्यमंगू आचार्य वंदना करता हूं ॥३०॥

**मूलम्—वंदामि अज्जधम्मं, वंदे तत्तोय भद्दगुत्तं च । तत्तोय अज्जवइरं, तवनियमगुणेहिं वइरसमं ॥३१॥**

भावार्थः—१६ आर्य-धर्माचार्य, १७ भद्रगुप्त स्वामी, १८ वइर स्वामी, यह तीनों आचार्य द्वादश तप नियमादि गुणगण करके वज्रहीर समान को वन्दना करता हूं ॥३१॥

मूलम्—वंदामि अज्जक्खिय, खमणेरक्खिय चरित्त सव्वेसं। रयणकरंडग भूओ, अणुओगो रक्खिओ जेहिं ॥३२॥

भावार्थ—१९ आर्य रक्षित स्वामी क्षमा करने में महा समर्थ मूल गुण उत्तर गुण में दोषरहित, रत्न करंड समान अर्थ ग्रहण करने की रीति के प्रवर्तक है उनको वन्दन करता हूं ॥३२॥

मूलम्—नाणंमि दंसणंमिय तव विणए निच्चकाल मुज्जंत्तं ॥ अज्जे नंदि लक्खणं सिरसा वंदे पसन्नमणं ॥३३॥

भावार्थ—२० ज्ञानदर्शन चारित्र तप ज्ञान विनय में सदैव उद्यमवंत सदैव प्रस-

न्नचित्तवाले क्षमावंत आर्य नंदिला नामक आचार्य को वंदन करता हूं ॥३३॥

मूलम्-वड्ढओ वायगवंसो यसवंसो अज्जनाग हत्थीणं ॥ वागरणं करणं भंगिय, कम्मप्पयडी प्पहाणाणं ॥३४॥

भावार्थ-२१ आर्य नागहस्ति आचार्य वंश और यश की वृद्धि के कर्ता, संस्कृत प्राकृत व्याकरण के ज्ञाता, अच्छेद प्रश्नोत्तर के दाता, करण सित्तरी चरण सित्तरी द्विभंगी, त्रिभंगी चतुभँगी प्रमुख की युक्ति के मेलक, कर्म प्रकृति की विधी, जमाने में प्रधान इनको वंदना ॥३४॥

मूलम्-जच्चंजणधाउ समप्पहाण, मुद्दिय कुवलयनिहाणं ॥ वड्ढओ वायग वेसोरे वइ नक्खत्त नामाणं ॥३५॥

भावार्थ-२२ रेवती आचार्य जाचा हुआ प्रधान अंजन तथा सुरमा जैसी शरीर की प्रभाकांति के धारक द्राक्षवर्णकमल समान, रत्नसमान वर्ण के धारक वंश वृद्धि

के कर्ता को वंदना ॥३५॥

मूलम्—अयलपुरम्मि क्खेत्ते कलियसुय अणुगिए धीरे ॥ बंभदीवग सीहे, वायगं पयमुत्तमं पत्ते ॥३६॥

भावर्थ—२३ ब्रह्मदीपक सिंह आचार्य जो अचलपुर से संयम लेकर निकले कालिकसूत्र तथा चारों अनुयोग के धारक धैर्यवंत वाचको में उत्तमपद के प्राप्त करने वाले को वंदना करता हूं ॥३६॥

मूलम्—जेसिं इमो अणुओगो, पयरइअज्जविअद्ध भरहंमि ॥ बहु नयर-निग्गजसे, तं वंदे क्खंदिलायरिए ॥३७॥

भावार्थ—२४ खंदिलाचार्य, आजतक जो अर्थादि की प्रवर्ती हो रही और दक्षिण भरत के नगरों में जिन का यश विस्तार पाया है ॥३७॥

मूलम्—कालियसुय अणुओगस्स, धारए धारएय पुव्वाणं ॥ हिमवंत

खमासमणे, वंदे नागज्जुणायरिए ॥३८॥

भावार्थ—२५ नागार्जुनाचार्य कालिक सूत्र और चार अनुयोग के धारक तथा अर्थ सहित सूत्र के धारक, चुल हिमवंत पर्वत के समान क्षमा श्रमण ॥३८॥

मूलम्–तत्तो हिमवंतमहंत, विक्कमे धिइ परक्कम मणंते ॥ सज्झाय मणंतधूरे, हिमवंत वंदिमो सिरसा ॥३९॥

भावार्थ—वाचकाचार्य महाहिमवंत पर्वत समान महापराक्रमी बलवंत धैर्यवंत अप्रमत्त बहुतसी स्वाध्याय के करने वाले को वंदन ॥३९॥

मूलम्–मिउ मद्दव संपन्ने, अणुपुव्विं वायगत्तणं पत्ते ॥ उहसुय समायारे नागज्जुण वायगे वंदे ॥४०॥

भावार्थ—२६ नागार्जुनाचार्य अत्यन्त मृदु कोमल स्वभाव के धारक अहंकार

रहित सरल स्वभावी अनुक्रम से वाचक पद की प्राप्ति के कर्ता को नमस्कार होवे ।४०।

मूलम्—गोविंदाणंपि नमो, अणुओगी विउल धारणिंदाणं ॥ खंतिदयाणं परूवणे दुल्लभिंदाणं ॥४१॥

भावार्थ—२७ गोविन्दाचार्य बहुत विस्तार सहित सूत्रार्थ के धारक और दातार सदैव क्षमावंत दयावंत सर्व पुरुषों में शुद्ध श्रावक की करणी के प्ररूपक ऐसे पुरुष की प्राप्ति ही इस लोक में बड़ी दुर्लभ है जिनको वंदन ॥४१॥

मूलम्—तत्तो य भूयदिन्नं, णिच्चं तव संजमे अनिव्विणं ॥ पंडिय जण-सामण्णं ॥ वंदामि संजमं विहण्णु ॥४२॥

भावार्थ— तब फिर भूतदिन्न साधुजी सदैव १२ प्रकार तप और १७ प्रकार का संयम पालते हुए थके नहीं पंडित लोग को चारित्र बनाकर साता उपजाने वाले, संयम की विधी के जानकार को वंदन ॥४२।

मूलम्—वरकणग तविय चंपग, विमलवर कमल गब्भसरिस वण्णे। भविय जणहिअय दइए, दयागुणविसारए धीरे ॥४३॥

भावार्थ—अच्छा तपाया हुआ सुवर्ण समान, तथा चम्पा के फूल समान विकसित पद्म कमल के गर्भ समान शरीर का वर्ण धारक, भविक जीवों के हृदय को वल्लभ-कारी दया के गुणमें प्रधान विचक्षण ॥४३॥

मूलम्—अड्ढभरहप्पहाणे, बहुविह सज्झाय सुमुणिणियपहाणे ॥ अणु-उगिय बरवसमे नाइयलकुलवंसनंदिकरे ॥४४॥

भावार्थ—धैर्यवंत, आधे भरतक्षेत्र में युग प्रधान बहुत प्रकार के स्वाध्यायादि युक्त, अच्छे जानकार, सुमुनिश्वर के पंथ के साधक, सुवीनीत, उत्तम अर्थ के कथक प्रधान वृषभसमान, श्री ज्ञातकुल महावीर के वश में आनन्द के करता ।४४।

मूलम्—भूयहिय अप्पगब्भे, वंदेहं भूयदिन्न मायरिए ॥ भवभय वुच्छेय करे, सीसे नागज्जुणरिसिणं ॥४५॥

भावार्थ—सर्व जीवों के हित करने में बल्लभ ऐसे सतावीसमें पाट में जो भूत दीन नाम के आचार्य है उनको वंदन करता हूं नरक तिर्यचादि दुर्गति के भय के निवारण करने वाले सर्व भवांतरों के भय के निकन्दन करने वाले नागार्जुन ऋषीश्वर को वंदन ।४५

मूलम्—सुमुणिया णिच्चाणिच्चं सुमुणिय सुत्तत्थ धारयं निच्चं, वंदेहं लोहिच्चे सवभावुभावणाणिच्चं ॥४६।

भावार्थ-शाश्वत अशाश्वत पदार्थों का ज्ञान सम्यक् प्रकार हुवा है, शुद्धाचारी सूत्र अर्थ के धारक जावजीव पर्यंत अखण्डाचार के पालक लोहित नाम के आचार्य होते हुए भाव को सदैव अच्छी तरह दर्शाने वाले को वंदन ॥४६॥

मूलम्—अत्थ महत्थ खाणिंसु, समणवक्खाणं कहण णिव्वाणं, पयडए महुरवाणिं, पयउपणमामि इसगाणिं ॥४७॥

भावार्थ—मोक्ष साधन का ही जिनके महार्थ की ख्याति है तथा प्रथम सूत्र कह-कर फिर उसका महा अर्थ कहे ऐसे सूत्रार्थ के खानी इस प्रकार उत्तम व्याख्यान के दाता, सदैव स्वभाव से समाधी प्रकृति वाले, मिष्ट इष्ट वचनोच्चारक, आत्मसंयम की यत्नावंत, इमाचार्य को नमस्कार ॥४७॥

मूलम्—तव णियम सच्च संजम, विणयज्जव खंति मद्दवरयाणं। सलि-गुणगहियाणं, अणुओगी जुगप्पहाणाणं ॥४८॥

भावार्थ—तप, नियम, सत्य संयम चारित्र, विनय, सरलता, क्षमा, निरहंकार, इत्यादि गुणों में रक्त शीलादि गुणकर गहरे द्वादशांगी के अर्थ में युग प्रधान ॥४८॥

मूलम्—सुकुमाल कोमलतले, तेसिं पणमामि लक्खणं पसत्थे ॥ पएपवायणीणं, पाडित्थगसएहिं पणिवइएहिं, जे अन्ने भगवंते, कोलियसुय आणुओगिए धीरे, तं वंदिऊण सिरसा ॥४९॥

भावार्थ—अत्यंत, सुकुमार कोमल मनहर हस्त पांव के तलेवाले उत्तम वर्णन करने योग्य लक्षण के धारक उत्तम कीर्ति योग्य प्रवर्तन सिद्धान्त के जानकार स्वगच्छता करके सेकडों साधु के हृदक में रमण बहुत साधुओं के वन्दनीय, अन्य गच्छवाले भी बहुत सूत्रार्थ जिनकें पास लेने आते ऐसे ॥४९॥ और भी बहुत स्थविर भगवंत आचारांगादि कालिक सूत्र के अर्थ के पाठी अच्छी बुद्धिवाले धैर्यवंत जिनको सविनय मस्तक नमकर वंदना नमस्कार होवो.

॥ समाप्त ॥